DHANVANTARI

1960 G. K. U.

DHANVANTARI

1960 G.K.U.

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

भाग ३४ अङ्क ५ मई १९६०

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से ही बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेज कर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक भी ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है। इस वर्ष नारी-रोगांक प्रकाशित किया गया है।

५—ग्राहक को किसी भी माह का अङ्क मिलने पर यह देख लेना चाहिए कि उससे पहिले माह का अंक मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला है तो तुरन्त अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखते हुए सूचित करना चाहिये। वर्ष के अन्त में या ४-६ माह बाद एक साथ ४-४, ६-६ अंकों की शिकायत लिखना उचित नहीं।

६—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रियायत नहीं करते। अतएव कमीशन या रियायत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

७—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिए, या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अंक और विशेषांक का वार्षिक मूल्य ५॥) की वी. पी. भेजने की आज्ञा देनी चाहिए।

विषय सूची

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३४ अङ्क ५	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र	मई १९६०

आप्त-वचन—

* असंधारणीय वेग *

न वेगान्धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्र पुरीषयोः ।
न रेतसो न वातस्य न च्छर्द्याः क्षवथोर्न च ॥
नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः ।
न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च ॥

—चरक सू० ७।३-४

—बुद्धिमान् पुरुष को उत्पन्न हुए निम्न तेरह वेगों का धारण न करना चाहिये; मल, मूत्र, शुक्र, अधोवात, वमन, छींक, उद्गार (उर्ध्व वायु), जृम्भा, क्षुधा, पिपासा, अश्रु, निद्रा तथा श्रम-श्वास (हांफ)।

[शुक्र के वेग के धारण के निषेध से समझा जा सकता है कि सन्तति-निग्रह का एतन्मूलक नव्योक्त उपाय कायटस इन्टरप्टस आयुर्वेद सम्मत नहीं है। अश्रु के वेग के निग्रह का निषेध इसलिये है कि रोने से हृदय का भार हल्का होता है।]

तन्त्र भूषण विकल्प

श्री धीरेशचन्द्र दीक्षित शास्त्री बी० आई० एम० एस०

विकल्प विचार—

महर्षि पतञ्जलि ने विकल्प शब्द का प्रयोग स्वप्रणीत वाणी मन एवं शरीर के मल को दूर करने वाले व्याकरण योग एवं आयुर्वेद शास्त्र के महाभाष्य योग दर्शन एवं चरक संहिता नामक तीनों ग्रन्थों में शास्त्रानुकूल परिभाषा में किया है। व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार के जो प्रयोग उपलब्ध होते हैं उनकी सिद्धि प्रत्यय आदि का विकल्प करके की गयी है। "नवेतिविभाषा" सूत्र के महाभाष्य में विकल्प का उल्लेख है। योगदर्शन में विकल्प चित्त की पांच वृत्तियों में से एक है। जिसकी परिभाषा है "शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्प" अर्थात् शब्द प्रमाणानुसार अभेद में भेद एवं भेद में अभेद का व्यवहार विकल्प है। आयुर्वेद शास्त्र में विकल्प कल्पना या उपयोगार्थ संस्कार अथवा केवल भेद अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कल्प शब्द कृप् सामर्थ्य धातु से णयन्त कर पचादि गण की अच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। मेदिनी कोष में कल्प शब्द "कल्पो विकल्पे करण दौ सवर्चे व्रह्म वासरे शास्त्रे च न्याये विधौ" इन अर्थों में प्रयुक्त होना है। अर्थात् केवल कल्प शब्द विकल्प अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। विशिष्ट कल्प ही विकल्प है। आर्षत्रयी में कल्पना की विशिष्टता से कल्प स्थान रचे गये है। यद्यपि सुश्रुत के कल्प में विष भेषज कल्पना ही है, चरक संहिता में कल्पना चतुष्क के चार अध्याय हैं। इनके अनन्तर ही कियन्त: शिरसीय अध्याय में ६२ मान विकल्पज रोगों का वर्णन कल्प से विकल्प विशिष्टता सूचनार्थ संम्भवतः किया है।

साध्यों का अल्प मध्यम व उत्कृष्ट ये त्रिविध विकल्प, सुखसाध्य, याप्य, असाध्य, प्रत्याख्येय असाध्य चतुर्विधविकल्प, तथा विकार हेतु अयोगा वियोग मिथ्या योग रूप त्रिविध विकल्प एवं द्रव्य संयोग विभाग विस्तर रूप बहुविधि विकल्प आदि अनेकों विकल्पों का चरक संहिता में वर्णन है। विकल्प सम्प्राप्ति का तो आयुर्वेद में विशिष्ट स्थान है। जिसे "अंशांशबल विकल्पो विकल्पोऽस्मिन्नर्थे" से आचार्य ने कहा है। अन्य विकल्पों पर दृष्टिपात न कर सम्प्रति सुश्रुत तन्त्र के तन्त्र भूषण संज्ञक अध्यय में पठित रस दोष भेद विकल्प पर ही विचार करना अभीष्ट है। आचार्य सुश्रुत ने संहिता के अन्तिम रस भेद विकल्प स्वस्थ वृत्त तन्त्र युक्ति व दोष भेद विकल्प नामक अध्यायों को तन्त्र भूषण संज्ञा प्रदान की है। अन्तिम अध्याय में ६२ (बासठ) दोष भेदों का वर्णन है अत: शेष ६३ वां भेद समदोष सर्वरस सम्बन्धी स्वस्थताकारक होता है। अतएव स्वस्थवृत का मध्य में अध्याय आचार्य ने अवसर प्राप्त ग्रथित किया है। एवं तन्त्र युक्ति नामक अध्याय को विशेष रूप से विकल्प का अर्थ ज्ञान कराने के लिये साधारणतया सभी तन्त्र युक्ति का ज्ञान कराने के लिये रस दोषों में सम्पुटित कर मध्य में ग्रथित किया है। इसका मुख्य ध्येय रसों द्वारा दोषों की चिकित्सा ही अभिलषित होता है। आचार्य चरक ने उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही विमान स्थान रचा जिसमें रस विमान को प्राथमिकता दी और रस दोष आदि की शक्ति वैध कर सकें अतएव इन दोनों का ज्ञान ही तन्त्र भूषण है।

सुश्रुत, चरक, हारीत, कश्यप, संहिताओं में इसका महत्वपूर्ण निर्देश है—

तस्मात्प्रसंगं संशम्य दोष भेद विकल्पनैः॥
रोगं विदित्वो पचरेद्रसभेदैर्यथेरितैः ॥१॥
(सु० उ० ६६)

यस्स्याद्रस विकल्प ज्ञः स्याच्च द्रोष विकल्प वित्॥
नस मुह्येद्वि काराणां हेतु लिंगोपशान्तिषु ॥२॥
(च० सू० २६–२७)

रसदोष विभागज्ञः प्रकोपोपशमं प्रति ॥
भिषग्भिषक् त्वं लभते विपर्ययमथान्यथा
(का० खि० ६ अ०१)

विकल्प की सुश्रुतोक्त परिभाषा "इदं वेदम्वेति विकल्पः" यथारसौदनः सघृता यवागू वी (भवतिति) अर्थात् यह अथवा यह इस प्रकार दो तुल्य पक्षों की स्वीकृति विकल्प कहलाती है। अथवा व्याकरणानुसार रूप में कुछ अन्तर होने पर भी अन्य शब्द की सापेक्षता स्वीकृति या योगानुसार रस और दोष भिन्न पदार्थों में अभेद या तुल्यता तथा अभिन्न तीन दोष व छै रसों में तिरेसठ तिरेसठ प्रत्येक के भेदों का चिकित्सा में व्यवहारार्थ शास्त्र प्रमाणानुसार विकल्प कहलाता है अथवा दर्पणकार की परिभाषा "विकल्पस्तुल्य बलयोर्विरोधश्चातुरी युतः" से रस भेद के तुल्य दोष भेद की बल तुल्यता कर चातुर्यंय से तरतम बल बिरुद्ध पक्ष का स्थापन विकल्प होता है। जैसे प्रस्तुत रस दोष भेदों में वृद्ध तथा क्षीण सन्निपातों का विरुद्ध पक्ष स्थापन होगा एवं उपरोक्त शास्त्रान्तर एवं स्वशास्त्र प्रसिद्ध विकल्प का प्रकरण में अर्थ पूर्णतया स्पष्ट चरितार्थ होता है।

२. रस दोष विचार—

साम्प्रत दोषों की रसों से तुलना करना है किन्तु रस छै एवं दोष तीन हैं अतः एक दोष के बृद्धि एवं क्षीणता कारक दो दो रस हों तभी तुलना हो सकती है किन्तु शास्त्र में तीन तीन रसों को एक एक दोष का वर्धक एवं क्षीणकर्ता कहा है इनमें से दो रसों का प्रधानतया ग्रहण करलेने से तथा इन दो में भी एक को स्व सम्बद्ध दोष का वर्धक व एक को अति वर्धक रख लेने से ही तुलना हो सकती है। जिन में कषाय कटु मधुर क्रमशः वातपित एवं कफ के सर्वांश में बर्धक अतएव अतिवृद्धिकारक है तथा शेष तीन में तिक्त अम्ल लवण क्रमशः वात पित्त कफ की वृद्धिकारक है। हारीत संहिता में भी दो दो रसों से ही एक एक दोष के प्रकोप का वर्णन है तथा क्षार को लवण के स्थान पर कहा है।

कटु मधुर कषाय तिक्ताम्लकक्षारः द्वयं द्वयं वात कफ प्रकोपणं द्वयं पित्तकरं प्रदिष्टम् क्षारः कषायः पवन प्रकोपी मधुरौथतिक्तकः कफ कोपनं च कटुवम्लको पित्त विकारकारिणां।

अर्थात् क्षार कषाय वात का, मधुर तिक्त कफ का एवं कटु अम्ल पित्त का प्रकोप करते हैं। अन्य तन्त्रों में तिक्त वातवर्धक कहा है अतः क्षार के स्थान पर तिक्त रस और तिक्त के स्थान पर क्षार जो कि लवण स्थानीय है रखने से सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। यहां क्षार लवण स्थानीय है, यह आगे स्पष्ट होगा।

प्रथम लवण को कफ प्रकोपक लिखा गया है तथा अम्ल को पित्त वर्धक किन्तु चरक एवं सुश्रुत ने इन दोनों को पित्त और कफ दोनों का वधक कहा है। अम्ल पित्त का तथा लवण कफ का प्रधानतया वर्धक है जो निम्न प्रमाणों से सिद्ध है। विशेषतया लवण का कफकारकत्व प्रतिपाद्य है।

(१) क्षार को हारीत ने निम्न श्लोक में कफ कारक कहा है। उपरोक्त वाक्य में इसे पवन प्रकोपक कहा है, अतः पाठ परिवर्तन सिद्ध होता है। क्षार तो पित्तकारक ही है, कफकारक अग्रिम बचन से सिद्ध हो जाने के कारण पाठ परिवर्तन करने पर क्षार लवण स्थानीय सिद्ध होता है। क्षार का गुण क्षार और लवण को एक मानकर निम्न किया गया है।

क्षारः क्लैब्यं जनयति मुखे स्वादुरुष्णो विदाही।
शूल श्लेष्मा रुचि मुखतृषा मूत्रकृच्छ्रोषणश्च॥
आनाहं संजनयति पुनर्वह्नि सघुक्षणं स्यात्।
एवम्प्रोक्त विदित गुणकैः कोविदैः क्षार वीर्यम्॥१।

अर्थात् क्षार शूल श्लेष्मा रूचि तृषा मूत्र को करता है।

(२) प्रायो लवणं श्लेष्मलम् वृष्यंचान्यत्र सैंधवात्।

प्रायः लवण कफकारक तथा अवृष्य होता है। सैंधव लवण इसका अपवाद है। यह गंगाधर

सम्मत चरक के पाठ में लिखा है।

(३) महाभूतों से उत्पत्ति के अनुसार अग्नि पृथ्वी से अम्ल व जल अग्नि से लवण रस की उत्पत्ति हुई है। जल पृथ्वी की तुलना में अग्नि को शांत करता है अतः अम्ल की तुलना में लवण अधिक कफकारक सिद्ध होता है।

(४) वातादि कर्मों में सुदान्त सेन से क्रमशः स्पष्ट "कषायोरसश्च कटुवम्ल तिक्तारसाः रखौपटु स्वादु" रसों का निर्देश किया है, अतः कफ मधुर व लवण रस का है।

(५) पित्त विदग्ध अम्ल व कफ विदग्ध होने पर लवण रस का होता है। इनके प्राकृत रस कटु व मधुर क्रमशः होते ही हैं।

(६) अरुचि रोग के निदान में भी "लवणं च वक्रं माधुर्यं·······कफेन" कफज अरुचि में लवण व मधुर रस प्रमुख होता है।

(७) लवण से सामान्यतया रस प्रकरण में सामुद्र लवण का ग्रहण किया जाता है। जिसका गुण 'श्लेष्मलं' निघण्टु में वर्णित है।

सामुद्रं मधुरं पाके सस्निवतं मधुरम् गुरू।
नात्युष्णं वीपनं भेदि स क्षारमविदाहि च॥
श्लेष्मलंवातनुक्तिक्र्तमरूक्षं नायि शीतलम्॥ (भा. प्र.)

(८) लवण अम्ल का विपाक क्रमशः मधुर व कटु होता है जो क्रमशः पित्त तथा कफ का कारक है।

(६) नागार्जुन ने लवण को उष्ण तीक्ष्ण गुरु स्निग्ध गुण वाला होने से कफ स्राव व कफ प्रकोप कारक कहा है।

रसों का व दोषों का सम्बन्ध अग्रिम चक्र में चिकित्सार्थ औषधि सहित दिया है। सर्व रस का उपयोग स्वस्थताकारक है। अतः षट् रस में आगे कहे रसानुसार वृद्धि एवं क्षीणता दोषों में रस योग एवं वियोग से क्रमशः होती है।

निम्न नियम चक्रों के ज्ञान के लिये स्मरण रखना आवश्यक है।

(१) वृद्ध के २५ भेद सब रसों का उपयोग करते हुये चक्र लिखित रसों का अति योग करने से उत्पन्न होंगे तथा क्षीण के २५ भेद केवल चक्र निर्दिष्ट रसों के सेवन से उत्पन्न होंगे।

(२) हीन मध्य अति वृद्ध में "एकः प्रकुपितो दोषः सर्वानेव प्रकोपयेत्" परिभाषा का प्रयोग होगा।

(३) शेष १३ भेदों में अति वर्धक एवं वर्धक रस मिलकर एक दोष को अति वृद्ध न करते हुये वृद्ध ही करेंगे तथा शेष दोषों को उनके रस के अभाव में क्षीण भी करेंगे।

नोट—१४ वां भेद में लवण का वात का हीन कारकत्व चिन्तनीय है। विज्ञजन प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

३—सौषधि रस दोष भेद विकल्प चक्र

रस	दोष			औषधि	
वृद्ध भेद १२	वृद्ध	सम	सम		
१. तिक्त	वा	पि	क	निम्ब	पर्पटक
२. अम्ल	पि	क	वा	आम्र	करमर्द
३. लवण	क	वा	पि	रोमक	लवण
	वृद्ध	वृद्ध	सम		
४. अम्ल तिक्त	वा	पि	क	सुरा	
५. अम्ल लवण	पि	क	वा	एडक	उषक
६. लवण तिक्त	क	वा	पि	त्रपु	सीसक

रस	दोष			औषधि
	अतिवृद्ध	वृद्ध	सम	
७. कषाय अम्ल	वा	पि	क	हस्तीदधि शुकमांस
८. कटु लवण	पि	क	वा	गोमूत्र स्वर्जिक
९. मधुर तिक्त	क	वा	पि	श्रीवास सर्जरस
१०. कटु तिक्त	पि	वा	क	कर्पूर जातीफल
११. कषाय लवण	वा	क	पि	समुद्र फेन
१२. मधुर अम्ल	क	पि	वा	वदर कपित्थ
वृद्ध सन्निपात भेद १३	अतिवृद्ध	वृद्ध	वृद्ध	
१३. अम्ल लवण तिक्त कषाय	वा	पि	क	शुक्रमांस औद्भिद
१४. अम्ल लवण कटु तिक्त	पि	क	वा	हस्तिनी दधि सौवर्चल
१५. मधुर अम्ल लवण तिक्त	क	वा	पि	गोमूत्र एक शफक्षीर
	अतिवृद्ध	अ० वृद्ध	वृद्ध	
१६. अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय	वा	पि	क	भल्लातक रूप्यजतु
१७. म० अ० ल० कटु० तिक्त	पि	क	वा	आम्र भृष्ट वातार्क
१८. म० अ० ल० तिक्त कषाय	क	वा	पि	औद्भिद तक्र
	अ० वृ०	म० वृ०	ही० वृ०	
१९. कषाय अम्ल तिक्त	वा	पि	क	शुकमांस
२०. कटु अम्ल लवण	पि	क	वा	रौप्य शिलाजतु
२१. मधुर लवण तिक्त	क	वा	पि	शम्बूक मांस
२२. कटु अम्ल तिक्त	पि	वा	क	अभिमूत्र
२३. कषाय तिक्त लवण	वा	क	पि	समुद्र फेन
२४. मधुर अम्ल लवण	क	पि	वा	हस्तिनी मांस
	सम	वृद्ध	त्रय	
२५. मधुर कटु कषाय	वा	पि	क	गोधामांस एरन्ड तैल
क्षीण भेद १२	क्षीण	सम	सम	
२६. म० अ० ल० कटु क०	वा	पि	क	यवक्षार तक्र
२७. म० ल० क० ति० कषाय	पि	क	वा	रसोन
२८. म० कटु अ० ति० क०	क	वा	पि	हरीतकी धात्रीफल
	क्षीण	क्षीण	सम	
२९. म० ल० कटु कषाय	वा	पि	क	गोमूत्र तैल
३०. म० कटु ति० कषाय	पि	क	वा	तिल गुग्गुल
३१. म० अ० कटु कषाय	क	वा	पि	काञ्जिक एरन्ड तैल
	अति क्षीण	क्षीण	सम	
३२. म० ल० कटु तिक्त	वा	पि	क	वार्ताक फल

रस	दोष			औषधि
३३. म० अ० तिक्त कषाय	पि	क	वा	उदुम्बर यवासुशर्करा
३४. अ० ल० कटु कषाय	क	वा	पि	सौवर्चल हस्तिनी दधि
३५. म० अ० ल० कषाय	पि	वा	क	सैंधव तक्र
३६. म० अ० कटु तिक्त	वा	क	पि	लशुन सुरा
३७. ल० कटु तिक्त कषाय	क	पि	वा	रोमक वाल विल्व
क्षीण सन्निपात भेद १३	अति क्षीण	क्षीण	क्षीण	
३८. मधुर कटु	वा	पि	क	कुक्कुर शृंगालिमांस
३९. मधुर कषाय	पि	क	वा	तैल धनबन फल
४०. कषाय कटु	क	वा	पि	भल्लातक मज्जा हरताल
	अतिक्षीण	अतिक्षीण	क्षीण	
४१. मधुर	वा	पि	क	संतानिका गौ दुग्ध
४२. कषाय	पि	क	वा	पद्म कन्द
४३. कटु	क	वा	पि	चव्य
	अ० क्षीण	म० क्षीण	ही० क्षीण	
४४. मधुर कटु लवण	वा	पि	क	अपूप एणमांस
४५. मधुर कषाय तिक्त	पि	क	वा	गुडूची
४६. कटु अम्ल कषाय	क	वा	पि	अम्लवेतस
४७. मधुर लवण कषाय	पि	वा	क	ताम्र कासीस
४८. कटु अम्ल मधुर	वा	क	पि	शल्यमांस
४९. कटु तिक्त कषाय	क	पि	वा	कृष्ण गुरु सुरदारु
	सम क्षीण त्रय			
५०. अम्ल लवण तिक्त	वा	पि	क	हस्ति मृगमूष मांस
	वृद्ध	स्वस्थ	क्षीण	
५१. कटु लवण कषाय	वा	पि	क	अरूष्कासव रोमक
५२. कटु मधुर तिक्त	पि	क	वा	कटु अम्ल शक्तादि
५३. मधुर अम्ल कषाय	क	वा	पि	मस्तु तक्र
५४. लवण कटु तिक्त	पि	वा	क	अश्विमूत्र
५५. अम्ल लवण कषाय	वा	क	पि	हस्तिनी दधि
५६. मधुर अम्ल तिक्त	क	पि	वा	गो धूमि सुरा
	वृद्ध	क्षीण	क्षीण	
५७. कषाय तिक्त	वा	पि	क	लवली फल गजघृत
५८. कटु अम्ल	पि	क	वा	चुक्र
५९. मधुर लवण	क	वा	पि	उष्ट्री क्षीर उरभ्रमांस

—शेषांश पृष्ठ ६७५ पर

पुराणों में आयुर्वेद

[रसादि लक्षण, अग्निपुराण अध्याय २८१]

श्रीजनार्दन शास्त्री पाण्डेय

धन्वन्तरि ने कहा —

अब रसादि लक्षण औषधियों के गुण कहूंगा सुनो। इनके रस, वीर्य और विपाक को अच्छी प्रकार जानने वाला वैद्य ही नृपादि की रक्षा कर सकता है।

मधुर, अम्ल और लवण—ये रस सौम्य (सोमजन्य) कहे जाते हैं और कटु, तिक्त तथा कषाय—ये रस आग्नेय हैं। द्रव्य का विपाक तीन प्रकार से होता है—कटु, अम्ल और लवण रूप से। वीर्य दो प्रकार का है—शीत और उष्ण अर्थात् द्रव्य या औषधि या तो शीतवीर्य होती है या उष्ण वीर्य। हे द्विजोत्तम! औषधियों का प्रभाव अनिर्दिष्ट होता है अर्थात् जिसका जो रस, वीर्य और विपाक निर्दिष्ट है उससे विपरीत भी उसका प्रभाव देखा जाता है अतः अनिर्दिष्ट माना है। जैसे मधुर, कषाय तथा तिक्त रस शीत वीर्य हैं शेष (कटु, अम्ल, लवण) उष्णवीर्य कहे गये हैं। किन्तु गुडूची तिक्त होने पर भी वीर्य में अत्युष्ण होती है। इसी प्रकार पथ्या (हरीतकी) कषाय होती है किन्तु वह भी उष्ण वीर्य है। मांस मधुर रस है तथापि उष्णवीर्य है। लवण तथा मधुर रस विपाक में मधुर माने जाते हैं। अम्ल रस भी विपाक में मधुर और उष्ण होता है। शेष रस (कटु, कषाय और तिक्त) विपाक में कटु होते हैं। वीर्यपाक में विपरीत प्रभाव होने से ही उसमें निश्चय हो सकता है जैसे मधु मधुर होने पर भी विपाक में कटु होता है। कषाय की जहां मात्रा निर्धारित नहीं की है वहां यह कल्पना करनी चाहिये कि द्रव्य १६ गुने जल में क्वाथ किया जाय और चार गुना रह जाय तब उसे पिया जाये।

स्नेह पाक में कषाय जल चार गुना होना चाहिये अर्थात् काथ्य द्रव्य को चौगुने जल में डालकर पाक करे, चौथाई रहने पर छान लें। इसके संयोग से स्नेह पाक करे। जब अवलेह आदि बनाना हो तो द्रव्यों के बराबर स्नेह लेकर द्रव्य में मिलाले। प्रमाण में (तोल में) बराबर होने पर भी मात्रा में द्रव्य अधिक हो तो स्नेह और डाले अर्थात् बिना जल डाले ही द्रव्य स्नेह से पूर्ण हो जाना चाहिये, इस प्रकार उसको चलाता हुआ उसका पाक करे, इस प्रकार अवलेह औषधि बनती है ऐसा सुश्रुत ने कहा है। यह साधारण मात्रा कही गई है। मात्रा में किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता। अवस्था, काल, बल, वह्नि, देश, द्रव्य तथा रोग को देखकर औषधि मात्रा की कल्पना की जाती है।

प्रायः सौम्य रस धातु को बढ़ाने वाले समझे जाते हैं। मधुर रस तो विशेषकर धातुवर्धक है। जो द्रव्य दोषों और धातुओं के समान गुण वाला होता है वही वृद्धिकारक होता है। इसके विपरीत जो हो वह क्षयकारक है।

हे मनुजोत्तम! इस शरीर में तीन प्रकार का उपक्रम होता है—आहार, मैथुन और निद्रा, उसमें सदा यत्न होता है। इनके सेवन या असेवन से मनुष्य नाश को प्राप्त होता है।

क्षीण शरीर का बृंहण और स्थूल देह का कर्षण (कृश करने का उपाय) करना और मध्यम शरीर का रक्षण करना चाहिये। इस प्रकार शरीर के तीन भेद कहे हैं।

दो प्रकार का उपक्रम होता है—तर्पण, अतर्पण। इसलिये हितकर, परिमित और अच्छी प्रकार पचने वाला आहार करना चाहिये।

औषधि की पांच प्रकार की कल्पना होती है अर्थात् उनका प्रयोग पांच प्रकार से किया जाता है—रस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट।

रस औषधि को निचोड़कर निकाला जाता है। कल्क जो आलोडित, घिसकर या पीसकर बनता है। शृत जो क्वाथ करके बनाया जाता है। शीत जो खौलते जल में डालकर छान लिया जाता है।

इस प्रकार इन कारणों से १६० प्रकार होते हैं जिन्हें जानता हुआ वैद्य अजेय होता है।

अग्नि को दीप्त रखने के लिये आहार शुद्धि आवश्यक है क्योंकि मनुष्यों का बल अग्नि के आधार पर ही स्थित रहता है।

सिन्धु सहित त्रिफला का सेवन सुन्दर वर्ण देने वाला है। इसी प्रकार जाङ्गल प्राणियों का मांस रस, सिन्धु युक्त दधि और कणा (पिप्पली) युक्त दूध भी रसों की अधिकता को समता में लाता है तथा वात की अधिकता को शांत करता है। ग्रीष्म शिशिर और वसन्त में क्रमशः तीव्र न्यून और मध्यम मर्दन (मालिश) करना चाहिये। ग्रीष्म में अधिक मर्दन हितकर है। पहले त्वचा का मर्दन करके तब मज्जा का इसके बाद स्नायुओं और रुधिरवाही नसों का फिर हड्डी और मांसल प्रदेशों का। स्कन्ध, बाहु, जंघा तथा जानुओं को शत्रु की तरह मसल डालना चाहिये। जत्रु और वक्ष को भी। शरीर के सन्धि स्थलों का भी खूब निपीडन करना चाहिये। इसके बाद इन सन्धि स्थलों को फैलाना चाहिये किन्तु अक्रम से नहीं।

बिना भोजन पचे तुरंत श्रम न करना चाहिये और भोजन के बाद शीघ्र पेय पदार्थों का पान न करें। दिन के चतुर्थ भाग से ऊपर आधे प्रहर तक व्यायाम न करें। स्नान शीतल जल से एक बार करें। उष्ण जल से थकान दूर होती है। हृदय में श्वास को न रोके। व्यायाम से काम का और मर्दन से वात का नाश होता है और स्नान करने से पित्त का नाश होता है। इन कर्मों (व्यायाम, मर्दन और स्नान) के अन्त में आतप दूध का सेवन हितकर है।

[वृक्षायुर्वेद, अग्निपुराण अध्याय २८३]

धन्वन्तरि ने कहा—

अब वृक्षायुर्वेद को कहूँगा। घर से उत्तर दिशा में प्लक्ष (पलखन) का वृक्ष शुभ होता है। बड़ पूर्व दिशा में, आम दक्षिण दिशा में और पश्चिम दिशा में पीपल वृक्ष शुभ होता है।

घर के समीप में दक्षिण दिशा में उत्पन्न हुये कटीले वृक्ष भी शुभ होते हैं। घर के पास उद्यान या क्यारियां होनी चाहिये उनमें फूलों के पौधे या तिल बोने चाहिये।

ब्राह्मण और औषधीश चन्द्रमा की पूजा करके वृक्षों को रोपना या बोना चाहिये। ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र (रोहिणी तीनों उत्तरा) वायव्य (वायु देवताक नक्षत्र-स्वाती) हस्त, अहरुद्र और विष्णु देवता वाले (क्रमशः रोहिणी, अभिजित्—आर्द्रा, पूर्वा भाद्रपदा, श्रवण) और मूल ये नक्षत्र वृक्षों के रोपण में शुभ कहे गये हैं। बगीचे में एक पुष्करिणी (तालाब या बावड़ी) और उसमें कमल भी होने चाहिये। हस्त, मघा, मैत्र (अनुराधा), पुष्य, अश्विनी, वासव (धनिष्ठा) शतभिषा तीनों उत्तरा ये नक्षत्र जलाशय का आरम्भ करने में शुभ हैं। वरुण, विष्णु और पर्जन्य का पूजन करके जलाशय का प्रारम्भ करें। बगीचे में अधिकतर इन वृक्षों को लगावे—अरिष्ट, अशोक, पुंनाग, शिरीष, प्रियंगु, केला, जामुन, बकुल और दाडिम।

ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः, शीत ऋतु में एक दिन के अन्तर से और वर्षाकाल में जब पानी न बरसता हो तब रात्रि में वृक्षों का सेचन करें।

जो वृक्ष २०-२० हाथ (३० फुट) की दूरी पर लगाये जाते हैं वे उत्तम तथा जो १६ हाथ (२४) फुट के अन्तर से लगाये जायें वे मध्यम हैं।

वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलते रहना चाहिये, कम से कम १२ बार। जो वृक्ष बहुत घने होते हैं उनमें फल नहीं लगते या कम लगते हैं। शस्त्र से उनका शोधन अनावश्यक शाखाओं का तक्षण भी करना चाहिये।

—शेषांश पृष्ठ ६७१ पर

हृदय रक्त-स्कन्दन

श्री आशानन्द पंचरत्न आयुर्वेदाचार्य

कवि. आशानन्द जी पंचरत्न ने हृदय रक्त-स्कन्दन लेखमाला को कई भागों में प्रकाशित होने के लिए यह प्रथम प्रस्तुत लेख प्रेषित किया था। इसी रोग से वह स्वयं पीड़ित थे तथा पाठकों को अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि इसी रोग के कारण वह २३-४-६० को दोपहर १२ बजे स्वर्गवासी हो गये। उनकी इस मृत्यु से आयुर्वेद जगत को बहुत बड़ी हानि पहुँची है। आप शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान थे जिसको कि अचानक राहु ने ग्रस लिया। आपके कारण आयुर्वेद की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव है। भगवान से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को दुःख सहन करने की शक्ति दें।

प्रस्तुत लेख शायद आचार्य जी का अन्तिम लेख है। उनकी लेखमाला का केवल एक ही पुष्प हम पाठकों को भेंट कर सके इसका हमें हार्दिक दुःख है। —सम्पादक

कारोनरी थ्राम्बोसिस (Coronary thrombosis)

कारोनरी थ्राम्बोसिस के शब्दार्थ पर ही इस रोग को वैधिक परिभाषा में हृदय रक्त-स्कन्दन नाम दिया गया है:- हृदय-कारोनरी, थ्राम्बोसिस-- जमने के बाद रक्त का थक्का, अर्थात् हृदय पोषणी धमनी की किसी शाखा (धमनिका या धमनी) में रक्त का जम जाना, परिणामस्वरूप रक्त का मार्ग रुक जाता है, और हृदय-कार्यावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। यदि वह धमनिका छोटी हुई तो रोगी बच जाता है परन्तु आजीवन कार्य-अक्षम रह जाता है, दो पग चलने पर सांस फूलने लगता है, किञ्चित भार (नवजात शिशु तक) उठाना उस के लिये असह्य होता है। वह रोगी एक प्रकार से आजीवन शय्यारूढ़ रहता है यदि धमनी और भी छोटी (धमनिका) हुई तो थोड़ा काम कर भी सकता है अर्थात् किंचित कार्य-क्षम रहता है।

पहले चन्द वर्षों में इस रोग का नाम बहुत ऊपर आचुका है। इसका विस्तृत वर्णन तो पाश्चात्य मेडिकल पुस्तकों में बहुत काल से आरहा है, परन्तु उस से पीड़ित रोगियों की संख्या हाल में ही अधिक बढ़ गई है। क्योंकि साम्प्रतिक युग में इस के निदान के लिये निश्चित वैज्ञानिक साधन उपस्थित हैं, जिससे निदान में सन्देह का अवसर नहीं रहता, और यह भी सत्य है कि पहले की अपेक्षा अब अधिक व्यक्ति इससे ग्रस्त होते हैं। अभी चन्द वर्ष पूर्व जम्मू कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में हिन्दू महा सभा के प्रधान पूजनीय श्री श्यामा-प्रसाद मुखर्जी का देहान्त इस रोग से हुआ परन्तु रोग का निदान उनकी मृत्यु के पश्चात् मैडिकल कमीशन द्वारा हो सका। अब से ३ वर्ष पूर्व पश्चिमी

पाकिस्तान में पाकिस्तान मुस्लिम लीग के प्रधान श्री अबूर्ब निशतर भी इस रोग के शिकार होते थे, एवं हमारे भारत शिरोमणि श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल भी इस रोग से काल के ग्रास बने थे।

यूनाईटेड स्टेट अमरीका के प्रधान श्री आईजेन-होवर को भी यह रोग हो चुका है, परन्तु तुरन्त निदान हो गया, चिकित्सा निपुण थी तथा आराम पूरा पूरा ६ मास तक मिला। यद्यपि वह इसके आक्रमण से सही सलामत निकल आये हैं, तथापि अब तक वह बहुत सावधानी से काम करते हैं। इसका सा दौरा हमारे गृह मन्त्री श्री गोबिन्द बल्लभ पन्त को भी हुआ बतलाते हैं।

आजकल इस रोग की चर्चा आम होती है। चन्द पत्र पत्रिकाओं कुछ वैद्य महानुभावों के लेख भी मेरी नजर से गुजरे हैं। मुझे प्रतीत हुआ कि वह लेख या तो उनके द्वारा लिखे गये हैं, जो इसको ठीक तरह समझ नहीं पाये, अथवा उनको ठीक तरह से समझाना नहीं आया। आज अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार मैंने अपनी लेखनी को प्रयोग करने का साहस किया है। यदि पूरा लेख पढ़ लेने बाद कोई प्रश्न पूंछना हो तो इस पत्रिका सम्पादक द्वारा मुझ से पूछ सकते हैं।

हमारे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में ऐसे किसी रोग का उल्लेख नहीं मिलता जो इससे मिलता जुलता हो, सम्भवतः उस समय यह होता ही न होगा। आजकल की तथाकथित सभ्यता ही इन जैसे रोगों की प्रायः जिम्मेदार है।

वैसे तो भूगोल में जहां तहां प्राणी इससे आक्रमित होते देखे जाते हैं परन्तु उन देशों में इस के आक्रमण बहुत देखने में आते हैं, जो नवीन सभ्यता के मुख्य स्थान हैं, जहां के लोग सुखी एवं सम्पन्न होते हैं जिनका आहार अमीरी होता है, निर्वाह सामग्री के लिये अधिक परिश्रम की आवश्यक्ता नहीं होती, यथा यू० ऐस० ऐ० (अमेरिका), ब्रिटेन, फ्रान्स, जापान, नार्वे आदि। रूस, चीन, एशिया अरब, अफ्रीका में इस से पीड़ित होने वाले रोगियों की संख्या कम है। इसी आधार पर सुखी सम्पन्न समृद्ध जातियों के सदस्य इससे बहुत शीघ्र ग्रस्त होते हैं। यह बात ध्यान रखने योग्य है की इनही देशों और इनही जातियों में धमनी-काठिन्य (Arterio-sclerosis) एवं रक्तधारा-धिक्य (High Blood Pressuse) अधिक होता है।

अब कारोनरी थ्राम्बोसिस के कारणों का नीचे उल्लेख करते हैं--

(१) यह रोग प्रायः वयस्कों (adults) में ४०-६० वर्ष में ही अधिक होता है, ३५ से नीचे इसका अभाव ही समझना चाहिये। ३५ के ऊपर ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है इसकी सम्भावना बढ़ती जाती है। ५० % रोगी ४५ से ६० वर्ष के होते हैं।

आधुनिक युग में मनुष्य की औसतन आयु २० वर्ष अधिक बढ गई है, परन्तु ५० वर्ष के ऊपर आयु केवल २% के हिसाब से बढ़ी है। इसका एक मुख्य कारण यह रोग भी है।

(२) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को यह रोग बहुत होता है। रिपोर्टों के अनुसार ४ पुरुषों पीछे १ स्त्री का नम्बर आता है।

(३) उच्च, सभ्य जातियों के सदस्य इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं, यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, मारवाड़ी, जैन, पारसी, खोजे, यहूदी आदि।

(४) सुख सम्पन्न समृद्ध व्यवसायियों जैसे व्यक्ति अधिक रोग ग्रस्त होते हैं यथा जज, वकील, डाक्टर, बैंकर, ठेकेदार, प्रोफेसर, मर्चेन्ट, आदि। मजदूर, कृषक, श्रमिक में इस रोग का प्रायः अभाव समझना चाहिये। लेखक ने एक कृषक हरिजन को उसका शिकार होकर काल ग्रस्त होते देखा है, लेकिन ऐसे केसेज अपवाद मात्र समझने चाहिये।

(५) उच्च आहार सेवी ही इसका अधिक शिकार होते हैं, यथा अधिक घी, खीर, मलाई, मालपूये. एवं केक, पेस्ट्री, अण्डों के अधिक प्रयोग करने वालों में कारोनरी थ्रोम्बोसिस की बहुत ज्यादा

प्रवृति होती है। भैंस के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा दुगनी वसा (मक्खन) होती है, गाय के दूध में बकरी के दूध की अपेक्षा दुगनी। अब शायद पाठकों की समझ में आ जाय कि श्री महात्मा गांधी क्यों बकरी का दूध पीते थे। उनका ब्लड प्रशर ऊंचा था।

(६) शरीर की स्थूलता भी इसकी उत्पत्ति का एक सहायक कारण है। स्थूलकाय पुरुष कृशकाय की अपेक्षा इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं।

(७) मधुमेही को यह रोग शीघ्रता से एवं सुगमता से हो जाता है।

(८) पैतृक प्रवृत्ति भी इस रोग को उत्पन्न करने में विशेष सहायक है। कई कुल ऐसे हैं जिनमें उत्पन्न व्यक्ति अन्य कुलों के सदस्यों की अपेक्षा इस रोग से अधिक पीड़ित होते हैं।

(९) साम्प्रतिक युग का जीवन, विशेषकर शिक्षित वर्ग का जीवन जिसमें निरन्तर मानसिक परिश्रम, चिन्ता-शोक, उत्तेजना उपस्थित रहती है, इसके उत्पन्न करने में पर्याप्त उत्तरदायी है।

वक्तव्य – उपरोक्त ९ कारण ही धमनी-काठिन्य (Arterio-sclerosis) एवं रक्तभाराधिक्य (High Blood Pressure) को उत्पन्न करते हैं, तथा धमनी काठिन्य के अन्य सजातीय रोग धमनी अन्तःस्तर स्थूलता (thickening of inner coat of Arteries) को भी साथ साथ पैदा करते हैं। इसको डाक्टरी संज्ञा में एथिरोमा (Atheroma) या अथिरोस्क्लेरोसिस (Athero-sclerosis) कहते हैं।

इस धमनी अन्तः स्तर स्थूलता को उत्पन्न करने में अन्य ९ कारणों की अपेक्षा उच्च स्निग्ध आहार और पैतृक प्रवृति विशेष रूप से सहायक हैं, दूसरे कारणों की उपस्थिति में स्निग्ध आहार से धमनी स्थूलता शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। पैतृक प्रवृति कुल में इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों से ज्ञात होती है।

(१०) उपर्युक्त अन्तः स्तर स्थूल धमनी से ग्रस्त पुरुष को हृदय-रक्तस्कन्दन होने की बहुत अधिक सम्भावना होती है।

(११) हृदय-अवपीडन (Angina Pectoris) का अन्तिम परिणाम अनेक बार हृदय रक्तस्कन्दन ही होता है। हृदय-अवपीडन की उत्पत्ति धमनी काठिन्य या धमनी अन्तः स्तर स्थूलता से भी होती है, इसके अन्य कारण भी हैं (इसके लिए व्याधि विज्ञान देखें) परन्तु इन दो कारणों से उत्पन्न हृदय अवपीडन ही का अन्त प्रायः हृदय रक्तस्कन्दन में होता है।

वक्तव्य —(i) धमनी काठिन्य और धमनी अन्तः भित्ति स्थूलता में क्या भेद है, इसका वर्णन अभी आगे करते हैं।

(ii) जितनी और जिस प्रकार की वसा (घृत, वनस्पति-घृत, चरबी, अण्डे की जर्दी, तेल नारियल

पृष्ठ ६६८ का शेषांश

यदि पेड़ों पर फल न ठहरते हों अर्थात् लग कर झड़ जाते हों तो विडङ्ग, घी और पङ्क मिले शीतल जल से सींचना चाहिए। कुलत्थ, माष, मूँग, जौ और तिक्त इनके पानी का सेचन भी फलनाश की औषधि है।

घी मिले हुए शीतल जल से सींचना वृक्षों में सदा फल फूलों का वृद्धिकारक होता है। आविका का चूर्ण, जौ का चूर्ण, तिल, गोमांस और जल इनको सात रात्रि तक रक्खें। इसका उत्सेचन सभी प्रकार के वृक्षों में फल और फूलों की वृद्धि करता है।

जिस जल में मछलियां रहती हों उस जल से सींचने से वृक्ष शीघ्र बढ़ते हैं। विडङ्ग और चावलों के धोवन से युक्त मछली का मांस वृक्षों का उत्तम दोहद है इससे वृक्षों के सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

—श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय,
२१/२३ ब्रह्माघाट, वाराणसी।

तिल सरसों आदि) हम खाते हैं, वे सब पचने के बाद मानव शरीर की बसा (लाईपिड Lipid) बनती है। यही रक्त में रहती है और यही मनुष्य में चरबी रूप हो त्वचा, मांसपेशियों आदि में जमा रहती है। इसी लाईपिड से एक अन्य वस्तु कोलेस्ट्रोल (Cholestrol) बनती है, जिससे रक्त गाढ़ा बनता है, तथा धमनी के अन्तःस्थ स्तर में जमा होता है और उसे स्थूल बनाता है।

वसा का जितना अधिक प्रयोग किया जाये उतना अधिक लाईपिड बनता है परिणामस्वरूप अधिक कोलेस्ट्राल बनता है, और धमनी अन्तः-भित्ति स्थूलता और धमनी काठिन्यता के रोग होते हैं। बकरी के दूध की अपेक्षा गाय के दूध से अधिक कोलेस्ट्राल बनता है, गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में, और उनकी अपेक्षा तैल से, और सब से अधिक बानस्पतिक घी से कोलेस्ट्रोल बनता है।

उपर्युक्त ११ कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिन से हृदय रक्तस्कन्दन के होने की सम्भावना हो सकती है—

(१२) पित्त प्रणालियों के जीर्ण रोगों में, जीर्ण शोथ से जिनमें पित्त गाढ़ा हो जाता है या कम हो जाता है, इसके परिणाम स्वरूप रक्त में लाईपिड तथा कोलेस्ट्रोल बढ़ जाता है। इसको आंग्ल परि-भाषा में लाईपीमिया (Lipaemia) और कोलेस्ट्री-मिया (Cholestraemia) कहते हैं। इनसे रक्त में स्कन्दन (Coagulatin or Clotting) की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तथा बहुत काल तक लाईपीमिया (Lipaemia) और कोलेस्ट्रिमिया (Cholest-raemia) रहने से धमनी अन्तः भित्ति स्थूलता एवं धमनी काठिन्य हो जाता है।

वक्तव्य—(i) पित्त के निर्माण में लाईपिड तथा कोलेस्ट्राल का विशेष अंश होता है। जब पित्त गाढ़ा होता है या कम बनता है तो स्वभावतः यह रक्त में ही रह कर वहीं जमा होती रहती है।

(ii) पित्त प्रणालियों की सैलस ही यह कार्य करती हैं, अतः उनके रोगों में—यथा जीर्ण शोथ, यकृत् अप-वृद्धि (Degeneration of liver) कोलेस्ट्रोल और लाईपिड का उपयोग नहीं हो पाता।

(iii) ऐसी अवस्था में जिसमें पित्त बनाने वाले कोष (सैल्ज़) तो स्वस्थ हों और अपना कार्य सम्यक् रीति से कर रहे हैं, परन्तु पुरुष अधिक मात्रा में घी, वसा का प्रयोग कर रहा हो तो सारा लाईपिड उपयोग में नहीं आता और परिणाम-स्वरूप रक्त में लाईपिड बढ़ जाता है। ऊपर लिखित कारण नं० ५ इसी आधार पर आधारित है।

(१३) कई आपरेशनों के बाद रक्त में स्कन्दन (जमने) की शक्ति बढ़ जाती है, विशेषकर उदरस्थ अङ्गों के आपरेशन के बाद अन्तः धमनी काठिन्य, रक्तभाराधिक्य तथा धमनी अन्तःभित्ति स्थूलता के रोगियों में विरले अवस्था में कदाचित हृदय रक्त-स्कन्दन की सम्भावना हो सकती है, लाखों में एक ऐसा समझें।

(१४) चुल्लिका ग्रन्थि (थायरायेड ग्लेण्ड-Thyroid Gland) के उन रोगों में जिनमें इसका स्राव कम बनता है, उनमें इस रोग (हृदय रक्त-स्कन्दन) का भय उपस्थित रहता है, यथा मिक्सिडि-मिया (Myxaedemia), चुल्लिका ग्रन्थि ह्रास (Hypothyroidism हाईपोथायरोयडिज्म) में इसकी सम्भावना भी अत्यन्त कम है।

(१५) वृक्कों के अप-वृद्धि रोगों में (Degene-rative diseases of Kidney) वृक्कों की प्रणालियों एवं प्रारम्भिक भाग के कोषों की अप-गति होती जाती है और वो गलती जाती हैं यथा Nephrosis में, इस कारण से भी हृदय रक्त-स्कन्दन बहुत विरल होता है।

अन्त में लिखे सं० १३, १४, और १५ कारणों से हृदय-रक्तस्कन्दन बहुत ही विरल होता है। उन से उत्पन्न हृदयरक्तस्कन्दन को अपवाद मात्र माना जाये तो यह ठीक ही होगा। इन कारणों को केवल पाठकों के ज्ञानार्थ लिख दिया गया है कि कदाचित ऐसे रोगों में इसके होने की सम्भावना उपस्थित है।

इस प्रकरण की समाप्ति से पूर्व धमनी काठिन्य (Arterio-sclerosis) और धमनी अन्तः स्तर स्थूलता (Arthero-sclerosis) में भेद दर्शाना उचित प्रतीत होता है। डाक्टरी संज्ञा में दोनों को Sclerosis अर्थात् काठिन्य कहा गया है। यह काठिन्य धातु विशेष में सौत्रिक तन्तुओं की वृद्धि से ही होता है। धमनियों की दीवार में रबर की तरह लचकीली (स्थिति स्थापक) वस्तु होती है जिसके कारण हृदय के संकोच द्वारा धकेले हुए रक्त से धमनियां फैलती हैं और हृदय के प्रसार के कारण जब रक्त धमनियों में नहीं (धकेला) जाता तो सिकुड़ जाती हैं। जिस अवस्था में यह लचकीले तन्तु नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर सौत्रिक तन्तु बन जाते हैं, धमनियों की दीवार सख्त हो जाती हैं, उनमें उभरने और सिकुड़ने (उठने बैठने) की शक्ति कम हो जाती है, इसे धमनी काठिन्य (Sclerosis of Arteries) कहते हैं। इतना समझ लेने के बाद अब यह देखें कि धमनियों की दीवार तीन तहों (स्तरों) से बनती है, इन तहों को यदि कोट की संज्ञा दी जाय तो बहुत उपयुक्त होगा।

नोट—गुरुवर स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन सरस्वती ने इसको प्राचीरिका की संज्ञा दी है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती। प्राचीरिका से अर्थ पृथकीकारक दीवार होती है, इसको स्तर तह या कोट का नाम दें तो अधिक युक्त दीखता है।

१. बाह्य कोट २. मध्यस्थ कोट ३. अन्तःस्थ कोट।

(१) बाह्य कोट—तीनों कोट में बहुत दृढ़ और पायदार होता है। धमनी को यदि बहुत जोर से किसी दृढ़ वस्तु से कसकर बांध दिया जाये तो अन्दर के दोनों कोट टूट जायेंगे, परन्तु यह नहीं टूटेगा। यह सौत्रिक तन्तु की दृढ़ वस्तु से निर्मित है इसलिये इसके अन्तस्थ पृष्ठ पर चन्द स्थिति-स्थापक (लचकीली) वस्तु थोड़ी मात्रा में होती है, वह भी बड़ी धमनियों में, छोटी धमनियों और धमनिकाओं में नहीं। इसमें न कोई ऐसी धातु या कोष है जो घटे और सौत्रिक तन्तु इसमें पूर्व से ही पर्याप्त

धमनी की सूक्ष्म रचना
[अ—अन्तःस्थ कोट, ब—मध्यस्थ कोट, स—बाह्य कोट]

मात्रा में उपस्थित हैं जिनके कारण यह सुदृढ़ है, अधिक बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(२) मध्यस्थ कोट—मोटी मांस पेशियों की तह से बनी होती है। स्थूल धमनी में स्वभावतः यह मांसपेशियां अधिक परिमाण में और अधिक मोटी होती हैं और छोटी धमनियों में कम। इसके

अतिरिक्त इस कोट में स्थिति-स्थापक तन्तु भी होते हैं, स्थूल धमनियों में बहुत ज्यादा, तथा ज्यों ज्यों धमनियां छोटी होती जाती हैं ये भी कम होते जाते हैं, बहुत छोटी धमनियों में एवं धमनिकाओं में यह होती ही नहीं। हृदय से उद्गमित बृहत् धमनी में यह स्थिति-स्थापक वस्तु बहुत मात्रा में होते हैं, उससे उत्पन्न शाखाओं यथा ग्रैविक धमनियों, ऊर्ध्व और अधोशाखाओं की धमनियों में उससे कम, इनसे उत्पन्न शाखाओं में उनसे कम इस प्रकार क्रमशः कम होता जाता है, छोटी धमनियों में थोड़े थोड़े कहीं कहीं ये स्थिति-स्थापक तन्तु पाये जाते हैं।

इस कोट में स्थित मांसपेशी-धातु एवं लचकीले धातु के तन्तु नष्ट होते जाते हैं और इनका स्थान सौत्रिक तन्तु लेते जाते हैं, यही धमनी काठिन्य है। इसीसे रक्तभार बढ़ जाता है।

(३) अन्तःस्थ कोट—के अन्तस्थ पृष्ठ पर चपटी सैलें होती हैं। उनके बाहर थोड़े आधारक धातु (जिन पर वह सैल टिकी रहती हैं) उसके बाहर स्थिति स्थापक तन्तु। इस कोट के स्थिति-स्थापक तन्तुओं एवं आधारक वस्तु का घट जाना और उनके स्थान पर सौत्रिक तन्तुओं का बढ़ जाना ही धमनी अन्तः भित्ति या धमनी अन्तः कोट काठिन्य (Atheroma or Athero-sclerosis) कहलाता है। इसके साथ अन्तस्थ सपाट सैलें भी कड़ी हो जाती हैं और एक के ऊपर दूसरी, तीसरी तह बैठकर उस कोट को मोटा कर देती हैं। अन्तः भित्ति काठिन्य बड़ी और छोटी हर प्रकार की धमनियों में हो सकता है। यह और धमनी काठिन्य (दूसरे कोटि का काठिन्य) अनेक बार दोनों साथ साथ उपस्थित होते हैं। जहां केवल अन्तस्थ कोट काठिन्य होता है, वहां रक्त भार नहीं बढ़ता। रक्त भार केवल मध्य कोट काठिन्य (इसे ही धमनी काठिन्य कहते हैं) में ही बढ़ता है। अन्य अङ्गों की अपेक्षा हृदय की धमनियों में अन्तस्थ कोट का काठिन्य एवं स्थूलता अधिक होती है (हमने इस लेख में सुविधा की दृष्टि से दोनों को एक ही श्रेणी में रखा है और दोनों को अन्तः भित्ति स्थूलता का नाम दिया है), इनसे दो परिणाम हो सकते हैं कि (१) धमनी का अन्तः पृष्ठ कर्कश हो जाता है जिससे कि वहां रक्त जल्दी जमता है। (२) अन्तःकोट की सैलें बढ़ जाती हैं, तथा एक पर दूसरी तीसरी तह जम जाती हैं, फलस्वरूप धमनी का छिद्र छोटा होता जाता है, वहां से आगे जाने का रक्त का बहाव कम हो जाता है, उसीसे हृदय अवपीड़न होता है, इस स्थान पर भी रक्त के जमने (स्कन्दन) की बहुत सम्भावना रहती है। इसी हेतु पहली पंक्तियों में लिख आये हैं कि हृदय अवपीड़न का अन्त अनेक बार हृदये रक्त स्कंदन में होता है।

कदाचित ऐसा भी होता है कि अन्तः भित्ति क्रमशः शनैः शनैः स्थूल होते जाने से धमनी छिद्र बिलकुल बन्द पड़ जाता है, उसके भी वही लक्षण और परिणाम होते हैं, जो हृदय रक्त स्कन्दन के होते हैं।

हृदय का पोषण करने वाली धमनियां
[हृदय के पश्चात् तल पर रहने वाली धमनियाँ बिन्दुयुक्त रेखाओं द्वारा प्रदर्शित की गई हैं।]

हृदय रक्त स्कन्दन (कारोनरी) थ्राम्बोसिस में और उसके फलस्वरूप हृदय में क्या और कहां परिवर्तन होते हैं, यह समझने के लिये हृदय पिण्ड में रक्त संचार को जानना जरूरी है। हृदय का पोषण दो धमनियों द्वारा होता है। बायीं हृदय पोषणी धमनी और दायीं हृदय पोषणी धमनी। ये दोनों धमनियां बृहत् धमनी के आरम्भिक भाग से निकलती हैं, बायीं दायीं की अपेक्षा थोड़ी बड़ी है। दोनों की वैसे तो कई शाखायें हैं परन्तु मोटी मोटी शाखायें प्रत्येक की दो-दो एक पूर्व पोषणी और दूसरी पश्चिमी पोषणी शाखा हैं। बायीं हृदय पोषणी धमनी की पूर्व शाखा अपेक्षाकृत सबसे और बहुत बड़ी है। प्राय: इसी में रक्त-स्कन्दन (clotting) होता है, यह शाखा हृदय के बायें क्षेपक कोष्ठ और बहुत कुछ दायें क्षेपक कोष्ठ का पोषण करती है, हृदय का पूर्व पृष्ठ इनहीं दो से बनता है, इसके बाद दायीं पूर्व शाखा में रक्त स्कन्दन के केस होते हैं, इससे दायें ग्राहक कोष्ठ का तथा पीछे के थोड़े बायें क्षेपक कोष्ठ के भाग का पोषण होता है। इसके अवरोध से हृदय का पृष्ठ भाग मृत होता है। इसके बाद बायीं पोषणी धमनी की पश्चिमी (पृष्ठ) शाखा और उसके बाद दायीं पोषणी की पृष्ठ शाखा प्रभावित होती हैं। इनसे क्रमश: बायां ग्राहक कोष्ठ और क्षेपक कोष्ठ के कुछ अंश का पोषण होता है।

आगे चलकर रोग निदान का वर्णन करते हुये यह बतायेंगे कि इलैक्ट्रिक कार्डियोग्राम (E. C. G. = Electric Cardio Gram) से यह ज्ञात हो जाता है कि हृदय का कौन सा भाग रुग्ण हुआ है अर्थात् किस धमनी में अवरोध हुआ है।

:: तन्त्र भूषण विकल्प :: :: पृष्ठ ६६६ का शेषांश ::

रस	दोष			औषधि
	वृद्ध	वृद्ध	क्षीण	
६०. कषाय तिक्त कटु अम्ल	वा	पि	क	वालमूलक गजदधि
६१. कटु अ० ल० म०	पि	क	वा	गोमूत्र शिलाजतु
६२. म. ल. ति. कषाय	क	वा	पि	समुद्र फेन शर्करायुक्त चंदन
	समदोष (स्वस्थ)			
६३. मधुर अम्ल लवण कटुतिक्त कषाय	बात पित्त कफ			पारद एणमांस

—श्री धीरेशचन्द्र दीक्षित

आयुर्वेदिक स्नातकोतर प्रशिक्षणकेन्द्र, जामनगर।

श्वास रोग की अद्भुत औषधि-

वासा-पर्पटी

श्री कविराज प्राणनाथ शर्मा

आज से लगभग १७ वर्ष पूर्व सेवायोगी आश्रम बराड़ा जि० अम्बाला (पंजाब) से परम पूज्य श्री मनोहर योगी जी के शुभसम्पर्क से यह साधुप्रदत्त योग मुझे प्राप्त हुआ। तभी से मैं इस योग को बना श्वास के रोगियों में मुफ्त वितरित करता रहा हूँ। यह कौड़ियों में तैयार होने वाला योग लाभ की दृष्टि से अत्यन्त चमत्कारिक सिद्ध हुआ है। अनेकों रोगी इससे लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं।

श्री मूलचन्द खैरायती राम ट्रस्ट आयुर्वेदिक अस्वस्थालय व अन्वेषणालय, लाजपत नगर, नई दिल्ली के डायरेक्टर आदरणीय वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह जी के आदेशानुसार मैंने उक्त योग अस्पताल की रसायन शाला में तैयार किया। इसी काल में हमारे अस्वस्थालय से श्री कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा, अजमेर के पूज्यपाद श्री स्वामी कृष्णानन्द जी का शुभागमन हुआ और कविराज प्रताप सिंह जी ने उनसे इस योग का जिक्र किया तो श्री स्वामी जी ने इस योग की सराहना करते हुए इस का नाम वासा पर्पटी रखने की सम्मति दी।

उक्त अस्वस्थालय के अन्तरंग विभाग में ६० रोगीशय्याएं हैं। अतः वासा पर्पटी के निर्माण होने के पश्चात् अस्पताल में आने वाले श्वास रोगियों में से जिनको अन्तरंग विभाग (Indoor patient department) में प्रविष्ट किया गया उन पर वासापर्पटी के परिणामों का संक्षिप्त विवरण वैद्य बन्धुओं की जानकारी के लिये नीचे दे रहा हूं।

रोगविवरण—

रोगी संख्या ८२० शय्या संख्या ६०

रोगी नाम—मदन लाल पुत्र रूप लाल

आयु—२४ वर्ष (विवाहित)

व्यवसाय—अभाव

निवास स्थान—१४ सैन्ट्रल मार्केट, लाजपत नगर, नई दिल्ली।

प्रवेश तिथि—१४।१०।५६

रोग निर्णय—तमक श्वास

रोग समय—६ वर्ष

चिकित्सा—

लक्ष्मी विलास	१ रत्ती
वासा क्षार	४ रत्ती
टंकण भस्म	१ रत्ती

मात्रा—३ अनुपान—क्षीर

लवंगादिवटी ३ चूसनार्थ

श्वास काश चिन्तामणि	१ रत्ती

मात्रा—३

दशमूलारिष्ट	३ माशा
वारि (जल)	६ माशा

उक्तोपचार से लाभ न होने पर वासापर्पटी १ रत्ती।

१ मात्रा—प्रातः प्रतिदिन, अनुपान तक्र द्वारा चिकित्सा की गई।

पथ्य—दही, क्षीर भोजन।

निर्गम तिथि—१६।१०।५६

परिणाम—स्वस्थीभूयगतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—८३८ शय्या संख्या ५६

रोगी नाम—कृष्ण लाल पुत्र चूनी लाल

आयु—२० वर्ष

व्यवसाय—व्यापार

निवास स्थान—१३ ए/१६ ब्रह्मपुरी, करोलबाग, नई दिल्ली।

रोगी प्रवेश तिथि—१६।१०।५६
रोग निर्णय—श्वास
रोग समय—एक वर्ष

चिकित्सा—

वासा पर्पटी १ रत्ती
१ मात्रा—प्रातः अनुपान-तक्र
पथ्य—तक्र, क्षीर, भोजन
रोगी निर्गम तिथि—४।११।५६
परिणाम—स्वस्थी भूय गतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—८६० शय्या संख्या ५६
रोगी नाम—जीतसिंह पुत्र जवाहरसिंह
निवास स्थान—ब्लॉक ४१, फ्लैट २/२ सिंह सभा रोड, सब्जी मण्डी, दिल्ली।
रोगी प्रवेश तिथि—४।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास

चिकित्सा—

प्रथम अन्योपचार करने पर लाभ न होने से अन्त में वासापर्पटी की व्यवस्था की गई।

निर्गम तिथि—५।१२।५६
परिणाम—स्वस्थीभूय गतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—६१४ शय्या संख्या—५३
रोगी नाम—चमन लाल पुत्र गुरुदत्ता मल
आयु—४० वर्ष
निवास स्थान—प्रेम नगर, लोधी रोड ४, नई दिल्ली।
प्रवेश तिथि—११।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास

चिकित्सा—

समीरपन्नग रस १ रत्ती
सूत शेखर १ रत्ती
प्रवाल पंचामृत ४ रत्ती
३ मात्रा—अनुपान क्षीर
एलादि वटी ६ चूसनार्थ
विरेचन वटी १ नग

उक्तोपचार से लाभ न होने पर अन्त में वासा पर्पटी की व्यवस्था की गई।

निर्गम तिथि—२५।११।५६
परिणाम—स्वस्थीभूयगतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—६२५ शय्या संख्या-५०
रोगी नाम— ख्यालीराम पुत्र नत्थूराम
आयु— ३५ वर्ष
निवासस्थान—जुमुंदपुर, नई दिल्ली।
प्रवेश तिथि—१५।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास
रोग समय— १ वर्ष

चिकित्सा—

प्रवाल पंचामृत ४ रत्ती
समीरपन्नग रस १ रत्ती
लक्ष्मी विलास रस १ रत्ती
स्फटिका २ रत्ती
लवंगादि चूर्ण ४ रत्ती
मात्रा—३

उक्तोपचार से लाभ न होने पर अन्त में वासा पर्पटी की व्यवस्था की गई।

रोगी निर्गम तिथि—२८।११।५६
परिणाम—स्वस्थीभूयगयः

इसी प्रकार अनेक श्वास रोगियों पर वासा पपटी ने आश्चर्यचकित कर देने वाला प्रभाव दिखाया। अब मैं वैद्य बन्धुओं की सेवा में दुःखी श्वास रोगियों के लाभार्थं वासा पर्पटी का योग और निर्माण विधि नीचे लिख रहा हूं।

वासापर्पटी—

वासा का विशेष परिचय देना मैं यहां अभीष्ट नहीं समझता, क्योंकि समस्त वैद्य समाज वासा वनस्पति के वासा, वासक, अडूसा और बहकद

आदि नामों और गुणों से भली प्रकार परिचित हैं। अतः इस प्रसिद्ध श्वेत पुष्प वाली बनस्पति वासा का पंचाङ्ग प्राप्त कर उसे काटकर छोटे छोटे टुकड़े कर लेवें और किसी कढ़ाई आदि लौह पात्र में डाल देवें, अब इसी में जल भी इतना डालें कि वासा से चार अंगुल ऊपर तक रहे (अथवा वासा पंचांग से द्विगुण जल डाल देवें) देश एवं ऋतु अनुसार जल की मात्रा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इस वासा वाले लौह पात्र को अब किसी ऐसे स्थान पर २१ दिन तक खुला रखदें कि जहां दिन में सूर्य की धूप और रात में ओस पड़ती रहे। मध्य काल में कभी-कभी वासा को किसी लकड़ी आदि से हिला दिया करें। २१ दिन के बाद इस पात्र को ज्यों का त्यों ही चूल्हे पर रख कर इसके नीचे वासा की लकड़ियों अथवा कीकर (बबूल) की लकड़ियों की एक घन्टे तक मन्द आंच और बाद में मध्य आंच जलावें। यहां तक कि पात्र का समस्त जल सूख जावे किन्तु इस काल में पात्र में पड़े वासा को हिलावें नहीं। पात्र का सब जल सूख जाने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर साफ फर्श या लकड़ी आदि के किसी तख्ते पर उलट देवें। पात्र का सब वासा फर्श पर आ जावेगा और पात्र की पेंदी में काले रङ्ग की पपड़ी लगी हुई मिलेगी, उस पपड़ी को खुरपे आदि से खुर्च कर खरल में खूब बारीक कर लेवें। बस यही वासा पर्पटी है। इसे शीशी में सुरक्षित रखिये। आवश्यकतानुसार इसकी मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक मक्खन (नवनीत) या दही की मलाई में रख कर रोगी को प्रातः (खाली पेट) सेवन करावें और औषधि के तुरन्त बाद तक्र (फीका) का सेवन करावें। पथ्य में तक्र का सेवन अधिक रखना चाहिए। अपथ्य स्वरूप खट्टे और तैलादि में तले हुए पदार्थ न देवें।

टिप्पणी—

वासा कफनिःसारक, आक्षेप निवारक व रसायन है और रक्त के रक्तकण बढ़ाता है। यह क्षय, कास, जीर्णकास श्वास, एवं अन्यान्य उरोगत श्लैष्मिक रोगों में सेव्य है। तिक्त होने से भूख को बढ़ाने वाला है। लौह भी रक्त एवं शक्तिवर्धक है। इस योग में वासा के साथ २१ दिन लौह पात्र का सम्पर्क रहने से इस में लौह के भी सूक्ष्म अंश आ जाते हैं। अतः वासा और लौह का यह अद्भुत योग है।

वासा पर्पटी में वासा कफनिःसारक होने से श्वास नलिका एवं फुफ्फुसों में से कफ को निकालता है जिस से श्वास वाही स्रोतों में श्वास का आदान प्रदान सुगम हो जाता है। इस प्रकार लौह कषाय होने से उन स्रोतों को सिकोड़ कर संकुचित कर देता है जो निरन्तर कफ निकालने (स्राव) में अभ्यस्त हो चुके होते हैं। इस प्रकार वासा पर्पटी के प्रयोग से वह एकत्रित हुआ श्वासवाही स्रोतों को अवरुद्ध कर श्वास कष्ट उत्पन्न करने वाला कफ निकलने लगता है और लौह के कारण उसका स्राव रुक कर रोगी को लाभ होता है। इसके अतिरिक्त वासा तिक्त होने से लौह का शरीर में सात्मीकरण करता है जिससे रोगी में रोग निवृत्ति के साथ २ उसकी शक्ति भी बढ़ती है, नवीन रक्त उत्पन्न होता है, भूख बढ़ती है, पाचन ठीक प्रकार से होता है। इस के साथ तक्र का सेवन सोने पर सुहागे का कार्य करता है। यह त्रिदोष नाशक है। तक्र से नष्ट हुआ रोग पुनः उत्पन्न नहीं होता।

वासा पर्पटी के उक्त २१ दिवसीय निर्माण काल में दिन में सूर्य की किरणों व रात्रि में चन्द्रमा की रश्मियों एवं ओस के पड़ते रहने से इसमें अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाएं तथा परिवर्तन होते हैं और वासा एवं लौह के सूक्ष्म तत्व इस में प्राप्त होते हैं, जिससे यह औषधि सूक्ष्म स्रोतोगामी एवं आशुफलदायक सिद्ध होती है। इस प्रकार वासा पर्पटी जहाँ रोग में लाभ पहुँचाती है वहाँ रोगी को बल एवं शक्ति भी प्रदान करती है। वैद्य बन्धु बनाएँ और लाभ उठाएँ।

—कविराज श्री प्राणनाथ शर्मा आयुर्वेद रत्न,
४६७५, शोरा कोठी, पहाड़गंज,
नई दिल्ली।

योषापस्मार (Hysteria)

श्री पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री

विगत ३ दशकों से "हिस्टेरिया" रोग दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों तथा अनुसन्धानकर्ताओं ने अभी तक इस रोग की कोई रामबाण औषधि का आविष्कार करने में थोड़ी सी भी सफलता नहीं प्राप्त की है। सम्भवतः वे लोग इस रोग को घातक न मानकर स्वाभाविक मानते हों। सत्य तो यह है कि यह रोग विलासिता कामुकता तथा मानसिक दुर्बलता की देन है।

योषापस्मार का यह नामकरण आधुनिक है। हिस्टेरिया का अनुवाद है। किन्तु यह शुद्ध अनुवाद नहीं माना जा सकता है। कारण, यह रोग एकमात्र नारियों तक ही सीमित नहीं है। नवीन अनुसन्धान तथा रात-दिन के अनुभवों द्वारा यह तथ्य उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि "हिस्टेरिया" रोग का आक्रमण कोमल हृदय बालकों तथा तन-मन से दुर्बल पुरुषों पर भी होता है। कुछ विशिष्ट लक्षणों को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी लक्षण स्त्रियों, बालकों तथा पुरुषों में समानरूप से परिलक्षित होते हैं। अतः "योषापस्मार" इस समस्त पद को उपलक्षण (स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वमुपलक्षणत्वम्) मान कर किसी प्रकार इस नामकरण को सार्थक बनाया जा सकता है। "योषापस्मार" इस समस्त पद को उपलक्षण मानने से स्त्रियों के साथ-साथ १२ वर्ष की आयु से ऊपर के कोमल हृदय बालकों और पुरुषों में भी इस रोग के होने की सम्भावना सिद्ध हो सकती है। "हिस्टेरिया" के लिए योषाव्यामोह शब्द अधिक उपयुक्त माना जा सकता है। किन्तु इधर कई दशकों से इस रोग के लिए भारतीय वैद्यसमाज में "योषापस्मार" शब्द का व्यवहार हो रहा है। अतः इस लेख में "हिस्टेरिया" के लिए रूढ मूल "योषापस्मार" इस प्रचलित शब्द का ही व्यवहार किया गया है।

निदान—

भय, चिन्ता, शोक, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष तथा विभिन्न मानसिक विकारों के कारण विदूष्य वात द्वारा ज्ञानतन्तुओं एवं चेतना संस्थानों का प्रत्याहत होना, अजीर्ण, मलावरोध, रक्ताल्पता या रक्ताधिक्य मलावरोध, पति प्रतिकूलता, प्रेमभङ्ग, अश्लील सिनेमा-चित्रों के देखने से समुत्पन्न कामविकार, प्रिय का चिरवियोग या वैधव्य, ऋतुदोष, गर्भाशय की विकृति, कामवासना की अतृप्ति, मिथ्याहार-विहार तथा विभिन्न प्रकार के मानसिक व्याघातों के कारण 'हिस्टेरिया' रोग उत्पन्न होता है। उपर्युक्त कारणों में से कुछ ऐसे विशिष्ट कारण हैं, जिनके द्वारा स्त्रियों में ही यह रोग उत्पन्न होता है। शेष सामान्य कारणों से स्त्रियों, बालकों तथा पुरुषों सभी में इस रोग की सम्भावना है या हिस्टेरिया रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—

"हिस्टेरिया" रोग की प्रथमावस्था में कुछ सामान्य लक्षण ही परिलक्षित होते हैं। आक्षेप (फिट) आने से पहले जृम्भा (जम्भाई आना) शरीर टूटना, मस्तक में भारीपन, किसी काम में मन न लगना, बेचैनी तथा मानसिक खिन्नता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन्हीं सब लक्षणों को "हिस्टेरिया" का पूर्वरूप कहते हैं। "हिस्टेरिया" की प्रथमावस्था में कुछ क्षणों से लेकर १ मिनट तक आक्षेप का आक्रमण होता है। रोगी के नेत्र कभी बन्द हो जाते हैं और कभी खुले रहते हैं। दोनों ही स्थितियों में वह संज्ञाशून्य हो जाता है। आक्षेप के अनन्तर वह अपने आपको बहुत दुर्बल अनुभव करता है। दो-तीन दिन में रोगी या रोगिणी स्वस्थ होकर अपनी पूर्वावस्था में आ जाती है। इसे हिस्टेरिया कहते

है। इसमें वात का विक्षोभ अल्प मात्रा में होता है।

"हिस्टेरिया" की द्वितीयावस्था में अङ्गमर्द और तीव्र शिरोवेदना के साथ २ नाभिस्थल से एक वात्याचक्र (वायुगोला) उठकर कण्ठ की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है। रोगिणी कण्ठावरोध से पीडित होकर एक करुण चीत्कार के साथ गिर पड़ती है। मूर्च्छित हो जाती है। हांथ, पैर, कण्ठप्रदेश और कटिप्रदेश वक्र होजाते हैं। हिस्टेरिया के आक्षेप के समय कुछ नारियां मूर्च्छित होकर चुपचाप पड़ी रहती हैं और मूर्च्छा दूर होने पर पुनः स्वस्थ हो हो जाती हैं। इन नारियों के अन्दर सत्वगुण का प्राधान्य होता है। इनके विपरीत कुछ नारियां आक्षेप के समय हंसती हैं, रोती हैं, स्वजनों पर अविवेकपूर्वक अनेक प्रकार के आक्षेप करती हैं, दोषारोपण करती हैं और विचित्र प्रकार के प्रजल्पन एवं प्रलाप करती हैं। इन स्त्रियों में रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता रहती है। कई बार ये नारियां अपने पूज्य गुरुजनों तक पर अश्लील दोषारोपण करने में संकोच नहीं करती हैं। हिस्टेरिया के ये लक्षण प्रायः वयः प्राप्त विधवाओं, पति प्रेम वञ्चिताओं तथा काम वासना से अतृप्त कामिनियों में पाये जाते हैं। हंसना, रोना और प्रजल्पन आदि ये लक्षण 'योषापस्मार' और 'कामोन्माद' इन दोनों रोगों के साङ्कर्य में पाये जाते हैं। कई बार कुछ चञ्चलवृत्ति की नारियां 'हिस्टेरिया' रोग का अभिनय भी करती हैं, किन्तु अभिनय और वास्तविकता में महान् अन्तर होता है। हिस्टेरिया का अभिनय करने वाली नारी जब गिरती है तो प्रायः कोमल शैया, सोफा और गद्दियों पर ही गिरती है। उनका हंसना, रोना और प्रलाप सापेक्ष, सयुक्ति तथा सुनिश्चित होता है। तीक्ष्ण नस्य, धूम्र तथा मूर्च्छानाशक अन्य अप्रिय उपचारों के आरम्भ करने से पूर्व ही अभिनयपरायणा नारी होश में आ जाती है। अतः चिकित्सक को हिस्टेरिया रोग की रोगिणी की चिकित्सा करते समय बड़ी सावधानी, दूरदर्शिता तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व से काम लेना चाहिये अन्यथा अपकीर्ति का पात्र बनना पड़ेगा। 'हिस्टेरिया' की द्वितीयावस्था में आक्षेपकाल प्रायः १ मिनट से १० मिनट तक देखा जाता है। चेतना आने के बाद रोगिणी अत्यधिक दुर्बलता का अनुभव करती है। कई दिनों तक शारीरिक शिथिलता और वेदना दूर नहीं होती है। हिस्टेरिया की द्वितीयावस्था में आक्षेपों की संख्या प्रतिमास प्रायः १ से ३ तक देखी गई है। दोषाधिक्य से अधिक आक्षेप भी आ सकते हैं।

'हिस्टेरिया' की तृतीयावस्था अत्यन्त कष्टदायक है। इसमें आक्षेप के समय रोगिणी की शरीरयष्टि धनुषाकार हो जाती है। आंखें उलट जाती हैं और विकृत हो जाती हैं, मुट्ठियां बन्द हो जाती हैं, श्वास-प्रश्वास गम्भीर हो जाता है, हृदय की गति बढ़ जाती है। मूर्च्छाकाल १० मिनट से लेकर कई घंटों और दिनों तक रहता है। कई बार एक ही दिन में अनेक बार आक्षेपों का दौड़ा होता है। इन आक्षेपों के समय कई बार शरीर का कोई एक भाग अथवा सम्पूर्ण शरीर अवसन्न हो जाता है। रक्त की गति मन्द या अवरुद्ध सी हो जाती है। इस अवस्था में योषापस्मार के अतिरिक्त अन्य कई रोगों का प्रादुर्भाव हो जाता है। शरीर में दोषों का साङ्कर्य परिलक्षित होता है। रोगिणी को असहनीय वेदना होती है। रोगिणी यदि तन-मन से दुर्बल हुई तो कई बार हिस्टेरिया रोग के भीषण आक्षेप के समय ही हृदय की गति बन्द हो जाती है और रोगिणी को पुनः चैतन्य लाभ नहीं होता है। फलतः हिस्टेरिया रोग की तृतीयावस्था अत्यन्त कष्टसाध्य मानी जाती है।

चिकित्सा —

हिस्टेरिया रोग की चिकित्सा में बड़ी सावधानी तथा दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये। सबसे प्रथम स्नेह, सद्भावना, शीघ्र कष्टनिवृत्ति का आश्वासन तथा मधुर वचनों द्वारा रोगी को अपने

विश्वास में लेना। विश्वस्त रोगी द्वारा रोगारम्भ से पूर्व का सम्पूर्ण इतिवृत्ति जानकर रोग के कारणों का पता लगाना। जो भी कारण रोगोत्पत्ति में सहायक सिद्ध हुए हों, उन्हें पहले दूर करना। उदाहरणार्थ, यदि पारिवारिक कलह अथवा अशान्ति के कारण हिस्टेरिया रोग की उत्पत्ति हुई है तो उस वातावरण को निर्मल बनाना या रोगिणी का स्थान परिवर्तन कराकर किसी उपयुक्त वातावरण में चिकित्सा का उपक्रम करना। इसी प्रकार ऋतु-दोष डिम्ब ग्रन्थियों की खराबी या अन्य जिन जिन कारणों ने रोगोत्पत्ति में साहाय्य प्रदान किया है, उन्हें चिकित्सा अथवा अन्य आवश्यक उपायों द्वारा दूर करना।

मूर्च्छानिवृत्ति का उपाय—

'हिस्टेरिया' रोग में सबसे प्रथम मूर्च्छा की निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। साधारण मूर्च्छा में एक स्वच्छ रूमाल या कपड़े को ताजे जल में भिगोकर उसी कपड़े से बार बार दोनों नेत्रों को तथा ललाट को पोंछना चाहिये। ऐसा करने से २-४ मिनट में रोगी में चैतन्य आ जायगा। यदि इस उपाय से रोगिणी को चैतन्य लाभ न हो तो निम्नाङ्कित उपाय करने चाहिये।

मूर्च्छान्तक योग (प्रथम)—

साफ रूमाल पर ५ बूंद नीलगिरि का तैल (Eucalyptus oil) डालकर रोगिणी को संघाना चाहिए। मूर्च्छा दूर होगी। सुंघाने का कार्य १-२ सैकन्ड करना चाहिये। अधिक समय तक रूमाल को नाक के सामने नहीं रखना चाहिये।

मूर्च्छान्तक योग (द्वितीय)—

कांच की डाट वाली एक साफ कांच की शीशी में ५ तोला पिसा हुआ नौसादर और ५ तोला पिसा हुआ कली का चूना डालकर तुरन्त शीशी की डाट लगा देना। इसे 'एमोनियां' कहते हैं। शीशी से काग निकाल कर १-२ सैकन्ड इस औषधि को संघाने से मूर्च्छा दूर होती है।

मूर्च्छान्तक योग (तृतीय)—

चूना, नौसादर, कलमी शोरा तीनों १-१ तोला, कपूर ३ माशा। सभी वस्तुओं को पृथक् पृथक् पीसकर शीशे की डाट वाली साफ शीशी में डालकर डाट लगाना और हिलाकर रख देना। १० मिनट में औषधि तैयार हो जायगी। पूर्वोक्त विधि से इस औषधि को १-२ सैकन्ड सुंघाने से मूर्च्छा दूर होती है। यह औषधि सन्नि-पात, सर्पदंश तथा हिस्टेरिया आदि सभी रोगों में मूर्च्छा को दूर करने के लिए अत्यन्त उप-योगी है।

मूर्च्छान्तक नस्य—

कायफल ५ तोला, नकछिकनी २ तोला छोटी इलायची के बीज, तुलसीपत्र छोटी पीपल कपूर प्रत्येक १-१ तोला।

विधि—कपूर को छोड़कर शेष कायफल आदि सभी औषधियों को कूट पीस एवं कपड़े में छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनाना। कपूर को पृथक् पीसकर उक्त चूर्ण में मिलाना और भलीभांति खरल करके साफ शीशी में भरकर रखना।

उपयोग—१ रत्ती से २ रत्ती तक इस नस्य को सुघाने से हिस्टेरियाजनित मूर्च्छा, प्रतिश्याय, तन्द्रा तथा शिरःशूल का कष्ट दूर होता है।

सिद्धार्थकादि नस्य—

पीली सरसों, बच, हींग, करंज की गिरी, देवदारु, मजीठ, हरड़ का वकला, बहेड़े का वकला, आमला का वकला, शुद्ध फिटकरी, माल कांगनी, सोंठ, कालीमिरच, छोटी पीपल, प्रियंगु, हलदी, दारुहल्दी, सिरस के बीज। सब समान भाग १-१ तोला। समस्त औषधियों को कूटपीस और कपड़े से छान कर सूक्ष्म चूर्ण बनाना। अनन्तर इस चूर्ण को खरल में डालकर बकरे के मूत्र की ३ भाव-नाएँ देकर और एक बार पुनः कपड़े से छानकर साफ शीशी में भर कर रखना। १ रत्ती से २ रत्ती

तक इस नस्य के सुँघाने से हिस्टेरियाजनित मूर्च्छा तन्द्रा दूर होती है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में पञ्चकर्म विधि का प्रमुख स्थान है। अतः खाने की औषधि का प्रयोग करने से पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एवं बस्तिकर्म आदि द्वारा यदि शरीर की शुद्धि कर ली जाय तो औषधियों का प्रभाव शीघ्र होता है और कठिन से कठिन रोगों की निवृत्ति अनायास होती है। यहां हिस्टेरिया रोग पर कुछ अनुभूत तथा लाभकारी प्रयोगों का उल्लेख किया जाता है।

कुङ्कुमादि चूर्ण—

केशर ६ माशा, सनाय १ तोला, कूठ, मीठी वच, शंखपुष्पी, ब्राह्मी—चारों समानभाग २-२ तोला। मिश्री १० तोला।

विधि— समस्त द्रव्यों को कूट, पीस, छान कर सूक्ष्म चूर्ण बना लेना। साफ शीशी में भर कर रखना।

मात्रा— १माशा से ३ माशा तक।

समय— प्रातः सायम्। अनुपान— शीतल जल, गोदुग्ध या ब्राह्मीघृत।

रोग - योषपस्मार, अपस्मार, भ्रम, हृदय तथा मस्तिष्क की निर्बलता।

सारस्वत चूर्ण—

कूठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजमोद, सफेद-जीरा, कालाजीरा, काली मिर्च, छोटी पीपल, पाठा, शंखपुष्पी सब समान भाग १-१ तोला, मीठी बच समस्त औषधियों के समानभाग १-१ तोला।

विधि-समस्त औषधियों को कूट पीस कर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को किसी साफ खरल में डाल कर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ की ३ भावनाएं देकर साफ शीशी में भर कर रखना। रोग और रोगी के वय-बलानुसार १ मात्रा से ३ मात्रा तक इस औषधि को प्रातः सायम् अथवा अहोरात्र में ३ बार शहद, गोदुग्ध, मक्खन या ब्राह्मीघृत के साथ सेवन करने से हिस्टेरिया, भ्रम, उन्माद, बुद्धिमान्द्य तथा मस्तिष्क दुर्बलता दूर होती है।

ब्राह्मी घृत—

असगन्ध, दुधिया बच, कूठ, शङ्खपुष्पी चारों समान भाग ५-५ तोला। गोघृत १ सेर गोदुग्ध २ सेर, ब्राह्मी का स्वरस या क्वाथ सेर।

विधि-काष्ठादि औषधियों को कूट, पीस, छान कर १।। पाव पानी में ४ घण्टे भिगोकर कल्क बनाना। अनन्तर किसी कलईदार साफ भगोने में कल्क, घृत, दूध और ब्राह्मी स्वरस या क्वाथ को डालकर अग्नि पर चढ़ाकर घृतपाक की विधि से ब्राह्मीघृत को सिद्ध करना।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक। समय-प्रातः सायं। अनुपान—समान भाग पिसी हुई मिश्री। रोग—हिस्टेरिया, उन्माद, अपस्मार, अप-तन्त्रक, बुद्धिमान्द्य तथा स्मरण शक्ति की दुर्बलता।

विशेष—ब्राह्मीघृत को स्वतन्त्र औषधि के रूप में तथा पूर्वोक्त दोनों चूर्णों के अनुपान के रूप में भी आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सकता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (प्रथम)—

शुद्ध कुचलाचूर्ण, मल्लचन्द्रोदय, केशर तीनों समभाग १-१ तोला, कस्तूरी १ माशा, पके हुए पान १०० नग।

विधि—पके हुए पानों को सिल पर पीसकर तथा मोटे कपड़े से छानकर ५ तोला स्वरस निकाल लेना चाहिए। उपर्युक्त औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को खरल में डालकर पान के स्वरस द्वारा भलीभांति खरल करना। अनन्तर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लेना। प्रातः सायं १-१ गोली दूध या जल के साथ दें इन गोलियों के सेवन से 'हिस्टेरिया' रोग में अच्छा लाभ होता है। अनुपानभेद से विभिन्न वात विकारों में ये गोलियां अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (द्वितीय)—

असगन्ध, सफेद बच, :कूठ, ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी

रससिंदूर समभाग १-१ तोला, केशर, स्वर्ण माक्षिक, अभ्रकभस्म, मुक्ताभस्म समभाग ६-६ माशा।

विधि—काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण तथा रस भस्मादि को खरल में डालकर जटामांसी के क्वाथ की भावना देकर तथा भलीभांति खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

प्रातः सायं या रात्रि में सोते समय १ से २ गोली तक जल या दूध के साथ सेवन करने से 'हिस्टेरिया' रोग में लाभ होता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (तृतीय)—

गांजा, कपूर, मीठी बच १-१ तोला, जटामांसी २ तोला, खुरासानी अजवाइन ४ तोला, केशर ३ माशा।

समस्त औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को खरल में डालकर अदरक के ५ तोला स्वरस से भलीभांति खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। प्रातः सायं २-२ गोली जल के साथ सेवन करने से 'हिस्टेरिया' रोग में लाभ होता है। रात्रि में शयन से पूर्व २ गोलियां जल के साथ सेवन करने से उन्निद्र रोग दूर होता है, गहरी नींद आती हैं, पाचन क्रिया सुधरती और मस्तिष्क को शान्ति मिलती है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (चतुर्थ)—

कूठ, कायफल, रूमीमस्तङ्गी, मालकांगनी, जटामांसी, ब्राह्मी, केशर, स्वर्णमाक्षिक १-१ तोला। बच, कुचिला, रससिन्दूर २-२ तोला, सर्पगन्धा चूर्ण ४ तोला।

विधि-काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण तथा रसभस्मादि को खरल में डालकर २० तोला ब्राह्मी का स्वरस या क्वाथ में भलीभांति खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। प्रातः सायं १ से २ गोली तक जल के साथ दें। इन गोलियों के सेवन हिस्टेरिया, उन्माद, रक्तचाप (High blood pressure) तथा अपस्मार रोग में लाभ होता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (पंचम) ब्राह्मी वटी—

दालचीनी, जायफल, लवंग, कालीमिर्च, जावित्री, सोंठ, अकरकरहा, धनियां, बड़ी पीपल, चित्रक, बच, कूठ, नेपाली धनियां, अगर, असगन्ध, वंशलोचन, काला जीरा, पिपरामूल, बायविडंग, सौंफ, पुष्करमूल, शतावरी, निसोथ, अजवायन, खुरासानी अजवायन, केशर, सफेदचन्दन, अम्बर ये ३० औषधियां ६-६ माशा। ब्राह्मी ३ तोला।

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, चन्द्रोदय, मुक्ताभस्म, माणिक्यभस्म, इन्द्रनीलभस्म, प्रवालभस्म, संगेयशब भस्म, अकीक भस्म, तृणकान्तमणिपिष्टि (कहरवा पिष्टि) स्वर्णभस्म, कस्तूरी-ये सभी १२ वस्तुएं ६-६ माशा।

विधि–काष्ठादि औषधियों को कूट, पीस, छानकर पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बनाना। केशर, कस्तूरी, अम्बर को पृथक्-पृथक् खरल करके रखना। शेष भस्मादि को पृथक् खरल करके रखना। १० तोला ब्राह्मी को १ सेर जल में क्वाथ करके २० तोला क्वाथ शेष रखना। अथवा १ सेर ताजी ब्राह्मी की पत्तियों को खरल में पीस कर स्वरस-विधि से २० तोला स्वरस निकालना। अनन्तर समस्त वस्तुओं को खरल में डाल कर ब्राह्मी-क्वाथ या स्वरस से ८ घंटे भली भांति खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना कर और सुखा कर साफ शीशी में भर कर रखना।

उपयोग-प्रातः सायम् तथा रात्रि में सोते समय-२ बार अथवा आवश्यकतानुसार दिन रात में ३ बार मधु दुग्ध, जल या विभिन्न रोगहर अनुपानों के साथ इन गोलियों के सेवन से हिस्टेरिया, (योषापस्मार) उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, अपतन्त्रक, अपस्मार, श्वास, कास, सन्निपात, राजयक्ष्मा, बलक्षय, तथा वातरोगों में विशेष लाभ होता है। "ब्राह्मी वटी" वस्तुतः एक दिव्य औषधि है। सुप्रसिद्ध है। ("सिद्धभैषज्य-मञ्जूषा" से किञ्चित परिवर्तित)

" हिस्टेरिया " रोग की उत्पत्ति के प्रमुख कारणों का ज्ञान हो जाने से चिकित्सा में अत्यन्त सौकर्य होता है। फिर भी सिद्धान्ततः विभिन्न कारणों से विक्षुब्ध वात ही इस रोग का प्रधान कारण है। अतः वातशामक सभी प्रयोग प्रायः इस रोग में लाभकारी सिद्ध होते हैं।

शास्त्रीय योगों में मल्लचन्द्रोदय, योगेन्द्र रस, स्मृतिसागर रस, कामदुधा रस, वातकुलान्तक रस, वृहद् वातचिन्तामणि रस, ब्राह्मी वटी, चन्द्रावलेह, नारसिंहचूर्ण, ब्राह्मीघृत, कल्याणघृत, सारस्वतारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट-आदि सभी योग देश, काल, वय और रोग के बलाबल के अनुसार प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

पथ्यापथ्य —

प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौचादि नित्यकर्म से निवृत्त होना। व्यायामादि शारीरिक श्रम करना। खुली हवा में टहलना। अपनी रुचि के अनुसार ईश्वरोपासना। प्रत्येक स्थिति में सदा प्रसन्न रहना। यथाशक्ति दान देना तथा घर बाहर के लोगों के साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव-व्यवहार करना। गोदुग्ध, गोघृत, मीठे-ताजे फलफूल, गेहूं, चावल, मूंग की दाल, शीघ्र पचाने वाली शाक-भाजी आदि सभी प्रकार के सात्विक आहार-विहार इस रोग में पथ्य हैं।

वातवर्धक, दुष्पाच्य एवं पर्युषित आहार, अनियमित शयन-जागरण, ईर्ष्या द्वेष क्रोधादि मानसिक विकार तथा सभी प्रकार के तामसिक आहार और तन-मन को अस्वस्थ बनाने वाला विहार या जीवनचर्या इस रोग में अपथ्य है।

श्री पं० गयाप्रसाद शास्त्री राजवैद्य,
मुरलीधर बाग, हैदराबाद (दक्षिण)

आयुर्वेद की दृष्टि में श्वास रोग

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री।

[वर्ष ३३ अङ्क ११ से आगे।]

कफ-पित्त ही मूल —

यदि सत्यान्वेषणशीलता दोष नहीं तो उसके आधार पर मैं यह मुक्तकण्ठ कहूंगा कि आयुर्वेदोक्त सृष्टि विज्ञान के अनुसार आधिभौतिक जगत की सृष्टि प्रकृति और पुरुष से मानी जाती है और काल तथा आकाश की तटस्थ कारणता दर्शनान्तर से मान्य है। ठीक उसी प्रकार आधिदैहिक जगत में मातृ-पितृ संयोग से सृष्टि मानी जाती है और "यदृच्छा पारमेश्वरी" भी एक तटस्थ कारण मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार मूलतः रोग कफ और पित्त रोगों के उपादान कारण माने जांयगे और वायु परमेश्वरांश, जीवांश होने के कारण निमित्त कारण औचित्यनैव माना जायगा। इस सम्बन्ध में आचार्य चरक के—

'ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातंक एव च।
एकार्थं नाम पर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥'

—चरक चिकित्सा ३ अ०।

अर्थात् ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आतङ्क ये सभी 'एकार्थ वाचक' शब्द हैं।

पुनश्चद्विविधो दृष्टः सौम्यश्चाग्नेय एव च।

—चरक चिकित्सा ३।

अर्थात् पुनः वह दो प्रकार का देखा गया है, सौम्य और आग्नेय। एवं —

'योगवाहः परं वायुः सयोगादुभयार्थकृत्।
दाहकृत् तेजसायुक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात् ॥'

—चरक चिकित्सा ३।

अर्थात् वायु परम योगवाही होता है। वह जब जिसके साथ संयुक्त होता है तब उसी के अनुरूप कार्य सम्पादन किया करता है। वह संयोगवश उभयार्थकारी हुआ करता है। अर्थात्--तेज के साथ युक्त होने से दाह किया करता है और सौम्याश्रित होने से शीतकृत् हुआ करता है। और इसी पृष्ठ भूमि पर विमान स्थान में आचार्य चरक का स्पष्ट कथन है कि—

'शीतेनोष्णकृतान् रोगान् शमयन्ति भिषग्विदः।
येतु शीतकृता रोगास्तेषामुष्णं भिषग्जितम् ॥'

—चरक विमान अ० ३।

अर्थात् चिकित्सा शास्त्र के जानकार लोग शीतक्रिया द्वारा उष्णकृत् रोगों का शमन करते हैं और जो रोग शीतकृत होते हैं उनका इलाज उष्ण क्रिया है। और आचार्य चरक आदि आयुर्वेद के मुनियों द्वारा उद्भावित वातिक भेद का सामञ्जस्य इस प्रकार किया जाना चाहिये कि तेजस् उष्ण और ओजस शीत होता है और दोनों का मातदिल होना अनुष्णाशीतत्व गुण साधर्म्य से वातकृत माना जाय। क्योंकि, सूक्ष्म परिदर्शन करने पर वायु के आत्मरूपों में चैतन्यांश तथा अमूर्त्तत्वांश को छोड़कर अन्य लक्षण कुछ तेजस् के हैं तो कुछ ओजस् के। उदाहरणस्वरूप आचार्य चरक ने षडात्मरूप वायु को माना है जिसमें दो कफ के और दो पित्त के तथा दो निज गुण हैं। पाठकों की जानकारी बढ़ाने के लिये यहां उसका उद्धरण भी अनावश्यक नहीं होगा। आचार्य चरक का कहना है कि--

'रौक्ष्यं, शैत्यं, लाघवं, वैशद्यं, गतिरमूर्तित्वं च वायोरात्मरूपाणि।'

—चरक सूत्र २०।

अर्थात्--रूक्षता, शीतता, लघुता, विशदता, गति एवं अमूर्त्तित्व। ये सभी वायु के आत्मगुण हैं।

इनमें रौक्ष्य और लाघव स्पष्टतः पित्त के आत्मगुण हैं। आचार्य चरक का कहना है कि—

'औष्ण्यं, तैक्ष्ण्यं, द्रवमनतिस्नेहो, वर्णश्चाशुक्लो, गन्धश्चविस्रो, रसौकटुकाम्लौ, पित्तस्यात्मरूपाणि ।'
—च० सू० २०

अर्थात् उष्णता, तीक्ष्णता, द्रवता (लघुता), अनति स्निग्धता (रूक्षता), शुक्लातिरिक्त वर्णता, आममांस गन्धता, कटूअम्लरसता—ये पित्त के आत्मरूप हैं और इसी प्रकार शीतलता और विशदता कफ के आत्म गुण हैं। क्योंकि आचार्य चरक का यह भी स्पष्ट कथन है कि--

'श्वैत्य शैत्य गौरव स्नेह माधुर्य स्थैर्य पैच्छिल्य मार्त्स्न्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि। — च० सू० २०

अर्थात् स्वच्छता (विशदता), शीतता, मृदुता, स्नेह, माधुर्य, स्थिरता, पिच्छिलता, मृदुता, ये कफ के आत्मरूप हैं और इस बारीकी के साथ 'नखभेद' आदि परिगणित वायु विकारों में भी कफ तथा पित्त के कार्यों का अनुसन्धान करने निदान करने से चिकित्सा में सिद्धि निश्चित रहेगी, जिसका स्पष्ट निर्देश आचार्य चरक ने इन शब्दों से दूर रखा है कि—

" —यस्तु रोग विशेषज्ञ : सर्व भैषज्य कोविद: ।
देशकाल प्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥:-- "
(वहीं)

अर्थात् जो वैद्य रोगों का विशेषज्ञ होता है और सभी दवाओं का ज्ञाता होता है और साथ ही देश, काल तथा मात्रा का जानकार होता है उसे निश्चय ही चिकित्सा कार्य में सिद्धि मिला करती है।

अपने इस नव उद्‌भावित शास्त्रसिद्धान्त को यहाँ एक उदाहरण देकर स्पष्ट कर देना आवश्यक मानता हूं।

अचार्य चरक ने नख भेद 'विपादिका' आदि ८० वातजरोगों का परिगणन कराया है। और कहा है कि—

" —संसभ्रंशकासंगभेदावसाद हर्षकम्पावमर्द चाल तोदव्यथा चेष्टादीनि तथा खर परुष विशद शुषिरारुण-कषाय विरस मुखशोषसुप्ति संकोचन खंजता दीनिच वायोः कर्माणि तैरन्वितं वातविकार मेवाध्यवस्येत् ॥ —"

अर्थात स्खलन, भ्रंश, विस्तार, अंगभेद, अवसाद, हर्ष, तर्ष (तृष्णा) आवर्त्त, अंगमर्द, कम्प, चालन, तोद, सूचीविद्धवत् पीड़ा, चेष्टा आदि, तथा खरत्व, पारुष्य, वैशद्य, सुषिरता, अरुण वर्णता, कषायता, विरसता, शोष, शूल, स्पर्शानभिज्ञता, संकोचन, खंजता आदि वायु के कर्म हैं। इनसे युक्त रोगों को वात विकार ही समझना चाहिये।

किन्तु नख भेद में यदि रुक्षता, वा वर्ण विकृति हो तो पित्त विकार भी उसमें स्पष्ट रहेगा और यदि उसमें सुप्ति वा स्पर्शानभिज्ञता अथवा चिरकारित्व देखा जाय तो कफ विकार भी स्पष्ट मानना शास्त्रीय मार्ग होगा। साथ ही छूने से यदि उष्ण स्पर्श मिले तो पित्त विकार तथा शीतस्पर्श मिले तो कफ विकार मानना भी शास्त्रीय प्रणाली मानी जायगी।

इस पद्धति में दोनों की मौजूदगी (अनुबन्धता) रहने पर यह मानना कथमपि संगत नहीं होगा कि इसमें कफ वा पित्त का कारणत्व है ही नहीं। बल्कि, ऐसी स्थिति में मेरे विचार से सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा कारण भेद का पता करना और भी आवश्यक होता है जिसके सम्बन्ध में आचार्य चरक का स्पष्ट आदेश है कि—

नित्या: प्राणभृतां देहे वातपित्त कफास्त्रय: ।
विकृता: प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डितः ॥
(चरक. सूत्र. १८ अ.)

अर्थात् प्राणधारी के देह में वात-पित्त-कफ ये तीनों नित्य वर्त्तमान रहते हैं। वे विकृतिस्थ हैं या प्रकृतिस्थ? इसे जानने की विशेष चेष्टा पण्डित को करनी चाहिए। क्योंकि, आचार्य चरक के अनुसार सच्ची चिकित्सा वही है जिससे शरीर में विषम धातु समता प्राप्त करें और समधातुओं का अनुबन्ध (समभाव से स्थायी बनना) किया जाय। आचार्य चरक कहते हैं कि--

याभि: क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
साचिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ॥

कर्म शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति ।
समानांचानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया ॥
(चरक-सूत्र, १७ अ०)

अर्थात् जिन क्रियाओं द्वारा शरीर के धातु सम होजायं वही चिकित्सा है और वही चिकित्सा का कर्म होता है। क्योंकि शरीरस्थ धातु समूह का जिस प्रकार से वैषम्य नहीं हो और समधातुओं का अनुबन्ध (यथावत् स्थायित्व) हो, इसी उद्देश्य से चिकित्सा की जाती है। और आचार्य चरक का उद्दिष्ट यह चिकित्सा कर्म तभी हो सकता है जबकि ऊपर बताये गये क्रम से तत्वों का विश्लेषण किया जाय। और तभी हम आचार्य चरक के इस कथन का रहस्य भी हृदयङ्गम कर सकेंगे कि—

समपित्तानिलकफाः केचिद् गर्भादिमानवाः ।
दृश्यन्ते वातलाः केचित् पित्तलाः श्लेष्मलास्तथा ॥
(चरक. सूत्र अ० ७)

अर्थात् गर्भावस्था से ही किसी किसी के वायु पित्त, कफ साम्यावस्थापन्न रहा करते हैं और कोई कोई गर्भ से ही वायु प्रधान, पित्तप्रधान, किंवा कफ प्रधान प्रकृति के हुआ करते हैं। और स्वस्थ माता-पिता से समधातु सन्तान तथा अस्वस्थ माता पिता से विषम धातु सन्तान की शास्त्रीय मर्यादा को पूर्ण हृदयंगम करते हुए सभी जन्मतः अनुबन्धी वंशागत रोगों का भी यथावत् निदान करते हुए सफल चिकित्सा सरलता से करने में समर्थ हो सकेंगे जो अन्यर्थ पद्धति आज भी एलोपैथ डाक्टरों को अज्ञात ही है।

श्वासरोग तथा उसका वैज्ञानिक विश्लेषण

आयुर्वेद के अनुसार यह श्वास रोग और कुछ भी नहीं, मात्र ओजो धातु का ऊर्ध्वगमन क्रिया रूप दोष से होने वाला श्वसन क्रियागत काठिन्य है जिसका एक मात्र सरल इलाज है स्थान भ्रष्ट उक्त ओजो धातु का पुनः स्वस्थानानुबन्धन। और इसी मूल उद्देश्य से आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में विराट् साहित्य उपलब्ध होता है।

पित्त तथा कफ प्रधान प्रकृति —

मेरे नवीन सिद्धांतानुसार कफ तथा पित्त को अनुबन्धित कर दो ही प्रकृतियां मनुष्यों की हुआ करती हैं। एक पित्त प्रधान प्रकृति तथा दूसरी कफ प्रधान प्रकृति।

इस सिद्धान्त के अनुसार अनुलग्न कफ पित्त प्रकृति, एक मिश्र भेद है जो भी आचार्य चरक का संमत है।

दृश्यन्ते वातलाः केचित् —चरक सूत्र अ ७

में केचित् पद वातज प्रकृति या वात की असर्वमान्यता प्रकट करता है।

प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने मुक्तकण्ठ उक्त पद की व्याख्या करते हुए कहा है कि—

"अन्येतु, द्वितीये 'केचित्' ग्रहणात् ग्रन्थाधिक्येन तदग्रहणं वर्णयन्ति।' —चरक सूत्र ७, चक्रपाणि टीका

अर्थात्—कुछ लोग दूसरे श्लोकार्थ में केचिद् रहने से इसका ग्रहण नहीं किया गया बताते हैं।

समपित्तानिलकफाः—कहकर भी इसका स्पष्ट संकेत नहीं किया गया है कि प्रकृति आरम्भ में वात सर्वदा अप्रधान ही रहा करता है।

इस गूढ़ रहस्य को समझने के लिए यह स्मरण रखना होगा कि प्राणवह स्रोतों में सदोषता आती है तो श्वास वैषम्य हुआ करता है।

आचार्य चरक भी इस बात को मानते हैं कि—

'तत्र प्राण वहानां स्रोतसां हृदयं मूलम्, महास्रोतश्च । प्रदुष्टानांतु खल्वेषामिदं विशेष विज्ञानं भवति। तद्यथा-अतिसृष्टं प्रतिबद्धं प्रकुपित मल्पाल्पमभीक्ष्णं वा सशब्द शूल मुच्छ्वस न्तं दृष्ट्वा प्राणवहानि स्रोतांस्यस्य प्रदुष्टानीति विद्यात्"— (चरक० विमान० अ० ५)

अर्थात्-प्राणवह स्रोतों का मूल हृदय है और महा स्रोतस् भी। इन स्रोतों के प्रदुष्ट होने का यह विशेष लक्षण होता है। जैसे-अतिदार्घ, प्रतिबद्ध (रुक रुक कर) प्रकुपित, अल्प-अल्प, बार-बार किंवा

शब्द और वेदना के साथ उचासें भरते हुए देखकर यह जान लेना चाहिए कि प्राणवह स्रोतों में पूर्ण सदोषता आगयी है।

इस दुष्टि का कारण बताते हुए वे स्वयं स्पष्ट करते हैं कि—

क्षयात् संधारणाद् रौक्ष्यात् व्यायामात् क्षुधितस्य च
प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्चदारुणैः॥
(वहीं)

अर्थात् धातुक्षय, मल-मूत्र आदि का वेग धारण, रुक्षता और भूख होने पर व्यायाम तथा अन्य दारुण (कठोर परिश्रम के) कर्मों के अनुष्ठान से प्राणवाही स्रोतों की दुष्टि हुआ करती है।

क्योंकि, कि आचार्य चरक की यह सुस्पष्ट मान्यता रही है कि—

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः।
धातुभिर्विगुणश्चापि स्रोतसां सप्रदूषकः॥

अर्थात् जो आहार और विहार के वातादि दोष गुण के समान गुण वाला होता है, अथवा धातु गुणों से विरुद्ध गुण वाला होता है वह स्रोतों को अत्यधिक दूषित कर दिया करता है।

निःसन्देह, रुक्षता और दारुण कर्मानुष्ठान वात पित्तवर्धक होने के कारण ओजो धातु का विरोधी है, अतः उससे ओजो धातु का विघात का दूषण होना शास्त्र सिद्ध है और है विज्ञान संमत भी। और इस प्राणवह स्रोतस् की दुष्टि का इलाज 'श्वासि की क्रिया' द्वारा सूत्र रूप में बताकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इस प्राणवह स्रोत की प्रदुष्टि से ही श्वास रोग हुआ करता है। और साथ ही, यह भी संकेत कर किया गया है कि प्राणवह स्रोतस की प्रदुष्टि से श्वास ही नहीं बल्कि और भी अनेकानेक रोग होंगे, किन्तु उनकी सामान्य चिकित्सा श्वास चिकित्सा के समान ही होगी।

यहां में स्रोतः शारीरवाद की विस्तृत चर्चा करना उचित नहीं मानता हूं। उसके लिये शारीर स्रोतों के रोग और उनका सरल इलाज शीर्षक मेरा महानिबन्ध देखना चाहिए। किन्तु यहां मैं इतना अवश्य कहूंगा कि एलोपैथी के श्वास संस्थान रोगाध्यायोक्त रोग उतने स्पष्ट नहीं हैं जो प्राणवह स्रोतोदोषज रोगाध्याय से स्पष्टतर हुआ करते हैं और जिनका इलाज इस आर्षपद्धति से आसान तथा अन्वर्थ हो सकेगा।

दमा और उसकी संप्राप्ति—

आवेगिक श्वास कष्ट साधारणतः श्वास रोग वा दमा कहा जाता है जिसके दो भेद होते हैं—

१. आर्द्र तथा २. शुष्क।

आर्द्र उसे कहा जायगा जिसमें कफ छंटता हो और शुष्क वह है जिसमें कफ नहीं छंटे।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—ऐलोपैथी—के विद्वान् अत्यानुभूतिक श्वास (allergic asthma) वेत्राणवीय श्वास (bacterial asthma), अन्नज श्वास (food asthma), अश्व श्वास (horse asthma), पराग श्वास (pollen asthma), श्वास नलिका (bronchial asthma), आर्द्र श्वास (cardiac asthma), वामक श्वास (fuller's asthma), पेषक श्वास (grinder's asthma), खनक श्वास (miner's asthma), कुलाल श्वास (potter's asthma), वृक्कज श्वास (renal asthma), वाष्पयान्त्रिक श्वास (steam fitter's asthma), प्रस्तर श्वास (stone asthma), सहज श्वास, नलिका श्वास (intrinsic bronchitic asthma), लक्षणज श्वास (symptomatic asthma) हृदधि ग्रन्थिक श्वास (thymic asthma)—ये कई एक श्वास रोग के भेद बताये हैं।

अत्यानुभूतिक श्वास (Allergic asthma)—

यह श्वास रोग उन लोगों को हुआ करता है जिनको श्वास नलिका वा वक्षःस्थल से जन्मजात असाधारण्य रहा करता है। उनमें अत्यधिक अनुभूतिशीलता रहा करती है।

अल्प उत्तेजना पाने से ही हर्षणशील तन्तुओं में उद्गमन वा उभाड़ प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे लोगों में थोड़ी सी मात्रा में भी मिथ्या आहार-विहार से इस रोग का आक्रमण होता है।

यह श्वास आवेगिक हुआ करता है और इसके आक्रमण समय समय पर हुआ करते हैं। किन्तु अधिकांश रोगियों में दौरा बन्द रहने पर वक्षः परीक्षण यन्त्र से करने पर कुछ भी वक्षो विकार देखने में नहीं आता है। अनूर्जता के कारण इस रोग का आक्रमण वैसी ही स्थिति में अधिक हुआ करता है, जब रोगी दुर्बल हो जाता है। इसका सामान्य लक्षण यह है कि श्वास कष्ट, खांसी, शब्द युक्त जोर जोर से सांस लेना, श्लेष्मायुक्त थूकना और छाती में संकोच क्रिया का अनुभव होना।

श्वासनलिका प्रखण्डीय (bronchiolar), आक्षेप श्लैष्मिक कला शोथ (edema of mucosa), ग्रंथिमय तत्वों का अत्युपचय और चिपचिपे पदार्थ का स्राव--ये नैदानिक परिवर्तन परिलक्षित हुआ करते हैं। सामान्यरूप से यह अनूर्ज तत्वों के श्वसन क्रिया द्वारा, किंवा मुख्यतः, किंवा त्वाच प्रवेश से हुआ करता है।

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री ब्यूमाउण्ट (Mr. G. E. Beaumont) श्वासांतः प्रविष्ट अनूर्ज पदार्थों का परिगणन करते हुए पराग (pollen), गृह मण्डन (room dust), पुस्तक प्रोंछित (book dust), ओरिस नामक द्रव्य के मूल का चूर्ण, पशुरजः, पुष्परजः, औषधि इत्यादि का उल्लेख किया है और रक्तजात अनूर्ज पदार्थों के रूप में आहार पाचन परिणामों में खासकर अंडे, दूध, मछलियां, दही, आदि के भोजन के--मुख द्वारा लिये गये भेषजों, वेत्राणु परिणामों, सूची प्रवेशित सीरमों तथा चर्म परीक्षण मियों का निर्देश किया है।

औषधिगन्धज--यह श्वास 'स्टेमोनियम' तथा 'एडरीनलीन' जैसी औषधियों के आघ्राण से होते देखा गया है और 'एडरीनलीन' के सूची प्रवेशन किंवा 'एफेड्रीन' के मुख द्वारा लेने से रक्तजात वह रोग प्रत्यक्ष दृष्ट है। श्वास रोग की इस कोटि में वेत्राणु श्वास (bactrerial asthma), अंतज श्वास (food asthma), अश्व श्वास (horse asthma), तथा पराग श्वास (pollen asthma) —ये कई एक भेद इसी मुख्य भेद के अन्दर आ जाते हैं।

वेत्राणवीय श्वास (Bacterial asthma)—

वेत्राणु के साथ रोग संक्रमण होने पर अथवा रोग संक्रमण होने पर रोग मूल कारण का विश्लेषण करने पर वेत्राणु का जहां कारणत्व हो, वह श्वास वेत्राणवीय श्वास है। इसके वेत्राणुओं का यथावत् परिचय अभी तक नहीं हो सका है, अतः इसके सभी वेत्राणुओं का अंगुल्यानिर्देश सम्भव नहीं।

अन्नजश्वास (Food asthma)—

भुक्त अन्न यदि अन्नवह स्रोत में नहीं जाकर प्राणवह स्रोत में प्रविष्ट हो जाता है तो उससे उत्पन्न श्वास अन्नज श्वास (food asthma) कहा जाता है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि चौड़ी और सीधी रहने के कारण अधिकतर दाहिनी श्वास नलिका में खाद्यान्न का प्रवेश हो जाया करता है। किन्तु यदि वह अन्न सूक्ष्म नहीं रहा तो प्रविष्ट होते ही खांसी का वेग उत्पन्न करता है और उसी के सहारे बाहर आ जाता है। किंतु यदि वह सूक्ष्म रहा तो नलिका में अटक कर अन्नज श्वास का कारण बनता है।

भोजन के समय बातचीत करने, हंसने तथा असावधानी बरतने से यह रोग आशङ्कित हुआ करता है। इसीलिये भारतीय आचार्यों ने भोजन-काल में मौनावलम्बन करना बताया है।

—क्रमशः।

प्राणायाम और आरोग्य

विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

प्राणायाम क्रिया हमारे देश के लिये कोई नई वस्तु नहीं है। योग शास्त्र की यह वही चमत्कारिक क्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य स्वस्थ, अजर और दीर्घायु हो जाता है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनि इसी यौगिक क्रिया के द्वारा शतायु नहीं बल्कि सहस्रायु हुये हैं। मनुष्य को नीरुज तथा दीर्घायु बनाने में प्राणायाम एक सर्वोपरि क्रिया है। जब से हमने इसके प्रति उदासीनता बरती तभी से हम लोग रोग शोक के भण्डार और अल्पायु हो गये। हमारे पूर्वाचार्यों ने इसकी महत्ता को अनुभव करके ही द्विजों को संध्योपासना में इसे अनिवार्यता प्रदान की थी। ईश्वर प्राप्ति तथा मोक्ष का इसे माध्यम माना था। प्राणायाम के समय ललाट में त्रिनेत्र शिव का, हृदय में ब्रह्मा का और नाभि प्रदेश में विष्णु का ध्यान करके इसको पूर्णता प्रदान की थी। उसका विकृत रुप आज भी हम देखते हैं कि सन्ध्योपासना के समय अधिकांश उपासक अपने नथुने दबाने तथा खोलने की विधि करके कुछ क्षण उसका अभिनय कर देते हैं। परन्तु आज तो वह अविशिष्ट क्रिया भी सन्ध्योपासना के अभाव में लोप हो गई।

प्राणायाम की गणना योग साधन के आठ अंगों में की गई है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये आठ अङ्ग हैं जिसमें प्राणायाम का स्थान मध्य में अर्थात् चौथा है। समाधि की प्रथम रूप रेखा प्राणायाम से ही निर्माण होती है। यम, नियम और आसन की सिद्धि के उपरांत ही प्राणायाम करना चाहिए। आसनों के पूर्व प्राणायाम उचित नहीं क्योंकि आसनों के द्वारा नाड़ियों को मृदु बनाया जाता है और तब प्राणायाम किया जाना हितकर है, यह योगाचार्यों का मत है।

महर्षि पातंजलि ने प्राणायाम की परिभाषा करते हुए कहा है कि श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम करने के पहले भूमि पर आसन बिछा लेना चाहिए। उस पर बैठकर प्राणायाम करना ठीक है। चटाई, दरी, कुशासन, मृगचर्म, ऊनी आसन, जो भी उपलब्ध हो काम में लाया जा सकता है। शान्ति और प्रसन्न मन से उस पर बैठकर स्वस्तिकासन, पद्मासन अथवा सिद्धासन लगाना चाहिए। स्मरण रहे कि नितम्ब से सिर तक का भाग समसूत्र में रहे अर्थात् पीठ की रीढ़ झुकी हुई या टेढ़ी मेढ़ी न रहे, दीवार के सहारे बैठकर इसका अभ्यास किया जा सकता है।

अब यह देखें कि आपके किस नथुने से सांस चल रहा है? जिससे चल रहा हो उसी नथुने से १०–१५ बार लम्बी लम्बी सांसे लेवें और छोड़ें, ऐसा करते समय दूसरा नथुना अंगुली से दबाये रहना चाहिए। इसके बाद दूसरे नथुने से इसी प्रकार श्वासोच्छ्‌वास की क्रिया करें। अब एक नथुने से सांस खींचे और दूसरे से छोड़ें। यह क्रिया भी १०–१५ बार करनी चाहिये। इसे भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं। लुहार की धोंकनी को भस्त्रिका कहते हैं। इसीलिये धोंकनी की तरह सांस लेने और छोड़ने से इसे भस्त्रिका कहा जाता है।

भस्त्रिका कर चुकने के कुछ सेकण्ड बाद, धीरे-धीरे उस नथुने से सांस खींचने की क्रिया करें, जिससे सांस स्पष्ट चल रहा हो। इस क्रिया को पूरक प्राणायाम कहा है। पूरक हो चुकने पर दोनों नथुने अंगुलियों से बन्द करके सांस को रोक दें। मुंह से अथवा नांक से सांस को निकलने न दें। इस क्रिया को कुंभक प्राणायाम कहते

हैं। जब थोड़ा भी दम घुटने लगे तब उस नथुने से सांस को धीरे धीरे छोड़ना चाहिए जिससे सांस नहीं खींचा था इस क्रिया को रेचक प्राणायाम कहा है। इस प्रकार पूरक कुंभक और रेचक क्रियाओं का एक प्राणायाम माना जाता है।

प्राणायाम करते समय तीन बन्धों का करना आवश्यक है। इनके बिना प्राणायाम अधूरा रह जाता है। योगाभ्यास में अनेक बन्ध हैं किन्तु प्राणायाम में केवल तीन बन्ध होते हैं। पहला मूलबन्ध, दूसरा उड्डियानबन्ध और तीसरा जालन्धर बन्ध। अपने गुदा मार्ग को सिकोड़ कर धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींच रखना मूलबन्ध कहलाता है। अपने पेट को पीछे की ओर खींचकर रीढ़ की हड्डी से सटाने की क्रिया को उड्डियान बन्ध कहते हैं और गर्दन की नस-नाड़ियों को सिकोड़कर अपनी ठुड्डी को कंठमूल से सटा रखने को जालन्धर बन्ध कहा जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि किस बन्ध के करने में कितना समय लगना चाहिये? जितना समय पूरक करने में लगे उससे दुगना रेचक में और पूरक से चौगुना कुंभक में लगना चाहिये। इसके लिये घड़ी की सहायता ली जा सकती है अथवा गिनती गिन कर भी, प्रणवाक्षर ओम् अथवा अपने गुरुमन्त्र से भी समय का परिमाण रखा जा सकता है। स्मरण रखिये, जिस नथुने से पूरक किया जाय, रेचक उसी से न करके दूसरे से करना चाहिये।

प्राणायाम के लिये स्थान की ओर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है। जहां प्राणायाम करना हो, वह स्थान खुला हुआ, हवादार और सूर्यप्रकाश से प्रकाशित होना चाहिये। किसी प्रकार की बदबू, दूषित वायु, धूआं, गर्द आदि नहीं होना चाहिये। गांव के बाहर वन-उपवन, वाटिका, तालाब, नदी आदि जलाशय के निटक रम्य स्थान में जहां भीड़, कोलाहल और किसी प्रकार का भय तथा विघ्न की आशंका न हो, वहां पवित्र मन और शान्ति चित्त से प्राणायाम क्रिया करनी चाहिये। यदि मकान के कमरे में करना हो तो कमरे में अन्य कोई वस्तु नहीं रहनी चाहिये और स्वच्छ हवा के आने जाने के लिये, पर्याप्त खिड़कियां एवं दरवाजे होने आवश्यक हैं।

प्राणायाम करने का सबसे अच्छा समय सूर्योदय का है। सूर्योदय की प्रथम रश्मि जिस प्राणायाम के अभ्यासी का स्पर्श करती है निश्चय ही वह व्यक्ति निरोग, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, मेधावी और तेजस्वी बन जाता है। प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल में स्नायु मण्डल अधिक कोमल रहता है, अतः सायंकाल के समय भी प्राणायाम किया जा सकता है।

प्रातःकाल के समय प्राणायाम करते समय अपना मुख सूर्य की ओर तथा सायंकाल पश्चिम की ओर करके बैठना चाहिये। उत्तर दिशा में भी मुख रखा जा सकता है, किन्तु दक्षिण सर्वथा वर्जित है। उघाड़े बदन प्राणायाम करना श्रेयस्कर है। ओढ़ना आवश्यक हो तो शाल, दुपट्टा उपरना आदि ओढ़लें। कोई वस्त्र ऐसा न हो जो शरीर को और विशेषतः छाती पेट को कसता हो कपड़ों का रङ्ग श्वेत, हल्का नीला, हल्का पीला अथवा हल्का गेरुआ होना चाहिये। लाल, गुलाबी, हरे, काले, तेज नीले रङ्ग के वस्त्र न हों।

रेचक प्राणायाम के बाद तुरन्त ही सांस अन्दर नहीं खींच लेना चाहिये। जहां तक सम्भव हो कुछ देर ठहरना चाहिये। इसे वाह्य कुंभक कहते हैं। प्राणायाम में इसका महत्व बहुत है। इसे करने में जबरदस्ती कभी नहीं करें। सुगमतापूर्वक जितनी देर रुका जा सके, रुके रहें, जी घबराने तथा चक्कर आने की स्थिति के पूर्व ही धीरे धीरे पूरक करना आरम्भ कर दिया जाय।

संक्षेप में प्राणायाम की विधि इस प्रकार हुई कि स्वच्छ स्थान में प्रमुदित मन से मृदु आसन बिछाकर बैठ जाइये, दक्षिण दिशा को छोड़ कर मुंह किसी भी दशा में रखिये। पद्मासन, स्वस्ति-

कासन, किंवा सिद्धासन से बैठ जाइये। पहले भस्त्रिका क्रिया करें, भस्त्रिका के बाद बाह्य कुंभक कीजिये। इसके बाद पूरक प्राणायाम आरम्भ करदें साथ ही मूलबन्ध को भी। इसके तुरन्त बाद कुँभक कीजिये। इस समय जालन्धर बन्द करें, जब रेचक आरम्भ करे तब उडियान बन्ध करना चाहिये' स्मरण रहे, रेचक करते समय जालन्धर बन्ध त्याग देना उचित है। प्रत्येक बन्ध आहिस्ता आहिस्ता करना और त्यागना चाहिये अन्यथा हानि होना सम्भव है। प्राणायाम के समय बल-पूर्वक श्वांस को कदापि न रोकिये।

प्राणायाम के समय निश्चल शरीर और स्थिर-चित्त रहिये। अपने दोनों हाथ घुटनों पर सीधे तने हुये रखिये, मुट्ठियां बन्द अथवा ध्यानमुद्रा में अंगुलियां रहनी चाहिये। आंखें मूंदे रहना उचित है। इससे शक्ति का संचय तथा मन का चांचल्य दूर होता है। आंखें न मूंद कर अपनी नासिका के अग्रभाग पर किंवा भृकुटि के मध्य में भी दृष्टि स्थिर रखी जा सकती है। प्राणायाम के समय अपने मन को परमात्मा के स्मरण में लगा दीजिये। आप ऐसा मान लीजिये कि इस समय हम सत्-चित् और आनन्द तत्व के अति निकट पहुंच गए हैं और वह प्रसन्न होकर वर-दान के रूप में अपनी महान् शक्ति को हम पर उड़ेल रहा है।

विधिपूर्वक किये गये प्राणायाम के गुण अपार हैं। सबसे बड़ा लाभ है आरोग्य प्राप्ति, आयु वृद्धि, मनोबल और तेज का उदय तथा प्रमेह स्वप्नदोष आदि वीर्य रोगों से सदा के लिये छुटकारा।

प्राणायाम से शरीर के भीतरी भागों की शुद्धि होती है। विशेषतः फेफड़ों के रोग जैसे क्षय, दमा आदि नहीं होने पाते। इससे शरीर में रुधिर का प्रभाव ठीक स्थिति में रहता है, जिससे शरीर में स्फूर्ति, उमंग तथा उत्साह का संचार होता है। शारीरिक अवयवों में रोगों के आक्रमणों को सहने एवं उनसे मुकाबिला करने की क्षमता बढ़ती है तथा शरीर दृढ़ पुष्ट, निरामय, सतेज, फुर्तीला बन जाता है। अतएव प्राणायाम नित्य नियमपूर्वक करना चाहिये। यही एक मात्र स्वास्थ्य प्रदायिनि ऐसी क्रिया है, जिसे बालक बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी समान रूप से करके महान लाभ उठा सकते हैं।

—विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगर-मालवा (म० प्र०)।

आवश्यक निवेदन—

१—प्रत्येक अङ्क के पेपर पर आपके पते के साथ ग्राहक नम्बर लिखा होता है। इसे नोट करलें तथा पत्र व्यवहार करते समय अवश्य लिख दिया करें।

२—स्थान परिवर्तन करने से पूर्व पता बदलने की सूचना अवश्य दीजियेगा। पहिला पता, नवीन पता तथा ग्राहक नम्बर स्पष्ट लिखें। २-४ माह के लिए अस्थायी रूप से आप स्थान परिवर्तन कर रहे हैं तो अपने पोस्ट आफिस में लिख कर दें जांय जिससे कि आपके अङ्क नवीन पते पर वे भेज दिया करेंगे, स्थायी रूप से पता बदलना हो तो हमें लिखें। बार-बार पता बदलवाना बड़ा कष्टप्रद, असुविधाजनक होता है।

३—जो अङ्क मिले, तभी देख लें कि उससे पहिला अङ्क मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला तो पोस्ट आफिस में तलाश करें तथा उनके उत्तर के साथ हमको लिखें।

—व्यवस्थापक।

उदुम्बर [गूलर]

श्री वेदमित्र आर्य

भारत में गूलर प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है। इसे संस्कृत में उदुम्बर, जन्तुफल, हेमदुग्धक (क्योंकि इसका श्वेत दुग्ध हवा लगने पर पीला हो जाता है) कहते हैं। फारसी में इसे अंजीरे अहमक् और अंग्रेजी में cluster fig या country fig कहते हैं। लैटिन भाषा में इसे Ficus glomerata कहते हैं।

इसका वृक्ष ३० से ६० फीट ऊँचा, विशाल छायादार होता है। छाल रक्ताभधूसर वर्ण की, पत्र ३ से ४ इंच लम्बे, चिकने, अग्र भाग नुकीला, तीन शिराओं से युक्त होता है। फल गुच्छों में आते हैं, कच्चेपन पर हरे और पक होने पर लाल वर्ण के होते हैं। इस वृक्ष की छाल, पत्र, फल और क्षीर (दुग्ध) मुख्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। उदर विकारों में पका फल प्रयोग में नहीं लाना चाहिए क्योंकि इसमें कृमि होते हैं और उदर में जाकर कृमि उत्पन्न कर देते हैं।

वैज्ञानिकों ने इसमें निम्न पदार्थों का संगठन बतलाया है-Tannin, मोम, Caoutchouc तथा भस्म [राख] इसकी भस्म में Silica और phosphoric acid पाया जाता है।

इसके मुख्य कर्म हैं-मूत्र संग्रहणीय, स्तम्भन, ग्राही, भग्न संधानकर तथा दाहशामक। अन्य कर्म इस प्रकार से हैं वर्ण्य, शोधन, रोपण, तृषाहर, शोथहर, कृमिकर, संकोचक, रक्तपित्तशामक इत्यादि।

मधुमेह, प्रमेह- सफेद मूसली में गूलर का दुग्ध मिला कर गोली बना लें. रोगी की दशा अनुसार दें। अत्यन्त लाभ होता है। इस रोग में उदुम्बरसार का भी प्रयोग करते हैं तथा गूलर पत्र चूर्ण भी ४ माशे से २ तोले तक मट्ठे के साथ देते हैं। जिनको मट्ठा लाभप्रद नहीं होता वह जल या दूध से ले सकते हैं और अधिक शीघ्र लाभ प्राप्त करने के लिए चन्द्रप्रभा वटी प्रयोग करते हैं।

प्रमेह में गूलर का पका फल खाने को देते हैं और इसकी छाल का क्वाथ भी ५ से १० तोले तक प्रयोग करते हैं।

असाध्य रक्तातिसार-एक रोगी जिसकी आयु १६ वर्ष की थी ऐलोपैथिक चिकित्सकों से निराश होने के पश्चात् आया। उसको गूलर का दुग्ध एक छुआरे पर रख कर प्रातः खाने के लिए दिया सन्तोषजनक लाभ हुआ। इसके अपक्व फलों का शाक भी दिया जो अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुआ।

प्रवाहिका (Dysentery), ग्रहणी (Chronic Diarrhoea)-इसमें गूलर की छाल का काढ़ा बना कर देते हैं और भोज्य पदार्थों के रूप में गूलर के अपक्व फलों को उबाल कर मट्ठा या दही में

रायता बना कर देने से अत्यन्त लाभ हुआ है।

असृग्दर (रक्त प्रदर) तथा श्वेत प्रदर-रक्त प्रदर में फलों का रस मधु के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है। श्वेत प्रदर में गूलर की छाल का क्वाथ अत्यन्त लाभ करता है। इन रोगों में वस्तियों का प्रयोग लाभकर होता है।

अति आर्तव-इस व्याधि में गूलर की छाल के क्वाथ में मिश्री मिला कर देने से आशातीत लाभ होता है।

कष्टार्तव (Dysmenorrhoea)-इसमें गूलर पत्र के क्वाथ की उत्तर वस्ति (douche) लाभकारी है।

गर्भस्राव-गर्भिणी को इसके कच्चे फलों की खीर पका कर खिलाने से गर्भस्राव की आशंका नहीं रहती।

योनि शोधन- चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ३० में उदुम्बरादि तैल का प्रयोग बतलाया है। इसको निम्न औषधियों के साथ तैयार करते हैं-कच्चे सूखे गूलर के टुकड़े १ द्रोण [१२ छ० २ तो०] पंचवल्कल (बरगद, गूलर, पीपल, पिलखन और अम्लवेतस) इन सबकी छाल, पटोलपत्र, निम्ब पत्र, चमेली के पत्र, सब समान भाग लेकर (कुल भाग १ द्रोण) जल एक द्रोण, एक रात्रि भिगोये रखें। प्रातः काल इसको छान कर इसमें प्रक्षेप के लिए लाख, ढाक की छाल और सैमल का गोंद मिलायें और तिल एक प्रस्थ [१२ छ० ४ तो०] का पाक सिद्ध करें।

उदुम्बरादि तैल के गुण—योनि की दाह में इसके फाये रखने से पीड़ा शान्त होती है। इस तैल के प्रयोग से पिच्छिला, विवृता (योनि में मांस बढ़ना), चिरकाल दुष्टा दारुण योनि भी सात दिन के प्रयोग से स्वस्थ हो जाती है और सन्तानोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त होती है। गूलर, पंचवल्कल, मालती, निम्बपत्र के शीतल काथ में शर्करा मिलाकर इससे योनि में परिसेचन (धोना) भी करते हैं।

योनि शोधनार्थ तैल—चरक चि० स्थान में इस तैल का निम्न प्रकार से वर्णन है। तिलों को दुग्ध से ३ बार भावना देकर इन तिलों को पेर कर तैल निकालें। इस तैल को गूलर की छाल के ४ गुने काथ में सिद्ध करके इसमें पिचु (फाया) भिगोकर रखते हैं। गूलर के कषाय में शर्करा मिलाकर योनि को धोने से लाभ होता है।

योनि शोथ, योनि शूल—तिल तैल एक प्रस्थ (१२ छटांक ४ तोला) बकरी का मूत्र १ सेर १३ छटांक, इतना ही बकरी का दुग्ध, प्रक्षेप के लिये धाय के पत्र, आंवले के पत्र, शंखनाभि या रसांजन, मुलहठी, कमल, जामुन की लकड़ी, आम, अनार की छाल, कच्चे गूलर, प्रत्येक एक-एक अक्ष लेकर तैल सिद्ध करें। इस तैल का पिचु (फाया) योनि में रखते हैं और इस तैल की वस्ति का भी प्रयोग करते हैं। कटि, पीठ, त्रिक (कूल्हा) पर इसका अभ्यङ्ग करते हैं। इस तैल से पिच्छिला, स्राव युक्त योनि, विप्लुता, उत्ताना, शोथयुक्त छाले एवं शूल से युक्त योनि स्वस्थ हो जाती है। इससे अत्यन्त लाभ होता है ऐसा पुनर्वसु आत्रेय चरक में लिखते हैं।

गर्भवती का अतिसार—गूलर का फल मधु से देने से अत्यन्त लाभ होता है।

गर्भ रक्षा, स्तन्य वर्धनार्थ—राज निघण्टु में इसकी छाल को गर्भवती स्त्री के गर्भ की रक्षा के लिये एवं स्तनों में दुग्ध वृद्धि (Galactogenic action) के लिये विशेष उपयोगी बतलाया है।

विषम ज्वर – मलेरिया में गूलर का पानक देने से अत्यन्त लाभ होता है। कभी-कभी तो कुनीन से भी अधिक लाभ करता है। पानक बनाने की विधि—अरवा चावल ४ तोला, जल १२ तोला, में एक या दो घण्टे तक भिगोकर पानी को छान लें और ४ तोला गूलर के पत्ते लेकर सिल पर २ तोले मिश्री के साथ पीस लें और उपरोक्त जल में मिलाकर छान लें। दिन में तीन बार पीने को दें।

पित्तज ज्वर—वृहन्निघंटु रत्नाकर ने ज्वराधिकार में उदुम्बरादि हिम का वर्णन किया है। हिम को इस प्रकार से तैयार करते हैं—गूलर की जड़ और गिलोय का कषाय बनालें। कषाय बनाने के लिये २ तोला गूलर की जड़ और २ तोला गिलोय लेकर यवकुट करलें और १६ तोला जल में डालकर उबाल लें और थोड़ी देर तक रहने दें, ठंडा होने पर मसल कर छान लें अथवा पटोल की जड़ का क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर देने से पित्तज ज्वर का नाश होता है।

विसूचिका—पूर्वरूप प्रतीत होने पर इसका पानक देने से दशा चिन्ताजनक नहीं होती, हैजा हो जाने पर गूलर पत्र ३ तोला, चावल की धोवन के साथ पीसकर पानक की विधि से बना लें और इसमें चीनी मिलाकर प्रत्येक कै या दस्त होने पर दें, लाभप्रद सिद्ध होता है। अनेकों रोगियों पर परीक्षा करके देखा है। उदुम्बर सार भी ५-५ रत्ती देने पर लाभ होता है। इसको प्रयोग करते समय पथ्य हलका देना चाहिये।

रक्तपित्त (haemorrhagic disease)-उदुम्बरादि लेह नाम से रक्तपित्त नाशक योग का वर्णन मिलता है। गूलर का पका फल, काश्मीरी फल, हरड़, छोहारा और मुनक्का। इन्हें पृथक् पृथक् चूर्ण करके शहद में मिलाकर अवलेह बनावें। इसको देने से रक्तपित्त का नाश होता है। पके गूलर को गुड़ या शहद के साथ मिला कर देने से नासा से होने वाले रक्तस्राव का नाश होता है।

अर्श—अर्श के मस्सों पर गूलर पत्र स्वरस लगाने से अत्यन्त लाभ होता है। वस्ति भी देते हैं।

व्रण—Oriental sore (औरङ्गजेबी फोड़ा या आलमगीरी) के लिये यह महा औषधि है। मेरे पिताजी (डा० बुद्धिप्रकाश जी आर्य) कच्चे गूलरों को दही में पिसवाकर व्रण पर गाढ़ा गाढ़ा लगवा कर पट्टी बंधवा देते हैं। ३-३ घंटे बाद पट्टी बदलते रहते हैं उससे व्रण की दाह तुरंत शान्त हो जाती है और जख्म भी शीघ्र ही ठीक हो जाता है। यह अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

गूलर के दुग्ध को एक कपड़े पर लगाकर व्रण शोथ (ककयारी) पर लगाने से बैलाडोना मरहम से भी अधिक लाभ होता है। कंठमाला में भी प्रयोग करते हैं। व्रणों पर तूतिया के साथ गूलर के पत्रों को पीसकर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

मुखव्रण (Sore throat)—एक छटांक गूलर फल एक पाव जल में पका लें। क्वाथ के कवल धारण करना मुख व्रण में उपयोगी है।

पाषाण गर्दभ (Mumps), ग्रन्थि वृद्धि, शोफ (Inflammatory glandular enlargement)—इसमें गूलर की जड़ों में चीरा लगाकर निकलें दूध का प्रलेप करते हैं।

नेत्राभिष्यन्द—आंख दुखने पर गूलर के पत्रों का स्वरस डालने से अत्यन्त लाभ होता है। आंख दुखने की पीड़ा में उदुम्बर सार को अर्क गुलाब में घोलकर आंख को धोने से पीड़ा में कमी होती है और नींद न आने पर जल में एक साफ पट्टी भिगोकर बांधने से नींद आजाती है।

क्षुधा शान्त्यर्थ—सुश्रुत में क्षुधा की तीव्रावस्था को शान्त करने के लिये, गूलर की छाल का चूर्ण स्त्री दुग्ध के साथ लेने के लिये कहा है।

—श्री वेदमित्र आर्य ए., एम. बी. एस. (तृतीयवर्ष)
गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

अशोक

श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार

[भाग ३३ अङ्क ८ से आगे]

संस्कृत साहित्य में अशोक के चार प्रकार मिलते हैं—लाल, नीला, पीला और सफेद। मल्लीनाथ (पन्द्रहवीं शती) ने अशोक कल्प से एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें फूलों के रंग भेद से अशोक के लाल और सफेद दो भेद बताये हैं। श्वेत अशोक तान्त्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता था और लाल कामोद्दीपक समझा जाता था।[1] राज शेखर ने लाल, पीले और नीले अशोक का वर्णन किया है।[2] बाण (सातवीं शती) की कादम्बरी में भी हम नीले अशोक का वर्णन पाते हैं।[3]

आयुर्वेदिक तथा संस्कृत साहित्य में लाल अशोक (सेरेका इण्डिका) को ही मुख्यता दी गई है। यह सर्वत्र वास्तविक अशोक के रूप में विदित है। फूलों के वर्णन में हमने बताया है कि नये खिले फूलों का रंग पहले पीला रहता है, इसलिये हमारी सम्मति में संस्कृत कवियों के पीले अशोक को पृथक् जाति या प्रकार न मान कर लाल अशोक ही माना जाना चाहिए। हां, यह कहना कठिन है कि बाण और राज शेखर का नीला अशोक क्या है ?

वैद्यों में पौलिएल्थिया लौंगिफोलिया (गुजराती नाम, आसोपालव) को प्रायः कर अशोक कहने की प्रथा चल पड़ी है। संस्कृत निघण्टुओं की व्याख्या में अशोक के गुजराती नामों में हम आसोपालव भी देखते हैं। अंग्रेजी की कुछ पुस्तकों में भी मैंने यह देखा है। वैद्य बापालाल शाह[4] की सम्मति में पौलिएल्थिया लौंगिफोलिया के लिए गुजराती नाम आसोपालव है और अशोक को आसोपालव नाम देना भूल है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आसो-पालव को ही मल्लीनाथ ने श्वेत अशोक कहा है। इसके फूल सफेद पीले हरे से होते हैं, मल्लीनाथ ने उन्हीं को सफेद कह दिया है। औद्भिदी के आधुनिक विद्वानों के अनुसार आसोपालव मूलतः भारत का पौधा नहीं है। श्रीलंका में यह निसर्ग में स्वयं उगने वाला वृक्ष है। वहां से यह सदियों पहले भारत आ गया होगा। वृक्ष सीधा लम्बा और बहुत घनी शीतल छाया वाला होने से यह सर्वत्र पथवृक्ष की तरह बहुधा लगाया जाता है। मुगल शासकों के मकबरों पर तथा प्राचीन संरक्षित इमारतों के चारों ओर बागों में इसके वृक्ष प्रायः देखने में आते हैं। इसके पत्ते लहरदार होते हैं। असली अशोक के समान इसके फूल सुन्दर और आकर्षक नहीं होते। डल्हण ने अशोक की पहचान "लोहित कुसुमः स्वनामख्यातः" इस प्रकार लिखी है। दूसरे कवियों ने भी जिस सुन्दर फूल की प्रशंसा अशोक नाम से की है वह आसोपालव नहीं हो सकता। बहुत से वैद्य लोग अशोक छाल के स्थान पर आसोपालव की छाल को बरतने लगे हैं। वैद्य जगत में यह नकली अशोक या बंगाली अशोक के नाम से प्रसिद्ध है। आयुर्वेदिक कालेजों के कुछ अध्यापकों को मैंने आसोपालव वृक्ष को देवदार कहते सुना है जो कि सर्वथा भ्रमात्मक है।

यह भी लाभ तो करता है।

स्त्री रोगों में आसोपालव के प्रयोग का अनुभव मेरे एक वैद्य मित्र ने इस प्रकार बताया है—३५-४०

---

[1] प्रसूनैकरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा।
वहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः ॥ अशोक कल्प

[2] चैत्रे चित्रौ रक्त नीलाव शोकौ
स्वर्णा शोकस्त-तृतीयश्च पीतः। राजशेखर

[3] नीलाऽशोक वनायमानं कुसुमप्रकर पतित मधुकर वृन्दान्धकारैः। कादम्बरी, पूर्वभाग, १६०।

[4] निघण्टु आदर्श (गुजराती), १६२७।

वर्ष की एक सम्पन्न स्त्री को रक्त प्रदर की शिकायत उग्र रूप में थी। मैं रोज बगीचे जाकर एक डेढ़ छटांक ताजी छाल उतार लाता था। इसकी छाल लम्बी परत में आसानी से खिंच आती है। कुण्डी सोटे में आधे तोले भर तुखमलंगा के साथ खूब रगड़ कर रस निचोड़ लेता था। तुखमलंगा को रात को पानी में भिगो दिया जाता था। बकरी के धारोष्ण दूध के साथ मैंने उसे लगातार पन्द्रह दिन रस पिलाया था। और मुझे अचरज हुआ कि कई प्रकार की पेचीदी चिकित्सा कराने पर जिसे आराम नहीं आ रहा था वह इस साधारण इलाज से चंगी हो गई।

रासायनिक संगठन--

कर्नल चोपड़ा (१६३३) के अनुसार छाल की सन्तोषजनक रासायनिक परीक्षा नहीं हुई है। ऐबट (१८८७) ने बताया था कि इसमें शोणद्रु वि (haematoxlin) विद्यमान है। हूपर (फार्माकोग्राफिया इण्डिका, १८८३) ने शल्क्लि (टैनीन) का अच्छा परिमाण दिखाया है। कलकत्ता के स्कूल ऑफ ट्रोपिकल मेडिसन के केमिस्ट्री विभाग में विभिन्न विलेयकों के साथ छाल का निस्सार लिया गया था। प्राप्त परिणाम इस प्रकार थे—

मृत्तैल द्यु निस्सार (पैट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रैक्ट) ०. ३०७ प्रतिशत

द्यु निस्सार (ईथर एक्स्ट्रैक्ट) ०. २३५ प्रतिशत

परिशुद्ध सुषविक निस्सार (एब्सोल्यूट एल्कोहलिक एक्स्ट्रैक्ट) १४. २ प्रतिशत

सुषविक निस्सार गरम पानी में प्रायः सारा घुल जाता था। इसमें शल्कि की एक बड़ी राशि पाई गई और सम्भवतः एक जीव द्रव्य (आर्गेनिक सब्स्टैन्स) भी इसमें था जिसमें लौह विद्यमान था। कर्नल चोपड़ा (१६३३) बताते हैं कि क्षाराभ (एल्कलॉयड) उड़नशील तैल इत्यादि की प्रकृति के कोई क्रियाशील तत्व नहीं प्राप्त हुए। श्री मुकर्जी (१६५३) ने दिखाया है कि छाल में थोड़े परिमाण में एक उड़नशील तैल विद्यमान है। छाल में खदिर (Catechol) भी पाया गया है।

उपयोगी भाग—

प्रधानतया छाल चिकित्सा में काम आती है।

ताजी छाल का अन्तः पृष्ठ हलके बभ्रु रंग का होता है जो सूखने पर रक्ताभ-बभ्रु वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। छाल कठोर तथा तन्तुमय और स्वाद में कड़वी होती है। यह अन्वायाम वलित होती है।

औषधि प्रयोग के लिये ली जाने वाली छाल का प्रमाप (स्टैन्डर्ड) स्थिर रखने के लिये ध्यान रखना चाहिये कि उस में विजातीय जैव्य पदार्थ (organic matter) दो प्रतिशत से अधिक न होना चाहिए।

आणुवीक्षिक परीक्षा —

त्वक्षा (phellem) त्वक्षेधा (phellogen) और उपत्वक्षा (phelloderm) से बाह्यवल्क (periderm) बना होता है। अनुप्रस्थ छेद (transverse section) में त्वक्षा कोशाओं (cork cells) के नाप २५-३० × ६.२४-११.५ माइक्रोन और आयाम छेद (longitudinal section) में नाप २५.२५×८.५—११ माइक्रोन हैं। द्वितीयक बाह्यक तन्तु (secondary cortical tissue) गहरा होता है जिसमें चूर्णातु तिग्मीय (calcium oxalate) के संक्षेत्र स्फट उपस्थित होते हैं। उपत्वक्षा (phelloderm) के अन्दर प्रस्तर कोष्ठ (stone cells) विध्म (patches) में पड़े रहते हैं। कभी-कभी ये प्रस्तर कोष्ठ इस प्रकार मिल जाते हैं कि पक्तियां बन जाती हैं। तीन प्रकार के प्रस्तर कोष्ठ सामान्यतया विद्यमान होते हैं—रेखीय प्रतिरूप (linear type), आयत प्रतिरूप (rectangular type) और समव्यास (isodiametrical), द्वितीयक अधोवाही (secondary phloem) की बनावट में देखा गया है कि यह अधोवाही जीवितक

(phloem parenchyma), चालनी नाल (sieve tubes) और अधोवाही तन्तु (phloem fibres) से बनी होती है। चालनी नालों (sieve tubes) के साथ सखि-कोशाएं (companion cells) भी होते हैं।

अधोवाही तन्तु (phloem fibres) की रचना में ३ से अधिक कोष्ठों के समूह होते हैं। चूर्णातु तिग्मीय (कैल्शियम औग्जेलेट) के संक्षेत्र स्फट (prismatic crystals) के साथ स्फट तन्तु उपस्थित होते हैं।

गुण [1]

सब निघण्टुकारों ने अशोक को शीतल और कृमिनाशक बताया है। आनन्दाश्रम मुद्रणालय (पूना, १९२५) से प्रकाशित राजनिघण्टु में इसे कृमिकारक लिखा है। सम्भवत: वह पाठ अशुद्ध है। भावमिश्र और कैयदेव को छोड़कर सब लेखकों ने इसे मधुर कहा है। नरहरि और धन्वन्तरि इसे हृदय हितकर भी समझते हैं। तिक्त और कषाय रस के कारण भावमिश्र कैयदेव और निघण्टुरत्नाकर इसमें ग्राहीगुण प्रतिपादन करते हैं। धन्वन्तरि को छोड़कर सबने इसे दाहनाशक बताया है। पित्तशामक उपयोगिता धन्वन्तरि, भावमिश्र और कैयदेव ने प्रतिपादित नहीं की। भावमिश्र, कैयदेव और निघण्टु रत्नाकर ने इसे प्यासरोग को शान्त करने वाला बताया है। नरहरि और निघण्टुरत्नाकर की सम्मति में यह रंग को निखार कर शरीर की कान्ति को बढ़ानेवाला पाया है। विषनाशक उपयोगिता धन्वन्तरि और नरहरि ने स्वीकार नहीं की। गुल्म, शूल, अफारा तथा दूसरे पेट के रोगों में इसे नरहरि और डूप (१९११) के अनुसार उपयोग व उपज की दृष्टि से यह कोई महत्व का वृक्ष नहीं है।

इसकी लकड़ी नरम है। प्रति घन फुट लकड़ी का भार लगभग पचास पौंड है।

उपयोगिता की दृष्टि से यह घटिया लकड़ी प्रतीत होती है परन्तु लंका में इसे मकानों के अन्दर काम में लाया जाता है।

निर्मितियां—

अशोक क्वाथ (Decoctum Asokae)—

अशोक का मोटा चूर्ण	५६ (औंस)
आसुत जल	२० (औंस)

अशोक को पचास तरल औंस आसुत जल के साथ बीस तरल औंस शेष रहने तक उबालें।

मात्रा – आधे से एक द्रव औंस

अशोक तरल निस्सार (एक्ट्रैक्टम अशोकी लिक्विडम)—

अशोक की छाल का मोटा चूर्ण २० शुक्ति, मधुरी (गिलसरीन) २॥ तरल शुक्ति, सुषव (एलकोहल) ६० प्रतिशत ५ तरल शुक्ति, आसुत जल २० शुक्ति तक।

---

[1] क अशोक: शीतलश्चार्शः कृमीन्हन्ति प्रयोजित:।
अपची नाशयत्येव सर्वव्रणविनाशन:॥
अशोको मधुरोहृद्य: सन्धानीय: सुगन्धिक:॥
ध. नि. आम्रादि ५, १६०-१६१

ख अशोक: शिशिरो हृद्य: पित्तदाहश्रमापह:।
गुल्मशूलोदराध्माननाशन: कृमिकारक:॥
रा. नि., करवीरादि, १०, २७१

ग अशोक: शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्य: कषायक:।
शोषापचीतृषादाहकृमिशोथविषास्रजित्॥
भा. प्र. पुष्पादि, ४४-४५

घ अशोक: शीतलस्तिक्तो वर्ण्यो ग्राही कषायक:।
दोषापचीतृषादाहकृमिशोथविषास्रजित्॥
कै. दे. नि. औ. व., १०८६

ङ अशोको मधुर: शीतश्चास्थिसन्धानकृन्मत:।
प्रिय: सुगन्धि: कृमिहृन्तुवरोष्णश्च तिक्तक:॥
शरीरकान्तिकृच्चैव स्त्रीणामुच्छोकनाशन:।
ग्राही पित्तहरो दाहश्रमगुल्मोदरापह:॥
शूलाध्माने विषन्चार्शो व्रणं सर्वा तृषां तथा।
शोथापचीज्वरं चैव नाशयेद्रक्तजां रुजम्॥
नि. र.

आसुत जल के साथ अशोक छाल को पारच्यवन (percolation) द्वारा उत्स्रावण (exhaust) करें। पारच्यव (percolate) का वाष्पीभवन करके बारह तरल शुक्ति (औंस) बनालें। इसमें मधुरी (ग्लिसरीन) मिलायें और आधे घण्टे तक उबालें। ठण्डा करें। सुषव (एल्कॉहल) और पर्याप्त आसुत जल मिलायें जिससे अभीष्ट आयतन (Volume) प्राप्त हो जाय। चौदह दिन तक अलग रखा रहने दें। छान लें। प्रमाप (स्टैण्डर्ड) अशोक तरल निस्सार वह माना जाता है जिसमें सुषव मात्रा (alcohol content) १८-२२ प्रतिशत हो।

इसकी मात्रा एक से दो तरल शाण (द्रव ड्राम) है।

आयुर्वेदिक निर्मितियां—

आयुर्वेदिक फार्मेसियां आजकल अशोक की छाल से मुख्यतया दो निर्मितियां (प्रेपरेशन्स) तैयार कर रही हैं—अशोक घृत और अशोकारिष्ट। चक्रपाणि, भावमिश्र तथा शार्ङ्गधर ने अशोक घृत का सम्भवतः प्रयोग नहीं किया। प्रतीत होता है कि वंगसेन द्वारा संकलित सारकौमुदी में सर्वप्रथम अशोक घृत का उल्लेख हुआ है। इसका निर्माण हम यहां दे रहे हैं।

अशोक घृत [1]—२ सेर अशोक की छाल को आठ सेर पानी में पकायें। जब २ सेर काढ़ा बच जाय तो छान लें। इसी प्रकार एक सेर जीरे को चार सेर पानी में पकाकर दो सेर काढ़ा बना लें। चावलों की पिच्छ, बकरी का दूध और भांगरे का रस प्रत्येक दो सेर लें। जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, चिरौंजी, फालसा, रसौत, अशोक की जड़ की छाल, किशमिश, शतावरी और चौलाई की जड़ प्रत्येक ढाई तोले लें। इन्हें मोटा-मोटा कटकर सिलबट्टे पर चटनी की तरह रगड़ लें। सब चीजों को दो सेर गौ के घी में विधिपूर्वक पकायें।

निर्देश—यह घृत स्त्रियों के इन रोगों में प्रयोग किया जाता है-त्रिदोषज, श्वेत, नील तथा कृष्ण प्रदर, कुक्षिशूल, कमर दर्द और योनिशूल; मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, खांसी, दमा आदि

१क-अशोक वल्कल प्रस्थं तोयाढक विपाचितम्।
पादस्थेन घृत प्रस्थं जीरक क्वाथ संयुतम्॥
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृत तुल्यं प्रदापयेत्।
तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः॥
जीवनीयैः पिपालैस्तु परुषैः सरसांजनैः।
षस्ट्याह्वाशोक मूलञ्च मृद्वीका च शतावरी॥
तण्डुलीयक मूलंच कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः।
शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत्॥
पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोष समुद्भवम्।
श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरम् हन्ति दुस्तरम्॥
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वजम्।
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वास कासकम्॥
आयुः पुष्टिकरं बल्यं बलवर्ण प्रसादनम्।
देयमेतत्परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्तितम्॥
—भैषज्य स्त्रीरोगाधि १७-२३

ख—अशोकवल्कल प्रस्थं तोयाढके विपाचितम्।
तेन पादावशेषेण जीरकेण तथैव च॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्प्रक्षिप्य च तथापरम्।
तण्डुलाम्बुन्यजाक्षारं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्॥
केशराजरसस्यापि प्रस्थमेकं भिषग्वरः।
जीवनीयैः पिपालैश्च परुषसरलाञ्जनैः॥
षट्याह्वाशोक मूलञ्च मृद्वीका च शतावरी।
तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेतैः पलार्द्धकैः॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भदत्त्वाशुचूर्णितम्।
पुष्पयोगेन तत्पीतं निहन्यात् सर्व दोषजम्॥
श्वेतं कृष्णं तथा नीलं प्रदरं हन्ति दुस्तरम्।
कुक्षिशूलं योनिशूलं पृष्ठशूलञ्च दारुणम्॥
मन्दाग्निमरुचिपाण्डुं कृशतां श्वासकासिनाम्।
अशोक घृतमेतन्तु विख्यातं स्त्रीगदेषु च॥
—स्नेहमालिका

श्वास संस्थान के रोग। इसके सेवन से स्त्रियों के विविध रोग दूर होकर वे बलवती और पुष्टिवती बनती हैं, उनका रंग निखर जाता है और आयु दीर्घ होती है। गोविन्ददास ने इसके गुणों की प्रशंसा में लिखा है कि विष्णु ने इसे उपर्युक्त रोगों में उपयोगी पाया है।

मात्रा व सेवन विधि—आधा तोला घी में डेढ़ माशा खाण्ड मिलाकर प्रातः सायं दूध के साथ लें।

अशोकारिष्ट[1]—दस सेर अशोक की छाल को दो मन २२॥ सेर पानी में पका कर २५॥ सेर पानी बचा लें। काढ़े को छान कर शीतल होने पर इसमें बीस सेर गुड़ घोल दें। निम्न लिखित चीजों को मोटा कूट कर मिला दें—धाय के फूल १ सेर ६ छटांक ३ तोले, काला जीरा, मोथा, सोंठ, दारु हल्दी, नीलोफर, त्रिफला, आम की गुठली की गिरी, जीरा, बांसे की छाल और लाल चन्दन प्रत्येक आठ तोला। विधिपूर्वक अरिष्ट बना लें।

घड़े के अन्दर घी का लेप करके उसे चिकना बना लेना चाहिए। फिर ६ माशा लोंग और ६ माशा कपूर को जलते अंगारों पर रखकर घड़े को उल्टा करके धूनी देनी चाहिए। तब उसमें सामान डाल कर ढक कर एकान्त में रखदें। भूमि में दबा दें तो अच्छा रहेगा (इससे फर्मण्टेशन शीघ्र आरम्भ हो जायगा) फर्मण्टेशन की क्रिया को शीघ्रता तथा तेजी से करने के उद्देश्य से काढा डालने से पूर्व आधा सेर किण्व (सुराबीज) डाल देते हैं। यीष्ट की सहायता भी ली जा सकती है। गरमी, वायु मण्डल की आर्द्रता आदि के अनुसार पन्द्रह दिन से एक मास में अरिष्ट तय्यार हो जाता है।

मात्रा व सेवन विधि—१॥ से २॥ तोले तक समान भाग जल मिला कर भोजन के बाद दोनों समय लें।

निर्देश—

अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है। स्त्रियों के प्रदर रोग की यह उत्तम औषधि है। गर्भाशय पर यह बलदायक औषधि के रूप में कार्य करता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव में इस का प्रयोग किया जाता है। अत्यार्तव के यदि निम्नलिखित कारण हैं तो यह लाभ करता है—गर्भाशय की अन्तः स्तर (endometrium) में विकार, डिम्ब प्रणालियों में विकार, प्रसव के पश्चात् गर्भाशय के अन्दर या बाहर हो जाने वाले व्रण। गर्भाशय या प्रजनन संस्थान के अन्य भागों में कैन्सर उत्पन्न हो जाने के कारण अत्यार्तव है तो उसमें अशोकारिष्ट का सेवन लाभ नहीं पहुँचता।

मासिक धर्म यदि कष्ट से आता है, उदर प्रदेश में पीड़ा होती है तो सामान्यतया उसका कारण डिम्बाशय (ovary) या डिम्ब प्रणाली में विकार का होना है। कष्टार्तव में कुछ रोगियों को तीव्र पीड़ा के साथ-साथ कमर में दर्द, सिर में दर्द पेट की अग्नि का मन्द पड़ जाना, भोजन में अरुचि, उलटियों का आना आदि लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। हलका-हलका बुखार रहने लगता है जो ९९ से १०० अंश फ़ार्नहाइट के बीच में रहता है। अशोकारिष्ट इन सब कष्टों को शांत करता है।

मासिक धर्म की अनियमितता में इसका प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय को बलवान बनाकर उसे यह गर्भ धारण करने के योग्य बनाता है।

—क्रमशः।

---

[1] अशोकस्य तुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम्॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम्।
अजाजी मुस्तकं शुण्ठी दार्व्युत्पलफलत्रिकम्॥
आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनञ्च विनिक्षिपेत्।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्॥
मासादूर्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दर रुजां जयेत्।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥
मेहशोथादिचिहरस्त्वशोकारिष्ट संज्ञितः।
भै. र. स्त्रीरोगाधि. १०८–१११

फोतों की सूजन पर—

रीठे के पाव भर हरे पत्ते लेकर गाय की छाछ (पानी) में उबाल कर रोगी के फोतों पर बांध दिया जावे। आज सुबह बांधा हुआ कल सुबह खोलकर दूसरा यहां बांध दिया जावे और हवा नहीं लगने पावे। इस क्रिया को २१ दिन करते रहें। २१ दिन में उक्त रोग का नाम निशान मिट जावेगा।

पथ्य में वायु रहित भोजन दें। अधिक परिश्रम, मैथुन, मादक उत्तेजक वस्तुओं का सेवन न करें।

—वैद्य भूषण श्री भौमसिंह शर्मा,
c/o M. P. M. भोमसिंह रडावस
श्री जैन रघुनाथ औषधालय मुकाम वोपीरा

मक्कलशूल पर—

शराब में जो एक तोले के लगभग हो १ माशा अफीम घोलकर फाहा (रुई व कपड़े का पिचु) बना योनि के अन्दर रखने से आशातीत लाभ होता है, किंचित लगती है परन्तु वेदना में तत्क्षण लाभ करती है। यदि १ रत्ती से ४ रत्ती तक यवक्षार गर्म जल से खिला दिया जाये तो और भी लाभदायी है।

—वैद्य श्री छोटेलाल वर्मा आयुर्वेद भिषक
सर्वजन हितकारक औषधालय
तालग्राम (फरुखाबाद)

सूतिका ज्वर पर तीन प्रयोग—

(१) शुद्ध गन्धक शुद्ध सिंगरफ टंकण भस्म
काली मिरच छोटी पीपल केशर
अकरकरा —सब समान भाग लें

विधि—अदरक के रस से मिरच प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में दो तीन बार आवश्यकतानुसार दें।

अनुपान—(१) लौंग का चूर्ण (२) अद्रक का रस।

गुण—प्रसूत ज्वर, साधारण ज्वर, शीतांग सन्निपात, गोला, श्वास, कास आदि रोग दूर हो त्रिदोषज रोग भी दूर होते हैं।

(२) पारा गन्धक अभ्रक भस्म
स्वर्णमाक्षिक भस्म त्रिकुटा मीठा विष
—सब समान भाग लेवें।

विधि—खरलकर २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—४ रत्ती।

अनुपान—(१) लौंग का चूर्ण (२) अद्रक का रस

गुण—सूतिकाजन्य अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी और श्वास रोग दूर होते हैं। उत्तम बाजीकरण भी है।

(३) देवदारु खुरासानी बच कूट
पीपल सोंठ चिरायता
जायफल नागरमोथा हरड़ की छाल
पीपल (बड़ी) धमासा गोखरू
कटैली गिलोय काला जीरा
—प्रत्येक २-२ माशे।

—सबको डेढ़ पाव जल में काढ़ा बनावें। जब १॥ छटांक रह जावे तब उतार छान हींग, सेंधा

नमक डेढ़ (१½) रत्ती डाल प्रसूतिका को पिलावें।

गुण—सूतिका रोग, शूल, कास, ज्वर, मूर्च्छा, मस्तक पीड़ा, तंद्रा आदि रोग नष्ट होते हैं।

—श्री वैद्य रामरतन शर्मा
भगवती आयु. औषधालय, लाडनूं

सूतिका ज्वर पर—

दशमूल कुटा हुआ लें, बाजार के पंसारियों से कभी भी, सब चीज मिला हुआ, नहीं लेना चाहिए। परन्तु दस चीजें अलग अलग लेकर कूट लेना चाहिए। इसमें दस चीजों का मिश्रण निम्न प्रकार से कर लेना चाहिए—

बेलछाल गंभारीछाल पाढलछाल
अरलूछाल अरणी की छाल
गौखरू का पंचांग छोटी कटेली का पंचांग
बड़ी कटेली का पंचांग पृश्नपर्णी का पंचांग
शाल पर्णी का पंचांग -समान भाग।

ये सब वस्तुएं समान मिलाकर जौकुट कर लेनी चाहिए और इनमें से २ तोला कुटी औषधि लेकर आध सेर पानी में धीमी धीमी आग पर क्वाथ करना चाहिये। करीबन आध पाव जल रह जाने पर छान कर उसे शुद्ध घी (गौ का मिले तो अच्छा है अन्यथा भैंस का ही) ६ माशे घी पतीली में डाल दें। जब वह अच्छा कड़क जाये तो ऊपर से वह पका हुआ क्वाथ डाल कर छौंक लें।

इससे पहली छोटी पीपल ३, ४ तोला बारीक खरल कर एक शीशी में रखलें। इसमें से तीन चार रत्ती लेकर उस कोसे गुनगुने क्वाथ पर छिड़क दें और रोगी को पिला दें। इसी प्रकार शाम को भी करें। खाना सादा और हल्का होना चाहिए। इस प्रकार अनन्त उपद्रवों सहित यह नष्ट हो जायगा और रोगिणी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लेगी।

—स्वामी वैद्य सन्तोषानन्द,
प्रधान जिला व नगर वैद्य मण्डल, देहरादून

गर्भस्राव और गर्भपात पर अनुभव—

प्रारंभिक तीन महीनों में जो गर्भ गिर जाता है उसे गर्भस्राव कहते हैं और बाद में इसका नाम गर्भपात हो जाता है।

गर्भस्राव बार-बार होने पर गर्भाशय कमजोर होता जाता है। फलतः उसको पुष्ट करने के लिये विभिन्न औषधियों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। किन्तु इतने पर भी कभी कभी महिलाओं में यह शिकायत बनी ही रहती है।

ऐसी स्थिति में पति-पत्नी दोनों की ही चिकित्सा कराना आवश्यक होता है। कभी कभी पचासों केसों में अनुभव हुआ है कि पुरुष के वीर्यकीट की कमजोरी (Weakness of Spermetozoon) के कारण महिलाओं में यह स्थिति होती है। इस मशीनी युग में इस विषय की जांच का प्रबन्ध बड़े शहरों के अस्पताल में अच्छे रूप में हो रहा है। वहां वीर्य परीक्षा (Seman Examination) के लिये पृथक विभाग में खास तौर से जांच करा लेनी चाहिये।

साधारणतया कल्बुलहज्र (श्वेत वर्ण वाला पत्थर का दिल) का प्रयोग करना गर्भस्राव या गर्भपात के लिये अत्युत्तम रहता है। इसका प्रयोग लगतार दो महीने तक दूध के साथ करने से ये दोनों भय निश्चित रूप से भाग जाते हैं। साथ ही इस प्रयोग की इसकी विशेषता यह है की ऐसा बच्चा सूखा रोग से ग्रस्त नहीं हो पाता।

इन दोनों बातों पर पूरी तरह ध्यान रखना आवश्यक है साथ ही पति को भी ध्यान रखना परमवश्यक है कि गर्भधारणोपरान्त वह प्रसंग न करे। पूर्ण ब्रह्मचर्य रखना परमावश्यक है।

—श्री पं० चन्द्रशेखर जैन आयुर्वेदाचार्य,
लाखा भवन जबलपुर

समाचार एवं सूचनाएं

उ.प्र. भारतीय चिकित्सा परिषद का द्वितीय दीक्षान्त समारोह

दिनांक १० अप्रेल को यूनानी मेडिकल कालेज इलाहाबाद में उ० प्र० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड (भारतीय चिकित्सा परिषद उ० प्र०) का द्वितीय दीक्षान्त समारोह प्रातःकाल ९ बजे बड़ी सजधज के साथ सम्पन्न हुआ। इस समारोह में उ० प्र० इण्डियन मेडीसिन बोर्ड के समस्त सदस्यों तथा सम्बन्धित आयुर्वेद एवं यूनानी कालेजों के प्रिंसिपलों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। प्रायः समस्त आयुर्वेद व यूनानी कालेजों के छात्र इस समारोह में सम्मिलित हुये थे जिन्हें गाउन पहना कर रेलवे मिनिस्टर श्री जगजीवनराम जी के कर कमलों से उपाधियां वितरित कराई गई। इस समारोह में इलाहाबाद हाईकोर्ट तथा लोअर कोर्ट के न्यायाधीश, मुंसिफ, मजिस्ट्रेट, स्थानीय एम. पी., एम. एल. सी., एम. एल. ए. महानुभावों ने भी विशेष रूप से भाग लिया। उत्तर प्रदेश विधान परिषद के अध्यक्ष माननीय आर. वी. धुलेकर महोदय भी विशेष आमंत्रण पर उपस्थित हुये थे।

यूनानी मेडीकल कालेज के डाइरेक्टर इण्डियन मेडीसिन बोर्ड के सबसे पुराने सदस्य शिफाउलमुल्क हकीम अहमद उस्मानी साहब ने अंग्रेजी भाषा में मुद्रित स्वागत भाषण सुनाने के पश्चात् यूनानी मेडीकल स्कूल से यूनानी मेडीकल कालेज बनने की सम्पूर्ण रिपोर्ट तथा उत्तरोत्तर विकास और वर्तमान स्वरूप विस्तार के साथ पढ़कर सुनाया जिससे लोग काफी प्रभावित हुए। कालेज की ओर से रेलवे मन्त्री को एक मानपत्र भी भेंट किया गया।

अधिवेशन का उद्घाटन उत्तर प्रदेश बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसिन के प्रेसीडेंट वैद्य दरबारीलाल शर्मा ने किया। आपने अपने भाषण में आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति तथा बोर्ड की गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमने रेलवे मन्त्रालय से विनम्र शब्दों में अनुरोध किया था कि हमारे स्नातकों के प्रमाणपत्र रेलवे विभाग में अबाध गति से स्वीकार किये जाने चाहिये जिसका हमें अब तक कोई समुचित उत्तर नहीं दिया गया है। साथ ही आपने रेलवे मन्त्री से अनुरोध किया कि चाहे आपके विभाग में फोर्थ क्लास की जगह फिफ्थ क्लास क्यों न खोलना पड़े किन्तु हमारे स्नातकों को रेलवे विभाग में मान्यता मिलनी चाहिये और उन्हें रेलवे के चिकित्सालयों में नियुक्त किया जाना चाहिये तथा रेलवे विभाग की ओर से आयुर्वेद के औषधालय भी खुलने चाहिये।

रेलवे मिनिस्टर का भाषण—

दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया वह निम्न प्रकार है—

जनाब प्रेसीडेंट साहब तथा डाइरेक्टर महोदय, उपस्थित सज्जनों तथा छात्रो।

मुझे आपके इस समारोह में आकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मनुष्य में दो प्रकार की प्रवृत्तियां काम करती हैं। शरीर में चेतन, जड़ता, मृदुता और स्वास्थ्य की कामना कहां से आई यह जानने की जिज्ञासा मनुष्य में रहती है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह चार बातें सदा से चली आई हैं। चिकित्सा विज्ञान और रोग विज्ञान में दो तरह के व्यक्ति रहे हैं। दोनों प्रकार

के वैज्ञानिकों में इसके जानने की भावना रही है।

आश्चर्य यह होता है कि शताब्दियों तक लोगों ने अन्वेषण किया होगा कि अमुक प्रयोग द्वारा अमुक लाभ होता है। आयुर्वेद में एक से एक प्रयोग विद्यमान हैं जो कि बिना अनुभव या खोज के नहीं लिखे गये हैं, फिर आयुर्वेद व यूनानी को एक विज्ञान न मानना हमारी भूल होगी। आज जो लोग यह कहते हैं कि यह पद्धतियां वैज्ञानिक नहीं हैं, कहा जा सकता है कि उन्होंने इन्हें कुछ समझा ही नहीं है।

मैं इन पद्धतियों को पूर्ण वैज्ञानिक मानता हूं किन्तु लोगों में इसके प्रति जो भ्रान्त धारणायें हैं उन्हें दूर करना चाहिये।

जिन पद्धतियों को शताब्दियों तक राज्याश्रय नहीं मिला हो और जिनकी सदैव उपेक्षा की जाती रही हो, ऐसी विकट परिस्थितियों में भी जो पद्धतियां जीवित रहीं हों, उन्हें कैसे कहा जा सकता है कि वे वैज्ञानिक नहीं हैं।

जो तत्व और गुण नाड़ी के अन्दर विद्यमान है वह बाहर आकर कैसे रह सकते हैं। आयुर्वेद में वे समस्त गुण मौजूद हैं जिनकी आवश्यकता है। जो नहीं जानते हैं वह उनकी कमजोरी है।

आज एनाटमी की डींग हांकी जाती है किन्तु इतना कहना अनुचित न होगा कि एनाटमी का सम्पूर्ण अध्ययन करने के बाद भी अभी अध्ययन बाकी है।

आज का विज्ञान फिजिक्स, एनाटमी के स्थूल तत्वों का ही अध्ययन कर पाया है सूक्ष्म तत्वों का नहीं।

मनुष्य मुंह से पानी पीकर गुदा के रास्ते से निकाल देता है। आज का वैज्ञानिक इस पर अभी भी अन्वेषण नहीं कर सका है।

आज इन्टीग्रेशन सिस्टम (मिश्रित चिकित्सा प्रणाली) की बड़ी आवश्यकता इसलिये है कि अनुभवी वैद्य हकीम नाड़ी विज्ञान द्वारा हृद्रोग तथा तापमान बता सकते हैं किन्तु यह साधारण व्य के वश का काम नहीं है।

इसी प्रकार कई रोग ऐसे हैं जिनका वर्णन ऐलोपैथी में नहीं है किन्तु चिकित्सा है। आयुर्वेद में निदान और चिकित्सा दोनों ही विद्यमान हैं। आज जब दोनों के समन्वय की बात आती है तो लोग समझते हैं कि हम बड़ा भारी काम करने जा रहे हैं।

आयुर्वेद में जो कुछ लिखा है वही इतिश्री नहीं है। चरक, सुश्रुत के बाद भी लोगों ने काम किये हैं और आगे बढ़े हैं।

आयुर्वेद के कमजोर होने का एक सबसे बड़ा कारण यह भी रहा है कि अनुभवी वैद्य अपने योग न केवल छिपाते चले आये अपितु अपने साथ भी लेते चले गये। इससे यह विज्ञान दबता चला गया।

आज भी हमारे यहां देहातों में चुटकलों से बड़े-बड़े भयंकर रोग अच्छे किये जाते हैं और वे जादू के समान काम करते हैं उनका संग्रह कर संरक्षण होना चाहिये। हमारी प्राचीन पद्धतियां पूर्ण वैज्ञानिक थीं और रोग परीक्षण के यन्त्र शस्त्र भी उसमें थे। हमारा तो कहना है कि आज का वैज्ञानिक वहां तक तो पहुंच भी नहीं सकता है।

प्राचीन लोग मांसाहारी नहीं थे किन्तु आयुर्वेद में समस्त मांसों के गुण अवगुण तथा उनके प्रयोग लिखे गये हैं। इसके माने हैं कि उस युग में बहुत बड़ी खोज हुई होगी।

आजकल मृत्यु को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है किन्तु हमारे यहां वह योग दर्शन तथा योग सूत्रों में वर्णित है। हमारे यहां आज लिखने की परम्परा का अभाव सा हो गया है जिसे कायम करके हम उसे बचा सकते हैं।

आज सभी के दिमाग में यह बैठ गया है कि सुई लगाने से बड़ा लाभ होता है तथा एन्टीबाइटिक्स सल्फाड्रग्स आदि का बड़ा बोलबाला है, पर मेरा कहना है कि यह औषधियां बड़ी घातक हैं।

ऐलोपैथी की बहुत सी दवायें मैं जानता हूं जिनमें अक्ल की जरूरत नहीं है और न उनके प्रयोग में डाक्टर की ही आवश्यकता है। आज बहुत से वैद्य भी इनका प्रयोग करने लगे हैं।

ऐसा लगता है कि अगर वैद्यों ने ऐलोपैथी की औषधियों को अपना लिया और उनके सिद्धांतों को मान लिया तो आपने यह भी मान लिया कि आपके यहां वह वस्तुयें नहीं हैं। किन्तु मेरा कहना है कि वैद्य हकीमों को अपने मौलिक तत्व भूलने नहीं चाहिये।

रेलवे मन्त्री के भाषण के पश्चात् इलाहाबाद नगर के महापौर श्री विश्वम्भरनाथ पांडेय ने आभार प्रदर्शित करते हुये एक ओजस्वी भाषण दिया। उसके बाद समारोह की कार्यवाही समाप्त हुई। अन्त में बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसिन के सदस्यों तथा कालेजों के प्रधानाचार्यों का रेलवे मन्त्री से एक एक करके परिचय कराया गया। तदनन्तर सायंकाल ५ बजे यूनानी मैडीकल कालेज की ओर से अभ्यागतों को एक जोरदार चाय पार्टी दी गई। इस प्रकार यह समारोह बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में सानन्द सम्पन्न हुआ। इस समारोह में २६१ आयुर्वेद तथा २६ यूनानी स्नातकों की उपाधियां वितरित की गई।

इस सम्मेलन में एक अत्यन्त रोचक घटना घटी। A., M. B. S. (आयुर्वेदिक उपाधि) लेने वाले अनेक स्नातकों के नाम आदि F., M. B. S. (यूनानी उपाधि) के फार्म में भर दिये गये तथा वही उपाधि वितरित की गई। बाद में पता चलने पर एसी सभी उपाधियां वापिस लेली गईं तथा उन को दूसरे दिन ११ अप्रैल को दोपहर २॥ बजे सही उपाधि ले लेने को कहा गया। जिन स्नातकों को इसमें असुविधा थी उनको आश्वासन दिया गया कि उनको उनके दिये गये पते पर रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा उपाधि भेज दी जावेगी। यह घटना बोर्ड के आफिस में होने वाली लापरवाही की द्योतक है।

इसी समारोह में धन्वन्तरि के सहायक सम्पादक दाऊदयाल गर्ग ने A., M. B. S. (आयुर्वेदाचार्य, बैचलर आफ मैडीसन एण्ड सर्जरी) की उपाधि ग्रहण की।

× × ×

राज्यपाल द्वारा धन्वन्तरि की मूर्ति का अनावरण—

दि० ११-४-६० को वैद्यराज लक्ष्मीनारायण जी त्रिवेदी द्वारा संस्थापित मालवीय भारतीय मन्दिर ८६ आड़ा बाजार पर भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा का अनावरण एवम् निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा सम्बन्धित आयुर्वेद विद्यालय का शुभारम्भ मध्यप्रदेश के राज्यपाल परम श्रेष्ठ श्री हरी विनायक पाटसकर साहब के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। मालवीय भारती मन्दिर के प्रधान मंत्री श्रीआशाकुमार त्रिवेदी ने महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री बाबू सम्पूर्णानन्दजी, केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डी० पी० करमरकर, श्रीमन्त महाराजा यशवंतराव होल्कर इन्दौर, श्री स्वामी चैतनानन्दजी महाराज काशी, प्रधान सम्पादक आयुर्वेद सम्मेलन पत्रिका श्री सीताराम मिश्र परिषद मंत्री आयुर्वेद विद्यापीठ देहली, पद्म भूषण श्री सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैन, भारत रत्न श्रीपाद् दामोदर सातवलैकर आदि के शुभ सन्देश पढ़कर सुनाये। उसके बाद परम श्रेष्ठ राज्यपाल के कर कमलों द्वारा विधि अनुसार मूर्ति का अनावरण करके पूजन किया गया। राज्यपाल महोदय ने अपने भाषण में कहा कि मूर्ति के अनावरण के साथ विद्यालय का जो शुभारम्भ हो रहा है यह एक विशिष्ट बात है। यह विद्यापीठ अपने प्रान्त में अवश्य ही सफल होवेगी। राज्यपाल महोदय ने आगे मालवीय भारती मन्दिर की गतिविधियों की प्रशंसा करते हुए वैद्यराज जी के बारे में कहा कि एक मन्दिर का हजारों रुपये लगाकर जीर्णोद्धार करके जो संस्था कायम की है। यह उनके त्याग व तपस्या का फल है।

—मन्त्री

सरकारी आयात नीति—

आपको सूचनार्थ निवेदन है कि सरकार ने अप्रेल ६० से सितम्बर ६० तक की अवधि के लिये आयात नीति का निर्धारण कर दिया है। तदन्तर्गत आयात के लिये आवेदन पत्र देने की अन्तिम तिथि १५ अगस्त ६० है, किन्तु १५ अगस्त को सार्वजनिक अवकाश होने के कारण आवेदन-पत्र १४ अगस्त ६० तक यथास्थान पहुँच जाने चाहिये।

आयात के लिए भेजे जाने वाले आवेदन-पत्र के साथ अपने क्षेत्र के डायरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज से प्राप्त एक एसेन्सीशलिटी सर्टिफिकेट भेजना आवश्यक होता है। इस सर्टीफिकेट के लिये डायरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज के यहां आवेदन-पत्र देने की अन्तिम तिथि १५ जून ६० है।

यदि आप इस विषय में रुचि रखते हों तो कृपया उक्त दोनों तिथियों को ध्यान में रखकर यथावसर आवेदन-पत्र यथास्थान भेज दें। इस विषय में आप अन्य जो भी सूचना प्राप्त करना चाहें इस कार्यालय को सूचना कर दें। हम सदैव आपकी सेवा के लिये तत्पर हैं। —मन्त्री

अ० भा० देशी औषधि निर्माता संघ।
चांदनी चौक, दिल्ली-६

+ + +

मालवीय जी के साथ विश्वासघात—

वाराणसी विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज को मेडीकल कालेज में रूपान्तर कर देना स्वर्गीय पूज्य मालवीय जी के साथ विश्वासघात करना ही कहा जायगा। मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की स्थापना संख्या बढ़ाने के लिये न करके प्राचीन विद्या व संस्कृति की सुरक्षा सिद्धान्त व किसी ध्येय से की थी। दानियों ने जो दान दिया था वह भी प्राचीन संस्कृति, आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, संस्कृत विद्याओं के उत्कर्ष के लिये दिया था। उस समय से आज तक कार्य तदनुकूल ही चलता रहा।

यदि महामना मालवीय जी की इच्छा केवल ऐसे विज्ञान को प्रोत्साहन देने की होती जिससे कि धन लूटने का अवसर मिले, तो वे उसी समय एक बहुत अच्छा मेडीकल कालेज खोल सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उनको तो भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की रक्षा करनी थी।

आयुर्वेद कालेज की स्थापना उस समय की गई थी, जब वहां के स्नातकों के लिए कहीं भी सरकारी नौकरियां नहीं थीं। क्या उस समय के वहां के स्नातक जीविका से वंचित रहे? क्या उनका लक्ष्य केवल नौकरी करना ही था? उत्तर में कहना पड़ेगा कि ऐसा नहीं था। तभी प्रायः इस संस्था की स्थापना किसी सिद्धान्त के आधार पर ही हुई थी। यदि उन सिद्धान्तों की अवहेलना इसके अधिकारी गण अब कर रहे हैं तो उनका यह कार्य निश्चय ही पूज्य महामना मदनमोहन जी मालवीय के साथ विश्वासघात करना है। अधिकारियों का विश्वास है कि यहां के स्नातकों को अब अधिक पैसा और सम्मान मिलेगा। यह कोरा भ्रम है। अपने सिद्धान्त से गिरे हुए को कहीं भी आश्रय नहीं मिलता है और न उसकी कहीं प्रतिष्ठा ही होती है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' का सिद्धान्त है, आयुर्वेदिक कालेज को मेडीकल कालेज का जामा पहनाना क्या श्रेयस्कर हो सकता है। विश्वविद्यालय के लिये, दानदाताओं के लिये भी यह एक धोखा है, जिन्होंने अपनी प्राचीन संस्कृति व शिक्षा के रक्षार्थ और विकासार्थ योग दान दिया है। उन्हें भी इस परिवर्तन से सन्तोष नहीं होगा अतः अधिकारियों को इस पर पुनः विचार करना ही चाहिये।

—कविराज श्री रामनाथ शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
प्रोफेसर गुरुकुल आयु० कालेज, हरिद्वार।

+ + +

विश्व कल्याण के पथ पर—

कुछ समय से काशी हि० वि० वि० के आयुर्वेदिक कालेज के टूटने के समाचार सुनकर आयु-

वेंद जगत में बड़ी उथल-पुथल मच गई और चारों ओर बचाओ! बचाओ!! की आवाज ही सुनाई देने लगी। मैं तो समझता हूँ कि काशी हि० वि० वि० के वाइस चांसलर श्री वेणीशंकर झा तथा रजिस्ट्रार श्री एस० एल० दर एवम् प्रकाण्ड विद्वान् डा० उडुप्पा आदि महानुभावों ने युग की पुकार के अनुसार आयुर्वेद कालेज में नवीन एम० बी० बी० एस० व पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स खोलकर आयुर्वेद को नवजीवन प्रदान किया है। विचारों की संकीर्णता और व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के कारण ही आज तक आयुर्वेद का वास्तविक विकास स्वतन्त्र भारत होने पर भी नहीं होने पाया।

वास्तविक सुर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव दूर हो जाता है। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय ने "मौडर्न मेडीकल कालेज"—की स्थापना कर आयुर्वेद जगत् के अन्तरिक्ष में मानो सूर्य का उदय किया है जिसके दिव्य प्रकाश से कालान्तर में एक भारत ही क्या सम्पूर्ण विश्व ही एक बार पुनः जगमगा उठेगा। भारतीय मैडीकल कौंसिल ने जो महान उदारता इस स्थापित होने वाले नवीन "मोडर्न मेडीकल कालेज"—की डिग्रियों को मान्यता देनी स्वीकार की—एतदर्थ मैं उसे हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता है और अनुभव करता है कि अब भारत की यह मिश्रित राष्ट्र चिकित्सा पद्धति कालान्तर में सम्पूर्ण विश्व में एक बार पुनः देदीप्यमान होकर रहेगी।

अब उपयुक्त समय आ गया है, जब भारत के समस्त चिकित्सालय एक रूप हों, मौडर्न मैडीकल कालेज बनकर रहेंगे। स्नातकों की सभी मांगें स्वतः ही पूर्ण हो जायेंगी और परस्पर के मतभेद मिटकर परस्पर का प्रेम बढ़ जायेगा। युग की मांग है कि राष्ट्र के चहुँमुख विकास के लिए सभी निःस्वार्थ भावनाओं का एकीकरण हो और एक साथ सब मिलकर राष्ट्र कल्याण में तन, मन,धन से योग दें।

विज्ञान कहीं भी हो उसका दरवाजा सबके लिए समान रूप से खुला हुआ है। उस रहस्यमय मनोहर पुष्पवाटिका से, हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर सुन्दर पुष्पों को चुन-चुन कर अपने राष्ट्रागार को सजाना है और उसे सभी प्रकार रमणीक व आकर्षक बनाना है। एतदर्थ हमें अपने समस्त मतभेदों को भुलाकर परस्पर मिलकर कार्य करना है, क्योंकि "संघे शक्ति कलयुगे"—की मार्मिकता तभी समझ कर पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। अतः हिन्दू वि० वि० काशी के इस नवीन कोर्स को अब हमें हृदय से अपनाना चाहिये।

यह सर्वविदित है कि दीर्घकाल से काशी हिन्दू वि० वि० के आयु० कालेज के छात्रों को बार बार हड़ताल और नाना प्रकार के उपद्रवों से तंग आकर विश्वविद्यालय के कर्णधारों ने सब तरह खूब सोच विचार कर इस बिकट समस्या का सही हल निकाल कर छोड़ा, जिससे छात्रों की भी सभी मांगें पूरी हो जायेंगी और आयुर्वेद का भी पूर्ण विकास व उसकी रक्षा होकर एक बार पुनः वह अपने अतीत गौरव को विश्व में प्रदर्शित व प्रतिष्ठित कर सकेगा।

उक्त विश्वविद्यालय में छात्रों की क्रमिक प्रवृत्ति का गम्भीरता से मनन कर इस आ० कालेज को उन्नत करने के लिये इसे "मोडर्न मेडीकल कालेज" के नवीन कोर्स में एम० बी० बी० एस० की ५ वर्ष की उपाधि कर दी गई है। इसमें स्नातकों का स्तर आयुर्वेद साथ होने के कारण वर्तमान एम०बी०बी० एस० से बढ़कर ही है एवम् अधिकार की दृष्टि से भी वर्तमान एम० बी० बी० एस० से कम नहीं है। केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित विशिष्ट डाक्टर महोदय भी—'आयुर्वेदिक चिकित्सा ही भारत के लिये सर्वथा उपयुक्त हो सकती है'—ऐसा मानते हैं, परन्तु उसकी वर्तमान पाठ्य-पद्धति से वे सशंकित हैं और इस नवीन कोर्स के अपनाने से उनको भी सन्तोष हो जाता है।

इस नवीन कोर्स वाले एम० बी० बी० एस० के अन्तर्गत आयुर्वेद की लघुत्रयी का ज्ञान हो जायेगा और जो स्नातक आगे चलकर आयुर्वेद को विशेष

योग्यता प्राप्त करना चाहेंगे उनके लिये पोस्ट ग्रेजुयेट--कोर्स खोला जा रहा है। इस प्रकार संकुचित आयुर्वेद के प्रकाश को विश्व में पूर्ण प्रकाशित होने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया गया है। इस पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स में नवीन एम० बी० बी० एस० के अतिरिक्त इस यूनीवर्सिटी के पुराने कोर्स के स्नातक ए० एम० एस० तथा ए० बी० एम० एस० भी प्रविष्ट हो सकेंगे। इनमें जिन्हें किसी मान्यता प्राप्त आयुर्वेद कालेज में कम से कम २ वर्ष अध्यापक का कार्य करते हो गया होगा वे एम. एस. सी. (आयुर्वेद) की प्राईवेट परीक्षा भी दे सकेंगे, किन्तु उसके बाद ३ माह तक कालेज में रहकर प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ साथ निबन्ध लिखना अनिवार्य होगा। जो एम० बी० बी० एस० अन्य किसी भी यूनीवर्सिटी के हों, जिनके कोर्स में आयुर्वेद न रहा हो, वे भी प्रविष्ट हो सकेंगे, किन्तु उन्हें यहां रहकर एक वर्ष का आयुर्वेद का कण्डेन्सड कोर्स पहिले पढ़कर पास करना होगा। अन्य यूनीवर्सिटी, राजकीय आयुर्वेदिक संस्थाओं के स्नातक भी जिसमें ५ वर्ष से कम का कोर्स न हो, प्रविष्ट हो सकेंगे यथा ए. एम. एस., ए. बी. एम. एस., बी. आई. एम० एस०, बी. एम. बी. एस. आदि के लिये २ वर्ष का एलोपैथी का कण्डेन्सड कोर्स खोला जा रहा है जिसे पढ़कर वे एम. बी. बी. एस. हो सकेंगे।

पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स में दो उपाधियां हैं, (१) एम० एस सी० (इन आयुर्वेद), (२) पी एच० डी० (इन आयुर्वेद) जो क्रमशः १५ माह और २ वर्ष की अवधि की हैं। एम० एस सी० पास करने बाद ही पी एच० डी० में प्रवेश हो सकेगा। इसमें आर्ष संहिता ग्रन्थों का अध्ययन, क्रियात्मक ज्ञान तथा अनुसन्धान प्रधान है। इस प्रकार काशी हिन्दू यूनीवर्सिटी ने आयुर्वेद की रक्षा, आयुर्वेद का स्तर ऊंचा उठाने और आयुर्वेद के विश्व-व्यापी प्रचार के लिये उच्च और आदर्श योजना ही तैयार की है।

*

भूल-सुधार

नारी-रोगाङ्क विशेषांक में पृष्ठ २०४ के प्रथम कालम पर सबसे नीचे प्रयोग प्रेषक का नाम छपने से रह गया है जो इस प्रकार से है—

कविराज श्री डी.पी. मालाकार आयुर्वेद रत्न T.T.c.
जनपद आयु० चिकित्सालय,
दामाखेडा, तह. बलौदा बाजार, (रायपुर)

पञ्चकर्म-विज्ञान

—लेखक—

आचार्य श्री शिवकुमार 'व्यास'
५, देवनगर, करौलबाग, दिल्ली।

सादर समर्पित

स्वर्गीय पितामह

राजवैद्य श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी व्यास

की पुण्य स्मृति में

जिनकी गोद में बैठकर मैंने अपने बाल्यकाल का स्वर्णिम समय बिताया।

—शिवकुमार व्यास।

पञ्चकर्म विज्ञान के लेखक-

आचार्य श्री शिवकुमार 'व्यास' प्रभाकर
साहित्यालंकार, भिषगाचार्य धन्वन्तरि
D. I. M. S.

निवेदन

'पंचकर्म' विषयक लेखन सम्भवतः कुछ महानुभावों की उपेक्षादृष्टि का भाजन बने, कारण कि उनकी दृष्टि में पंचकर्म का क्रियात्मक (PrecticaI) ज्ञान आवश्यक है। मुझे भी इस विषय में कई विद्वानों के मुखारविन्द से कुछ शब्द सुनने पड़े जिनसे स्पष्ट हो रहा था कि पंचकर्म विषयक लेखन से कोई लाभ विशेष नहीं, हां पंचकर्म का व्यवहारिक ज्ञान कर उसे लिखना लाभप्रद है। इतना सुनने पर भी मैंने इस विषय पर लिखा।

आपको निवेदन कर दूं कि पंचकर्म का प्रयोग कोई ऐसा कार्य नहीं जो सम्भव न हो। जो व्यवहार करने से अति भय खाते हैं उनसे मेरा यही निवेदन है कि इस विषय में शास्त्रोक्त सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन करें और फिर वे स्वयं देखें कि पंचकर्म का प्रयोग कितनी सरलता से करा सकते हैं। मेरे स्वर्गीय पितामह अवस्थानुसार स्वेदन वमन आदि कराते थेएक महात्मा (स्वामी जी) का शरीर पूर्ण पंचकर्म कराकर शुद्ध किया और वह सभी शास्त्रोक्त नियमों का पालन करते हुए किया गया। वह स्वामी जी अभी तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैंने भी शास्त्रों के नियमों के आधार पर ही स्नेहन स्वेदन कराया और आशातीत सफलता प्राप्त की। अतः मेरी दृष्टि में साधन उपलब्ध होने पर सिद्धांतों का जानने वाला चिकित्सक पंचकर्म कराने में अवश्य सफल हो सकता है।

एक निवेदन और कर दूं कि इसके लिखने का मेरा मुख्य ध्येय विद्यार्थी बन्धुओं के लिए 'पंचकर्म' विषयक ज्ञान एक स्थान पर विस्तृत रूप में संकलित करना रहा। परीक्षा का आवश्यक विषय होने से एक स्थान पर विस्तृत साहित्य होना चाहिये और सम्प्रति ऐसा कोई साहित्य है नहीं–इसी अभाव की पूर्ति के लिए मैंने प्रयत्न किया है। चिकित्सक बन्धु इसमें शास्त्रोक्त नियमों के अतिरिक्त कुछ अनुभव सिद्ध, साधारण दिखाई देने वाली, परन्तु आवश्यक बातें पाएंगे जो उन्हें पंचकर्म कराते समय सहायक सिद्ध होंगी। इन अनुभवों में से बहुत कुछ बताने का श्रेय माननीय पिता जी पं० भूदेव जी व्यास आयुर्वेद शास्त्री को है–जिन्होंने समय समय पर यह अनुभव सुनाए।

भूल करना मानव स्वभाव है और इसमें भी भूल रह सकती हैं–ऐसी भूलों को सुधारने के लिए आपके परामर्श का मैं हृदय से स्वागत करूंगा। इससे यदि किसी को थोड़ा भी लाभ हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा और भविष्य में इसका दूसरा भाग आपकी सेवा में प्रस्तुत करूंगा।

अन्त में मैं उन सभी ज्ञात या अज्ञात विभूतियों के प्रति सादर आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ जिनके द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में थोड़ा भी ज्ञान मुझे मिला हो।

होलिकोत्सव, सम्वत् २०१६
व्यास निवास ५, देवनगर,
करौल बाग, नई दिल्ली।

विनीत—
शिवकुमार व्यास

पञ्चकर्म विज्ञान

"अष्टांग आयुर्वेद" आप सुनते ही रहते हैं। यह 'अष्टाङ्ग' शब्द आयुर्वेद के आठ अङ्गों का द्योतक है। इनमें 'कायचिकित्सा' नामक एक विशेष अङ्ग है—जिसे शरीर की चिकित्सा कह सकते हैं। पञ्चकर्म का सम्बन्ध भी इस चिकित्सा से ही है।

चिकित्सा—

प्रश्न उठता है कि चिकित्सा किसे कहते हैं? लिखा है—

'याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरः धातवः समा।
सा चिकित्सा विकाराणाम्............॥'

अर्थात्—जिस क्रिया द्वारा शरीर की धातुऐं समावस्था में हो जायें, वह विकारों की चिकित्सा है और विकार धातुओं की विषमता को कहते हैं। (विकारो धातु वैषम्यम्) तथा समता को आरोग्य या स्वस्थावस्था। स्वास्थ्य के लक्षण बताते हुए सुश्रुत ने स्पष्ट ही कर दिया है—

'समदोषः समाग्निश्च समधातुमलःक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स स्वस्थ्यमेतिभिद्यते॥'

कि समावस्था ही आरोग्य है और इस समावस्था के लिए ही चरक ने बताया है—

'चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानाम् धातुवैकृते।
प्रवृतिर्धातु साम्यार्था चिकित्सोत्यभिद्यते॥'

और इस 'प्रवृत्ति' के लिए ही क्रिया करनी पड़ती है। जिसके 'साधन' बताए गए हैं, जिनके प्रयोग से विषमता दूर होकर 'धातुसाम्य' हो जाता है, आरोग्य हो जाता है।

द्विविध चिकित्सा—

यह साधन दो सिद्धान्तों पर आधारित हैं, प्रथम दोषों को जो विषमता उत्पन्न किये हैं शमन करने पर और दूसरे उन दोषों का शोधन करते हुए। इन सिद्धान्तों के अनुसार ही क्रमशः द्विविध चिकित्सा कही गई है।

१—संशमन चिकित्सा २—संशोधन चिकित्सा

यहां हमारा प्रयोजन दूसरी पद्धति से ही है जिसमें दोषों को शरीर में ही शान्त न करते हुए शरीर से बाहर निकाला जाता है और यह कार्य सम्पादन होता है—'पञ्चकर्म' द्वारा।

पञ्चकर्म—

'पञ्चकर्म' कौन कर्म हैं? या 'पञ्चकर्म' के नाम बतायें? तदर्थ वाग्भट्ट का यह सूत्र ध्यान में रखना ही होगा—

'वमन विरेचनस्थापनानुवासन नावनैः।
पंचभिरपि ये कर्मीनः॥'

अर्थात्—१. वमन, २. विरेचन, ३. आस्थापन, ४. अनुवासन, ५. नावन (नस्य) 'पञ्चकर्म' कहे जाते हैं। इन पाचों द्वारा ही शरीर का शोधन हो सकता है। इन सबका अलग अलग वर्णन करना ही हमारा प्रयोजन है।

'पञ्चकर्म' द्वारा चिकित्सा की अपनी विशेषता है जो 'संशमन' में नहीं। एक बार जो रोगोत्पादक दोष हैं उनको 'पञ्चकर्म' द्वारा ठीक कर देने से उनसे पुनः रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती। कारण यह है कि पञ्चकर्म से दोषों का शोधन हो जाता है। अतः जब दोष कुपित हो नहीं रहे तो रोग कैसे रह सकते हैं—कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वाग्भट्ट ने एक सूत्र देकर इस बात को स्पष्ट कर दिया है—

'दोषा कदाचित कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।
ये तु संशोधने शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥'

अर्थात्--जो दोष लंघन और पाचन (संशमन) द्वारा जीते जाते हैं उनका पुनः कुपित होना सम्भव हो सकता है परन्तु जो संशोधन द्वारा अर्थात्--'पञ्चकर्म' द्वारा शुद्ध (प्रकृतावस्था में) हो जाते हैं वह पुनः प्रकुपित नहीं हो सकते।

दूसरे, शरीर में जो भी दोष रोग को उत्पत्ति करते हैं उन (वात, पित्त, कफ) का दूष्यादि के साथ समवाय शरीर में दो प्रकार से हो सकता है-

१. प्रकृति सम समवाय (Physical relation)

२. विकृति विषम समवाय (Chemical relation)

यदि प्रकृति सम समवायावस्था में दोष दूष्यादि हैं तब तो चिकित्सा सरल है परन्तु यदि दोष-दूष्य का सम्बन्ध विकृति विषम समवायात्मक हुआ तो पञ्चकर्म में ही वह शक्ति है कि उन दोषों को समावस्था में ला सके। कारण कि शोधन के समय दोषों के विघट्टन से उनका समवाय प्रकृति समावस्था में हो जाता है। दोष चाहे वृद्ध हों अथवा क्षीण, निराम हों या साम, अधःगामी हों या ऊर्ध्वगामी, अथवा तिर्यक् गामी, स्वस्थान में हों अथवा स्थानान्तर में, 'पञ्चकर्म' में सभी दोषों को शुद्ध कर देने की सामर्थ्य है।

यह विशेषताएें ही 'पञ्चकर्म' के वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट कर रही हैं और चिकित्सक को सुमार्ग दिखा रही हैं कि यदि पञ्चकर्म द्वारा चिकित्सा की जाए तो वह चिकित्सा वास्तव में ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त द्वारा की गई चिकित्सा समझी जायगी।

पञ्चकर्म योग्य अवस्था--

क्या प्रत्येक अवस्था में ही 'पञ्चकर्म' का प्रयोग किया जाये? इसके लिये कोई निश्चित नियम नहीं। जो रोगी 'पञ्चकर्म' का प्रयोग कर सकने योग्य हो उसका 'पञ्चकर्म' करा देना चाहिए। हां, एक सूत्र इस ओर अवश्य इंगित कर रहा है-

'तेषामपहरणं च बहुदोष शोधनम्।
मध्य दोष लंघनं पाचनं, अल्प दोषे संशमनमिति॥'

जिसके अनुसार 'बहुदोष' में तो शोधन अर्थात् 'पञ्चकर्म' आवश्यक ही है। अतः रोगों में चिकित्सा करते हुए यों तो 'पञ्चकर्म' का प्रयोग दोषों की अल्प अथवा मध्यावस्था में भी किया जा सकता है--परन्तु बहुदोष में तो 'पञ्चकर्म' ही आवश्यक है।

कल्प और पञ्चकर्म--

यह तो हुआ रोगों (विषमावस्था) की चिकित्सा में 'पञ्चकर्म' का विशेष स्थान, अब आप देखिये पञ्चकर्म का दूसरा पहलू। पञ्चकर्म का प्रयोग केवल रोगावस्था में ही किया जाता हो ऐसी बात नहीं, चरक में चिकित्सा के दो प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य रोगनुतः॥'

और क्योंकि पञ्चकर्म चिकित्सा का साधन है, अतः उसे चिकित्सा के द्विविध प्रयोजनों को पूरा ही करना होगा और इसे पञ्चकर्म पूरा करते हुए स्वस्थावस्था में भी 'कल्प' से पूर्व शारीरिक शोधन में प्रयुक्त होता है।

'कल्प' क्या है-यह बताना तो हमारा मनोरथ नहीं, हां, यहां इतना अवश्य कहना चाहिए हैं कि कल्प का, या सरल शब्दों में कहिये तो रसायन, बाजीकरण का प्रयोग पञ्चकर्म के पश्चात् ही करना चाहिये। क्यों? इसका कारण बताते हुए सुश्रुत में लिखा है—

'अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रसायनोविधिः।
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रंग इवाफलः॥'

अर्थात्--अशुद्ध शरीर (जिसका शोधन न किया गया हो) में रसायन वाजीकरण (कल्प) का प्रयोग करने से इतना ही लाभ होता है जितना कि मलिन वस्त्र को रंग देने से रंग नहीं चमक पाता।

'पंचकर्म' शरीर रूपी वस्त्र को धोकर साफ कर देता है। जिसके किये बिना कदापि आशा नहीं की जा सकती कि कल्प द्वारा इस पुराना शरीर छोड़ कर नवीन शरीर प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार देखा जाता है कि गृह के पुनर्निर्माण के लिये खण्डहरों को ढालना ही पड़ता है अन्यथा उसी पर बनाया गया भवन उतना सुन्दर मजबूत तथा स्थायी नहीं बन सकता, उसी प्रकार बिना शोधन किये हुए शरीर का नव निर्माण अर्थात् कल्प करना भी उतना फलप्रद, लाभकारी एवं आयुष्य नहीं हो सकता।

अतः स्पष्ट है कि पंचकर्म केवल रोगों के नाश के लिए ही नहीं अपितु शरीर का वृंहण एवं पोषण करने के लिए भी आवश्यक है।

रोग द्वारा शोधन—

कई बार बिना 'पंचकर्म' कराए भी शरीर का शोधन हो जाता है और वह होता है किसी रोग विशेष द्वारा। रोग द्वारा शुद्ध हुए शरीर का भी रोग के पश्चात् वृंहण होते देखा जाता है।

'विशूचिका' इसका एक स्पष्ट उदाहरण है। इसमें जब वमन विरेचन आदि हो चुकने के बाद शरीर का शोधन हो चुका होता है तब वह पंचकर्म द्वारा शुद्ध शरीर के समान हो जाता है। इन दोनों प्रकार के शोधन में अन्तर केवल इतना रहता है कि रोग के द्वारा हुए शोधन की अवस्था में दोष स्वयं इतने प्रकुपित हुए रहते हैं कि वह शरीर में नहीं ठहर सकते अतः बिना प्रवृत्त किए ही वह स्वयं उत्क्लिष्ट हो कर शरीर से बाहर निकल जाते हैं और संशोधन हुए के समान ही रोगी निर्दोष होकर स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। यही कारण है कि विशूचिका के पश्चात् प्रायः रोगी रोगोपूर्व अवस्था से भी अच्छा स्वास्थ्य लाभ कर लेता है। यह उसी अवस्था में होगा जब कि उसके दोषों का निर्हरण ठीक प्रकार से हो चुका है। इन्हीं दोषों के निर्हरणार्थ आयुर्वेद विशूचिकावरोध का विरोध करता हुआ आदेश देता है कि 'विशूचिका में रोगी के बल को देख कर वमन-विरेचन आदि रोकने का कोई उपचार न करें।' क्योंकि इन दोषों का निर्हरण होना ही शरीर के लिये हितकर है।

स्नेह स्वेद और पंचकर्म—

पंचकर्म के साथ स्नेहन स्वेदन-को क्यों मिलाया जाता है। जब वमन विरेचन आदि 'पंचकर्म' हैं तो इनके प्रयोग के पूर्व स्नेह स्वेद का प्रयोग क्यों किया जाता है? इसके समाधानार्थ यही कहा जा सकता है कि वास्तव में पंचकर्म में स्नेह स्वेद नहीं गिने गए और न ही यह 'पंचकर्म' हैं तो भी समझिए कि पंचकर्म की आधार शिला यही हैं। कारण यह कि बिना स्नेह-स्वेद कराए पंचकर्म नहीं कराए जा सकते। लिखा भी है—

> स्नेह स्वेद विनभ्यास्य कुर्यात्संशोधनं तु यः।
> दारु शुष्क मिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते॥

अर्थात्—स्नेहन और स्वेदन के कराये बिना ही जो संशोधन करता है उसका शरीर उसी प्रकार टूट जाता है जिस प्रकार शुष्क लकड़ी को मोड़ने का प्रयास करने से वह लकड़ी टूट जाती है।

और भी—

> कर्मणां वमनादीनाम् पुनरप्यन्तरऽन्तरे।
> स्नेह स्वेदो प्रयुञ्जीते, स्नेहमान्ते बलाय च॥

अर्थात्—वमनादि प्रत्येक कर्म के पश्चात् स्नेह स्वेद अवश्य करना चाहिए और अन्त में बलार्थ स्नेहन करना चाहिए।

इन दो सूत्रों को देख कर ही ऊपर की शंका का समाधान हो जाता है। ये सूत्र ही इस बात का स्पष्ट उत्तर दे रहे हैं कि स्नेह स्वेद का पंचकर्म से क्या सम्बन्ध है।

ये सूत्र दो बातें स्पष्ट कर रहे हैं। प्रथम तो यह कि पञ्चकर्म करने से पूर्व स्नेहन और स्वेदन कराना ही चाहिए और दूसरे यह कि वमन आदि करते हुए बीच बीच में भी स्नेहन स्वेदन कराना चाहिए;

ये दोनों बातें ऊपर के सूत्रों से सिद्ध हैं और क्यों का उत्तर भी स्वयं सूत्र ही दे रहे हैं। हम इनका कार्य-विधान (प्रक्रिया) बताते हैं जिससे इनकी विशेषता स्वयं सिद्ध हो जाएगी।

स्नेहन करने से दोष क्लिन्न हो जाते हैं। जो दोष साम होते हैं वह स्वेदन करने के बाद अति साम होजाते हैं और जो निराम (शुष्क) होते हैं वह स्नेहन के पश्चात् क्लिन्न हो जाते हैं। क्लिन्न वस्तु को ही अलग करना सम्भव होता है। शुष्क वस्तु अपने स्थान से हिलनी सम्भव नहीं—अतः शुष्क दोष स्नेहन से अलग हो सकने योग्य हो जाते हैं। अथवा सरलता के लिए कह सकते हैं कि स्नेहन से दोष फूल जाते हैं जिससे उनको निकालना सरल हो जाता है। अब स्वेदन किया जाता है, इससे क्लिन्न दोष मृदु, कोमल तथा द्रवीभूत हो जाते हैं, जो ताप के कारण कुपित हो जाते हैं और कुपित दोष चलायमान होजाते हैं, जिनको वमन विरेचनादि 'पंचकर्म' द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

इस सारे विधान को वाग्भट्ट ने एक सूत्र में ही बांध दिया है—

स्नेह क्लिन्ना कोष्ठगा धातुगा वा।
स्रोतोलीना ये च शाखास्थि संस्था॥
दोषा स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं।
नीता सम्यक् शुद्धिभिर्निर्ह्रियन्ते॥

अर्थात् कोष्ठ, धातु, स्रोत, शाखा, अस्थि में लीन होकर बैठे दोषों को स्नेहन के द्वारा क्लिन्न कर लेने के पश्चात् स्वेदन के द्वारा तपा कर पतले या द्रवीभूत कर लें। इस प्रकार वह दोष दुष्ट स्थानों से अलग हो कर स्वस्थान में आजाने पर वमन विरेचन आदि पञ्चकर्म द्वारा सुखपूर्वक बाहर निकल जाते हैं।

इस वर्णन को देखते हुए कौन शरीर क्रिया-विज्ञान-वेता यह कह सकता है कि दोष शरीर से कैसे निकल सकते हैं। यदि कोई कहे तो प्रथम इस एक सूत्र का ही मनन करना होगा और यह एक सूत्र ही पर्याप्त होगा उसकी शंका के समाधान के लिए।

स्नेह स्वेद का प्रयोग पञ्चकर्म से पूर्व ही किया जाए ऐसी बात नहीं। बल के लिये और अनेक रोगों के लिये भी इनका अवस्थानुसार प्रयोग कराया जाता है जिसका पृथक् अध्यायों में वर्णन होगा।

द्वितीय प्रकरण—

स्नेहन

स्नेहन का अर्थ है स्नेह-प्रयोग, जिससे शारीरिक रूक्षता का अन्त तथा शरीर में स्निग्धता का प्रसार होता है। इस स्नेहन क्रिया विशेष को आंगल भाषा में हम 'लुब्रीकेशन' (Lubrication) कह सकते हैं। जिन द्रव्यों द्वारा स्नेहन किया जाता है वह स्नेहक कहलाते हैं। यह द्रव्य गुरु, शीतवीर्य एवं सारक अर्थात् दोषों को सरका कर निकालने वाले होते हैं। चिकने-मन्द क्रिया करने वाले तथा सूक्ष्म अर्थात् स्रोतसों में प्रवेश कर सकने योग्य होते हैं। यह कोमल तथा पतले होते हैं। इन गुणों के विपरीत गुणोंयुक्त द्रव्य अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, रूक्ष, तीक्ष्ण, स्थूल, कठिन एवं सान्द्र गुणों से युक्त द्रव्य निरूक्षण कहाते हैं—यह शरीर में रूक्षता उत्पन्न करते हैं। वाग्भट्ट ने लिखा है—

गुरु शीत सर स्निग्ध मन्द सूक्ष्म मृदु द्रवम्।
औषधं स्नेहनं प्रायो विपरीतं विरूक्षणम्॥

चतुर्स्नेह—

घृत, तेल, वसा, मज्जा, चार 'श्रेष्ठ-स्नेह बताए

हैं। जितने भी द्रव्य स्निग्ध हैं या स्नेहक हैं—यदि उनका आंशिक विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें अवश्य ही उपर्युक्त चारों में से कोई न कोई है। या यों कहिए कि इन चारों में से एक कोई भी वस्तु जिस द्रव्य में विद्यमान न हो वह स्नेहक नहीं हो सकता। अतः शास्त्रकारों ने सरलता के लिए सार रूप का वर्णन कर दिया और इनको 'श्रेष्ठ-स्नेह' संज्ञा दी।

घृत की सर्व श्रेष्ठता—

इन चारों में भी घृत ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा आचार्यों का कथन है। लिखा है—

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा सर्व स्नेहोत्तमामता।

और फिर इसकी सर्वश्रेष्ठता का कारण बताते हुए अन्यत्र भी लिखा है कि—

एभ्यश्चैवोत्तमं सर्पि संस्कारस्यानुवर्तनात्।

अर्थात् घृत श्रेष्ठतम इसलिए है कि इसमें 'संस्कारानुवर्तन' नामक गुण है। न केवल 'संस्कारानुवर्तन' ही अपितु अन्य कई एक कारण भी घृत की सर्वश्रेष्ठता के ज्ञापक हैं जिनका वर्णन आगे करेंगे।

संस्कारानुवर्तन—

'संस्कारानुवर्तन' से अभिप्राय है कि अपने गुणों को त्यागे बिना ही संस्कारार्थ औषधियों के गुणों को अपने में धारण कर लेना। यह गुण घृत में है तैलादि में नहीं। हां तैलादि दूसरे द्रव्य के गुणों को तो अवश्य ले लेते हैं परन्तु अपने गुण छोड़ देते हैं। स्पष्टीकरणार्थ यहां एक उदाहरण अपेक्षित है, कि जब घृत को चित्रक द्वारा संस्कृत किया जाए जिसमें चित्रक रूक्ष और उष्ण होता है अतः कफ नाशक होता है और दूसरी ओर घृत शीत एवं स्निग्ध होने के नाते (घृत) वात पित्त शामक तथा कफवर्धक है। अतः स्पष्ट है कि दोनों के गुण एक दूसरे से विपरीत हैं और होना यह ही सम्भव जंचता है कि या तो घृत चित्रक के गुणों पर आधिपत्य जमा अपना प्रभाव दिखावे अथवा चित्रक घृत के गुणों को नष्ट कर देवे, परन्तु होता ऐसा नहीं, हमें यहां एक सुन्दर विरोधाभास मिलता है, जब कि चित्रक साधित घृत में दोनों के गुण रहते हैं और वह अपना अपना भिन्न भिन्न प्रभाव दिखाते हैं। दूसरी ओर तैलादि को लीजिए, उनमें ऐसा नहीं होता। हम चन्दनादि तैल को देखते हैं, जिसमें चन्दन शीत होता है और तैल उष्ण परन्तु चन्दनादि तैल में तैल की उष्णता नहीं रहती, वह चन्दन की शीतलता से दब जाती है और केवल चन्दन का शीत गुण रहने से ही चन्दनादि तैल दाह को शान्त करता है।

अन्य कारण—

यों तो घृत की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए 'संस्कारानुवर्तन' ही एक ऐसी सुदृढ़ शिला है जो हिलनी सम्भव नहीं, तो भी प्रसंगवश अन्य श्रेष्ठता ज्ञापक कारणों का वर्णन भी उचित जंचता है, अतः उनका भी अवलोकन करते चलते हैं।

घृत त्रिदोषघ्न होता है, लिखा है—

"स्नेहाद्वातं शमयति, शैत्यात्पित्तं नियच्छति।
घृतं तुल्य गुणं दोषं संस्कारस्तुजयेत्कफम् ॥"

और भी—

"सर्पिहि स्नेहाद्वातं शमयति,
संस्कारात्कफं, शैत्यात्पित्तमुष्णं च।"

पुनः घृत की सर्वश्रेष्ठता बताते हुए एक सूत्र अष्टांग संग्रह में दिया गया है—

"माधुर्यादविदाहित्वाज्जन्माद्येव शीलनात्।"

अर्थात्—मधुर, अविदाही तथा जन्म से ही उपयोग में आने के कारण घृत सर्वश्रेष्ठ है।

इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण जो घृत में ही है, अन्य स्नेहों में नहीं, इसकी सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध करने वाला है। वह यह कि घृत में शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों में पहुंचने की शक्ति तैलादि की अपेक्षा कई गुणा अधिक

होती है। अतः अन्य स्नेहों की अपेक्षा संयोजित द्रव्यों को भी शरीर के सूक्ष्मांगों तक अधिक सरलता से पहुंचा देता है, अतः सिद्ध है कि घृत सभी स्नेहों में सर्वश्रेष्ठ है।

घृत की सर्वश्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराने के उपरांत घृत एवं तैलादि के सामान्य गुणों का वर्णन करते हैं।

घृत के सामान्य गुण—

घृत बुद्धि, स्मरण शक्ति तथा ग्रहण शक्ति को बढ़ाता है। अग्नि एवं बल को बढ़ाने वाला आयुवर्धक एवं वीर्यवर्धक होता है। रस, शुक्र तथा ओज के लिये हितकर है। स्वर, वर्ण को निखारने वाला तथा दाहनाशक है। वात पित्त को शान्त करने वाला, बालकों तथा वृद्धों के लिये हितकारी है। क्षत क्षीण, विसर्प, शस्त्राघात तथा अग्निदोष से क्षीण को शक्तिदायक है। वात, पित्त, विषाक्तता, उन्माद, क्षय, आलस्य तथा जीर्ण ज्वर के लिये हितकर है। वीर्य में शीत एवं स्निग्ध गुण प्रधान हैं। वसा, मज्जा तथा घृत तीनों ही पित्तनाशक हैं तो भी पित्तघ्नतम घृत ही है। चारों स्नेहों में लघुपाकी घृत है। घृत से अधिक गुरुपाकी तैल, तैल से अधिक वसा तथा वसा से भी अधिक गुरुपाकी मज्जा है। चरक में एक सूत्र घृत के गुणों को बताते हुए दिया है—

"घृतं पित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम्।
निर्वापणं मृदुकरं स्वर वर्ण प्रसादनम्॥"

तैल गुण—

तैल वातनाशक है। बलवर्धक, त्वच्य तथा उष्ण है। यह गर्भाशय शोधक होता है। स्निग्ध तथा गुरुपाकी है। मांस की स्थिरता तथा दृढ़ता करने वाला है। तैल कफनाशक होता है या यों कहिये कि तैल कफवर्धक नहीं होता। चरक में सूत्र दिया है—

"मारुतघ्नं न च श्लेष्मवर्धनम् बलवर्धनम्।
त्वच्यमुष्णं स्थिरकरं तैलं योनि विशोधनम्॥"

वसा एवं मज्जा के गुण—

वसा एवं मज्जा के गुण बताते हुए लिखा है कि वसा का प्रयोग विद्ध, भग्न, चोट, भ्रष्टयोनि, कर्णरोग, शिरोरोग, पौरुष एवं व्यायाम के लिये हितकर है।

मज्जा बल, वीर्य, रस, कफ, मेद तथा अस्थियों की शक्ति को बढ़ाती है। यह स्नेहार्थ प्रयोग की जाती है।

स्नेह विभाग—

यों तो स्नेह एक ही प्रकार का है तो भी सरलता के लिये विभाग किए हैं, वह निम्न प्रकार से हैं—

योनि भेद से—

१—स्थावर योनि के जैसे तिल तैलादि।

२—जङ्गम योनि के जैसे गो घृतादि।

भैषज्य कल्पनानुसार—

१—अच्छापेय-जो स्नेहक निरे लिए जायें। किसी प्रकार के अन्य द्रव्यों का उनमें संयोग न हो, जैसे केवल गोघृत।

२—विचारणा-भोज्य पदार्थ एवं बस्ति के साथ जो स्नेह प्रयोग किए जाएं उनको विचारणा कहते हैं। यह विचारणा ६३ रस भेद से ६३ प्रकार की और रसाभाव से एक प्रकार की इस तरह ६४ प्रकार की हो सकती है। यह विचारणायें सात्म्य विचार कर ही प्रयोग की जाती हैं। इस प्रकार से हम एक स्नेह को ही अनेक रूपों में पाते हैं।

योगिक स्वरूपानुसार—

१—यमक-घृत तथा तैल का योगिक।

२—त्रिवृत-घृत, तैल वसा का मिश्रण।

३—महास्नेह-चतुर्स्नेह का योगिक।

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc., दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

(पूर्ण विवरण इसी की पुस्त पर देखें)

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

भाग ३४ अङ्क ५ मई १९६०

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से ही बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेज कर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक भी ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है। इस वर्ष नारी—रोगांक प्रकाशित किया गया है।

५—ग्राहक को किसी भी माह का अङ्क मिलने पर यह देख लेना चाहिए कि उससे पहिले माह का अंक मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला है तो तुरन्त अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखते हुए सूचित करना चाहिये। वर्ष के अन्त में या ४-६ माह बाद एक साथ ४-४, ६-६ अंकों की शिकायत लिखना उचित नहीं।

६—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रियायत नहीं करते। अतएव कमीशन या रियायत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

७—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिए, या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अंक और विशेषांक का वार्षिक मूल्य ५॥) की वी. पी. भेजने की आज्ञा देनी चाहिए।

विषय सूची

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः उच्यते ।। —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३४ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | मई
अङ्क ५ | | १६६०

आप्त-वचन--

❋ असंधारणीय वेग ❋

न वेगान्धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्र पुरीषयोः ।
न रेतसो न वातस्य न च्छर्द्याः क्षवथोर्न च ।।
नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः ।
न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च ।।

—चरक सू० ७।३-४

—बुद्धिमान् पुरुष को उत्पन्न हुए निम्न तेरह वेगों का धारण न करना चाहिये; मल, मूत्र, शुक्र, अधोवात, वमन, छींक, उद्गार (उर्ध्व वायु), जृम्भा, क्षुधा, पिपासा, अश्रु, निद्रा तथा श्रम-श्वास (हांफ) ।

[शुक्र के वेग के धारण के निषेध से समझा जा सकता है कि सन्तति-निग्रह का एतन्मूलक नव्योक्त उपाय कायटस इन्टरप्टस आयुर्वेद सम्मत नहीं है । अश्रु के वेग के निग्रह का निषेध इसलिये है कि रोने से हृदय का भार हलका होता है ।]

तन्त्र भूषण विकल्प

श्री धीरेशचन्द्र दीक्षित शास्त्री बी० आई० एम० एस०

विकल्प विचार—

महर्षि पतञ्जलि ने विकल्प शब्द का प्रयोग स्वप्रणीत वाणी मन एवं शरीर के मल को दूर करने वाले व्याकरण योग एवं आयुर्वेद शास्त्र के महाभाष्य योग दर्शन एवं चरक संहिता नामक तीनों ग्रन्थों में शास्त्रानुकूल परिभाषा में किया है। व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार के जो प्रयोग उपलब्ध होते हैं उनकी सिद्धि प्रत्यय आदि का विकल्प करके की गयी है। "नवेतिविभाषा" सूत्र के महाभाष्य में विकल्प का उल्लेख है। योगदर्शन में विकल्प चित्त की पांच वृत्तियों में से एक है। जिसकी परिभाषा है "शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्प" अर्थात् शब्द प्रमाणानुसार अभेद में भेद एवं भेद में अभेद का व्यवहार विकल्प है। आयुर्वेद शास्त्र में विकल्प कल्पना या उपयोगार्थ संस्कार अथवा केवल भेद अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कल्प शब्द कृप् सामर्थ्ये धातु से णयन्त कर पचादि गण को अच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। मेदिनी कोष में कल्प शब्द "कल्पो विकल्पे कल्पे दो सवर्चे ब्रह्म वासरे शास्त्रे च न्याये विधौ" इन अर्थों में प्रयुक्त होना है। अर्थात् केवल कल्प शब्द विकल्प अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। विशिष्ट कल्प ही विकल्प है। आर्षत्रयी में कल्पना की विशिष्टता से कल्प स्थान रचे गये है। यद्यपि सुश्रुत के कल्प में विष भेषज कल्पना ही है, चरक संहिता में कल्पना चतुष्क के चार अध्याय हैं। इनके अनन्तर ही कियन्त: शिरसीय अध्याय में ६२ मान विकल्पज रोगों का वर्णन कल्प से विकल्प विशिष्टता सूचनार्थ संभवत: किया है।

साध्यों का अल्प मध्यम व उत्कृष्ट ये त्रिविध विकल्प, सुखसाध्य, याप्य, असाध्य, प्रत्याख्येय असाध्य चतुर्विधविकल्प, तथा विकार हेतु अयोगा, वियोग मिथ्या योग रूप त्रिविध विकल्प एवं द्रव्य संयोग विभाग विस्तर रूप बहुविधि विकल्प आदि अनेकों विकल्पों का चरक संहिता में वर्णन है। विकल्प सम्प्राप्ति का तो आयुर्वेद में विशिष्ट स्थान है। जिसे "अंशांशबल विकल्पो विकल्पोऽस्मिन्नर्थे" से आचार्य ने कहा है। अन्य विकल्पों पर दृष्टिपात न कर सम्प्रति सुश्रुत तन्त्र के तन्त्र भूषण संज्ञक अध्यय में पठित रस दोष भेद विकल्प पर ही विचार करना अभीष्ट है। आचार्य सुश्रुत ने संहिता के अन्तिम रस भेद विकल्प स्वस्थ वृत्त तन्त्र युक्ति व दोष भेद विकल्प नामक अध्यायों को तन्त्र भूषण संज्ञा प्रदान की है। अन्तिम अध्याय में ६२ (बासठ) दोष भेदों का वर्णन है अत: शेष ६३ वां भेद समदोष सर्वरस सम्बन्धी स्वस्थताकारक होता है। अतएव स्वस्थवृत्त का मध्य में अध्याय आचार्य ने अवसर प्राप्त ग्रथित किया है। एवं तन्त्र युक्ति नामक अध्याय को विशेष रुप से विकल्प का अर्थ ज्ञान कराने के लिये साधारणतया सभी तन्त्र युक्ति का ज्ञान कराने के लिये रस दोषों में सम्पुटित कर मध्य में ग्रथित किया है। इसका मुख्य ध्येय रसों द्वारा दोषों की चिकित्सा ही अभिलक्षित होता है। आचार्य चरक ने उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही विमान स्थान रचा जिसमें रस विमान को प्राथमिकता दी और रस दोष आदि की शक्ति वैध कर सकें अतएव इन दोनों का ज्ञान ही तन्त्र भूषण है।

सुश्रुत, चरक, हारीत, कश्यप, संहिताओं में इसका महत्वपूर्ण निर्देश है—

> तस्मात्प्रसंगं संशम्य दोष भेद विकल्पनै:॥
> रोगं विदित्वो पचरेद्रसभेदैर्यथेरितै: ॥१॥
>
> (सु० उ० ६६)

> यस्स्याद्रस विकल्प ज्ञ: स्याच्च दोष विकल्प वित्॥
> नस मुह्येन्वि कारणां हेतु लिंगोपशान्तिषु ॥२॥
>
> (च० सू० २६–२७)

रसदोष विभागशः प्रकोपोपशमं प्रति ॥
भिषग्भिषऽक् एवं लभते विपर्ययमथान्यथा
(का० खि० ६ अ.१)

विकल्प की सुश्रुतोक्त परिभाषा "इदं वेदम्वेति विकल्पः" यथारसौदनः सघृता यवागू वी (अवश्यिति) अर्थात् यह अथवा यह इस प्रकार दो तुल्य पक्षों की स्वीकृति विकल्प कहलाती है । अथवा व्याकरणानुसार रूप में कुछ अन्तर होने पर भी अन्य शब्द की सापेक्षता स्वीकृति या योगानुसार रस और दोष भिन्न पदार्थों में अभेद या तुल्यता तथा अभिन्न तीन दोष व छै रसों में तिरेसठ तिरेसठ प्रत्येक के भेदों का चिकित्सा में व्यवहारार्थ शास्त्र प्रमाणानुसार विकल्प कहलाता है अथवा दर्पणकार की परिभाषा "विकल्पस्तुल्य बलयोर्विरोधश्चातुरी युतः" से रस भेद के तुल्य दोष भेद की बल तुल्यता कर चातुर्यय से तत्क्रम बल विरुद्ध पक्ष का स्थापन विकल्प होता है । जैसे प्रस्तुत रस दोष भेदों में वृद्ध तथा क्षीण सन्निपातों का विरुद्ध पक्ष स्थापन होगा एवं उपरोक्त शास्त्रान्तर एवं स्वशास्त्र प्रसिद्ध विकल्प का प्रकरण में अर्थ पूर्णतया स्पष्ट चरितार्थ होता है ।

२. रस दोष विचार—

साम्प्रत दोषों की रसों से तुलना करना है किन्तु रस छै एवं दोष तीन हैं अतः एक दोष के वृद्धि एवं क्षीणता कारक दो दो रस हों तभी तुलना हो सकती है किन्तु शास्त्र में तीन तीन रसों को एक एक दोष का वर्धक एवं क्षीणकर्ता कहा है इनमें से दो रसों का प्रधानतया ग्रहण करलेने से तथा इन दो में भी एक को स्व सम्बद्ध दोष का वर्धक व एक को अति वर्धक रख लेने से ही तुलना हो सकती है । जिन में कषाय कटु मधुर क्रमशः वातपित एवं कफ के सर्वांश में बर्धक अतएव अतिवृद्धिकारक है तथा शेष तीन में तिक्त अम्ल लवण क्रमशः वात पित्त कफ की वृद्धिकारक है । हारीत संहिता में भी दो दो रसों से ही एक एक दोष के प्रकोप का वर्णन है तथा क्षार को लवण के स्थान पर कहा है ।

कटु मधुर कषाय तिक्ताम्लकक्षाराः द्वयं द्वयं वात कफ प्रकोपणं द्वयं पित्तकरं प्रविष्टम् क्षारः कषायः पवन प्रकोपी मधुरौथतिक्तकः कफ कोपनं च कट्वम्लकौ पित्त विकारकारिणां ।

अर्थात् क्षार कषाय वात का, मधुर तिक्त कफ का एवं कटु अम्ल पित्त का प्रकोप करते हैं । अन्य तन्त्रों में तिक्त वातवर्धक कहा है अतः क्षार के स्थान पर तिक्त रस और तिक्त के स्थान पर क्षार जो कि लवण स्थानीय है रखने से सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है । यहां क्षार लवण स्थानीय है, यह आगे स्पष्ट होगा ।

प्रथम लवण को कफ प्रकोपक लिखा गया है तथा अम्ल को पित्त वर्धक किन्तु चरक एवं सुश्रुत ने इन दोनों को पित्त और कफ दोनों का वधक कहा है । अम्ल पित्त का तथा लवण कफ का प्रधानतया वर्धक है जो निम्न प्रमाणों से सिद्ध है । विशेषतया लवण का कफकारकत्व प्रतिपाद्य है ।

(१) क्षार को हारीत ने निम्न श्लोक में कफ कारक कहा है । उपरोक्त वाक्य में इसे पवन प्रकोपक कहा है, अतः पाठ परिवर्तन सिद्ध होता है । क्षार तो पित्तकारक ही है, कफकारक अग्रिम वचन से सिद्ध हो जाने के कारण पाठ परिवर्तन करने पर क्षार लवण स्थानीय सिद्ध होता है । क्षार का गुण क्षार और लवण को एक मानकर निम्न किया गया है ।

क्षारः बलैवं जनयति मुखे स्वादुरूष्णो विदाही ।
शूल श्लेष्मा रुचि मुशतृषा मूत्रकृच्छ्रोषणश्च ॥
आनाहं संजनयति पुनर्वन्हि सधुक्षणं स्यात् ।
एवम्प्रोक्त विदित गुणकैः कोविदैः क्षार वीर्यम् ।१।

अर्थात् क्षार शूल श्लेष्मा रूचि तृषा मूत्र का करता है ।

(२) प्रायो लवणं श्लेष्मलम् वृष्यंचान्यत्र सैंधवात् ।

प्रायः लवण कफकारक तथा अवृष्य होता है । सैंधव लवण इसका अपवाद है । यह गंगाधर

सम्मत चरक के पाठ में लिखा है।

(३) महाभूतों से उत्पत्ति के अनुसार अग्नि पृथ्वी से अम्ल व जल अग्नि से लवण रस की उत्पत्ति हुई है। जल पृथ्वी की तुलना में अग्नि को शांत करता है अतः अम्ल की तुलना में लवण अधिक कफकारक सिद्ध होता है।

(४) वातादि कर्मों में सुदान्त सेन से क्रमशः स्पष्ट "कषायोरसश्च कटवम्ल तिक्तारसाः रसौपटु स्वादु" रसों का निर्देश किया है, अतः कफ मधुर व लवण रस का है।

(५) पित्त विदग्ध अम्ल व कफ विदग्ध होने पर लवण रस का होता है। इनके प्राकृत रस कटु व मधुर क्रमशः होते ही हैं।

(६) अरुचि रोग के निदान में भी "लवणं च वक्र' माधुर्यं.........कफेन" कफज अरुचि में लवण व मधुर रस प्रमुख होता है।

(७) लवण से सामान्यतया रस प्रकरण में सामुद्र लवण का ग्रहण किया जाता है। जिसका गुण 'श्लेष्मलं' निघण्टु में वर्णित है।

सामुद्रं मधुरं पाके सत्तिक्तं मधुरम् गुरू।
नात्युष्णं दीपनं भेदि स क्षारमविदाहि च॥
श्लेष्मलंवातनुत्तिक्तंमरूक्षं नाति शीतलम्॥ (भा. प्र.)

(८) लवण अम्ल का विपाक क्रमशः मधुर व कटु होता है जो क्रमशः पित्त तथा कफ का कारक है।

(९) नागार्जुन ने लवण को उष्ण तीक्ष्ण [illegible] स्निग्ध गुण वाला होने से कफ स्राव व कफ प्र[illegible] कारक कहा है।

रसों का व दोषों का सम्बन्ध अग्रिम चक्र चिकित्सार्थ औषधि सहित दिया है। सर्व [illegible] का उपयोग स्वस्थताकारक है। अतः षट् रस आगे कहे रसानुसार वृद्धि एवं क्षीणता दोषों [illegible] रस योग एवं वियोग से क्रमशः होती है।

निम्न नियम चक्रों के ज्ञान के लिये स्मर[ण] रखना आवश्यक है।

(१) वृद्ध के २५ भेद सब रसों का उपयो[ग] करते हुये चक्र लिखित रसों का अति योग का[रण] से उत्पन्न होंगे तथा क्षीण के २५ भेद केवल च[क्र] निर्दिष्ट रसों के सेवन से उत्पन्न होंगे।

(२) हीन मध्य अति वृद्ध में "एकः प्रकुपितो दोष सर्वानेव प्रकोपयेत्" परिभाषा का प्रयोग होगा।

(३) शेष १३ भेदों में अति वर्धक एवं वर्धक रस मिलकर एक दोष को अति वृद्ध न करते हु[ए] वृद्ध ही करेंगे तथा शेष दोषों को उनके रस [के] अभाव में क्षीण भी करेंगे।

नोट--१४ वां भेद में लवण का वात का ही कारकत्व चिन्तनीय है। विज्ञजन प्रकाश डाल[ने] की कृपा करेंगे।

३—सौषधि रस दोष भेद विकल्प चक्र

रस	दोष			औषधि	
वृद्ध भेद १२	वृद्ध	सम	सम		
१. तिक्त	वा	पि	क	निम्ब	पर्पटक
२. अम्ल	पि	क	वा	आम्र	करमर्द
३. लवण	क	वा	पि	रोमक	लवण
	वृद्ध	वृद्ध	सम		
४. अम्ल तिक्त	वा	पि	क	सुरा	
५. अम्ल लवण	पि	क	वा	एडक	उषक
६. लवण तिक्त	क	वा	पि	त्रपु	सीसक

रस	दोष			औषधि
	अतिवृद्ध	वृद्ध	सम	
७. कषाय अम्ल	वा	पि	क	हस्तीदधि शुकमांस
८. कटु लवण	पि	क	वा	गोमूत्र स्वर्जिक
९. मधुर तिक्त	क	वा	पि	श्रीवास सर्जरस
१०. कटु तिक्त	पि	वा	क	कर्पूर जातीफल
११. कषाय लवण	वा	क	पि	समुद्र फेन
१२. मधुर अम्ल	क	पि	वा	वदर कपित्थ
वृद्ध सन्निपात भेद १३	अतिवृद्ध	वृद्ध	वृद्ध	
१३. अम्ल लवण तिक्त कषाय	वा	पि	क	शुक्रमांस औद्भिद
१४. अम्ल लवण कटु तिक्त	पि	क	वा	हस्तिनी दधि सौवर्चल
१५. मधुर अम्ल लवण तिक्त	क	वा	पि	गोमूत्र एक शफक्षीर
	अतिवृद्ध	अ० वृद्ध	वृद्ध	
१६. अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय	वा	पि	क	भल्लातक रूप्यजतु
१७. म० अ० ल० कटु० तिक्त	पि	क	वा	आम्र भृष्ट वार्ताकं
१८. म० अ० ल० तिक्त कषाय	क	वा	पि	औद्भिद तक्र
	अ० वृ०	म० वृ०	ही० वृ०	
१९. कषाय अम्ल तिक्त	वा	पि	क	शुकमांस
२०. कटु अम्ल लवण	पि	क	वा	रौप्य शिलाजतु
२१. मधुर लवण तिक्त	क	वा	पि	शम्बूक मांस
२२. कटु अम्ल तिक्त	पि	वा	क	अभिमूत्र
२३. कषाय तिक्त लवण	वा	क	पि	समुद्र फेन
२४. मधुर अम्ल लवण	क	पि	वा	हस्तिनी मांस
	सम	वृद्ध	त्रय	
२५. मधुर कटु कषाय	वा	पि	क	गोधामांस एरन्ड तैल
क्षीण भेद १२	क्षीण	सम	सम	
२६. म० अ० ल० कटु क०	वा	पि	क	यवक्षार तक्र
२७. म० ल० क० ति० कषाय	पि	क	वा	रसोन
२८. म० कटु अ० ति० क०	क	वा	पि	हरीतकी धात्रीफल
	क्षीण	क्षीण	सम	
२९. म० ल० कटु कषाय	वा	पि	क	गोमूत्र तैल
३०. म० कटु ति० कषाय	पि	क	वा	तिल गुग्गुल
३१. म० अ० कटु कषाय	क	वा	पि	काञ्जिक एरन्ड तैल
	अति क्षीण	क्षीण	सम	
३२. म० ल० कटु तिक्त	वा	पि	क	वार्ताक फल

रस	दोष			औषधि
३३. म० अ० तिक्त कषाय	पि	क	वा	उदुम्बर यवासुशर्करा
३४. अ० ल० कटु कषाय	क	वा	पि	सौवर्चल हस्तिनी दधि
३५. म० अ० ल० कषाय	पि	वा	क	सैंधव तक्र
३६. म० अ० कटु तिक्त	वा	क	पि	लशुन सुरा
३७. ल० कटु तिक्त कषाय	क	पि	वा	रोमक वाल बिल्व
क्षीण सन्निपात भेद १३	अति क्षीण	क्षीण	क्षीण	
३८. मधुर कटु	वा	पि	क	कुक्कुर शृंगालिमांस
३९. मधुर कषाय	पि	क	वा	तैल घनवन फल
४०. कषाय कटु	क	वा	पि	भल्लातक मज्जा हरताल
	अतिक्षीण	अतिक्षीण	क्षीण	
४१. मधुर	वा	पि	क	संतानिका गौ दुग्ध
४२. कषाय	पि	क	वा	पद्म कन्द
४३. कटु	क	वा	पि	चव्य
	अ० क्षीण	म० क्षीण	ही० क्षीण	
४४. मधुर कटु लवण	वा	पि	क	अपूप एणमांस
४५. मधुर कषाय तिक्त	पि	क	वा	गुडूची
४६. कटु अम्ल कषाय	क	वा	पि	अम्लवेतस
४७. मधुर लवण कषाय	पि	वा	क	ताप्य कासीस
४८. कटु अम्ल मधुर	वा	क	पि	शल्यमांस
४९. कटु तिक्त कषाय	क	पि	वा	कृष्ण गुरू सुरदारू
	सम क्षीण त्रय			
५०. अम्ल लवण तिक्त	वा	पि	क	हस्ति मृगमूष मांस
	वृद्ध	स्वस्थ	क्षीण	
५१. कटु लवण कषाय	वा	पि	क	अरूष्कासव रोमक
५२. कटु मधुर तिक्त	पि	क	वा	कटु अम्ल भक्तादि
५३. मधुर अम्ल कषाय	क	वा	पि	मस्तु तक्र
५४. लवण कटु तिक्त	पि	वा	क	अभिमूत्र
५५. अम्ल लवण कषाय	वा	क	पि	हस्तिनी दधि
५६. मधुर अम्ल तिक्त	क	पि	वा	गो घूमि सुरा
	वृद्ध	क्षीण	क्षीण	
५७. कषाय तिक्त	वा	पि	क	लवली फल गजघृत
५८. कटु अम्ल	पि	क	वा	चुक्र
५९. मधुर लवण	क	वा	पि	उष्ट्री क्षीर शरभमांस

—शेषांश पृष्ठ ६७५ पर

पुराणों में आयुर्वेद

[रसादि लक्षण, अग्निपुराण अध्याय २८१]

श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

धन्वन्तरि ने कहा —

अब रसादि लक्षण औषधियों के गुण कहूंगा सुनो। इनके रस, वीर्य और विपाक को अच्छी प्रकार जानने वाला वैद्य ही नृपादि की रक्षा कर सकता है।

मधुर, अम्ल और लवण—ये रस सौम्य (सोमजन्य) कहे जाते हैं और कटु, तिक्त तथा कषाय—ये रस आग्नेय हैं। द्रव्य का विपाक तीन प्रकार से होता है—कटु, अम्ल और लवण रूप से। वीर्य दो प्रकार का है—शीत और उष्ण अर्थात् द्रव्य या औषधि या तो शीतवीर्य होती है या उष्ण वीर्य। हे द्विजोत्तम! औषधियों का प्रभाव अनिर्दिष्ट होता है अर्थात् जिसका जो रस, वीर्य और विपाक निर्दिष्ट है उससे विपरीत भी उसका प्रभाव देखा जाता है अतः अनिर्दिष्ट माना है। जैसे मधुर, कषाय तथा तिक्त रस शीत वीर्य हैं शेष (कटु, अम्ल, लवण) उष्णवीर्य कहे गये हैं। किन्तु गुडूची तिक्त होने पर भी वीर्य में अत्युष्ण होती है। इसी प्रकार पथ्या (हरीतकी) कषाय होती है किन्तु वह भी उष्ण वीर्य है। मांस मधुर रस है तथापि उष्णवीर्य है। लवण तथा मधुर रस विपाक में मधुर माने जाते हैं। अम्ल रस भी विपाक में मधुर और उष्ण होता है। शेष रस (कटु, कषाय और तिक्त) विपाक में कटु होते हैं। वीर्यपाक में विपरीत प्रभाव होने से ही उसमें निश्चय हो सकता है जैसे मधु मधुर होने पर भी विपाक में कटु होता है। कषाय की जहां मात्रा निर्धारित नहीं की है वहां यह कल्पना करनी चाहियें कि द्रव्य १६ गुने जल में क्वाथ किया जाय और चार गुना रह जाय तब उसे पिया जाये।

स्नेह पाक में कषाय जल चार गुना होना चाहिये अर्थात् क्वाथ्य द्रव्य को चौगुने जल में डालकर पाक करें, चौथाई रहने पर छान लें। इसके संयोग से स्नेह पाक करे। जब अवलेह आदि बनाना हो तो द्रव्यों के बराबर स्नेह लेकर द्रव्य में मिलाले। प्रमाण में (तोल में) बराबर होने पर भी मात्रा में द्रव्य अधिक हो तो स्नेह और डाले अर्थात् बिना जल डाले ही द्रव्य स्नेह से पूर्ण हो जाना चाहिये, इस प्रकार उसको चलाता हुआ उसका पाक करे, इस प्रकार अवलेह औषधि बनती है ऐसा सुश्रुत ने कहा है। यह साधारण मात्रा कही गई है। मात्रा में किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता। अवस्था, काल, बल, वह्नि, देश, द्रव्य तथा रोग को देखकर औषधि मात्रा की कल्पना की जाती है।

प्रायः सौम्य रस धातु को बढ़ाने वाले समझे जाते हैं। मधुर रस तो विशेषकर धातुवर्धक है। जो द्रव्य दोषों और धातुओं के समान गुण वाला होता है वही वृद्धिकारक होता है। इसके विपरीत जो हो वह क्षयकारक है।

हे मनुजोत्तम! इस शरीर में तीन प्रकार का उपक्रम होता है—आहार, मैथुन और निद्रा, उसमें सदा यत्न होता है। इनके सेवन या असेवन से मनुष्य नाश को प्राप्त होता है।

क्षीण शरीर का बृंहण और स्थूल देह का कर्षण (कृश करने का उपाय) करना और मध्यम शरीर का रक्षण करना चाहिये। इस प्रकार शरीर के तीन भेद कहे हैं।

दो प्रकार का उपक्रम होता है—तर्पण, अतर्पण। इसलिये हितकर, परिमित और अच्छी प्रकार पचने वाला आहार करना चाहिये।

औषधि की पांच प्रकार की कल्पना होती है अर्थात् उनका प्रयोग पांच प्रकार से किया जाता है—रस, कल्क, शत, शीत और फाण्ट।

रस औषधि को निचोड़कर निकाला जाता है। कल्क जो आलोडित, घिसकर या पीसकर बनता है। शृत जो क्वाथ करके बनाया जाता है। शीत जो खौलते जल में डालकर छान लिया जाता है।

इस प्रकार इन कारणों से १६० प्रकार होते हैं जिन्हें जानता हुआ वैद्य अजेय होता है।

अग्नि को दीप्त रखने के लिये आहार शुद्धि आवश्यक है क्योंकि मनुष्यों का बल अग्नि के आधार पर ही स्थित रहता है।

सिन्धु सहित त्रिफला का सेवन सुन्दर वर्ण देने वाला है। इसी प्रकार जाङ्गल प्राणियों का मांस रस, सिन्धु युक्त दधि और कणा (पिप्पली) युक्त दूध भी रसों की अधिकता को समता में लाता है तथा वात की अधिकता को शांत करता है। ग्रीष्म शिशिर और बसन्त में क्रमशः तीव्र न्यून और मध्यम मर्दन (मालिश) करना चाहिये। ग्रीष्म में अधिक मर्दन हितकर है। पहले त्वचा का मर्दन करके तब मज्जा का इसके बाद स्नायुओं और रुधिरवाही नसों का फिर हड्डी और मांसल प्रदेशों का। स्कन्ध, बाहु, जंघा तथा जानुओं को शत्रु की तरह मसल डालना चाहिये। जत्रु और वक्ष को भी। शरीर के सन्धि स्थलों का भी खूब निपीडन करना चाहिये। इसके बाद इन सन्धि स्थलों को फैलाना चाहिये किन्तु अक्रम से नहीं।

बिना भोजन पचे तुरंत श्रम न करना चाहिये और भोजन के बाद शीघ्र पेय पदार्थों का पान न करें। दिन के चतुर्थ भाग से ऊपर आधे प्रहर तक व्यायाम न करें। स्नान शीतल जल से एक बार करें। उष्ण जल से थकान दूर होती है। हृदय में श्वास को न रोके। व्यायाम से काम का और मर्दन से वात का नाश होता है और स्नान करने से पित्त का नाश होता है। इन कर्मों (व्यायाम, मर्दन और स्नान) के अन्त में आतप दूध का सेवन हितकर है।

[वृक्षायुर्वेद, अग्निपुराण अध्याय २८३]

धन्वन्तरि ने कहा—

अब वृक्षायुर्वेद को कहूँगा। घर से उत्तर दिशा में प्लक्ष (पलखन) का वृक्ष शुभ होता है। बड़ पूर्व दिशा में, आम दक्षिण दिशा में और पश्चिम दिशा में पीपल वृक्ष शुभ होता है।

घर के समीप में दक्षिण दिशा में उत्पन्न हुये कटीले वृक्ष भी शुभ होते हैं। घर के पास उद्यान या क्यारियां होनी चाहिये उनमें फूलों के पौधे या तिल बोने चाहिये।

ब्राह्मण और औषधीश चन्द्रमा की पूजा करके वृक्षों को रोपना या बोना चाहिये। ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र (रोहिणी तीनों उत्तरा) वायव्य (वायु देवताक नक्षत्र-स्वाती) हस्त, ब्रह्मरुद्र और विष्णु देवता वाले (क्रमशः रोहिणी, अभिजित् –आर्द्रा, पूर्वा भाद्रपदा, श्रवण) और मूल ये नक्षत्र वृक्षों के रोपण में शुभ कहे गये हैं। बगीचे में एक पुष्करिणी (तालाब या बावड़ी) और उसमें कमल भी होने चाहिये। हस्त, मघा, मैत्र (अनुराधा), पुष्य, अश्विनी, वासव (धनिष्ठा) शतभिषा तीनों उत्तरा ये नक्षत्र जलाशय का आरम्भ करने में शुभ हैं। वरुण, विष्णु और पर्जन्य का पूजन करके जलाशय का प्रारम्भ करे। बगीचे में अधिकतर इन वृक्षों को लगावे–अरिष्ट, अशोक, पुंनाग, शिरीष, प्रियंगु, केला, जामुन, बकुल और दाडिम।

ग्रीष्म ऋतु में सायं प्रातः, शीत ऋतु में एक दिन के अन्तर से और वर्षाकाल में जब पानी न बरसता हो तब रात्रि में वृक्षों का सेचन करे।

जो वृक्ष २०-२० हाथ (३० फुट) की दूरी पर लगाये जाते हैं वे उत्तम तथा जो १६ हाथ (२४) फुट के अन्तर से लगाये जायें वे मध्यम हैं।

वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलते रहना चाहिये, कम से कम १२ बार। जो वृक्ष बहुत घने होते हैं उनमें फल नहीं लगते या कम लगते हैं। शस्त्र से उनका शोधन अनावश्यक शाखाओं का तक्षण भी करना चाहिये।

—शेषांश पृष्ठ ६७१ पर

हृदय रक्त-स्कन्दन

श्री आशानन्द पंचरत्न आयुर्वेदाचार्य

कवि. आशानन्द जी पंचरत्न ने हृदय रक्त-स्कन्दन लेखमाला को कई भागों में प्रकाशित होने के लिए यह प्रथम प्रस्तुत लेख प्रेषित किया था। इसी रोग से वह स्वयं पीड़ित थे तथा पाठकों को अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि इसी रोग के कारण वह २३-४-६० को दोपहर १२ बजे स्वर्गवासी हो गये। उनकी इस मृत्यु से आयुर्वेद जगत को बहुत बड़ी हानि पहुँची है। आप शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान थे जिसको कि अचानक राहु ने ग्रस लिया। आपके कारण आयुर्वेद को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव है। भगवान से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को दुःख सहन करने की शक्ति दें।

प्रस्तुत लेख शायद आचार्य जी का अन्तिम लेख है। उनकी लेखमाला का केवल एक ही पुष्प हम पाठकों को भेंट कर सके इसका हमें हार्दिक दुःख है।

—सम्पादक

कारोनरी थ्राम्बोसिस (Coronary thrombosis)

कारोनरी थ्राम्बोसिस के शब्दार्थ पर ही इस रोग को वैधिक परिभाषा में हृदय रक्त-स्कन्दन नाम दिया गया है:- हृदय-कारोनरी, थ्राम्बोसिस--जमने के बाद रक्त का थक्का, अर्थात् हृदय पोषणी धमनी की किसी शाखा (धमनिका या धमनी) में रक्त का जम जाना, परिणामस्वरूप रक्त का मार्ग रुक जाता है, और हृदय-कार्यावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। यदि वह धमनिका छोटी हुई तो रोगी बच जाता है परन्तु आजीवन कार्य-अक्षम रह जाता है, दो पग चलने पर सांस फूलने लगता है, किञ्चित भार (नवजात शिशु तक) उठाना उस के लिये असह्य होता है। वह रोगी एक प्रकार से आजीवन शय्यारूढ़ रहता है यदि धमनी और भी छोटी (धमनिका) हुई तो थोड़ा काम कर भी सकता है अर्थात् किंचित कार्य-क्षम रहता है।

पहले चन्द वर्षों में इस रोग का नाम बहुत ऊपर आचुका है। इसका विस्तृत वर्णन तो पाश्चात्य मेडिकल पुस्तकों में बहुत काल से आरहा है, परन्तु उस से पीड़ित रोगियों की संख्या हाल में ही अधिक बढ़ गई है। क्योंकि साम्प्रतिक युग में इस के निदान के लिये निश्चित वैज्ञानिक साधन उपस्थित हैं, जिससे निदान में सन्देह का अवसर नहीं रहता, और यह भी सत्य है कि पहले की अपेक्षा अब अधिक व्यक्ति इससे ग्रस्त होते हैं। अभी चन्द वर्ष पूर्व जम्मू कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में हिन्दू महा सभा के प्रधान पूजनीय श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी का देहान्त इस रोग से हुआ परन्तु रोग का निदान उनकी मृत्यु के पश्चात मैडिकल कमीशन द्वारा हो सका। अब से ३ वर्ष पूर्व पश्चिमी

पाकिस्तान में पाकिस्तान मुस्लिम लीग के प्रधान श्री अबूरॅब निशतर भी इस रोग के शिकार होते थे, एवं हमारे भारत शिरोमणि श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल भी इस रोग से काल के ग्रास बने थे।

यूनाईटेड स्टेट अमरीका के प्रधान श्री आईजेन-होवर को भी यह रोग हो चुका है, परन्तु तुरन्त निदान हो गया, चिकित्सा निपुण थी तथा आराम पूरा पूरा ६ मास तक मिला। यद्यपि वह इसके आक्रमण से सही सलामत निकल आये हैं, तथापि अब तक वह बहुत सावधानी से काम करते हैं। हलका सा दौरा हमारे गृह मन्त्री श्री गोबिन्द बल्लभ पन्त को भी हुआ बतलाते हैं।

आजकल इस रोग की चर्चा आम होती है। चन्द पत्र पत्रिकाओं, कुछ वैद्य महानुभावों के लेख भी मेरी नजर से गुजरे हैं। मुझे प्रतीत हुआ कि वह लेख या तो उनके द्वारा लिखे गये हैं, जो इसको ठीक तरह समझ नहीं पाये, अथवा उनको ठीक तरह से समझाना नहीं आया। आज अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार मैंने अपनी लेखनी को प्रयोग करने का साहस किया है। यदि पूरा लेख पढ़ लेने बाद कोई प्रश्न पूंछना हो तो इस पत्रिका सम्पादक द्वारा मुझ से पूछ सकते हैं।

हमारे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में ऐसे किसी रोग का उल्लेख नहीं मिलता जो इससे मिलता जुलता हो, सम्भवतः उस समय यह होता ही न होगा। आजकल की तथाकथित सभ्यता ही इन जैसे रोगों की प्रायः जिम्मेदार है।

वैसे तो भूगोल में जहां तहां प्राणी इससे आक्रमित होते देखे जाते हैं परन्तु उन देशों में इस के आक्रमण बहुत देखने में आते हैं, जो नवीन सभ्यता के मुख्य स्थान है, जहां के लोग सुखी एवं सम्पन्न होते हैं जिनका आहार अमीरी होता है, निर्वाह सामग्री के लिये अधिक परिश्रम की आवश्यक्ता नहीं होती, यथा यू० ऐस० ऐ० (अमेरिका), ब्रिटेन, फ्रान्स, जापान, नार्वे आदि। रूस, चीन, एशिया अरब, अफ्रीका में इस से पीडित होने वाले रोगियों की संख्या कम है। इसी आधार पर सुखी सम्पन्न समृद्ध जातियों के सदस्य इससे बहुत शीघ्र ग्रस्त होते हैं। यह बात ध्यान रखने योग्य है की इनही देशों और इनही जातियों में धमनी-काठिन्य (Arterio-sclerosis) एवं रक्तभारा-धिक्य (High Blood Pressuse) अधिक होता है।

अब कारोनरी थ्राम्बोसिस के कारणों का नीचे उल्लेख करते हैं—

(१) यह रोग प्रायः वयस्कों (adults) में ४०-६० वर्ष में ही अधिक होता है, ३५ से नीचे इसका अभाव ही समझना चाहिये। ३५ के ऊपर ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है इसकी सम्भावना बढ़ती जाती है। ५० % रोगी ४५ से ६० वर्ष के होते हैं।

आधुनिक युग में मनुष्य की औसतन आयु २० वर्ष अधिक बढ गई है, परन्तु ५० वर्ष के ऊपर आयु केवल २% के हिसाब से बढ़ी है। इसका एक मुख्य कारण यह रोग भी है।

(२) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को यह रोग बहुत होता है। रिपोर्टों के अनुसार ४ पुरुषों पीछे १ स्त्री का नम्बर आता है।

(३) उच्च, सभ्य जातियों के सदस्य इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं, यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, मारवाड़ी, जैन, पारसी, खोजे, यहूदी आदि।

(४) सुख सम्पन्न समृद्ध व्यवसायियों जैसे व्यक्ति अधिक रोग ग्रस्त होते हैं यथा जज, वकील, डाक्टर, बैंकर, ठेकेदार, प्रोफेसर, मर्चेन्ट, आदि। मजदूर, कृषक, श्रमिक में इस रोग का प्रायः अभाव समझना चाहिये। लेखक ने एक कृषक हरिजन को उसका शिकार होकर काल ग्रस्त होते देखा है, लेकिन ऐसे केसेज अपवाद मात्र समझने चाहिये।

(५) उच्च आहार सेवी ही इसका अधिक शिकार होते हैं, यथा अधिक घी, खीर, मलाई, मालपूये, एवं केक, पेस्ट्री, अण्डों के अधिक प्रयोग करने वालों में कारोनरी थ्रोम्बोसिस की बहुत ज्यादा

प्रवृति होती है। भैंस के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा दुगनी वसा (मक्खन) होती है, गाय के दूध में बकरी के दूध की अपेक्षा दुगनी। अब शायद पाठकों की समझ में आ जाय कि श्री महात्मा गांधी क्यों बकरी का दूध पीते थे। उनका ब्लड प्रशर ऊंचा था।

(६) शरीर की स्थूलता भी इसकी उत्पत्ति का एक सहायक कारण है। स्थूलकाय पुरुष कृशकाय की अपेक्षा इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं।

(७) मधुमेही को यह रोग शीघ्रता से एवं सुगमता से हो जाता है।

(८) पैतृक प्रवृत्ति भी इस रोग को उत्पन्न करने में विशेष सहायक है। कई कुल ऐसे हैं जिनमें उत्पन्न व्यक्ति अन्य कुलों के सदस्यों की अपेक्षा इस रोग से अधिक पीड़ित होते हैं।

(९) साम्प्रतिक युग का जीवन, विशेषकर शिक्षित वर्ग का जीवन जिसमें निरन्तर मानसिक परिश्रम, चिन्ता-शोक, उत्तेजना उपस्थित रहती है, इसके उत्पन्न करने में पर्याप्त उत्तरदायी है।

वक्तव्य — उपरोक्त ९ कारण ही धमनी-काठिन्य (Arterio-sclerosis) एवं रक्तभाराधिक्य (High Blood Pressure) को उत्पन्न करते हैं, तथा धमनी काठिन्य के अन्य सजातीय रोग धमनी अन्तःस्तर स्थूलता (thickening of inner coat of Arteries) को भी साथ साथ पैदा करते हैं। इसको डाक्टरी संज्ञा में एथिरोमा (Atheroma) या अथिरोस्क्लेरोसिस (Athero-sclerosis) कहते हैं।

इस धमनी अन्तः स्तर स्थूलता को उत्पन्न करने में अन्य ९ कारणों की अपेक्षा उच्च स्निग्ध आहार और पैतृक प्रवृति विशेष रूप से सहायक हैं, दूसरे कारणों की उपस्थिति में स्निग्ध आहार से धमनी स्थूलता शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। पैतृक प्रवृति कुल में इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों से ज्ञात होती है।

(१०) उपर्युक्त अन्तः स्तर स्थूल धमनी से ग्रस्त पुरुष को हृदय-रक्तस्कन्दन होने की बहुत अधिक सम्भावना होती है।

(११) हृदय-अवपीड़न (Angina Pectoris) का अन्तिम परिणाम अनेक बार हृदय रक्तस्कन्दन ही होता है। हृदय-अवपीड़न की उत्पत्ति धमनी काठिन्य या धमनी अन्तः स्तर स्थूलता से भी होती है, इसके अन्य कारण भी हैं (इसके लिए व्याधि विज्ञान देखें) परन्तु इन दो कारणों से उत्पन्न हृदय अवपीड़न ही का अन्त प्रायः हृदय रक्तस्कन्दन में होता है।

वक्तव्य —(i) धमनी काठिन्य और धमनी अन्तः भित्ति स्थूलता में क्या भेद है, इसका वर्णन अभी आगे करते हैं।

(ii) जितनी और जिस प्रकार की वसा (घृत, वनस्पति-घृत, चरबी, अण्डे की जर्दी, तेल नारियल

पृष्ठ ६६८ का शेषांश

यदि पेड़ों पर फल न ठहरते हों अर्थात् लग कर झड़ जाते हों तो विडङ्ग, घी और पङ्क मिले शीतल जल से सींचना चाहिए। कुलत्थ, माष, मूँग, जौ और तिक्त इनके पानी का सेचन भी फलनाश की औषधि है।

घी मिले हुए शीतल जल से सींचना वृक्षों में सदा फल फूलों का वृद्धिकारक होता है। आविका का चूर्ण, जौ का चूर्ण, तिल, गोमांस और जल इनको सात रात्रि तक रक्खें। इसका उत्सेचन सभी प्रकार के वृक्षों में फल और फूलों की वृद्धि करता है।

जिस जल में मछलियां रहती हों उस जल से सींचने से वृक्ष शीघ्र बढ़ते हैं। विडङ्ग और चावलों के धोवन से युक्त मछली का मांस वृक्षों का उत्तम दोहद है इससे वृक्षों के सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

—श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय,
२१/२३ ब्रह्माघाट, वाराणसी।

तिल सरसों आदि) हम खाते हैं, वे सब पचने के बाद मानव शरीर की वसा (लाईपिड Lipid) बनती है। यही रक्त में रहती है और यही मनुष्य में चरबी रूप हो त्वचा, मांसपेशियों आदि में जमा रहती है। इसी लाईपिड से एक अन्य वस्तु कोलेस्ट्रोल (Cholestrol) बनती है, जिससे रक्त गाढ़ा बनता है, तथा धमनी के अन्तःस्थ स्तर में जमा होता है और उसे स्थूल बनाता है।

वसा का जितना अधिक प्रयोग किया जाये उतना अधिक लाईपिड बनता है परिणामस्वरूप अधिक कोलेस्ट्राल बनता है, और धमनी अन्तः-भित्ति स्थूलता और धमनी काठिन्यता के रोग होते हैं। बकरी के दूध की अपेक्षा गाय के दूध से अधिक कोलेस्ट्राल बनता है, गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में, और उनकी अपेक्षा तैल से, और सब से अधिक वानस्पतिक घी से कोलेस्ट्रोल बनता है।

उपर्युक्त ११ कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिन से हृदय रक्तस्कन्दन के होने की सम्भावना हो सकती है—

(१२) पित्त प्रणालियों के जीर्ण रोगों में, जीर्ण शोथ से जिनमें पित्त गाढ़ा हो जाता है या कम हो जाता है, इसके परिणाम स्वरूप रक्त में लाईपिड तथा कोलेस्ट्रोल बढ़ जाता है। इसको आंग्ल परि-भाषा में लाईपीमिया (Lipaemia) और कोलेस्ट्री-मिया (Cholestraemia) कहते हैं। इनसे रक्त में स्कन्दन (Coagulatin or Clotting) की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तथा बहुत काल तक लाईपीमिया (Lipaemia) और कोलेस्ट्रिमिया (Cholest-raemia) रहने से धमनी अन्तः भित्ति स्थूलता एवं धमनी काठिन्य हो जाता है।

वक्तव्य —(i) पित्त के निर्माण में लाईपिड तथा कोलेस्ट्राल का विशेष अंश होता है। जब पित्त गाढ़ा होता है या कम बनता है तो स्वभावतः यह रक्त में ही रह कर वहीं जमा होती रहती है।

(ii) पित्त प्रणालियों की सैल्स ही यह कार्य करती हैं, अतः उनके रोगों में-यथा जीर्ण शोथ, यकृत् अप-वृद्धि (Degeneration of liver) कोलेस्ट्रोल और लाईपिड का उपयोग नहीं हो पाता।

(iii) ऐसी अवस्था में जिसमें पित्त बनाने वाले कोष (सैल्स) तो स्वस्थ हों और अपना कार्य सम्यक् रीति से कर रहे हैं, परन्तु पुरुष अधिक मात्रा में घी, वसा का प्रयोग कर रहा हो तो सारा लाईपिड उपयोग में नहीं आता और परिणाम-स्वरूप रक्त में लाईपिड बढ़ जाता है। ऊपर लिखित कारण नं० ५ इसी आधार पर आधारित है।

(१३) कई आपरेशनों के बाद रक्त में स्कन्दन (जमने) की शक्ति बढ़ जाती है, विशेषकर उदरस्थ अङ्गों के आपरेशन के बाद अन्तः धमनी काठिन्य, रक्तभाराधिक्य तथा धमनी अन्तःभित्ति स्थूलता के रोगियों में विरल अवस्था में कदाचित हृदय रक्त-स्कन्दन की सम्भावना हो सकती है, लाखों में एक ऐसा समझें।

(१४) चुल्लिका ग्रन्थि (थायरायेड ग्लेण्ड-Thyroid Gland) के उन रोगों में जिनमें इसका स्राव कम बनता है, उनमें इस रोग (हृदय रक्त-स्कन्दन) का भय उपस्थित रहता है, यथा मिक्सिडि-मिया (Myxaedemia), चुल्लिका ग्रन्थि ह्रास (Hypothyroidism हाईपोथायरोयडिज्म) में इसकी सम्भावना भी अत्यन्त कम है।

(१५) वृक्कों के अप-वृद्धि रोगों में (Degenerative diseases of Kidney) वृक्कों की प्रणालियों एवं प्रारम्भिक भाग के कोषों की अप-गति होती जाती है और वो गलती जाती हैं यथा Nephrosis में, इस कारण से भी हृदय रक्त-स्कन्दन बहुत विरल होता है।

अन्त में लिखे सं० १३, १४, और १५ कारणों से हृदय-रक्तस्कन्दन बहुत ही विरल होता है। इन से उत्पन्न हृदयरक्तस्कन्दन को अपवाद मात्र माना जाये तो यह ठीक ही होगा। इन कारणों को केवल पाठकों के ज्ञानार्थ लिख दिया गया है कि कदाचित ऐसे रोगों में इसके होने की सम्भावना उपस्थित है।

इस प्रकरण की समाप्ति से पूर्व धमनी काठिन्य (Arterio-sclerosis) और धमनी अन्तः स्तर स्थूलता (Arthero-sclerosis) में भेद दर्शाना उचित प्रतीत होता है। डाक्टरी संज्ञा में दोनों को Sclerosis अर्थात् काठिन्य कहा गया है। यह काठिन्य धातु विशेष में सौत्रिक तन्तुओं की वृद्धि से ही होता है। धमनियों की दीवार में रबर की तरह लचकीली (स्थिति स्थापक) वस्तु होती है जिसके कारण हृदय के संकोच द्वारा धकेले हुए रक्त से धमनियां फैलती हैं और हृदय के प्रसार के कारण जब रक्त धमनियों में नहीं (धकेला) जाता तो सिकुड़ जाती हैं। जिस अवस्था में यह लचकीले तन्तु नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर सौत्रिक तन्तु बन जाते हैं, धमनियों की दीवार सख्त हो जाती हैं, उनमें उभरने और सिकुड़ने (उठने बैठने) की शक्ति कम हो जाती है, इसे धमनी काठिन्य (Sclerosis of Arteries) कहते हैं। इतना समझ लेने के बाद अब यह देखें कि धमनियों की दीवार तीन तहों (स्तरों) से बनती है, इन तहों को यदि कोट की संज्ञा दी जाय तो बहुत उपयुक्त होगा।

नोट—गुरुवर स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन सरस्वती ने इसको प्राचीरिका की संज्ञा दी है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती। प्राचीरिका से अर्थ पृथकीकारक दीवार होती है, इसको स्तर, तह या कोट का नाम दें तो अधिक युक्त दीखता है।

१. बाह्य कोट २. मध्यस्थ कोट ३. अन्तःस्थ कोट।

(१) बाह्य कोट—तीनों कोट में बहुत दृढ़ और पायदार होता है। धमनी को यदि बहुत जोर से किसी दृढ़ वस्तु से कसकर बांध दिया जाये तो अन्दर के दोनों कोट टूट जायेंगे, परन्तु यह नहीं टूटेगा। यह सौत्रिक तन्तु की दृढ़ वस्तु से निर्मित है इसलिये इसके अन्तस्थ पृष्ठ पर चन्द स्थिति-स्थापक (लचकीली) वस्तु थोड़ी मात्रा में होती है, वह भी बड़ी धमनियों में, छोटी धमनियों और धमनिकाओं में नहीं। इसमें न कोई ऐसी धातु या कोष है जो घटें और सौत्रिक तन्तु इसमें पूर्व से ही पर्याप्त

धमनी की सूक्ष्म रचना

[अ—अन्तःस्थ कोट, ब—मध्यस्थ कोट, स—बाह्य कोट]

मात्रा में उपस्थित हैं जिनके कारण यह सुदृढ़ है, अधिक बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(२) मध्यस्थ कोट—मोटी मांस पेशियों की तह से बनी होती है। स्थूल धमनी में स्वभावतः यह मांसपेशियां अधिक परिमाण में और अधिक मोटी होती हैं और छोटी धमनियों में कम। इसके

अतिरिक्त इस कोट में स्थिति-स्थापक तन्तु भी होते हैं, स्थूल धमनियों में बहुत ज्यादा, तथा ज्यों ज्यों धमनियां छोटी होती जाती हैं ये भी कम होते जाते हैं, बहुत छोटी धमनियों में एवं धमनिकाओं में यह होती ही नहीं। हृदय से उद्गमित बृहत् धमनी में यह स्थिति-स्थापक वस्तु बहुत मात्रा में होते हैं, उससे उत्पन्न शाखाओं यथा ग्रैविक धमनियों, ऊर्ध्व और अधोशाखाओं की धमनियों में उससे कम, इनसे उत्पन्न शाखाओं में उनसे कम इस प्रकार क्रमशः कम होता जाता है, छोटी धमनियों में थोड़े थोड़े कहीं कहीं ये स्थिति-स्थापक तन्तु पाये जाते हैं।

इस कोट में स्थित मांसपेशी-धातु एवं लचकीले धातु के तन्तु नष्ट होते जाते हैं और इनका स्थान सौत्रिक तन्तु लेते जाते हैं, यही धमनी काठिन्य है। इसीसे रक्तभार बढ़ जाता है।

(३) अन्तःस्थ कोट—के अन्तस्थ पृष्ठ पर चपटी सैलें होती हैं। उनके बाहर थोड़े आधारक धातु (जिन पर वह सैल टिकी रहती हैं) उसके बाहर स्थिति स्थापक तन्तु। इस कोट के स्थिति-स्थापक तन्तुओं एवं आधारक वस्तु का घट जाना और उनके स्थान पर सौत्रिक तन्तुओं का बढ़ जाना ही धमनी अन्तः भित्ति या धमनी अन्तः कोट काठिन्य (Atheroma or Athero-sclerosis) कहलाता है। इसके साथ अन्तस्थ सपाट सैलें भी कड़ी हो जाती हैं और एक के ऊपर दूसरी, तीसरी तह बैठकर उस कोट को मोटा कर देती हैं। अन्तः भित्ति काठिन्य बड़ी और छोटी हर प्रकार की धमनियों में हो सकता है। यह और धमनी काठिन्य (दूसरे कोटि का काठिन्य) अनेक बार दोनों साथ साथ उपस्थित होते हैं। जहां केवल अन्तस्थ कोट काठिन्य होता है, वहां रक्त भार नहीं बढ़ता। रक्त भार केवल मध्य कोट काठिन्य (इसे ही धमनी काठिन्य कहते हैं) में ही बढ़ता है। अन्य अङ्गों की अपेक्षा हृदय की धमनियों में अन्तस्थ कोट का काठिन्य एवं स्थूलता अधिक होती है (हमने इस लेख में सुविधा की दृष्टि से दोनों को एक ही श्रेणी में रखा है और दोनों को अन्तः भित्ति स्थूलता का नाम दिया है), इनसे दो परिणाम हो सकते हैं कि (१) धमनी का अन्तः पृष्ठ कर्कश हो जाता है जिससे कि वहां रक्त जल्दी जमता है। (२) अन्तःकोट की सैलें बढ़ जाती हैं, तथा एक पर दूसरी तीसरी तह जम जाती हैं, फलस्वरूप धमनी का छिद्र छोटा होता जाता है, वहां से आगे जाने का रक्त का बहाव कम हो जाता है, उसीसे हृदय अवपीडन होता है, इस स्थान पर भी रक्त के जमने (स्कन्दन) की बहुत सम्भावना रहती है। इसी हेतु पहली पंक्तियों में लिख आये हैं कि हृदय अवपीडन का अन्त अनेक बार हृदय रक्त स्कंदन में होता है।

कदाचित ऐसा भी होता है कि अन्तः भित्ति क्रमशः शनैः शनैः स्थूल होते जाने से धमनी छिद्र बिल्कुल बन्द पड़ जाता है, उसके भी वही लक्षण और परिणाम होते हैं, जो हृदय रक्त स्कन्दन के होते हैं।

हृदय का पोषण करने वाली धमनियां
[हृदय के पश्चात् तल पर रहने वाली धमनियाँ बिन्दु-युक्त रेखाओं द्वारा प्रदर्शित की गई हैं।]

हृदय रक्त स्कन्दन (कारोनरी) थ्राम्बोसिस में और उसके फलस्वरूप हृदय में क्या और कहां परिवर्तन होते हैं, यह समझने के लिये हृदय पिण्ड में रक्त संचार को जानना जरूरी है। हृदय का पोषण दो धमनियों द्वारा होता है। बायीं हृदय पोषणी धमनी और दायीं हृदय पोषणी धमनी। ये दोनों धमनियां बृहत् धमनी के आरम्भिक भाग से निकलती है, बायीं दायीं की अपेक्षा थोड़ी बड़ी है। दोनों की वैसे तो कई शाखायें हैं परन्तु मोटी मोटी शाखायें प्रत्येक की दो दो एक पूर्व पोषणी और दूसरी पश्चिमी पोषणी शाखा हैं। बायीं हृदय पोषणी धमनी की पूर्व शाखा अपेक्षाकृत सबसे और बहुत बड़ी है। प्राय: इसी में रक्त-स्कन्दन (clotting) होता है, यह शाखा हृदय के बायें क्षेपक कोष्ठ और बहुत कुछ दायें क्षेपक कोष्ठ का पोषण करती है, हृदय का पूर्व पृष्ठ इनहीं दो से बनता है, इसके बाद दायीं पूर्व शाखा में रक्त स्कन्दन के केस होते हैं. इससे दायें ग्राहक कोष्ठ का तथा पीछे के थोड़े बायें क्षेपक कोष्ठ के भाग का पोषण होता है। इसके अवरोध से हृदय का पृष्ठ भाग मृत होता है। इसके बाद बायीं पोषणी धमनी की पश्चिमी (पृष्ठ) शाखा और उसके बाद दायीं पोषणी की पृष्ठ शाखा प्रभावित होती हैं। इनसे क्रमशः बायां ग्राहक कोष्ठ और क्षेपक कोष्ठ के कुछ अंश का पोषण होता है।

आगे चलकर रोग निदान का वर्णन करते हुये यह बतायेंगे कि इलैक्ट्रिक कार्डियोग्राम (E. C. G.=Electric Cardio Gram) से यह ज्ञात हो जाता है कि हृदय का कौन सा भाग रुग्ण हुआ है अर्थात् किस धमनी में अवरोध हुआ है।

:: तन्त्र भूषण विकल्प ::   :: पृष्ठ ६६६ का शेषांश ::

रस	दोष वृद्ध	वृद्ध	क्षीण	औषधि
६०. कषाय तिक्त कटु अम्ल	वा	पि	क	वालमूलक गजदधि
६१. कटु अ० ल० म०	पि	क	वा	गोमूत्र शिलाजतु
६२. म. ल. ति. कषाय	क	वा	पि	समुद्र फेन शर्करायुक्त चंदन
समदोष (स्वस्थ)				
६३. मधुर अम्ल लवण कटुतिक्त कषाय	वात पित्त कफ			पारद एणमांस

—श्री धीरेशचन्द्र दीक्षित
आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर प्रशिक्षणकेन्द्र, जामनगर।

श्वास रोग की अद्भुत औषधि—

वासा-पर्पटी

श्री कविराज प्राणनाथ शर्मा

आज से लगभग १७ वर्ष पूर्व सेवायोगी आश्रम बराड़ा जि० अम्बाला (पंजाब) से परम पूज्य श्री मनोहर योगी जी के शुभसम्पर्क से यह साधुप्रदत्त योग मुझे प्राप्त हुआ। तभी से मैं इस योग को बना श्वास के रोगियों में मुफ्त वितरित करता रहा हूँ। यह कौड़ियों में तैयार होने वाला योग लाभ की दृष्टि से अत्यन्त चमत्कारिक सिद्ध हुआ है। अनेकों रोगी इससे लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं।

श्री मूलचन्द खैरायती राम ट्रस्ट आयुर्वेदिक अस्वस्थालय व अन्वेषणालय, लाजपत नगर, नई दिल्ली के डायरेक्टर आदरणीय वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह जी के आदेशानुसार मैंने उक्त योग अस्पताल की रसायन शाला में तैयार किया। इसी काल में हमारे अस्वस्थालय से श्री कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा, अजमेर के पूज्यपाद श्री स्वामी कृष्णानन्द जी का शुभागमन हुआ और कविराज प्रताप सिंह जी ने उनसे इस योग का जिक्र किया तो श्री स्वामी जी ने इस योग की सराहना करते हुए इस का नाम वासा पर्पटी रखने की सम्मति दी।

उक्त अस्वस्थालय के अन्तरंग विभाग में ६० रोगीशय्याएं हैं। अतः वासा पर्पटी के निर्माण होने के पश्चात् अस्पताल में आने वाले श्वास रोगियों में से जिनको अन्तरंग विभाग (Indoor patient department) में प्रविष्ट किया गया उन पर वासापर्पटी के परिणामों का संक्षिप्त विवरण वैद्य बन्धुओं की जानकारी के लिये नीचे दे रहा हूं।

रोगविवरण—

रोगी संख्या ८२० शय्या संख्या ६०

रोगी नाम—मदन लाल पुत्र रूप लाल

आयु—२४ वर्ष (विवाहित)

व्यवसाय—अभाव

निवास स्थान—१४ सैन्ट्रल मार्केट, लाजपत नगर, नई दिल्ली।

प्रवेश तिथि—१४ १०।५६

रोग निर्णय—तमक श्वास

रोग समय—६ वर्ष

चिकित्सा—

लक्ष्मी विलास	१ रत्ती
वासा क्षार	४ रत्ती
टंकण भस्म	१ रत्ती

मात्रा—३ अनुपान—क्षीर

लवंगादिवटी ३ चूसनार्थ	
श्वास कास चिन्तामणि	१ रत्ती

मात्रा—३

दशमूलारिष्ट	३ माशा
वारि (जल)	६ माशा

उक्तोपचार से लाभ न होने पर वासापर्पटी १ रत्ती।

१ मात्रा—प्रातः प्रतिदिन, अनुपान तक्र द्वारा चिकित्सा की गई।

पथ्य—दही, क्षीर भोजन।

निर्गम तिथि—१६।१०।५६

परिणाम—स्वस्थीभूयगतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—८३८ शय्या संख्या ५६

रोगी नाम—कृष्ण लाल पुत्र चूनी लाल

आयु—२० वर्ष

व्यवसाय—व्यापार

निवास स्थान—१३ ए/१६ ब्रह्मपुरी, करोलबाग, नई दिल्ली।

रोगी प्रवेश तिथि—१६।१०।५६
रोग निर्णय—श्वास
रोग समय—एक वर्ष

चिकित्सा—

वासा पर्पटी	१ रत्ती

१ मात्रा—प्रातः अनुपान-तक्र
पथ्य—तक्र, क्षीर, भोजन
रोगी निर्गम तिथि—४।११।५६
परिणाम—स्वस्थी भूय गतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—८१० शय्या संख्या ५६
रोगी नाम—जीतसिंह पुत्र जवाहरसिंह
निवास स्थान—ब्लॉक ४१, फ्लैट २/२ सिंह सभा रोड, सब्जी मण्डी, दिल्ली।
रोगी प्रवेश तिथि—४।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास

चिकित्सा—

प्रथम अन्योपचार करने पर लाभ न होने से अन्त में वासापर्पटी की व्यवस्था की गई।
निर्गम तिथि—५।१२।५६
परिणाम—स्वस्थीभूय गतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—६१४ शय्या संख्या—५३
रोगी नाम—चमन लाल पुत्र गुरुदत्ता मल
आयु—४० वर्ष
निवास स्थान—प्रेम नगर, लोधी रोड ४, नई दिल्ली।
प्रवेश तिथि—११।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास

चिकित्सा—

समीरपन्नग रस	
सूत शेखर	१ रत्ती
प्रवाल पंचामृत	१ रत्ती
	४ रत्ती

३ मात्रा—अनुपान क्षीर

एलादि वटी	६ चूसनार्थ
विरेचन वटी	१ नग

उक्तोपचार से लाभ न होने पर अन्त में वासा पर्पटी की व्यवस्था की गई।
निर्गम तिथि—२५।११।५६
परिणाम—स्वस्थीभूयगतः

रोग विवरण—

रोगी संख्या—६२५ शय्या संख्या—५०
रोगी नाम— ख्यालीराम पुत्र नत्थूराम
आयु— ३५ वर्ष
निवासस्थान—जुमुंदपुर, नई दिल्ली।
प्रवेश तिथि—१५।११।५६
रोग निर्णय—तमक श्वास
रोग समय— १ वर्ष

चिकित्सा—

प्रवाल पंचामृत	४ रत्ती
समीरपन्नग रस	१ रत्ती
लक्ष्मी विलास रस	१ रत्ती
स्फटिका	२ रत्ती
लवंगादि चूर्ण	४ रत्ती

मात्रा—३

उक्तोपचार से लाभ न होने पर अन्त में वासा पर्पटी की व्यवस्था की गई।
रोगी निर्गम तिथि—२८।११।५६
परिणाम—स्वस्थीभूयगतः

इसी प्रकार अनेक श्वास रोगियों पर वासा पर्पटी ने आश्चर्यचकित कर देने वाला प्रभाव दिखाया। अब मैं वैद्य बन्धुओं की सेवा में दुःखी श्वास रोगियों के लाभार्थ वासा पर्पटी का योग और निर्माण विधि नीचे लिख रहा हूं।

वासापर्पटी—

वासा का विशेष परिचय देना मैं यहां अभीष्ट नहीं समझता, क्योंकि समस्त वैद्य समाज वासा वनस्पति के वासा, वासक, अडूसा और बहकड

आदि नामों और गुणों से भली प्रकार परिचित हैं। अतः इस प्रसिद्ध श्वेत पुष्प वाली बनस्पति वासा का पंचाङ्ग प्राप्त कर उसे काटकर छोटे छोटे टुकड़े कर लेवें और किसी कढ़ाई आदि लौह पात्र में डाल देवें, अब इसी में जल भी इतना डालें कि वासा से चार अंगुल ऊपर तक रहे (अथवा वासा पंचांग से द्विगुण जल डाल देवें) देश एवं ऋतु अनुसार जल की मात्रा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इस वासा वाले लौह पात्र को अब किसी ऐसे स्थान पर २१ दिन तक खुला रखदें कि जहां दिन में सूर्य की धूप और रात में ओस पड़ती रहे। मध्य काल में कभी-कभी वासा को किसी लकड़ी आदि से हिला दिया करें। २१ दिन के बाद इस पात्र को ज्यों का त्यों ही चूल्हे पर रख कर इसके नीचे वासा की लकड़ियों अथवा कीकर (बबूल) की लकड़ियों की एक घन्टे तक मन्द आंच और बाद में मध्य आंच जलावें। यहां तक कि पात्र का समस्त जल सूख जावे किन्तु इस काल में पात्र में पड़े वासा को हिलावें नहीं। पात्र का सब जल सूख जाने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर साफ फर्श या लकड़ी आदि के किसी तख्ते पर उलट देवें। पात्र का सब वासा फर्श पर आ जावेगा और पात्र की पेंदी में काले रङ्ग की पपड़ी लगी हुई मिलेगी, उस पपड़ी को खुरपे आदि से खुर्च कर खरल में खूब बारीक कर लेवें। बस यही वासा पर्पटी है। इसे शीशी में सुरक्षित रखिये। आवश्यकतानुसार इसकी मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक मक्खन (नवनीत) या दही की मलाई में रख कर रोगी को प्रातः (खाली पेट) सेवन करावें और औषधि के तुरन्त बाद तक्र (फीका) का सेवन करावें। पथ्य में तक्र का सेवन अधिक रखना चाहिए। अपथ्य स्वरूप खट्टे और तैलादि में तले हुए पदार्थ न देवें।

टिप्पणी—

वासा कफनिःसारक, आक्षेप निवारक व रसायन है और रक्त के रक्तकण बढ़ाता है। यह क्षय, कास, जीर्णकास श्वास, एवं अन्यान्य उरोगत श्लैष्मिक रोगों में सेव्य है। तिक्त होने से भूख को बढ़ाने वाला है। लौह भी रक्त एवं शक्तिबर्धक है। इस योग में वासा के साथ २१ दिन लौह पात्र का सम्पर्क रहने से इस में लौह के भी सूक्ष्म अंश आ जाते हैं। अतः वासा और लौह का यह अद्भुत योग है।

वासा पर्पटी में वासा कफनिःसारक होने से श्वास नलिका एवं फुफ्फुसों में से कफ को निकालता है जिस से श्वास वाही स्रोतों में श्वास का आदान प्रदान सुगम हो जाता है। इस प्रकार लौह कषाय होने से उन स्रोतों को सिकोड़ कर संकुचित कर देता है जो निरन्तर कफ निकालने (स्राव) में अभ्यस्त हो चुके होते हैं। इस प्रकार वासा पर्पटी के प्रयोग से वह एकत्रित हुआ श्वासवाही स्रोतों को अवरुद्ध कर श्वास कष्ट उत्पन्न करने वाला कफ निकलने लगता है और लौह के कारण उसका स्राव रुक कर रोगी को लाभ होता है। इसके अतिरिक्त वासा तिक्त होने से लौह का शरीर में सात्मीकरण करता है जिससे रोगी में रोग निवृत्ति के साथ २ उसकी शक्ति भी बढ़ती है, नवीन रक्त उत्पन्न होता है, भूख बढ़ती है, पाचन ठीक प्रकार से होता है। इस के साथ तक्र का सेवन होने पर सुहागे का कार्य करता है। यह त्रिदोष नाशक है। तक्र से नष्ट हुआ रोग पुनः उत्पन्न नहीं होता।

वासा पर्पटी के उक्त २१ दिवसीय निर्माण काल में दिन में सूर्य की किरणों व रात्रि में चन्द्रमा की रश्मियों एवं ओस के पड़ते रहने से इसमें अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाएं तथा परिवर्तन होते हैं और वासा एवं लौह के सूक्ष्म तत्व इस में प्राप्त होते हैं, जिससे यह औषधि सूक्ष्म स्रोतोगामी एवं आशुफलदायक सिद्ध होती है। इस प्रकार वासा पर्पटी जहाँ रोग में लाभ पहुँचाती है वहाँ रोगी को बल एवं शक्ति भी प्रदान करती है। वैद्य बन्धु बनाएँ और लाभ उठाएँ।

—कविराज श्री प्राणनाथ शर्मा आयुर्वेद रत्न,
४६७५, शोरा कोठी, पहाड़गंज,
नई दिल्ली।

योषापस्मार (Hysteria)

श्री पं० गयाप्रसाद जी शास्त्री

विगत ३ दशकों से "हिस्टेरिया" रोग दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों तथा अनुसन्धानकर्ताओं ने अभी तक इस रोग की कोई रामबाण औषधि का आविष्कार करने में थोड़ी सी भी सफलता नहीं प्राप्त की है। सम्भवतः वे लोग इस रोग को घातक न मानकर स्वाभाविक मानते हों। सत्य तो यह है कि यह रोग विलासिता कामुकता तथा मानसिक दुर्बलता की देन है।

योषापस्मार का यह नामकरण आधुनिक है। हिस्टेरिया का अनुवाद है। किन्तु यह शुद्ध अनुवाद नहीं माना जा सकता है। कारण, यह रोग एकमात्र नारियों तक ही सीमित नहीं है। नवीन अनुसन्धान तथा रात-दिन के अनुभवों द्वारा यह तथ्य उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि "हिस्टेरिया" रोग का आक्रमण कोमल हृदय बालकों तथा तन-मन से दुर्बल पुरुषों पर भी होता है। कुछ विशिष्ट लक्षणों को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी लक्षण स्त्रियों, बालकों तथा पुरुषों में समानरूप से परिलक्षित होते हैं। अतः "योषापस्मार" इस समस्त पद को उपलक्षण (स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वमुपलक्षणत्वम्) मान कर किसी प्रकार इस नामकरण को सार्थक बनाया जा सकता है। "योषापस्मार" इस समस्त पद को उपलक्षण मानने से स्त्रियों के साथ-साथ १२ वर्ष की आयु से ऊपर के कोमल हृदय बालकों और पुरुषों में भी इस रोग के होने की सम्भावना सिद्ध हो सकती है। "हिस्टेरिया" के लिए योषाव्यामोह शब्द अधिक उपयुक्त माना जा सकता है। किन्तु इधर कई दशकों से इस रोग के लिए भारतीय वैद्यसमाज में "योषापस्मार" शब्द का व्यवहार हो रहा है। अतः इस लेख में "हिस्टेरिया" के लिए रूढ मूल "योषापस्मार" इस प्रचलित शब्द का ही व्यवहार किया गया है।

निदान—

भय, चिन्ता, शोक, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष तथा विभिन्न मानसिक विकारों के कारण विक्षुब्ध वात द्वारा ज्ञानतन्तुओं एवं चेतना संस्थानों का प्रत्याहत होना, अजीर्ण, मलावरोध, रक्ताल्पता या रक्ताधिक्य मलावरोध, पति प्रतिकूलता, प्रेमभङ्ग, अश्लील सिनेमा-चित्रों के देखने से समुत्पन्न कामविकार, प्रिय का चिरवियोग या वैधव्य, ऋतुदोष, गर्भाशय की विकृति, कामवासना की अतृप्ति, मिथ्याहार-विहार तथा विभिन्न प्रकार के मानसिक व्याघातों के कारण 'हिस्टेरिया' रोग उत्पन्न होता है। उपर्युक्त कारणों में से कुछ ऐसे विशिष्ट कारण हैं, जिनके द्वारा स्त्रियों में ही यह रोग उत्पन्न होता है। शेष सामान्य कारणों से स्त्रियों, बालकों तथा पुरुषों सभी में इस रोग की सम्भावना है या हिस्टेरिया रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—

"हिस्टेरिया" रोग की प्रथमावस्था में कुछ सामान्य लक्षण ही परिलक्षित होते हैं। आक्षेप (फिट) आने से पहले जृम्भा (जम्भाई आना) शरीर टूटना, मस्तक में भारीपन, किसी काम में मन न लगना, बेचैनी तथा मानसिक खिन्नता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन्हीं सब लक्षणों को "हिस्टेरिया" का पूर्वरूप कहते हैं। "हिस्टेरिया" की प्रथमावस्था में कुछ क्षणों से लेकर १ मिनट तक आक्षेप का आक्रमण होता है। रोगी के नेत्र कभी बन्द हो जाते हैं और कभी खुले रहते हैं। दोनों ही स्थितियों में वह संज्ञाशून्य हो जाता है। आक्षेप के अनन्तर वह अपने आपको बहुत दुर्बल अनुभव करता है। दो-तीन दिन में रोगी या रोगिणी स्वस्थ होकर अपनी पूर्वावस्था में आ जाती है। इसे हिस्टेरिया कहते

हैं। इसमें वात का विक्षोभ अल्प मात्रा में होता है।

"हिस्टेरिया" की द्वितीयावस्था में अङ्गमर्द और तीव्र शिरोवेदना के साथ २ नाभिस्थल से एक वात्याचक्र (वायुगोला) उठकर कण्ठ की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है। रोगिणी कण्ठावरोध से पीड़ित होकर एक करुण चीत्कार के साथ गिर पड़ती है। मूर्च्छित हो जाती है। हाथ, पैर, कण्ठप्रदेश और कटिप्रदेश वक्र होजाते हैं। हिस्टेरिया के आक्षेप के समय कुछ नारियां मूर्च्छित होकर चुपचाप पड़ी रहती हैं और मूर्च्छा दूर होने पर पुनः स्वस्थ हो हो जाती हैं। इन नारियों के अन्दर सत्वगुण का प्राधान्य होता है। इनके विपरीत कुछ नारियां आक्षेप के समय हंसती हैं, रोती हैं, स्वजनों पर अविवेकपूर्वक अनेक प्रकार के आक्षेप करती हैं, दोषारोपण करती हैं और विचित्र प्रकार के प्रजल्पन एवं प्रलाप करती हैं। इन स्त्रियों में रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता रहती है। कई बार ये नारियां अपने पूज्य गुरुजनों तक पर अश्लील दोषारोपण करने में संकोच नहीं करती हैं। हिस्टेरिया के ये लक्षण प्रायः वयः प्राप्त विधवाओं, पति प्रेम वञ्चिताओं तथा काम वासना से अतृप्त कामिनियों में पाये जाते हैं। हंसना, रोना और प्रजल्पन आदि ये लक्षण 'योषापस्मार' और 'कामोन्माद' इन दोनों रोगों के साङ्कर्य में पाये जाते हैं। कई बार कुछ चञ्चलवृत्ति की नारियां 'हिस्टेरिया' रोग का अभिनय भी करती हैं, किन्तु अभिनय और वास्तविकता में महान् अन्तर होता है। हिस्टेरिया का अभिनय करने वाली नारी जब गिरती है तो प्रायः कोमल शैया, सोफा और गद्दियों पर ही गिरती है। उनका हंसना, रोना और प्रलाप सापेक्ष, सयुक्ति तथा सुनिश्चित होता है। तीक्ष्ण नस्य, धूम्र तथा मूर्च्छानाशक अन्य अप्रिय उपचारों के आरम्भ करने से पूर्व ही अभिनयपरायणा नारी होश में आ जाती है। अतः चिकित्सक को हिस्टेरिया रोग की रोगिणी की चिकित्सा करते समय बड़ी सावधानी, दूरदर्शिता तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व से काम लेना चाहिये अन्यथा अपकीर्ति का पात्र बनना पड़ेगा। 'हिस्टेरिया' की द्वितीयावस्था में आक्षेपकाल प्रायः १ मिनट से १० मिनट तक देखा जाता है। चेतना आने के बाद रोगिणी अत्यधिक दुर्बलता का अनुभव करती है। कई दिनों तक शारीरिक शिथिलता और वेदना दूर नहीं होती है। हिस्टेरिया की द्वितीयावस्था में आक्षेपों की संख्या प्रतिमास प्रायः १ से ३ तक देखी गई है। दोषाधिक्य से अधिक आक्षेप भी आ सकते हैं।

'हिस्टेरिया' की तृतीयावस्था अत्यन्त कष्टदायक है। इसमें आक्षेप के समय रोगिणी की शरीरयष्टि धनुषाकार हो जाती है। आंखें उलट जाती हैं और विकृत हो जाती हैं, मुट्ठियां बन्द हो जाती हैं, श्वास-प्रश्वास गम्भीर हो जाता है, हृदय की गति बढ़ जाती है। मूर्च्छाकाल १० मिनट से लेकर कई घंटों और दिनों तक रहता है। कई बार एक ही दिन में अनेक बार आक्षेपों का दौरा होता है। इन आक्षेपों के समय कई बार शरीर का कोई एक भाग अथवा सम्पूर्ण शरीर अवसन्न हो जाता है। रक्त की गति मन्द या अवरुद्ध सी हो जाती है। इस अवस्था में योषापस्मार के अतिरिक्त अन्य कई रोगों का प्रादुर्भाव हो जाता है। शरीर में दोषों का साङ्कर्य परिलक्षित होता है। रोगिणी को असहनीय वेदना होती है। रोगिणी यदि तन-मन से दुर्बल हुई तो कई बार हिस्टेरिया रोग के भीषण आक्षेप के समय ही हृदय की गति बन्द हो जाती है और रोगिणी को पुनः चैतन्य लाभ नहीं होता है। फलतः हिस्टेरिया रोग की तृतीयावस्था अत्यन्त कष्टसाध्य मानी जाती है।

चिकित्सा—

हिस्टेरिया रोग की चिकित्सा में बड़ी सावधानी तथा दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये। सबसे प्रथम स्नेह, सद्भावना, शीघ्र कष्टनिवृत्ति का आश्वासन तथा मधुर वचनों द्वारा रोगी को अपने

विश्वास में लेना। विश्वस्त रोगी द्वारा रोगारम्भ से पूर्व का सम्पूर्ण इतिवृत्ति जानकर रोग के कारणों का पता लगाना। जो भी कारण रोगोत्पत्ति में सहायक सिद्ध हुए हों, उन्हें पहले दूर करना। उदाहरणार्थ, यदि पारिवारिक कलह अथवा अशान्ति के कारण हिस्टेरिया रोग की उत्पत्ति हुई है तो उस वातावरण को निर्मल बनाना या रोगिणी का स्थान परिवर्तन कराकर किसी उपयुक्त वातावरण में चिकित्सा का उपक्रम करना। इसी प्रकार ऋतु-दोष डिम्ब ग्रन्थियों की खराबी या अन्य जिन जिन कारणों ने रोगोत्पत्ति में साहाय्य प्रदान किया है, उन्हें चिकित्सा अथवा अन्य आवश्यक उपायों द्वारा दूर करना।

मूर्च्छानिवृत्ति का उपाय—

'हिस्टेरिया' रोग में सबसे प्रथम मूर्च्छा की निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। साधारण मूर्च्छा में एक स्वच्छ रूमाल या कपड़े को ताजे जल में भिगोकर उसी कपड़े से बार बार दोनों नेत्रों को तथा ललाट को पोंछना चाहिये। ऐसा करने से २-४ मिनट में रोगी में चैतन्य आ जायगा। यदि इस उपाय से रोगिणी को चैतन्य लाभ न हो तो निम्नाङ्कित उपाय करने चाहिये।

मूर्च्छान्तक योग (प्रथम)—

साफ रूमाल पर ५ बूंद नीलगिरि का तैल (Eucalyptus oil) डालकर रोगिणी को संघाना चाहिए। मूर्च्छा दूर होगी। सुंघाने का कार्य १-२ सैकन्ड करना चाहिये। अधिक समय तक रूमाल को नाक के सामने नहीं रखना चाहिये।

मूर्च्छान्तक योग (द्वितीय)—

कांच की डाट वाली एक साफ कांच की शीशी में ५ तोला पिसा हुआ नौसादर और ५ तोला पिसा हुआ कली का चूना डालकर तुरन्त शीशी की डाट लगा देना। इसे 'एमोनियां' कहते हैं। शीशी से काग निकाल कर १-२ सैकन्ड इस औषधि को संघाने से मूर्च्छा दूर होती है।

मूर्च्छान्तक योग (तृतीय)—

चूना, नौसादर, कलमी शोरा तीनों १-१ तोला, कपूर ३ माशा। सभी वस्तुओं को पृथक् पृथक् पीसकर शीशे की डाट वाली साफ शीशी में डालकर डाट लगाना और हिलाकर रख देना। १० मिनट में औषधि तैयार हो जायगी। पूर्वोक्त विधि से इस औषधि को १-२ सैकन्ड सुंघाने से मूर्च्छा दूर होती है। यह औषधि सन्निपात, सर्पदंश तथा हिस्टेरिया आदि सभी रोगों में मूर्च्छा को दूर करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

मूर्च्छान्तक नस्य—

कायफल ५ तोला नकछिकनी २ तोला छोटी इलायची के बीज, तुलसीपत्र छोटी पीपल कपूर प्रत्येक १-१ तोला।

विधि—कपूर को छोड़कर शेष कायफल आदि सभी औषधियों को कूट पीस एवं कपड़े में छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनाना। कपूर को पृथक् पीसकर उक्त चूर्ण में मिलाना और भलीभांति खरल करके साफ शीशी में भरकर रखना।

उपयोग—१ रत्ती से २ रत्ती तक इस नस्य को सुघाने से हिस्टेरियाजनित मूर्च्छा, प्रतिश्याय, तन्द्रा तथा शिरःशूल का कष्ट दूर होता है।

सिद्धार्थकादि नस्य—

पीली सरसों, बच, हींग, करंज की गिरी, देवदारु, मजीठ, हरड़ का वकला, बहेड़े का वकला, आमला का वकला, शुद्ध फिटकरी, माल कांगनी, सोंठ, कालीमिरच, छोटी पीपल, प्रियंगु, हलदी, दारुहल्दी, सिरस के बीज। सब समान भाग १-१ तोला। समस्त औषधियों को कूटपीस और कपड़े से छान कर सूक्ष्म चूर्ण बनाना। अनन्तर इस चूर्ण को खरल में डालकर बकरे के मूत्र की ३ भावनाएं देकर और एक बार पुनः कपड़े से छानकर साफ शीशी में भर कर रखना। १ रत्ती से २ रत्ती

तक इस नस्य के सुँघाने से हिस्टेरियाजनित मूर्च्छा तन्द्रा दूर होती है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में पञ्चकर्म विधि का प्रमुख स्थान है। अतः खाने की औषधि का प्रयोग करने से पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एवं बस्तिकर्म आदि द्वारा यदि शरीर की शुद्धि कर ली जाय तो औषधियों का प्रभाव शीघ्र होता है और कठिन से कठिन रोगों की निवृत्ति अनायास होती है। यहां हिस्टेरिया रोग पर कुछ अनुभूत तथा लाभकारी प्रयोगों का उल्लेख किया जाता है।

कुङ्कुमादि चूर्ण—

केशर ६ माशा, सनाय १ तोला, कूठ, मीठी वच, शंखपुष्पी, ब्राह्मी-चारों समानभाग २-२ तोला। मिश्री १० तोला।

विधि—समस्त द्रव्यों को कूट, पीस, छान कर सूक्ष्म चूर्ण बना लेना। साफ शीशी में भर कर रखना।

मात्रा—१माशा से ३ माशा तक।

समय—प्रातः सायम्। अनुपान—शीतल जल, गोदुग्ध या ब्राह्मीघृत।

रोग—योषपस्मार, अपस्मार, भ्रम, हृदय तथा मस्तिष्क की निर्बलता।

सारस्वत चूर्ण—

कूठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजमोद, सफेद-जीरा, कालाजीरा, काली मिर्च, छोटीपीपल, पाठा, शंखपुष्पी सब समान भाग १-१ तोला, मीठी वच समस्त औषधियों के समानभाग १-१ तोला।

विधि—समस्त औषधियों को कूट पीस कर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को किसी साफ खरल में डाल कर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ की ३ भावनाएं देकर साफ शीशी में भर कर रखना। रोग और रोगी के वय-बलानुसार १ मात्रा से ३ मात्रा तक इस औषधि को प्रातः सायम् अथवा अहोरात्र में ३ बार शहद, गोदुग्ध, मक्खन या ब्राह्मीघृत के साथ सेवन करने से हिस्टेरिया, भ्रम, उन्माद, बुद्धिमान्द्य तथा मस्तिष्क दुर्बलता दूर होती है।

ब्राह्मी घृत—

असगन्ध, दुधिया बच, कूठ, शङ्खपुष्पी, चारों समान भाग ५-५ तोला। गोघृत १ सेर, गोदुग्ध २ सेर, ब्राह्मी का स्वरस या क्वाथ ४ सेर।

विधि—काष्ठादि औषधियों को कूट, पीस, छान कर १॥ पाव पानी में ४ घण्टे भिगोकर कल्क बनाना। अनन्तर किसी कलईदार साफ भगोने में कल्क, घृत, दूध और ब्राह्मी स्वरस या क्वाथ को डालकर अग्नि पर चढ़ाकर घृतपाक की बिधि से ब्राह्मीघृत को सिद्ध करना।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक। समय—प्रातः सायं। अनुपान—समान भाग पिसी हुई मिश्री। रोग—हिस्टेरिया, उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, बुद्धिमान्द्य तथा स्मरण शक्ति की दुर्बलता।

विशेष—ब्राह्मीघृत को स्वतन्त्र औषधि के रूप में तथा पूर्वोक्त दोनों चूर्णों के अनुपान के रूप में भी आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सकता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (प्रथम)—

शुद्ध कुचलाचूर्ण, मल्लचन्द्रोदय, केशर तीनों समभाग १-१ तोला, कस्तूरी १ माशा, पके हुए पान १०० नग।

विधि—पके हुए पानों को सिल पर पीसकर तथा मोटे कपड़े से छानकर ५ तोला स्वरस निकाल लेना चाहिए। उपर्युक्त औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को खरल में डालकर पान के स्वरस द्वारा भलीभांति खरल करना। अनन्तर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लेना। प्रातः सायं १-१ गोली दूध या जल के साथ दें इन गोलियों के सेवन से 'हिस्टेरिया' रोग में अच्छा लाभ होता है। अनुपानभेद से विभिन्न वात विकारों में ये गोलियां अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (द्वितीय)—

असगन्ध, सफेद बच, कूठ, ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी,

रससिंदूर समभाग १-१ तोला, केशर, स्वर्ण माक्षिक, अभ्रकभस्म, मुक्ताभस्म समभाग ६-६ माशा।

विधि—काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण तथा रस भस्मादि को खरल में डालकर जटामांसी के क्वाथ की भावना देकर तथा भलीभांति खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

प्रातः सायं या रात्रि में सोते समय १ से २ गोली तक जल या दूध के साथ सेवन करने से 'हिस्टेरिया' रोग में लाभ होता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (तृतीय)—

गांजा, कपूर, मीठी बच १-१ तोला, जटामांसी २ तोला, खुरासानी अजवाइन ४ तोला, केशर ३ माशा।

समस्त औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को खरल में डालकर अदरक के ५ तोला स्वरस से भलीभांति खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। प्रातः सायं २-२ गोली जल के साथ सेवन करने से 'हिस्टेरिया' रोग में लाभ होता है। रात्रि में शयन से पूर्व २ गोलियां जल के साथ सेवन करने से उन्निद्र रोग दूर होता है, गहरी नींद आती हैं, पाचन क्रिया सुधरती और मस्तिष्क को शान्ति मिलती है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (चतुर्थ)—

कूठ, कायफल, रूमीमस्तङ्गी, मालकांगनी, जटामांसी, ब्राह्मी, केशर, स्वर्णमाक्षिक १-१ तोला। बच, कुचिला, रससिन्दूर २-२ तोला, सर्पगन्धा चूर्ण ४ तोला।

विधि—काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण तथा रसभस्मादि को खरल में डालकर २० तोला ब्राह्मी का स्वरस या क्वाथ में भलीभांति खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। प्रातः सायं १ से २ गोली तक जल के साथ दें। इन गोलियों के सेवन हिस्टेरिया, उन्माद, रक्तचाप (High blood pressure) तथा अपस्मार रोग में लाभ होता है।

हिस्टेरिया नाशिनी वटी (पंचम) ब्राह्मी वटी—

दालचीनी, जायफल, लवंग, कालीमिर्च, जावित्री, सोंठ, अकरकरहा, धनियां, बड़ी पीपल, चित्रक, बच, कूठ, नेपाली धनियां, अगर, असगन्ध, वंशलोचन, काला जीरा, पिपरामूल, बायविडंग, सौंफ, पुष्करमूल, शतावरी, निसोथ, अजवायन, खुरासानी अजवायन, केशर, सफेदचन्दन, अम्बर ये ३० औषधियां ६-६ माशा। ब्राह्मी ३ तोला।

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, चन्द्रोदय, मुक्ताभस्म, माणिक्यभस्म, इन्द्रनीलभस्म, प्रवालभस्म, संगेयशव भस्म, अकीक भस्म, तृणकान्तमणिपिष्टि (कहरवा पिष्टि) स्वर्णभस्म, कस्तूरी-ये सभी १२ वस्तुएं ६-६ माशा।

विधि—काष्ठादि औषधियों को कूट, पीस, छानकर पृथक् सूक्ष्म चूर्ण बनाना। केसर, कस्तूरी, अम्बर को पृथक्-पृथक् खरल करके रखना। शेष भस्मादि को पृथक् खरल करके रखना। १० तोला ब्राह्मी को १ सेर जल में क्वाथ करके २० तोला क्वाथ शेष रखना। अथवा १ सेर ताजी ब्राह्मी की पत्तियों को खरल में पीस कर स्वरस-विधि से २० तोला स्वरस निकालना। अनन्तर समस्त वस्तुओं को खरल में डाल कर ब्राह्मी-क्वाथ या स्वरस से ८ घंटे भली भांति खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना कर और सुखा कर साफ शीशी में भर कर रखना।

उपयोग-प्रातः सायम् तथा रात्रि में सोते समय-२ बार अथवा आवश्यकतानुसार दिन रात में ३ बार मधु, दुग्ध, जल या विभिन्न रोगहर अनुपानों के साथ इन गोलियों के सेवन से हिस्टेरिया, (योषापस्मार) उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, अपतन्त्रक, अपस्मार, श्वास, कास, सन्निपात, राजयक्ष्मा, बलक्षय, तथा वातरोगों में विशेष लाभ होता है। "ब्राह्मी वटी" वस्तुतः एक दिव्य औषधि है। सुप्रसिद्ध है। ("सिद्धभैषज्य-मञ्जूषा" से किञ्चित परिवर्तित)

"हिस्टेरिया" रोग की उत्पत्ति के प्रमुख कारणों का ज्ञान हो जाने से चिकित्सा में अत्यन्त सौकर्य होता है। फिर भी सिद्धान्ततः विभिन्न कारणों से विक्षुब्ध वात ही इस रोग का प्रधान कारण है। अतः वातशामक सभी प्रयोग प्रायः इस रोग में लाभकारी सिद्ध होते हैं।

शास्त्रीय योगों में मल्लचन्द्रोदय, योगेन्द्र रस, स्मृतिसागर रस, कामदुधा रस, वातकुलान्तक रस, वृहद् वातचिन्तामणि रस, ब्राह्मी वटी, चन्द्रावलेह, नारसिंहचूर्ण, ब्राह्मीघृत, कल्याणघृत, सारस्वतारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट-आदि सभी योग देश, काल, वय और रोग के बलाबल के अनुसार प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

पथ्यापथ्य —

प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौचादि नित्यकर्म से निवृत्त होना। व्यायामादि शारीरिक श्रम करना। खुली हवा में टहलना। अपनी रुचि के अनुसार ईश्वरोपासना। प्रत्येक स्थिति में सदा प्रसन्न रहना। यथाशक्ति दान देना तथा घर बाहर के लोगों के साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव-व्यवहार करना। गोदुग्ध, गोघृत, मीठे-ताजे फलफूल, गेहूं, चावल, मूंग की दाल, शीघ्र पचाने वाली शाक-भाजी आदि सभी प्रकार के सात्विक आहार-विहार इस रोग में पथ्य हैं।

वातबर्धक, दुष्पाच्य एवं पर्युषित आहार, अनियमित शयन-जागरण, ईर्ष्या-द्वेष क्रोधादि मानसिक विकार तथा सभी प्रकार के तामसिक आहार और तन-मन को अस्वस्थ बनाने वाला विहार या जीवनचर्या इस रोग में अपथ्य है।

श्री पं० गयाप्रसाद शास्त्री राजवैद्य,
मुरलीधर बाग, हैदराबाद (दक्षिण)

आयुर्वेद की दृष्टि में श्वास रोग

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री।

[वर्ष ३३ अङ्क ११ से आगे।]

कफ-पित्त ही मूल —

यदि सत्यान्वेषणशीलता दोष नहीं तो उसके आधार पर मैं यह मुक्तकण्ठ कहूंगा कि आयुर्वेदोक्त सृष्टि विज्ञान के अनुसार आधिभौतिक जगत की सृष्टि प्रकृति और पुरुष से मानी जाती है और काल तथा आकाश की तटस्थ कारणता दर्शनान्तर से मान्य है। ठीक उसी प्रकार आधिदैहिक जगत में मातृ-पितृ संयोग से सृष्टि मानी जाती है और "यदृच्छा पारमेश्वरी" भी एक तटस्थ कारण मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार मूलतः रोग कफ और पित्त दोनों के उपादान कारण माने जायंगे और वायु परमेश्वरांश, जीवांश होने के कारण निमित्त कारण औचित्यनैव माना जायगा। इस सम्बन्ध में आचार्य चरक के—

'ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातंक एव च।
एकार्थं नाम पर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥'

—चरक चिकित्सा ३ अ०।

अर्थात् ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आतङ्क ये सभी 'एकार्थ वाचक' शब्द हैं।

पुनश्चद्विविधो दृष्टः सौम्यश्चाग्नेय एव च।

—चरक चिकित्सा ३।

अर्थात् पुनः वह दो प्रकार का देखा गया है, सौम्य और आग्नेय। एवं —

'योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत्।
दाहकृत् तेजसायुक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात् ॥'

—चरक चिकित्सा ३।

अर्थात् वायु परम योगवाही होता है। वह जब जिसके साथ संयुक्त होता है तब उसी के अनुरूप कार्य सम्पादन किया करता है। वह संयोगवश उभयार्थकारी हुआ करता है। अर्थात्--तेज के साथ युक्त होने से दाह किया करता है और सौम्याश्रित होने से शीतकृत् हुआ करता है। और इसी पृष्ठ भूमि पर विमान स्थान में आचार्य चरक का स्पष्ट कथन है कि—

'शीतेनोष्णकृतान् रोगान् शमयन्ति भिषग्विदः।
येतु शीतकृता रोगास्तेषामुष्णं भिषग्जितम् ॥'

—चरक विमान अ० ३।

अर्थात् चिकित्सा शास्त्र के जानकार लोग शीतक्रिया द्वारा उष्णकृत् रोगों का शमन करते हैं और जो रोग शीतकृत होते हैं उनका इलाज उष्ण क्रिया है। और आचार्य चरक आदि आयुर्वेद के मुनियों द्वारा उद्भावित वातिक भेद का सामञ्जस्य इस प्रकार किया जाना चाहिये कि तेजस् उष्ण और ओजस शीत होता है और दोनों का मातदिल होना अनुष्णाशीतत्व गुण साधर्म्य से वातकृत माना जाय। क्योंकि, सूक्ष्म परिदर्शन करने पर वायु के आत्मरूपों में चैतन्यांश तथा अमूर्त्तत्वांश को छोड़कर अन्य लक्षण कुछ तैजस् के हैं तो कुछ ओजस के। उदाहरणस्वरूप आचार्य चरक ने षडात्मरूप वायु को माना है जिसमें दो कफ के और दो पित्त के तथा दो निज गुण हैं। पाठकों की जानकारी बढ़ाने के लिये यहां उसका उद्धरण भी अनावश्यक नहीं होगा। आचार्य चरक का कहना है कि--

'रौक्ष्यं, शैत्यं, लाघवं, वैशद्यं, गतिरमूर्तित्वं च वायोरात्मरूपाणि।'

—चरक सूत्र २०।

अर्थात्--रूक्षता, शीतता, लघुता, विशदता, गति एवं अमूर्त्तित्व। ये सभी वायु के आत्मगुण हैं।

इनमें रौक्ष्य और लाघव स्पष्टतः पित्त के आत्मगुण हैं। आचार्य चरक का कहना है कि—

'औष्ण्यं, तैक्ष्ण्यं, द्रवमनतिस्नेहो, वर्णश्चाशुक्लो, गन्धश्चविस्रो, रसौकटुकाम्लौ, पित्तस्यात्मरूपाणि ।'

—च० सू० २०

अर्थात् उष्णता, तीक्ष्णता, द्रवता (लघुता), अनति स्निग्धता (रूक्षता), शुक्लातिरिक्त वर्णता, आममांस गन्धता, कट्वम्लरसता—ये पित्त के आत्मरूप हैं और इसी प्रकार शीतलता और विशदता कफ के आत्म गुण हैं। क्योंकि आचार्य चरक का यह भी स्पष्ट कथन है कि--

'श्वैत्य शैत्य गौरव स्नेह माधुर्य स्थैर्य पैच्छिल्य मात्स्न्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि। —च० सू० २०

अर्थात् स्वच्छता (विशदता), शीतता, मृदुता, स्नेह, माधुर्य, स्थिरता, पिच्छिलता, मृदुता, ये कफ के आत्मरूप हैं और इस बारीकी के साथ 'नखभेद' आदि परिगणित वायु विकारों में भी कफ तथा पित्त के कार्यों का अनुसन्धान करने निदान करने से चिकित्सा में सिद्धि निश्चित रहेगी, जिसका स्पष्ट निर्देश आचार्य चरक ने इन शब्दों से दूर रखा है कि—

" —यस्तु रोग विशेषज्ञ : सर्व भैषज्य कोविद: ।
देशकाल प्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ।।:-- "

(वहीं)

अर्थात् जो वैद्य रोगों का विशेषज्ञ होता है और सभी दवाओं का ज्ञाता होता है और साथ ही देश, काल तथा मात्रा का जानकार होता है उसे निश्चय ही चिकित्सा कार्य में सिद्धि मिला करती है।

अपने इस नव उद्‌भावित शास्त्रसिद्धान्त को यहाँ एक उदाहरण देकर स्पष्ट कर देना आवश्यक मानता हूं।

आचार्य चरक ने नख भेद 'विपादिका' आदि ८० वातजरोगों का परिगणन कराया है। और कहा है कि—

" —संसभ्रंशव्यासंगभेदावसाद हर्षकम्पावमर्द चाल तोदव्यथा चेष्टादीनि तथा खर परुष विशद सुषिरारुण-कषाय विरस मुखशोषसुप्ति संकोचन खंजता दीनिच वायो: कर्माणि तैरन्वितं वातविकार मेवाध्यवस्येत् ।। —"

अर्थात् स्खलन, भ्रंश, विस्तार, अंगभेद, अवसाद, हर्ष, तर्ष (तृष्णा) आवर्त्त, अंगमर्द, कम्प, चालन, तोद, सूचीविद्धवत् पीड़ा, चेष्टा आदि, तथा खरत्व, पारुष्य, वैशद्य, सुषिरता, अरुण वर्णता, कषायता, विरसता, शोष, शूल, स्पर्शानभिज्ञता, संकोचन, खंजता आदि वायु के कर्म हैं। इनसे युक्त रोगों को वात विकार ही समझना चाहिये।

किन्तु नख भेद में यदि रुक्षता, वा वर्ण विकृति हो तो पित्त विकार भी उसमें स्पष्ट रहेगा और यदि उसमें सुप्ति वा स्पर्शानभिज्ञता अथवा चिरकारित्व देखा जाय तो कफ विकार भी स्पष्ट मानना शास्त्रीय मार्ग होगा। साथ ही छूने से यदि उष्ण स्पर्श मिले तो पित्त विकार तथा शीतस्पर्श मिले तो कफ विकार मानना भी शास्त्रीय प्रणाली मानी जायगी।

इस पद्धति में दोनों को मातदिली (अनुल्वणता) रहने पर यह मानना कथमपि संगत नहीं होगा कि इसमें कफ वा पित्त का कारणत्व है ही नहीं। बल्कि, ऐसी स्थिति में मेरे विचार से सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा कारण भेद का पता करना और भी आवश्यक होता है जिसके सम्बन्ध में आचार्य चरक का स्पष्ट आदेश है कि –

नित्या: प्राणभृतां देहे वातपित्त कफास्त्रय: ।
विकृता: प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डित: ।।

(चरक, सूत्र. १८ अ.)

अर्थात् प्राणधारी के देह में वात-पित्त-कफ ये तीनों नित्य वर्तमान रहते हैं। वे विकृतिस्थ हैं या प्रकृतिस्थ ? इसे जानने की विशेष चेष्टा पण्डित को करनी चाहिए। क्योंकि, आचार्य चरक के अनुसार सच्ची चिकित्सा वही है जिससे शरीर में विषय धातु समता प्राप्त करें और समधातुओं का अनुबन्ध (समभाव से स्थायी बनना) किया जाय। आचार्य चरक कहते हैं कि—

याभि: क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातव: समा: ।
साचिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ।।

कर्म शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति ।
समानांचानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया ॥
(चरक-सूत्र, १७ अ०)

अर्थात् जिन क्रियाओं द्वारा शरीर के धातु सम होजायं वही चिकित्सा है और वही चिकित्सा का कर्म होता है। क्योंकि शरीरस्थ धातु समूह का जिस प्रकार से वैषम्य नहीं हो और समधातुओं का अनुबन्ध (यथावत् स्थायित्व) हो, इसी उद्देश्य से चिकित्सा की जाती है। और आचार्य चरक का दृष्टि यह चिकित्सा कर्म तभी हो सकता है जबकि ऊपर बताये गये क्रम से तत्वों का विश्लेषण किया जाय। और तभी हम आचार्य चरक के इस कथन का रहस्य भी हृदयङ्गम कर सकेंगे कि—

समपित्तानिलकफाः केचिद् गर्भादिमानवाः ।
दृश्यन्ते वातलाः केचित् पित्तलाः श्लेष्मलास्तथा ॥
(चरक. सूत्र अ० ७)

अर्थात् गर्भावस्था से ही किसी किसी के वायु पित्त, कफ साम्यावस्थापन्न रहा करते हैं और कोई कोई गर्भ से ही वायु प्रधान, पित्तप्रधान, किंवा कफ प्रधान प्रकृति के हुआ करते हैं। और स्वस्थ माता-पिता से समधातु सन्तान तथा अस्वस्थ माता पिता से विषम धातु सन्तान की शास्त्रीय मर्यादा को पूर्ण हृदयंगम करते हुए सभी जन्मतः अनुबन्धी वंशागत रोगों का भी यथावत् निदान करते हुए सफल चिकित्सा सरलता से करने में समर्थ हो सकेंगे जो अव्यर्थ पद्धति आज भी एलोपैथ डाक्टरों को अज्ञात ही है।

श्वासरोग तथा उसका वैज्ञानिक विश्लेषण

आयुर्वेद के अनुसार यह श्वास रोग और कुछ भी नहीं, मात्र ओजो धातु का ऊर्ध्वगमन क्रिया रूप दोष से होने वाला श्वसन क्रियागत काठिन्य है जिसका एक मात्र सरल इलाज है स्थान भ्रष्ट उक्त ओजो धातु का पुनः स्वस्थानानुबन्धन। और इसी मूल उद्देश्य से आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में विराट् साहित्य उपलब्ध होता है।

पित्त तथा कफ प्रधान प्रकृति

मेरे नवीन सिद्धांतानुसार कफ तथा पित्त को अनुबन्धित कर दो ही प्रकृतियां मनुष्यों की हुआ करती हैं। एक पित्त प्रधान प्रकृति तथा दूसरी कफ प्रधान प्रकृति।

इस सिद्धान्त के अनुसार अनुलग्न कफ पित्त प्रकृति, एक मिश्र भेद है जो भी आचार्य चरक का संमत है।

दृश्यन्ते वातलाः केचित् —चरक सूत्र अ ७

में केचित् पद वातज प्रकृति या वात की असंमान्यता प्रकट करता है।

प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने मुक्तकण्ठ उक्त पद की व्याख्या करते हुए कहा है कि—

"अन्येतु, द्वितीये 'केचित्' ग्रहणात् ग्रन्थाधिक्येन तदग्रहणं वर्णयन्ति।" —चरक सूत्र ७, चक्रपाणि टीका

अर्थात्—कुछ लोग दूसरे श्लोकार्थ में केचिद् रहने से उसका ग्रहण नहीं किया गया बताते हैं।

समपित्तानिलकफाः—कहकर भी इसका स्पष्ट संकेत नहीं किया गया है कि प्रकृति आरम्भ में वात सर्वदा अप्रधान ही रहा करता है।

इस गूढ़ रहस्य को समझने के लिए यह स्मरण रखना होगा कि प्राणवह स्रोतों में सदोषता आती है तो श्वास वैषम्य हुआ करता है।

आचार्य चरक भी इस बात को मानते हैं कि—

'तत्र प्राण वहानां स्रोतसां हृदयं मूलम्, महास्रोतश्च। प्रदुष्टानांतु खल्वेषामिदं विशेष विज्ञानं भवति। तद्यथा-अतिसृष्टं प्रतिबद्धं प्रकुपित मल्पाल्पमभीक्ष्णं वा सशब्द शूल मुच्छ्वसन्तं दृष्ट्वा प्राणवहानि स्रोतांस्यस्य प्रदुष्टानीति विद्यात्"— (चरक० विमान० अ० ५)

अर्थात्—प्राणवह स्रोतों का मूल हृदय है और महा स्रोतस् भी। इन स्रोतों के प्रदुष्ट होने का यह विशेष लक्षण होता है। जैसे—अतिदीर्घ, प्रतिबद्ध (रुक रुक कर) प्रकुपित, अल्प-अल्प, बार-बार किंवा

शब्द और वेदना के साथ उसासें भरते हुए देखकर यह जान लेना चाहिए कि प्राणवह स्रोतों में पूर्ण सदोषता आगयी है।

इस दुष्टि का कारण बताते हुए वे स्वयं स्पष्ट करते हैं कि—

क्षयात् संधारणाद् रौक्ष्यात् व्यायामात् क्षुधितस्य च
प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्चदारुणैः॥
(वहीं)

अर्थात् धातुक्षय, मल-मूत्र आदि का वेग धारण, रुक्षता और भूखा होने पर व्यायाम तथा अन्य दारुण (कठोर परिश्रम के) कर्मों के अनुष्ठान से प्राणवाही स्रोतों की दुष्टि हुआ करती है।

क्योंकि, कि आचार्य चरक की यह सुस्पष्ट मान्यता रही है कि—

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः।
धातुभिर्विगुणश्चापि स्रोतसां सप्रदूषकः॥

अर्थात् जो आहार और विहार के वातादि दोष गुण के समान गुण वाला होता है, अथवा धातु गुणों से विरुद्ध गुण वाला होता है वह स्रोतों को अत्यधिक दूषित कर दिया करता है।

निःसन्देह, रूक्षता और दारुण कर्मानुष्ठान वात पित्तवर्धक होने के कारण ओजो धातु का विरोधी है, अतः उससे ओजो धातु का विघात का दूषण होना शास्त्र सिद्ध है और है विज्ञान संमत भी। और इस प्राणवह स्रोतस् की दुष्टि का इलाज 'श्वासि की क्रिया' द्वारा सूत्र रूप में बताकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इस प्राणवह स्रोत की प्रदुष्टि से ही श्वास रोग हुआ करता है। और साथ ही, यह भी संकेत कर किया गया है कि प्राणवह स्रोतस की प्रदुष्टि से श्वास ही नहीं बल्कि और भी अनेकानेक रोग होंगे, किन्तु उनकी सामान्य चिकित्सा श्वास चिकित्सा के समान ही होगी।

यहां में स्रोतः शारीरवाद की विस्तृत चर्चा करना उचित नहीं मानता हूं। उसके लिये शारीर स्रोतों के रोग और उनका सरल इलाज शीर्षक मेरा महानिबन्ध देखना चाहिए। किन्तु यह इतना अवश्य कहूंगा कि एलोपैथी के श्वास सं[illegible] रोगाध्यायोक्त रोग उतने स्पष्ट नहीं हैं जो प्रा[illegible] स्रोतोदोषज रोगाध्याय से स्पष्टतर हुआ करे[illegible] और जिनका इलाज इस आर्षपद्धति से आ[illegible] तथा अन्वर्थ हो सकेगा।

दमा और उसकी संप्राप्ति—

आवेगिक श्वास कष्ट साधारणतः श्वास[illegible] वा दमा कहा जाता है जिसके दो भेद होते हैं-

१. आर्द्र तथा २. शुष्क।

आर्द्र उसे कहा जायगा जिसमें कफ छं[illegible] हो और शुष्क वह है जिसमें कफ नहीं छंटे।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—ऐलोपैथी[illegible] विद्वान् अत्यानुभूतिक श्वास (allergic asthm[illegible] वेत्राणवीय श्वास (bacterial asthma), अ[illegible] श्वास (food asthma), अश्व श्वास (ho[illegible] asthma), पराग श्वास (pollen asthm[illegible] श्वास नलिका (bronchial asthma), [illegible] श्वास (cardiac asthma), वामक श्वास [illegible]ller's asthma), पेषक श्वास (grinder's as[illegible]ma), खनक श्वास (miner's asthma), कु[illegible] श्वास (potter's asthma), वृक्कज श्वास (re[illegible] asthma), वाष्पयान्त्रिक श्वास (steam fitt[illegible] asthma), प्रस्तर श्वास (stone asthm[illegible] सहज श्वास, नलिका श्वास (intrinsic br[illegible]chitic asthma), लक्षणज श्वास (symp[illegible]matic asthma) हृदधि ग्रन्थिक श्वास (thy[illegible] asthma)—ये कई एक श्वास रोग के [illegible] बताये हैं।

अत्यानुभूतिक श्वास (Allergic asthma)

यह श्वास रोग उन लोगों को हुआ करता[illegible] जिनकी श्वास नलिका वा वक्षःस्थल में जन्म[illegible] असाधारण्य रहा करता है। उनमें अत्यधिक [illegible]भूतिशीलता रहा करती है।

अल्प उत्तेजना पाने से ही हर्षणशील तन्तुओं में उद्गमन वा उभाड़ प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे लोगों में थोड़ी सी मात्रा में भी मिथ्या आहार-विहार से इस रोग का आक्रमण होता है।

यह श्वास प्रावेगिक हुआ करता है और इसके आक्रमण समय समय पर हुआ करते हैं। किन्तु अधिकांश रोगियों में दौरा बन्द रहने पर वक्षः परीक्षण यन्त्र से करने पर कुछ भी वक्षो विकार देखने में नहीं आता है। अनूर्जता के कारण इस रोग का आक्रमण वैसी ही स्थिति में अधिक हुआ करता है, जब रोगी दुर्बल हो जाता है। इसका सामान्य लक्षण यह है कि श्वास कष्ट, खांसी, शब्द युक्त जोर जोर से सांस लेना, श्लेष्मायुक्त थूकना और छाती में संकोच क्रिया का अनुभव होना।

श्वासनलिका प्रखण्डीय (bronchiolar), आक्षेप श्लैष्मिक कला शोथ (edema of mucosa), प्रंथिमय तत्वों का अत्युपचय और चिपचिपे पदार्थ का स्राव--ये नैदानिक परिवर्त्तन परिलक्षित हुआ करते हैं। सामान्यरूप से यह अनूर्ज तत्वों के श्वसन क्रिया द्वारा, किंवा मुख्यतः, किंवा त्वाच प्रवेश से हुआ करता है।

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री व्यूमाउण्ट (Mr. G. E. Beaumont) श्वासांतः प्रविष्ट अनूर्ज पदार्थों का परिगणन करते हुए पराग (pollen), गृह मण्डन (room dust), पुस्तक प्रोंछित (book dust), ओरिस नामक द्रव्य के मूल का चूर्ण, पशुरजः, पुष्परजः, औषधि इत्यादि का उल्लेख किया है और रक्तजात अनूर्ज पदार्थों के रूप में आहार पाचन परिणामों में खासकर अंडे, दूध, मछलियां, दही, आदि के भोजन के--मुख द्वारा लिये गये भेषजों, वेत्राणु परिणामों, सूची प्रवेशित सीरमों तथा चर्म परीक्षणमियों का निर्देश किया है।

औषधिगन्धज--यह श्वास 'स्टेमोनियम' तथा 'एडरीनलीन' जैसी औषधियों के आघ्राण से होते देखा गया है और 'एडरीनलीन' के सूची प्रवेशन किंवा 'एफेड्रीन' के मुख द्वारा लेने से रक्तजात वह रोग प्रत्यक्ष दृष्ट है। श्वास रोग की इस कोटि में वेत्राणु श्वास (bactrerial asthma), अंतज श्वास (food asthma), अश्व श्वास (horse asthma), तथा पराग श्वास (pollen asthma) --ये कई एक भेद इसी मुख्य भेद के अन्दर आ जाते हैं।

वेत्राणवीय श्वास (Bacterial asthma)—

वेत्राणु के साथ रोग संक्रमण होने पर अथवा रोग संक्रमण होने पर रोग मूल कारण का विश्लेषण करने पर वेत्राणु का जहां कारणत्व हो, वह श्वास वेत्राणवीय श्वास है। इसके वेत्राणुओं का यथावत् परिचय अभी तक नहीं हो सका है, अतः इसके सभी वेत्राणुओं का अंगुल्यानिर्देश सम्भव नहीं।

अन्नजश्वास (Food asthma)—

भुक्त अन्न यदि अन्नवह स्रोत में नहीं जाकर प्राणवह स्रोत में प्रविष्ट हो जाता है तो उससे उत्पन्न श्वास अन्नज श्वास (food asthma) कहा जाता है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि चौड़ी और सीधी रहने के कारण अधिकतर दाहिनी श्वास नलिका में खाद्यान्न का प्रवेश हो जाया करता है। किन्तु यदि वह अन्न सूक्ष्म नहीं रहा तो प्रविष्ट होते ही खांसी का वेग उत्पन्न करता है और उसी के सहारे बाहर आ जाता है। किंतु यदि वह सूक्ष्म रहा तो नलिका में अटक कर अन्नज श्वास का कारण बनता है।

भोजन के समय बातचीत करने, हंसने तथा असावधानी बरतने से यह रोग आशङ्कित हुआ करता है। इसीलिये भारतीय आचार्यों ने भोजन-काल में मौनावलम्बन करना बताया है।

=क्रमशः।

प्राणायाम और आरोग्य

विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

प्राणायाम क्रिया हमारे देश के लिये कोई नई वस्तु नहीं है। योग शास्त्र की यह वही चमत्कारिक क्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य स्वस्थ, अजर और दीर्घायु हो जाता है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनि इसी यौगिक क्रिया के द्वारा शतायु नहीं बल्कि सहस्रायु हुये हैं। मनुष्य को नीरुज तथा दीर्घायु बनाने में प्राणायाम एक सर्वोपरि क्रिया है। जब से हमने इसके प्रति उदासीनता बरती तभी से हम लोग रोग शोक के भण्डार और अल्पायु हो गये। हमारे पूर्वाचार्यों ने इसकी महत्ता को अनुभव करके ही द्विजों को संध्योपासना में इसे अनिवार्यता प्रदान की थी। ईश्वर प्राप्ति तथा मोक्ष का इसे माध्यम माना था। प्राणायाम के समय ललाट में त्रिनेत्र शिव का, हृदय में ब्रह्मा का और नाभि प्रदेश में बिष्णु का ध्यान करके इसको पूर्णता प्रदान की थी। उसका विकृत रूप आज भी हम देखते हैं कि सन्ध्योपासना के समय अधिकांश उपासक अपने नथुने दबाने तथा खोलने की विधि करके कुछ क्षण उसका अभिनय कर देते हैं। परन्तु आज तो वह अविशिष्ट क्रिया भी सन्ध्योपासना के अभाव में लोप हो गई।

प्राणायाम की गणना योग साधन के आठ अंगों में की गई है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये आठ अङ्ग हैं जिसमें प्राणायाम का स्थान मध्य में अर्थात् चौथा है। समाधि की प्रथम रूप रेखा प्राणायाम से ही निर्माण होती है। यम, नियम और आसन की सिद्धि के उपरांत ही प्राणायाम करना चाहिए। आसनों के पूर्व प्राणायाम उचित नहीं क्योंकि आसनों के द्वारा नाड़ियों को मृदु बनाया जाता है और तब प्राणायाम किया जाना हितकर है, यह योगाचार्यों का मत है।

महर्षि पातंजलि ने प्राणायाम की परिभाषा करते हुए कहा है कि श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम करने के पहले भूमि पर आसन बिछा लेना चाहिए। उस पर बैठकर प्राणायाम करना ठीक है। चटाई, दरी, कुशासन, मृगचर्म, ऊनी आसन, जो भी उपलब्ध हो काम में लाया जा सकता है। शान्ति और प्रसन्न मन से उस पर बैठकर स्वस्तिकासन, पद्मासन अथवा सिद्धासन लगाना चाहिए। स्मरण रहे कि नितम्ब से सिर तक का भाग समसूत्र में रहे अर्थात पीठ की रीढ़ झुकी हुई या टेढ़ी-मेढ़ी न रहे, दीवार के सहारे बैठकर इसका अभ्यास किया जा सकता है।

अब यह देखें कि आपके किस नथुने से सांस चल रहा है? जिससे चल रहा हो उसी नथुने से १०-१५ बार लम्बी लम्बी सांसे लेवें और छोड़ें, ऐसा करते समय दूसरा नथुना अंगुली से दबाये रहना चाहिए। इसके बाद दूसरे नथुने से इसी प्रकार श्वासोच्छ्वास की क्रिया करें। अब एक नथुने से सांस खींचे और दूसरे से छोड़ें। यह क्रिया भी १०-१५ बार करनी चाहिये। इसे भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं। लुहार की धोंकनी को भस्त्रिका कहते हैं। इसीलिये धोंकनी की तरह सांस लेने और छोड़ने से इसे भस्त्रिका कहा जाता है।

भस्त्रिका कर चुकने के कुछ सेकण्ड बाद, धीरे-धीरे उस नथुने से सांस खींचने की क्रिया करें, जिससे सांस स्पष्ट चल रहा हो। इस क्रिया को पूरक प्राणायाम कहा है। पूरक हो चुकने पर दोनों नथुने अंगुलियों से बन्द करके सांस को रोक दें। मुंह से अथवा नाक से सांस को निकलने न दें। इस क्रिया को कुंभक प्राणायाम कहते

हैं। जब थोड़ा भी दम घुटने लगे तब उस नथुने से सांस को धीरे धीरे छोड़ना चाहिए जिससे सांस नहीं खींचा था इस क्रिया को रेचक प्राणायाम कहा है। इस प्रकार पूरक कुंभक और रेचक क्रियाओं का एक प्राणायाम माना जाता है।

प्राणायाम करते समय तीन बन्धों का करना आवश्यक है। इनके बिना प्राणायाम अधूरा रह जाता है। योगाभ्यास में अनेक बन्ध हैं किन्तु प्राणायाम में केवल तीन बन्ध होते हैं। पहला मूलबन्ध, दूसरा उड्डियानबन्ध और तीसरा जालन्धर बन्ध। अपने गुदा मार्ग को सिकोड़ कर धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींच रखना मूलबन्ध कहलाता है। अपने पेट को पीछे की ओर खींचकर रीढ़ की हड्डी से सटाने की क्रिया को उड्डियान बन्ध कहते हैं और गर्दन की नस-नाड़ियों को सिकोड़कर अपनी ठुड्डी को कंठमूल से सटा रखने को जालन्धर बन्ध कहा जाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि किस बन्ध के करने में कितना समय लगना चाहिये? जितना समय पूरक करने में लगे उससे दुगना रेचक में और पूरक से चौगुना कुंभक में लगना चाहिये। इसके लिये घड़ी की सहायता ली जा सकती है अथवा गिनती गिन कर भी, प्रणवाक्षर ओम् अथवा अपने गुरुमन्त्र से भी समय का परिमाण रखा जा सकता है। स्मरण रखिये, जिस नथुने से पूरक किया जाय, रेचक उसी से न करके दूसरे से करना चाहिये।

प्राणायाम के लिये स्थान की ओर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है। जहां प्राणायाम करना हो, वह स्थान खुला हुआ, हवादार और सूर्यप्रकाश से प्रकाशित होना चाहिये। किसी प्रकार की बदबू, दूषित वायु, धूआं, गर्द आदि नहीं होना चाहिये। गांव के बाहर वन-उपवन, वाटिका, तालाब, नदी आदि जलाशय के निकट रम्य स्थान में जहां भीड़, कोलाहल और किसी प्रकार का भय तथा विघ्न की आशंका न हो, वहां पवित्र मन और शान्ति चित्त से प्राणायाम क्रिया करनी चाहिये। यदि मकान के कमरे में करना हो तो कमरे में अन्य कोई वस्तु नहीं रहनी चाहिये और स्वच्छ हवा के आने जाने के लिये, पर्याप्त खिड़कियां एवं दरवाजे होने आवश्यक हैं।

प्राणायाम करने का सबसे अच्छा समय सूर्योदय का है। सूर्योदय की प्रथम रश्मि जिस प्राणायाम के अभ्यासी का स्पर्श करती है निश्चय ही वह व्यक्ति निरोग, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, मेधावी और तेजस्वी बन जाता है। प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल में स्नायु मण्डल अधिक कोमल रहता है, अतः सायंकाल के समय भी प्राणायाम किया जा सकता है।

प्रातःकाल के समय प्राणायाम करते समय अपना मुख सूर्य की ओर तथा सायंकाल पश्चिम की ओर करके बैठना चाहिये। उत्तर दिशा में भी मुख रखा जा सकता है, किन्तु दक्षिण सर्वथा वर्जित है। उघाड़े बदन प्राणायाम करना श्रेयस्कर है। ओढ़ना आवश्यक हो तो शाल, दुपट्टा उपरना आदि ओढ़लें। कोई वस्त्र ऐसा न हो जो शरीर को और विशेषतः छाती पेट को कसता हो कपड़ों का रङ्ग श्वेत, हल्का नीला, हल्का पीला अथवा हल्का गेरुआ होना चाहिये। लाल, गुलाबी, हरे, काले, तेज नीले रङ्ग के वस्त्र न हों।

रेचक प्राणायाम के बाद तुरन्त ही सांस अन्दर नहीं खींच लेना चाहिये। जहां तक सम्भव हो कुछ देर ठहरना चाहिये। इसे बाह्य कुंभक कहते हैं। प्राणायाम में इसका महत्व बहुत है। इसे करने में जबरदस्ती कभी नहीं करें। सुगमतापूर्वक जितनी देर रुका जा सके, रुके रहें, जी घबराने तथा चक्कर आने की स्थिति के पूर्व ही धीरे धीरे पूरक करना आरम्भ कर दिया जाय।

संक्षेप में प्राणायाम की विधि इस प्रकार हुई कि स्वच्छ स्थान में प्रमुदित मन से मृदु आसन बिछाकर बैठ जाइये, दक्षिण दिशा को छोड़ कर मुंह किसी भी दशा में रखिये। पद्मासन, स्वस्ति-

कासन, किंवा सिद्धासन से बैठ जाइये। पहले भस्त्रिका क्रिया करें, भस्त्रिका के बाद बाह्य कुंभक कीजिये। इसके बाद पूरक प्राणायाम आरम्भ करदें साथ ही मूलबन्ध को भी। इसके तुरन्त बाद कुँभक कीजिये। इस समय जालन्धर बन्द करें, जब रेचक आरम्भ करे तब उड्डियान बन्ध करना चाहिये स्मरण रहे, रेचक करते समय जालन्धर बन्ध त्याग देना उचित है। प्रत्येक बन्ध आहिस्ता आहिस्ता करना और त्यागना चाहिये अन्यथा हानि होना सम्भव है। प्राणायाम के समय बलपूर्वक सांस को कदापि न रोकिये।

प्राणायाम के समय निश्चल शरीर और स्थिर-चित्त रहिये। अपने दोनों हाथ घुटनों पर सीधे तने हुये रखिये, मुट्ठियां बन्द अथवा ध्यानमुद्रा में अंगुलियां रहनी चाहिये। आंखें मूंदे रहना उचित है। इससे शक्ति का संचय तथा मन का चांचल्य दूर होता है। आंखें न मूंद कर अपनी नासिका के अग्रभाग पर किंवा भृकुटि के मध्य में भी दृष्टि स्थिर रखी जा सकती है। प्राणायाम के समय अपने मन को परमात्मा के स्मरण में लगा दीजिये। आप ऐसा मान लीजिये कि इस समय हम सत्-चित् और आनन्द तत्व के अति निकट पहुंच गए हैं और वह प्रसन्न होकर वरदान के रूप में अपनी महान् शक्ति को हम पर उड़ेल रहा है।

विधिपूर्वक किये गये प्राणायाम के गुण अपार हैं। सबसे बड़ा लाभ है आरोग्य प्राप्ति, आयु वृद्धि, मनोबल और तेज का उदय तथा प्रमेह स्वप्नदोष आदि वीर्य रोगों से सदा के लिये छुटकारा।

प्राणायाम से शरीर के भीतरी भागों की शुद्धि होती है। विशेषतः फेफड़ों के रोग जैसे क्षय, दमा आदि नहीं होने पाते। इससे शरीर में रुधिर का प्रभाव ठीक स्थिति में रहता है, जिससे शरीर में स्फूर्ति, उमंग तथा उत्साह का संचार होता है। शारीरिक अवयवों में रोगों के आक्रमणों को सहने एवं उनसे मुकाबिला करने की क्षमता बढ़ती है तथा शरीर दृढ़ पुष्ट, निरामय, सतेज, फुर्तीला बन जाता है। अतएव प्राणायाम नित्य नियमपूर्वक करना चाहिये। यही एक मात्र स्वास्थ्य प्रदायिनि ऐसी क्रिया है, जिसे बालक बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी समान रूप से करके महान लाभ उठा सकते हैं।

—विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगर-मालवा (म० प्र०)।

आवश्यक निवेदन—

१—प्रत्येक अङ्क के पेपर पर आपके पते के साथ ग्राहक नम्बर लिखा होता है। इसे नोट करलें तथा पत्र व्यवहार करते समय अवश्य लिख दिया करें।

२—स्थान परिवर्तन करने से पूर्व पता बदलने की सूचना अवश्य दीजियेगा। पहिला पता, नवीन पता तथा ग्राहक नम्बर स्पष्ट लिखें। २-४ माह के लिए अस्थायी रूप से आप स्थान परिवर्तन कर रहे हैं तो अपने पोस्ट आफिस में लिख कर दे जांय जिससे कि आपके अङ्क नवीन पते पर वे भेज दिया करेंगे, स्थायी रूप से पता बदलना हो तो हमें लिखें। बार-बार पता बदलवाना बड़ा कष्टप्रद, असुविधाजनक होता है।

३—जो अङ्क मिले, तभी देख लें कि उससे पहिला अङ्क मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला तो पोस्ट आफिस में तलाश करें तथा उनके उत्तर के साथ हमको लिखें।

—व्यवस्थापक।

उदुम्बर [गूलर]

श्री वेदमित्र आर्य

भारत में गूलर प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है। इसे संस्कृत में उदुम्बर, जन्तुफल, हेमदुग्धक (क्योंकि इसका श्वेत दुग्ध हवा लगने पर पीला हो जाता है) कहते हैं। फारसी में इसे अंजीरे अहमक् और अंग्रेजी में cluster fig या country fig कहते हैं। लैटिन भाषा में इसे Ficus glomerata कहते हैं।

इसका वृक्ष ३० से ६० फीट ऊँचा, विशाल छायादार होता है। छाल रक्ताभधूसर वर्ण की, पत्र ३ से ४ इंच लम्बे, चिकने, अग्र भाग नुकीला, तीन शिराओं से युक्त होता है। फल गुच्छों में आते हैं, कच्चेपन पर हरे और पक होने पर लाल वर्ण के होते हैं। इस वृक्ष की छाल, पत्र, फल और क्षीर (दुग्ध) मुख्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। उदर विकारों में पका फल प्रयोग में नहीं लाना चाहिए क्योंकि इसमें कृमि होते हैं और उदर में जाकर कृमि उत्पन्न कर देते हैं।

वैज्ञानिकों ने इसमें निम्न पदार्थों का संगठन बतलाया है–Tannin, मोम, Caoutchouc तथा भस्म [राख] इसकी भस्म में Silica और phosphoric acid पाया जाता है।

इसके मुख्य कर्म हैं–मूत्र संग्रहणीय, स्तम्भन, ग्राही, भग्न संधानकर तथा दाहशामक। अन्य कर्म इस प्रकार से हैं वर्ण्य, शोधन, रोपण, तृषाहर, शोथहर, कृमिकर, संकोचक, रक्तपित्तशामक इत्यादि।

मधुमेह, प्रमेह– सफेद मूसली में गूलर का दुग्ध मिला कर गोली बना लें. रोगी की दशा अनुसार दें। अत्यन्त लाभ होता है। इस रोग में उदुम्बरसार का भी प्रयोग करते हैं तथा गूलर पत्र चूर्ण भी ४ माशे से २ तोले तक मट्ठे के साथ देते हैं। जिनको मट्ठा लाभप्रद नहीं होता वह जल या दूध से ले सकते हैं और अधिक शीघ्र लाभ प्राप्त करने के लिए चन्द्रप्रभा वटी प्रयोग करते हैं।

प्रमेह में गूलर का पका फल खाने को देते हैं और इसकी छाल का क्वाथ भी ५ से १० तोले तक प्रयोग करते हैं।

असाध्य रक्तातिसार–एक रोगी जिसकी आयु १६ वर्ष की थी ऐलोपैथिक चिकित्सकों से निराश होने के पश्चात् आया। उसको गूलर का दुग्ध एक छुआरे पर रख कर प्रातः खाने के लिए दिया सन्तोषजनक लाभ हुआ। इसके अपक्व फलों का शाक भी दिया जो अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुआ।

प्रवाहिका (Dysentery), ग्रहणी (Chronic Diarrhoea)–इसमें गूलर की छाल का काढ़ा बना कर देते हैं और भोज्य पदार्थों के रूप में गूलर के अपक्व फलों को उबाल कर मट्ठा या दही में

रायता बना कर देने से अत्यन्त लाभ हुआ है।

असृग्दर (रक्त प्रदर) तथा श्वेत प्रदर-रक्त प्रदर में फलों का रस मधु के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है। श्वेत प्रदर में गूलर की छाल का क्वाथ अत्यन्त लाभ करता है। इन रोगों में वस्तियों का प्रयोग लाभकर होता है।

अति आर्तव-इस व्याधि में गूलर की छाल के क्वाथ में मिश्री मिला कर देने से आशातीत लाभ होता है।

कष्टार्तव (Dysmenorrhoea)-इसमें गूलर पत्र के क्वाथ की उत्तर वस्ति (douche) लाभकारी है।

गर्भस्राव-गर्भिणी को इसके कच्चे फलों की खीर पका कर खिलाने से गर्भस्राव की आशंका नहीं रहती।

योनि शोधन- चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ३० में उदुम्बरादि तैल का प्रयोग बतलाया है। इसको निम्न औषधियों के साथ तैयार करते हैं-कच्चे सूखे गूलर के टुकड़े १ द्रोण [१२ छ० २ तो०] पचवल्कल (बरगद, गूलर, पीपल, पिलखन और अम्लवेतस) इन सबकी छाल, पटोलपत्र, निम्ब पत्र, चमेली के पत्र, सब समान भाग लेकर (कुल भाग १ द्रोण) जल एक द्रोण, एक रात्रि भिगोये रखें। प्रातः काल इसको छान कर इसमें प्रक्षेप के लिए लाख, ढ़ाक की छाल और सैमल का गोंद मिलायें और तिल एक प्रस्थ [१२ छ० ४ तो०] का पाक सिद्ध करें।

उदुम्बरादि तैल के गुण—योनि की दाह में इसके फाये रखने से पीड़ा शान्त होती है। इस तैल के प्रयोग से पिच्छिला, विवृता (योनि में मांस बढ़ना), चिरकाल दुष्टा दारुण योनि भी सात दिन के प्रयोग से स्वस्थ हो जाती है और सन्तानोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त होती है। गूलर, पंचवल्कल, मालती, निम्बपत्र के शीतल काथ में शर्करा मिलाकर इससे योनि में परिसेचन (धोना) भी करते हैं।

योनि शोधनार्थ तैल—चरक चि० स्थान में इस तैल का निम्न प्रकार से वर्णन है। तिलों को दुग्ध से ३ बार भावना देकर इन तिलों को पेर कर तैल निकालें। इस तैल को गूलर की छाल के ४ गुने काथ में सिद्ध करके इसमें पिचु (फाया) भिगोकर रखते हैं। गूलर के कषाय में शर्करा मिलाकर योनि को धोने से लाभ होता है।

योनि शोथ, योनि शूल—तिल तैल एक प्रस्थ (१२ छटांक ४ तोला) बकरी का मूत्र १ सेर १३ छटांक, इतना ही बकरी का दुग्ध, प्रक्षेप के लिये धाय के पत्र, आंवले के पत्र, शंखनाभि या रसांजन, मुलहठी, कमल, जामुन की लकड़ी, आम, अनार की छाल, कच्चे गूलर, प्रत्येक एक-एक अक्ष लेकर तैल सिद्ध करें। इस तैल का पिचु (फाया) योनि में रखते हैं और इस तैल की वस्ति का भी प्रयोग करते हैं। कटि, पीठ, त्रिक (कूल्हा) पर इसका अभ्यङ्ग करते हैं। इस तैल से पिच्छिला, स्राव युक्त योनि, विप्लुता, उत्ताना, शोथयुक्त छाले एवं शूल से युक्त योनि स्वस्थ हो जाती है। इससे अत्यन्त लाभ होता है ऐसा पुनर्वसु आत्रेय चरक में लिखते हैं।

गर्भवती का अतिसार—गूलर का फल मधु से देने से अत्यन्त लाभ होता है।

गर्भ रक्षा, स्तन्य बर्धनार्थ—राज निघण्टु में इसकी छाल को गर्भवती स्त्री के गर्भ की रक्षा के लिये एवं स्तनों में दुग्ध वृद्धि (Galactogenic action) के लिये विशेष उपयोगी बतलाया है।

विषम ज्वर – मलेरिया में गूलर का पानक देने से अत्यन्त लाभ होता है। कभी-कभी तो कुनीन से भी अधिक लाभ करता है। पानक बनाने की विधि—अरवा चावल ४ तोला, जल १२ तोला, में एक या दो घण्टे तक भिगोकर पानी को छान लें और ४ तोला गूलर के पत्ते लेकर सिल पर २ तोले मिश्री के साथ पीस लें और उपरोक्त जल में मिलाकर छान लें। दिन में तीन बार पीने को दें।

पित्तज ज्वर—बृहन्निघंटु रत्नाकर ने ज्वराधिकार में उदुम्बरादि हिम का वर्णन किया है। हिम को इस प्रकार से तैयार करते हैं—गूलर की जड़ और गिलोय का कषाय बनालें। कषाय बनाने के लिये २ तोला गूलर की जड़ और २ तोला गिलोय लेकर यवकुट करलें और १६ तोला जल में डालकर उबाल लें और थोड़ी देर तक रहने दें, ठंडा होने पर मसल कर छान लें अथवा पटोल की, जड़ का क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर देने से पित्तज ज्वर का नाश होता है।

विसूचिका—पूर्वरूप प्रतीत होने पर इसका पानक देने से दशा चिन्ताजनक नहीं होती, हैजा हो जाने पर गूलर पत्र ३ तोला, चावल की धोवन के साथ पीसकर पानक की विधि से बना लें और इसमें चीनी मिलाकर प्रत्येक कै या दस्त होने पर दें, लाभप्रद सिद्ध होता है। अनेकों रोगियों पर परीक्षा करके देखा है। उदुम्बर क्षार भी ५-५ रत्ती देने पर लाभ होता है। इसको प्रयोग करते समय पथ्य हल्का देना चाहिये।

रक्तपित्त (haemorrhagic disease)-उदुम्बरादि लेह नाम से रक्तपित्त नाशक योग का वर्णन मिलता है। गूलर का पका फल, काश्मीरी फल, हरड़, छोहारा और मुनक्का। इन्हें पृथक् पृथक् चूर्ण करके शहद में मिलाकर अवलेह बनावें। इसको देने से रक्तपित्त का नाश होता है। पके गूलर को गुड़ या शहद के साथ मिला कर देने से नासा से होने वाले रक्तस्राव का नाश होता है।

अर्श—अर्श के मस्सों पर गूलर पत्र स्वरस लगाने से अत्यन्त लाभ होता है। वस्ति भी देते हैं।

व्रण—Oriental sore (औरङ्गजेबी फोड़ा या आलमगीरी) के लिये यह महा औषधि है। मेरे पिताजी (डा० बुद्धिप्रकाश जी आर्य) कच्चे गूलरों को दही में पिसवाकर व्रण पर गाढ़ा गाढ़ा लगवा कर पट्टी बंधवा देते हैं। ३-३ घंटे बाद पट्टी बदलते रहते हैं उससे व्रण की दाह तुरंत शान्त हो जाती है और जख्म भी शीघ्र ही ठीक हो जाता है। यह अनेक रोगियों पर परीक्षित है।

गूलर के दुग्ध को एक कपड़े पर लगाकर व्रण शोथ (ककयारी) पर लगाने से बैलाडोना मरहम से भी अधिक लाभ होता है। कंठमाला में भी प्रयोग करते हैं। व्रणों पर तूतिया के साथ गूलर के पत्रों को पीसकर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

मुखव्रण (Sore throat)—एक छटांक गूलर फल एक पाव जल में पका लें। क्वाथ के कवल धारण करना मुख व्रण में उपयोगी है।

पाषाण गर्दभ (Mumps), ग्रन्थि वृद्धि, शोफ (Inflammatory glandular enlargement)—इसमें गूलर की जड़ों में चीरा लगाकर निकलें दूध का प्रलेप करते हैं।

नेत्राभिष्यन्द—आंख दुखने पर गूलर के पत्रों का स्वरस डालने से अत्यन्त लाभ होता है। आंख दुखने की पीड़ा में उदुम्बर क्षार को अर्क गुलाब में घोलकर आंख को धोने से पीड़ा में कमी होती है और नींद न आने पर जल में एक साफ पट्टी भिगोकर बांधने से नींद आजाती है।

क्षुधा शान्त्यर्थ—सुश्रुत में क्षुधा की तीव्रावस्था को शान्त करने के लिये गूलर की छाल का चूर्ण स्त्री दुग्ध के साथ लेने के लिये कहा है।

—श्री वेदमित्र आर्य ए., एम. बी. एस. (तृतीयवर्ष)
गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

अशोक

श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार

[भाग ३३ अङ्क ८ से आगे]

संस्कृत साहित्य में अशोक के चार प्रकार मिलते हैं—लाल, नीला, पीला और सफेद। मल्लीनाथ (पन्द्रहवीं शती) ने अशोक कल्प से एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें फूलों के रंग भेद से अशोक के लाल और सफेद दो भेद बताये हैं। श्वेत अशोक तान्त्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता था और लाल कामोद्दीपक समझा जाता था।[1] राज शेखर ने लाल, पीले और नीले अशोक का वर्णन किया है।[2] बाण (सातवीं शती) की कादम्बरी में भी हम नीले अशोक का वर्णन पाते हैं।[3]

आयुर्वेदिक तथा संस्कृत साहित्य में लाल अशोक (सेरेका इण्डिका) को ही मुख्यता दी गई है। यह सर्वत्र वास्तविक अशोक के रूप में विदित है। फूलों के वर्णन में हमने बताया है कि नये खिले फूलों का रंग पहले पीला रहता है, इसलिये हमारी सम्मति में संस्कृत कवियों के पीले अशोक को पृथक् जाति या प्रकार न मान कर लाल अशोक ही माना जाना चाहिए। हां, यह कहना कठिन है कि बाण और राज शेखर का नीला अशोक क्या है?

वैद्यों में पौलिएल्थिया लौंगिफोलिया (गुजराती नाम, आसोपालव) को प्रायः कर अशोक कहने की प्रथा चल पड़ी है। संस्कृत निघण्टुओं की व्याख्या में अशोक के गुजराती नामों में हम आसोपालव भी देखते हैं। अंग्रेजी की कुछ पुस्तकों में भी मैंने यह देखा है। वैद्य बापालाल शाह[4] की सम्मति में पौलिएल्थिया लौंगिफोलिया के लिए गुजराती नाम आसोपालव है और अशोक को आसोपालव नाम देना भूल है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आसो-पालव को ही मल्लीनाथ ने श्वेत अशोक कहा है। इसके फूल सफेद पीले हरे से होते हैं, मल्लीनाथ ने उन्हीं को सफेद कह दिया है। औद्भिदी के आधुनिक विद्वानों के अनुसार आसोपालव मूलतः भारत का पौधा नहीं है। श्रीलंका में यह निसर्ग में स्वयं उगने वाला वृक्ष है। वहां से यह सदियों पहले भारत आ गया होगा। वृक्ष सीधा लम्बा और बहुत घनी शीतल छाया वाला होने से यह सर्वत्र पथवृक्ष की तरह बहुधा लगाया जाता है। मुगल शासकों के मकबरों पर तथा प्राचीन संरक्षित इमारतों के चारों ओर बागों में इसके वृक्ष प्रायः देखने में आते हैं। इसके पत्ते लहरदार होते हैं। असली अशोक के समान इसके फूल सुन्दर और आकर्षक नहीं होते। डल्हण ने अशोक की पहचान "लोहित कुसुमः स्वनामख्यातः" इस प्रकार लिखी है। दूसरे कवियों ने भी जिस सुन्दर फूल की प्रशंसा अशोक नाम से की है वह आसोपालव नहीं हो सकता। बहुत से वैद्य लोग अशोक छाल के स्थान पर आसोपालव की छाल को बरतने लगे हैं। वैद्य जगत में यह नकली अशोक या बंगाली अशोक के नाम से प्रसिद्ध है। आयुर्वेदिक कालेजों के कुछ अध्यापकों को मैंने आसोपालव वृक्ष को देवदार कहते सुना है जो कि सर्वथा भ्रमात्मक है।

यह भी लाभ तो करता है।

स्त्री रोगों में आसोपालव के प्रयोग का अनुभव मेरे एक वैद्य मित्र ने इस प्रकार बताया है—३५-४

---

[1] प्रसूनैकरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा।
बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः ॥ अशोक कल्प

[2] चैत्रे चित्रो रक्त नीलाव शोको
स्वर्णा शोकस्त-तृतीयश्च पीतः। राजशेखर

[3] नीलाऽशोक वनायमानं कुसुमप्रकर पतित मधुकर वृन्दान्धकारैः। कादम्बरी, पूर्वभाग, १६०।

[4] निघण्टु आदर्श (गुजराती), १६२७।

वर्षा की एक सम्पन्न स्त्री को रक्त प्रदर की शिकायत उग्र रूप में थी। मैं रोज बगीचे जाकर एक डेढ़ छटांक ताजी छाल उतार लाता था। इसकी छाल लम्बी परत में आसानी से खिंच आती है। कुण्डी सोटे में आधे तोले भर तुखमलंगा के साथ खूब रगड़ कर रस निचोड़ लेता था। तुखमलंगा को रात को पानी में भिगो दिया जाता था। बकरी के धारोष्ण दूध के साथ मैंने इसे लगातार पन्द्रह दिन रस पिलाया था। और मुझे अचरज हुआ कि कई प्रकार की पेचीदी चिकित्सा कराने पर जिसे आराम नहीं आ रहा था वह इस साधारण इलाज से चंगी हो गई।

रासायनिक संगठन—

कर्नल चोपड़ा (१९३३) के अनुसार छाल की सन्तोषजनक रासायनिक परीक्षा नहीं हुई है। ऐवट (१८८७) ने बताया था कि इसमें शोणद्रु वि (haematoxlin) विद्यमान है। हूपर (फार्माकोग्राफिया इण्डिका, १८८३) ने शल्कि (टैनीन) का अच्छा परिमाण दिखाया है। कलकत्ता के स्कूल ऑफ ट्रोपिकल मेडिसन के केमिस्ट्री विभाग में विभिन्न विलेयकों के साथ छाल का निस्सार लिया गया था। प्राप्त परिणाम इस प्रकार थे—

मृत्तैल दत्तु निस्सार (पैट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रैक्ट) ०. ३०७ प्रतिशत

दत्तु निस्सार (ईथर एक्स्ट्रैक्ट) ०. २३५ प्रतिशत

परिशुद्ध सुषविक निस्सार (एब्सोल्यूट एलकोहलिक एक्स्ट्रक्ट) १४. २ प्रतिशत

सुषविक निस्सार गरम पानी में प्रायः सारा घुल जाता था। इसमें शल्कि की एक बड़ी राशि पाई गई और सम्भवतः एक जीव द्रव्य (आर्गेनिक सब्स्टैन्स) भी इसमें था जिसमें लौह विद्यमान था। कर्नल चोपड़ा (१९३३) बताते हैं कि क्षाराभ (एलकलॉयड) चढ़नशील तैल इत्यादि की प्रकृति के कोई क्रियाशील तत्व नहीं प्राप्त हुए। श्री मुकर्जी (१९५३) ने दिखाया है कि छाल में थोड़े परिमाण में एक उड़नशील तेल विद्यमान है। छाल में खदिर (Catechol) भी पाया गया है।

उपयोगी भाग—

प्रधानतया छाल चिकित्सा में काम आती है।

ताजी छाल का अन्तः पृष्ठ हलके बभ्रु रंग का होता है जो सूखने पर रक्ताभ-बभ्र वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। छाल कठोर तथा तन्तुमय और स्वाद में कड़वी होती है। यह अन्वायाम वलित होती है।

औषधि प्रयोग के लिये ली जाने वाली छाल का प्रमाप (स्टैन्डर्ड) स्थिर रखने के लिये ध्यान रखना चाहिये कि इस में विजातीय जैव्य पदार्थ (organic matter) दो प्रतिशत से अधिक न होना चाहिए।

आणुवीक्षिक परीक्षा—

त्वक्षा (phellem) त्वक्‌धा (phellogen) और उपत्वक्षा (phelloderm) से बाह्यवल्क (periderm) बना होता है। अनुप्रस्थ छेद (transverse section) में त्वक्षा कोशाओं (cork cells) के नाप २५-३०× ९.२४-११.५ माइक्रोन और आयाम छेद (longitudinal section) में नाप २५.२५×८.५—११ माइक्रोन हैं। द्वितीयक बाह्यक तन्तु (secondary cortical tissue) गहरा होता है जिसमें चूर्णातु तिग्मीय (calcium oxalate) के संक्षेत्र स्फट उपस्थित होते हैं। उपत्वक्षा (phelloderm) के अन्दर प्रस्तर कोष्ठ (stone cells) खिष्म (patches) में पड़े रहते हैं। कभी-कभी ये प्रस्तर कोष्ठ इस प्रकार मिल जाते हैं कि पक्तियां बन जाती हैं। तीन प्रकार के प्रस्तर कोष्ठ सामान्यतया विद्यमान होते हैं—रेखीय प्रतिरूप (linear type), आयत प्रतिरूप (rectangular type) और समव्यास (isodiametrical), द्वितीयक अधोवाही (secondary phloem) की बनावट में देखा गया है कि यह अधोवाही जीवितक

(phloem parenchyma), चालनी नाल (sieve tubes) और अधोवाही तन्तु (phloem fibres) से बनी होती है। चालनी नालों (sieve tubes) के साथ सखि-कोशाएं (companion cells) भी होतें हैं।

अधोवाही तन्तु (phloem fibres) की रचना में ३ से अधिक कोष्ठों के समूह होते हैं। चूर्णातु तिग्मीय (कैल्शियम ऑग्जेलेट) के संचेत्र स्फट (prismatic crystals) के साथ स्फट तन्तु उपस्थित होते हैं।

गुण[1]

सब निघण्टुकारों ने अशोक को शीतल और कृमिनाशक बताया है। आनन्दाश्रम मुद्रणालय (पूना, १६२४) से प्रकाशित राजनिघण्टु में इसे कृमिकारक लिखा है। सम्भवतः वह पाठ अशुद्ध है। भावमिश्र और कैयदेव को छोड़कर सब लेखकों ने इसे मधुर कहा है। नरहरि और धन्वन्तरि इसे हृदय हितकर भी समझते हैं। तिक्त और कषाय रस के कारण भावमिश्र कैयदेव और निघण्टुरत्नाकर इसमें ग्राहीगुण प्रतिपादन करते हैं। धन्वन्तरि को छोड़कर सबने इसे दाहनाशक बताया है। पित्तशामक उपयोगिता धन्वन्तरि, भावमिश्र और कैयदेव ने प्रतिपादित नहीं की। भावमिश्र, कैयदेव और निघण्टु रत्नाकर ने इसे प्यासरोग को शान्त करने वाला बताया है। नरहरि और निघण्टुरत्नाकर की सम्मति में यह रंग को निखार कर शरीर की कान्ति को बढ़ानेवाला पाया है। विषनाशक उपयोगिता धन्वन्तरि और नरहरि ने स्वीकार नहीं की। गुल्म, शूल, अफारा तथा दूसरे पेट के रोगों में इसे नरहरि और डूप (१६११) के अनुसार उपयोग व उपज की दृष्टि से यह कोई महत्व का वृक्ष नहीं है।

इसकी लकड़ी नरम है। प्रति घन फुट लकड़ी का भार लगभग पचास पौंड है।

उपयोगिता की दृष्टि से यह घटिया लकड़ी प्रतीत होती है परन्तु लंका में इसे मकानों के अन्दर काम में लाया जाता है।

निर्मितियां—

अशोक क्वाथ (Decoctum Asokae)—

अशोक का मोटा चूर्ण	५६ (औंस)
आसुत जल	२० (औंस)

अशोक को पचास तरल औंस आसुत जल के साथ बीस तरल औंस शेष रहने तक उबालें।

मात्रा - आधे से एक द्रव औंस

अशोक तरल निस्सार (एक्ट्रैक्टम अशोकी लिक्विडम)—

अशोक की छाल का मोटा चूर्ण २० शुक्ति, मधुरी (ग्लिसरीन) २॥ तरल शुक्ति, सुषव (एल्कोहल) ६० प्र तिशत ५ तरल शुक्ति, आसुत जल २० शुक्ति तक।

---

[1] क अशोकः शीतलश्चार्शः कृमीन्हन्ति प्रयोजितः।
अपची नाशयत्येव सर्वव्रणविनाशनः॥
अशोको मधुरोहृद्यः सन्धानीयः सुगन्धिकः॥
ध. नि. आम्रादि ५, १६०-१६१

ख अशोकः शिशिरो हृद्यः पित्तदाहश्रमापहः।
गुल्मशूलोदराध्माननाशनः कृमिकारकः॥
रा. नि., करवीरादि. १०, २७३

ग अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः।
शोषापचीतृषादाहकृमिशोथविषास्रजित्॥
भा. प्र. पुष्पादि, ४४-४५

घ अशोकः शीतलस्तिक्तो वर्ण्यो ग्राही कषायकः।
दोषापचीतृषादाहकृमिशोथविषास्रजित्॥
कै. दे. नि. औ. व., १०८६

ङ अशोको मधुरः शीतश्चास्थिसन्धानकृन्मतः।
प्रियः सुगन्धिः कृमिहृत्तुवरोष्णश्च तिक्तकः॥
शरीरकान्तिकृच्चैव स्त्रीणामुच्छोकनाशनः।
ग्राही पित्तहरो दाहश्रमगुल्मोदरापहः॥
शूलाध्माने विषञ्चार्शो व्रणं सर्वां तृषां तथा।
शोथापचीज्वरं चैव नाशयेद्रक्तजां रुजम्॥
नि. र.

आसुत जल के साथ अशोक छाल को पारच्यवन (percolation) द्वारा उत्स्रावण (exhaust) करें। पारच्यव (percolate) का वाष्पीभवन करके बारह तरल शुक्ति (औंस) बनालें। इसमें मधुरी (ग्लिसरीन) मिलायें और आधे घण्टे तक उबालें। ठण्डा करें। सुषव (एल्कॉहल) और पर्याप्त आसुत जल मिलायें जिससे अभीष्ट आयतन (Volume) प्राप्त हो जाय। चौदह दिन तक अलग रखा रहने दें। छान लें। प्रमाप (स्टैण्डर्ड) अशोक तरल निस्सार वह माना जाता है जिसमें सुषव मात्रा (alcohol content) १८-२२ प्रतिशत हो।

इसकी मात्रा एक से दो तरल शाण (द्रव ड्राम) है।

आयुर्वेदिक निर्मितियां —

आयुर्वेदिक फार्मेसियां आजकल अशोक की छाल से मुख्यतया दो निर्मितियां (प्रेपरेशन्स) तैयार कर रही हैं—अशोक घृत और अशोकारिष्ट। चक्रपाणि, भावमिश्र तथा शार्ङ्गधर ने अशोक घृत का सम्भवतः प्रयोग नहीं किया। प्रतीत होता है कि बंगसेन द्वारा संकलित सारकौमुदी में सर्वप्रथम अशोक घृत का उल्लेख हुआ है। इसका निर्माण हम यहां दे रहे हैं।

अशोक घृत [1]—२ सेर अशोक की छाल को आठ सेर पानी में पकायें। जब २ सेर काढ़ा बच जाय तो छान लें। इसी प्रकार एक सेर जीरे को चार सेर पानी में पकाकर दो सेर काढ़ा बना लें। चावलों की पिच्छ, बकरी का दूध और भांगरे का रस प्रत्येक दो सेर लें। जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, चिरौंजी, फालसा, रसौत, अशोक की जड़ की छाल, किशमिश, शतावरी और चौलाई की जड़ प्रत्येक ढाई तोले लें। इन्हें मोटा-मोटा कूटकर सिलबट्टे पर चटनी की तरह रगड़ लें। सब चीजों को दो सेर गौ के घी में विधिपूर्वक पकायें।

निर्देश—यह घृत स्त्रियों के इन रोगों में प्रयोग किया जाता है-त्रिदोषज, श्वेत, नील तथा कृष्ण प्रदर; कुक्षिशूल, कमर दर्द और योनिशूल; मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, खांसी, दमा आदि

---

[1] क-अशोक वल्कल प्रस्थं तोयाढक विपाचितम्।
पादस्थेन घृत प्रस्थं जीरक क्वाथ संयुतम्॥
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृत तुल्यं प्रदापयेत्।
तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः॥
जीवनीयैः पिपालैस्तु परुषैः सरसांजनैः।
पस्ट्याह्वाशोक मूलञ्च मृद्वीका च शतावरी॥
तण्डुलीयक मूलंच कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः।
शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत्॥
पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोष समुद्भवम्।
श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरम् हन्ति दुस्तरम्॥
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वजम्।
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वास कासकम्॥
आयुः पुष्टिकरं बल्यं बलवर्ण प्रसादनम्।
देयमेतत्परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्तितम्॥
—भैषज्य स्त्रीरोगाधि १७-२३

ख—अशोकवल्कल प्रस्थं तोयाढके विपाचितम्।
तेन पादावशेषेण जीरकेण तथैव च॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्प्रक्षिप्य च तथापरम्।
तण्डुलाम्बुन्यजाक्षारं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्॥
केशराजरसस्यापि प्रस्थमेकं भिषग्वरः।
जीवनीयैः पिपालैश्च परुषसरलाञ्जनैः॥
षट्याह्वाशोक मूलञ्च मृद्वीका च शतावरी।
तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेतैः पलार्द्धकैः॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भदन्त्वाशुचूर्णितम्।
पुष्पयोगेन तत्पीतं निहन्यात् सर्वं दोषजम्॥
श्वेतं कृष्णं तथा नीलं प्रदरं हन्ति दुस्तरम्।
कुक्षिशूलं योनिशूलं पृष्ठशूलञ्च दारुणम्॥
मन्दाग्निमरुचिपाण्डुं कृशतां श्वासकासिनाम्।
अशोक घृतमेतन्तु विख्यातं स्त्रीगदेषु च॥
—स्नेहमालिका

श्वास संस्थान के रोग। इसके सेवन से स्त्रियों के विविध रोग दूर होकर वे बलवती और पुष्टिवती बनती हैं, उनका रंग निखर जाता है और आयु दीर्घ होती है। गोविन्ददास ने इसके गुणों की प्रशंसा में लिखा है कि विष्णु ने इसे उपर्युक्त रोगों में उपयोगी पाया है।

मात्रा व सेवन विधि—आधा तोला घी में डेढ़ माशा खाण्ड मिलाकर प्रातः सायं दूध के साथ लें।

अशोकारिष्ट[1]—दस सेर अशोक की छाल को दो मन २२॥ सेर पानी में पका कर २५॥ सेर पानी बचा लें। काढ़े को छान कर शीतल होने पर इसमें बीस सेर गुड़ घोल दें। निम्न लिखित चीजों को मोटा कूट कर मिला दें—धाय के फूल १ सेर ६ छटांक ३ तोले, काला जीरा, मोथा, सोंठ, दारु हल्दी, नीलोफर, त्रिफला, आम की गुठली की गिरी, जीरा, बांसे की छाल और लाल चन्दन प्रत्येक आठ तोला। विधिपूर्वक अरिष्ट बना लें।

घड़े के अन्दर घी का लेप करके उसे चिकना बना लेना चाहिए। फिर ६ माशा लोंग और ६ माशा कपूर को जलते अंगारों पर रखकर घड़े को उल्टा करके धूनी देनी चाहिए। तब उसमें सामान डाल कर ढक कर एकान्त में रखदें। भुस में दबा दें तो अच्छा रहेगा (इससे फर्मेण्टेशन शीघ्र आरम्भ हो जायगा) फर्मेण्टेशन की क्रिया को शीघ्रता तथा तेजी से करने के उद्देश्य से काढा डालने से पूर्व आधा सेर किण्व (सुराबीज) डाल देते हैं। यीष्ट की सहायता भी ली जा सकती है। गरमी, वायु मण्डल की आर्द्रता आदि के अनुसार पन्द्रह दिन से एक मास में अरिष्ट तय्यार हो जाता है।

मात्रा व सेवन विधि—१॥ से २॥ तोले तक समान भाग जल मिला कर भोजन के बाद दोनों समय लें।

निर्देश—

अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है। स्त्रियों के प्रदर रोग की यह उत्तम औषधि है। गर्भाशय पर यह बलदायक औषधि के रूप में कार्य करता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव में इस का प्रयोग किया जाता है। अत्यार्तव के यदि निम्नलिखित कारण हैं तो यह लाभ करता है—गर्भाशय की अन्तः स्तर (endometrium) में विकार, डिम्ब प्रणालियों में विकार, प्रसव के पश्चात् गर्भाशय के अन्दर या बाहर हो जाने वाले व्रण। गर्भाशय या प्रजनन संस्थान के अन्य भागों में कैन्सर उत्पन्न हो जाने के कारण अत्यार्तव है तो उसमें अशोकारिष्ट का सेवन लाभ नहीं पहुँचता।

मासिक धर्म यदि कष्ट से आता है, उदर प्रदेश में पीड़ा होती है तो सामान्यतया उसका कारण डिम्बाशय (ovary) या डिम्ब प्रणाली में विकार का होना है। कष्टार्तव में कुछ रोगियों को तीव्र पीड़ा के साथ-साथ कमर में दर्द, सिर में दर्द पेट की अग्नि का मन्द पड़ जाना, भोजन में अरुचि, उलटियों का आना आदि लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। हलका-हलका बुखार रहने लगता है जो ९९ से १०० अंश फार्नहाइट के बीच में रहता है। अशोकारिष्ट इन सब कष्टों को शांत करता है।

मासिक धर्म की अनियमितता में इसका प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय को बलवान बनाकर उसे यह गर्भ धारण करने के योग्य बनाता है।

—क्रमशः।

---

[1] अशोकस्य तुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम्॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम्।
अजाजी मुस्तकं शुण्ठी दार्व्युत्पलफलत्रिकम्॥
आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनञ्च विनिक्षिपेत्।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्॥
मासादूर्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दर रुजां जयेत्।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥
मेहशोथारुचिहरस्त्वशोकारिष्ट संज्ञितः।
भै. र. स्त्रीरोगाधि. १०८–१११

फोतों की सूजन पर—

रीठे के पाव भर हरे पत्ते लेकर गाय की छाछ (पानी) में उबाल कर रोगी के फोतों पर बांध दिया जावे। आज सुबह बांधा हुआ कल सुबह खोलकर दूसरा यहां बांध दिया जावे और हवा नहीं लगने पावे। इस क्रिया को २१ दिन करते रहें। २१ दिन में उक्त रोग का नाम निशान मिट जावेगा।

पथ्य में वायु रहित भोजन दें। अधिक परिश्रम, मैथुन, मादक उत्तेजक वस्तुओं का सेवन न करें।

—वैद्य भूषण श्री भौमसिंह शर्मा,
c/o M. P. M. भौमसिंह रडावस
श्री जैन रघुनाथ औषधालय मुकाम वोपीरा

मक्कलशूल पर—

शराब में जो एक तोले के लगभग हो १ माशा अफीम घोलकर फाहा (रुई व कपड़े का पिचु) बना योनि के अन्दर रखने से आशातीत लाभ होता है, किंचित लगती है परन्तु वेदना में तत्क्षण लाभ करती है। यदि १ रत्ती से ४ रत्ती तक यवक्षार गर्म जल से खिला दिया जाये तो और भी लाभदायी है।

—वैद्य श्री छोटेलाल वर्मा आयुर्वेद भिषक
सर्वजन हितकारक औषधालय
तालग्राम (फर्रुखाबाद)

सूतिका ज्वर पर तीन प्रयोग—

(१) शुद्ध गन्धक शुद्ध सिंगरफ टंकण भस्म
काली मिरच छोटी पीपल केशर
अकरकरा —सब समान भाग लें

विधि—अदरक के रस से मिरच प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में दो तीन बार आवश्यकतानुसार दें।

अनुपान—(१) लौंग का चूर्ण (२) अद्रक का रस।

गुण—प्रसूत ज्वर, साधारण ज्वर, शीतांग सन्निपात, गोला, श्वास, कास आदि रोग दूर हो त्रिदोषज रोग भी दूर होते हैं।

(२) पारा गन्धक अभ्रक भस्म
स्वर्णमाक्षिक भस्म त्रिकुटा मीठा विष
—सब समान भाग लेवें।

विधि—खरलकर २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—४ रत्ती।

अनुपान—(१) लौंग का चूर्ण (२) अद्रक का रस

गुण—सूतिकाजन्य अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी और श्वास रोग दूर होते हैं। उत्तम बाजीकरण भी है।

(३) देवदारु खुरासानी बच कूट,
पीपल सोंठ चिरायता
जायफल नागरमोथा हरड़ की छाल
पीपल (बड़ी) धमासा गोखरू
कटैली गिलोय काला जीरा
—प्रत्येक २-२ माशे।

—सबको डेढ़ पाव जल में काढ़ा बनावें। जब १॥ छटांक रह जावे तब उतार छान हींग, सेंधा

नमक डेढ़ (१½) रत्ती डाल प्रसूतिका को पिलावें।

गुण—सूतिका रोग, शूल, कास, ज्वर, मूर्च्छा, मस्तक पीड़ा, तंद्रा आदि रोग नष्ट होते हैं।

—श्री वैद्य रामरतन शर्मा
भगवती आयु. औषधालय, लाडनूं

सूतिका ज्वर पर—

दशमूल कुटा हुआ लें, बाजार के पंसारियों से कभी भी, सब चीज मिला हुआ, नहीं लेना चाहिए। परन्तु दस चीजें अलग अलग लेकर कूट लेना चाहिए। इसमें दस चीजों का मिश्रण निम्न प्रकार से कर लेना चाहिए—

बेलछाल गंभारीछाल पाढलछाल
अरलूछाल अरणी की छाल
गोखरू का पंचांग छोटी कटेली का पंचांग
बड़ी कटेली का पंचांग पृश्नपर्णी का पंचांग
शाल पर्णी का पंचांग -समान भाग।

ये सब वस्तुएं समान मिलाकर जौकुट कर लेनी चाहिए और इनमें से २ तोला कुटी औषधि लेकर आध सेर पानी में धीमी धीमी आग पर क्वाथ करना चाहिये। करीबन आध पाव जल रह जाने पर छान कर उसे शुद्ध घी (गौ का मिले तो अच्छा है अन्यथा भैंस का ही) ६ माशे घी पतीली में डाल दें। जब वह अच्छा कलक जाये तो ऊपर से वह पका हुआ क्वाथ डाल कर छौंक लें।

इससे पहली छोटी पीपल ३, ४ तोला बारीक खरल कर एक शीशी में रखलें। इसमें से तीन चार रत्ती लेकर उस कोसे गुनगुने क्वाथ पर छिड़क दें और रोगी को पिला दें। इसी प्रकार शाम को भी करें। खाना सादा और हल्का होना चाहिए। इस प्रकार अनन्त उपद्रवों सहित यह नष्ट हो जायगा और रोगिणी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लेगी।

—स्वामी वैद्य सन्तोषानन्द,
प्रधान जिला व नगर वैद्य मण्डल, देहरादून

गर्भस्राव और गर्भपात पर अनुभव—

प्रारंभिक तीन महीनों में जो गर्भ गिर जाता है उसे गर्भस्राव कहते हैं और बाद में इसका नाम गर्भपात हो जाता है।

गर्भस्राव बार-बार होने पर गर्भाशय कमजोर होता जाता है। फलतः उसको पुष्ट करने के लिये विभिन्न औषधियों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। किन्तु इतने पर भी कभी कभी महिलाओं में यह शिकायत बनी ही रहती है।

ऐसी स्थिति में पति-पत्नी दोनों की ही चिकित्सा कराना आवश्यक होता है। कभी कभी पचासों केसों में अनुभव हुआ है कि पुरुष के वीर्यकीट की कमजोरी (Weakness of Spermetozoon) के कारण महिलाओं में यह स्थिति होती है। इस मशीनी युग में इस विषय की जांच का प्रबन्ध बड़े शहरों के अस्पताल में अच्छे रूप में हो रहा है। वहां वीर्य परीक्षा (Seman Examination) के लिये पृथक विभाग में खास तौर से जांच करा लेनी चाहिये।

साधारणतया कल्बुलहज्र (श्वेत वर्ण वाला पत्थर का दिल) का प्रयोग करना गर्भस्राव या गर्भपात के लिये अत्युत्तम रहता है। इसका प्रयोग लगातार दो महीने तक दूध के साथ करने से ये दोनों भय निश्चित रूप से भाग जाते हैं। साथ ही इस प्रयोग की इसकी विशेषता यह है की ऐसा बच्चा सूखा रोग से ग्रस्त नहीं हो पाता।

इन दोनों बातों पर पूरी तरह ध्यान रखना आवश्यक है। साथ ही पति को भी ध्यान रखना परमवश्यक है कि गर्भधारणोपरान्त वह प्रसंग न करे। पूर्ण ब्रह्मचर्य रखना परमावश्यक है।

—श्री पं० चन्द्रशेखर जैन आयुर्वेदाचार्य,
लाखा भवन जबलपुर

समाचार एवं सूचनाएँ

उ.प्र. भारतीय चिकित्सा परिषद का द्वितीय दीक्षान्त समारोह

दिनांक १० अप्रेल को यूनानी मेडिकल कालेज इलाहाबाद में उ० प्र० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड (भारतीय चिकित्सा परिषद उ० प्र०) का द्वितीय दीक्षान्त समारोह प्रातःकाल ६ बजे बड़ी सजधज के साथ सम्पन्न हुआ। इस समारोह में उ० प्र० इण्डियन मेडीसिन बोर्ड के समस्त सदस्यों तथा सम्बन्धित आयुर्वेद एवं यूनानी कालेजों के प्रिंसिपलों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। प्रायः समस्त आयुर्वेद व यूनानी कालेजों के छात्र इस समारोह में सम्मिलित हुये थे जिन्हें गाउन पहना कर रेलवे मिनिस्टर श्री जगजीवनराम जी के कर कमलों से उपाधियां वितरित कराई गई। इस समारोह में इलाहाबाद हाईकोर्ट तथा लोअर कोर्ट के न्यायाधीश, मुंसिफ, मजिस्ट्रेट, स्थानीय एम. पी., एम. एल. सी., एम. एल. ए. महानुभावों ने भी विशेष रूप से भाग लिया। उत्तर प्रदेश विधान परिषद के अध्यक्ष माननीय आर. वी. धुलेकर महोदय भी विशेष आमंत्रण पर उपस्थित हुये थे।

यूनानी मेडीकल कालेज के डाइरेक्टर इण्डियन मेडीसिन बोर्ड के सबसे पुराने सदस्य शिफाउलमुल्क हकीम अहमद उस्मानी साहब ने अंग्रेजी भाषा में मुद्रित स्वागत भाषण सुनाने के पश्चात् यूनानी मेडीकल स्कूल से यूनानी मेडीकल कालेज बनने की सम्पूर्ण रिपोर्ट तथा उत्तरोत्तर विकास और वर्तमान स्वरूप विस्तार के साथ पढ़कर सुनाया जिससे लोग काफी प्रभावित हुए। कालेज की ओर से रेलवे मन्त्री को एक मानपत्र भी भेंट किया गया।

अधिवेशन का उद्घाटन उत्तर प्रदेश बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसिन के प्रेसीडेंट वैद्य दरबारीलाल शर्मा ने किया। आपने अपने भाषण में आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति तथा बोर्ड की गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमने रेलवे मन्त्रालय से विनम्र शब्दों में अनुरोध किया था कि हमारे स्नातकों के प्रमाणपत्र रेलवे विभाग में अबाध गति से स्वीकार किये जाने चाहिये जिसका हमें अब तक कोई समुचित उत्तर नहीं दिया गया है। साथ ही आपने रेलवे मन्त्री से अनुरोध किया कि चाहे आपके विभाग में फोर्थ क्लास की जगह फिफ्थ क्लास क्यों न खोलना पड़े किन्तु हमारे स्नातकों को रेलवे विभाग में मान्यता मिलनी चाहिये और उन्हें रेलवे के चिकित्सालयों में नियुक्त किया जाना चाहिये तथा रेलवे विभाग की ओर से आयुर्वेद के औषधालय भी खुलने चाहिये।

रेलवे मिनिस्टर का भाषण—

दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया वह निम्न प्रकार है—

जनाब प्रेसीडेंट साहब तथा डाइरेक्टर महोदय, उपस्थित सज्जनों तथा छात्रो।

मुझे आपके इस समारोह में आकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मनुष्य में दो प्रकार की प्रवृत्तियां काम करती हैं। शरीर में चेतन, जड़ता, मृदुता और स्वास्थ्य की कामना कहां से आई यह जानने की जिज्ञासा मनुष्य में रहती है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह चार बातें सदा से चली आई हैं। चिकित्सा विज्ञान और रोग विज्ञान में दो तरह के व्यक्ति रहे हैं। दोनों प्रकार

के वैज्ञानिकों में इसके जानने की भावना रही है।

आश्चर्य यह होता है कि शताब्दियों तक लोगों ने अन्वेषण किया होगा कि अमुक प्रयोग द्वारा अमुक लाभ होता है। आयुर्वेद में एक से एक प्रयोग विद्यमान हैं जो कि बिना अनुभव या खोज के नहीं लिखे गये हैं, फिर आयुर्वेद व यूनानी को एक विज्ञान न मानना हमारी भूल होगी। आज जो लोग यह कहते हैं कि यह पद्धतियां वैज्ञानिक नहीं हैं, कहा जा सकता है कि उन्होंने इन्हें कुछ समझा ही नहीं है।

मैं इन पद्धतियों को पूर्ण वैज्ञानिक मानता हूं किन्तु लोगों में इसके प्रति जो भ्रान्त धारणायें हैं उन्हें दूर करना चाहिये।

जिन पद्धतियों को शताब्दियों तक राज्याश्रय नहीं मिला हो और जिनकी सदैव उपेक्षा की जाती रही हो, ऐसी विकट परिस्थितियों में भी जो पद्धतियां जीवित रहीं हों, उन्हें कैसे कहा जा सकता है कि वे वैज्ञानिक नहीं हैं।

जो तत्व और गुण नाड़ी के अन्दर विद्यमान है वह बाहर आकर कैसे रह सकते हैं। आयुर्वेद में वे समस्त गुण मौजूद हैं जिनकी आवश्यकता है। जो नहीं जानते हैं वह उनकी कमजोरी है।

आज एनाटमी की डींग हांकी जाती है किन्तु इतना कहना अनुचित न होगा कि एनाटमी का सम्पूर्ण अध्ययन करने के बाद भी अभी अध्ययन बाकी है।

आज का विज्ञान फिजिक्स, एनाटमी के स्थूल तत्वों का ही अध्ययन कर पाया है सूक्ष्म तत्वों का नहीं।

मनुष्य मुंह से पानी पीकर गुदा के रास्ते से निकाल देता है। आज का वैज्ञानिक इस पर अभी भी अन्वेषण नहीं कर सका है।

आज इन्टीग्रेशन सिस्टम (मिश्रित चिकित्सा प्रणाली) की बड़ी आवश्यकता इसलिये है कि अनुभवी वैद्य हकीम नाड़ी विज्ञान द्वारा हृद्रोग तथा तापमान बता सकते हैं किन्तु यह साधारण वश के वश का काम नहीं है।

इसी प्रकार कई रोग ऐसे हैं जिनका वर्णन ऐलोपैथी में नहीं है किन्तु चिकित्सा है। आयुर्वेद में निदान और चिकित्सा दोनों ही विद्यमान हैं। आज जब दोनों के समन्वय की बात आती है तो लोग समझते हैं कि हम बड़ा भारी काम करने जा रहे हैं।

आयुर्वेद में जो कुछ लिखा है वही इतिश्री नहीं है। चरक, सुश्रुत के बाद भी लोगों ने काम किये हैं और आगे बढ़े हैं।

आयुर्वेद के कमजोर होने का एक सबसे बड़ा कारण यह भी रहा है कि अनुभवी वैद्य अपने योग न केवल छिपाते चले आये अपितु अपने साथ भी लेते चले गये। इससे यह विज्ञान दबता चला गया।

आज भी हमारे यहां देहातों में चुटकलों से बड़े-बड़े भयंकर रोग अच्छे किये जाते हैं और वे जादू के समान काम करते हैं उनका संग्रह कर संरक्षण होना चाहिये। हमारी प्राचीन पद्धतियां पूर्ण वैज्ञानिक थीं और रोग परीक्षण के यन्त्र शस्त्र भी उसमें थे। हमारा तो कहना है कि आज का वैज्ञानिक वहां तक तो पहुंच भी नहीं सकता है।

प्राचीन लोग मांसाहारी नहीं थे किन्तु आयुर्वेद में समस्त मांसों के गुण अवगुण तथा उनके प्रयोग लिखे गये हैं। इसके माने हैं कि उस युग में बहुत बड़ी खोज हुई होगी।

आजकल मृत्यु को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है किन्तु हमारे यहां वह योग दर्शन तथा योग सूत्रों में वर्णित है। हमारे यहां आज लिखने की परम्परा का अभाव सा हो गया है जिसे कायम करके हम उसे बचा सकते हैं।

आज सभी के दिमाग में यह बैठ गया है कि सुई लगाने से बड़ा लाभ होता है तथा एन्टीबाइटिक्स सल्फाड्रग्स आदि का बड़ा बोलबाला है, पर मेरा कहना है कि यह औषधियां बड़ी घातक हैं।

ऐलोपैथी की बहुत सी दवायें मैं जानता हूं जिनमें अक्ल की जरूरत नहीं है और न उनके प्रयोग में डाक्टर की ही आवश्यकता है। आज बहुत से वैद्य भी इनका प्रयोग करने लगे हैं।

ऐसा लगता है कि अगर वैद्यों ने ऐलोपैथी की औषधियों को अपना लिया और उनके सिद्धांतों को मान लिया तो आपने यह भी मान लिया कि आपके यहां वह वस्तुयें नहीं हैं। किन्तु मेरा कहना है कि वैद्य हकीमों को अपने मौलिक तत्व भूलने नहीं चाहिये।

रेलवे मन्त्री के भाषण के पश्चात् इलाहाबाद नगर के महापौर श्री विश्वम्भरनाथ पांडेय ने आभार प्रदर्शित करते हुये एक ओजस्वी भाषण दिया। इसके बाद समारोह की कार्यवाही समाप्त हुई। अन्त में बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसिन के सदस्यों तथा कालेजों के प्रधानाचार्यों का रेलवे मन्त्री से एक-एक करके परिचय कराया गया। तदनन्तर सायंकाल ५ बजे यूनानी मैडीकल कालेज की ओर से अभ्यागतों को एक जोरदार चाय पार्टी दी गई। इस प्रकार यह समारोह बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में सानन्द सम्पन्न हुआ। इस समारोह में २६१ आयुर्वेद तथा २६ यूनानी स्नातकों की उपाधियां वितरित की गईं।

इस सम्मेलन में एक अत्यन्त रोचक घटना घटी। A., M. B. S. (आयुर्वेदिक उपाधि) लेने वाले अनेक स्नातकों के नाम आदि F., M. B. S. (यूनानी उपाधि) के फार्म में भर दिये गये तथा वही उपाधि वितरित की गईं। बाद में पता चलने पर एसी सभी उपाधियां वापिस लेली गईं तथा उन को दूसरे दिन ११ अप्रैल को दोपहर २॥ बजे सही उपाधि ले लेने को कहा गया। जिन स्नातकों को इसमें असुविधा थी उनको आश्वासन दिया गया कि उनको उनके दिये गये पते पर रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा उपाधि भेज दी जावेगी। यह घटना बोर्ड के आफिस में होने वाली लापरवाही की द्योतक है।

इसी समारोह में धन्वन्तरि के सहायक सम्पादक दाऊदयाल गर्ग ने A., M. B. S. (आयुर्वेदाचार्य, बैचलर आफ मैडीसन एण्ड सर्जरी) की उपाधि ग्रहण की।

× × ×

राज्यपाल द्वारा धन्वन्तरि की मूर्ति का अनावरण—

दि० ११-४-६० को वैद्यराज लक्ष्मीनारायण जी त्रिवेदी द्वारा संस्थापित मालवीय भारतीय मन्दिर ८६ आड़ा बाजार पर भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा का अनावरण एवम् निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा सम्बधित आयुर्वेद विद्यालय का शुभारम्भ मध्यप्रदेश के राज्यपाल परम श्रेष्ठ श्री हरी विनायक पाटस्कर साहब के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। मालवीय भारती मन्दिर के प्रधान मंत्री श्रीआशाकुमार त्रिवेदी ने महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री बाबू सम्पूर्णानन्दजी, केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डी० पी० करमरकर, श्रीमन्त महाराजा यशवतंराव होल्कर इन्दौर, श्री स्वामी चैतनानन्दजी महाराज काशी, प्रधान सम्पादक आयुर्वेद सम्मेलन पत्रिका श्री सीताराम मिश्र परिषद मंत्री आयुर्वेद विद्यापीठ देहली, पद्म भूषण श्री सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैन, भारत रत्न श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर आदि के शुभ सन्देश पढ़कर सुनाये। उसके बाद परम श्रेष्ठ राज्यपाल के कर कमलों द्वारा विधि अनुसार मूर्ति का अनावरण करके पूजन किया गया। राज्यपाल महोदय ने अपने भाषण में कहा कि मूर्ति के अनावरण के साथ विद्यालय का जो शुभारम्भ हो रहा है यह एक विशिष्ट बात है। यह विद्यापीठ अपने प्रान्त में अवश्य ही सफल होवेगी। राज्यपाल महोदय ने आगे मालवीय भारती मन्दिर की गतिविधियों की प्रशंसा करते हुए वैद्यराज जी के बारे में कहा कि एक मन्दिर का हजारों रुपये लगाकर जीर्णोद्धार करके जो संस्था कायम की है। यह उनके त्याग व तपस्या का फल है।

—मन्त्री

सरकारी आयात नीति—

आपको सूचनार्थ निवेदन है कि सरकार ने अप्रेल ६० से सितम्बर ६० तक की अवधि के लिये आयात नीति का निर्धारण कर दिया है। तदन्तर्गत आयात के लिये आवेदन पत्र देने की अन्तिम तिथि १५ अगस्त ६० है, किन्तु १५ अगस्त को सार्वजनिक अवकाश होने के कारण आवेदन-पत्र १४ अगस्त ६० तक यथास्थान पहुँच जाने चाहिये।

आयात के लिए भेजे जाने वाले आवेदन-पत्र के साथ अपने क्षेत्र के डायरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज से प्राप्त एक एसेन्सीयलिटी सर्टिफिकेट भेजना आवश्यक होता है। इस सर्टीफिकेट के लिये डायरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज के यहां आवेदन-पत्र देने की अन्तिम तिथि १५ जून ६० है।

यदि आप इस विषय में रुचि रखते हों तो कृपया उक्त दोनों तिथियों को ध्यान में रखकर यथावसर आवेदन-पत्र यथास्थान भेज दें। इस विषय में आप अन्य जो भी सूचना प्राप्त करना चाहें इस कार्यालय को सूचना कर दें। हम सदैव आपकी सेवा के लिये तत्पर हैं। —मन्त्री

अ० भा० देशी औषधि निर्माता संघ।
चांदनी चौक, दिल्ली-६

+ + +

मालवीय जी के साथ विश्वासघात—

वाराणसी विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज को मेडीकल कालेज में रूपान्तर कर देना स्वर्गीय पूज्य मालवीय जी के साथ विश्वासघात करना ही कहा जायगा। मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की स्थापना संख्या बढ़ाने के लिये न करके प्राचीन विद्या व संस्कृति की सुरक्षा सिद्धान्त व किसी ध्येय से की थी। दानियों ने जो दान दिया था वह भी प्राचीन संस्कृति, आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, संस्कृत विद्याओं के उत्कर्ष के लिये दिया था। उस समय से आज तक कार्य तदनुकूल ही चलता रहा।

यदि महामना मालवीय जी की इच्छा केवल ऐसे विज्ञान को प्रोत्साहन देने की होती जिससे कि धन लूटने का अवसर मिले, तो वे उसी समय एक बहुत अच्छा मेडीकल कालेज खोल सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उनको तो भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की रक्षा करनी थी।

आयुर्वेद कालेज की स्थापना उस समय की गई थी, जब वहां के स्नातकों के लिए कहीं भी सरकारी नौकरियां नहीं थीं। क्या उस समय के वहां के स्नातक जीविका से वंचित रहे? क्या उनका लक्ष्य केवल नौकरी करना ही था? उत्तर में कहना पड़ेगा कि ऐसा नहीं था। तभी प्रायः इस संस्था की स्थापना किसी सिद्धान्त के आधार पर ही हुई थी। यदि उन सिद्धान्तों की अवहेलना इसके अधिकारी गण अब कर रहे हैं तो उनका यह कार्य निश्चय ही पूज्य महामना मदनमोहन जी मालवीय के साथ विश्वासघात करना है। अधिकारियों का विश्वास है कि यहां के स्नातकों को अब अधिक पैसा और सम्मान मिलेगा। यह कोरा भ्रम है। अपने सिद्धान्त से गिरे हुए को कहीं भी आश्रय नहीं मिलता है और न उसकी कहीं प्रतिष्ठा ही होती है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' का सिद्धान्त है, आयुर्वेदिक कालेज को मेडीकल कालेज का जामा पहनाना क्या श्रेयस्कर हो सकता है। विश्वविद्यालय के लिये, दानदाताओं के लिये भी यह एक धोखा है, जिन्होंने अपनी प्राचीन संस्कृति व शिक्षा के रक्षार्थ और विकासार्थ योग दान दिया है। उन्हें भी इस परिवर्तन से सन्तोष नहीं होगा अतः अधिकारियों को इस पर पुनः विचार करना ही चाहिये।

—कविराज श्री रामनाथ शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
प्रोफेसर गुरुकुल आयु० कालेज, हरिद्वार।

+ + +

विश्व कल्याण के पथ पर—

कुछ समय से काशी हि० वि० वि० के आयुर्वेदिक कालेज के टूटने के समाचार सुनकर आयु

वेंद जगत में बड़ी उथल-पुथल मच गई और चारों ओर बचाओ ! बचाओ !! की आवाज ही सुनाई देने लगी। मैं तो समझता हूँ कि काशी हि० वि० वि० के वाइस चांसलर श्री वेणीशंकर झा तथा रजिस्ट्रार श्री एस० एल० दर एवम् प्रकाण्ड विद्वान् डा० हडुप्पा आदि महानुभावों ने युग की पुकार के अनुसार आयुर्वेद कालेज में नवीन एम० बी० बी० एस० व पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स खोलकर आयुर्वेद को नवजीवन प्रदान किया है। विचारों की संकीर्णता और व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के कारण ही आज तक आयुर्वेद का वास्तविक विकास स्वतन्त्र भारत होने पर भी नहीं होने पाया।

वास्तविक सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव दूर हो जाता है। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय ने "मौडर्न मेडीकल कालेज"—की स्थापना कर आयुर्वेद जगत् के अन्तरिक्ष में मानो सूर्य का उदय किया है जिसके दिव्य प्रकाश से कालान्तर में एक भारत ही क्या सम्पूर्ण विश्व ही एक बार पुनः जगमगा उठेगा। भारतीय मैडीकल कौंसिल ने जो महान उदारता इस स्थापित होने वाले नवीन "मौडर्न मेडीकल कालेज"—की डिग्रियों को मान्यता देनी स्वीकार की—एतदर्थ मैं उसे हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता है और अनुभव करता है कि अब भारत की यह मिश्रित राष्ट्र चिकित्सा पद्धति कालान्तर में सम्पूर्ण विश्व में एक बार पुनः देदीप्यमान होकर रहेगी।

अब उपयुक्त समय आ गया है, जब भारत के समस्त चिकित्सालय एक रूप हो, मौडर्न मैडीकल कालेज बनकर रहेंगे। स्नातकों की सभी मांगें स्वतः ही पूर्ण हो जायेंगी और परस्पर के मतभेद मिटकर परस्पर का प्रेम बढ़ जायेगा। युग की मांग है कि राष्ट्र के चहुँमुख विकास के लिए सभी निःस्वार्थ भावनाओं का एकीकरण हो और एक साथ सब मिलकर राष्ट्र कल्याण में तन, मन, धन से योग दें।

विज्ञान कहीं भी हो उसका दरवाजा सबके लिए समान रूप से खुला हुआ है। इस रहस्यमय मनोहर पुष्पवाटिका से, हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर सुन्दर पुष्पों को चुन-चुन कर अपने राष्ट्रागार को सजाना है और उसे सभी प्रकार रमणीक व आकर्षक बनाना है। एतदर्थ हमें अपने समस्त मतभेदों को भुलाकर परस्पर मिलकर कार्य करना है, क्योंकि "संघे शक्ति कलयुगे"—की मार्मिकता तभी समझ कर पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। अतः हिन्दू वि० वि० काशी के इस नवीन कोर्स को अब हमें हृदय से अपनाना चाहिये।

यह सर्वविदित है कि दीर्घकाल से काशी हिन्दू वि० वि० के आयु० कालेज के छात्रों की बार बार हड़ताल और नाना प्रकार के उपद्रवों से तंग आकर विश्वविद्यालय के कर्णधारों ने सब तरह खूब सोच विचार कर इस विकट समस्या का सही हल निकाल कर छोड़ा, जिससे छात्रों की भी सभी मांगें पूरी हो जायेंगी और आयुर्वेद का भी पूर्ण विकास व उसकी रक्षा होकर एक बार पुनः वह अपने अतीत गौरव को विश्व में प्रदर्शित व प्रतिष्ठित कर सकेगा।'

उक्त विश्वविद्यालय में छात्रों की क्रमिक प्रवृत्ति का गम्भीरता से मनन कर इस आ० कालेज को उन्नत करने के लिये इसे "मोडर्न मेडीकल कालेज" के नवीन कोर्स में एम० बी० बी० एस० की ५ वर्ष की उपाधि कर दी गई है। इसमें स्नातकों का स्तर आयुर्वेद साथ होने के कारण वर्तमान एम०बी०बी० एस० से बढ़कर ही है एवम् अधिकार की दृष्टि से भी वर्तमान एम० बी० बी० एस० से कम नहीं है। केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित विशिष्ट डाक्टर महोदय भी—'आयुर्वेदिक चिकित्सा ही भारत के लिये सर्वथा उपयुक्त हो सकती है'—ऐसा मानते हैं, परन्तु उसकी वर्तमान पाठ्य-पद्धति से वे सशंकित हैं और इस नवीन कोर्स के अपनाने से उनको भी सन्तोष हो जाता है।

इस नवीन कोर्स वाले एम० बी० बी० एस० के अन्तर्गत आयुर्वेद की लघुत्रयी का ज्ञान हो जायेगा और जो स्नातक आगे चलकर आयुर्वेद की विशेष

योग्यता प्राप्त करना चाहेंगे उनके लिये पोस्ट ग्रेजुयेट--कोर्स खोला जा रहा है। इस प्रकार संकुचित आयुर्वेद के प्रकाश को विश्व में पूर्ण प्रकाशित होने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया गया है। इस पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स में नवीन एम० बी० बी० एस० के अतिरिक्त इस यूनीवर्सिटी के पुराने कोर्स के स्नातक ए० एम० एस० तथा ए० बी० एम० एस० भी प्रविष्ट हो सकेंगे। इनमें जिन्हें किसी मान्यता प्राप्त आयुर्वेद कालेज में कम से कम २ वर्ष अध्यापक का कार्य करते हो गया होगा वे एस. एस. सी. (आयुर्वेद) की प्राईवेट परीक्षा भी दे सकेंगे, किन्तु उसके बाद ३ माह तक कालेज में रहकर प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ साथ निबन्ध लिखना अनिवार्य होगा। जो एम० बी० बी० एस० अन्य किसी भी यूनीवर्सिटी के हों, जिनके कोर्स में आयुर्वेद न रहा हो, वे भी प्रविष्ट हो सकेंगे, किन्तु उन्हें यहां रहकर एक वर्ष का आयुर्वेद का कण्डेन्सड कोर्स पहिले पढ़कर पास करना होगा। अन्य यूनीवर्सिटी, राजकीय आयुर्वेदिक संस्थाओं के स्नातक भी जिसमें ५ वर्ष से कम का कोर्स न हो, प्रविष्ट हो सकेंगे यथा ए. एम. एस., ए. बी. एम. एस., बी. आई. एम० एस०, बी. एम. बी. एस. आदि के लिये २ वर्ष का एलोपैथी का कण्डेन्सड कोर्स खोला जा रहा है जिसे पढ़कर वे एम. बी. बी. एस. हो सकेंगे।

पोस्ट ग्रेजुयेट कोर्स में दो उपाधियां हैं, (१) एम० एस सी० (इन आयुर्वेद), (२) पी एच० डी० (इन आयुर्वेद) जो क्रमशः १५ माह और २ वर्ष की अवधि की हैं। एम० एस सी० पास करने बाद ही पी एच० डी० में प्रवेश हो सकेगा। इसमें आर्ष संहिता ग्रन्थों का अध्ययन, क्रियात्मक ज्ञान तथा अनुसन्धान प्रधान है। इस प्रकार काशी हिन्दू यूनीवर्सिटी ने आयुर्वेद की रक्षा, आयुर्वेद का स्तर ऊंचा उठाने और आयुर्वेद के विश्व-व्यापी प्रचार के लिये उच्च और आदर्श योजना ही तैयार की है

भूल-सुधार

नारी-रोगाङ्क विशेषांक में पृष्ठ २०४ के प्रथम कालम पर सबसे नीचे प्रयोग प्रेषक का नाम छपने से रह गया है जो इस प्रकार से है—

कविराज श्री डी.पी. मालाकर आयुर्वेद रत्न T.T.C.
जनपद आयु० चिकित्सालय,
दामाखेडा, तह. बलौदा बाजार, (रायपुर)

पञ्चकर्म-विज्ञान

—लेखक—

आचार्य श्री शिवकुमार 'व्यास'
५, देवनगर, करौलबाग, दिल्ली।

सादर समर्पित

स्वर्गीय पितामह

राजवैद्य श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी व्यास

की पुण्य स्मृति में

जिनकी गोद में बैठकर मैंने अपने बाल्यकाल का स्वर्णिम समय बिताया।

—शिवकुमार व्यास।

पञ्चकर्म विज्ञान के लेखक—

आचार्य श्री शिवकुमार 'व्यास' प्रभाकर
साहित्यालंकार, भिषगाचार्य धन्वन्तरि
D. I. M. S.

निवेदन

'पंचकर्म' विषयक लेखन सम्भवतः कुछ महानुभावों की उपेक्षादृष्टि का भाजन बने, कारण कि उनकी दृष्टि में पंचकर्म का क्रियात्मक (Precticai) ज्ञान आवश्यक है। मुझे भी इस विषय में कई विद्वानों के मुखारविन्द से कुछ शब्द सुनने पड़े जिनसे स्पष्ट हो रहा था कि पंचकर्म विषयक लेखन से कोई लाभ विशेष नहीं, हां पंचकर्म का व्यवहारिक ज्ञान कर उसे लिखना लाभप्रद है। इतना सुनने पर भी मैंने इस विषय पर लिखा।

आपको निवेदन कर दूं कि पंचकर्म का प्रयोग कोई ऐसा कार्य नहीं जो सम्भव न हो। जो व्यवहार करने से अति भय खाते हैं उनसे मेरा यही निवेदन है कि इस विषय में शास्त्रोक्त सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन करें और फिर वे स्वयं देखें कि पंचकर्म का प्रयोग कितनी सरलता से करा सकते हैं। मेरे स्वर्गीय पितामह अवस्थानुसार स्वेदन वमन आदि कराते थेएक महात्मा (स्वामी जी) का शरीर पूर्ण पंचकर्म कराकर शुद्ध किया और वह सभी शास्त्रोक्त नियमों का पालन करते हुए किया गया। वह स्वामी जी अभी तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैंने भी शास्त्रों के नियमों के आधार पर ही स्नेहन स्वेदन कराया और आशातीत सफलता प्राप्त की। अतः मेरी दृष्टि में साधन उपलब्ध होने पर सिद्धांतों को जानने वाला चिकित्सक पंचकर्म कराने में अवश्य सफल हो सकता है।

एक निवेदन और कर दूं कि इसके लिखने का मेरा मुख्य ध्येय विद्यार्थी बन्धुओं के लिए 'पंचकर्म' विषयक ज्ञान एक स्थान पर विस्तृत रूप में संकलित करना रहा। परीक्षा का आवश्यक विषय होने से एक स्थान पर विस्तृत साहित्य होना चाहिये और सम्प्रति ऐसा कोई साहित्य है नहीं–उसी अभाव की पूर्ति के लिए मैंने प्रयत्न किया है। चिकित्सक बन्धु इसमें शास्त्रोक्त नियमों के अतिरिक्त कुछ अनुभव सिद्ध, साधारण दिखाई देने वाली, परन्तु आवश्यक बातें पाएंगे जो उन्हें पंचकर्म कराते समय सहायक सिद्ध होंगी। इन अनुभवों में से बहुत कुछ बताने का श्रेय माननीय पिता जी पं० भूदेव जी व्यास आयुर्वेद शास्त्री को है–जिन्होंने समय समय पर यह अनुभव सुनाए।

भूल करना मानव स्वभाव है और इसमें भी भूल रह सकती हैं–ऐसी भूलों को सुधारने के लिए आपके परामर्श का मैं हृदय से स्वागत करूंगा। इससे यदि किसी को थोड़ा भी लाभ हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा और भविष्य में इसका दूसरा भाग आपकी सेवा में प्रस्तुत करूंगा।

अन्त में मैं उन सभी ज्ञात या अज्ञात विभूतियों के प्रति सादर आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ जिनके द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में थोड़ा भी ज्ञान मुझे मिला हो।

होलिकोत्सव, सम्वत् २०१६
व्यास निवास ५, देवनगर,
करौल बाग, नई दिल्ली।

विनीत—
शिवकुमार व्यास

पञ्चकर्म विज्ञान

"अष्टांग आयुर्वेद" आप सुनते ही रहते हैं। यह 'अष्टाङ्ग' शब्द आयुर्वेद के आठ अङ्गों का द्योतक है। इनमें 'कायचिकित्सा' नामक एक विशेष अङ्ग है—जिसे शरीर की चिकित्सा कह सकते हैं। पञ्चकर्म का सम्बन्ध भी इस चिकित्सा से ही है।

चिकित्सा—

प्रश्न उठता है कि चिकित्सा किसे कहते हैं? लिखा है—

'याभि: क्रियाभिर्जायन्ते शरीर: धातव: समा।
सा चिकित्सा विकाराणाम्..........॥'

अर्थात्—जिस क्रिया द्वारा शरीर की धातुएँ समावस्था में हो जायें, वह विकारों की चिकित्सा है और विकार धातुओं की विषमता को कहते हैं। (विकारो धातु वैषम्यम्) तथा समता को आरोग्य या स्वस्थावस्था। स्वास्थ्य के लक्षण बताते हुए सुश्रुत ने स्पष्ट ही कर दिया है—

'समदोषः समाग्निश्च समधातुमलःक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स स्वस्थ्यमेतिभिधते॥'

कि समावस्था ही आरोग्य है और इस समावस्था के लिए ही चरक ने बताया है—

'चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानाम् धातुवैकृते।
प्रवृतिर्धातु साम्यार्था चिकित्सेत्यभिधते॥'

और इस 'प्रवृत्ति' के लिए ही क्रिया करनी पड़ती है। जिसके 'साधन' बताए गए हैं, जिनके प्रयोग से विषमता दूर होकर 'धातुसाम्य' हो जाता है, आरोग्य हो जाता है।

द्विविध चिकित्सा—

यह साधन दो सिद्धान्तों पर आधारित हैं, प्रथम दोषों को जो विषमता उत्पन्न किये हैं शमन करने पर और दूसरे उन दोषों का शोधन करते हुए। इन सिद्धान्तों के अनुसार ही क्रमशः द्विविध चिकित्सा कही गई है।

१—संशमन चिकित्सा २—संशोधन चिकित्सा

यहां हमारा प्रयोजन दूसरी पद्धति से ही है जिसमें दोषों को शरीर में ही शान्त न करते हुए शरीर से बाहर निकाला जाता है और यह कार्य सम्पादन होता है—'पञ्चकर्म' द्वारा।

पञ्चकर्म—

'पञ्चकर्म' कौन कर्म हैं?। या 'पञ्चकर्म' के नाम बतायें? तदर्थ वाग्भट्ट का यह सूत्र ध्यान में रखना ही होगा—

'वमन विरेचनस्थापनानुवासन नावनैः।
पंचभिरपि ये कर्मीनः॥'

अर्थात्—१. वमन, २. विरेचन, ३. आस्थापन, ४. अनुवासन, ५. नावन (नस्य) 'पञ्चकर्म' कहे जाते हैं। इन पाचों द्वारा ही शरीर का शोधन हो सकता है। इन सबका अलग अलग वर्णन करना ही हमारा प्रयोजन है।

'पञ्चकर्म' द्वारा चिकित्सा की अपनी विशेषता है जो 'संशमन' में नहीं। एक बार जो रोगोत्पादक दोष हैं उनको 'पञ्चकर्म' द्वारा ठीक कर देने से उनसे पुनः रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती। कारण यह है कि पञ्चकर्म से दोषों का शोधन हो जाता है। अतः जब दोष कुपित ही नहीं रहे तो रोग कैसे रह सकते हैं—कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वाग्भट्ट ने एक सूत्र देकर इस बात को स्पष्ट कर दिया है—

'दोषा कदाचित कुप्यन्ति जिता लंघनपाचने।
ये तु संशोधने शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥'

अर्थात्--जो दोष लंघन और पाचन (संशमन) द्वारा जीते जाते हैं उनका पुनः कुपित होना सम्भव हो सकता है परन्तु जो संशोधन द्वारा अर्थात्--'पञ्चकर्म' द्वारा शुद्ध (प्रकृतावस्था में) हो जाते हैं वह पुनः प्रकुपित नहीं हो सकते।

दूसरे, शरीर में जो भी दोष रोग की उत्पत्ति करते हैं उन (वात, पित्त, कफ) का दूष्यादि के साथ समवाय शरीर में दो प्रकार से हो सकता है-

१. प्रकृति सम समवाय (Physical relation)

२. विकृति विषम समवाय (Chemical relation)

यदि प्रकृति सम समवायावस्था में दोष दूष्यादि हैं तब तो चिकित्सा सरल है परन्तु यदि दोष-दूष्य का सम्बन्ध विकृति विषम समवायात्मक हुआ तो पञ्चकर्म में ही वह शक्ति है कि उन दोषों को समावस्था, में ला सके। कारण कि शोधन के समय दोषों के विघटन से उनका समवाय प्रकृति समावस्था में हो जाता है। दोष चाहे वृद्ध हों अथवा क्षीण, निराम हों या साम, अधःगामी हों या ऊर्ध्वगामी, अथवा तिर्यक् गामी, स्वस्थान में हों अथवा स्थानान्तर में, 'पञ्चकर्म' में सभी दोषों को शुद्ध कर देने की सामर्थ्य है।

यह विशेषताएं ही 'पञ्चकर्म' के वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट कर रही हैं और चिकित्सक को सुमार्ग दिखा रही हैं कि यदि पञ्चकर्म द्वारा चिकित्सा की जाए तो वह चिकित्सा वास्तव में ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त द्वारा की गई चिकित्सा समझी जायगी।

पञ्चकर्म योग्य अवस्था--

क्या प्रत्येक अवस्था में ही 'पञ्चकर्म' का प्रयोग किया जाये? इसके लिये कोई निश्चित नियम नहीं। जो रोगी 'पञ्चकर्म' का प्रयोग कर सकने योग्य हो उसका 'पञ्चकर्म' करा देना चाहिए। हां, एक सूत्र इस ओर अवश्य इंगित कर रहा है-

'तेषामपहरणं च बहुदोष शोधनम्।
मध्य दोष लंघनं पाचनं, अल्प दोषे संशमनमिति॥

जिसके अनुसार 'बहुदोष' में तो शोधन अर्थात् 'पञ्चकर्म' आवश्यक ही है। अतः रोगों की चिकित्सा करते हुए यों तो 'पञ्चकर्म' का प्रयोग दोषों की अल्प अथवा मध्यावस्था में भी किया जा सकता है—परन्तु बहुदोष में तो 'पञ्चकर्म' ही आवश्यक है।

कल्प और पञ्चकर्म--

यह तो हुआ रोगों (विषमावस्था) की चिकित्सा में 'पञ्चकर्म' का विशेष स्थान, अब आप देखिये पञ्चकर्म का दूसरा पहलू। पञ्चकर्म का प्रयोग केवल रोगावस्था में ही किया जाता हो, ऐसी बात नहीं, चरक में चिकित्सा के दो प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षानाम्, आतुरस्य रोगनुतः॥'

और क्योंकि पञ्चकर्म चिकित्सा का साधन है, अतः उसे चिकित्सा के द्विविध प्रयोजनों को पूरा ही करना होगा और इसे पञ्चकर्म पूरा करते हुए स्वस्थावस्था में भी 'कल्प' से पूर्व शारीरिक शोधन में प्रयुक्त होता है।

'कल्प' क्या है-यह बताना तो हमारा मनोरथ नहीं, हां, यहां इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि कल्प का, या सरल शब्दों में कहिये तो रसायन, बाजीकरण का प्रयोग पञ्चकर्म के पश्चात् ही करना चाहिये। क्यों? इसका कारण बताते हुए सुश्रुत में लिखा है—

'अविशुद्धे शरीरे हिं युक्तो रसायनोविधि।
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रंग इवाफलः॥'

अर्थात्—अशुद्ध शरीर (जिसका शोधन न किया गया हो) में रसायन वाजीकरण (कल्प) का प्रयोग करने से इतना ही लाभ होता है जितना कि मलिन वस्त्र को रंग देने से रंग नहीं चमक पाता।

'पंचकर्म' शरीर रूपी वस्त्र को धोकर साफ कर देता है। जिसके किये बिना कदापि आशा नहीं की जा सकती कि कल्प द्वारा हम पुराना शरीर छोड़ कर नवीन शरीर प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार देखा जाता है कि गृह के पुनर्निर्माण के लिये खण्डहरों को ढालना ही पड़ता है अन्यथा उसी पर बनाया गया भवन उतना सुन्दर मजबूत तथा स्थायी नहीं बन सकता, उसी प्रकार बिना शोधन किये हुए शरीर का नव निर्माण अर्थात् कल्प करना भी उतना फलप्रद, लाभकारी एवं आयुष्य नहीं हो सकता।

अतः स्पष्ट है कि पंचकर्म केवल रोगों के नाश के लिए ही नहीं अपितु शरीर का वृंहण एवं पोषण करने के लिए भी आवश्यक है।

रोग द्वारा शोधन—

कई बार बिना 'पंचकर्म' कराए भी शरीर का शोधन हो जाता है और वह होता है किसी रोग विशेष द्वारा। रोग द्वारा शुद्ध हुए शरीर का भी रोग के पश्चात् वृंहण होते देखा जाता है।

'विशूचिका' इसका एक स्पष्ट उदाहरण है। इसमें जब वमन विरेचन आदि हो चुकने के बाद शरीर का शोधन हो चुका होता है तब वह पंचकर्म द्वारा शुद्ध शरीर के समान हो जाता है। इन दोनों प्रकार के शोधन में अन्तर केवल इतना रहता है कि रोग के द्वारा हुए शोधन की अवस्था में दोष स्वयं इतने प्रकुपित हुए रहते हैं कि वह शरीर में नहीं ठहर सकते अतः बिना प्रवृत किए ही वह स्वयं उत्क्लित हो कर शरीर से बाहर निकल जाते हैं और संशोधन हुए के समान ही रोगी निर्दोष होकर स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। यही कारण है कि विशूचिका के पश्चात् प्रायः रोगी रोगोपूर्व अवस्था से भी अच्छा स्वास्थ्य लाभ कर लेता है। यह उसी अवस्था में होगा जब कि उसके दोषों का निर्हरण ठीक प्रकार से हो चुका है। इन्हीं दोषों के निर्हरणार्थ आयुर्वेद विशूचिकावरोध का विरोध करता हुआ आदेश देता है कि 'विशूचिका में रोगी के बल को देख कर वमन-विरेचन आदि रोकने का कोई उपचार न करें।' क्योंकि इन दोषों का निर्हरण होना ही शरीर के लिये हितकर है।

स्नेह स्वेद और पंचकर्म—

पंचकर्म के साथ स्नेहन स्वेदन-को क्यों मिलाया जाता है। जब वमन विरेचन आदि 'पंचकर्म' हैं तो इनके प्रयोग के पूर्व स्नेह स्वेद का प्रयोग क्यों किया जाता है? इसके समाधानार्थ यही कहा जा सकता है कि वास्तव में पंचकर्म में स्नेह स्वेद नहीं गिने गए और न ही यह 'पंचकर्म' हैं तो भी समझिए कि पंचकर्म की आधार शिला यही हैं। कारण यह कि बिना स्नेह-स्वेद कराए पंचकर्म नहीं कराए जा सकते। लिखा भी है—

> स्नेह स्वेद विनम्यास्य कुर्यात्संशोधनं तु यः।
> दारु शुष्क भिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते॥

अर्थात्—स्नेहन और स्वेदन के कराये बिना ही जो संशोधन करता है उसका शरीर उसी प्रकार टूट जाता है जिस प्रकार शुष्क लकड़ी को मोड़ने का प्रयास करने से वह लकड़ी टूट जाती है।

और भी—

> कर्मणां वमनादीनाम् पुनरप्यन्तरऽन्तरे।
> स्नेह स्वेदौ प्रयुञ्जीते, स्नेहमान्ते बलाय च॥

अर्थात्—वमनादि प्रत्येक कर्म के पश्चात् स्नेह स्वेद अवश्य करना चाहिए और अन्त में बलार्थ स्नेहन करना चाहिए।

इन दो सूत्रों को देख कर ही ऊपर की शंका का समाधान हो जाता है। ये सूत्र ही इस बात का स्पष्ट उत्तर दे रहे हैं कि स्नेह स्वेद का पंचकर्म से क्या सम्बन्ध है।

ये सूत्र दो बातें स्पष्ट कर रहे हैं। प्रथम तो यह कि पञ्चकर्म करने से पूर्व स्नेहन और स्वेदन कराना ही चाहिए और दूसरे यह कि वमन आदि करते हुए बीच बीच में भी स्नेहन स्वेदन कराना चाहिए;

ये दोनों बातें ऊपर के सूत्रों से सिद्ध हैं और क्यों का उत्तर भी स्वयं सूत्र ही दे रहे हैं। हम इनका कार्य-विधान (प्रक्रिया) बताते हैं जिससे इनकी विशेषता स्वयं सिद्ध हो जाएगी।

स्नेहन करने से दोष क्लिन्न हो जाते हैं। जो दोष साम होते हैं वह स्वेदन करने के बाद अति साम होजाते हैं और जो निराम (शुष्क) होते हैं वह स्नेहन के पश्चात् क्लिन्न हो जाते हैं। क्लिन्न वस्तु को ही अलग करना सम्भव होता है। शुष्क वस्तु अपने स्थान से हिलनी सम्भव नहीं-अतः शुष्क दोष स्नेहन से अलग हो सकने योग्य हो जाते हैं। अथवा सरलता के लिए कह सकते हैं कि स्नेहन से दोष फूल जाते हैं जिससे उनको निकालना सरल हो जाता है। अब स्वेदन किया जाता है, इससे क्लिन्न दोष मृदु, कोमल तथा द्रवीभूत हो जाते हैं, जो ताप के कारण कुपित हो जाते हैं और कुपित दोष चलायमान होजाते हैं, जिनको वमन विरेचनादि 'पंचकर्म' द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

इस सारे विधान को वाग्भट्ट ने एक सूत्र में ही बांध दिया है—

स्नेह क्लिन्ना कोष्ठगा धातुगा वा।
स्रोतोलीना ये च शाखास्थि संस्था॥
दोषा स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं।
नीता सम्यक् शुद्धिभिर्निह्रियन्ते॥

अर्थात् कोष्ठ, धातु, स्रोत, शाखा, अस्थि में लीन होकर बैठे दोषों को स्नेहन के द्वारा क्लिन्न कर लेने के पश्चात् स्वेदन के द्वारा तपा कर पतले या द्रवीभूत कर लें। इस प्रकार वह दोष दुष्ट स्थानों से अलग हो कर स्वस्थान में आजाने पर वमन विरेचन आदि पञ्चकर्म द्वारा सुखपूर्वक बाहर निकल जाते हैं।

इस वर्णन को देखते हुए कौन शरीर क्रिया-विज्ञान-वेत्ता यह कह सकता है कि दोष शरीर से कैसे निकल सकते हैं। यदि कोई कहे तो प्रथम इस एक सूत्र का ही मनन करना होगा और यह एक सूत्र ही पर्याप्त होगा उसकी शंका के समाधान के लिए।

स्नेह स्वेद का प्रयोग पञ्चकर्म से पूर्व ही किया जाए ऐसी बात नहीं। बल के लिये और अनेक रोगों के लिये भी इनका अवस्थानुसार प्रयोग कराया जाता है जिसका पृथक् अध्यायों में वर्णन होगा।

द्वितीय प्रकरण–

स्नेहन

स्नेहन का अर्थ है स्नेह-प्रयोग, जिससे शारीरिक रूक्षता का अन्त तथा शरीर में स्निग्धता का प्रसार होता है। इस स्नेहन क्रिया विशेष को आंगल भाषा में हम 'लुब्रीकेशन' (Lubrication) कह सकते हैं। जिन द्रव्यों द्वारा स्नेहन किया जाता है वह स्नेहक कहलाते हैं। यह द्रव्य गुरु, शीतवीर्य एवं सारक अर्थात् दोषों को सरका कर निकालने वाले होते हैं। चिकने-मन्द क्रिया करने वाले तथा सूक्ष्म अर्थात् स्रोतसों में प्रवेश कर सकने योग्य होते हैं। यह कोमल तथा पतले होते हैं। इन गुणों के विपरीत गुणोंयुक्त-द्रव्य अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, रूक्ष, तीक्ष्ण, स्थूल, कठिन एवं सान्द्र गुणों से युक्त द्रव्य निरूक्षण कहाते हैं-यह शरीर में रूक्षता उत्पन्न करते हैं। वागभट्ट ने लिखा है—

गुरु शीत सर स्निग्ध मन्द सूक्ष्म मृदु द्रवम्।
औषधं स्नेहनं प्रायो विपरीतं विरूक्षणम्॥

चतुर्स्नेह—

घृत, तेल, वसा, मज्जा, चार 'श्रेष्ठ-स्नेह बताए

हैं। जितने भी द्रव्य स्निग्ध हैं या स्नेहक हैं—यदि उनका आंशिक विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें अवश्य ही उपर्युक्त चारों में से कोई न कोई है। या यों कहिए कि इन चारों में से एक कोई भी वस्तु जिस द्रव्य में विद्यमान न हो वह स्नेहक नहीं हो सकता। अतः शास्त्रकारों ने सरलता के लिए सार रूप का वर्णन कर दिया और इनको 'श्रेष्ठ-स्नेह' संज्ञा दी।

घृत की सर्व श्रेष्ठता—

इन चारों में भी घृत ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा आचार्यों का कथन है। लिखा है—

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा सर्वं स्नेहोत्तमामता।

और फिर इसकी सर्वश्रेष्ठता का कारण बताते हुए अन्यत्र भी लिखा है कि—

एष्वस्त्वेवोत्तमं सर्पि संस्कारस्यानुवर्तनात्।

अर्थात् घृत श्रेष्ठतम इसलिए है कि इसमें 'संस्कारानुवर्तन' नामक गुण है। न केवल 'संस्कारानुवर्तन' ही अपितु अन्य कई एक कारण भी घृत की सर्वश्रेष्ठता के ज्ञापक हैं जिनका वर्णन आगे करेंगे।

संस्कारानुवर्तन—

'संस्कारानुवर्तन' से अभिप्राय है कि अपने गुणों को त्यागे बिना ही संस्कारार्थ औषधियों के गुणों को अपने में धारण कर लेना। यह गुण घृत में है तैलादि में नहीं। हां तैलादि दूसरे द्रव्य के गुणों को तो अवश्य ले लेते हैं परन्तु अपने गुण छोड़ देते हैं। स्पष्टीकरणार्थ यहां एक उदाहरण अपेक्षित है, कि जब घृत को चित्रक द्वारा संस्कृत किया जाए जिसमें चित्रक रूक्ष और उष्ण होता है अतः कफ नाशक होता है और दूसरी ओर घृत शीत एवं स्निग्ध होने के नाते (घृत) वात पित्त शामक तथा कफवर्धक है। अतः स्पष्ट है कि दोनों के गुण एक दूसरे से विपरीत हैं और होना यह ही सम्भव जंचता है कि या तो घृत चित्रक के गुणों पर आधिपत्य जमा अपना प्रभाव दिखावे अथवा चित्रक घृत के गुणों को नष्ट कर देवे, परन्तु होता ऐसा नहीं, हमें यहां एक सुन्दर विरोधाभास मिलता है, जब कि चित्रक साधित घृत में दोनों के गुण रहते हैं और वह अपना अपना भिन्न भिन्न प्रभाव दिखाते हैं। दूसरी ओर तैलादि को लीजिए, उनमें ऐसा नहीं होता। हम चन्दनादि तैल को देखते हैं, जिसमें चन्दन शीत होता है और तैल उष्ण परन्तु चन्दनादि तैल में तैल की उष्णता नहीं रहती, वह चन्दन की शीतलता से दब जाती है और केवल चन्दन का शीत गुण रहने से ही चन्दनादि तैल दाह को शान्त करता है।

अन्य कारण—

यों तो घृत की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए 'संस्कारानुवर्तन' ही एक ऐसी सुदृढ़ शिला है जो हिलनी सम्भव नहीं, तो भी प्रसंगवश अन्य श्रेष्ठता ज्ञापक कारणों का वर्णन भी उचित जंचता है, अतः उनका भी अवलोकन करते चलते हैं।

घृत त्रिदोषघ्न होता है, लिखा है—

"स्नेहाद्वातं शमयति, शैत्यात्पित्तं नियच्छति।
घृतं तुल्य गुणं दोषं संस्कारस्तुजयेत्कफम्॥"

और भी—

"सर्पिहि स्नेहाद्वातं शमयति,
संस्कारात्कफं, शैत्यात्पित्तमुष्णं च।"

पुनः घृत की सर्वश्रेष्ठता बताते हुए एक सूत्र अष्टांग संग्रह में दिया गया है—

"माधुर्यादविदाहित्वाज्जन्माद्येव शीलनात्।"

अर्थात्—मधुर, अविदाही तथा जन्म से ही उपयोग में आने के कारण घृत सर्वश्रेष्ठ है।

इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण जो घृत में ही है, अन्य स्नेहों में नहीं, इसकी सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध करने वाला है। वह यह कि घृत में शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों में पहुंचने की शक्ति तैलादि की अपेक्षा कई गुणा अधिक

होती है। अतः अन्य स्नेहों की अपेक्षा संयोजित द्रव्यों को भी शरीर के सूक्ष्मांगों तक अधिक सरलता से पहुंचा देता है, अतः सिद्ध है कि घृत सभी स्नेहों में सर्वश्रेष्ठ है।

घृत की सर्वश्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराने के उपरांत घृत एवं तैलादि के सामान्य गुणों का वर्णन करते हैं।

घृत के सामान्य गुण--

घृत बुद्धि, स्मरण शक्ति तथा ग्रहण शक्ति को बढ़ाता है। अग्नि एवं बल को बढ़ाने वाला आयुवर्धक एवं वीर्यवर्धक होता है। रस, शुक्र तथा ओज के लिये हितकर है। स्वर, वर्ण को निखारने वाला तथा दाहनाशक है। वात पित्त को शान्त करने वाला, बालकों तथा वृद्धों के लिये हितकारी है। क्षत-क्षीण, विसर्प, शस्त्राघात तथा अग्निदोष से क्षीण को शक्तिदायक है। वात, पित्त, विषाक्तता, उन्माद, क्षय, आलस्य तथा जीर्ण ज्वर के लिये हितकर है। वीर्य में शीत एवं स्निग्ध गुण प्रधान हैं। वसा, मज्जा तथा घृत तीनों ही पित्तनाशक हैं तो भी पित्तघ्नतम घृत ही है। चारों स्नेहों में लघुपाकी घृत है। घृत से अधिक गुरुपाकी तैल, तैल से अधिक वसा तथा वसा से भी अधिक गुरुपाकी मज्जा है। चरक में एक सूत्र घृत के गुणों को बताते हुए दिया है-

"घृतं पित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम्।
निर्वापणं मृदुकरं स्वर वर्ण प्रसादनम्॥"

तैल गुण--

तैल वातनाशक है। बलवर्धक, त्वच्य तथा उष्ण है। यह गर्भाशय शोधक होता है। स्निग्ध तथा गुरुपाकी है। मांस की स्थिरता तथा दृढ़ता करने वाला है। तैल कफनाशक होता है या यों कहिये कि तैल कफवर्धक नहीं होता। चरक में सूत्र दिया है—

"मारुतघ्नं न च श्लेष्मवर्धनम् बलवर्धनम्।
त्वच्यमुष्णं स्थिरकरं तैलं योनि विशोधनम्॥"

वसा एवं मज्जा के गुण---

वसा एवं मज्जा के गुण बताते हुए लिखा है कि वसा का प्रयोग विद्ध, भग्न, चोट, भ्रष्टयोनि, कर्णरोग, शिरोरोग, पौरुष एवं व्यायाम के लिये हितकर है।

मज्जा बल, वीर्य, रस, कफ, मेद तथा अस्थियों की शक्ति को बढ़ाती है। यह स्नेहार्थ प्रयोग की जाती है।

स्नेह विभाग—

यों तो स्नेह एक ही प्रकार का है तो भी सरलता के लिये विभाग किए हैं, वह निम्न प्रकार से हैं-
योनि भेद से—

१—स्थावर योनि के जैसे तिल तैलादि।

२—जङ्गम योनि के जैसे गो घृतादि।

भैषज्य कल्पनानुसार---

१—अच्छापेय-जो स्नेहक निरे लिए जायें। किसी प्रकार के अन्य द्रव्यों का उनमें संयोग न हो, जैसे केवल गोघृत।

२—विचारणा-भोज्य पदार्थ एवं बस्ति के साथ जो स्नेह प्रयोग किए जाएं उनको विचारणा कहते हैं। यह विचारणा ६३ रस भेद से ६३ प्रकार की और रसाभाव से एक प्रकार की इस तरह ६४ प्रकार की हो सकती है। यह विचारणायें सात्म्य विचार कर ही प्रयोग की जाती हैं। इस प्रकार से हम एक स्नेह को ही अनेक रूपों में पाते हैं।

यौगिक स्वरूपानुसार—

१—यमक-घृत तथा तैल का यौगिक।

२—त्रिवृत-घृत, तैल वसा का मिश्रण।

३—महास्नेह-चतुर्स्नेह का यौगिक।

कुमारकल्याण घुटी

जिन्होंने इस घुटी का प्रयोग अपने बालकों पर किया है या अन्य बालकों को कराया है उनसे हमको कुछ नहीं कहना, वे तो इसके दिव्य गुणों को भली-भांति जानते ही हैं। जिन सज्जनों ने अभी तक हमारी इस घुटी की परीक्षा नहीं की है उनसे आग्रहपूर्ण निवेदन है कि वह इस अवसर से लाभ उठावें और थोड़ी बहुत परीक्षणार्थ अवश्य मंगालें। इस घुटी को जिसने एक बार मंगाया वह सदैव के लिये इसका भक्त बन गया।

पंसारियों और अत्तारों से

निवेदन है कि वे इधर-उधर की बाजारू घुटी बेचकर केवल पैसा पैदा ही न करें, बल्कि हमारी इस अनमोल अत्युत्तम घुटी को अपने यहां बिक्री कर पैसा पैदा करने के साथ साथ देश के बच्चों को स्वस्थ और बलवान बनाने में भी सहयोग दें। इस दिव्य घुटी का घर घर में प्रचार हो इसी उद्देश्य से केवल १ माह के लिये १ जुलाई से ३१ जुलाई १६६० तक रियायती मूल्य पर सप्लाई करने का निश्चय किया है। आशा है पंसारी, अत्तार, दवा विक्रेता, एजेन्ट, वैद्य सभी इस अवसर से लाभ उठावेंगे। रियायती मूल्य का विवरण निम्न प्रकार है—

तादाद	चालू मूल्य	रियायती मूल्य	तादाद	चालू मूल्य	रियायती मूल्य
१ शीशी	।–)	।–)	६ दर्जन	१६॥।=)	१६)
१२ शीशी	२॥।–)	२॥≡)	१ ग्रोस	३३॥।)	३१॥)
३ दर्जन	८॥≡)	८)	५ ग्रोस	१६८॥)	१४०)

४ औंस का कार्ड बक्स का पैकिंग १ शीशी २), १२ शीशी १८) १ माह के लिये रियायती मूल्य १७)

—नियम—

१—६ दर्जन से कम मंगाने पर सभी व्यय ग्राहक को देने होंगे।
२—६ दर्जन मंगाने पर ग्राहक को केवल रेल-भाड़ा या पोस्ट-व्यय देना पड़ेगा, पैकिंग बारदाना आदि कार्यालय देगा।
३—१ ग्रोस मंगाने पर सवारी गाड़ी का आधा किराया ग्राहक को देना होगा, शेष सभी व्यय कार्यालय देगा। साथ में एक तिरङ्गा चित्र भी भेजा जायगा।
४—५ ग्रोस मंगाने पर मालगाड़ी से फ्री डिलीवरी दी जायगी। साथ में टीन का सुन्दर बोर्ड तथा अन्य विज्ञापन सामग्री भी भेजी जांयगी।
५—आर्डर रेल से भेजा जाय या पोस्ट से यह स्पष्ट लिखें।
६—हर आर्डर के साथ कम से कम ५) एडवांस अवश्य भेजें।
७—३ दर्जन से अधिक मंगाने वाले अपने पास का रेलवे स्टेशन अवश्य लिखें।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)।

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc. दाऊदयाल गर्ग A. M. B. S.

जनवरी (Regd. No. A 1285)

रजि० नं० डु० २८२

धन्वन्तरि
प्राविर्बभूव कलशं दधदर्णावाद्यः,
पीयूषपूर्णममरत्व कृते सुराणाम्।
रुग्जालजीर्णजनता जनित प्रशंसो,
धन्वन्तरिः स भगवान् भविकाय भूयात्॥
आरोग्यं देहि
भाग ३४
अङ्क ६
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
द्वारा प्रकाशित

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से ही बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेज कर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक भी ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है। इस वर्ष नारी-रोगांक प्रकाशित किया गया है।

५—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रियायत नहीं करते। अतएव कमीशन या रियायत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

६—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिए, या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क और विशेषांक का मूल्य ५॥) की वी० पी० भेजने की आज्ञा देनी चाहिए।

विषय सूची

नारीरोगाङ्क के विषय में
आयुर्वेद विद्वानों की सम्मतियां

१—श्री कविराज प्रिन्सिपल हरदयाल गुप्त वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेद डाइरेक्टर पंजाब, अमृतसर।

इस बार का नारी-रोगांक बहुत बड़ा और पर्याप्त नवीनताएें लिये प्रकाशित हुआ है। इससे पाठकों का पर्याप्त ज्ञान सम्बर्द्धन सम्भावित है। ऐसे उपयोगी अङ्क सब ही के लिये संग्रहणीय हैं।

२—श्री वैद्य श्रीनिवास शास्त्री, प्रधान चिकित्सक श्री वि० स० मा० अस्पताल, कलकत्ता।

बन्धुवर,

धन्वन्तरि का नारी रोग पर विशेषाङ्क मिला। यह प्रयास सदा की भांति स्तुत्य है। धन्वन्तरि अपने प्रयास एवं सद्भावना से वैद्यों के मानस पटल पर एक अमिट छाप जमा सका है। इस प्रकार के प्रयास में यह प्रयास और भी स्तुत्य है। यह इस प्रकार की सामग्री है जिसे प्रत्येक नारी को विवाह के समय दहेज में देना चाहिये, जिससे वह स्वस्थ सुन्दर कुशल गृहिणी एवं माता बन सके।

वास्तव में यह महिलाओं के लिये उद्बोधक एवं चिकित्सक पथप्रदर्शक है। घर में रहने वाली सीधी साधी साध्वी महिलाओं के लिये परमोपयोगी साहित्य देकर 'धन्वन्तरि' ने वास्तव में आयुर्वेदज्ञों की लाज रखली। विद्वान लेखकों ने भी अकृपण होकर आयुर्वेद की सेवा की है।

स्त्रियों के अङ्गों, उनकी क्रियाओं विक्रियाओं तथा चिकित्सोपचारों का सुगम सुबोध भाषा में वर्णन कर चिकित्सकों की स्मृति को ताजा बनाये रखने का एवं छात्रों के लिये परम ज्ञान का साधक इसे ये बना सके हैं। कई लेख बहुत ठोस सामग्रीयुक्त भी हैं। प्रत्येक वैद्य को इसे निधि रूप में पास रखना चाहिये।

३—श्री कविराज धर्मदत्त चौधरी वैद्य शास्त्री आयुर्वेदा० प्रधान—लेखक समाज तथा भू० पू० प्रोफेसर, आयुर्वेद भवन, चण्डीगढ़।

आपका भेजा हुआ धन्वन्तरि का नारीरोगाङ्क मुझे मिला। आपका प्रयास प्रशंसनीय है। पुराने लेखकों के अतिरिक्त इस बार इसमें कुछ नवीन 'चेहरे' भी हैं, जिनके कुछ लेख तो बहुत अधिक उपयोगी हैं। सम्पादक मण्डल ने विस्तृत लेखों को संक्षिप्त तथा रोचक बनाने में जो परिश्रम किया है, स्तुत्य है। नारी स्वास्थ्य तथा तत्सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस जटिल समय में इतना बड़ा अङ्क निकालना और इतना उच्चकोटि का साहित्य देना धन्वन्तरि कार्यालय की ही देन है।

चिकित्सक वर्ग ही नहीं, जन-साधारण के लाभार्थ भी यह नारीरोगांक स्तुति योग्य है। मैं इसके संचालकों को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

४-श्री प० ब्रह्मदत्त जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, सीनियर फिज़ीसियन—केन्द्रीय आयुर्वेदान्वेषण संस्था जामनगर।

'नारीरोगांक' आपका यथासमय मिला। अच्छा निकला है। आपने बड़ा परिश्रम किया है। सामग्री संग्राह्य है। मेरी बधाई स्वीकार कीजिये।

५—श्री वैद्य अम्बालाल जोशी, मकराना मुहल्ला, जोधपुर।

आज जननि तन रुग्ण बना है
मन भी रोगी बनता जाता।
चमक दमक वाला युग आया
मातृ स्वास्थ्य को हनता जाता॥

सुन कराह अवतरित हुए तुम
धन्वन्तरि युग पुरुष कहाये।
ले सहस्र योगों को कर में
मातृ जाति के रुग् विनसाये॥
स्वागत है हे महत् तुम्हारा
मिट जावेगा जग का क्रन्दन।
आदि श्रोत नारी के सुख कर
युग करता तेरा शत बन्दन॥

६—श्री डा. सन्तोषकुमार जैन M. Sc. A., A. M. S., गवर्नमेंट हास्पीटल, ग्वालियर।

कुल समाज एवं राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति तथा राष्ट्र में शारीरिक एवं आत्मिक बल, सत्-साहस, श्रेष्ठाचार आदि सद्गुणों का संचार तथा विकास नारियों के अपूर्व साहस, आत्म सम्मान, सतीत्व, गौरव, सदाचार एवं सुशिक्षित होने में तथा उनकी प्रतिष्ठा, उदारता एवं धार्मिक पवित्र भावनाओं के साथ-साथ भावी सन्तति की पूर्ण निरोगता, सच्चरित्र सम्पन्नता पर अवलम्बित है। इन सद् गुणों की पूर्ति में 'धन्वंन्तरि' का यह अपूर्व 'नारीरोगाङ्क' अवश्य सहायक होगा, ऐसा मेरा मत है।

आया 'नारीरोगाङ्क' जगत में है
अद्भुत अनुपम विज्ञेय।
मिलती नहीं कहीं भी कोई
इसकी उपमा अरु उपमेय॥
डाक्टर, वैद्य, हकीम सभी
ही, लाभ उठावें पावें श्रेय।
रोग नष्ट हों नारि जगत के
स्वस्थ बनें इसका ध्रुव ध्येय॥

७—श्री पं० गिरिजादत्त पाठक वैद्य आयुर्वेद वाचस्पति, बक्सर।

धन्वन्तरि का नारीरोगांक मिला। लेखों का चयन समुचित हुआ है। धन्वन्तरि की यह अपनी शैली है जिससे यह प्रति पल अभ्युन्नत होता जा रहा है। भगवान् इसे सर्वदा समुन्नत बनाकर आयुर्वेद की सेवा एवं उपादेयता सिद्ध करने में इसे सफलता प्रदान करें। हमारी शुभ कामना आपके साथ है।

८—श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य आयुर्वेदरत्न, इन्दौर।

आपके द्वारा प्रेषित 'धन्वन्तरि' का 'नारीरोगांक' प्राप्त हुआ। अवलोकन किया तथा बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः ऐसे ही निस्वार्थ पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इस आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति की रक्षा, उन्नति, सत्यता प्रस्फुटित होती हैं।

आयुर्वेद साहित्य, चिकित्सा आदि को नवीन ढङ्ग से प्रस्तुत करना, उसे संभालना, साहित्य में वृद्धि करना, आदि 'धन्वन्तरि' और उसके संचालकों, कार्यकर्त्ताओं का प्रशंसनीय, बंदनीय योगदान है जो कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। साथ में उन विद्वानों का भी इसमें योग देना महत्वपूर्ण है जो कि आयुर्वेद की महत्ता को जन युग में पुनः जीवन ज्योति की ओर अग्रसर करने में प्रयत्नशील हैं। एतदर्थ उन सभी को अनेक अनेक धन्यवाद हैं।

९—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, वाराणसी।

"नारीरोगांक" मिला, धन्यवाद। इस विशेषाङ्क को आपने अपनी बुद्धि वैभव से इस योग्य बना दिया है कि यह नारी जीवन को स्वस्थ एवं सुखमय बनाने में सर्वतोभावेन समर्थ हो गया है।

आशा है आपके इस प्रयास से जनता आशातीत लाभान्वित होगी।

१०—श्री डा० शिवकुमार व्यास भिषगाचार्य 'धन्वन्तरि' नई दिल्ली।

विशाल-काय 'नारीरोगांक' धन्वन्तरि की पुरातन विशेषांक परम्परा में एक सुन्दर कड़ी जोड़ता है। इसमें एक ओर जहां स्त्री शरीर रचना, शरीर क्रिया विज्ञान, आर्तव, ऋतुकालचर्या, परीक्षाविधि, प्रदर, योषापस्मार, गर्भप्रकरण, अर्बुद आदि अनेक प्राकृत एवं विकृत अवस्थाओं का आयुर्वेदीय वैज्ञानिक चयन-बद्ध साहित्य पाते हैं वहां दूसरी ओर नारी जीवन की पूरी झांकी भी इसमें अवलोकित होती है। इससे यह न केवल वैद्य समाज तक ही सीमित रहा है अपितु प्रत्येक स्त्री के लिये पठनीय साहित्य की चयनिका बन गया है। ऐसे उपयोगी अङ्क को संग्रह कर पढ़ना प्रत्येक नारी के लिये आवश्यक है।

११—आचार्य डा० श्यामदास पीयूषपाणि, सर्वोदय धर्मार्थ डिस्पेंसरी,, बीगवां (बुलन्दशहर)।

श्रीमान् सम्पादक जी! सप्रेम हरिस्मरणम्

ग्रन्थिका, उग्रा, अभया, कृष्णा, विडङ्ग ये घी में मिले हुए मांसरस या तक्र के साथ सेवन करने से ग्रहणी, अर्श, पाण्डु, गुल्म और कृमिरोगों का नाश करते हैं।

त्रिफला, अमृता, वासा, तिक्त, भूनिम्ब इनके क्वाथ में शहद मिलाकर खाने से कामला सहित पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है।

रक्तपित्त के रोगी को मिश्री और शहद मिलाकर वासा का स्वरस सेवन करना चाहिए। अथवा वरी, द्राक्षा, बला, शुण्ठी इनसे पृथक् पृथक् सिद्ध किया हुआ दूध पीना चाहिए।

वरी, विदारी, पथ्या, तीनों बलायें, वासा, श्वदंष्ट्रा इनको मधु और घृत में मिलाकर चाटने से क्षयरोग नष्ट होता है।

पथ्या, शिग्रु, करञ्ज और अर्क के त्वक्सार को मधु और सैंधव मिलाकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से विद्रधि नष्ट होती है। उसके परिपाक के लिए यह सर्वोत्तम औषधि है।

त्रिवृता, दन्ती, जीवन्ती, मञ्जिष्ठा, दोनों निशा, गरुड बूटी और निम्ब पत्र इनका लेप भगन्दर में अत्यन्त लाभदायक है।

रुग्घातक, रजनी, लाक्षा, तूर्णी, अजा और शहद मिश्रित वस्त्र की बत्ती बनाकर उसका प्रयोग व्रण में करना चाहिए। यह व्रण का शोधन और प्रवाह को बन्द करती है।

श्यामा, यष्टी, निशा, लोध्र, पद्मक, उत्पल, चन्दन और मरिच इनसे शृत तैल व्रण का रोहण करता है।

बिल्व और कपास के पत्तों की भस्म, फलोपलवणा, निशा—इनका पिण्डी स्वेदन करके ताम्र पात्र में रक्खा हुआ तैल क्षत की परम औषधि है। आग से जले हुए के घाव पर जल में घिसकर कुम्भीसार का लेपन करे अथवा नारिकेल के घृत को जल में फेटकर लगावें।

विश्वा, अजमोदा, सैंधव, चिञ्चा, त्वक् इनके बराबर अभया लेकर तक्र या उष्ण जल के साथ सेवन करने से अतिसार का नाश होता है। वत्सक, अतिविषा, विश्वा, बिल्व, मुस्ता–इनसे शृत जल को आम सहित पुराने अतिसार में तथा रक्तशूल में पिलाना चाहिए। अंगारों में दग्ध सुहागा सैंधानमक मिलाकर गरम जल के साथ पीने से अथवा सैंधव, हिंगु, कणा, अभया इनको उष्णोदक से सेवन करने से शूल का निवारण होता है।

कटुरोहा, कणा, सुहागे के लावे का चूर्ण शहद में मिलावें। इसको वस्त्र में रखकर छेद करके मुख में रखने से तृष्णा का नाश करता है। पाठा, दार्वी, जातीफल, द्राक्षामूल,तीनों बलाएं इनसे साधित क्वाथ में मधु मिलाकर कवल धारण करने से मुखपाक दूर होता है। कृष्णा, अतिविषा, तिक्ता, इन्द्रदारु, पाठा, पयोमुक और गौमूत्र में शृत क्षौद्री सब प्रकार के कण्ठ रोगों को दूर करती है। पथ्या, गोक्षुर, दुःस्पर्शा, राजवृक्ष, शिला, इनका कषाय मधु मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है। श्लीपद रोग वालों को वंशत्वक् और वरुण का क्वाथ, शर्करा, पाषाण भेद और शाखोटक का क्वाथ शहद मिलाकर पीना और दुग्धाहारी होना चाहिए। माष, अर्क, दुग्ध, तैल, मधु मिश्रित सैंधव ये पाद रोग को नष्ट करते हैं। जल कुक्कुटजन्य व्यथा घी से दूर होती है। शुण्ठी, सौवर्चला और हिंगु का चूर्ण और शुण्ठी रस से साधित घृत, इनके क्वाथ को बद्धाग्निसाधन, मल बन्ध का नाश करके अग्नि को दीप्त करने वाला समझो। सौवर्चल, अग्नि (चित्रक), हिंगु, दीप्या, इनके रस से युक्त अथवा बिड़नमक और दीप्यक से युक्त तक्र से गुल्म रोग दूर होता है। विसर्प रोग का नाश करने के लिये धात्री, पटोल और मूंग का क्वाथ घी मिलाकर पीना चाहिये। शुण्ठी, दारु, पुनर्नवा, क्षीरि इनका क्वाथ गौमूत्र मिलाकर पीना भी विसर्प नाश का दूसरा प्रयोग है। व्योष के सहित लौहचूर्ण, क्षार और फल क्वाथ शोथ को हरण करता है। गुड़, शिग्रु, त्रिवृता और सैंधव चूर्ण अथवा केवल

—शेषांश पृष्ठ ७३१ पर

ज्योतिष और आयुर्वेद

श्री शेख फय्याज खां विशारद

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने चिकित्सा के साथ-साथ ज्योतिष को भी अपनाया है। चिकित्सा आरम्भ से पूर्व रोगी की अवस्था आदि के अनुसार शगुन आदि को भी प्रधान माना जाता था। अब भी प्राचीन विचारधारा के वैद्य रोग आरम्भ काल आदि का ज्ञान करके रोग चिकित्सा अपनाते हैं इसीलिए उनको सफलता प्राप्त होती है। मेरे पिता के एक मित्र जो केवल साधारण हिन्दी वर्णमाला जानते थे और जीवन भर वे केवल 'नूतनामृतसागर' और 'देवीदान अनुभव प्रकाश' इन दो पुस्तकों द्वारा अध्ययन कर 'सफल चिकित्सक' कहलाये। मुझे याद है कि कई बार मुझसे रोग निदान और प्रयोग आदि इन्हीं पुस्तकों को पढ़वाकर नोट करवाते थे। परन्तु यह सब शगुन आदि द्वारा पूर्ण निश्चय के पश्चात् ही करते।

मैं भी पहले इन पर विश्वास नहीं किया करता था। परन्तु प्रायः ६ वर्षों से पूर्ण जांच करने पर मुझे भी पूर्ण विश्वास हो गया। प्रायः देखा जाता है कि रोगी को दवा दी जाती है परन्तु दवा की मात्रायें पूरी न लेकर झूठ मूठ वैद्य को बदनाम करने वाले और नित नये वैद्यों के पास भटकने वाले रोगी प्रायः अपनी बीमारी बढ़ाकर हानि उठाते हैं या काफी समय पश्चात् रोग से छुटकारा पाते हैं या पूर्ण हानि को प्राप्त होते हैं। उनकी बुद्धि ग्रह दोष से भटक जाती है।

एक धनी महाजन को प्रवाहिका, रक्तातिसार और ज्वरातिसार फिर अर्श से कठिन पीड़ित होना पड़ा। ८ मास तक एलोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टरों के पास से निराश लौटने के पश्चात् मुझ से दवा करानी प्रारम्भ की। फिर टोने टोट के पर लग गये। मैंने नाराज होकर उनको छोड़ दिया और ज्योतिष द्वारा ज्ञात करने के पश्चात् उनको कह दिया कि ५ महीने और भटक लो इसके पहले ठीक होने के नहीं। वास्तव में वे बम्बई के अस्पताल में भी रहकर आये और अन्त में फिर मुझे बुलाया। मैंने प्रयत्न आरम्भ किया। प्राकृतिक उपचार, पथ्य और आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा उनको नई आशा मिली। ऐसी अवस्था में यह प्रमाणित हो जाता है कि ग्रह दोष के कारण रोग बढ़ना भी रोगी की लापरवाही या रोग के कुटुम्बियों की लापरवाही या कुछ अंशों में चिकित्सक की भी अनभिज्ञता हो सकती है। चिकित्सा चन्द्रोदय, रसराज महौषधि आदि अन्य ग्रन्थों में भी रोगी की जांच में ज्योतिष का सहारा लिया गया है।

वैद्य बन्धुओं को साधारणतया एक सारणी द्वारा सहायता प्राप्त होगी। रोगी या उसके सम्बन्धियों को रोग प्रारम्भ काल पूछकर खतरनाक बीमारी में हाथ डालने से पहले इस पर गौर करेंगे तो उन्हें नई आशा प्राप्त होगी। जन्म पत्रिका या प्रश्न पत्रिका आदि से तो पूर्ण पथ प्रदर्शन होता ही है परन्तु फिर भी इस रीति से किसी की खुशामद न करनी पड़ेगी और वैद्य बन्धु लाभ उठा सकेंगे।

पंचांग में देखिये, रोग आरम्भ काल रोगी से पूछिये, उस दिन का नक्षत्र ज्ञात करिये और दिन के समय से नक्षत्र का सर्वमान काल निकालकर उसके चार भाग करिये और ज्ञात करिए कि रोगी किस चरण (भाग) में रोग ग्रसित हुआ है और फिर सारिणी में रोग की दिन संख्या ज्ञात करिए। जहां शून्य × है वहां मृत्यु से आशय समझें। उपाय भी देख लें और रोगी को हिदायत करदें। शून्य स्थान वाले रोगी को कहिए नहीं परन्तु चिकित्सा में हाथ मत डालिए।

जीवन या मृत्यु का विचार

(नक्षत्र कष्टावली)

रोग कष्ट का समय (दिन)

नक्षत्र	चरण १	चरण २	चरण ३	चरण ४	उपाय (दानादि)
अश्विनी	६ दिन	×	२ दिन	२६ दि.	भोजनदान
भरणी	×	४०	२	२१	गाय या दूध
कृतिका	६	३१	७	२१	स्वर्ण पीतवस्तु
रोहिणी	२	५	११	३०	घृत
मृगशिरा	३	५	२५	७	तेल
आर्द्रा	×	८	×	२	गाय दुग्ध
पुनर्वसु	५	२१	२	२७	तेल
पुष्य(पुख)	७	२१	२	१७	चावल
अश्लेशा	×	×	×	४०	गाय-दुग्ध
मघा	४०	१२	२७	३०	बकरी
पू. फाल्गुनी	१०	७	१७	१४	भोजन
उत्तरा फा.	१५	७	१७	१४	तिल
हस्त	१७	१७	१७	१४	बकरी
चित्रा	१५	१७	७	८२	दूध
स्वाति	६	×	१७	१०	गाय
विशाखा	१०	१५	१४	४	स्वर्ण
अनुराधा	१०	४५	११	४	घृत
ज्येष्ठा	१५	४८	११	४	तिल
मूला	१०	६०	२५	१४	चांदी
पूर्वाषाढ़ा	२०	२७	२५	११	गाय
उत्तराषाढ़ा	२८	१७	२५	१५	भोजन
श्रवण	३०	६८	४५	१४	भोजन
धनिष्टा	×	×	×	४०	भैंस
शतभिषा	१५	१०	२५	४	नारियल
पूर्व भाद्रपद	१५	२५	३०	×	घोड़ा
उ. भाद्रपद	×	७	१५	२३	अनाज
रेवती	३१	३४	१५	×	बैल

यदि तिथि १ को मूला, ५ को भरणी, ८ को कृतिका, ६ को रोहिणी और १० को अश्लेषा नक्षत्र हों तो ऐसे समय में बालक जन्मे तो मर जावे, रोग आरम्भ हो तो वह भी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता ऐसे नक्षत्र ज्वालामुखी नक्षत्र कहलाते हैं।

यदि मंगल, शनि या रवि को २. ७. १२ तिथियां हों और उन्हीं दिनों विशाखा उ. फा. या उ. भा. नक्षत्रों में से भी कोई हो तो 'त्रिपुष्कर योग' होता है। यदि ऐसे में रोग आरम्भ हो तो घर में २ रोगी और हों। मृत्यु हो तो दो मृत्युएं और हों।

इनके अतिरिक्त अन्य बातें जानने के इच्छुक बन्धु अच्छे पंचांगों द्वारा ज्ञात करें।

रोग निदान में ज्योतिष कितनी सहायक है

आज से १ वर्ष पहले की बात है। एक रोगी मेरे पास आया और केवल हाथ आगे करके बैठ गया। मैंने कुछ पूंछने का प्रयास किया तो वह बोला नाड़ी देख लीजिये मैं क्या बताऊं। उसके उत्तर के भावों से ऐसा ज्ञात हुआ कि वह परीक्षा हेतु व्यंगपूर्वक पूछ रहा है। मैंने उससे कहा कि बिना नाड़ी देखें बता दूं तो? इस पर वह आश्चर्य से पूंछने लगा कैसे? मैंने उससे कहा कि तुम्हारे दाहिनी पसली के नीचे दर्द रहता है, मल सूखा और कष्ट से आता है? वह स्वीकृतिपूर्वक एवं नम्रता-पूर्वक बोला यही कष्ट है। फिर वह बोला हम तो एक ठाकुर साहब .... को ही जानते थे कि डाक्टरों से भी बढ़कर हैं पर आप तो उनसे भी बढ़कर निकले। वह कहता जाता आज से ६ महीने पहले मेरे कलेजे के ऊपर से एक जानवर निकल गया था। ठाकुर साहब ने धूप देकर मेरे मुंह में एक डोरा डाला और एक दवा सुंघाकर छींकों के साथ ही जानवर बाहर आ गया। परन्तु अब फिर दर्द होने लगा है शायद कोई और जानवर पड़ गया होगा। पौन इञ्च बड़ा जानवर (गीगोड़ा-मारवाड़ी में) पहले था अब अधिक दर्द है। डाक्टर तो चीर कर निकालते हैं आप बिना चीरे निकालें तो ठीक वरना उन्हीं ठाकुर साहब के पास जाना होगा।

वास्तविक बात यह थी कि उसको यकृत् शोथ हो जाया करता था और दोष बढ़ने की अवस्था में कंधे तक चीस चलती थी। विरेचन दिया गया और ६ घण्टे बाद बनावटी रूप से मन्त्रों का ढकोसला दिखाते हुए धूप के धूंए में ठाकुर साहब ने छुपे हुए जानवर को मुंह से निकालने का इशारा करके उनको उल्लू बनाया होगा जैसे कि जादूगर करते हैं। मैंने पहले उस आदमी को Physiology तथा Anatomy के चार्ट दिखाये और संक्षेप में शरीर क्रिया बतलाकर तसल्ली दी और वह समझ गया कि विरेचन के कारण कुछ कष्ट कम हुआ था।

फिर उसने पूछा कि आपने दूर से बिना नाड़ी देखे कैसे बता दिया। मैंने हस्त रेखा देखकर उसको और शारीरिक व्याधियां बतलाई। वह मानता गया कि बचपन से ही पेट बढ़ गया था, वमन और विरेचन का रोग था, उसकी स्वास्थ्य रेखा Hepatic line स्पष्ट बतला रही थी। नखों द्वारा रक्ताल्पता प्रकट थी।

साधारण ज्ञान के लिये निम्न चित्र देखिये—
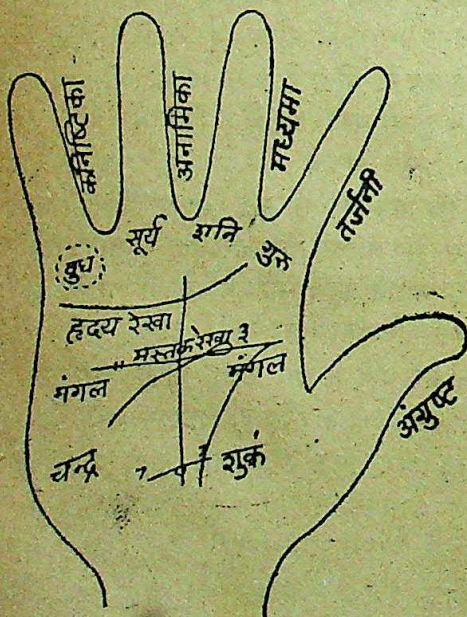
(१) अंगूठे के पास वाला भाग शुक्र स्थान है। यह जितना उभरा हुआ होगा उतना ही मनुष्य बलिष्ठ, स्वस्थ, एवं कामुक होगा।

(२) इसके साथ हथेली लाल गठनशील हो तो स्वास्थ्य का चिह्न है।

(३) मस्तक रेखा पर यव होने से मस्तक पीड़ा, नेत्र रोग, कान रोग की प्रकृति रहेगी।

(४) चन्द्र स्थान दबा हो तो वायु रोग, गठिया, प्रमेह रोग होते हैं।

(५) मस्तक रेखा पर छोटी रेखाऐं छेदन करें तो दन्त रोग होते हैं।

(६) मस्तक रेखा झुकी हुई हो तो बलिष्ठ हाथ में साहित्य प्रेमी, परन्तु लम्बे और कमजोर हाथ में 'वहमी प्रकृति' का होगा। दवाओं को बदलता रहेगा।

(७) चन्द्र स्थान से आयु रेखा को काटती हुई शुक्र स्थान पर रेखा जावे तो नशेबाज होगा। इस रेखा पर यव चिह्न हो तो नशे द्वारा मृत्यु होगी।

आयु रेखा और अन्य रेखाओं का समय ज्ञात करना—

अगले चित्र में अंगुष्ठ मूल के केन्द्र से जहां भाग्य तथा मस्तक रेखाऐं कटती हों (हथेली के मध्य में) वहां से कनिष्ठिका मूल तक रेखा खींचिये। इसी पर आयु के ३५, मस्तक तथा भाग्य रेखा के कटने के स्थान पर भाग्य तथा मस्तक के ३५-३५ वर्ष की आयु मानिये।

रोग चिन्हों को इसी अनुमान से ध्यान लगाइए और वास्तविकता ज्ञात करिए।

स्वास्थ्य रेखा Health line या Hepatic line यकृत् (जिगर रेखा) भी ध्यान से देखिए।

आपके द्वारा प्रकाशित इस वर्ष का विशेषांक "नारी-रोगाङ्क" मुझे पढ़ने को मिला। इसके अध्ययन और मनन करने वाले चिकित्सकों को कार्य क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त होने की सम्भावना ही प्रतीत हुई, प्रस्तुत विशेषांक में सभी विषय सामग्रियों का समावेश जो बड़ी सूझ-बूझ से किया गया है वर्तमान काल की आवश्यकता के आधार पर ही कहना चाहिए। आशा करता हूं कि साहित्य सृजन की ऐसी परम्परा को कायम रखते हुए आप भविष्य में और उच्च कोटि का आदर्श स्थापित कर आयुर्वेद विज्ञान के मार्ग-दर्शक कहलायेंगे।

११-आचार्य डा० महावीर प्रसाद रंजन विद्या वाचस्पति
लहेरियासराय (दरभंगा)।

'धन्वन्तरि' का चिर-प्रतीक्षित विशेषांक 'नारी-रोगाङ्क' मिला। अनेक धन्यवाद।

निःसन्देह सर्वोपयोगी एवं सर्वांगपूर्ण विशेषाङ्कों के प्रकाशन में 'धन्वन्तरि' का अपना विशिष्ट स्थान है। मेरे विचार में तो इसका स्थान 'कल्याण' के समकक्ष ही है।

प्रस्तुत अङ्क बड़ा सुन्दर बन पड़ा है, इसकी तो जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी ही है। लेखकों का चयन एवं सम्पादन तो उत्कृष्ट है ही किन्तु छपाई-सफाई भी अच्छी है। चित्रों का संकलन भी सुन्दर है।

संक्षेप में, यह विशेषांक नारी सम्बन्धी ठोस साहित्य का भण्डार है। 'गागर में सागर' वाली कहावत चरितार्थ है। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिये आप वस्तुतः बधाई के पात्र हैं।

भगवान 'धन्वन्तरि' को चिरायु करें।

१२-कविराज पं० नानकचंद वै० शा० दिल्ली।

आपका प्रेषित "नारी अङ्क" ध्यानपूर्वक पढ़ा। आपने जिस परिश्रम द्वारा विशेषाङ्क का संकलन किया है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। आपका यह सद्उद्योग आयुर्वेद जगत में वैद्यों के लिये विशेष पठनीय तथा विशेष लाभप्रद होगा ऐसा मेरा विचार है।

इस नारी-रोगाङ्क में वर्णित विषय किसी भी आयुर्वेद के एक ग्रन्थ में प्राप्त हो ही नहीं सकते।

आयुर्वेद की उन्नति के लिए इस का अध्ययन परमावश्यक है। आपका यह उद्योग अति प्रशंसनीय है। आशा है आप सदा एतादृश कर्त्तव्य के लिये कटिबद्ध रहेंगे।

१३-श्री पं० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री,
श्रीब्रह्मकुटी शिलोठी, भीमताल (नैनीताल)।

भारतीय परम्परा में नारी को शक्ति का प्रतिनिधि माना है। मार्कण्डेय पुराण में इसको पुरुष शक्ति से भी वरीयता प्रदान करते हुये यह सिद्ध कर दिया है कि देवता जब दानवों से पराजित होगये तब वे नारी रूपा शक्ति की शरण में गये और उन्होंने सफलता प्राप्त की, ऐसी नारी को नीरोग करने तथा स्वस्थ रखने के हेतु आपने जो भागीरथ प्रयत्न किया है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस वर्ष (१९६०) का नारीरोगांक है।

१४-श्री लक्ष्मीनारायण राठौर 'अलौकिक', शामगढ़

"नारीरोगाङ्क" में प्रकाशित पुष्कल सामग्री इस अङ्क की अपनी विशेषता है। अत्यल्प वार्षिक मूल्य में धन्वन्तरि अपने पाठकों को विशालकाय विशेषाङ्क भेंट करता रहा है। यह आयुर्वेद का ही नहीं आयुर्वेदज्ञों का भी परम सौभाग्य है।

१५-श्री उमाशंकर दाधीच साहित्यायुर्वेद विशारद,
समावद, म० प्र०।

जय आयुर्वेद, धन्वन्तरि का नारीरोगाङ्क मिला, मनन किया, लगभग ग्यारह वर्ष से धन्वन्तरि का नियमित पाठक रहा हूं, किन्तु धन्वन्तरि नारीरोगाङ्क जैसा ठोस साहित्य अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया, अन्य चिकित्सकों एवं उन चिकित्सकों के लिये जो नारी चिकित्सा विशेषज्ञ बनने के इच्छुक हों यह अङ्क अवश्य क्रय करना, पढ़ना व मनन करना चाहिये।

१६-श्री कान्ह महर्षि, महर्षि सदन, नोखा (बीकानेर)

धन्वन्तरि मासिक के नारीरोगाङ्क का अवलोकन किया। इस विशेषांक में आपने नारी जीवन के आरोग्य के लिये स्पृहणीय कार्य किया है। इसे

पाकर वैद्य गणों की चिकित्सा शक्ति में निस्संदेह अभिवृद्धि होगी।

बहुजनन एवं सन्तति अनिरोध राष्ट्र की जटिल समस्यायें हैं। आपने अकथ परिश्रम कर उक्त कठिनाइयों पर ज्ञान सम्पन्न विद्वानों द्वारा उचित हल सुझाया है। मेरी समझ से यह एक अत्यन्त पवित्र बुद्धि से सम्पादित किया हुआ राष्ट्रीय कार्य है। इस महत् कार्य की सफलता के लिये मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

१७-श्री पं० धीरेन्द्रमोहन भट्ट G. A. M. S.
२३, विधायिका क्लब गार्डन रोड, पटना।

"धन्वन्तरि" विशेषांक के रूप में 'नारीरोगाङ्क' मिला। आपके द्वारा सम्पादित यह अंक अत्युपयोगी और संग्रहणीय है। 'धन्वन्तरि' तथा आपकी उन्नति की कामना करता हूं।

आपके द्वारा उठाया गया यह कदम प्रशंसनीय है क्योंकि आप अनेक विद्वानों के अनुभवों को संग्रह के रूप में पाठकों को देते हैं। भगवान आपको इस कार्य में यश प्राप्त करायें।

१८-आचार्य वैद्य रामप्रसाद आयु० रत्न M. G. P. S. घिरोर मैनपुरी।

इस वर्ष के धन्वन्तरि अंक के विशेषांक नारीरोगांक का मैंने अध्ययन किया। विशेषांक में नारी रोगों का संकलन उत्तम ढङ्ग से किया गया है। यह विशेषांक हर वैद्य, डाक्टर को अपने विषय की पाठ्य पुस्तक में रखना अनिवार्य है।

१९-श्री राजेन्द्रकुमार जैन A. M. B. S., F. J. P. H. शिवराम कालेज का बाग, बाना ग्रोली लश्कर।

आपका भेजा हुआ धन्वन्तरि का 'नारीरोगांक' देखने को मिला। अंक को आद्योपान्त पढ़ने से मालूम हुआ कि अधिकारी विद्वानों के अनुभूत प्रयोगों का यह विशद और उत्कृष्ट संग्रह आयुर्वेद परम्परा में अपना नवीन स्थान सहज ही बना लेगा।

धन्वन्तरि प्रायः प्रतिवर्ष ही एक उत्कृष्ट संग्रह आयुर्वेद जगत को प्रदान करता है। संदेह नहीं कि आयुर्वेद साहित्य के बर्धन हेतु यह एक उत्कृष्ट कदम है।

'आयुर्वेद--चिकित्सक' में प्रकाशित

❀ समालोचना ❀

धन्वन्तरि का विशाल विशेषांक (नारीरोगांक)

सम्पादक—वैद्य देवीशरण जी गर्ग, ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल एवं दाऊदयाल जी गर्ग। प्रकाशक—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)। साइज २०×३०=८ पेजी। पृष्ठ संख्या ५२०। वार्षिक मूल्य ५।।), इस विशेषांक का ८।।)।

धन्वन्तरि मासिक पत्र पिछले ३४ वर्षों से आयुर्वेद की अनवरत ठोस सेवा कर रहा है। अभी तक इसने ठोस सामग्री वाले पचासों विशेषांक जनताजनार्दन के कर-कमलों में भेंट किये हैं। वर्ष प्रतिवर्ष इसके विशेषांकों ने कल्याण की भांति प्रगति की है। प्रत्येक विशेषांक का साहित्य और आकार देखते ही बनता है।

प्रस्तुत विशेषाङ्क में नारी शरीर की रचना और जननेन्द्रिय का वर्णन विस्तार के साथ किया है। आर्तव प्रकरण में आर्तव सम्बन्धी सभी जानकारी दी हैं। ऋतुचर्या प्रकरण में माननीय ५ वैद्यों के चुनिन्दा लेख हैं। स्त्री रोग परीक्षा प्रकरण में स्त्री की योनि, उदर और विभिन्न रोगों की परीक्षा अच्छी तरह समझा कर दी है।

आर्तव—विकृति प्रकरण में अनार्तव, कष्टार्तव, और रजोरोध पर विस्तृत वर्णन करके १४ वैद्यों के अनुभव पूर्ण अनेकों प्रयोग दिये हैं। प्रदर रोग प्रकरण में ४० वैद्यों द्वारा विवेचन युक्त अनुभूत प्रयोग दिये गये हैं। हिस्टेरिया प्रकरण में ७ वैद्यों के मननीय लेख हैं।

उसी प्रकार योनिव्यापद्, बन्ध्यत्व, गर्भपात, गर्भस्राव, पुंसवन, गर्भविकास, गर्भावस्था के रोग, प्रसूतज्वर, मक्कलशूल, गर्भाशय विच्युति, अर्बुद, रक्तगुल्म, गर्भाशय शोथ, योनिकण्ड, सोमरोग, स्तन रचना, स्तन रोग, स्तन्य प्रकरण, उपदंश-फिरङ्ग प्रकरण, वस्ति चिकित्सा, स्त्रियोपयोगी वनस्पतियां, व्यायाम, सौन्दर्य, इच्छित संतति जैसे २९ प्रकरणों पर विस्तृत विवेचन है। ऐसे विवेचन युक्त उत्तम विशेषाङ्क के लिये धन्वन्तरि कार्यालय बधाई का पात्र है। ग्राहक बन्धु वार्षिक ग्राहक बनकर इसका लाभ उठायें।

वनौषधि विशिष्टाङ्क

हमारी गत कई वर्षों से आकांक्षा थी कि धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा वनौषधि विषयक कोई वृहत् रचना प्रकाशित की जावे। एतदर्थ हमने श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य से कहा था। उन्होंने हमारे प्रस्ताव को स्वीकार कर वनौषधि विषयक वनौषधि रत्नाकर नाम से एक वृहत् ग्रन्थ की रचना का कार्य प्रारम्भ भी कर दिया था जिसमें 'अ' से लेकर 'क' अक्षर तक की छोटी बड़ी प्रायः सभी वनस्पतियों का वर्णन आया था। इसे हम बढ़िया आर्ट पेपर पर प्रायः सभी वनस्पतियों के हूबहू तिरंगे चित्रों के साथ प्रकाशित करने का विचार कर रहे थे लेकिन कागज आदि की भीषण महर्घता एवं उसके कारण पुस्तक की ऊंची लागत का विचार करके आयोजन स्थगित करने को हम बाध्य हुए। जैसा प्रकाशन हम चाहते थे उस प्रकार के प्रकाशन में २ लाख रुपया से कम व्यय नहीं होता। इतने मूल्यवान ग्रन्थ को खरीदने वाले कम मिलते, अतः यह आयोजन सफल नहीं हुआ।

अब हम कई वर्षों के अनुभव से सोचते हैं कि किसी भी सर्वोपयोगी ग्रन्थ का धन्वन्तरि के विशेषांक के रूप में प्रकाशन कर जनता जनार्दन की जितनी सेवा कर सकते हैं उतनी उस ग्रन्थ को स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित नहीं कर सकते। अब जब हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आगामी वर्ष के लिए किस विषय पर विशेषांक निकाला जाय तब सहज ही हमारा ध्यान हमारे चिराभिलषित वनौषधि विषयक साहित्य के प्रकाशन की ओर आकृष्ट हुआ और हमने निश्चय किया कि क्यों न अपनी अभिलाषा को विशेषांक के रूप में मूर्तिमान देकर हम स्वयं को एवं अपने प्रिय पाठकों को सन्तुष्ट करें।

हमारा विचार है कि यदि पाठकों ने इस विषय का प्रथम विशेषांक पसन्द किया जैसा कि हमको पूर्ण विश्वास है तो हम एक वर्ष किसी अन्य विषय पर तथा एक वर्ष वनस्पति विषय पर, इस प्रकार प्रति दो वर्ष में एक विशेषांक वनस्पति पर प्रकाशित करते रहेंगे।

इस विशेषांक में हम उन्हीं विशिष्ट विशिष्ट वनौषधियों का विज्ञानपूर्ण विवेचन प्रकाशित करना चाहते हैं जो कि प्रायः सर्व प्रचलित हैं × किन्तु उनका विवरण एकत्र ही सुलभ नहीं है। इस प्रकार के विशेषांक से पाठकों को महान लाभ यह होगा कि उन्हें अपनी जानी बूझी वनस्पतियों के परिज्ञान के लिए अन्य ग्रन्थों के खरीदने की आवश्यकता नहीं रहेगी। प्रत्येक वनस्पति को हम सचित्र ही प्रकाशित करेंगे। इस विशेषांक का नाम **"वनौषधि विशिष्टाङ्क"** रहेगा। प्रथम भाग में

× यदि हम सभी वनस्पतियों को अकारादि क्रम से लें तो यह साहित्य बहुत बढ़ जायगा और फिर लगभग १५-१६ विशेषांकों में सम्पूर्ण साहित्य पूर्ण होगा। अतएव हमने उन वनस्पतियों को छोड़ देना उचित समझा है जो प्रायः अप्राप्य हैं तथा जिनको सम्प्रति कोई पहचानता तथा उपयोग नहीं करता है। यदि पाठकों ने चाहा तो पहले विशिष्ट एवं प्रसिद्ध वनस्पतियों को ४-५ विशेषांकों में वैद्य समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के पश्चात् अप्रसिद्ध वनस्पतियों का संक्षिप्त विवरण देते हुए एक विशेषांक और प्रकाशित करके साहित्य को सम्पूर्ण किया जा सकेगा।

अकारादि क्रम से 'अ' से 'क' तक की सभी प्रसिद्ध एवं विशिष्ट वनस्पतियों का सचित्र वर्णन होगा। वर्णन इस प्रकार सरल भाषा में होगा जिससे वैद्यों के अतिरिक्त सामान्य व्यक्ति भी लाभ उठा सकें। प्रत्येक वनस्पति का किन किन रोगों पर किस प्रकार सरलतापूर्वक व्यवहार किया जा सकता है इस विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला जायगा।

इस विशेषांक के विशेष सम्पादक होंगे श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य जिन्होंने 'बनौषधि रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना बड़े मनोयोग एवं परिश्रम से की है। इस विशाल ग्रन्थ का उपयोगी भाग तो इस विशेषांक में देंगे ही, साथ ही इन वनस्पतियों पर अन्य अनुभवी विद्वानों के अनुभव भी संकलित कर देने का प्रयत्न किया जायेगा।

आगामी वर्ष के विशेषांक में हम जिन बनौषधियों का वर्णन देना चाहते हैं उनकी सूची निम्न प्रकार से है। विज्ञ लेखकों एवं पाठकों से सविनय अनुरोध है कि वे उनमें से जिस किसी बूटी के विषय में जानकारी एवं अनुभव रखते हों उसे वे हमें निःसंकोच लिखकर सूचित करने की कृपा करेंगे। आशा है हमारा विद्वत् समाज हमको सदा की भांति सहयोग देगा। इन सभी वनस्पतियों के चित्रों को प्राप्त करने की समस्या हमारे सामने है। यथाशक्ति हम प्रयत्न कर रहे हैं। जिन वनस्पतियों के चित्र हमको प्राप्त नहीं होंगे उनका नामोल्लेख आगामी अङ्क में किया जायगा। आशा है विज्ञजन इस विषय में हमारी विशेष सहायता करेंगे।

१—अकरकरा
२—अखरोट
३—अगर
४—अगस्त
५—अङ्कोल
६—अंगूर
७—अजगन्धा
८—अजमोद
९—अजवायन (विभिन्न प्रकार की)
१०—अञ्जीर
११—अडूसा
१२—अण्ड खरबूजा
१३—अतिविषा
१४—अदरख
१५—अनन्त मूल
१६—अनन्नास
१७—अनार
१८—अनीसून
१९—अन्तमूल
२०—अन्धाहुली
२१—अपराजिता
२२—अपामार्ग
२३—अफसन्टीन
२४—अहिफेन
२५—अमरकन्द
२६—अर्क
२७—अमरूद
२८—अमलतास
२९—अमरबेल
३०—अम्बाड़ा
३१—अरणी
३२—अरलू
३३—अरहर
३४—अरारोट
३५—अरिमेद
३६—अर्जुन
३७—अलसी
३८—अशोक
३९—असगन्ध
४०—आंजन
४१—आकाशनीम
४२—आम्र
४३—आमलकी
४४—आमाहल्दी
४५—आयापान
४६—आलू
४७—आलूबा
४८—आलूबालू
४९—आलूबुखारा
५०—आसन
५१—इलायची
५२—इन्द्रयव
५३—इन्द्रायण
५४—इपीकाकुआना
५५—इमली
५६—ईख
५७—ईसबगोल
५८—ईश्वरमूल
५९—ईसरौल
६०—उटङ्गन, उटिङ्गन
६१—उड़द
६२—उतरन
६३—उन्नाव
६४—उलटकम्बल
६५—उस्तखद्दूस
६६—ऊदसलील

८३-कटेरी
८४-कटसरैया
८५-कदम्ब
८६-कनेर
८७-कार्पास
८८-कमरख
८९-कमल
९०-करीर
९१-करेला
९२-करौंदा
९३-कलिहारी
९४-कबीला
९५-कसेरू
९६-काकजंघा
९७-काकड़ासिङ्गी
९८-कायफल
९९-कालमेघ
१००-कालादाना
१०१-कृष्णा (कालीमिर्च)
१०२-कासनी
१०३-कुकरौंधा
१०४-कुचला
१०५-कुटकी
१०६-कुलथी
१०७-कुलिञ्जन
१०८-कुसुम्ब
१०९-केला
११०-केवड़ा
१११-कपित्थ
११२-कौंच

—ग्राहकों से अपील—

यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक समाचारपत्र की उन्नति उसकी ग्राहक संख्या पर आधारित है। ज्यों-ज्यों धन्वन्तरि के ग्राहक बढ़े हैं हमने धन्वन्तरि को अधिकाधिक सुन्दर तथा उपयोगी बनाने का सफल प्रयास किया है। अब वह प्रगति बहुत धीमी होगई है अतएव हम ग्राहकों से अपील करते हैं कि हमारे सभी ग्राहक प्रयत्न करके १-१, २-२ ग्राहक बनाने की कृपा करें। यदि ग्राहकों ने हमारी इस अपील पर ध्यान दिया तो निश्चय ही धन्वन्तरि की ग्राहक संख्या बढ़ जायगी और फिर हम धन्वन्तरि की क्या उन्नति करते हैं यह आपके सामने आयेगा। धन्वन्तरि के विशेषांक एवं साधारण अंक इतने सुन्दर और उपयोगी होते हैं जिन्हें देख कर चिकित्सक समुदाय शीघ्र ग्राहक बन जाता है अतएव इसके नवीन ग्राहक बनाना कठिन नहीं। केवल आपको अपने सहयोगी चिकित्सकों तथा आयुर्वेद प्रेमियों को दिखा कर ग्राहक बनाने के लिए थोड़ा उत्साहित करने की आवश्यकता होगी। आशा है आप भी हमारी इस अपील पर शीघ्र ध्यान देंगे।

वैद्यों के लिये आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखें। चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज़ कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिनमें आवश्यक कालम (खाने) दिये हैं। मूल्य ३॥)

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्त के लिये प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज़ कागज पर दो रङ्गों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों (हिन्दी के) की पुस्तिका का मूल्य १) मात्र। हिन्दी में ४० बड़े साइज के प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)। अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्गों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुंचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ हैं' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्र (हिन्दी के) की पुस्तिका का मूल्य १), हिन्दी में ४० बड़े साइज के प्रमाणपत्र की पुस्तिका का मूल्य १।)। अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्गों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

रोगी व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिख कर रोगी को दीजिए। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आजयगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी, मूल्य ।=) प्रति सैकड़ा

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाण पत्रों की पुस्तिका का मूल्य १)

तापमापक तालिका (टेम्परेचर चार्ट)—इनसे रोगियों का तापमान अङ्कित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अङ्कित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १) मात्र

नोट—आर्डर देते समय प्रमाणपत्र हिन्दी में चाहिए या अंग्रेजी में, तथा छोटे साइज के चाहिए या बड़े साइज के यह स्पष्ट लिखें तथा मूल्य भी लिख दें।

पता - धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)
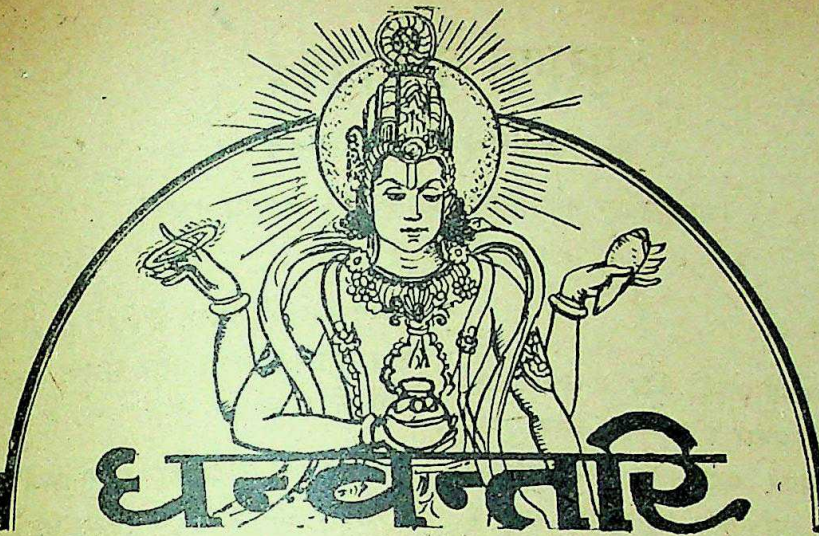
हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० १-४०

भाग ३४ अङ्क ६ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | जून १९६०

स्नेह गण्डूष धारणम्

हन्वोर्बलं स्वरबलं वदनौपचयः परः ।
स्यात्परञ्च रस ज्ञानमन्ने च रुचिरुत्तमा ॥
न चास्य कण्ठ शोषः स्यान्नौष्ठयोः स्फुटनाद्भयम् ।
न च दन्ताः क्षयं यान्ति दृढ़ मूला भवन्ति च ॥
न शूल्यन्ते न चाम्लेन हृष्यन्ते भक्षयन्ति च ।
परानपि खरान भक्ष्यान् स्नेह गण्डूष धारणात् ॥
(च० सू० ५)

मुंह में स्नेह आदि का गण्डूष (कुल्ला) धारण करने से जबड़ों में बल, स्वर में बल, वदन की पुष्टि, रस का अच्छा ज्ञान और अन्न में अच्छी रुचि होती है। स्नेह गण्डूष धारण करने वाले को कण्ठ शोष (गलासूखना) और ओंठ फटने का डर नहीं रहता, दांत नष्ट नहीं होते तथा उनकी जड़ मजबूत होती हैं। दांतों में पीड़ा और खटाई से हर्ष नहीं होता बल्कि अत्यन्त कठिन पदार्थ भी चबा डालते हैं।

पुराणों में आयुर्वेद

श्री. जनार्दन शास्त्री पाण्डेय

[नानारोगहर औषधियां, अग्निपुराण अध्याय २८३]

धन्वन्तरि ने कहा —

सिंही, शटी, दोनों हल्दी और वत्सक इनका क्वाथ बालकों के सभी प्रकार के अतिसार और दुग्ध-जन्य दोषों में लाभकर कहा गया है। पिप्पली सहित शृङ्गी और अतिविषा का चूर्णकर मधु के साथ चाटने से अथवा केवल अतिविषा को ही चाटने से बालकों के कास, छर्दि और ज्वर दूर हो जाते हैं।

घी, दूध, या तेल के साथ वचा का सेवन बालकों को करना चाहिए अथवा मधुयष्टी या शङ्खपुष्पी को दूध के साथ पिलाना चाहिए। इससे बालक की वाणी, रूप, आयु और मेधा बढ़ती है, आभा सुन्दर हो जाती है।

वचा, अग्निशिखा, वासा, शुण्ठी, कृष्णा, निशा, अगद, यष्टि और सैन्धव इनको घोटकर प्रातः काल पीने से बालक की बुद्धि तीव्र होती है।

देवदारु, सहा, शिग्रु, त्रिफला, पयोमुक् इनका क्वाथ पिप्पली और मुनक्का के कल्क के साथ सेवन करने से सब प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफला, भृङ्ग, विश्वा इनके रसों में घी और शहद (मिश्रित) में बकरी के दूध में और गौमूत्र में सेचन करना बालकों के सब प्रकार के रोगों को दूर करता है।

दूर्वा के रस की नस्य लेना नासिका से होने वाले रक्त प्रवाह की परम औषधि है।

लहसुन, अदरक और शिग्रु (सहजन) इनके रस से कान का बहना बन्द हो जाता है। अदरख से सिद्ध तैल शूल का निवारण करता है।

जातीपत्र, जातीफल, व्योष (सोंठ, मरिच, पिप्पली) इनको चबाने से अथवा गोमूत्र का कवल धारण करने से ओष्ठ के रोग दूर हो जाते हैं। दुग्ध क्वाथ में सिद्ध निशा और अभया कल्क से सिद्ध तैल दांतों की पीड़ा को नष्ट करते हैं।

जिह्वा की पीड़ा को शान्त करने के लिए चावल का धोवन नारिकेलोदक विश्वा सहित क्रमुक (सोंठ और सुपारी) का क्वाथ इनका कवल करना चाहिए।

लाङ्गली कल्क में निर्गुण्डी के रसों से साधित तैल का नस्य लेने से गण्डमाला और गलगण्ड का नाश होता है।

अर्क, पूतीक, स्नुही, अगद और जाती के पल्लवों को गोमूत्र में मिलाकर उबटन करने से सम्पूर्ण त्वचा रोग नष्ट हो जाते हैं।

एक वर्ष तक तिल और वाकुची मिलाकर खाने से कुष्ठ नष्ट होता है। पथ्या, भल्लातकी, तैल, गुड इनकी पिण्डी भी कुष्ठ नाशक है।

यूथिका, बहि (चित्रक), रजनी, त्रिफला, व्योष इनके चूर्ण से युक्त तक्र पीने से गुदा के मस्से नष्ट हो जाते हैं। अथवा गुड़ मिली हुई अभया के सेवन से गुदांकुर नष्ट हो जाते हैं।

फलदार्वी और विशाला का क्वाथ अथवा धात्री का स्वरस अथवा रजनी कल्क का सेवन मधुमेह तथा अन्य प्रकार के प्रमेह वालों को लाभदायक होता है।

वासागर्भ के क्वाथ में एरण्ड तेल मिलाकर पीने से वातरक्त का शमन होता है और पिप्पली प्लीहा-हारिणी होती है।

उदर रोगी को सदा स्नुहीक्षीर में कईबार भावना दी हुई कृष्णा का सेवन करना चाहिए। चित्रक, विडङ्ग और व्योष के कल्क से युक्त दूध अरुचि का नाश करता है।
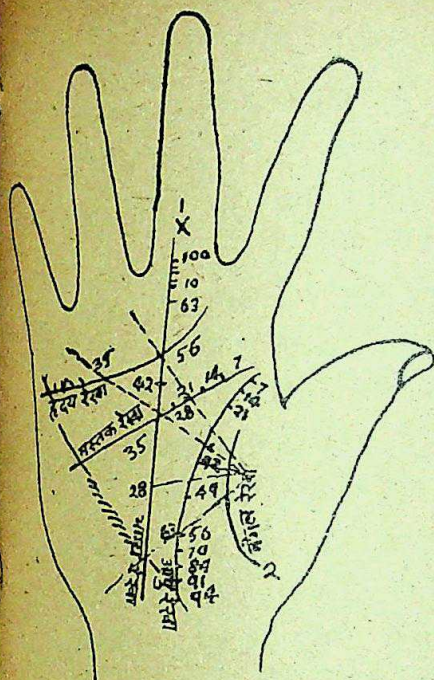
समय निर्धारण

(१) मध्यम उंगली की तीसरे पोर पर क्रोस चिह्न अकाल मृत्यु शस्त्र प्रहार से होती है। महात्मा गांधी के यही चिन्ह था ।

(२) जीवन रेखा के भीतर अंगुष्ठ की ओर मंगल रेखा होती है; जीवन रेखा किसी भी स्थान से यदि खंडित भी हो तो इस रेखा की उपस्थिति में उसके बचने की आशा रहती है। इसके अतिरिक्त कष्ट सहने का पक्का होता है। इस रेखा वाली पतिव्रता होती है।

(a) कनिष्ठिका उंगली अनामिका की ओर झुकी हो, मस्तक रेखा छोटी और मुड़ी हो और चन्द्र स्थान पर क्रोस हो तो वह मनुष्य स्वार्थी और झूठा होता है। इससे इलाज से पहले महनताना लीजिये नहीं तो आपको धोका होगा।

(b) मस्तक और आयु रेखा मिली हुई काफी दूरी पर हो तो ऐसा मनुष्य बात छिपाता है। गहरा होता है इसलिये रोग विवरणपूर्णतः पूछ लेना चाहिए।
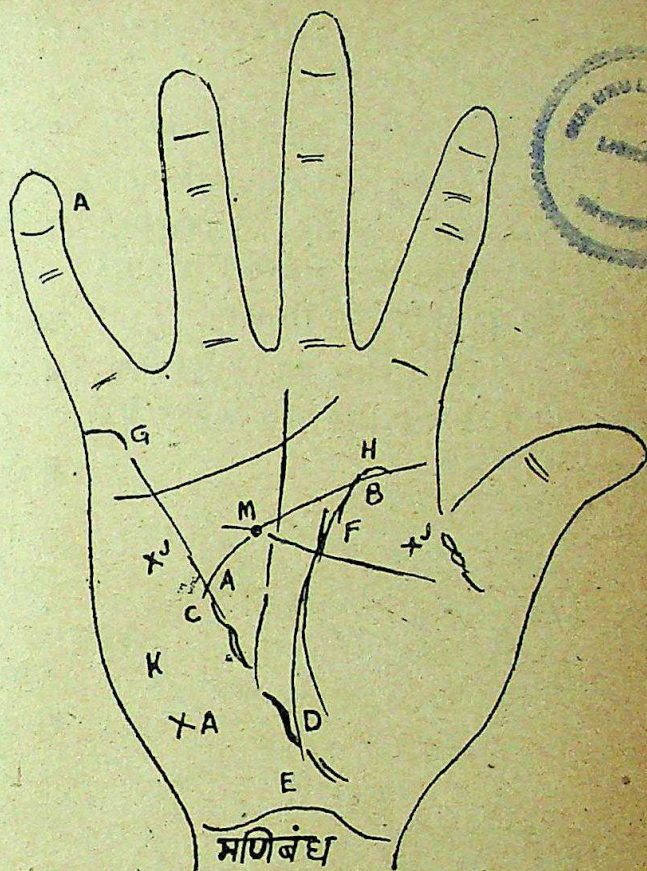
(c) स्वास्थ्य रेखा टूटी-फूटी हो तो यकृत् की खराबी होती रहेगी। गुर्दे (वृक्क) दोष भी हो सकता है।

(d) जहां आयु रेखा से जाकर स्वास्थ्य रेखा मिले वहां मृत्यु भय होगा। चित्र के अनुसार ६३ या ६५ वर्ष की आयु अगर दोनों हाथों में यह हो तो अवश्य मृत्यु हो। इस चिह्न के आगे टूटी फूटी रेखा हो तो पूर्ण रूप से मृत्यु हो और ऐसे समय में (आयु के समय) मेंइलाज हाथ में मत लीजिए।

(e) स्त्री के हाथ में मणिबन्ध की रेखा ऊपर मुड़ी हो तो कोमल स्वभाव, प्रसव कष्ट, दुष्ट रज कष्ट आदि होगा। यदि आयु रेखा खण्डित हो तो उस आयु में प्रसवकाल में खतरा होगा।

(f) बीमारी से खतरा २६ वर्ष (अनुमानतः)।

(g) स्त्री रेखा बुध पर्वत पर झुकी हो तो स्त्री विधवा हो, यदि साथ में शुक्र स्थान से आड़ी रेखा, आकर भाग्य रेखा को काटे तो अवश्य स्त्री विधवा हो।

(h) मस्तक रेखा पर गुरु के नीचे यव—कण्ठ रोग (Bronchial troubles)।

(j) मंगल पर्वत पर क्रौस, युद्ध में मृत्यु भय।

(k) चन्द्र पर्वत अधिक उठा, शराबी नशेबाज। चन्द्र का अधिक उभार उदर रोग (Dyspepsia) साथ में Hepatic line स्वास्थ्य रेखा पर (c) यव चिह्न भी हो तो जिगर खराब।

(m) मस्तक रेखा पर काला दाग या यव चिन्ह तीसरी उंगली के नीचे (सूर्य पर्वत के नीचे तो) अंधापन हो।
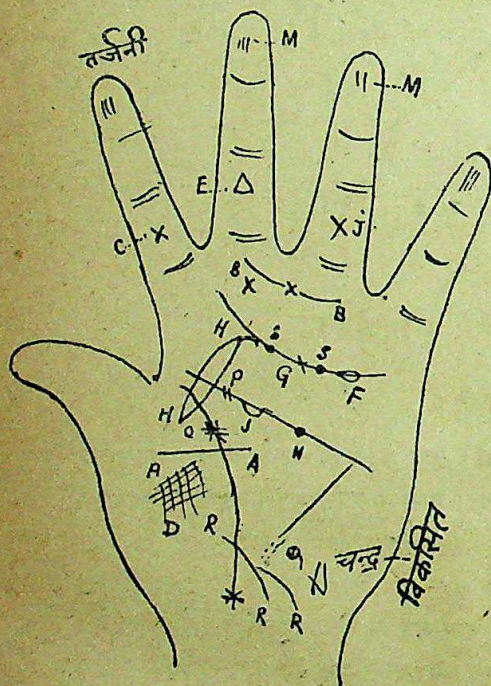
(a) शुक्र स्थान से आड़ी रेखा करतल में गई हो तो श्वास रोगी होता है। साथ में उंगलियों के लम्बे नाखून भी देखिये। ऐसे लम्बे नखों वाले मनुष्य के फेफड़े कमजोर होते हैं।

(b) शुक्र मुद्रिका पर क्रोस (× गुणित चिन्ह) हो तो अर्द्धाङ्ग वात का रोग होता है और आकस्मिक मृत्यु होती है।

(c) तर्जनी उंगुली के ऊपर तीसरी सन्धि पर तारा या क्रोस का चिन्ह हो तो वह दुर्गुणी और अंधा होगा।

(d) शुक्र स्थान पर जाली की तरह कई रेखाऐं कटी हों तो उसको भी अंधा होना पड़ता है।

(e) मध्यमा के तीसरे पोर पर त्रिकोण हो तो भी अंधेपन का योग होता है।

(f) बुध पर्वत पर हृदय रेखा पर यव हो तो निकट सम्बन्धी से प्रेम अनुचित होता है और अंधत्व का योग भी होता है।

(g) सूर्य पर्वत के नीचे हृदय रेखा पर क्रोस हो तो भी दृष्टि की हानि होती है।

(h) हृदय रेखा से शुक्र तक बड़े यव की आकृति हो तो भी दृष्टि को हानि होती है।

(J) मस्तक रेखा पर यव तथा अनामिका के तीसरे पोर पर क्रौस हो तो उसे नेत्र रोग होता ही रहेगा।

(m) प्रत्येक उंगली के प्रथम पोर पर छोटी-छोटी रेखाऐं हो तो रोग आरम्भ होने का चिन्ह है।

(n) मस्तक रेखा पर दाग ज्वर की सूचना देगा।

(o) आयु रेखा टूटी-फूटी होकर रेखाओं द्वारा कटती हो तो या यव का आकार बन जावे तो लाल बुखार या मस्तक रोग का ज्वर होता है।

(p) मस्तक शूल, दांत दर्द तथा नेत्र रोग का चिन्ह है।

(q) स्वास्थ्य रेखा घिसी हुई सी दीख पड़े तो गठिया रोग का चिन्ह है। आंतों की गड़बड़ी का भी चिन्ह है।

(r) चन्द्र स्थान की रेखा आयु रेखा को छेदन करे तो या आयु की शाखा चन्द्र पर जावे तो भी संधि वात का रोग बतलाती है।

(s) हृदय रेखा पर दाग हो तो मूर्च्छा रोग, आक्समिक हृदय रोग होते हैं।

हृदय रेखा का टूटा-फूटा, घिसी हुई सी, मिटी होना सदा रोगी का चिन्ह है। पीली हृदय रेखा पीलिया अर्थात् खून की कमी बतावेगी।

(x) शनि पर्वत पर क्रौस या तारा और चपटे नख हो तो लकवा का चिन्ह है। शनि पर तारा और आयु रेखा पर भी तारा और वहीं अन्त हो तो लकवे से मृत्यु (समय का अनुमान पूर्व लिखित नियम से करें) होगी।

चन्द्र पर्वत अधिक उठावदार हो तो 'अम्लपित्त रोग' होता है।

'दबे हुए चन्द्र पर्वत पर' कटी फटी रेखाएें··· ······जलोदर रोग का चिन्ह हैं।

(A) आयु रेखा शुक्र पर्वत को बहुत छोटा बनाते हुए घिरे अर्थात् अंगुष्ठ के अधिक निकट हो तो वह संतानहीन होता है।

(B) चिह्न अंगुष्ठ मूल की रेखा पर जितने यव हों उतने पुत्रों की प्राप्ति होती है। **A** चिह्न वाली रेखा वाले हाथ में ये चिह्न नहीं होते और कनिष्ठा के तीसरे पोरे पर भी रेखा सन्तान बतलाती हैं परन्तु **A** चिह्न वाली रेखा के साथ ऐसा नहीं होता।

(C) आयु रेखा पर यव चिह्न रीढ़ की हड्डी सम्बन्धी रोग बतलाता है।

(D) चंद्र पर्वत पर क्रास या आयु रेखा की शाखा चंद्र पर आवे तो जलोदर रोग होता है।

(E) स्वास्थ्य रेखा पर यव और टूटी फूटी रेखा हो और चन्द्र की प्रभाविक रेखा छूती या काटती हो तो भी जलोदर होता है। पाण्डु रोगी के भी यही चिह्न हैं।

(F) मस्तक रेखा बहुत झुकी हुई चन्द्र पर क्रास तथा शनि की उंगली टेढी और शनि स्थान बहुत दबा या बहुत ऊंचा हो और अंगुष्ठ भी छोटा और पतला हो तो पागलपन का चिह्न है।

हिस्टीरिया—इसी प्रकार मस्तक रेखा झुकी हुई पर लम्बी हाथ बहुत कोमल और बारीक सी कई रेखायें हों तो स्त्री हिस्टीरिया से पीड़ित रहती है।

बहरापन—मस्तक रेखा पर कटी हुई रेखायें होने से बहरापन होता है।

चिड़चिड़ापन, डरपोकपन—हाथ बहुत कोमल और बहुत रेखा वाला हो हथेली लम्बी, अंगुलियां पतली हों तो डरपोक कोमल प्रकृति का होता है।

पाण्डु रोग—चंद्रपर्वत दबा Hepatica line (स्वास्थ्य रेखा पर यव तथा कटी फटी) अन्य रेखा हो तो पाण्डु रोगी होता है।

हृदय की निर्बलता—हृदय रेखा पर टापू हो तो दिल की कमजोरी होती है।

दमे की बीमारी—हृदय रेखा की कमजोरी के साथ स्वास्थ्य रेखा तथा आयु रेखा मिल गई हो (S) तो दमे का रोग होता है।

डूबने का खतरा—चारों उंगलियों के मूल में यव चिह्न व्यभिचारी के होते हैं यदि शुक्र पर जालीदार रेखायें हो। नहीं तो डूबने से खतरा रहता है।

आयु रेखा से नीचे कोई शाखा हो तो भी पेड़ से गिरने और डूबने का खतरा होता है। गर्दन के बांये तरफ तिल होता है तो भी डूबकर या गिरकर खतरा होता है। (चन्द्रपर बुरा चिह्न भी देखिये)

हथेली में ग्रह प्रभावों से रोग निदान—

पहले दिये हुए चित्र १ में ग्रह स्थान देखिये और जो भी भाग अधिक उठा या दबा हुआ हो उसे फल का उसी ग्रह के प्रभाव से प्रकृति का मिलान करिए रोग का अन्दाजा लग जायगा।

गुरु पर्वत (तर्जनी उंगली की जड़ में)—

गुरु का प्रभाव, फुफ्फुस, मस्तक तथा गले पर होता है। गुरु पर्वत अधिक उठा हो तो उसे फेफड़े के रोग, दमा, मस्तक में गड़बड़ी, गठिया (बात रोग) भी हो सकते हैं। स्त्री को हिस्टेरिया, प्रसूत कष्ट भी हो सकते हैं। घोड़े से गिरने आदि का खतरा रहता है।

शनि-मध्यमा मूल में--(शनि ग्रह का प्रभाव) कान दांत व पिड़ली पर शनि का प्रभाव रहता है। इसकी प्रधानता वाले को पित्त जन्य रोग, रक्तपित्त, वात व्याधि, त्वचा रोग, लकवा, गृध्रसी, बहरापन, छोटी आयु में दांत गिर जाना भी संभव होता है। आत्मघात करने की प्रवृत्ति भी हो सकती है। निराशावादी होता है। जल में डूबने या मकान से गिरने का भी खतरा हो सकता है।

सूर्य—अनामिका मूल में--इसका प्रभाव नेत्र, अंगों के जोड़, मेरुदण्ड तथा हृदय पर होता है। सूर्य प्रधानता वाले को नेत्र विकार, जोड़ों में दर्द, संधिवात, रीढ़ की हड्डी के दर्द, धनुर्वात रोग होने का खतरा रहेगा।

बुध—(कनिष्ठा मूल में)—मस्तक, यकृत्, वृक्क पर बुध का प्रभाव होता है। बुध की प्रधानता वाले को उन्माद रोग, गुर्दे के रोग (पथरी), प्रमेह, वाणी रोग हो सकते हैं। इसकी प्रधानता वाले हाथ में स्वास्थ्य रेखा (यकृत् रेखा) अवश्य होती है।

मगल—(बुध के नीचे और गुरु पर्वत के नीचे के भाग)—शीतला, त्वचा रोग, तीव्र ज्वर और अग्नि सम्बन्धी घटनाएं होती है।

चद्र पर्वत—शीतपित्त रोग, जलोदर, क्षय रोग, कफ विकार, ज्वर, उन्माद, जल में डूबना आदि रोग होते हैं।

शुक्र—(अंगुष्ठमूल में)—शुक्र का अधिकार जननेन्द्रिय पर होता है। स्त्रियों में दुष्ट रज, पेडू में दर्द, हिस्टेरिया, गुल्म रोग, मूत्ररोग होने का खतरा रहेगा। जिस हाथ में बुध पर्वत दबा, बुध की उंगली छोटी व कमजोर एसे रोगी रोग के जोर पकड़ने पर कम ही बचते हैं।

जिसके हाथ में बहुत रेखा हों कोमल हो। मस्तक रेखा लम्बी हो, चन्द्र दबा हुआ हो और उंगलियां टेढ़ी मेढ़ी गांठदार हों तो वह बड़ा बहमी होता है। ऐसे रोगी का इलाज विचार करके हाथ में लीजिये। दुख कम होगा तो भी अधिक बताता रहेगा और अपयश देते देर न करेगा।

आयु रेखा पर अंगूठे के नीचे से रेखा गहरी हो तो वह भी वैद्य को बदनाम करते देर न करेगा। घबराने वाला अधिक रेखाओं से भरा हाथ डरपोक का होता है।

—क्रमशः

["नखों की कुछ मुख्य आकृतियां" नाम से इसी लेख का शेषांश अगामी अंक में दिया जायगा। —सम्पादक]

आयुर्वेद में सत्तू

श्री गौरीशंकर गुप्त

हमारे देश में सत्तू खाने की प्रथा बहुत पुरानी है। आहार सम्बन्धी नियमों की भांति ही सत्तू सम्बन्धी नियमों का वर्णन भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। जौ, कंगनी, सांवक, मड़वा तथा तिल सरीखे पदार्थों का उल्लेख ग्राम्य आहार के रूप में किया गया है। जङ्गलों में स्वयं उत्पन्न होने तथा साधारणजनों व ग्रामीणों द्वारा उपयोग में लाए जाने के कारण इनको ग्राम्य कहा गया है! ये बिना किसी विशेष प्रयत्न के याने बिना सिंचाई आदि के स्वतः उत्पन्न होते हैं। प्राचीन युग में यज्ञादि में इनका विशेष प्रयोग होता था। गेहूं का उल्लेख जौ के पश्चात् किया गया है। गवेधुक नामक गेहूं से मिलती जुलती जाति के एक अन्न का भी उल्लेख मिलता है। यह शायद मौर्वी कच्छ की मिट्टी में स्वतः पैदा होने वाला एक अन्न प्रतीत होता है। पर्वतीय जन इनका उपयोग आज भी आहार के रूप में करते हैं। इसमें वसा की न्यूनता अर्थात् रूक्षता होने के कारण यह शीघ्र पच जाते हैं। किन्तु रूक्षता एक दोष ही है। विशेषकर सम्पन्न जनों के लिए बहुमूत्र वा मधुमेह सरीखे भयङ्कर रोगों में इनका उपयोग हितकर माना गया है। यहां तक कहा गया है कि पशुओं को जौ खिलाया जाय और उनके गोबर में जो जौ निकलें उनको पृथक् कर रोटी या सत्तू के रूप में उपयोग करें। इसके अतिरिक्त जौ, कंगनी, सांवक सरीखे अन्न सस्ते होते हुए भी स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं। यथाविधि इनका सेवन करने से हानि की कोई सम्भावना नहीं रहती। सांवक तथा कंगनी का उपयोग खीर के रूप में हो सकता है। मड़वा, कंगनी तथा सांवक ये तीनों उष्ण हैं। शीत ऋतु में ही इनका उपयोग हो सकता है। पर जौ एक ऐसा अन्न है जिसका बारहों मास नाना रूपों में उपयोग होता है।

गेहूं के साथ जौ तथा चना मिलाकर भी आटे के रूप में उपयोग होता है। राजस्थान और पूर्वीय उत्तर प्रदेश में जौ का उपयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। जौ का सर्वश्रेष्ठ उपयोग सत्तू के रूपमें प्रचलित है। सत्तू के लिए जौ लेते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह बिलकुल सूखा न हो आशय यह कि उसकी कटाई उस समय हो जब उसमें हरियाली रहे। दूसरे शब्दों में पकने में दो-चार दिन की देर रहते ही कटवाकर छाया में सुखा देना चाहिए।

जौ से पहले उसकी 'बहुरी' तैयार करते हैं। भूसी-रहित कच्चे वा भुने जौ को बहुरी कहते हैं जो पचने में भारी सूखी, प्यास लगाने वाली तथा कफ प्रमेह वा वमन का नाश करने वाली होती है। सत्तू के रूप में उसका विधिपूर्वक उपयोग करने से कोई दोष नहीं रहने पाता। जौ को या बहुरी को भाड़ में भुनवाकर ओखरी में छरवा कर और चक्की में दरदरा पिसवाकर उपयोग करना चाहिए। बारीक पिसवाना ठीक नहीं। दरदरा रहने से वह विशेष गुणदायक होता है। शहरों में प्रायः मशीनों में पिसने से सत्तू का स्वाद और गुण दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतः घरों में या पिसनहारियों द्वारा पिसवाकर ही ताजा सत्तू सेवन करना चहिए। बहुत पुराना वा विकृत सत्तू हानिप्रद होता है।

आधुनिक युग की खाद्य समस्या को देखते हुए सत्तू एक उत्तम पूरक आहार जंचता है। इसके नियमित और विधिपूर्वक सेवन से कब्ज सरीखा महान रोग तो टिक नहीं सकता। इसके अतिरिक्त शारीरिक स्फूर्ति के लिये चाय सरीखे विषैले पेयों के स्थान पर सत्तू का उपयोग निःसंकोच किया जा सकता है। कंगनी सांवक, ज्वार, प्रशातिका, कोदों मूंग, कुलथी तथा बनमूंग आदि का उपयोग करने से मेद (मोटापा) दूर होता है। शहर के और सम्पन्न लोग जौ का उपयोग करने में इसलिए हिचकते हैं कि वह ग्रामीणों का और सस्ता अनाज है। किन्तु यह निरा भ्रम है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि देश की खाद्य समस्या को ही नहीं

अपितु आर्थिक तथा स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने में भी जौ और उसके सत्तू का अपना एक अलग स्थान है।

अर्थाभाव, समयाभाव तथा अन्य कई कारणों से भारत के गरीब किसानों का निर्वाह मात्र सत्तू पर होता है। बलिया सरीखे जनपद के लगभग ८५ प्रतिशत किसान दिन भर खेतों में व्यस्त रहने के कारण भोजन करने तथा बनाने का समय निकालने में असमर्थ से रहते हैं। इसके अतिरिक्त वहां ईंधन का अभाव भी होता है। मई-जून की जलती-बलती दोपहरी में सत्तू ही उनका एक मात्र सहारा होता है। बाल-वृद्ध सभी इसका आसानी से उपयोग करते हैं। इसके लिये दांतों की जरूरत नहीं होती, अतः वृद्धों के लिये यह विशेष उपयोगी है। सत्तू की पिंडी' या 'लवरी' से उनका उदर पोषण हो जाता है। सुविधाजनक होने के साथ ही उनको यह भोजन प्रिय भी प्रतीत होता है। वहां आम सड़कों पर चौराहों पर तथा अदालत कचहरी में 'तुरन्त भोजनालय' खुले रहते है पर वहां आग व चूल्हे तवे का नामोनिशान नहीं रहता। पर्याप्त संख्या में लोटे, थालियां, विभिन्न प्रकार के सत्तू घड़ों में शीतल कूप जल तथा आम, पोदीने की चटनी—ये सभी साधन सुलभ रहते हैं। वहां पहुँचकर लोग अपनी क्षुधा शान्तकर तृप्ति का अनुभव करते हैं।

सत्तू एक सुन्दर पाथेय (रास्ते का कलेवा) है। इसमें छूआछूत का विचार नहीं होता। इसे हम सैनिकों का भोजन कह सकते हैं। घोलकर तुरन्त खा लिया। यह जल्दी खराब भी नहीं होता। हफ्तों तक रखा जा सकता है लम्बी यात्रा में निःसंकोच साथ रखा और सेवन किया जा सकता है। पात्र के अभाव में गमछे पर सानकर भी ग्रामीण खा लेते हैं। प्रौढ़ों और वृद्धों को प्रवास वा तीर्थ यात्राकाल में सत्तू बहुत सहारा देता है। इसका नियमित तथा विधिपूर्वक सेवन करने से कोई हानि भी नहीं होती।

सत्तू का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। मेष वा सतुआ-संक्रांति-पर्व उसका प्रमाण है। प्रति व[र्ष] उस दिन लोग गंगा स्नान कर ब्राह्मणों को सत्तू चीनी तथा ऋतुफलों का दान करते हैं। उस दि[न] दान करके ही प्रायः लोग सत्तू खाना शुरू करते हैं। यों बारहों मास सत्तू खाया जाता है पर जो केवल ग्रीष्म में सत्तू सेवन करते हैं उनमें ऐसी प्रथा है। वर्षाकाल में नमक और हरी या लाल मि[र्च] के साथ, ग्रीष्म में घी-चीनी के साथ तथा शीत ऋ[तु] में चीनी और समान घी के साथ सत्तू खाने का विधान है। शीत ऋतु में सत्तू के समान घी मि[ला]कर सेवन करने से पेट फूलना वायु रुकना आदि उपद्रव दूर होते और शक्ति बढ़ती है। उसमें ज[ल] बिल्कुल नहीं मिलना चाहिये। घी के अभाव में मधु का उपयोग भी बताया गया है, पर घी से सत्तू का रुक्ष गुण (रूखापन) ठीक हो जाता है। शीतल जल में न बिल्कुल पतला और न बिल्कुल गाढ़ा—लपसी की तरह घोला हुआ सत्तू 'मन्थ' कहा जाता है। पानी मिलाने से पहले थोड़े घी में सत्तू को मसलकर फिर शक्कर व खांड़ तथा ज[ल] मिलाते हैं। ग्रीष्म के लिये यह विधि सबसे अच्छी है। इसके सेवन से गर्मी और प्यास का अनु[भ]व नहीं होता, लू नहीं लगती और ठंडक बनी रहती है। वर्षा ऋतु में सत्तू को जल में घोलकर पूर्वोक्त मन्थ की भांति ही सेवन करना चाहिये केवल इतना स्मरण रखना चाहिये कि वर्षा ऋतु में मीठे के बजाय नमकीन सत्तू ही सेवन किया जाय।

सत्तू एक सुन्दर औषधि, टॉनिक वा पौष्टिक आहार है। इसके सेवन से कब्ज न रहने और पेट ठीक रहने से मनुष्य स्वभावतः स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। इसके अतिरिक्त यह शीतल, अग्नि दीपक, कफ, पित्तनाशक, मधुर, बलवर्धक रुचि-कारी, परिश्रम क्षुधा तथा पिपासा नाशक [तथा] नेत्र रोग शामक भी है। पसीने दाह तथा व्याकुलता से व्याकुल जनों के लिये भी सत्तू लाभप्रद है। सत्तू में आम का थोड़ा सा भुना और नमक और शीतल जल मिलाकर सेवन करने

लू और धूप का भय नहीं रहता। इन्फ्लूएञ्जा सरीखी बीमारी में भी सत्तू का सेवन बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। कड़वा तैल, अजवाइन, नमक मंगरेला तथा अदरक को सत्तू में मिलाकर और जल के छींटे देकर उस चूर्ण को बाटी वा रोटी में भरकर ताजा-ताजा सेवन करने से जुकाम नाक बहना तथा छींकें आना आदि सभी उपद्रव मिट जाते हैं।

सत्तू हलका भोजन माना गया है। कहावत प्रसिद्ध है—"सौ बेर सत्तू, नौ बेर चबेना। एक बेर रोटी लेना न देना।।" फिर भी भोजन के पश्चात् रात्रि में, अधिक मात्रा में, दो बार, जल पीने के बाद तथा केवल सूखा सत्तू खाना चाहिये। सत्तू को रोटी की तरह दांतों से कुचलकर या चबाकर खाना बर्जित है। जल में घुलने पर सत्तू फूल और बढ़ जाता है इसी कारण ऐसा कहा गया है क्योंकि विपरीत आचरण करने से पेट तन जाता और अफरने लगता है। दूध के साथ और गरम करके भी सत्तू नहीं खाना चाहिये। केवल सत्तू खाकर रहना भी ठीक नहीं।

सत्तू में अनेक चमत्कार भरे पड़े हैं। सत्तू सेवन करने के बाद आध घण्टे तक तापमान बढ़ा रहता है। उस समय डाक्टरी सर्टिफिकेट के माध्यम से लोग सुगमतापूर्वक छुट्टी ले लेते हैं। इसके अतिरिक्त सीने की चौड़ाई कम रहने से प्रायः लोगों को सरकारी नौकरी मिलने में कठिनाई होती है। सत्तू उस समय भी ऐसे लोगों का साथ देता है। डाक्टरी परीक्षा से एक घण्टा पहले पर्याप्त मात्रा में सत्तू का सेवन कर लेना चाहिये। प्यास लगने पर जल के बजाय चीनी के शर्बत का उपयोग करें। इससे कुछ समय के लिये सीना दो-तीन इञ्च बढ़ जाता है। कितने मार्के के हैं ये चुटकले वा हथकण्डे!

सत्तू केवल जौ या चने का ही नहीं बनता इसकी और भी किस्में हैं यथा—मसूर, मटर, चावल, रामदाना और मखाने का भी सत्तू बनता है। मसूर का सत्तू बहुत रूक्ष होता है। उसका स्वाद भी ठीक नहीं होता। मखाने और रामदाने का सत्तू फलाहारी पदार्थों की श्रेणी में आता है। व्रतों में प्रायः लोग उसका उपयोग करते हैं। चावल की खीलों (लाजा) से बना सत्तू वायुकारक, रूक्ष, कब्जनाशक, सन्तोषप्रद, तुरन्त शक्ति देने वाला और श्रम निवारक होता है। साथ ही लघु मधुर शीतल तथा रक्तपित्त, तृष्णा, वमन एवं ज्वरनाशक होता है। जौ के सत्तू के गुण पहले बताये जा चुके हैं। रोगियों के लिये पूर्वोक्त चावल की खीलों (लाजा) का सत्तू उत्तम माना गया है। यों तो स्वस्थ व्यक्ति के लिये साधारण तौर से जौ का सत्तू ही अच्छा होता है। केवल जौ का सत्तू अनुकूल वा पसन्द न हो तो उस में भुने हुये चने वा गेहूँ का चूर्ण मिला सकते हैं। पर जौ की मात्रा अवश्य अधिक होनी चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्तू एक सर्वसुलभ सस्ता और स्वास्थ्यप्रद आहार है। गरीबों का तो यह बड़ा सहारा है। काश कि हम इसके सस्तेपन तथा ग्रामीण रूप को भूलकर मूल्यवान गुणों से अधिकाधिक लाभान्वित हो पाते।

—श्री गौरीशङ्कर गुप्त, मन्त्री राष्ट्र कवि परिषद,
गायघाट वाराणसी।

फार्मूलों की चोरी

श्री हरिकृष्ण सहगल

पूंजीवाद की आधार शिला लूट, खसोट और शोषण है। आज का पूंजीपति अंग्रेज आज से पांच शताब्दियों पूर्व तक केवल मात्र एक नाविक था। साम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में स्पेन और पुर्तगाल वालों ने लम्बी-लम्बी समुद्र यात्रायें करते हुए नवीन देशों से सम्बन्ध स्थापित कर पंजीवाद के महल में प्रवेश किया था।

और इन जातियों के पास विपुल धन को देखकर अंग्रेजों के मुख में भी पानी आ गया। उन्होंने भी पूंजीपति बनने की प्रतियोगिता में भाग लेना आरम्भ किया, एक दम से इंग्लैंड में सैकड़ों कम्पनियां रजिस्टर्ड हो गई और इनमें से एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी थी जिसके कर्मचारी लार्ड हेस्टिंग्ज और लार्ड डलहौजी आदि ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उद्देश्य केवल मात्र व्यापार के नाम पर भारत को लूटना था। बंगाल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जिस प्रकार अधिकार किया, उसे केवल लुटेरे ही कर सकते हैं। अवध के नवाबों को तंग करके डाकुओं की तरह उनसे रैजिडेंट और गवर्नर जनरलों ने रुपया छीना। अवध की बेगमें इन डाकुओं के हाथ से लुट गईं। इतिहास साक्षी है कि पंजाब, ब्रह्मा, सिंध पर अंग्रेज ने अन्याय से अधिकार किया और सितारा, झांसी, नागपुर, सम्भलपुर, जीतपुर, बघात की देशी रियासतें अंग्रेजों ने इसी प्रकार लेलीं. जिस प्रकार मध्य प्रदेश का डाकू रूपा सेठों से रुपया ले लेता था।

इससे पूर्व भी भारत कई बार लुट चुका था। तैमूरलंग, महमूद गजनवी और नादिरशाह लूटने के लिये यहां आये थे। मगर वह यहां से धन, रत्न, स्त्रियां और गुलाम ले गये। किन्तु अंग्रेज एक दूसरी ही प्रकार का लुटेरा था। इसकी लूट व्यापार के पर्दे में चलती थी। धन, रत्नों, हस्तलिखित भारतीय ग्रन्थों के साथ-साथ ढाका के कपड़े के डिज़ाइन, रङ्गों के फार्मूले, भारतीय नील के साथ इंग्लैंड पहुंच गये।

इंग्लैंड की इण्डिया हाउस लाइब्रेरी में ही भारत की अमूल्य सम्पत्ति नहीं। ब्रिटिश फार्माकोपिया का भण्डार भी, भारत की देशी चिकित्सा के निघन्टुओं की लूट का माल है। भारत में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों पर देहरादून में और इंग्लैंड में जो अनुसंधान हुआ उसका आधार सहस्रों वर्ष प्राचीन आयुर्वेदिक खोजें थीं। जिस प्रकार सर्पगंधा आज विदेशी खोज बन गई है, इसी प्रकार देशी चिकित्सा में प्रतिदिन व्यवहृत होने वाली वनस्पतियां विष और खनिज ब्रिटिश फार्माकोपिया के अंग हो गए। अंग्रेज अपने वैज्ञानिकों को भारत भेज कर इस चिकित्सा विज्ञान के फार्मूलों को लूटता रहा। हमारी ही वनस्पतियां इंग्लैंड से एलोपैथी के कपड़े पहन कर भारत में आकर बिकती रहीं और अंग्रेज पूंजीपति पूंजी को संग्रह करते रहे। कुछ वर्ष पूर्व मकरध्वज की ख्याति बहुत बढ़ी थी, तब पाश्चात्य रसायन शास्त्रियों ने (हैंन्वान्ट, रिब प्रवेल आदि अनेकों ने) भारत की फार्मेसियों से मकरध्वज, चन्द्रोदय, सिद्ध मकरध्वज के नमूने मंगवाए थे और जर्मनी वालों ने जर्मन मकध्वज तैयार किया था। हमारे आसव-अरिष्ट अंग्रेजी में टिंक्चर हो गए। अंग्रेज ने भारतीय चिकित्सा द्रव्यों को नाम और नया वेश देकर अपने व्यापार को बढ़ाया। अंग्रेज के काल' में इस फार्मूलों की लूट में एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान तथा अंग्रेजी औषधि निर्माताओं के देशी एजेन्टों (डाक्टरों) को लाभ हुआ और आज भारत राज्य का स्वास्थ्य विभाग मैडीकल कौंसिल

के हाथों में खेलता हुआ इस फामू लों की लूट को जारी रखे हुए हैं। राजकुमारी अमृतकौर ने तो खुल्लम-खुल्ला जहां आयुर्वेद का तिरस्कार किया वहां वैद्यों से फामू लों को मांगा भी था और जब वह नहीं मिले तो दिल्ली में आयुर्वेद एण्ड यूनानी सिस्टम्ज के बोर्डों की कन्वेन्शन के अवसर पर वैद्यों को क्षुद्र हृदय और लालची की उपाधियों से विभूषित किया था। राजकुमारी अमृतकौर भारत में रोजा मेरी का पार्ट कर रही थी।

सितम्बर १६५८ में एक दिन पत्रों में प्रकाशित हुआ कि पश्चिमी जर्मन के एक होटल के एक बन्द कमरे में जर्मनी की एक वैश्यावृत्ति करने वाली सुन्दरी रोजा मेरी जिस का वास्तविक नाम रोजनीटर वबट था का शव मिला था और पोस्ट मार्टम द्वारा परीक्षा से ज्ञान हुआ कि इस सुन्दरी की हत्या गला घोंट कर की गई।

कुछ दिनों में इस हत्या की बात को दबा दिया गया, परन्तु इस सुन्दरी की हत्या क्यों हुई? कुछ पत्रकार इसकी खोज करते रहे। रोजा मेरी एक दिन ग्राहक को तलाश कर रही थी कि उसकी भेंट जर्मनी के एक महान उद्योगपति (Industrialist) से हो गई। वह उद्योगपति इस युवती से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसके जीवन के सुख के लिए प्रत्येक साधन को उपस्थित कर दिया। रोजा मेरी की सैर के लिये एक बहुमूल्य कार भी दी।

इसी प्रकार घूमते-फिरते एक दिन रोजा मेरी से फ्रांस का एक उद्योगपति जो जर्मनी के उद्योगपति से मिलने आया था मिल गया। उसने रोजा मेरी से कहा कि लोग तुम्हें साथ सोने का मूल्य देते हैं मैं तुम्हें दूसरों के साथ सोने का मूल्य दूंगा। तुम्हें मेरे लिए एक छोटा सा काम करना होगा और वह यह कि जर्मन उद्योगों सम्बन्धी रहस्यों और फामू लों को प्राप्त करके मेरे तक पहुँचाना होगा।

सौदा हो गया रोजा कुछ ही दिनों में बड़ी पूंजी की मालकिन हो गई और जर्मन उद्योगपति यह देखकर चिन्तित हो उठे कि उनका नवीन माल मार्केट में पहुँचने से पूर्व ही डिजाइन और फामू ला फ्रांस पहुंच जाता है तथा फ्रांस का माल पहले ही मार्केट में आजाता है।

पृष्ठ ७१६ का शेषांश

त्रिवृता का क्वाथ गुड़ मिश्रित अत्यन्त विरेचक है। बचाफल के कषाय से युक्त दूध वमनकारक होता है। भृङ्गराज के रस से भावित त्रिफला १०० पल, विडङ्ग और लौहचूर्ण १०-१० पल, शतावरी, गुडूची, चित्रक प्रत्येक २५-२५ पल मधु आज्य और तिलज पदार्थों से लेहन करे, इससे सम्पूर्ण बली पलित का निवारण होता है और सब रोगों से रहित होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है। मधु और शर्करा मिश्रित त्रिफला सब रोगों का नाश करती है। शर्करा, मधु और घृत से युक्त पिप्पली सहित त्रिफला तथा पथ्या, चित्रक, शुंठी, गुडूची और मूसली का चूर्ण गुड़ के साथ खाने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं और ३०० वर्ष की आयु होती है।

जवा पुष्पों को कुछ मसलकर गोली जैसी बनाकर जल में छोड़ दें। घी की तरह जमे हुए तैल को और जल में पड़े हुए उस फूल के चूर्ण को जल में मिलाकर वृषदंश की जरायु से धूप दे, इसके बाद शहद की धूप देने से वह फूल ज्यों का त्यों हो जाता है। कर्पूर, जलूका और भेक के तैल में पाटली की जड़ को मिलावे, इसको पीसकर दोनों पैर के तलवों पर लेप करदे, इसके बाद मनुष्य जलते हुए अङ्गारों पर चल सकता है। इसी प्रकार तृष्णोत्थानादि साधन भी विशेषकर कहे हैं जिनसे लोक में कौतूहल दिखाया जा सकता है। विष, ग्रह, रोगनाश, क्षुद्र, चर्म और कामिक ये छः कर्म तुमसे कहे गये गये हैं जिनसे मनुष्य दोनों प्रकार की सिद्धि को प्राप्त करता है। जहां मन्त्र, ध्यान, औषधि, कथा, मुद्रा, यज्ञ और मुष्टि ये होते हैं वहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग का फल कहा है इसको जो पढ़ता है वह भी स्वर्ग को प्राप्त करता है।

—श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
२१/२३ ब्रह्माघाट वाराणसी।

जर्मन उद्योगपतियों की संस्था ने इस रहस्य को जानने के लिये कि उनके फार्मूले फ्रांस कैसे पहुंच जाते हैं प्राइवेट जासूसों को नियुक्त किया। कुछ दिनों में जासूसों ने बता दिया कि यह कार्य रोजा मेरी द्वारा होता है। इसी संस्था ने कुछ गुण्डों की सेवायें रोजा मेरी की हत्या के लिये प्राप्त कीं और एक दिन होटल के कमरे में रोजा मेरी की हत्या हो गई।

राजकुमारी जितनी देर तक स्वास्थ्य मंत्री के पद पर रहीं वह विदेशों में घूमती रहीं। विदेशों में फार्मेसिस्ट उनकी दावतें करते रहे और राजकुमारी केवल ऐलोपैथी का प्रचार ही करती रहीं। भारत की मैडीकल कौंसिल के लाभ के आयुर्वेदिक फार्मूले प्राप्त करने का भी यत्न करतीं रहीं। यह फार्मूले क्या है? वास्तव में यह स्वर्ण की वर्षा करने वाले मेघ हैं, जिसके पास पहुँच जाते हैं वहीं स्वर्ण की वर्षा होने लगती है।

कुछ वर्ष पूर्व दूसरे युद्ध के अन्त में जर्मनी की वैज्ञानिक लूट भी हुई थी। यह विवरण बहुत रोचक है। इसका व्यौरा इस प्रकार है कि एक अमरीकी कांफ्रेंस में अमरीकी प्रतिनिधि ने बताया कि १९४५ में जर्मनी की हार के बाद हमने जो पेटेंटों के फार्मूले जर्मनी से लूटे हैं उनके कारण हमारे वैज्ञानिकों ने अपने पांच वर्ष बचा लिए हैं।

जर्मनी की हार के साथ जब उसकी फौजें पीछे हट रही थीं, तो जर्मनी में बढ़ने वाली फौजों के साथ जाने वाले वैज्ञानिकों को आज्ञा हुई कि जिस नगर पर अधिकार करो, उसके कारखानों. लैबोरेटरियों कालेजों यूनिवर्सिटियों की अलमारियों की तलाशी लो और वहां से जो पेटेंटों के फार्मूले वैज्ञानिक विश्लेषण हिसाब के कठिन प्रश्नों के तरीके मिलें, उन्हें अमरीका और रूस भेज दो।

परिणामस्वरुप केवल एक नगर होकिस्ट के कारखानों की तलाशी और फार्मूलों के संग्रह के लिए १०० से अधिक अमरीकन वैज्ञानिक कई मास तक इन कागजों की माइक्रोफिल्म कापियां बनाने में लगे रहे जिन पर यह फार्मूले लिखे थे। केवल एक ही आई० जी० के कारखानों में ६०००० से अधिक रंग बनाने के फार्मूले अमरीकनों को मिले। एक अमेरिकन वैज्ञानिक ने कहा था कि यह रंग बनाने के फार्मूले हमारी रंगसाज इण्डस्ट्री पर स्वर्ण की वर्षा थे (अंग्रेज जिन देशी चिकित्सा के फार्मूलों को लूट कर ले गये उनसे अंग्रेजी औषधि-निर्माता कम्पनियों पर स्वर्ण की वर्षा हुई थी।) इन फार्मूलों में दियासलाई की डिबियों में समा जाने वाले रेडियों बल्ब भी हैं। एक फार्मूला ऐसा था जिनके द्वारा जर्मन कृत्रिम अभ्रक बनाते थे। एक मशीन कृत्रिम रेशम बनाने वाली थी। इससे अन्य जहाजों में प्रयुक्त होने वाले तैलों के नुसखे. कृत्रिम सूत, रबड़ तथा औषधियों के लाखों फार्मूले थे।

यह लूट फार्मूलों तक ही सीमित न थी। जर्मन वैज्ञानिक भी लूट का माल बन गये। पूर्वी जर्मनी से रूसी वैज्ञानिकों को रूस में और पश्चिमी जर्मनी से अमेरिकन वैज्ञानिकों को अमेरिका ले गये। आज जो ऐटम बम और हाईड्रोजन बम दुनिया में आ गये हैं. राकेट सूर्य, चन्द्र और भूमि के गिर्द घूमने लगे हैं इनके बनाने में जर्मन वैज्ञानिकों का गहरा हाथ है।

अंग्रेज के काल में डा० कर्नल आर० एन० चोपड़ा द्वारा जो फार्माकोपियल लिस्ट १९४६ में प्रकाशित हुई थी वह आयुर्वेदिक औषधियों का ऐलोपैथिक फार्माकोपिया में प्रवेश था। श्री ख्रुश्चोव ने अपना गत भारत यात्रा में सूरतगढ़ के फार्म की यात्रा करते हुऐ कहा था कि कुछ अनुभव सत्य होते हैं, वैज्ञानिक उन पर थीसिस लिख कर उन्हें वैज्ञानिक खोज का नाम दे देते हैं। कर्नल चोपड़ा ने क्या किया? आधुनिक विज्ञान की चादर ओढ़ा कर देशी चिकित्सा के अनुभवों को एलोपैथी की सम्पति बना दिया।

यह जामनगर का रिसर्च केन्द्र क्या वैद्यों की मांग पर खुला है? नहीं, इसे इण्डियन मेडिकल कौंसिल आफ रिसर्च के संचालक श्री सी० जी० पण्डित के सुझाव पर खोला गया है। भारत सर-

कार एक इण्डियन मेडिकल फार्माकोपिया बनाना चाहती है, जिसका उपयोग डाक्टरों द्वारा होगा। यह रिसर्च उस फार्माकोपिया की तैयारी है। अभी अभी कांग्रेस मन्त्री श्री मन्नारायण ने कहा है कि राज्य द्वारा एक संक्षिप्त डाक्टरी कोर्स बनने वाला है, उसमें गांव में वनस्पतियाँ भी लगाई जायेंगी। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य द्वारा ऐसे डाक्टर पैदा किये जायेंगे, जो रोग निदान एलोपैथिक तरीके पर करेंगे। चिकित्सा में ऐलोपैथिक औषधियों के साथ-साथ देशी चिकित्सा की वनस्पतियों का व्यवहार भी करेंगे। ऐसे डाक्टरों की सुविधा के लिये ही आयुर्वेद के नाम पर जामनगर आदि स्थानों पर रिसर्च हो रही है।

भारत का सैन्ट्रल इन्स्टीच्यूट आफ रिसर्च इन इण्डीजिनस सिस्टम्ज आफ मैडीसिन नामक सरकारी संस्था, वास्तव में सैन्ट्रल इन्स्टीट्यूट आफ आयुर्वेदिक फार्मूलाज इन इण्डीजिनस सिस्टम्ज है। अब एलोपैथिक कालेजों में भी आयुर्वेदिक वनस्पतियों पर खोज का कार्य आरम्भ हुआ है। क्या यह आयुर्वेद उन्नति के लिये है? नहीं, आयुर्वेद के विज्ञान को लूटने का उपक्रम है। एलोपैथिक के संक्षिप्त कोर्स को बनाने की ओर एक कदम है।

हमारी बात पर अब भी यदि विश्वास न हो तो रेलवे मन्त्री श्री जगजीवनराम जी ने जो भाषण यूनानी मेडिकल कालेज के वार्षिक उत्सव तथा भारतीय चिकित्सा परिषद, उत्तर प्रदेश के द्वितीय दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दिया उसे पढ़ लीजिये, उससे आप जान लेंगे कि राज्य क्या करता है तथा क्या करना चाहता है?

श्री जगजीवन राम ने अपने भाषण में कहा, "एलोपैथी, यूनानी, आयुर्वेद और होमियोपैथिक विज्ञानों को मिलाकर एक विज्ञान बनाया जाये।" न जाने, दिल्ली में कौन आत्मा बसती है जो शासकों के हृदय में समन्वय ज्वर कर देती है। एक बार दिल्ली के मुगल सम्राट् अकबर ने सब धर्मों को मिला कर दीने-इलाही नाम का एक नव धर्म चालू किया था और आज सब चिकित्सा प्रणालियों को मिलाकर एक चिकित्सा बनाने कि बात कही जा रही है।

हमारे आधुनिक शासकों के मस्तिष्क में यह बात बैठ चुकी है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा के पास बनस्पतियों के रूप में चिकित्सा का अच्छा अनुभव है और उसीके सहारे यह चिकित्सा राज्याश्रय के बिना भी जीवित चली आ रही है। इसे आयुर्वेद से लेकर एलोपैथिक चिकित्सा में मिला लेना चाहिए। श्री जगजीवनराम ने आगे चल कर कहा 'आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा विज्ञान बिना राज्याश्रय के शताब्दियों तक जीवित रहा है तथा उसने उन्नति भी की है। भारत में कितनी ही वनस्पतियां हैं जो चमत्कारिक प्रभाव देती हैं। इन जड़ी बूटियों पर अंग्रेजी ढंग से खोज होनी चाहिये (एलोपैथी के कालेजों में यह कार्य आरम्भ हो चुका है) ताकि यह वनस्पतियाँ एलोपैथिक सिद्धातों के अनुसार माननीय हो जायें।' राजस्थान के स्वास्थ्य मन्त्री श्री बद्रीप्रसाद ने महासम्मेलन-विद्यापीठ विद्यालय, रोहतक रोड, दिल्ली में भाषण देते हुए कहा था कि आयुर्वेद और बीस वर्षो में समाप्त हो रहा है। श्री जगजीवनराम के भाषण ने कुछ स्पष्ट कर दिया है कि वह कैसे हो रहा है? आयुर्वेदिक वनस्पतियां डाक्टरों के रनवास (हरम) में प्रविष्ट हो रही हैं। फार्मूलों के साथ वनस्पतियां भी उससे छीनी जा रही है। आयुर्वेद की चमत्कारिक वनस्पतियां तथा फार्मूले (योग) उसके कवच-कुण्डल हैं जिन्हें लेने का यत्न किया जा रहा है। महाभारत में एक कथा आती है कि महाबली कर्ण को मारने के लिए भगवान कृष्ण ने ब्राह्मण का रूप धारण कर उसमे कवच-कुण्डल मांग लिये थे और परिणाम यह हुआ कि कर्ण की मृत्यु हो गई। अब राज्य ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्हें माँग रहा है। राजकुमारी अमृतकौर के बाद भी राज्य की ओर से प्रयत्न बराबर चल रहे हैं और आयुर्वेद को समाप्त करने के लिये वैद्यों का सहयोग भी प्राप्त किया

:: शेषांश पृष्ठ ७३४ पर ::

इन्फ्लूएञ्जा, नजला, जुकाम खांसी

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा

आजकल बहुत लोग इसकी शिकायत करते आते हैं। देखा यह गया है कि विरुद्ध चिकित्सा से अधिक समय तक कष्ट उठाते रहते हैं और कभी तो रोग को बढ़ा भी लेते हैं। यदि साधारण सी सावधानी की जावे तो अति शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है।

जब किसी को भी जुकाम हो तो उसको कोई ऐसी औषधि नहीं खानी चाहिए जिससे जुकाम रुक जावे। आजकल जो तत्काल आराम देने वाली औषधियां चल रही हैं-वे साधारण लोग बिना किसी से परामर्श लिये स्वयं ही बाजार से मोल लेकर सेवन कर लेते हैं। किन्तु उत्तम यह है कि वह कोई औषधि न खरीदें और न ही सेवन करें और तीन दिन तक प्रतीक्षा करें। जुकाम को बहने दें। तीन दिन में आराम आजावेगा। हां सावधानी आवश्यक है जो कि हम लिख देते हैं—

सिर को गर्म रखो। पानी ठण्डा न पियो गर्म पियो। दूध, घी तथा मक्खन बन्द कर दो। यदि हो सके तो भोजन भी बन्द कर दो। यदि भूख लगती है तो बेसन गेहूं की रोटी मधु (शहद) के साथ खावें। रात्रि को सोते समय गर्म गर्म पानी घूंट-घूंट करके पी लिया करें। तीन दिन के भीतर नजला, जुकाम पूर्णतया जाता रहेगा।

यदि कफ अधिक है और तीन दिन में समाप्त नहीं हुई और नजला जुकाम के अतिरिक्त कुछ खांसी भी आरम्भ हो गई है तो निम्नलिखित औषधि दो तीन दिन में आराम कर देगी। इसे आरम्भ से भी सेवन कर सकते हैं यदि रोग अधिक है या थोड़ी मात्रा में ज्वर भी है—

तुलसी के पत्र ११, दालचीनी ६ माशा, काली मिर्च ५, इलायची छोटी ५ पीपल १ मुलहठी ३ माशा। इन सबको डेढ़ पाव पानी में उबालें, जब आधा पाव पानी रह जावे तो मल छानकर छटांक, डेढ़ छटांक दूध और इच्छानुसार चीनी मिलाकर चाय की भांति प्रातः-सायं पियें। यदि कब्ज हो तो ६ माशा बनफसा भी शामिल कर लिया जावे।

यदि फ्लू (इन्फ्लुएंजा) का रोग फूट रहा हो और एक दम नजला जुकाम के साथ ज्वर और शरीर में पीड़ा एवं थकावट सी प्रतीत हो तो निम्न लिखित क़ाढ़ा अत्युपयोगी सिद्ध होता है—

मुलेठी, फूल बनफसा, पुष्करमूल, जूफा, गाजवां, खतमी खब्बाजी प्रत्येक ३ माशा लहसूड़ियां ६, मुनक्का ७, उन्नाब ७ उसी प्रकार क़ाढ़ा बना कर चाय की भांति दिन में दो तीन बार प्रयोग करें।

साधारणतः इन्फ्लूएंजा में यदि केवल मधु और अदरक का रस थोड़ा थोड़ा दिन में दो चार बार चाटें तो भी शीघ्र आराम आ जावेगा। घबराओ नहीं अपनी सादा बस्तुओं पर पूर्ण विश्वास करो।

—श्री पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य 'अमृतधारा' देहरादून।

:: पृष्ठ ७३३ का शेषांश ::

जा रहा है। गत धन्वन्तरि त्रयोदशी के उत्सव पर तैल उत्पादन मन्त्री श्री के.डी. मालवीय की उपस्थिति में भगवान धन्वन्तरि के जीवन पर एक भी शब्द न कह कर, इन्टीग्रेशन की चर्चा करना श्री मालवीय को राज्य की वफादारी का सबूत देना था। समन्वय की चर्चा करने वाले आयुर्वेद के हितैषी नहीं आयुर्वेद के कवच-कुण्डल छीनने वालों के साथी है। अब वास्तव में आयुर्वेद का सूर्य राहु-केतुओं की ओट में जा रहा है। क्या वैद्यसमाज अब भी सजग और सचेत नहीं होगा?

[आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका से साभार]

श्री हरिकृष्ण सहगल
बगीची अलाउद्दीन नं० १३६३
नजर मोतिया खान, दिल्ली

(१७) उक्त प्रयोग का समकक्षी दूसरा अभिन्यास नाशक प्रयोग-सेही की आंते × जल में पीसकर हाथ पांव के समस्त नखों पर इसका लेप करदें। फिर गधे की ताजा लीद के पानी में कपड़ा भिगोकर नखों पर लपेट दें और पानी में कपड़ा तर करके नेत्रों पर पट्टी बांध दें दिमागी वरम निकलकर भयानक अभिन्यास नष्ट होगा।

यह प्रयोग एक तिब्बी की उर्दू भाषा में लिखी हुई पुरातन हस्तलिपि से प्राप्त है। उसमें लिखा है कि ये प्रयोग समस्त प्रकार के अभिन्यास को आराम करेगा। खतरा मौत दूर होगा रोगी आराम की नींद सो जायगा जो सेहत की खुली निशानी है।

(१८) तृतीय सन्यासी प्रयोग---दूध भातल के पत्ते रगड़ के मस्तिष्क पर लेप कर दें। प्रत्येक ३ घंटे उपरांत बदलते रहें कठिनतम सरसाम (अभिन्यास) पर अत्युत्तम है।

अन्य चुटकले

अन्यान्य उपद्रव नाशार्थ निम्न यथोचित प्रयोगों से लाभ उठावें।

(१) एरण्ड तैल प्रयोग---यदि निमोनियां हो तो पार्श्वस्थान पर, उदराध्मान उदरशूल में समस्त उदर पर एरंड तैल की मालिश करके सेकें। कब्ज हो तो २ तोले से ४ तोला तक की मात्रा में गर्म जल या गर्म दुग्ध में मिलाकर पिला दें।

(२) कुक्कुटाण्ड प्रयोग—कुक्कुटाण्ड की पिलाई तथा बिना बुझा चूना (या एलुआ) मिला कर कठिनतम पार्श्वशूल-शिरशूल-उदरशूल में यथास्थान लेप करने से सद्यः शान्ति प्रदान करेगा।

(३) राई प्रयोग-वमन में पकाशय पर पार्श्वशूल में पार्श्व पर मूत्रावरोध में कटि पर राई को जल में बारीक पीस कर किंचित उष्ण कर के लेप करदें सद्यः शान्ति मिलेगी। जलन प्रतीत होने पर ही लेप उतार लें।

(४) भुजदण्ड बंधन—दोनों भुजदण्ड कस कर बांध देने से नकसीर शिरशूल (विशेषतया आधासीसी) मतली-बमन तथा आक्षेप में फौरन लाभ होता है।

(५) रक्त रोधक प्रयोग--- द्राक्षासव चूर्णोदक समभाग मिश्रित करके २-३ तोला की मात्रा में दिन में २-३ बार (आवश्यकतानुसार) पिलाने से उरःक्षत क्षय कास निष्ठीवन तथा बमन में आता हुआ रक्त तथा मल या मूत्रादि के साथ आता हुआ रक्त मतलब ये कि हर प्रकार का अंदरुनी रक्तश्राव बंद होता है।

(६) बांसावलेह द्राक्षासव के साथ थोड़ा थोड़ा चाटने से सब प्रकार का आंत्रिक रक्तश्राव विशेषकर कास के साथ आता हुआ बलगम तथा रक्त शीघ्र ही बंद होता है।

पथ्य-दूध और जल समभाग लेकर औटावें दूध मात्र शेष रहे तब उतार लें और यही दूध थोड़ा २ करके प्रत्येक २ या ३ घंटे के अन्तर से पिलाते रहें। यदि कास श्वास न्यूमोनियां साथ हो तब दूध औटाते वक्त उसमें एक गांठ पीपल या ३-४ पत्र तुलसी के डाल दें। यद्यपि यह दूध अत्यन्त लघुपाची है परन्तु यदि किसी रोगी को फिर भी पाचन न होता हो अथवा किसी अंग से रक्त श्राव हो तब प्रति पाव दूध में १ तोला चूर्णोदक मिश्रित कर के पिलावें। यह पथ्य मंथर ज्वर की प्रत्येक दशा में आप निर्भयता से दे सकते हैं। इस के अतिरिक्त मेरे अनुभव तथा विचार से मंथर ज्वर चेचक प्रभृति ज्वरों में मुनक्का का सेवन औषधत्व तथा भोजनत्व गुणों से परिपूर्ण है। यह दिल दिमाग तथा फेफडों को शक्ति देता कास श्वास में लाभ करता तथा कब्ज का नाश करता है। प्रतिदिन आध छटांक से एक छटांक तक मुनक्का (१-१, २-२ दाने करके) दिन भर में रोगी को खिला देना चाहिये। यदि रोगी को दस्त हो रहे हों और उन्हें बंद करना

× सेही की आंतों के छोटे छोटे टुकड़े कर के खूब गर्म पानी में धो कर धूप में सुखा कर रख लेना चाहिये तथा आवश्यकता समय प्रयोगों में प्रयुक्त करना चाहिये।

चाहें तब मुनक्का बीजसहित खिलावें या सबीज मुनक्का का कल्क बना कर थोड़ा-थोड़ा चटाते रहें। यदि दस्त या रक्तश्राव साथ में हो तो सेव का निचोड़ा पानी या अल्व्यूमिन वाटर निमोनिया और क्षीणता में ब्रांडी मिक्श्चर या द्राक्षासव या अंगूर का रस गर्म करके पिलाना-रक्त मूत्र या मूत्रावरोध की दशा में बार्ली वाटर सर्वोत्तम पथ्य है। तृषा शान्ति के लिये निम्न जल ही सर्वोत्तम है।

पीने का जल—१ तोला खूबकला यथेष्ठ पानी में खूब औटाकर रख लें और वही पानी तृषा लगने पर पिलाते रहें। इस जल से मंथर ज्वर के दाने अतिशीघ्र निकलते तथा तृषा शान्त होती है।

नोट—गर्मियों में यथेष्ट जल खब औटाकर आधा शेष रहने पर कोरी हांडी या सुराही में डाल कर उसमें १ तोला साफ खूबकला की पोटली बांध कर छोड़ दें और वही पानी पिलाते रहें। यह जल १२ घंटे के पश्चात् दूषित हो जाता है अतः फिर ताजा बनाना चाहिये।

अपथ्य— इस रोग में बिलकुल निराहार रहना अच्छा नहीं क्योंकि इस से अतिशीघ्र क्षीणता होती है। मंथर ज्वर में आंतों में शोथ होता है अतः कोई भी ठोस पदार्थ (मुनक्का या अंगूर को छोड़ कर) या धान्य अथवा मांस-मछली गर्म मसाला नमक मिर्च प्रभृति गर्म शुष्क पदार्थ कदापि न दें अन्यथा आंतों में क्षत हो जाना स्वाभाविक ही है। जो पदार्थ भी दें प्रवाही अवस्था में थोड़ा-थोड़ा करके कई बार में, एक ही बार में अधिक नहीं।

विशेष विमर्श—अन्य पथ्यापथ्य दोष काल परिस्थिति आदि पर विचार करके वैद्य निर्णय कर सकता है।

—श्री वैद्य अमरनाथ शर्मा L. M. S. H.
जनहितकारी औषधालय, चमरौआ (रामपुर)

आयुर्वेद की दृष्टि में श्वास रोग

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

[वर्ष ३४ अङ्क ५ से आगे]

अश्व-श्वास (Horse asthma) —

श्वसन क्रिया द्वारा घोड़ों के मल मूत्र के कण श्वास नलिका में प्रविष्ट होने पर अश्व-श्वास रोग (horse asthma) की उत्पत्ति बतायी गयी है। यह रोग कदाचित हुआ करता है। कीटाणु विज्ञान के अनुसार घोड़े, गाय आदि पशुओं की आंत में ऐसे अनेक जीवाणु रहा करते हैं कि जो आक्सीजन के बिना भी जीवित रहते हैं। पशुओं के मलमूत्र की गंदगी से हवा द्वारा उत्क्षेपित हो ये कीटाणु जब श्वसन क्रिया द्वारा श्वास नलिका में प्रवेश करते हैं तो श्वास रोग का होना विज्ञान संमत होगा। किंतु ऐसे श्वास को अश्व-श्वास का रूप देना कुछ वैज्ञानिक नहीं जंचता।

पराग-श्वास (Pollen asthma) —

श्वसन क्रिया द्वारा प्रतिकूल धर्मी परागों का श्वास नलिका में प्रवेश पराग श्वास का कारण है। इसी श्रेणी में गृह मण्डल (room dust) पुस्तक प्रोंछित (book dust), रथ्य मण्डल (street dust) आदि के श्वास नली में प्रवेश से होने वाले श्वास रोग भी लिये जाने चाहिये।

हार्दश्वास (Cardiac asthma) —

वाम हृत्कोषातिपात (left ventricular failure) श्वास कृच्छ्रता को हार्द श्वास कहते हैं। यह निष्क्रिय फुफ्फुस दबाव वाले रोगियों को हुआ करता है और इसमें एक विशेष प्रकार का शब्द हुआ करता है।

"The breathing tends to be less laboured, but more rapid."

---Beamounts Medicine.

हार्द श्वास में—श्वास क्रिया में कष्ट कम होता है किंतु श्वास द्रुतगति से चलता है।

किंतु आगे वे ही बताते हैं कि—

The attacks of nocternal dyspnoea are often known as CARDIAC ASTHAMA and they may be associated with bronchial spasm. The patient wakes up suddenly, feels suffocated, sits up, struggles for breath and finally he may fall back exhausted and sweating. The attacks may be more severe, the patient having acute oedema of the lungs......

Cardiac dyspnoea is not now believed to be due to deficient supply of blood to the respiratory centre or to anoxia of the centre, but rather to a nervous reflex which originates in the lungs and passes to the respiratory centre through the vagus. Diminished elasticity of the lungs due to congestion is thought to originate the reflex. When the patient is lying down at night the vital capacity is diminished and pulmonary congestion increases, probably owing to increased output from the right ventricle and possibly to a further and sudden dilatation of the left ventricle.

----Medicine, PP. 226. (1942ed.)

निशाश्वास कष्ट का आक्रमण बहुधा हार्द श्वास (cardiac asthma) के रूप में ज्ञात हुआ करता है और वे श्वास नलिका आक्षेप के साथ सम्बद्ध रहा करते हैं। रोगी एकायक जाग जाता है, दम घुटने की सी स्थिति का अनुभव करता है। रोगी उठकर बैठ जाता है और सांस लेने का प्रयास करने लगता है और अन्त में वह शांत और पसीना-पसीना हो जाता है। यदि रोगी

को इसके साथ ही फेफड़े में सूजन भी हो तो आक्रमण और भी भयानक हो सकता है।......

हार्दश्वास कष्ट के बारे में अब यह नहीं माना जाता है कि यह रोग श्वासवह केन्द्र न्यूनरक्तापूर्ति किंवा केन्द्र में उचित आक्सीजन के अप्रवेश के कारण होता है। बल्कि यह रोग आमतौर पर वातनाड़ी संस्थान विकृति (nervous reflex) के कारण होता है जो विकृति फेफड़े में प्रारम्भ होती है और सुपुम्ना केन्द्रीय दशम नाड़ी (vagus) के द्वारा श्वासवह केन्द्रों में पहुंच जाती है। दबाव के कारण फेफड़े की विस्फारशीलता में ह्रास उक्त विकृति का कारण माना जाता है। जब रोगी रात में सोया रहता है तो मुख्य क्षमता कम हो जाती है और फेफड़े का दवाब बढ़ जाता है—संभवतः इस कारण कि उस समय दक्षिण वक्षः कोष से आमद बढ़ जाती है और संभवतः इस कारण भी कि उस समय वाम वक्षः कोष का आकस्मिक विस्फारण होता है।

वायकश्वास (fuller's asthma)—

कार्पास वस्त्र निर्माताओं का कार्पास तन्तु कणों के श्वसन क्रिया द्वारा फुफ्फुसों में संचय होने से उत्पन्न श्वास रोग वायक श्वास कहा जाता है। इसमें फुफ्फुसीय प्राणवह स्रोतसों (pulmonary air passages) का क्षोभ हुआ करता है जिसे कार्पास तन्तु संचय फुफ्फुस तन्तूकर्ण (byssinosis) कहा जाता है। पहले इसे फौफ्फुस तन्तूकर्ण (pneumonoconiosis) का एक प्रभेद माना जाता था।

पेषक श्वास (*Grinder's asthma*)

लोहा, तांवा आदि के खराद के कारखानों में काम करने वालों का, उक्त वस्तुओं के श्वासक्रिया द्वारा श्वास पथ द्वारा फुफ्फुस में प्रवेश होने वाला श्वास पेषक श्वास है। चक्की से उड़े कणों से उत्पन्न होने के कारण इसे पेषक श्वास (*Grinder's asthma*, कहा जाता है।

खनक श्वास (*miners asthma*)—

कोयला की खानों में काम करने वालों को विद्गाम (*Coal*) कणों के फुफ्फुस प्रवेश जनित श्वास को खनक श्वास (*miner's asthma*) कहा गया है। इसमें विद्गाम द्वारा संचय जन्य फुफ्फुस तन्तूकर्ष (*anthracosis*) हुआ करता है।

कुलास श्वास (*Poller's asthma*)—

काच, स्लेट या मिट्टी के बर्तन, पाइप आदि के निर्माण कारखाने में काम करने वालों को उक्त मृत्तिका कणों के फुफ्फुस प्रवेश जनित श्वास को कुलास श्वास कहा जाता है। यह भी एक प्रकार से फुफ्फुस तंतूकर्ष (*Pneumonoconiosis*) ही है।

वृक्कज श्वास (*Renal asthma*)—

वृक्कातिपात किंवा रक्तमूत्रता के कारण आक्षेपयुक्त श्वासकष्ट को वृक्कज श्वास (*Renal asthma*) कहा जाता है।

वाष्पयान्त्रिक श्वास ((*Steam filter's asthma*)

वाष्पयंत्र कारखाने में काम करने वालों या उसके वियांत्रिकों (मिस्त्रियों) को होने वाला एक प्रकार का श्वास वाष्पयांत्रिक श्वास(*Steam filter's asthma*) कहलाता है। इसमें संबद्ध सिकताखण्डों का श्वासांतः प्रवेश फुफ्फुस में होना कारण बताया गया है। सिकता संचयज फुफ्फुस तंतूकर्ष (*Silicatosis*) का यह एक प्रकार है। किंतु इसमें खटमानक (*asbistos*) संचयज फुफ्फुस तंतूकर्ष (*asbesotis*) प्रधान रूप से देखा गया है।

प्रस्तर श्वास (*Stone asthma*)—

श्वास नलिका में अश्म विशेष (*Calculus*) के अवस्थान जनित वक्षः प्रदेश में दबाव यथा आक्षेप के साथ होने वाला श्वास कष्ट प्रस्तर श्वास (*Stone asthma*) माना गया है।

सहजश्वास नलिकश्वास (Intrinsic bronchitic asthma)—

श्वास कष्ट का वह प्रकार जो संभवतः ढांचागत

परिवर्तन (Structural change) करने वाले श्वास नलिका में सदोष संक्रमण से हुआ करता है। इस श्वास के बारे में आधुनिक चिकित्सकों को अभी तक कुछ विशेष जानकारी नहीं मिल सकी है।

लक्षणजश्वास (Symptomatic asthma)—

अन्य रोगों का आवस्थिक स्थितियों के अनुगामी श्वास कष्ट को लक्षणजश्वास (Symptomatic asthma) कहा गया है। इस लक्षण का आधुनिक वैज्ञानिकों को कोई कारण विशेष ज्ञात नहीं है अतः ऐसा नामकरण किया गया है।

हृदधिग्र'थिकश्वास (Thymic asthma)—

हृदधिग्रन्थि (Thymus gland) के बढ़ जाने से होने वाला श्वासकष्ट हृदधिग्रन्थिक श्वास (Thymic asthma) कहा गया है।

कुछ लोग इसे बालग्रैवेयक श्वास कहा करते हैं।

आधुनिक चिकित्सकों (एलोपैथी) की भ्रांत धारणाएँ—

इस सम्बन्ध में आधुनिक चिकित्सकों (एलोपैथों) ने इस प्रकार धांधली मचा रखी है कि साधारण लोगों की तो बात ही क्या, चिकित्सा विज्ञान के पंडितों को भी कुछ स्पष्ट तथ्य नजर नहीं आते। उदाहरणस्वरूप अन्नज श्वास, अश्वश्वास, पराग श्वास को श्वास नलिका श्वास से पृथक् गिनना तथा वायक श्वास, पेषक श्वास, कुलास श्वास आदि कई श्वास को अवशेषभाव से कुफ्फुसाधिष्ठानक श्वास रोग मानने का कोई कारण नहीं बताना आदि कई एक बातें उनकी अवैज्ञानिकता की प्रबल परिचायक हैं। आयुर्वेद के अनुसार इनको अधिक स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझाया जा सकता है कि—

अधिक श्वास चलता हो, रुक-रुक कर श्वास चलता हो, कष्ट के साथ श्वास चलता हो, थोड़ा-थोड़ा श्वास चलता हो, शब्द विशेष तथा शूल (पीड़ा) के साथ श्वास चलता हो तो वह श्वास कष्ट रोगी के प्राणवह स्रोतों के अत्यन्त प्रकुपित होने की निशानी है। प्राणवह स्रोतों के मूल दो हैं—(१) हृदय (प्राणवह धमनियां यदाश्रित रहा करती है—सुश्रुत, शारीर, अ० ४) तथा (२) महास्रोतस् (कार्डिया)।

आचार्य चरक के च शब्द से महास्रोतस् के साथ संलग्न शाखा स्रोतस् समूह का ग्रहण करना चाहिये और उनकी विकृति से उत्पन्न श्वास कष्ट को भी श्वास रोग में गिना जाना चाहिये।

और इन मूल प्राणवहस्रोतों में श्वसन क्रियान्तःप्रविष्ट क्षोभक किसी प्रकार के तत्व के कारण विक्षोभ वा विकृति पैदा होने पर श्वास रोग बाह्य निमित्तक होगा और वृक्क आदि आभ्यन्तर तत्वों की विकृति से उत्पन्न रक्त विषक्रियाजनित श्वास रोग आन्तर निमित्तक होगा।

उपदंश आदि रोगजनित श्वास नलिका-तन्तूत्कर्ष (bronchc-fibrosis due to tuberculosis or Syphilis) इस आंतर निमित्तक श्वास के कारण माने जायंगे और फुफ्फुस तन्तूत्कर्ष (pneumonoconiosis) का बाह्य निमित्तक श्वास रोग के जिस फौफ्फुस तन्तूत्कर्ष (anthracosis), सिरताज तन्तूत्कर्ष (Silicosis), प्रस्तर-कणज तन्तूत्कर्ष (lithosis या chalicosis) धातुकणज तन्तूत्कर्ष (Siderosis या संभवतः silico-siderosis), खटमलज तन्तूत्कर्ष (asbestosis) तथा कार्पासकणज तन्तूत्कर्ष (Byssinosis) नामक भेद बताये हैं। फिर भी रथ्याधूलिज तन्तूत्कर्ष (fibrosis due to inhalation of street dust) आदि तन्तूत्कर्ष के कई एक प्रकार नहीं दिये जाने के कारण न्यूनत्वदोष रह ही जाता है।

इस सम्बन्ध में ये पाश्चात्य विज्ञान के ज्ञाता यह नहीं कह सकते कि धूलिकणज तन्तूत्कर्ष कारकता विद्माम सिकता आदि परिगणित धूलिकणों में ही है और अन्य धूलियों में केवल श्वासनलिका प्रदाह कारणता ही संभव है।

इसलिये आयुर्वेद सिद्धांतानुसार यह परिकल्पना ही अधिक वैज्ञानिक होगी कि श्वासान्तर्गत

धूलिकणों की घनता आदि पर यह निर्भर करता है कि कौन स्थिति में उक्त धूलि फुफ्फुस तक पहुंच कर वहां तन्तूत्कर्ष पैदा करता है और कौन स्थिति में केवल श्वास नलिका में ही संचित होकर प्रदाह पैदा किया करता है। और इस तरह से आचार्य सुश्रुत का श्वास निदान कि—

वायुर्योवक्त्रसंचारी सप्राणो नाम देह धृक् ।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥
प्रायःकुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ।

(सुश्रुत निदान अ० १)

अर्थात् - मुंह में संचारशील जो वायु है वह प्राण है। वह देह का धारण करता है। वह अन्न का अन्तः प्रवेशन किया करता है और प्राण का अवलम्बन भी करता है। और यही दुष्ट होकर अधिकतर हिक्का श्वास आदि रोगों को पैदा करता है। और आचार्य चरक का यह स्पष्टकथन कि—

मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति ।
उरःस्थः कफमुद्धूय हिक्काश्वासान् करोति सः ॥

[चरक चिकित्सा अ० १०]

अर्थात्—वायु प्राणवाही स्रोतों में प्रवेश कर कुपित होता है उदर में रह कर कफ का उद्धूमन कर वही हिक्का और श्वास को पैदा किया करता है।

"कण्ठोरसोः प्रतिघातात्" (च०चि० अ० १६)

के साथ उचित संबन्ध जोड कर रजस् (dust), और वात (gas), जनित कण्ठ तथा उरस अन्यतर वा उभय के प्रतीघात होने से प्राणवाही स्रोताविष्ट वायु का कुपित होना भी अत्यधिक वैज्ञानिक है।

आनाहः पार्श्वशूलंच पीडनं हृदयस्य च ।
प्राणस्य विलोमत्वं श्वासानां पूर्व लक्षणम् ॥

अर्थात्—आनाह, पार्श्व शूल, हृदय का दवाव (Pressure) और प्राण वायु की पर्याकुलता श्वास का पूर्व लक्षण है।

यह पूर्व लक्षण अत्यधिक मर्यादित है। साथ ही—

'न कासेन विनाश्वासः कासोनश्लेष्मणा विना ।'

[हारीत संहिता]

अर्थात्—कास के बिना श्वास होता ही कहां, और बिना कफ के कास भी होता नहीं।

'धूमोपघाताद्रजसस्तथैव
व्यायाम रूक्षान्न निषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वाच्चहि भोजनस्य
वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥
प्राणोह्युदानानुगतः प्रदुष्टः
सभिन्न कांस्य स्वरतुल्य घोषः ।
निरेतिवक्त्रात्सहसा स दोषो
मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥२॥

[माधव निदान, कास निदान]

अर्थात्—धूम जनित उपघात से, रजस् (dust) उड़कर मुख नासिका में भरने से, व्यायाम तथा रूक्ष अन्न के सेवन से, भोजन के विमार्गगामी होने से तथा छींक के वेग को रोकने से उदान के साथ कुपित प्राण वायु फूटे कांसे के वर्तन की सी आवाज करता हुआ मुंह से निकला करता है। इसे मनीषियों ने 'कास रोग' कहा है।

—क्रमशः।

तुलसी

श्री तारादत्त त्रिपाठी

तुलसी दो प्रकार की होती है। एक राम, दूसरी श्याम। श्याम तुलसी के पत्ते कुछ काले से होते हैं, राम तुलसी के हरे। यह दोनों ही गुणवर्धक हैं, इसके पत्तों तथा मञ्जरी (फूल) में सुगन्ध होती है। इसकी गन्ध वायु शुद्ध करने तथा जन्तुघ्न होने से आरोग्यवर्धक है। अपितु यह कीटाणुनाशक होने से विषम, आन्त्रिक, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वरों में इसका प्रयोग अत्यन्त ही लाभदायक है। इसमें आयुर्वेदिक दृष्टि से भी अद्भुत रोगनाशक गुण हैं। यह उष्णा प्रकृति की कफघ्न, हृदय रक्त को शुद्ध करने वाली अग्नि दीपक एवं वायु, श्वास, कास, वमन, (कै) शूल, विष मूत्र कृच्छ्र, रक्त, दोष, ज्वर इत्यादि का नाश करने में रामबाण है। तुलसी के कफनाशक होने से खांसी में इसका प्रयोग करते हैं। ऐसे ही सन्निपात, दमा, श्वासादि औषधियों के अनुपान में इसका रस दिया जाय तो औषधि का गुण तत्क्षण हो जाता है। यह उष्ण होने से वायु का नाश करती है अग्नि प्रदीप्त तथा उदर विकारादि कष्टों को तत्काल नष्ट करती है।

काली तुलसी के पत्ते अदरख मिश्रित दुःखते दाँत में दबाये रखने से पीड़ा नहीं होती है। यदि पीनस हो तो इसके पत्ते सुखा कर खरल करके नस्य (हुलास) लेना अथवा हरे पत्तों को पीस कर कपडछन करके इसका रस नाक में टपकाना भी अत्युत्तम है। तुलसी, काली मिर्च पीसकर चने के बराबर बटिका (गोली) बना कर सुखालें, मलेरिया ज्वर आने के पूर्व ३-३ घंटे पश्चात् १-१ गोली एक घूंट शीतल जल (ठंडा पानी) के साथ देने से निः सन्देह आराम हो जाता है। बालकों का हरा, पीला मल (दस्त) मरोड़ा अतिसार तथा वमन में इसका रस शहद के साथ देना लाभप्रद है। बिच्छू के विष पर तथा दद्रू में भी इसका प्रयोग लाभदायक है। इसी रस को आँखो में टपकाने से या चिपचिपाती हुई आँखों में अच्छा गुण करके ज्योति भी बढ़ाती है। खुजली (पामा) में काली तुलसी का रस मलने से, बहते हुए कान में डालने से, घाव में इसके पत्ते बारीक पीस-कर लगाने से शीघ्र आराम हो जाता है। बुद्धि-बर्द्धक होने से ब्राह्मी, बचा के साथ प्रतिदिन नियमानुसार यथाशक्ति खाने से बुद्धि की वृद्धि होती है।

अतएव यह अपूर्व गुणकारी महौषधि होने से प्रत्येक घरके चारों ओर अधिक संख्या में लगाना आवश्यक है। यही नहीं तुलसी का स्वर्ण तथा रत्नादि गुणों से व्याप्त तथा अनेक व्याधियों से मुक्त कर अन्त में मनुष्य को इस भवसागर से मोक्ष पथ पर प्रवेश करना मन्त्र सिद्ध है। यथा—

तुलसी हेम रूपेण रत्न रूपेण मंजरी ॥
भव मोक्ष प्रदा तुभ्यं तुलसीते नमोस्तुते ॥

इसी हेतु हिन्दू इसको विष्णु रूप मान कर नित्य प्रति श्रद्धा भक्ति से पूजा किया करते हैं। पूजान्त में तुलसी मिश्रित चरणामृत पीने से समस्त व्याधियां ही नहीं अकाल मृत्यु का भी नाश होना मन्त्र साक्षी है।

अकाल मृत्युहरणं सर्व व्याधि विनाशनं।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

—श्री तारादत्त त्रिपाठी
श्रीब्रह्मकुटी शिलौटी, भीमताल (नैनीताल)

अशोक

श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार

[भाग ३४ अङ्क ५ से आगे]

चिकित्सा में उपयोग –

अगले पृष्ठों में हम यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि विविध रोगों की चिकित्सा में अशोक वृक्ष की छाल, फूल आदि अङ्ग किस प्रकार काम आते हैं।

रक्त के रोग–

फूल और छाल दोनों रक्त संग्राहक हैं। इसलिये रक्त प्रदर और रक्तातिसार आदि रोगों में दिये जाते हैं, रक्त प्रवाहिका में छाल का काढ़ा दिया जाता है। रक्तातिसार में फूलों का चूर्ण पानी के साथ उपयोगी है। डा० वेअरिंग के अनुसार बार-बार होने वाले रक्तज अर्बुदों में अशोक उपयोगी है। किसी अङ्ग से खून आने की अवस्था (रक्तपित्त) में गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट के प्रयोग को हितकर बताया है। खून बहने की प्रवृत्ति को रोकने का गुण कैयदेव ने लिखा है।

योनि के रोग–

अशोक की योनि दोषों को दूर करने की क्षमता को सुश्रुत जानते थे। योनि रोगों को ठीक करने वाली दवाइयों के एक समूह लोध्रादिगण में सुश्रुत ने इसका परिगणन किया है। शिथिल योनि का संकोच करने के उद्देश्य से छाल के काढ़े से योनि का प्रक्षालन करना चाहिए।

गर्भाशय के रोग–

परवर्ती धर्म ग्रन्थों से पता चलता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों को खाने से स्त्री की सन्तान-कामना फलवती होती है।[1] बंगला में अशोकषष्ठी की वासन्ती पूजा के दिन पुत्रवती स्त्रियां अशोक के ६३ फूलों को दूध या पानी में डाल कर पी लेती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से उनके बच्चे कष्ट और शोक से बचे रहेंगे।

आजकल वैद्य लोग स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी रोगों में विशेष रूप से अशोक का प्रयोग कर रहे हैं। चरक, सुश्रुत ने इसे इन रोगों में प्रयोग नहीं किया। किसी भी निघण्टुकार ने अशोक का प्रदर नाशक गुण नहीं जाना था। चरक[1] और सुश्रुत[2] दोनों ने रक्त प्रदर की चिकित्सा लिखी है, परन्तु इन्होंने किसी भी जगह अशोक का उल्लेख नहीं किया। प्रदर में इसका सबसे पहले प्रयोग करने वाले सिद्ध योग संग्रह के रचयिता वृन्द प्रतीत होते हैं। चक्रपाणि ने इसे काढ़े और अरिष्ट दोनों के रूप में प्रयोग किया है। यह कहना कठिन है कि स्त्री रोगों में अशोक घृत का सर्व प्रथम प्रयोग करने वाले कौन थे। भावमिश्र, चक्रपाणि और शार्ङ्गधर की संहिताओं में हमें अशोक घृत का स्त्री रोगों में प्रयोग नहीं मिलता। सम्भवतः चिकित्सासार संग्रह के कर्त्ता बंगसेन ने इसका प्रयोग आरम्भ किया था। एक अन्य अज्ञातनामा बंगाली लेखक की कृति सारकौमुदी में और भैषज्यरत्नावली तथा स्नेह मालिका में भी इसका पाठ है।

छाल तीव्र ग्राही है। कषायस्कन्ध में चरक ने अशोक गिनाया है।[3]

अर्गट या पीयूषग्रन्थि (पिच्यूटरी) के समान तानिक संकोचों (Tonic contractions) को पैदा किये बिना यह संकुचन (Contracion) अधिक बार बार तथा दीर्घकालिक करता हुआ गर्भाशय को

---

[1]अशोक कलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ।
चैत्रे मासि सिताष्टाम्यां ने ते शोक मवाप्नुसु ॥
—कूर्म पुराण।

[1]देखिये: चरक, चिकित्सा स्थान, अध्याय ३०।
[2]देखिये: सुश्रुत, शारीर स्थान, अध्याय २।
[3]देखिये: चरक विमानस्थान, अध्याय ८-१६४

उद्दीपन करता है। अत्यार्तव, (Menorrhagia) गर्भाशय रक्तस्राव (Metrorrhagia) प्रसवोत्तर रक्त स्राव (Post-Partum haemorrhage) इत्यादि गर्भाशयिक रक्तस्राव के सभी रोगियों को जिन्हें अर्गट निर्दिष्ट किया जाता है, इसके देने से लाभ होता है।

फूल की सब्जी, स्वरस और काढ़ा प्रदर में दिया जाता है। दालचीनी आदि सुगन्धोद्दीपक द्रव्यों के साथ कसैली छाल का काढ़ा या अकेली छाल का काढ़ा गर्भाशय के रोगों में, विशेषकर अत्यार्तव में दिया जाता है। अशोक का अधिक प्रयोग आजकल रक्तप्रदर (अत्यार्त्तव) में किया जा रहा है।

चरक ने दर्द को शान्त करने वाली (वेदनास्थापक) दवाओं के समूहों में अशोक का पाठ किया है।[1] आज का चिकित्सा संसार इस गुण के आधार पर अशोक को सामान्य वेदना निवारक औषधि के रूप में प्रयोग नहीं कर रहा है। स्रोतों के अवरुद्ध हो जाने से या वायु और आम (श्लेष्मा) के मार्गों को दूषित कर देने के परिणामस्वरूप पैदा हो जाने वाले मासिक स्राव के अवरोधों में तथा कष्टार्तव में वेदना और कष्ट को दूर करने की क्षमता इस में विद्यमान है। मासिकस्राव की मात्रा स्वल्प हो तथा वह भी अत्यन्त वेदना के साथ आता हो और रुग्णा को काम काज छोड़ कर अनेक दिन बिस्तर में लेटने के लिए बाध्य होना पड़ता हो तो अशोक क्षीर पाक, अशोक घृत भी अशोकारिष्ट के देने से बहुत अधिक लाभ दीखता है। रोग की प्रकृति और जटिलता को ध्यान में रखते हुए इन दवाओं को अकेला या एक साथ प्रयोग करने का निश्चय चिकित्सक स्वयं कर सकते हैं। तीन मास लगातार प्रयोग करने से सब कष्टदायक लक्षण लुप्त हो जाते हैं और गर्भाशय स्वस्थ सन्तान को धारण करने के योग्य बन जाता है। अशोक एक उत्तम गर्भाशयिक रसायन है जो गर्भाशय के समस्त विकारों को ठीक करके उसे बल देता है जिससे मासिक धर्म की सभी अनियमितताएं ठीक हो जाती हैं और मासिक स्राव नियत समय पर आता है।

स्त्रियों के न्यासर्ग स्राव (harmone secretion) को बढ़ाने की शक्ति अशोक छाल में मानी जाती है। यह डिम्बाशय में न्यासर्ग (हारमौन) की कमी को दूर करती है। हीन पोषण के कारण पैदा होने वाले स्त्रियों के निम्नलिखित रोगों को दूर करने में अशोक बड़ा हितकर है—मन्द ज्वर, आलस्य, जीवन के उल्लास के प्रति उदासीनता, यौवन के लक्षणों का देर से प्रकट होना, शरीर में यौन की परिपक्वता के लक्षणों की अपूर्णता, कामवासना का ह्रास और डिम्बाशय में डिम्ब की क्षीणता।

मूत्र तथा प्रजनन संस्थान के रोग—

मूत्र तथा प्रजनन संस्थान के रोगों (प्रमेहों) में गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट का प्रयोग किया है। शिवदास के अनुसार अशोक के बीजों के चूर्ण को पानी के साथ मूत्र की रुकावटों में और पथरी में खिलाने से लाभ होता है।

अर्श (बवासीर)—

धन्वन्तरि और निघण्टु रत्नाकर इसमें अर्शनाशक गुण का प्रतिपादन करते हैं। रक्त संग्राहक होने के कारण खूनी बवासीर में फूल और छाल दोनों का प्रयोग किया जाता है। बवासीर के मस्से भीतर हों तो छाल के प्रयोग से लाभ होता है। फूलों को और छाल को रात भर पानी में भिगो देते हैं, प्रातःकाल यह शीत कषाय खूनी बवासीर के रोगी को पिलाते हैं। खूनी बवासीर में गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट के प्रयोग को लाभदायक पाया है।

ज्वर—

सब प्रकार के ज्वरों में प्रयोग किये जाने वाले महाकल्याणक घृत में सुश्रुत ने अशोक को भी डाला है। गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट को ज्वर में लाभदायक पाया है। निघण्टु रत्नाकर ने अशोक की ज्वरनाशक उपयोगिता प्रतिपादित की है।

[1] देखिये—च० सू० ४-६१

वायु के रोग —

वायु के रोगों की चिकित्सा में अन्य द्रव्यों के साथ मिलाकर कल्याणक[1] तथा तिल्वकसर्पि[2] नामक निर्मितियों में सुश्रुत ने अशोक का प्रयोग किया है। वात व्याधियों में वर्णित तिल्वकसर्पि की तरह वाग्भट ने अशोक घृत भी बनाने का वर्णन किया है।[3]

आंख के रोग —

पित्त एवं श्लेष्म विदग्ध दृष्टि के रोग में प्रयुक्त किये जाने वाले एक अञ्जन में सुश्रुत ने अशोक का भी प्रयोग किया है।

जख्म —

जख्मों के नये मासाङ्कुर बहुत मृदु हों और उन्हें कठोर बनाना अभीष्ट हो तो अशोक की छाल के काढ़े से धो सुखा कर, इसी का बारीक चूर्ण जख्म पर छिड़क देना चाहिए।[4] धन्वन्तरि और निघण्टु रत्नाकर अशोक को सब प्रकार के घावों को ठीक करने वाला बताते हैं। इनकी तथा भावमिश्र की सम्मति में यह गण्डमाला में भी लाभ करता है और शोथ तथा शोफ को हटाता है। विविध शोथयुक्त अवस्थाओं में गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट को प्रयोग किया है। निघण्टु रत्नाकर ने तो अशोक हड्डियों को जोड़ने वाला भी बताया है।

विषों में —

सर्पदंश चिकित्सा के ऋषभ अगद में सुश्रुत ने अशोक को ग्रहण किया है। विषनाशक इस अगद को सुश्रुत ने इतना प्रभावशाली बताया है कि घर में इसके रहने से सांप तथा अन्य विषैले कीड़े अपना पराक्रम नहीं दिखा सकते, वे काटते भी नहीं। सुश्रुत इस अगद का भेरी, नगाड़ों, पताकाओं, आदि पर लेप कर देते थे। उनका विश्वास था कि पताकाओं के देखने मात्र से तथा वाद्य यन्त्रों के सुनने मात्र से सर्पदंश का विष उतर जाता है। विषों की चिकित्सा में सुश्रुत ने दुन्दुभिस्वनीय नामक एक अध्याय लिखा है। नगाड़े आदि के ऊपर विषनाशक औषधि का लेप करके उसके शब्द से विष दूर करने की विधियां इस अध्याय में प्रतिपादित की हैं। इसके अन्दर महासुगन्धित अगद नाम की एक निर्मिति का वर्णन है जो पिचासी औषधियों के योग से बनाई गई है। मुख्यतया सुगन्धित द्रव्य इसके घटक हैं, जिनमें अशोक के फूल भी हैं। सुश्रुत ने इस निर्मिति को बड़ी भरोसे की दवा बताया है। अग्नि के तुल्य दुर्निवार्य, क्रोधयुक्त, अप्रतिम, तेजस्वी सब नागों के राजा वासुकी के विष को नष्ट करने की क्षमता इस श्रेष्ठ अगद में मानी जाती थी। मृत्यु के मुख में गये हुए मनुष्य को भी यह उबार लेता था।

सुश्रुत के मन्तव्यों को ध्यान में रखते हुए बम्बई के म्हस्कर और कापसू ने अशोक की छाल और फल को फनियर तथा मण्डली (Russeles viper) दोनों जातियों के विषों को नष्ट करने के लिए अलग-अलग परीक्षा की। अपने विस्तृत परीक्षणों के विवरणों में ये बताते हैं कि अशोक के उपर्युक्त तीनों अङ्ग शरीर में गये हुए सर्प विषों के प्रभाव को रोकने, सर्प विषों को उदासीन या नष्ट करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

— समाप्त

१—देखें: सु. वात व्याधि चिकित्सा, अध्याय ४-३०।
२—देखें: ,, ,, ,, —२७।
३—देखें चि. अ. २१—३४।
४—व्रणेषु मृदु मांसेषु दारुणीकरणं हितम्।
..........अशोकानां.....त्वचस्तथा॥
कृत्वा सूक्ष्माणि चूर्णानि व्रणं तैरव चूर्णयेत्॥
—सु. चि. ८६-८७।

स्नेहन विधि--

अब प्रश्न उठता है कि किन किन विधियों से स्नेहन कराया जाए। इसके लिए यह ही कहा जा सकता है कि स्नेहन कराने की कई एक विधियां हो सकती हैं और उन विधियों का स्वरूप चिकित्सक स्वयं रोग एवं रोगी के अनुसार कर सकता है। इसके लिये यद्यपि कोई विशेष नियम तो नहीं तो भी मुख्यतः निम्न प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं।

(१) पाचन प्रणाली स्नेहार्थ—पाचन प्रणाली को स्निग्ध करने के लिए स्नेह द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। इन स्नेह द्रव्यों को आंतों में पहुंचाने के मुख्यतः दो ही मार्ग हो सकते हैं। एक मुख द्वारा, दूसरा गुदा मार्ग। इनमें तैल घृतादि को क्रमशः मुख से पिलाना तथा बस्ति द्वारा प्रयोग कराना होता है। विचारणाऐं भी प्रयोग में लाई जाती हैं।

(२) स्नायु मण्डल स्नेहार्थ—स्नायु मण्डल स्निग्ध करने हों तो त्वचा में स्नेह द्रव्यों का अभ्यंग करना चाहिए। इस प्रकार त्वचा में रमा स्नेह रन्ध्रों द्वारा स्नायु मण्डलों तक स्निग्धता पहुंचाता है। तलवों में मालिश करना भी इस सिद्धान्तानुसार लाभ पहुंचाता है। इसे ही मालिश कहते हैं।

(३) मस्तिष्क स्नेहार्थ—मस्तिष्क तथा नासिका की रूक्षता निवारणार्थ स्नेहन किया जाता है। इसमें स्नेह नस्य एवं शिरोवस्ति दोनों आ जाते हैं।

(४) नेत्रादि स्नेहार्थ—नेत्रों तथा गले को स्निग्ध करने के लिए स्नेह का प्रयोग क्रमशः अभ्यंजन एवं कवल धारण द्वारा कराया जाता है।

(५) तर्पण – सर्व प्रचलित विधि तर्पण की है। इसमें मनुष्य को स्नेह द्रव्यों से तृप्त कर देना चाहिए। इसके द्वारा शरीर के सभी अङ्गों का स्नेहन हो जाता है।

इनके अतिरिक्त स्नेहन के लिए कई एक अन्य क्रियायें भी हो सकती हैं। जैसे कर्ण पूरण आदि इन सभी का निर्धारण चिकित्सक स्वयं कर सकता है।

चाहे किसी भी प्रकार से हो एकांग या सर्वाङ्ग का स्नेहन करने के लिये चिकित्सक तदनुसार विधि नियत करें और चाहे कोई भी विधि क्यों न हो उस उस 'इच्छापेय' तथा 'विचारणा' का चिकित्सक प्रयोग करें।

चरक संहिता में स्वरूप के दृष्टिकोण से स्नेहों की चौबीस विचारणाऐं बताई हैं। किसी भी विधि द्वारा स्नेहक बनाया हो, उसका स्वरूप इन चौबीस में से ही एक होगा। यह विचारणाऐं कल्पान्तर से निर्मित होती हैं। इनका उल्लेख करना व्यर्थ का कलेवर बढ़ाना होगा। अतः जिज्ञासु मूल ग्रन्थ में ही देखें।

स्नेहन योग्य—

स्नेहन का वर्णन करते हुए अब जो लिखने को है, वह यह कि किन का स्नेहन करना चाहिए, अथवा कौन स्नेहन योग्य हैं। इसके लिये चरक का एक सूत्र सदैव स्मरणीय है—

"स्वेद्याः शोधयितव्याश्च रूक्षः वात विकारिणः।
व्यायाम मद्य स्त्री नित्यः स्नेह्याःस्युर्ये च चिन्तकः॥

अर्थात् जो स्वेदन के योग्य हैं, वमन विरेचनादि संशोधन जिन्हें कराना हो, रूक्ष तथा वात विकारों से पीड़ित, नित्य व्यायाम करने वाले, नित्य मद्य सेवी तथा नित्य स्त्रीगामी, जो बुद्धि का सोच विचार का कार्य अधिक करते हैं, वह सब स्नेहन योग्य हैं।

यह तो रहा एक साधारण नियम, परन्तु सदैव ही हम इस पर नहीं टिक सकते, अतः इसका अपवाद भी देखिये—

"संशोधनादृते येषां रूक्षणं सम्प्रवक्ष्यते।
न तेषां स्नेहनं शक्यमुत्सन्न कफ मेदसाम्॥"

भाव यह कि कफ और मेद बैठे होने पर स्वेदन एवं शोधन तो करा सकते हैं, परन्तु इन अवस्थाओं में स्नेहन नहीं करा सकते। अतः ऊपर लिखे साधारण नियम का इससे विरोध होता है।

यह भी कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं, अवस्था भेद से इस में भी अन्तर हो जाता है। अष्टांग

संग्रहकार ने इस विरोधात्मक सिद्धान्तानुसार बर्जित अवस्था में भी स्नेहन करने की आज्ञा दी है परन्तु विधान थोड़ा सा बदल दिया है। लिखा है—

"मांसला मेदुरा भूरि श्लेष्माणां विषमाग्नयः।
स्नेहोचिताश्च ये स्नेह्यास्तान पूर्वं रूक्षयेत्ततः॥
संस्नेह्य शोधयेदेवं स्नेह व्यापन्न जायते।"

अर्थात् जो पुरुष स्थूल हैं, जिनमें मेद तथा कफ अधिक मात्रा में है, जिनकी अग्नि विषम है, जो स्नेह अभ्यासी हैं, यदि उन्हें स्नेहन कराना अभीष्ट हो तो पूर्व रूक्षण करा पश्चात् स्नेहन कराना चाहिए। इस प्रकार युक्तिपूर्वक चलने से स्नेहन से होने वाले उपद्रव नहीं होते।

अस्तु, यह तो एक साधारण नियम हुआ जिस को ध्यान में रखते हुए चिकित्सक स्वयं ही योग्य व्यक्ति का ज्ञान कर सकता है। इसमें साथ साथ चतुस्महास्नेह का भिन्न २ प्रयोग विधान भी आचार्य ने लिखा है, इसका भी संक्षेप में वर्णन करते चलना विषय के प्रतिकूल न होगा।

घृत योग्य—

जिनकी वात प्रकृति या पित्त प्रकृति हो, जो नेत्रों को ठीक रखना चाहते हों, चोट लगी हो, क्षीण हों, वृद्ध-बालक अथवा दुर्बल हों जो दीर्घ जीवन की इच्छा रखते हों, बल-वर्ण तथा स्वर को चाहने वाले, पुष्टि के इच्छुक,सुकुमारता कान्ति, ओज,स्मृति,मेधा, अग्निदीप्ति, बुद्धि, इन्द्रिय एवं बल को चाहने वाले और दाह शस्त्र तथा विष से पीड़ित एवं अग्नि से दग्ध पुरुष घृत का सेवन करें। सुश्रुत में—

रूक्षं क्षत विषार्तानां वात पित्त विकारिणाम्।
हीन मेधा स्मृतिनां च सर्पि पानं प्रशस्यते॥

तैल योग्य –

जिसके कफ या मेद बढ़ी हो, गला और पेट स्थूल हों और हिलते हों, जो वात रोगों से घिरे हों जो बल, कृशता, लघुता दृढ़ता तथा स्थिरता के इच्छुक हों तथा जो पुरुष स्निग्ध, चिकनी तथा पतली त्वचा चाहते हों, जिनके उदर में कृमि हों, कोष्ठ कठोर हो, नाड़ी व्रण से जो पीड़ित हों तथा तैल के अभ्यस्त तैल का प्रयोग करें।

वसा योग्य —

जो पुरुष वात तथा धूप को सहते हों, रूक्ष हों, भार उठाने या अधिक चलने से जो रूक्ष हो गये हों, जिन का वीर्य एवं रुधिर सूख गया हो अर्थात् क्षीण हो गया हो, मेद व कफ क्षीण हो, जिनकी अस्थि, संधि, शिरा स्नायु व कोष्ठ रोगग्रस्त हों, वायु स्रोतों को आच्छादित किये हों, अग्नि बलवान हो तथा जिन्हें वसा सात्म्य हो, वह वसा लें।

व्यायाम कर्शिताः शुष्कः रेतोरक्ता महारुजः।
महाग्नि मारुतं प्राणावसायोग्य नरास्मृता॥
(सुश्रुत)

मज्जा योग —

जिन की अग्नि दीप्त हो, क्लेशों को सहने वाले, बहुत खाने वाले, स्नेहों का सेवन करने वाले, वात रोगी, क्रूर कोष्ठी तथा स्नेह का प्रयोग करने योग्य को मज्जा का प्रयोग करना चाहिए।

स्नेहन के अयोग्य—

स्नेह योग्य पुरुषों का वर्णन करने के बाद अयोग्यों का जिक्र करना भी सगंत है। आचार्य ने लिखा है—जिनके मुख या गुदा से स्राव सरता हो, अतिसार हो, मन्दाग्नि हो, तृष्णा, मूर्च्छा से युक्त, गर्भिणी, तालु शोषी, अरुचि, उदर रोग, वमन तथा जर विष से पीड़ित हो, दुर्बल, क्लमयुक्त, मदात्यय ग्रस्त तथा जिनको स्नेह से ग्लानि हो जाती है, उन्हें स्नेहन नहीं कराना चाहिए। जिन्हें वमन, विरेचन तथा बस्तिकर्म कराया हो उन्हें स्नेहन नहीं कराना चाहिये।

स्नेह काल–

चिकित्सा करते समय हमारे सम्मुख दो पद्धतियाँ रहती हैं, एक तो शोधन करके चिकित्सा करना और दूसरे रोग का शान्त कर देना, इनमें से प्रथम को संशोधनात्मक और द्वितीय को सशमन चिकित्सा कहते हैं। और क्योंकि स्नेहन चिकित्सा का विशेष अंग है और दोनों प्रकार से ही प्रयोग भी किया जाता है, अतः स्नेहन का प्रयोग काल भी

दोनों अवस्थाओं के लिए भिन्न २ हैं। जो स्नेह संशोधनार्थ प्रयुक्त हों, वह प्रातःकाल दिए जाते हैं और जो शमनार्थ प्रयोग किए जाएं वह दोपहर में जब कि क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण हो उस समय दिए जाते हैं।

अत्यन्त शीत एवं अत्यन्त उष्णकाल में स्नेहपान निषिद्ध है। शोधन के लिए प्रयुक्त स्नेहपानार्थ आचार्य ने शरद्, बसन्त तथा प्रावृट् ऋतु को साधारण ऋतु माना है। इसी नियम के अनुसार कल्पना करते हुए लिखा है—

'सर्पि शरदि पातव्यं वसा मज्जा च माधवे।
तैलं प्रावृषि, नात्युष्ण शीते स्नेह पिवेन्नरे॥'

जिसके अनुसार कार्तिक और मार्गशीर्ष (प्रायः १५ अक्टूबर से १५ दिसम्बर तक) में घृत फाल्गुन और चैत्र (प्रायः १५ फरवरी से १५ अप्रेल तक) में वसा तथा मज्जा और आसाढ़ तथा श्रावण (प्रायः १५ जून से १५ अगस्त तक) में तैल का सेवन करना चाहिये। विशेष अवस्थाओं में हेमन्त तथा शिशिर में भी तैलपान किया जा सकता है।

ग्रीष्मकाल में रात्रि को और शीतकाल में दिन में स्नेहपान करना चाहिए। वात-पित्ताधिक्य में रात्रि को और वात-कफाधिक्य में दिन में स्नेहपान हितकर होता है। इसी प्रकार तैल प्रायः रात्रि को और घृत को दिन में प्रयोग करें। ऐसा न करने से विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अष्टाङ्ग संग्रह में लिखा है—

'.................................अन्यथा।
विश्मश्नुते वात कफाद्रोगोतवनि पित्ततः॥

अर्थात् पुरुष निर्दिष्ट काल का उल्लंघन कर स्नेहपान करें तो अनिर्दिष्ट अवस्था में रात्रि समय स्नेहपान करने से वात-कफजन्य रोग तथा दिन में उपयोग करने से पित्तज रोग होंगे। इनका कारण देखना चाहें तो स्पष्ट हो जायगा कि यह स्नेह के शीत एवं उष्ण होने से और रात्रि एवं दिन के शीत एवं उष्ण होने से होते हैं।

स्नेह मात्रा—

कोई भी द्रव्य कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाए इसका सुनिश्चित निर्देश करना कठिन है। केवल इतना ही नियम है कि चिकित्सक को रोग, रोगी और तत् द्रव्य की अशांश कल्पना कर मात्रा निश्चित करनी पड़ती है। यही नियम स्नेह मात्रा के लिए समझिए।

चरक में कोष्ठानुसार स्नेह की तीन प्रकार की मात्राओं का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार अहर्निश (२४ घण्टे) में पाक होने वाली प्रधान मात्रा, दिन भर (१२ घण्टे) में पाक होने वाली मध्यम मात्रा, अर्ध दिन (६ घण्टे) में पचने वाली ह्रस्व मात्रा होती है।

सुश्रुत संहिता में पाक के अनुसार पांच प्रकार की मात्राऐं बताई हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन स्नेह का प्रयोग करते हैं, भूख, प्यास को सह सकने योग्य जिनकी जठराग्नि तीक्ष्ण तथा बलशाली है, गुल्म रोगी, सर्पदष्ठ, विसर्पी, उन्मत्त, मूत्रकृच्छ्र पीड़ित तथा कठोर पुरीष वाले स्नेह की उत्तम मात्रा लें।

फोड़े, फुंसी, खुजली, पामा से पीड़ित, कुष्ठी, प्रमेहयुक्त, वातरक्त पीड़ित, मृदु कोष्ठ तथा मध्यम बल वाले मध्यम मात्रा लें।

बूढ़े, बालक, सुकुमार, सुख के अभ्यस्त, मंद जठराग्नियुक्त, पुराण ज्वर, कास पीड़ित, अल्पबलवान ह्रस्व मात्रा लें।

इसी प्रकार मृदुकोष्ठी २॥ से ५ तोले की मात्रा ३ दिन तक लें। मध्यम कोष्ठ वाले ५ से १० तोला ५ दिन तक और क्रूर कोष्ठी १० से १५ तोला ७ दिन तक लें। चरक का एक सूत्र और भी है—

'उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षेश्च मध्यमे।
जघन्यस्य पलार्द्धंव स्नेह स्वश्वौषधिषु च॥'

जिसके अनुसार उत्तम बल की मात्रा एक पल (४ तोला से ८ तोला तक) मध्यम बल की मात्रा ३ अक्ष (३ तोला से ६ तोला) और हीन बल भी मात्रा अर्ध पल (२ से ४ तोला) है।

स्नेह का अनुपान—

आचार्य ने चारों स्नेह के भिन्न भिन्न अनुपान बताये हैं। घृत के लिये यूष तथा वसा

और मज्जा के पश्चात् मण्ड का अनुपान कहा है। सुश्रुत में सभी स्नेहों के लिये एक साधारण ही अनुपान बताया है और वह है उष्ण जल। भल्लातक, तुवरक आदि उष्ण द्रव्यों के पश्चात् शीतल जल का प्रयोग करें।

स्नेहपान से पूर्व द्रव, उष्ण, अनाभिष्यन्दि नातिस्निग्ध द्रव्य सेवन करना चाहिए। स्नेह पान करने के पश्चात् पीने के लिये अथवा स्नान करने के लिए उष्ण जल का ही प्रयोग करना चाहिए। अधारणीय वेग धारण न करें और व्यायाम, परिश्रम, क्रोध, शोक, चिन्ता का त्याग, सीधी वायु में न रहें तथा ऊँचा न बोलें। इन नियमों का पालन स्नेह के सेवन के समय से दुगने समय तक करना चाहिए।

स्नेहन से लाभ—

दोष एवं दूषित द्रव्य या तो बाहर से जा कर अथवा शरीर में ही उत्पन्न हो कर नासिका में या किसी अन्य स्थान पर टिक जाते हैं। यह तब अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और आन्तरिक गहन मार्गों में ऐसे चिपक जाते हैं कि किसी भी औषधि का उन पर सीधा प्रभाव नहीं हो सकता। और किसी भी क्रिया की सफलता तभी हो सकती है जबकि इन्हें स्वस्थान से हटा कर विचलित कर दिया जाय और यह ही शक्ति स्नेहन में है।

स्नेहन ही उन गहन मार्गों में बैठे चिपके दोषों को क्लिन्न कर स्वस्थान से अलग कर देता है और अब औषधि अपना कार्य कर सकती है। इसी अवस्था में उनको नष्ट किया जा सकना सम्भव होता है। इसी दृष्टि से स्नेह का प्रयोग स्वेदनादि से पूर्व करना आवश्यक होता है।

स्नेहन धातु पोषक है। धातु पुष्टता से इन्द्रियों में शक्ति आती तथा दृढ़ता उत्पन्न होती है। इससे शरीर बलवान रहता है तथा रोग पास तक नहीं फटकते। इसी अवस्था में मनुष्य स्वस्थ कहलाता है। इसके अतिरिक्त स्नेहन से तेज उत्पन्न होता है और मनुष्य कान्तिवान होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्नेहन शोधन शमन तथा बृंहण के लिए अत्योपयोगी है। भावप्रकाश में लिखा है—

> दीप्ताग्नि शुद्धकोष्ठश्च पुष्ट धातुदृढेन्द्रिय।
> निर्जरो बल वर्णाढ्य स्नेहसेवी भवेन्नरे॥

उचित एवं अनुचित स्नेहन—

स्नेहन ठीक हुआ या नहीं यह जानना भी आवश्यक है। यदि विधि अनुकूल स्नेहन हुआ हो तो अपान एवं समान वायु का अनुलोमन होता है, जठराग्नि दीप्त तथा मल स्निग्ध एवं ढ़ीला रहता है। शरीर कोमल एवं चिकना रहता है। चित्त प्रसन्न, इन्द्रियाँ निर्मल तथा अंग हलके होते हैं।

यदि स्नेहन अल्प हुआ हो तो मल गाढ़ा एवं रूक्ष आता है और वायु का अनुलोमन नहीं होता। अग्निमान्द्य, कर्कशता तथा रूक्षता दिखाई देती है।

अति स्नेहन से पाण्डुता, गुरुता, जड़ता, अरुचि, एवं उत्क्लेश आदि होते हैं।

उपर्युक्त लक्षणों से क्रमशः स्नेहन का समयोग, हीन योग एवं अतियोग समझना चाहिए।

उपाय चिन्तन—

स्नेहन के विधिपूर्वक न होने से तन्द्रा, उत्क्लेश, आनाह, ज्वर, स्तम्भ, विसंज्ञता, कुष्ठ, कण्डु, पाण्डुता, शोथ, अर्श, अरुचि, तृष्णा, उदर रोग, संग्रहणी जड़ता, वाक् निग्रह एवं आम दोष आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

स्नेहन के अनुचित प्रकार के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले इन उपद्रवों में वमन, स्वेद, काल प्रतीक्षा (अर्थात् दोषों के समाप्त हो जाने तक भोजन न करना तथा जल न पीना) उपर्युक्त तन्द्रा आदि के बल को देख कर विरेचन करना, तक्रारिष्ट, रूक्ष पदार्थ, मूत्र एवं त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए। यह सभी इन उपद्रवों को नष्ट करने वाले हैं। इनके साथ-साथ तत्तत् रोग की उसकी अपनी चिकित्सा करनी चाहिए।

स्वेदन

जैसा कि हम आरम्भ में लिख आये हैं कि पंचकर्म कराने से पूर्व स्नेहन और स्वेदन कराना पड़ता है, अतः स्नेहन के पश्चात् स्वेदन की व्याख्या करने जा रहे हैं।

दोषानुसार स्वेदन—

आयुर्वेद के सिद्धान्त टिकाऊ हैं, स्थान और विषय भेद होने पर भी सिद्धान्त वही रहते हैं किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं आता। कहीं औषधि के गुण बताए गए तो भी वातादि के अनुसार, रोग के लक्षण कहे वह भी वातादि से तथा यहां भी वही बात स्पष्टतः मुखरित हो रही है—

'वातश्लेष्मणि वाते वा, कफे वा स्वेद इष्यतः।'

कहना न होगा कि यह सिद्धांत उन ऋषिओं ने कितनी साधना (research) के पश्चात् निश्चित किये होंगे । जिसका मूल इतना सुदृढ़ एवं सुनिश्चित् है, उस वृक्ष के डाल को पकड़ कर हिलाते हुए उसे तोड़ डालने की असफल कुचेष्टा करना वास्तव में ही हास्यास्पद है। विषय से दूर न जाते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि स्वेदन वातकफज (समस्त रूप में) वातज तथा कफज (व्यस्त रूप में) रोगों एवं अवस्थाओं के लिये हितकर होता है।

यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि वात कफ के अतिरिक्त पित्तज रोगों में स्वेदन कराने का निषेध स्वयं सिद्ध है। कारण यह है कि स्वेदन ऊष्मा की वृद्धि करता है और ऊष्मा पित्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं है (ऊष्मा नास्ति पित्त व्यतिरेकः) अतः समान समान की वृद्धि करता है। "सर्वदा सर्वभावानाम् सामान्यं वृद्धि कारणं" के सिद्धान्तानुसार पित्त में स्वेदन वर्जित बताया है। यहां यह भी स्पष्ट किए देते हैं कि सुश्रुत में एक सूत्र है—

'अन्यतरास्मिन् पित्त संसृष्टे द्रव स्वेद इति।'

अर्थात् जब पित्त भी मिलित रूप में हो उस अवस्था में हम द्रव स्वेद करा सकते हैं। इसके कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि वात अथवा कफ के साथ अल्प मात्रा में पित्त भी सम्मिलित हो और स्वेदन की आवश्यकता हो तो द्रव स्वेद करावें। कारण यह कि द्रव सौम्य होने से अन्य स्वेदों की भांति उष्णता को इतना नहीं बढ़ाता।

त्रिविध अवस्थाएें—

चरक में रोग, ऋतु, रोगी के बलाबल तथा देश के अनुसार तीन प्रकार का स्वेदन बताया है—

१—मृदु स्वेद। २-मध्यम स्वेद ३—महास्वेद।

मृदु स्वेद दुर्बल रोग, दुर्बल शीत ऋतु तथा मृदु अङ्गों (अण्ड कोष, हृदय, नेत्रादि) पर कराया जाता है। आचार्य गंगाधर जी ने लिखा है कि वस्त्र कमलपत्रादि को रखकर स्वेद करें जिससे स्वेद मृदु हो जाय और किसी प्रकार से हानि न पहुंचाये। मध्यम ऋतु, रोग एवं बल के होने पर तथा वंक्षण प्रदेश में मध्यम स्वेद करना चाहिए।

रोग के अत्यधिक बलवान होने पर, अत्यधिक शीतऋतु में तथा शरीर के शेष अङ्गों (मृदु मध्यम स्वेदनीय अङ्गों के अतिरिक्त) पर महास्वेद करना चाहिए। यहां यह बताना आवश्यक है कि 'महास्वेद' का यह अर्थ नहीं है कि रोगी को जला देवें। सदैव ध्यान रहे कि कोई भी स्वेद असह्य नहीं होना चाहिए। यहां महास्वेद केवल तापांश (temperature) का द्योतक है।

आशयगत दोषानुसार—

यद्यपि यह सिद्धांत सभी स्थानों पर समान रूप से लागू होता है कि पहले उस आशय के प्राकृतिक दोष को शांत करना चाहिये और फिर आगन्तुक को शमन करना चाहिए। लिखा भी है—

'आगन्तु शमदोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य च।'

इसी बात को आचार्य सुश्रुत ने एक सूत्र में बताया है—

'आमाशयगते वाते, कफे पक्वाशयाश्रिते।
रूक्ष पूर्वो हित: स्वेद: स्नेह पूर्वस्तथैव च ॥'

अर्थात् यदि वात आमाशयगत हो और कफ पक्वाशयगत हो तो क्रमशः रूक्षपूर्व और स्नेहपूर्व स्वेद देना चाहिए। आमाशय कफ का स्थान है अतः प्रथम कफ शमनार्थ रूक्ष और पक्वाशय वायु का स्थान होने पर वात शान्त्यर्थ स्नेहपूर्व स्वेद का विधान बताया है। यहां ध्यान रखने की एक विशेष बात है कि स्थानस्थ बोझ को शान्त करते हुए आगन्तुक दोष की वृद्धि न हो।

स्वेद भेद्—

मुख्यत: स्वेद दो प्रकार का होता हैं—

१. साग्नि स्वेद २. निराग्नि स्वेद

दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो—

१. सर्वाङ्गगत २. एकांगगत

पुन: दो प्रकार के अन्य भेद भी हैं—

१. स्निग्ध स्वेद २. रूक्ष स्वेद

अस्तु, इस प्रकार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से भिन्न भिन्न भेद किये गये हैं। प्रथम सुश्रुतोक्त चार प्रकार के स्वेदों का वर्णन करते हैं।

साग्नि स्वेद के सुश्रुतोक्त भेद—

सुश्रुताचार्य ने साग्नि स्वेद चार प्रकार के बताए हैं और कहा है 'अत्र सर्व स्वेद विकल्प विरोधः।' उनका नामांकन इस प्रकार किया है—

१. ताप स्वेद, २. उष्म स्वेद, ३. उपनाह स्वेद, ४. द्रव स्वेद।

इन चार के अन्तर्गत ही उन पर लिखे सूत्र के अनुसार सम्पूर्ण स्वेद के भेदों का अन्तर्भाव होजाता है। यह कैसे ? इसको हम आगे स्पष्ट करेंगे।

१–ताप स्वेद–हाथ,कांसी का कटोरा,तवा,खीपड़ा, बालू अथवा वस्त्र रूई आदि को गरम कर सेकें अथवा खदिर के कोयले की आग के आगे रोगी को बिठा कर सेक करने दें। यह ताप स्वेद होगा। खदिर का नाम यहां उपलक्षण मात्र है। निश्चित रूप से केवल खदिर के ही कोयले हों यह बात नहीं, हां यह बात ध्यान रहे कि वह आग किसी प्रकार भी स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद न हो। यह ताप स्वेद पूर्णतः रूक्ष स्वेद है, इसका प्रयोग आचार्य ने कफ शान्त करने के लिये बताया है।

२–ऊष्म स्वेद–कपाल, ईंट, पत्थर, लोहे का गोला आदि को अग्नि समान गर्म करके उन पर पानी डालें और इसके वाष्प से स्वेदन करें। अथवा दूध,मांसरस, क्वाथादि को घड़े में भर दें और इससे निकलती हुई भाप से सीधे ही या कोई नली लगाकर सेक लेवें। यह ऊष्म स्वेद होता है।

यदि देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि यह स्वेद रूक्ष भी है और स्निग्ध भी। यहां स्निग्ध का भाव आर्द्र (wet) से ही है। इसका प्रयोग भी आचार्य ने कफ के नाश के लिए ही बताया है।

३–उपनाह स्वेद–'वातनाशक द्रव्यों की जड़ के साथ खट्टे द्रव्यों को नमक डालकर पीस लेवे और ऊपर से घी डालकर गरम कर लें और सुहाते सुहाते सेक करें।

इन सुश्रुतोक्त शब्दों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि नित्य प्रति प्रयोग होने वाली 'पुल्टिस' लूप्सी आदि इसी प्रकार पर आधारित हैं। साधारण रूप से जिस लूप्सी का प्रयोग किया जाता है उसमें आटा, हल्दी, तैल ही मुख्य उपादान होते हैं। उपनाह स्निग्ध स्वेद है। इसका प्रयोग वात नाशक बताया है।

४-द्रव स्वेद–अरण्डादि वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ को गरम गरम कढ़ाई अथवा टब आदि में भरदें और आवश्यकतानुसार ताप पर रोगी को उसमें बिठा कर सेक करें, यह द्रव स्वेद है। इसका प्रयोग उस अवस्था में बतलाया है जब कि वात अथवा कफ के साथ पित्त भी संलग्न हो।

इस प्रकार सुश्रुत संहिता में चारों प्रकार के स्वेद का वर्णन किया हुआ है। यह चारों ही साग्नि स्वेद हैं ; निराग्नि नहीं।

चरकोक्त त्रयोदश साग्नि स्वेद—

स्वेद के भेदों का वर्णन करते हुए हम चरकोक्त तेरह प्रकार के साग्नि स्वेदों की उपेक्षा नहीं कर

सकते। यद्यपि हम ऊपर लिख आए हैं कि सुश्रुतोक्त चार प्रकार के स्वेदों में ही चरक के स्वेद के सभी भेदों का समावेश हो जाता है तो भी चरकोक्त स्वेदों की अपनी विशेषता है और इस विषय में उनको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अतः हम इन तेरह प्रकार के स्वेदों का वर्णन करने जा रहे हैं—

१-शङ्कर स्वेद–तिल, उड़द, कुल्थी, काञ्जिकादि द्रव्यों के पिण्डों को उष्ण कर, वस्त्र में रखकर या बिना वस्त्र में ही रखे जो स्वेद किया जाता है, उसे हम शङ्कर स्वेद कहते हैं। इन पिण्डों का स्वेद शरीर से छू कर किया जाता है। यह सुश्रुतोक्त उपनाह स्वेद के अन्तर्गत आता है।

२-प्रस्तर स्वेद–गेहूँ,उड़द,चावल अथवा वेशवार, यवागू आदि को गरम कर स्वेद्य पुरुष के प्रमाण के अनुसार फैलाकर श्वेत एरण्ड, लाल एरण्ड अथवा मदार के पत्ते बिछावें। इस पर स्निग्ध देही मनुष्य लेट जाय और साथ ही साथ रेशम या ऊन का कपड़ा ओढ़ लें। इस प्रकार से स्विन्न कराने वाली विधि प्रस्तर स्वेद कहलाती है। यह विधि भी 'उपनाह' का ही एक रूप है।

३-नाड़ी स्वेद–एक हांडी या घट लें। उसमें केवल एक ही छिद्र हो, जिसमें से नाड़ी लगाई जा सके। इसमें मूल,फल,पत्र, अंकुर,जल,घृत, मांस रस आदि जो भी अभिप्रेत हों डाल लें। इस घट के उस छिद्र में एक विशेष नली लगावें।

इस नली की लम्बाई कोई निश्चित तो नहीं होती। चिकित्सक जितनी अपेक्षित समझे उतनी नली लेवें। चरक में एक सूत्र दिया है जिसके अनुसार एक व्याम अथवा अर्द्ध व्याम लम्बी नली लेने को कहा है जिसकी परिधि मूल प्रान्त पर चतुर्थ भाग हो। यह चतुर्थ भाग लम्बाई के अनुपात से है। मूल प्रान्त से चलती हुई यह नली क्रम होते होते उस परिधि से आधी रह जानी चाहिये।

इस नली को बीच में दो-तीन स्थानों पर मोड़ कर रखना चाहिए और यदि नली में कोई छिद्र हो तो एरण्ड पत्रादि से बन्द कर रखा हो।

इस नली विशेष को उस पात्र के छिद्र में लगाकर वहां सन्धान कर देवें। इस प्रकार हांडी में नली लगा एक यन्त्र बन जायगा। इस हांडी को आग पर रखे जिससे इसमें पड़ा द्रव्य उबलने लगे। अब उबलने से जो भी वाष्प निकलेगी वह नली में आयेगी और वह रोगी के अभिप्रेत अङ्ग पर छोड़ी जाए।

वाष्प छोड़ते समय ध्यान रखना चाहिए कि स्वेद्य पुरुष के उस स्थान पर कोई वस्त्र आदि अवश्य हो। कई बार अनुभव न होने के कारण ऐसा देखने में आया है कि रोगी के शरीर पर इस वाष्प की उष्णता के कारण छाले पड़ जाते हैं। प्रायः विधान यह है कि स्वेद्य व्यक्ति को चारपाई पर एक वस्त्र बिछाकर लिटा दें और ऊपर से एक कम्बल उढ़ा दें। अब चारपाई के नीचे उस नली से वाष्प छोड़ें, इससे स्वेदन हो जायगा। चारपाई के अतिरिक्त बेंत की कुर्सी का भी प्रयोग कर सकते हैं।

स्वेदनार्थ दुग्धादि अथवा क्वाथादि क्या वस्तु हो, यह रोग एवं रोगी के अनुसार अलग अलग होगी। यह ऊष्म स्वेद है।

४. परिषेक-स्नेह से अभ्यंग किए हुए व्यक्ति के देह अथवा अंग को कपड़े से ढांक कर फल-मूल आदि के सुखोष्ण क्वाथ से कुम्भी (छोटे मुख वाला पात्र) वर्षुलिका (एक प्रकार का फुहारा) अथवा पुनाडी को भर कर यथाविधि परिषेचन करना चाहिए। इसका प्रयोग केवल वातिक तथा वात प्रधान संसर्गज अवस्थाओं में किया जाता है। यह सुश्रुत के अनुसार द्रव स्वेद है और इसमें द्रव का सीधा सम्पर्क शरीर से होता है।

५. अवगाह–किसी कोष्ठक में जिस की ऊँचाई उस में बैठे मनुष्य के नितम्ब तल से लेकर कण्ठ तक की ऊँचाई के बराबर हो और चौड़ाई भी उतनी ही हो, जिसका अनुमान लगभग ३६ अंगुल का होगा, वातहर क्वाथ, दूध, तेल, घृत, मांस रस, गर्म जल आदि जो भी जरुरी हों भर देवें। अब इस कोष्ठक में स्निग्ध

हुए रोगी को बिठाए और उस समय तक बैठा रहने दें जब तक ठीक प्रकार से पसीना न हो जाए। यह स्मरणीय है कि इस कोष्ठक में जो भी द्रव हो उस का तापांश रोग एवं रोगी के अनुसार ६५ से १०० डिग्री तक हो। यह भी 'द्रव स्वेद' है।

६. जेन्ताक स्वेद-यदि जेन्ताक स्वेद की कल्पना पर विचार करें तो तीन मुख्य बातें स्पष्ट दिखाई देंगी। उनमें प्रथम १६ अरत्नि व्यास का एक गोल कूटागार (कमरा) होगा जो वायु सञ्चार के लिए अनेक झरोखों से युक्त होगा। कूटागार के स्थान एवं द्वार आदि का विशेष विधान आचार्य ने बहुत ही स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। कमरे में दीवार के साथ ही साथ एक अरत्नि चौडी और इतनी ही ऊँची पिंडिका मिट्टी से बनावे जो द्वार पर्यन्त (द्वार को न घेरती हुई) हो और तीसरे उस कूटागार के बीचोंबीच चार हाथ परिमित स्थल पर एक मिट्टी का अंगार-कोष्ठक (अंगीठी) पुरुष की ऊँचाई के सामन ऊँची तथा छिद्रों और ढकने युक्त बनावे। यह तीन हुए जेन्ताक स्वेदनीय यंत्र के अंग। अब इस का प्रयोग विधान देखिए।

प्रथम उस अंगारकोष्ठक में अच्छी प्रकार का ईंधन डाल आग जलावें। जब धूआं आदि निकल जाय और वह कूटागार स्वेदन योग्य तापांश से युक्त जान पड़े उस समय स्वेद्य पुरुष को निम्न आदेश देकर कूटागार में प्रवेश करायें ! "इस कूटागार में प्रवेश कर पिंडिका पर चढ़ना और जिधर आराम मिले उस ओर लेटना या बैठना। जब अभिष्यन्द (लिप्तकाय) से रहित समझे, पसीना निकल जाने से सम्पूर्ण स्रोत्र खुल जांय और हलकापन अनुभव हो, जड़ता, सुप्ति एवं वेदना मिट जाए उस समय पिंडिका के साथ साथ बाहर निकलना, पिण्डिका को कदापि मत छोड़ना अन्यथा मूर्च्छा आदि के कारण बाहर निकलना सम्भव न होगा। बाहर निकलने पर संताप एवं क्लम आदि मिट जाने पर कोसे जल से परिसेचन या स्नान करना।

इस जेन्ताक स्वेद के स्थान निर्माण और विधान की कल्पना को देखते हुए स्पष्ट हो रहा है कि उस समय अवश्य ही इस कला के दक्ष चिकित्सक विद्यमान थे।

७-अश्मघन स्वेद—एक पत्थर की शिला को जिस की लम्बाई और चौड़ाई स्वेद्य पुरुष के समान हो अंगारे आदि से तप्त कर अंगारों को हटाकर उष्ण जल से सिंचन करें। इस शिला पर रेशम या ऊन की चादर बिछा स्निग्ध स्वेद्य पुरुष को उस पर लिटायें और ऊपर से रेशम का या ऊन का वस्त्र उढ़ा देवें। इस प्रकार हुआ सुखपूर्वक स्वेद एक प्रकार से उपनाह समझना चहिए।

८-कर्षू स्वेद-एक कर्षू स्वेद (गर्त) इस विधान से खोदा जाए जो ऊपर से कम चौड़ा और अन्दर से ज्यादा चौड़ा हो। इसे धधकते हुए अंगारों से भर दीजिए। इस पर बिछी हुई शैय्या पर स्वेद्य पुरुष को लिटावें। यह ताप स्वेद हैं।

९-कुटी स्वेद-एक गोल कुटी बनावें जिसका विस्तार एवं ऊंचाई अधिक न हो। दीवार बिना झरोखे और खिड़की के बनावें। दीवार का भीतरी भाग कुष्ठ आदि उष्ण वीर्य सुगंधित द्रव्यों से लिपा हुआ हो। इस कुटी के बीचों बीच एक शैया बिछाएं जिसके चारों ओर निर्धूम अंगारों से भरी अंगीठियाँ रखी हों। इस शैया पर कम्बल, रेशमी वस्त्र अथवा मृगछाला आदि बिछाकर स्वेद्य पुरुष को सुखपूर्वक स्वेदन करावें। यह ताप स्वेद के समान है।

१०-भूस्वेद-पुरुष की लम्बाई चौड़ाई के समान साफ सुथरी समतल भूमि पर जो खदिर आदि की लकड़ियों से जलाकर तप्त हुई हो-और राख साफ कर दी गई हो-और जल कांजी अथवा दुग्ध से सेचन की हो, कम्बल चादर आदि बिछाकर स्निग्ध हुए पुरुष को लिटावें और ऊपर से भी कम्बल आदि ओढ़ा दें। यह भी अश्मघन की तरह उपनाह स्वेद है।

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, ... B. Sc., ... A. M. B. S.

कुछ वैद्य यह नहीं जानते !!

हाँ भाई, तुमको महान कष्ट है, दुबले-पतले होगये हो, तुमसे रोया भी नहीं जाता, हरे-पीले दस्त तंग करते हैं। दाँत निकलते समय तुम्हें अनेक व्याधियाँ परेशान करती हैं। पर इसमें तुम्हारा बस क्या है? क्योंकि इसका उपाय तुम्हारी माँ या तुम्हारा गृह-चिकित्सक नहीं जानता।

पर मेरे साथ एसी बात नहीं है। मेरी माँ और मेरे वैद्य यह भली प्रकार जानते हैं कि **"कुमार कल्याण घुट्टी"** के नियमित सेवन से हमारी सभी व्याधियाँ नष्ट होकर हम सुन्दर-सुडौल बन जाते हैं।

क्या यह बात आपके वैद्य को कोई नहीं सुझाता?

बाज़ार में विज्ञापन के आधार पर बिकने वाली निरर्थक घुट्टियों को अपने होनहार बालकों को सेवन करा कर उन्हें परेशान न कीजियेगा। **कुमार कल्याण घुट्टी** गहन अध्यन एवं अनुभव के फल स्वरूप बालकों के समस्त रोग नाशार्थ निर्माण की गई है, और आज तो उसके गुणों की सर्व... दुंदुभी पिट गई है। इसका प्रयोग भी "बाल रोग चिकित्सा" (मूल्य ...) नामक पुस्तक में स्पष्ट दिया गया है। अपने रोगीले बच्चे को १-२ मा... नियमित सेवन करा कर चमत्कार देखिये तो, उसके स्वास्थ्य में ज़मीन आसमान का अन्तर पायेंगे।

एक मात्र निर्माता

धन्वन्तरि कार्यालय बिजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र मासिक पत्र

भाग ३४

सम्पादक :
आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग
ज्वाला प्रसाद अग्रवाल B.Sc.

अङ्क ७

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़।
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc. दाऊदयाल गर्ग A. M. B. S.

बनौषधि-विशिष्टाङ्क

श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B. A., आयुर्वेदाचार्य से कुछ समय पूर्व हमने "बनौषधि रत्नाकर" नामक विशाल ग्रन्थ लिखवाया था तथा उसे उत्तम कागज पर सचित्र हूबहू चित्रों के साथ सुन्दर ढंग से प्रकाशित करने का विचार था लेकिन कागज की मंहगाई तथा अन्य अनेक असुविधाओं के कारण उस ग्रन्थ को प्रकाशित करना सम्भव नहीं हुआ। इधर अनेक ग्राहकों का आग्रह था कि धन्वन्तरि का विशेषांक बनस्पति विषय पर प्रकाशित किया जाय। अतएव हमने निश्चित किया है कि 'अ' से 'क' तक की ११२ बनौषधियों का सचित्र वर्णन, उपयोग, विविध प्रयोग आदि से सुसज्जित आगामी विशेषांक प्रकाशित किया जाय जिसकी विस्तृत सूचना पिछले अङ्क में प्रकाशित की गई है।

विद्वान एवं कृपालु लेखकों से

—निवेदन—

१—इस विशेषांक का सम्पूर्ण मैटर तो पहिले से तैयार ही है, उसे संक्षिप्त सारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना है जिसे श्री. पं. कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी कर रहे हैं। आपने यदि इन ११२ बनस्पतियों में से यदि किसी २-१ बनस्पति का कोई चमत्कारिक अनुभव प्राप्त किया है तो उसे अवश्य लिख भेजियेगा। आपके उस अनुभव को सहर्ष प्रकाशित किया जायगा।

२—हम इन सभी बनस्पतियों के सुन्दर हूबहू लेकिन एक रङ्ग के चित्र प्रकाशित करना चाहते हैं। इन चित्रों के संग्रह करने या निर्माण करने में यदि आप सहयोग दे सकें तो हमको पत्र अवश्य लिखें। हम प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन जैसे चित्र होने चाहिए वैसे अभी प्राप्त नहीं कर सके हैं। आशा है आप सभी इस विषय में हमको अवश्य सहयोग देंगे।

यह विशेषांक

अपने विषय का अति उपयोगी साहित्य होगा। गागर में सागर भर दिया जायगा। श्री त्रिवेदी जी अनुभवी एवं वयोवृद्ध लेखक हैं। आपके लेखों का रसास्वादन हमारे पाठक धन्वन्तरि के प्रारम्भिक काल से करते रहे हैं। आपने अनेक ग्रन्थों से सभी बनस्पतियों पर बड़े विस्तार से उपयोगी साहित्य अपने अप्रकाशित ग्रन्थ "बनौषधि रत्नाकर" में लिखा है। उस सम्पूर्ण विस्तारयुक्त साहित्य को विशेषांक के रूप में प्रकाशित करना असम्भव है अतः उसका सार भाग, सभी उपयोगी विषय को लेते हुए पुनः लिखा जा रहा है जो पाठकों के लिए अलब्ध एवं अति उपयोगी होगा। आप इसे अवश्य पसन्द करेंगे इसमें किसी प्रकार भी सन्देह नहीं।

बिजली की मशीन

(Medico-Electric machine)

*** नवीन प्रकार की टिकाऊ व प्रभावशाली ***

अभी तक जो बिजली की मशीन हम ग्राहकों को सप्लाई कर रहे थे वे दिल्ली से तैयार कराकर मंगाते थे। उनमें यह कमी थी कि थोड़ा सा झटका लग जाने से कनैक्शन अस्त-व्यस्त हो जाते थे तथा जल्दी ही बेकार हो जाती थीं। अब हमने स्वयं अपने यहां नवीन ढङ्ग से मशीन तैयार करना प्रारम्भ कर दिया है। इस मशीन की विशेषताऐं—

१—इसके मुख्य पुर्जे बिजली फैक्टरी कलकत्ता से निर्माण कराकर मंगाए जाते हैं, अतएव—

२—यह मशीन अधिक टिकाऊ तथा पूर्ण विश्वस्त है।

३—इसमें चार सैल (टार्च में पड़ने वाले) डाले जाते हैं, अतएव यह मशीन अधिक ताकत की है।

४—यह मशीन २ सैल से भी काम में ली जा सकती है, ४ सैल की ताकत यदि रोगी सहन न कर सके तो २ सैल लगाकर व्यवहार कर सकते हैं।

५—यह मशीन सुन्दर आकर्षक तथा अनेक कष्टसाध्य रोगों में चमत्कारिक लाभ करने वाली है, अतएव--

६—यह मशीन निःसंदेह बहुत समय तक काम देने वाली है।

७—आपकी डिस्पेंसरी की शोभा एवं रोगियों के लिये आकर्षक वस्तु है।

इस मशीन को मंगाकर आपको पूर्ण सन्तोष लाभ होगा, यह हम गारन्टी करते हैं। व्यवहार विधि पुस्तक मशीन के साथ फ्री भेजी जायगी।

इसका मूल्य—

बिना सैल की इस मशीन का मूल्य ३५) है। सैल आप बाजार से लेकर स्वयं डाल लीजियेगा। ४ सैल रखने से बजन बढ़ता है। यदि सैल साथ मंगाना चाहें तो १।।) पृथक् देना होगा। पोस्ट पैकिङ्ग आदि व्यय पृथक् देने होंगे। आर्डर के साथ ५) एडवांस मनियार्डर से अवश्य भेजें।

—किसी प्रकार का संदेह न करते हुए मशीन शीघ्र मंगावें—

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

हमारी सफल पेटेंट औषधियां

मकरध्वज वटी
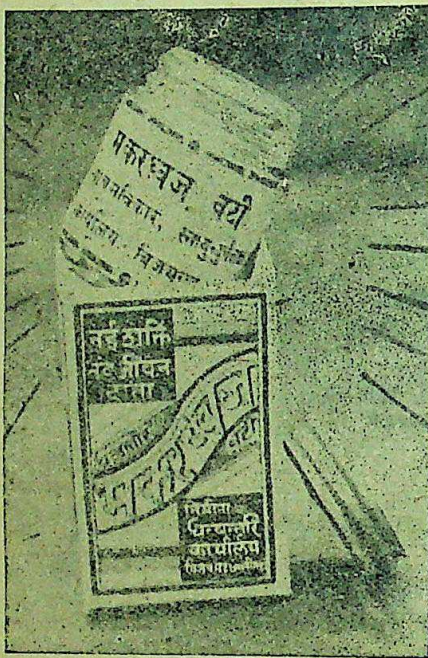
ये गोलियां अनुपम शक्तिशाली हैं। शरद ऋतु में सेवन करें और अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करें। यह औषधि आपके समूचे शरीर को शक्ति देने वाली है। आप हर समय शारीरिक सक्रियता के लिए अधिक जवानी, अधिक शक्ति, और उत्सुकता महसूस करेंगे। समय से पूर्व बुढ़ापा आने से रोकने के लिये इनका प्रयोग अवश्य करें। ४१ गोलिश्रों की एक शीशी का मूल्य केवल २.६२ रु.

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिए सर्वोत्तम व मीठी घुटी) हमने बड़े परिश्रम से आयुर्वेद में वर्णित और बालकों की रक्षा करने वाली दिव्य औषधिश्रों से घुटी तैयार की है। इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नहीं होते किंतु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालकों को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है, रोगी बालक के लिए संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त, में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ, खांसी, पसली चलना, दूध पलटना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा ताजा और बलवान हो जाता है, पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य एक शीशी (आधा औंस) ०.३७, ४ औंस की सुन्दर शीशी बक्स में २.०० रु०

कमिनीगर्भरक्षक—बार बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चों का छोटी आयु में ही मर जाना, इन भयंकर व्याधियों से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित हैं। यदि आप कामिनीगर्भरक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन करावें तो न गर्भपात होगा और न गर्भस्राव। बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। २ औंस की शीशी २.०० रु.

वातारि वटी—वातरोग नाशक सफल और सस्ती दवा है। १-१ गोली प्रातः सांय गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वातव्याधियां नष्ट होती हैं। मू० १ शीशी [५० गोली] २. ००रु. मात्रा

करंजादि वटी—'करंज' (मलेरिया) के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके संयोग से बनी ये गोलियां प्राकृतिक ज्वर (मलेरिया) के लिए उत्तम प्रमाणित हुई हैं। सस्ती भी हैं। मूल्य १ शीशी (५० गोली) १.०० रु.

कर्णामृत तैल—कांन में सांय-सांय का शब्द होना, दर्द होना, कान से मवाद बहना आदि कर्ण रोगों के लिए उत्तम तैल है। कान को पिचकारी से स्वच्छ करने के बाद इस तैल की २-३ बूंद दिन में तीन बार डालें। मूल्य १ शीशी [आधा औंस] ०.६२ रु०

ज्वरारि—कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रव को नष्ट करती है। मूल्य-१० मात्रा की शीशी १.०० रु. २० मात्रा की शीशी १.७५ १ बोतल ३.२५

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि। वांसा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य-२० मात्रा की शीशी १.०० रु. ५ मात्रा की शीशी ०.३७ , १ पौंड ३.५०

पायरिया मंजन—पायरिया रोग बहुत प्रचलित है। यह अन्य अनेक रोगों को भी पैदा करता है। अतएव हर व्यक्ति को चाहिए कि इस रोग की थोड़ी भी उपेक्षा न करे। इस मंजन के नित्य व्यवहार करने से दांत चमकीले होते हैं और दांतों से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि सभी कष्ट दूर होते हैं १ शीशी ०.५०

अग्निबल्लभ क्षार—जब जठराग्नि द्वारा आहार पच जाता है तब ही रस-रक्तादि शारीरिक धातु बनकर शरीर को बलवान् बनाते हैं। लेकिन आज जिधर देखिये उधर यही शिकायत सुनने में आती है कि हमारी अग्नि कमजोर है, खाना हजम नहीं होता, दस्त साफ नहीं उतरता, भूख नहीं लगती इत्यादि इत्यादि। अग्निबल्लभक्षार के सेवन से अग्नि प्रज्वलित होती है, खाया हुआ खाना हजम होता है। भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारों का आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलना, अपान वायु का बिगड़ना इत्यादि सामयिक शिकायतें दूर होती हैं। परदेश में रह कर सेवन करने वालों को जल दोष नहीं सताता। गृहस्थों के लिये संग्रह करने योग्य महौषधि है क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत देखो चट अग्निबल्लभ क्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ हो जाती है। १ शीशी (२ औंस) का मूल्य १.००

नेत्रबिन्दु—दुखती आंख के लिये लिये अत्युपयोगी प्रसिद्ध महौषधि मूल्य ½ औंस ०.८७ ¼ औंस ०.५०

शिरोविरेचनीय सुरमा—जिनको बार बार जुकाम हो जाता है या पुराना शिर दर्द हो, जुकाम रुकने से उत्पन्न शिरदर्द हो इस सुरमा को सलाई से हल्का हल्का नेत्रों में आंजें। थोडी देर में आंख व नाक से बलगम निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होंगे। (पुराने शिर दर्द में पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र रस भी साथ में सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य १ माशे की शीशी ०.३१

कासहर वटी—हर प्रकार की खांसी के लिए सस्ती उत्तम गोलियां हैं। दिन में ५-७ बार अथवा जिस समय खांसी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुंह में डाल रस चूसें, गला व श्वास-नली साफ होती है। कफ बन्द हो जाता है। मूल्य १ शीशी (१ तोला) ०.३१

निम्बादि मलहम—नीम रक्तशोधक व चर्म रोग नाशक है। इसीके प्रयोग से बनी यह मलहम फोड़ा-फुंसी व घावों के लिये अत्युत्तम है। निम्ब क्वाथ से घाव या फोड़ों को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र भरते हैं। मूल्य एक शीशी ½ औंस ०.३१, २० तोले का एक पैक ५.००

बल्लभ रसायन—किसी भी रोग में किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिए अव्यर्थ महौषधि है। मूल्य १ शीशी (२ औंस) १.००

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट शीतल व पाचक चूर्ण, एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजवाब है। १ शीशी (२ औंस) ०.५०, छोटी शीशी (१ औंस) ०.३१

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

विषय सूची

धन्वन्तरि

सम्पादक—
देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc.
दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

वार्षिक मूल्य ५.५०
भाग ३४ अङ्क ७

प्रकाशक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० १-४०

भाग ३४ अङ्क ७	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र	जौलाई १६६०

योग-दान

अरे वैद्य, अब बढ़कर आओ जीवन के मैदान में।
अपना अपना योग-दान दो धन्वन्तरि निर्माण में ॥

बिखर गया आलोक देख लो स्वतन्त्रता का भोर है।
नया गीत औ' नई जीत अब दिखलाती सब ओर है ॥

निर्धनता रुजता से गर्हित. कैसा भारत घोर है।
कुछ उत्थान किया पर तुलना में निश्चय अति थोर है ॥

नगर और ग्राम में विकसे आयुर्वेद महान् हो।
ऐसा योग प्रदान करो जो विस्मित पूर्ण जहान् हो ॥

हृत्तन्त्री का तार मिलाओ, उन ऋषियों के गान में।
वद्यराज अब बढ़कर आओ जीवन के मैदान में ॥

—श्री जगदम्बाप्रसाद महदेवा, अरौल (कानपुर)

वाजीकरणम्

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री

ईश्वरीय सृष्टि को मूलतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—१-कर्मयोनि, २-भोगयोनि। कर्म में केवल मानव जाति की ही गणना हो सकती है शेष सारी सृष्टि भोग योनि में अन्तर्भूत होजाती है। इस कर्म योनि में उत्पन्न मानव को चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की उपासना हमारे धर्म शास्त्रों के अनुसार करनी पड़ती है नहीं तो जन-समुदाय "ज्ञानेन हीना पशुभिःसमानाः" आदि आदि कहकर अनेक प्रकार के व्यङ्ग कसा करता है। जहां तक इन्द्रिय सम्बन्धी सुख का प्रश्न है वह तो मनुष्य तथा पशुओं में समान रूपेण दिखाई देता है, परन्तु इस माने में मनुष्य भी कहीं पशुवद् व्यवहार न करने लग जाय अतः श्री कृष्ण ने गीता अध्याय ७ श्लोक ११ में कहा है—"धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥" हे अर्जुन मैं वह काम हूं जो सब प्राणियों में धर्म (शास्त्र) के अनुकूल हो। श्री कृष्ण का अर्जुन के प्रति यह बहुत बड़ा संकेत था और निम्नलिखित श्लोक (अर्जुन की शंका) का समाधान भी था—

> अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
> स्त्रीषुदुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः॥ गीता

हे कृष्ण इस अधार्मिक युद्ध से पराजित घरों के कुल की स्त्रियां अत्यधिक दूषित हो जायेंगी और इनके दुष्ट होने के कारण वर्णसंकर सन्तान पैदा होंगी। अस्तु, अब हम यहां पर वाजीकरण शब्द का आयुर्वेदीय विवेचन आरम्भ करते हैं।

वाजीकरण शब्द का व्युत्पत्ति—वाजः (वेगः) अस्य अस्तीतिवाजी कामवेगवान्। अवाजी वाजी क्रियते अनेनइति वाजीकरणम्। अर्थात् जिन औषधि द्रव्यों से कामवेगरहित पुरुष को भी काम क्रिया समर्थ बना दिया जाय और जिसके द्वारा पुत्र सन्तानोत्पत्ति हो उस विधान को वाजीकरण कहते हैं। सर्वोत्तम एवं नैसर्गिक वाजीकरण—

> धर्म्यंयशस्यमायुष्यं लोकद्वय रसायनम्।
> अनुमोदामहेब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम्॥
>
> —वाग्भट्ट

यद्यपि आयुर्वेद में विविध प्रकार के वाजीकरण योगों का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनका सेवन उसी स्थिति में करना चाहिए जब मनुष्य किसी भी कारणवश अस्वस्थ हो जाय नहीं तो उत्तम वाजीकरणार्थ ब्रह्मचर्य सेवन करे, क्योंकि वह धर्म यश एवं आयु को बढ़ाने वाला तथा दोनों लोकों में सुख देने वाला है। इसलिये हम सर्वाङ्गीण शुद्ध ब्रह्मचर्य का ही स्वागत करते हैं क्योंकि गृहस्थावस्था में एक पत्नीव्रत को ही ब्रह्मचर्य कहा है।

वाजीकरणोपयोग प्रशंसा—

> वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमात्मवान्।
> तदायत्तौहिधर्मार्थौ प्रीतिश्च यशएवच॥
>
> —चरक

> अल्पसत्वस्यतुक्लेशैर्बाध्यमानस्य रोगिणः।
> शरीरक्षयरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते॥
>
> —वाग्भट

> स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम्।
> योषित् प्रसंगात् क्षीणानां क्लीवानामल्प रेतसाम्॥
> विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम्।
> नृणां च बहुभार्याणां योगा वाजीकराःहिताः॥
>
> —सुश्रुत

जितेन्द्रिय पुरुष प्रतिदिन वाजीकरण द्रव्यों का सेवन करे क्योंकि धर्म और अर्थ प्रीति (काम) और यश उन्हीं के अधीन हैं। आत्मवान् शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि जो पुरुष आत्मवान् न

होगा वह अवश्य वाजीकरण पदार्थों का सेवन करके व्यभिचार करने लगेगा। कमजोर, दुःखों से पीड़ित, रोग मुक्ति के पश्चात् शरीर का ह्रास हुआ हो उसकी पूर्ति या अभिवृद्धि के लिये वाजीकरण का प्रयोग विहित है। अकाल में जो वृद्ध होगये हों तथापि सन्तानोत्पत्ति के लिये मैथुन करना चाहते हों, अथवा स्त्रियों के प्रिय होना चाहते हों (आप बहुत से उन घरों में देखेंगे जहां वृद्धावस्था में केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह किया हो किन्तु वे स्वयं मैथुन करने में असमर्थ होगए हों। उनकी स्त्रियां चिड़चिड़ी स्वभाव की होजाती हैं फलतः वे व्यभिचार के लिए बाध्य हो जाती हैं। उनके पतियों को चाहिए कि वे वाजीकरण द्रव्यों का सेवन करके अपनी स्त्रियों के बल्लभ बनें) जो अत्यन्त मैथुन करने से क्षीण होगए हों, और वीर्य के कम होने के कारण जिनमें नपुंसकता आ गयी हो, (नपुंसक सात प्रकार के होते हैं उनमें सातवां षण्ढ नामक नपुंसक वीर्यरहित होता है अतः वह असाध्य होता है, कभी कभी "द्वेष्यस्त्री सम्प्रयोग" अर्थात् अपनी इच्छा के विपरीत स्त्री से दैवात् संयोग होजाने से भी नपुंसकता आजाती है)। विलासी एवं धनिक जो सुरूप तथा युवा हों और जिनकी अनेक स्त्रियां हों उनके लिए वाजीकरण पदार्थ लाभदायक होते हैं।

वाजीकरण सेवन योग्य अवस्था--

नरो वाजीकरान् योगान् सम्यक् शुद्धोनिरामयः।
सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वन्तु षोडशात् ॥
आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति।
न च वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च ॥

स्वस्थ पुरुष वमन विरेचन आदि से शुद्ध होकर सोलह वर्ष से सत्तर (७०) वर्ष की अवस्था तक वाजीकरण योगों का सेवन करे। दीर्घायु को चाहने वाला पुरुष उक्त अवधि के पूर्व तथा पश्चात् मैथुन न करे। यह वाजीकरण का विधान नर और नारी दोनों के लिए हैं। वाजीकरण पदार्थ—

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृहणं गुरु।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद् वृष्यमुच्यते ॥

जो कोई द्रव्य मधुर, चिकना, स्वास्थ्यवर्धक, बृंहण (शरीर को स्थूल करने वाले), गुरु (गरिष्ठ पदार्थ), चित्त को प्रसन्न करने वाले हैं वे सब वृष्य (वर्षतीति वृषः वृषाय हितम् वृष्यम्) वीर्यबर्धक होते हैं।

वाजीकरण पदार्थों के असेवन से हानियां—

ग्लानिः कम्पोऽवसादस्तदनु च
कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां।
शोषोच्छ्वासोपदंश ज्वर गुदज
गदाः क्षीणता सर्वधातो ॥
जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः
क्लीबतालिङ्ग भंगो।
वामावश्यातियोगाद् भजत इह
सदा वाजिकर्मच्युतस्य ॥

वाजीकरण पदार्थों के सेवन के बिना ही स्त्री सहवास में अधिकता कर देने से ग्लानि, कम्प, शरीर की शिथिलता, कृशता, इन्द्रियों की क्षीणता, शोष, श्वास, उपदंश (गर्मी), ज्वर, अर्श (बवासीर), सम्पूर्ण धातुओं की क्षीणता, असाध्य वातज रोग, नपुंसकता, ध्वजभंग आदि रोग हो जाते हैं।

बाजीकारक योग—

ये केचिद् विजया योगा लोह वंगाभ्र संयुताः।
युक्ताश्च रसगन्धाभ्यां रसायनं वरा मताः ॥

लौह भस्म, वङ्गभस्म, अभ्रक भस्म, पारद और गंधक से निर्मित किसी भी योग में यदि विजया (भांग) का सम्मिश्रण हो तो उस योग को उत्तम कहा गया है।

अपना मन्तव्य—वीर्यवर्द्धक योग अनेक हैं, बहुत से शास्त्रीय एवं अनुभूत भी हैं। कुछ योग तो ऐसे हैं जिनसे समाज अत्यधिक परिचित रहता है। उनमें से कुछ योगों में अफीम अथवा भांग मिली रहती है और अनेक स्थानों में ऐसे योगों की भूरि भूरि प्रशंसा भी की गई है। इन योगों के सेवन से क्षणिक लाभ तो अवश्य होता है परन्तु इनका सेवन करने वाला भविष्य में इन्हीं दुर्व्यसनों के वश में हो जाता है अतः ऐसे योगों से सावधान रहे।

सफलता—आप चाहें कि हम वाजीकरण योगों के ही सेवन से वाजी (घोड़े) के समान वीर्यवान् हो जायेंगे यह कदापि सम्भव नहीं जब तक कि आप उन शास्त्रीय योगों के साथ साथ पर्याप्त मात्रा में दूध, घी, मक्खन, मलाई, मांस, मांसरस, अण्डा आदि का सेवन तथा मनोनिग्रह न करें।

कामवासना से तृप्ति—जब प्राकृतिक देन से स्वस्थ मनुष्य अपनी चंचलता के कारण अपने को हीन वीर्य बनाकर पश्चाताप करने लगता है तब क्या यह सम्भव है कि वह औपचारिक ढङ्ग से अपने को स्वस्थ करके अपनी इच्छा पूर्ति कर लेगा ? उनको यह याद रखना चाहिए-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

कभी भी इच्छाओं के उपयोग से इच्छाऐं शान्त नहीं होती अपितु और बढ़ती जाती हैं, जैसे घी की आहुति से अग्नि, इसीलिये भर्तृहरि ने कहा है—"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः" अर्थात् हमारा शरीर तो जीर्ण (वृद्ध) हो गया किन्तु हमारी इच्छाऐं प्रबल होती ही जा रही हैं।

अब थोड़ा उन लोगों से कहना है जो केवल व्यभिचार की दृष्टि से ही वाजीकरण योगों का सेवन करते हैं। इनको चाहिए कि ये भली भांति 'वात्स्यायन कामसूत्र" का अध्ययन इस निन्द्य व्यभिचार कर्म में प्रवृत्त होने के पूर्व अवश्य कर लें। उसमें इस बात का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि इस प्रकार के व्यभिचारियों के घर की कैसी दुर्दशा होती है और ये स्वयं अयोनि मैथुन तथा अप्राकृत मैथुन आदि में प्रवृत्त होने के कारण शीघ्र स्खलन, क्लैब्य आदि रोगों के ग्रास होकर अकाल में ही काल कवलित होते दिखाई देते हैं।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री,
सी. के. ७/६६ सिद्धेश्वरी, वाराणसी।

ज्योतिष और आयुर्वेद

श्री शेख फय्याज खां विशारद

[गताङ्क से आगे]

नखों की कुछ मुख्य आकृतियां —

रोगों का प्रभाव नखों पर शीघ्र प्रकट होता है। कभी कभी रोग होने से पहले भी शारीरिक दोष घटने बढ़ने की सूचना देते रहते हैं। रोग के बाद भी शरीर की क्रियायें संतुलित प्रमाण पर आने तक चिह्न स्पष्ट रहते हैं।

साधारण नख
NORMAL NAIL

नालीआकार या बांसुरीनुमा

मोगरीनुमा
CLUBBED NAIL

चम्मचनुमा नख
SPOON SHAPE!
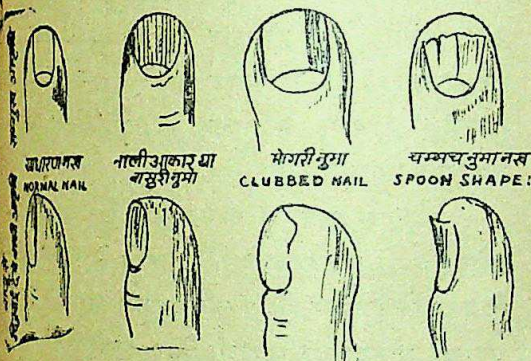
नखों द्वारा रोग परीक्षा —

नाखूनों पर लाली और दबाने से रक्त हटकर दबाव कम पड़ते ही फिर लाल होजाना स्वस्थ मनुष्य का चिह्न होता है।

सफेद धब्बे नाखूनों पर दिखाई देना चिन्ता का चिह्न है या लम्बी बीमारी के बाद का चिह्न होता है। शीतला की तरह अधिक धब्बे होना यह बताता है कि रक्त का दौरा शरीर में एकदम कम हो गया है। कारण चाहे अधिक घबराहट या बीमारी हो।

लम्बाई से अधिक चौड़े नख झगडालू प्रकृति वाले के होते हैं। परन्तु अधिकतर दमा, खांसी, श्वास, कण्ठ-शोष रोगी के भी होते हैं।

लम्बे नाखून ऊपर चौड़े और नीचे की ओर रंग में नीले और कुछ सकरे हों तो दिल की कमजोरी, रक्त का दौरा कमजोर है ऐसा समझें।

जिन नाखूनों में थोड़े बहुत भी सफेद चंद्र नहीं होते उनके हृदय की कमजोरी बताते हैं और आगे कभी heart fail की नौबत भी आ सकती है।

कंठ, गले की बीमारियों के द्योतक नख
THROAT AND BRONCHIAL AFFECTION

फेंफड़ों की कमजोरी लम्बे नख नीचे सफेद धब्बे युक्त

सफेद चन्द्र स्वास्थ्य का चिह्न

नुकीली उंगली पर सीपदार नख
PARALYSIS TENDENCY
लकवा के चिन्ह

आंतों की खराबी

गोल उंगली और बहुत पतले नख
रीढ़ की हड्डी के रोग

बिना सफेद चन्द्र वाला नख हार्ट फैल होने आदि दिल की कमजोरी बताता है

चोकोर नख छोटे चन्द्राकार धब्बे युक्त, रक्त की कमी दिल की कमजोरी के द्योतक हैं।

परन्तु सफेद चन्द्राकार अधिक बड़े होने पर रक्त का दवाब अधिक और क्रोध की मात्रा, आवेश को बताते हैं। मृगी और मूर्छा की बीमारी भी बताते हैं। और यदि मस्तक रेखा लम्बी सीधी और यव युक्त भी हो तो सर दर्द और दिमाग की खराबी

बताता है।

छोटे नाखून नीचे की ओर बिना गोलाई लिये चपटे होते हैं, सफेद चंद्र नहीं होते दिल की कमजोरी बताते हैं।

छोटे नाखून चपटे, और मांस में गडे हुए हों तो नाड़ी तन्तुओं की कमजोरी और लकवा पक्षाघात का चिह्न है।

चमड़ी से चिपटे हुए चपटे और खासकर नीचे की ओर ही नीला रंग लिये हों तो लकवे का पूर्ण चिह्न होता है।

कम लम्बे नाखून दिल की कमजोरी और अर्द्धाङ्ग वायु रोग (Peraplegia) नीचे के भाग का सुन्न हो जाना या गृध्रसी (Sciatica) रोग का चिह्न हैं।

लम्बे नाखूनों वाले ऊपर के आधे भाग के रोगी सर, फेफड़े, सीना, गला रोग वाले होते हैं। साथ में हथेली पर के चिह्नों से आयु के किस समय में रोग होगा यह अनुमान लगाना चाहिए।

बहुत संकड़े और लम्बे नख पीठ, कटिवात रोग बताते हैं। और अधिक मुड़े हों तो मेरु दण्ड (रीढ़ की हड्डी) के रोग होते हैं। वात व्याधि तथा चर्म रोग भी हो सकते हैं।

बहुत छोटे और पतले नख बहुत कमजोर और अल्पायु मनुष्य के होते हैं। नाखूनों पर छोटे छोटे धब्बे हों तो नाड़ी तन्तुओं की कमजोरी बताता है।

नखों पर छोटी फीकी सी रेखायें जिस समय दिखाई देने लगें तो नाड़ी तन्तुओं के कमजोर होने की पूर्व सूचना है। पूर्व ध्यान न देने से खतरा बढ़ सकता है।

अंगूठे के नख पर काली रेखा भी नाड़ी तन्तु की खराबी बताती है। पैर का प्रधान नाड़ी शूल गृध्रसी (Sciatica) रोग भी देखा गया है।

पैर के नख —

पैर के अंगूठे के नाखून कभी कभी ऊपर से उभर कर दोनों किनारे अन्दर ही अन्दर मुड़ते जाते हैं और चमड़ी को घायल करते रहते हैं। ऐसी गड़बड़ी ३५ वर्ष की आयु के बाद होती है। मूत्रकृच्छ्र या
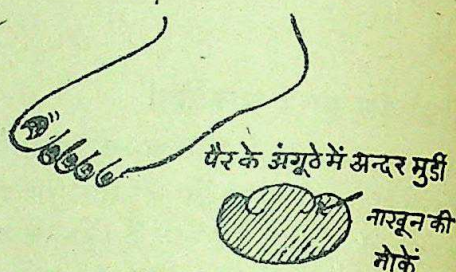
प्रमेह रोगी को अक्सर ऐसा हो जाया करता है। एड़ी के अन्दर दर्द रहने रहने लग जाता है। सबेरे उठते ही कुछ कदम चलने में बड़ा दर्द होता है। १५-२० कदम चलने के पश्चात् शून्यता मिटने पर चला जा सकता है। ऐसे रोगी भी ऐसे नाखून वाले पाये जाते हैं।

मैंने इस बात पर ध्यान दिया है कि रोगी को प्रमेह मिटने की अवस्था में नाखून के किनारे ठीक होने लगते हैं और शरीर की मर्दानी कमजोरी मिटने पर यह नाखून की खराबी मिट जाती है।

स्थूलकाय शरीर वाले के मोटे हाथ में कड़े नाखून (सुगमता से टूटने वाले) हों तो गठिया का रोगी होता है।

छोटे चौडे और पतले नाखून (चमड़ी से चिपटे से) पेट और आंतों की खराबी बताते हैं।

हाथ की उंगलियों के नखों पर काले दाग होना बीमारी की निशानी है। नोंक की तरफ काला दाग होने से भूतकाल की बीमारी बताता है, मध्य में हो तो वर्तमान तथा जड़ में दाग हो तो बीमारी आने की सूचना देता है। यदि दाग का आकार बढ़ता दिखाई दे तो रोग की शंका से सचेत रहना चाहिए। ऐसा दाग रक्तहीनता का चिह्न होता है। अक्सर ऐसे दाग वाले मृत्यु को शीघ्र प्राप्त होते हैं। पीले रंग के नाखूनों पर दाग भी खतरा का सूचक है।

—श्री शेख फय्याज खां विशारद,
भीनमाल (जालोर)

हिस्टेरिया की चिकित्सा

श्री वैद्य शेषराव जैन

चिकित्सा सूत्र लिखने के पूर्व यह लिखना अतीव आवश्यक है कि हिस्टीरिया एक मानसिक रोग है। अतः औषधि चिकित्सा से भी अधिक इसमें मन को बलवान बनाकर दूसरी ओर मोड़ देने, सांत्वना देने, प्रोत्साहित करने एवं स्नेह प्रदान कर उसका विश्वास सम्पादन करने की अधिक आवश्यकता है। "मन के हारे हार है मन के जीते जीत" के अनुसार यदि रुग्णा को विश्वास हो जाय कि आपके द्वारा वह अवश्य अच्छी हो जावेगी तो निश्चय जानिये कि कौड़ियों की दवा क्या आपके हाथ की मिट्टी भी उसके लिये अमृत हो जावेगी। यह चिकित्सक की सूझ बूझ एवं मनोविज्ञान पर है कि वह रोगी के प्रत्येक कार्य का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर तदनुसार कार्य करे। यदि प्रारंभ से ही बालकों को आत्म निर्भर साहसी, निर्भय, एवं परिश्रमशील बनाने का प्रयत्न किया जाय तो यह रोग उत्पन्न ही नहीं हो सकता। आवश्यक है कि स्त्रियां अपने घर का कार्य स्वयं करें। चौका वर्तन, चक्की, चूल्हा, चरखा तकली, आदि कार्यों में फंसे रहने से उनका ध्यान रोग की ओर नहीं जा पाता। साथ ही व्यायाम होने से पाचन संस्थान में विकृति नहीं हो पाती। व्यायाम के द्वारा मन एवं मस्तिष्क दोनों सबल होते हैं। इस प्रकार कार्यों में फंसाये रख अनेक रुग्णाओं के दौरे के आवेगों को टाला जा सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि मन शक्ति को दूसरी ओर मोड़कर यदि संलग्नता उत्पन्न कर दी जाय तो सर्वाधिक सफलता बिना औषधोपचार के भी मिल सकती है। यदि रुग्णा शिक्षित है तो उसे रामायण, महाभारत आदि धार्मिक, ऐतिहासिक (महारानी लक्ष्मीबाई, राजपूताने की वीर नारियां) सामाजिक उच्च पुरुषों एवं नारियों के जीवन चरित्र संबंधी पुस्तकें पढ़ने को दी जांय। एवं यदि वह अशिक्षित है तो प्रभावशाली वक्ता द्वारा उसे पढ़कर सुनाया जाय। प्रसंग का आश्रय ले उसके हृदय में दया, धैर्य, शांति, सहिष्णुता, वीरता, उदारता आदि भावों को जाग्रत किया जाय। ताकि वह अतिरिक्त समय में भी रोग विचार छोड़ एक मात्र इन्हीं भावों में डूबी रहे अथवा कार्यरत रहे।

आवेग के समय मुंह पर शीतल जल के छींटे देना चाहिये। प्रातः वायु सेवन का निर्देश अतीव लाभदायक है। मूर्च्छा की दशा में श्वासकुठार, कल्पतरु, कट्फलादिनस्य, नकछिकनीचूर्ण में से किसी एक की नस्य देना चाहिये। किंवा शुद्ध नूसार, चूना, कपूर तीनों सम मात्रा में मिश्रित कर शीशी में सुदृढ़ कार्क लगाकर दौरे के समय कार्क खोलकर सुंघाना चाहिये। अथवा चावलों को अर्क दुग्ध में १२ घंटे तक रख पश्चात् पीस कर छाया शुष्क कर शीशी में रख लेना चाहिये। आवश्यकता पर इसकी नस्य दी जा सकती है। उन्मत्त रस भी नस्य प्रयोग में लिया जा सकता है। प्रबोधाजंन का गोमूत्र में पीस आंखों में अंजन करने से भी मूर्च्छितावस्था से जागृत किया जा सकता है।

(२) चिकित्सारम्भ के पूर्व शुद्ध एरण्ड तैल १ औंस, गोदुग्ध सुखोष्ण १ पाव रात्रि काल में देकर विरेचन कराना चाहिए। विरेचन के लिये अन्य अश्वकंचुकी, परगोलेक्स, केस्टोफिन आदि औषधियां भी ली जा सकती हैं। विरेचनोपरान्त पेया पिलाकर मदनादि वमन चूर्ण अथवा मात्र नमक ही उष्ण जल में घोल पीकर गले में अंगुलियां डाल वमन करा देना चाहिए। वमनोपरांत पतली खिचड़ी में पर्याप्त घृत मिश्रण कर खिला कर तब दूसरे दिन से निम्न प्रकार चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए—

१-(अ) सिंहनाद गुग्गुल २ गोली, उन्मादगज केशरी २ गोली, चतुर्भुज रस २ गोली, मुकुटेश्वरी वटी २ गोली। ४ मात्रा-प्रति ४-४ घंटे पर बच चूर्ण १।। माशा एवं गो घृत ३ माशा से दें।

(ब) सारस्वतारिष्ट २ तोला, अश्वगन्धारिष्ट २ तोला। २ मात्रा। भोजनोपरान्त समान भाग जल से दें।

(स) सिर में ब्राह्मी तैल, किंवा महा लक्ष्मीविलास तैल तथा सम्पूर्ण शरीर में चन्दनबलालाक्षादि तैल का मर्दन प्रतिदिन करें।

(द) त्रिफला चूर्ण १।। माशा, गुलकन्द आधा तोला। १ मात्रा। रात्रि काल शयन करते समय सुखोष्ण गोदुग्ध अथवा केवल जल से दें।

२-(अ) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस २ रत्ती। २ मात्रा। प्रातः ६ बजे, सायं ६ बजे अदरख स्वरस एवं शहद से दें।

(ब) स्मृतिसागर रस २ रत्ती, वातकुलान्तक २ रत्ती, अभयादि गुग्गुल २ गोली। २ मात्रा। प्रातः ६ बजे एवं सायं ४ बजे ब्राह्मी घृत अथवा पुराण गोघृत से दें।

(स) दशमूलारिष्ट १।। तोला, अश्वगन्धारिष्ट १।। तोला, सारस्वतारिष्ट १ तोला। २ मात्रा।

३-(अ) चिन्तामणि चतुर्मुख २ रत्ती, चतुर्भुज २ रत्ती, बृ० भूत भैरव २ रत्ती, रजत भस्म २ रत्ती ४ मात्रा। सारस्वत चूर्ण प्रति मात्रा १।। माशा, गोघृत ३ माशा से लेकर ऊपर से गोदुग्ध पीवें।

(ब) अश्वगन्धारिष्ट, सारस्वतारिष्ट, दशमूलारिष्ट का उपरोक्त प्रकार मिश्रण भोजनोपरान्त समान भाग जल से दें।

नोट—क्रम १ के खण्ड 'स' तथा 'द' वाली क्रियाएं प्रत्येक योग के साथ करें।

यदि योषापस्मार में जैसा कि बहुधा देखा जाता है, रुग्णा में गर्भाशय विकृति किंवा मासिक धर्म में विकृति हो तो यथा विकृति रजः प्रवर्तिनी वटी, नष्ट पुष्पांतक रस, कन्यालोहादि गुटिका, चन्द्रांशु रस, चन्द्रप्रभावटी, पुष्पधन्वारस, रत्नभागोत्तर रस, त्रिबङ्ग भस्म, लोहभस्म, कुमारी आसव, लोहासव, लोध्रासव, अशोकारिष्ट आदि औषधियों का भी यथा दोष चुनाव कर उल्लखित चिकित्सा के साथ साथ ही दें। भोजनोपरांत वाले आसव मिश्रण में लोहासव, कुमारी आसव का भी मिश्रण कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में सबको समान भाग में मिश्रण कर २ तोले की मात्रा में ही जल के साथ लेना चाहिए। रजः प्रवर्तिनी एवं नष्टपुष्पांतक सर्वदा सेवनीय नहीं है। अनुमानिक महिना आने के १० से १४ दिन पूर्व से अवस्थानुसार १-१ किंवा २ गोली गर्म जल तिल, गुड़ क्वाथ आदि लेने से ७ से १४ दिन के अन्दर ही मासिक स्राव होने लगता है। यदि रुग्णा में रक्ताल्पता आदि कारणों से आर्तव विकृति हो तो भी उल्लखित योग लाभकारी हैं। वैद्य को रुग्णा की परिस्थिति के अनुसार औषधि एवं उनके अनुपान चुन लेने चाहिए।

आयुर्वेदीय सूचीवेधनों में मैंने प्रताप आयु० फार्मेसी देहरादून के "शांता" एवं मार्तण्ड फार्मेसी बड़ौत के "स्मृतिदा" सूचीवेधन का प्रयोग किया। स्मृतिदा प्रथम एवं शांता द्वितीय किंतु दोनों सफल रहे।

यद्यपि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस रोग के सम्बन्ध में आयुर्वेद से किंचित भी आगे नहीं है।

फिर भी पाठकों के जिज्ञासार्थ उसके कुछ योग सादर प्रेषित हैं।

१. अ-टिं० बलेरियन अमोनियेटा ½ ड्राम, स्प्रिट अमोनियां एरोमेटिकस २० बूंद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूंद, टिं० हायोसायमस २० बूंद, मैगसल्फ १½ ड्राम, जल १औंस=३ मात्रा प्रातः मध्यान्ह सांय।

ब-केल्सिमा ३ गोली ३मात्रा-उपरोक्त मात्राओं के मध्य में गोदुग्ध अथवा मात्र जल दें।

स-एमिल नाइट्रेट केप्सूल। १ केप्सुल तोड़ रुई में डाल मूर्च्छितावस्था में सुंघाने से रुग्णा जाग्रत हो जावेगी।

२. अ-ब्रोमाइड्स एवं वलेरियन के अन्य शामक योग यथा-एलिकिजर ब्रोमोवाल, एले० ब्रोमोवेरियन, वैलोल, एल्ब्रोमाल, ब्रोमोरालिफन आदि पेय जल के साथ एक से दो चम्मच मात्रा में ३-४ समय दिये जा सकते हैं।

ब-केल्सि वियोन, अथवा केल्सि ब्रोनेट सूची-वेधन शिरामार्ग द्वारा प्रतिदिन अथवा तीसरे दिन दिये जा सकते हैं।

स-ल्युपाट, केल्सिमा, वेलाल, एल्फिडीन, सार्पेसील आदि गोलियों का प्रयोग भी उपरोक्त योगों के साथ साथ कराया जा सकता है।

ड-दौर्बल्य, ग्लानि एवं रक्ताल्पता नाशार्थ जीवतिक्ति B 12, जवितिक्ति B १ आदि के मिश्रित किंवा अलग अलग सूचीवेधन, पेय किंवा गोलियों का प्रयोग किया जा सकता है।

ई-गर्भाशय विकृति एवं मासिक विकृति पर किसी फालिक्यूलर ल्यूटियल इस्ट्रीन किंवा प्रोजेस्टीन आदि हारमोन के सूचीवेधन पेय किंवा गोलियों का भी प्रयोग कर सकते हैं।

समान भाग जल से भोजनोपरान्त।

पथ्यापथ्य—विलासप्रियता, गुरू अभिष्यन्दी भोजन, क्रोध, चिन्ता, मैथुन, मद्यपान, दूषित जल-पान, गुड़ एवं गुड़ निर्मित वस्तुएं सदैव त्याज्य हैं। दिवाशयन, रात्रिजागरण, अतिनिन्द्रा, मानसिक चिन्तन, वेगावरोध, अम्ल मधुर, अचार चटनी एवं लवण रस प्रधान तथा तैलीय पदार्थ, सेव चूड़ा आदि पदार्थ नहीं देना चाहिए। स्थान परि-वर्तन, शुद्ध वायु सेवन, अतीव लाभप्रद है। गेहूं, जौ की पतली रोटियां, दाल, शाक, दुग्ध, घी, खिचड़ी खाने को दिया जाना चाहिए। दाल और शाक में सैंधव और काली मिर्च डालकर घृत एवं लहसुन जीरा से बघारना (छौंकना) चाहिए। इस रोग में इस बात का अधिक ध्यान रखना चाहिए कि रोगी को पेशाब अधिक होता रहे। कारण पेशाब के द्वारा रोग का विष शरीर से निष्काषित होता है। २४ घण्टे में ६ सेर तक मूत्र भी हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं। किंतु इससे अधिक होने पर इसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। सर्वदा इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि रोगी प्रसन्न मुद्रा में रहे

—श्री वैद्य शेषराव जैन,
सरकारी आयु० औषधालय दासगांव, भंडारा।
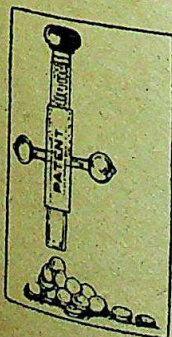
गोस्वामी तुलसीदास और आचार्य चरक

श्री वैद्य जानकीप्रसाद जी अग्रवाल

लोक नायक श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का मानस गृहस्थ, वैराग्य, भक्ति, नीति, तत्वज्ञान का अमूल्य महाकाव्य है। गोस्वामी जी महान भक्त तो थे ही परन्तु वह ज्ञान और दूर दृष्टि में महान प्रवीण थे। भारतीय परम्परा की दृष्टि से उनका महाकाव्य मानस आदर्श स्वरूप है। गोस्वामी जी ने लोक संघर्ष के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को प्रमुख व्याधिजन्य विकार के रूप में माना है। मानस में सुखी समृद्धि तथा आरोग्यमयी जीवन के लिये अनकूल मार्ग प्रशस्त है। तुलसीदास जी की रामायण में मनुष्य की रोगोत्पति का कारण तथा उसकी चिकित्सा के सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययन का दिग्दर्शन होता है। मानस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अनेक रोगों की उत्पत्ति दूषित मन से उत्पन्न लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या आदि ही से है। इसलिए गोस्वामी जी ने सर्व प्रथम दूषित मन की चिकित्सा का ही उपाय बतलाया है। मानस में दूषित मन की चिकित्सा का सुलभ उपाय केवल राम भजन ही बतलाया है। मन की एकाग्रता द्वारा ही तथा उसकी शुद्धि से ही, रोग स्वतः नष्ट होजाने का उपदेश गोस्वामी जी ने किया है। मन की शुद्धि के विषय में आचार्य चरक भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

> येषां द्वन्द्वे परासक्तिरहंकार पराशवये।
> उवय प्रलयो तेषां न तेषां येत्वतोऽन्यथा ॥

अर्थात् सुख दुख इच्छा द्वेष आदि के विषय में जिनकी अधिक अनुरक्ति होती है एवं जो अहंकार परायण है उन्हें ही बारम्बार जन्म मृत्यु का दुख होता है। इसके विपरीत जिनकी द्वन्दों में अनासक्ति है उन्हें बार बार जन्म मरण का दुख नहीं होता। आचार्य चरक फिर कहते हैं कि धर्म के अविरोधी जो भी जीवन यात्रा के उपाय हों उनका अनुसरण करना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य है। आचाय की मान्यता है कि श्रम और अध्ययन से मनोनिवेश करें एवं स्वास्थ्य लाभ में समर्थ हों। श्री गोस्वामी तुलसीदास का मानस भी रोगोत्पत्ति सिद्धांत में चरक से अभिन्न है। जैसा कि गोस्वामी जी ने उत्तर कांड में कहा है--

> मोह सकल व्याधिन कर मूला।
> तेहि ते पुनि उपजहि बहुशूला ॥
> काल बात कफ लोभ अपारा।
> क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि आसक्ति ही सर्व व्याधियों का मूल है। अनेक प्रकार के शूल इसी व्याधि से उत्पन्न हो जाते हैं। वात पित्त कफ जब कुपित होजाते हैं तब अत्यन्त दुखदाई सन्निपात होता है, स्वाभाविक ही है। क्रोध के समय मनुष्य का श्वास वेगपूर्वक निकलता है एवं मनुष्य शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जैसा कि गोस्वामी जी ने कहा है—

> प्रीति करहि जो तीनिहु भाई।
> उपजहि सन्निपात दुखदाई ॥

आचार्य चरक के कथानुसार दूषित मन ही सब रोगों का कारण है। मानसिक भय, क्रोध, लोभ, शोक आदि से ही त्रिदोष प्रकुपित होकर शरीर को क्लांत कर देते हैं। त्रिदोषों का कुपित होना ही सन्निपात का लक्षण होना कहा गया है। आगे गोस्वामी जी फिर सूचित करते हैं—

> ममता दाद कंडू इरषाई।
> हरष विषाद गरह बहुताई ॥
> पर सुख देख जरनि सो छई।
> कुष्ट दुष्टतामनकुटिलई ॥
> अहंकार अतिदुखदडमरूवा।
> दम्भ कपट मद मान नहरूवा ॥
> तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी।
> त्रिविध ईषना तरून तिजारी ॥

अर्थात्—ममता ही दाद और ईर्षा ही खजली है जो हमेशा ही मानसिक खुजलाहट उत्पन्न करता है। बारम्बार आनन्दित और दुखित होना ही गले के रोगों की अधिकता है। पर सुख को देख कर जलना ही तपेदिक की बीमारी है। मन की कुटिलता ही कोढ़ का स्वरूप है जो शरीर के अन्तर और बाहरी आवरण को दूषित कर देता है। अनेक प्रकार का अहंकार दुख देने वाली वद गांठ के समान है। पाखण्ड, छल, कपट, मद नहरुवा जैसी बीमारी है। अति तृष्णा ही जलोदर की व्याधि है जिससे उदर में जल भर जाने से महान कष्ट प्राप्त होता है और तीन प्रकार की (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएं ही तीन प्रकार के मलेरिया ज्वर (इकतरा, तिजारी और चौथैया) का स्वरूप हैं।

> जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका।
> कहू लग कहौ करोग अनेका ॥

मत्सर (डाह) और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार के अनेकों रोग हैं जिन्हें कहां तक कहा जाय। वे कहते हैं—

> एक व्याधि वस नर मरहि, ये असाध वहु व्याधि।
> पीड़हि संतत जीव कहुं, से किमि लहैं समाधि॥

संसारी जीव सिर्फ एक ही रोग (पेट की भूख) से मर जाता है फिर यह असाध्य व्याधियां मनुष्य को निरन्तर कष्ट देती हैं। ऐसी दशा में मनुष्य शांति और स्वास्थ्य लाभ को कैसे प्राप्त हो।

आचार्य चरक रोग निवारण का उपाय बताते हैं—

> नगरी नगरस्वेव रथस्वेव रथी सदा।
> स्वशरीरस्थ मेधावी कृत्येष्यव बहितो भवैतु।

जिस प्रकार नगर का रक्षक नगर की रक्षा में जागरूक रहता है एवं रथी अपने रथ के प्रति सतर्क रहता है उसी प्रकार मेधावी पुरुष इस शरीर रूपी रथ के सम्बन्ध में उसके प्रति पूर्ण कर्त्तव्यवान होता है। आगे आचार्य ने सत्संग के विषय में कहा है कि सत्यवादी, अक्रोधी, अहिंसक, प्रियवादी, देवता और आचार्य की सेवा में निरत अहंकार शून्य सदाचारी, आस्तिक और जितेन्द्रिय और धर्मशास्त्र पारायण पुरुष स्वयं रसायन होता है। ऐसे लोगों को कोई रसायन सेवन करने की आवश्यकता नहीं।

श्री तुलसीदास जी भी अपने मानस में इसी का दिग्दर्शन कराते हैं—

> जाने ते छीजहिं कछु पापी।
> नाश न पावहिं जन परतापी॥

इन रोगों का कुछ ज्ञान हो जाने से रोग कुछ क्षीण हो जाते हैं परन्तु पूर्णरूप से नाश को प्राप्त नहीं होते और तुलसीदास जी सद्गुरु (सत्संग) के बचनों पर विश्वास करने का परामर्श देते हैं—

> राम कृपा नासंहि सब रोगा।
> जो यह भांति बने संजोगा॥
>
> सद्गुरु वेद वचन विस्वासा।
> सजमं यह न विषय के आशा॥

यदि राम की कृपा से कोई संयोग बन जाये तो सारे रोग नष्ट हो जायें। इसके लिये सत्संग रूपी वैद्य तथा श्रद्धा रूपी औषधि की आवश्यकता है और विषयों की आशा ही इसका कुपथ्य है।

> राम भगत संजीवन मूरी।
> अनुपान श्रद्धा मति पूरी॥
>
> एहि विधि भलहि सो रोग नसाही।
> नहि ते जतन कोटि नहिं जाही॥

तुलसीदास जी की राम भजन रूपी संजीवनी बूटी का कैसा प्रभाव होता है एवं शरीर को कैसी स्वस्थता प्राप्त होती है इसके लिये ये कहते हैं—

> जानिए तब मन बिरुज गुसाई।
> जब उर बल विराग अधिकाहीं॥

:: शेषांश पृष्ठ ८०३ पर ::

शीत ज्वर और उसकी चिकित्सा

श्री० महेश्वर प्रसाद जी

भारतवर्ष में लगभग सत्तर प्रतिशत मनुष्य शीत ज्वर के प्रकोप से पीड़ित रहते हैं। आजकल शायद ही कोई ऐसा घर होगा जिसमें प्रतिवर्ष कोई न कोई व्यक्ति शीत ज्वर का शिकार न होता हो। यह भारतवर्ष का सबसे प्राचीन रोग है। आयुर्वेद के प्रायः सभी ग्रन्थों में इसका वर्णन विस्तार के साथ मिलता है। इस रोग में बड़े वेग के साथ ज्वर चढ़ आता है और कुछ समय के पश्चात् पसीना देकर उतरता है। ज्वर के वेग की विषमता के कारण आयुर्वेदज्ञ इसे विषम ज्वर भी कहते हैं। विषम ज्वर के प्रकार एवं वर्णन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में वर्णित मिलते हैं यथा--

प्रायश:सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषम ज्वरा: ।
सन्तत: सततश्चैव अन्येद्युष्कस्तृतीयक : ।।
ज्वराश्च विषमा: सर्वे सन्निपातसमुद्भवा: ।
चातुर्थिकश्च पञ्चत कीर्तिता विषमज्वर: ।।

शीत ज्वर के होने के विषय में भिन्न २ लोगों का भिन्न २ मत है। कुछ लोगों के विचार से वर्षा काल में पित्त सञ्चय होता है जो शरत् ऋतु के आरम्भ में कुपित होता है। इसी पित्त कोप से अन्य दोष संयुक्त हो इस ज्वर का कारण बनते हैं। कुछ को ऐसा विश्वास है कि भूत-बाधा आदि के कारण शीत ज्वर होता है जिसकी चिकित्सा मन्त्र, तन्त्र, बलि, होमादि द्वारा बतलायी गई है। यथा-'केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रूयते विषम ज्वरम्।' कुछ लोगों का कहना है कि अल्प दोष कोप के कारण मनुष्य शरीर में यह ज्वर पूर्वकाल से ही कुछ रूप में बना रहता है और ऐसी स्थिति में जब कि अहित आहार-विहार होता है तो उन दोषों के अधिक कुपित होने के लिए बल मिल जाता है। फलस्वरूप रस रक्तादि के आश्रित हो कर दोष एकाएक वेगवान ज्वर उत्पन्न करता है। ऐसे ज्वर अपने प्राथमिक काल में विषम ज्वर ही होते हैं जो पुनः दोष कोप के साथ रस रक्तादि धातुओं का आश्रय ले लेते हैं। यथा—

दोषोल्पोऽहि सम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्यवापुनः।
धातुमन्यतमं आश्रय करोति विषमज्वरम् ॥

प्राचीन समय में आज की तरह इतने वैज्ञानिक यंत्रों की प्रचुरता नहीं थी जिसके द्वारा एक विशेष कीटाणु के शरीर में प्रवेश करने से शीत ज्वर होने का कारण जाना जा सकता।

शीत ज्वर की जानकारी की यह त्रुटि केवल हमारे देश में ही न थी प्रत्युत पाश्चात्य देश वालों में भी थी। वे तो इसे गन्दी हवा से होने वाला रोग समझते थे। इसी हेतु वहां के लोगों ने इस रोग का "मलेरिया" नामकरण किया जिसका अर्थ है दूषित वायु। "मेलेरिया" इटानियन शब्द है जिसका शब्द खण्ड और अर्थ करने पर गन्दी हवा का तात्पर्य निकलता है।

आज से कुछ समय पूर्व जब व्याधिजनक अणुजीवों (Pathogenic Organisms) का पता चला तो भारतीय एवं पाश्चात्य चिकित्सकों ने हवा में उड़ने वाले व पानी में पाए जाने वाले मच्छरों के शरीर में प्रविष्ट जीवाणुओं से शीत ज्वर का सम्बन्ध जोड़ा। यद्यपि अभी तक पाश्चात्य चिकित्सक शीत ज्वर को 'मलेरिया' नाम से ही पुकारते हैं फिर भी अब लोग उसे दूषित वायु से होने वाला रोग नहीं मानते हैं।

वास्तव में शीत ज्वर का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म एक कोशीय (Unicellular) परिजीवी है जो मलेरियाणु (Plasmodium प्लाजमोडियम) नाम से पुकारा जाता है। इस परिजीवी मच्छरों की एक विशेष जाति,जिसे एनाफिलीस (Anapheles) कहते हैं, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में पहुँचाया करती है। केवल मादा एनाफिलीस मच्छर (Female Anapheles Mosquito) के पेट

में ही यह जीवाणु देखे जाते हैं क्योंकि वह ही मानव रक्त का प्रचूषण करती है और विषम ज्वर के कीटाणुओं को फैलाती है। नर एनाफिलीस तो प्रायः फल-फूल के पराग, रस आदि पर ही निर्वाह करता है। परन्तु मादा एनाफिलिस को सन्तानोत्पत्ति के लिए अंडरोपण के समय प्राणिओं के रक्त की बुभुक्षा बनी रहती है। इसलिए वह रक्त की चाह में मनुष्यों को काटता और उनके रक्त का चूषण करता है। रक्त प्रचूषण के समय रक्त को द्रव रूप में बनाये रखने के लिए यह अपने भीतर से एक लाला रस (Salivary Fluid) दंश स्थान में छोड़ता है। उसी लाला रस में शीत ज्वर के असंख्य जीवाणु होते हैं जो शरीर में पहुँचकर रक्त कोशाओं पर धावा बोलते हैं। वे रक्त कोशाओं से चिपटकर उनके अन्दर प्रवेश करते हैं तथा अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं।

मानव शरीर में शीत ज्वराणु का प्रवेश—ऊपर के वर्णन से पाठक समझ चुके होंगे कि जब मादा एनाफिलीस मनुष्य के शरीर का रक्त प्रचूषण करती है तो रक्त के आतंचन (clotting) न होने के लिए वह उस दंश स्थान में एक द्रव पदार्थ छोड़ देती है और उसी द्रव के साथ साथ शीत ज्वर के हजारों जीवाणु सामान्य रुधिर प्रवाह में पहुंच जाते हैं। अब यहां से चल कर वे जीवाणु बीज के रूप में यकृत् तथा प्लीहा में प्रवेश करते हैं जहां इनका पारस्परिक गुणन होता है। सभी जीवाणु बीज यकृत् में पहुंचते ही पैरेनकायमेटस कोषों (Parencbymatous cells) में प्रवेश कर बड़ी ही तीव्र गति से बढ़कर गुणनपूर्व (Schizont) का निर्माण करते हैं। अब गुणनपूर्व (Schizont) जीवाणु का विभाजन होता है जिसके फलस्वरूप लगभग एक सहस्र गुणनपश्च (merozoites) उत्पन्न होते हैं। ये गुणनपश्च शीघ्र ही विशिष्ट प्रकार की यकृत् केशिकाओं में पहुँच जाते हैं तथा गुणनपूर्व जीवाणु के अवशेष को एक विशेष प्रकार की भक्ष कोषाएँ नष्ट कर देती है। इस गुणन खण्ड के परिणामस्वरूप शीत ज्वराणु की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है।

जो गुणनपश्च यकृत् केशिकाओं में पहुंचते हैं वे या तो यकृत् के बाहर रुधिर प्रवाह में पहुँच जाते हैं अथवा फिर यकृत् कोशाओं में प्रवेशकर उनके भीतर रक्त कोशा खण्ड गुणन आरम्भ कर देते हैं। सामान्य रुधिर प्रवाह में पहुँच जाने वाले गुणन पश्च (merozoites) रक्त रुधिर कणिकाओं को भेदकर उनके भीतर पहुंच जाते हैं। इसमें प्रवेश करने के बाद उनकी आकृति गोलाकार हो जाती है। इस प्रावस्था को वर्तुलावस्था कहते हैं जहां से गुणनपश्च की वृद्धि का प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में उनमें एक असंकोचि रसधानी बन जाती है जिसके कारण वे नगदार अंगुठी की भांति दृष्टिगोचर होते हैं। यह अवस्था मुद्रिकावस्था कहलाती है। कुछ और विकसित होने पर रसधानी लुप्त हो जाती है और उसमें अंगुली सदृश आकार के प्रक्षेप एक कोषीय जीव अमीबा के कूटपाद की तरह निकलने लगते हैं। उस अवस्था में यह अपने कूटपादों द्वारा रक्त के हीमोग्लोबिन का अन्तर्ग्रहण करने लगता है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के बाद बर्धावस्थक (trophozoite) गोल हो जाता है और रक्त रुधिर कोशाओं में पूर्ण रूप से फैल जाता है।

अलैङ्गिक प्रजनन (Asexual repoduction) के लिये पूर्ण रूप से तैयार इस अवस्था में गुणन पूर्व का प्रजनन बहु बिखण्डन के फलस्वरूप होता है। इसमें एक केन्द्र बीज (nucleus) होता है जिसके कई बार विभाजित होने के फलस्वरूप ६ से २४ तक केन्द्र बीज (nuclei) बन जाते हैं। इसके बाद गुणन पूर्व के कोशारस की कुछ कुछ मात्रा सभी केन्द्र बीजों (nuclei) के चारों ओर इकट्ठा हो जाती है और इस प्रकार खण्ड जीवों का निर्माण होता है। अब रक्त रुधिर कोशाओं की भित्ति फट जाती है और खण्ड जीव (Schizoites) प्ररस (plasma) में निकल आते हैं।

इसके पश्चात् प्रत्येक खण्ड जीव किसी नवीन रुधिर कोशा में प्रवेश करता है और इस प्रकार खण्ड गुणन की पुनरावृत्ति होती है।

जिस समय मादा एनाफिलीस अपने थूक के साथ मनुष्य के शरीर में शीत ज्वराणु के जीवाणु डालती है, उसी समय से ज्वर का आना प्रारम्भ होता है।

चूंकि शीत ज्वर के जीवाणुओं का जीवनचक्र मानव शरीर के रक्तकणिकाओं में पूर्ण होता है, इस लिए इनके रक्तवासी होने के कारण इस ज्वर में रक्त कणिकाओं का क्षय बहुत अधिक होता है। इस कारण जैसे जैसे इस ज्वर की वेगवृद्धि होती जाती है वैसे वैसे मनुष्य रक्तहीन, पीला, कान्तिहीन और निर्बल होता जाता है।

अवधि के अनुसार शीत ज्वर के प्रकार—

शीत ज्वर के जीवाणु के मनुष्य शरीर में प्रवेश करने तथा ज्वर आने के बीच की अवधि को सम्प्राप्तिकाल (Incubation period) कहते हैं। यह २४ से ७२ घण्टे तक है। आधुनिक चिकित्सक के मतानुसार शीत ज्वर के तीन प्रकार हैं। इन तीनों के नाम ज्वर आने के बीच की अवधि पर निर्धारित हैं। इन तीनों प्रकार के ज्वरों का उत्तरदायित्व भिन्न भिन्न प्रजाति के शीत ज्वराणु (plasmodium) पर होता है। आयुर्वेदीय शास्त्रों में शीत ज्वर के संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक मुख्यतया पांच भेद वर्णित हैं। कुछ लोगों के मत से चातुर्थिक विपर्यय को लेकर छः भेद माने गये हैं।

आयुर्वेदीय शास्त्रानुसार जब रस और रक्त का आश्रय लेकर दोष कुपित होते हैं तो सन्तत ज्वर होता है। केवल रक्त का आश्रय लेकर जब दोष कुपित होते हैं तो सतत होता है और जब मांसपेशियों (muscles) का आश्रय लेकर दोष कुपित होते हैं तो अन्येद्युष्क ज्वर होता है। इसी प्रकार जब मेद धातु का आश्रय लेकर दोष कुपित होते हैं तो तृतीयक ज्वर होता है तथा अस्थि मज्जा का आश्रय लेकर जब दोष कुपित होता है तो चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है। यथा—

> सन्ततो रसरक्तस्थः। रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम्। अन्येद्युष्कः पिशिताश्रितः। मेदोगत-स्तृतीयेऽह्नि। अस्थिमज्जगतः पुनः कुर्याच्चातुर्थिकं घोरम्।

किन्तु आधुनिक मतानुसार शीत ज्वर के निम्न प्रकार माने गये हैं—

(१) तृतीयक ज्वर (Tertian fever)—इसमें तीसरे दिन ज्वर आता है। वैज्ञानिक मतानुसार यह मनुष्य शरीर में प्लाज्मोडियम वाइवेक्स (Plasmodium vivax), प्लाजमोडियम ओवेल (Plasmodium Ovale) तथा प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम (P. Falciparum) की उपस्थिति के कारण होता है। तृतीयक ज्वर के भी दो भेद हैं—

(अ) मृदु तृतीयक ज्वर (Benign tertian)—यह प्लाज० ओवेल और प्लाज० वाइवेक्स की उपस्थिति के कारण होता है। इसमें ज्वर कभी कभी १०६ डिग्री से १०७ डिग्री फारेनहाइट तक पहुंच जाता है। परन्तु शीघ्र उतर भी जाता है। इस ज्वर में रोगी की जान यद्यपि अधिक संकट में नहीं रहती, फिर भी इसका प्रभाव अधिक समय तक बना रहता है।

(ब) सांघातिक तृतीयक ज्वर (Malignant tertian)—यह प्लाज० फैल्सीपेरस की उपस्थिति से होता है। इसमें ज्वर बहुत तेज नहीं आता। फिर भी रोगी को सरसाम, पेचिस, आंव शूल आदि हो जाते हैं।

जिन रक्त रुधिर कोशाओं में ये शीत ज्वर के जीवाणु रहते हैं, वहां यह एकत्रित हो गुच्छे बनाकर रक्त की लघु वाहिनियों को रोक देते हैं और इस प्रकार अपनी अवरोध शक्ति द्वारा अनेक अङ्गों को हानि पहुंचाते हैं।

(२) चातुर्थिक ज्वर (Quartan fever)—इसे चौथैया ज्वर भी कहते हैं। इसमें ज्वर चौथे

दिन आता है। यह शरीर में प्लाजमोडियम मलेरी की उपस्थिति के कारण होता है।

(३) मिश्रित ज्वर (Quotodian fever)—एक ही रोगी को एक ही समय में मृदु तृतीयक तथा सांघातिक तृतीयक दोनों प्रकार के ज्वर हो सकते हैं। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि एक व्यक्ति के शरीर में मृदु तृतीयक के कुछ जीवाणुओं का प्रवेश सायंकाल के समय हुआ हो और कुछ जीवाणुओं का प्रवेश मध्य रात्रि में। प्रवेश-काल में जितने समय का अन्तर होगा उन दोनों का जीवन चक्र भी उतने ही अन्तर से नियत समय में पूर्ण होगा। इसी प्रकार तृतीयक और चतुर्थक ज्वर भी मिलकर मिश्रित ज्वर उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में ज्वर प्रतिदिन आ सकता है।

एनाफिलीस मच्छर में शीत ज्वराणु का प्रवेश—

शीत ज्वर के जीवाणुओं को अपने जीवन-चक्र को पूर्ण करने के लिये दो अलग अलग पोषिताओं (Hosts) की आवश्यकता होती है। इनमें से प्रथम पोषिता (host) मनुष्य जिसका वर्णन पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं, होता है और द्वितीय पोषिता (host) जिसे हम माध्यमिक पोषिता भी कह सकते हैं, मादा एनाफिलीस होता है। इन्हीं दो पोषिताओं में शीत ज्वर के जीवाणुओं के जीवन चक्र की दो अवस्थाऐं पूर्ण होती है।

(अ) अमैथुनावस्था—मानव शरीर में पूर्ण होती है।

(आ) मैथुनावस्था—मादा एनाफिलीस में पूर्ण होती है।

अमैथुनावस्था में खण्ड गुणन की अनेकानेक पुनरावृत्ति के फलस्वरूप मनुष्य के रक्त में शीत ज्वर के जीवाणु की संख्या बड़ी ही तीव्र गति से बढ़ती है। शीघ्र ही इनकी संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि इनके समक्ष केवल दो मार्ग रह जाते हैं। या तो जीवाणु के आधिक्य के कारण रक्त रुधिर कोशाओं का संहार, जिससे पोषिता का जीवन खतरे में होना अथवा पोषिता के शरीर में प्राकृतिक रोग विरोध क्षमता (Natural immunity) के बहुत ही प्रबल हो जाने के कारण शीत ज्वर के जीवाणु का संहार ही आरम्भ हो जाना। ऐसी दशा में शीत ज्वर के जीवाणु के लिये किसी दूसरे पोषिता को ढूंढ़ना आवश्यक हो जाता है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में मलेरियाणु के खण्ड जीव रक्त रुधिर कोशाओं में प्रवेश करके जन्युमाताओं (gametocytes) का निर्माण करती हैं। यह बड़ी और छोटी दो प्रकार की होती हैं। बड़ी जन्युमाताओं का केन्द्र बीज (nucleus) छोटा और ठोस होता है तथा इसके कोशारस में खाद्य सामिग्री की मात्रा अधिक होती है। परन्तु लघु जन्युमाताओं का केन्द्रबीज (nucleus) अपेक्षाकृत बड़ा और मध्य में स्थित होता है।

ऐसे समय में जब कि मनुष्य के शरीर में जन्युमाताएं पूर्ण विकसित रहती हैं, मादा एनाफिलीस यदि उसके रक्त का प्रचूषण करती है तो उसके पेट में रक्त के साथ साथ जन्युमाता एवं खण्डजीव (Schizozoites) भी पहुंच जाते हैं। मच्छरी के पेट में प्रचूषित रक्त रुधिर कोशाऐं, खण्डजीव इत्यादि का तो पाचन हो जाता है किन्तु जन्युमाताओं के श्लिष्ट एवं अपाच्य होने के कारण उसका पाचन नहीं हो पाता।

यहां पहुंचकर जन्युमाताऐं अपनी वृद्धि आरंभ कर देती है तथा रक्त रुधिर कोशाओं से बाहर निकल आती हैं। इसके पश्चात् लघु जन्युमाताऐं सक्रिय हो जाती हैं और तब उसके केन्द्र बीज के विखण्डन के फलस्वरूप सामान्यतः छः छोटे-छोटे किन्तु लम्बे केन्द्र बीजाणु (nuclei) बन जाते हैं। अब प्रत्येक केन्द्र बीज (nuclei) लघु जन्युमाता की आन्त्रिक भित्ति के समीप आजाता है। इसके केन्द्र बीज के समीप कोशारस एक कशा (Flagellum) के आकार का उभार बनाता है, जिसमें केन्द्र बीज (nucleus) खिसक जाता है।

बड़ी जन्युमाता में केन्द्रबीज दो भागों में विभक्त हो जाता है जिसमें से एक भाग कोशारस के बाहर निकल जाता है। इस प्रकार अर्ध केन्द्रबीज के निष्कासन के पश्चात् जन्युमाताएं मादाजन्यु का रूप ग्रहण करते हैं।

कशा सदृश नर जन्यु सक्रिय होते हैं और इनमें से एक मादा जन्यु से संयुक्त हो पुनः उसमें प्रविष्ट हो जाता है। परिणामस्वरूप दोनों के कोशा रस और केन्द्रबीजों का संयुग्मन होता है और इस प्रकार एक संयुक्त कोशा (*Zygote*) का प्रादुर्भाव होता है। यह संयुक्त कोशा कुछ समय के लिए तो निष्क्रिय रहता है किन्तु शीघ्र ही उसमें एक स्वच्छ प्रक्षेप स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

यह प्रक्षेप क्रमशः बढ़कर संयुक्त कोशा को कृमिवत् (*worm-like*) बना देता है। यही कारण है कि इस अवस्था में संयुक्त कोशा को कृमिरूप (*vermicule*) कहते हैं। इसके कृमि सदृश प्रचलन के कारण इसे चलयुक्ता (*Ookinete*) भी कह सकते हैं। चलयुक्ता मादा एनाफिलीस के आमाशय के आन्तर तल पर रेंगती रहती है और अन्त में उसका भेदन करके श्लेष्मकला (*mucous membrane*) तथा अन्य ऊतियों (*Other tissues*) के बीच पहुंच कर यहां यह वर्तुलाकार हो जाती हैं। तत्पश्चात् यह अपने चारों ओर एक कोष्ठभित्ति का निर्माण करती है। इस दशा में यह बीजाणु-पूर्व कहलाती है। अपनी कोष्ठभित्ति द्वारा आमाशय में एकत्रित रक्त का प्रचूषण करके वृद्धि को प्राप्त होती है। ये कोष्ठ फफोलों के सदृश मच्छरी के आमाशय की बाह्य भित्ति पर उभरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। एक सप्ताह में प्रत्येक कोष्ठ के केन्द्र बीज का विखण्डन होता है और हरेक केन्द्रबीज के चारों ओर कोशा रस एकत्रित हो जाता है तथा इस प्रकार हरेक कोष्ठ के अन्दर बहुत से बीजाणुघट (*Sporoblasts*) तैयार होते हैं। इन बीजाणुघट के परिपक्व होने पर इनकी ऊपरी सतह से अनेक लघु-तर्क-रूप प्ररसीय उभार (*many small spindle shaped protoplasmic processes*) निकलते हैं। तत्पश्चात् उनके केन्द्रबीजों (*nuclei*) का विखण्डन होता है तथा एक एक केन्द्रबीज प्रत्येक उभार में समाविष्ट हो जाता है। अब प्रत्येक कोष्ठ के अन्दर बहुत तर्क्वाकार दात्रबीजों (*sporozoites*) का निर्माण होता है जो अपने अपने कोष्ठभित्ति (*Cyst wall*) के फटते ही मादा एनाफिलीस की शोण गुहा (*haemocoel*) में निकल पड़ते हैं। वहां से ये रक्त प्रवाह द्वारा लाला ग्रन्थि में पहुँच जाते हैं। इस क्रिया में लगभग बारह दिवस लगते हैं।

इस अवस्था में मच्छर में शीत ज्वर के कीटाणुओं को फैलाने की क्षमता आजाती है। मानव रक्त प्रचूषण के समय जब वह मच्छरी लार शुंड (*Proboscis*) द्वारा शरीर से रक्त चूषती है तो इस क्रिया के समाप्त होते ही रक्त में बहुत से दात्रबीज कुछ ही क्षणों में पहुंच जाते हैं और फिर वहां उनका जीवन-चक्र चलने लगता है। इस प्रकार मादा एनाफिलीस एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में शीत ज्वर के कीटाणुओं को पहुंचाकर शीत ज्वर का शीघ्र ही प्रसार कर देती है। इस रोग प्रसारिका (*femal vector*) एनाफिलीस मच्छर के काटने एवं रक्त प्रचूषण के लगभग १५ दिन पश्चात् ही शीत ज्वर के स्पष्ट लक्षण यथा ज्वर, कंपकपी, शारीरिक तापक्रम की वृद्धि, थकावट आदि लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। ऐसे समय में यदि रोगी की यथोचित चिकित्सा नहीं की गई तो वह दुर्बल, रक्तहीन और जर्जर होकर अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः शीत की रोकथाम प्रारम्भ से ही करनी चाहिये। फिर भी यदि जीर्ण हो गया हो तो उसका औषधोपचार इन्जेक्शन आदि विशिष्ट विधियों द्वारा करना चाहिये। सिनकोना वृक्ष की छाल से निर्मित औषधि द्वारा मलेरियाणु के गुणनपूर्व (*Schizont*) तो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं परन्तु उनकी जन्युमाताओं (*Gametocytes*) पर इसका कोई प्रभाव नहीं

पड़ता। अतः निम्नलिखित औषधियां निर्माण कर यदि प्रयोग में लाया जाय तो रोगी के शरीर में प्रविष्ट मलेरियाणु के गुणन-पूर्व के साथ साथ जन्युमाताएं भी शीघ्र नष्ट हो जांयगे। यह मेरा परीक्षित और सफल प्रयोग है जिसके द्वारा चिकित्सक बन्धु लाभ उठा सकते हैं।

मौखिक प्रयोग के लिए—

सिनकोना की छाल ५ तोला, चिरायता ५ तोला, कुचला ½ माशा, कुटकी ५ तोला, नीम की अन्तर छाल १ तोला

निर्माण विधि—उपरोक्त सभी द्रव्यों को कूटकर उसमें ।।। सेर पानी डाल दें और क्वाथ बनावें। जब १२ छँटाक जल अवशेष रहे तो पहले स्वच्छ कपड़े से छान लें और फिर यदि चाहें तो निस्यन्दक पत्र (*Filter Paper*) से छान लें। यह तरल औषधि शीत ज्वर के लिए अत्युत्तम है।

मात्रा—अवस्थानुसार ½ से १½ तोला बराबर जल के साथ दें।

सावधानी—इस औषधि का प्रयोग ज्वर आने के ३-४ घंटे पहले ही करना चाहिये। ज्वर रहने की अवस्था में इसे कदापि व्यवहार न करें।

विशेषता—इसकी दो तीन खुराक के प्रयोग से ही ज्वर का आना एकदम रुक जाता है।

ज्वर की अवस्था में प्रयोग करने योग्य मौखिक प्रयोग निम्न है—

चिरायता २।। तोला, कुटकी २ तोला, मुण्डी २।। तोला, खाने का सोडा (*Soda-bi-car*) १० तोला, घृतकुमारी का गूदा २ तोला।

निर्माण विधि—उपरोक्त सभी को कूट कर पीस लें और दो-दो रत्ती की टिकिया बनावें। २-३ घंटे पर विशुद्ध जल (*water*) के साथ दिन में तीन बार दें।

शीघ्र आशुफलकारिता के लिए एम० ए० बी० निर्मित 'शीत कल्प' नामक सूचिकाभरणौषधि का प्रयोग करें। इससे अतीव लाभ होगा यह मेरा निजी अनुभव है। मैंने स्वयं अपने कई रोगियों पर इसकी परीक्षा करके देखी है।

—डा० महेश्वर प्रसाद, एम० बी० एस० ए०,
आयुर्वेदाचार्य, नारायणी आयुर्वेद फार्मेसी,
मंगलगढ़ (दरभंगा)

:: शेषांश पृष्ठ ७६८ का ::

सुमति सुधा बाढई नित नई।
विषय आस दुर्बलता गई॥

मन स्वस्थ जब समझिये जब हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाये, और विवेक रूपी भूख बढ़ने लगे, विषयों की आशा रूपी दुर्बलता का अन्त हो जाये। तुलसीदास जी की भक्ति रूपी संजीवन बूटी आयुर्वेदीय मृत संजीवन वटी और मृत संजीवन सुरा से कोटानु गुना अधिक गुणकारी है। तुलसीदास जी कहते हैं।

नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग जप दान॥
भैषज पुनि कोटन्ह, नहिं रोग जाहि हरिजान॥

आचार तप ज्ञान यज्ञ दान रूपी करोड़ों औषधियां हैं परन्तु बिना रामभक्ति के यह रोग समूल नष्ट नहीं होते। महाऋषि चरक का भी स्पष्ट कथन है उपधा ही दुःखों का उत्पादक कारण है अतएव सभी द्वन्दात्मक इच्छा द्वैषादिकों का त्याग ही व्याधियों का अन्त है।

उपधा हि परो हैतुर्दुःखदुःखाश्रयपदः।
त्यागः सर्वोपधानाञ्च सर्वः दुखव्यपोहकः॥

—वैद्य श्री जानकीप्रसाद अग्रवाल
दादुल कार्यालय, झांसी

नेत्र सुरक्षा के सफल उपाय

लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल शास्त्री

चक्षु रक्षायां सर्व कालं मनुष्यै-
यत्नः कर्त्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्य रात्रिन्दिवानां,
पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥
(शार्ङ्गधर संहिता)

आयुर्वेद में विविध रोगों के विनाशार्थ विभिन्न उपचारों के उल्लेख के पश्चात् सर्वसुखकारी स्वस्थ्य-वृत्त का संकेत सर्वविदित ही है। शास्त्रोक्त स्वास्थ्य परिपालक नियमों के आचरण से ही रोग-रक्षा पूर्वक सच्चा स्वास्थ्य-मार्ग अपनाया जा सकता है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग की रक्षा एक शास्त्रादिष्ट आवश्यक कृत्य है। समस्त अङ्गों में नेत्रों की प्रधानता तो सभी ने स्वीकार की है। महर्षि चरक ने अपने स्वस्थ्य-वृत्त में 'अतऊर्ध्वं शरीरस्य कार्यमक्ष्य-ञ्जनादिकम्' कह कर आँख को समस्त अङ्गों में मुख्य माना है। बात भी ऐसी ही है क्योंकि कहा है कि

चक्षुः प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधाः ।
घननीहार युक्तानां ज्योतिषामिव भास्करः ॥

नेत्रों को स्वस्थ रख कर सभी सांसारिक सुख अनुभव किये जा सकते हैं। नेत्र वास्तव में, मूक वाणी हैं जिनके द्वारा अपने मनोभावों को दूसरों से व्यक्त किया जा सकता है। तीव्र मनः शक्ति का प्रभाव नेत्रों के ही माध्यम से आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाता है। प्रत्येक शारीरिक व मानसिक स्थिति का प्रभाव अवश्य नेत्रों पर कुछ न कुछ पड़ता ही है यह बात सभी शरीर शास्त्रज्ञ एक स्वर से स्वीकार करते हैं। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि नेत्रों का शरीर व मन से गहरा सम्बन्ध है।

ऐसे उपयोगी अङ्ग की सुरक्षा में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। सम्प्रति अधिकांश व्यक्ति नेत्र रोगों से आक्रान्त दिखाई देते हैं। बहुत से तो नवयुवक एवं बालक चश्मे के इतने आदी हैं कि वे उसके बिना नेत्रविहीन की ही भाँति हैं। नेत्रों में होने वाले रोग और उनके रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ ही रही है। इसका मूल कारण एक मात्र जीवन में कृत्रिमता और कामुकता का आधिक्य ही है। यदि इससे बचा जाय तो निश्चय ही नेत्र रोगों से सुरक्षित रख कर प्रशक्त बनाये जा सकते हैं। निम्न विषय नेत्रों के सुधार में पर्याप्त सहायक सिद्ध हो चुके हैं।

ब्रह्मचर्य की व्यवस्था—

ब्रह्मचर्य और दृष्टिबल का बहुत गहरा सम्बन्ध है। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करने से नेत्रों को पर्याप्त शक्ति प्राप्त होती रहती है जिससे इनमें किसी भी विकृति की संभावना नहीं रह जाती। कहा भी गया है कि 'दृष्टिः तेजोमयी प्रोक्ता शुक्रं तेजश्च केवलम्। तस्मात्दृष्टि बलापेक्षी तेजो वृद्धि समाचरेत्' ॥ हमने कुछ रोगियों को ऐसा देखा है जिनके पिल्ल रोग अधिक शुक्रक्षय से होना लगा था किन्तु उचित ब्रह्मचर्य की व्यवस्था से उनकी स्थिति में संतोषजनक सुधार हुआ। आचार्य सुश्रुत ने नेत्र रोगों के निदान में अति मैथुन का उल्लेख किया है। कामुकता का आधिक्य नेत्रों के लिये अत्यन्त घातक है। अतएव नेत्र सुरक्षा के लिये समुचित ब्रह्मचर्य की सुव्यवस्था सर्वथा श्रेयस्कर सिद्ध हुई है।

त्रिफला का प्रयोग—

नेत्र रोगों में त्रिफला का प्रयोग अतीव गुणकारी हैं। इसका व्यवहार विभिन्न प्रकार से कर के विकृत नेत्रों को लाभ पहुँचाया जा सकता है। त्रिफला के बने हुये हिम से आंखे धोने से उनकी विकृति दूर हो निर्मलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार हिम से यदि नित्य ही शिर धोया जाय तो बार बार पित्त तथा रक्त से पैदा होने वाले नेत्राभिष्यन्द में पर्याप्त लाभ पहुँचता देखा गया है। सोते समय त्रिफला के सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण को घी व शहद के साथ खाने से दृष्टि-

मान्य दूर हो 'अन्यतोवात, रक्तस्राव, अर्जुन (नाखूना), शुक्तिका, और पोथकी प्रभृति रोगों में निश्चय ही आराम मिलता है। 'सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सर्व नेत्रामयाञ्जयेत्'। तथा 'त्रिफला मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्र बलायच' यह शास्त्रोक्त वचन सर्वथा सत्य है। किन्तु यह बात स्मरणीय है कि उपर्युक्त विधि से त्रिफला का सेवन तभी पूर्ण फलप्रद है जब कि जठराग्नि निर्विकार हो और पेट में कब्ज न रह कर शौच खुलकर होता हो। यदि पाचन क्रिया में कोई गड़बड़ी हो तो प्रथम त्रिफला को सेंधा नमक के साथ भोजन में उपयोग करे। पुनः उदर शुद्धि होने पर घी व शहद का क्रम रक्खे। त्रिफला परम चक्षुष्य द्रव्य है। उसके एक मात्र उपयोग से अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

पादाभ्यङ्ग और मार्जन—

'पादाभ्यङ्गस्तु चक्षुष्यो निद्राकृत्पाद रोगहा'। पैरों के तलवों में शुद्ध तैल की मालिश रात्रि को सोते समय व प्रातः सो चुकने के पश्चात् नेत्रों के लिये अमृत तुल्य हितकर है। इसी प्रकार पैरों को सम्मार्जित रखना भी अतीव गुणप्रद है। अधिक उष्ण भूमि पर चलने से नेत्रों को बाधा पहुँचती है। अत्यन्त नंगे पैर गरम भूमि पर चलना नेत्रों की शक्ति घटाता है। वाग्भट्ट में पैरों को उचित रूप से धोना, तैल लगाना और जूते पहनना नेत्र रक्षा के लिए आवश्यक माना है जैसा कि इन श्लोकों से स्पष्ट है—

द्वे पादमध्ये पृथु सन्निवेशे शिरे गतेते बहुधा च नेत्रे।
ता म्रक्षणोद्वर्तन लेपनादीन् पाद प्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥
मलोष्ण सङ्घट्टन पीडनाद्यैस्तादूष्यन्ते नयनानि दुष्टा।
भजेत्सदा दृष्टि हितानितस्मादुपानदभ्यञ्जन धावनानि ॥

अन्य आवश्यक कृत्य—

प्रति दिन प्रातः मध्याह्न एवं सायं मुख में शीतल जल भर कर आंखों में छींटे मारने से नेत्र सशक्त एवं निर्विकार बने रहते हैं। जैसा कि शार्ङ्गधर के इस वचन से स्पष्ट है—

शीतम्बु पूरित मुखः प्रति वासरं
यःकाल त्रयेण नयन द्वितयं जलेन।
आसिञ्चतिध्रुवमसौ न कदाचिदाक्षि
रोगव्यथा विधुरतां भजते मनुष्यः ॥

इस विषय में यह सदा ध्यान रक्खें कि जल स्वच्छ और शीतल ही हो।

अत्यधिक क्षार पदार्थों का सेवन आंख की शक्ति के लिये बाधक है। इसी प्रकार विरुद्ध पदार्थों का प्रयोग भी दृष्टिमान्द्यकारक है। अतएव इनसे बचाव रक्खें। पेट की सफाई अत्यावश्यक है। विजातीय दूषित मल पेट साफ न होने के कारण रक्त में मिल कर दृष्टि को निर्बल बना देते हैं। मुख और दांतो की स्वच्छता दृष्टि साबल्य में परम सहायक है।

सदैव रूक्ष पदार्थों का सेवन, वनस्पति घृत, कटु एवं उष्ण द्रव्य तथा मादक चाय, कहवा आदि के प्रचुर प्रयोग से रक्त दुष्ट हो कर शिरोरोग जन्य नेत्र विकार उत्पन्न हो जाते हैं अतः प्रकृति, देश और बलाबल का विचार कर निज आहार की व्यवस्था करनी चाहिये। उत्तम आहार विहार से नेत्रों में कभी कोई शिकायत उत्पन्न ही नहीं होती।

अहित आहार तथा अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाशयुक्त व चलायमान पदार्थों के अवलोकन का त्याग दृष्टि रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में अष्टाङ्ग हृदय का यह श्लोक सदास्मरणीय है:—

'अहिताशनात्सदा निवृत्ति
र्भृशभास्वचल सूक्ष्मवीक्षणाच्च।
मुनिनानिभिनोपदिष्टमेतत्
परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥

—श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल आयुर्वेदाचार्य,
मन्धना (कानपुर)

सर्पदंश और बूटियों द्वारा चिकित्सा

श्री श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०

वर्षा ऋतु में सर्प अधिक निकलते हैं क्योंकि यह बिलों में रहते हैं और वर्षा में इनके बिलों में पानी भर जाता है अतः इन्हें बाहर आना पड़ता है। सर्पों की अनेक जातियां हैं जिनमें कुछ विषधर हैं और कुछ निर्विष। परन्तु पांव के नीचे आने पर सभी सर्प काट लेते हैं। रहा विष का प्रश्न जिन सर्पों में विष नहीं होता उनके काटने से भी मनुष्य के भयभीत होने से दिल (हार्ट) कमजोर होकर विष प्रभाव होने लगता है क्योंकि चोर और सांप की दहशत (डर) ही प्रसिद्ध है। कितने ही एसे उदाहरण हैं कि मनुष्य कई कई वर्ष बाद केवल डर के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए।

एक दिन एक घर में रात को चारपाई के नीचे सांप था। स्त्री जो चारपाई पर बैठी थी उसने शोर मचाया। घर वालों ने सर्प को मार दिया। सर्प ने स्त्री को छुआ भी नहीं था परन्तु स्त्री उसी दिन से ऐसी पागल सी होगई कि उसे उसी सर्प का ध्यान रहने लगा। घर वालों ने बहुत यत्न किये परन्तु उस स्त्री की मृत्यु होगई। केवल डर के कारण हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ा और वह मर गई।

जंगलों में अनेक प्रकार की बूटियां हैं जिनके द्वारा सर्प विष की चिकित्सा की जाती है। परन्तु हर जगह हर एक बूटी का मिलना सुलभ नहीं। जितनी भी बूटियां सर्प विष को दूर करती हैं वह स्वयं विष ही होती हैं और सर्प उन बूटियों के पत्तों या जड़ को चाटते रहते हैं। सर्पों में उन्हीं बूटियों से विष उत्पन्न होजाता है और वही बूटियां उस विष को समाप्त कर देती हैं। बहुत सी बूटियां ऐसी हैं जिनसे वमन विरेचन हो कर विष शांत होता है और खिलाई जाती हैं। कई ऐसी हैं जिनके केवल अंजन की भांति आंख में लगाने से सर्प विष नष्ट हो जाता है जैसे जमालगोटे का योग।

वह बूटियां जो सर्प विष को नष्ट करने में शत प्रतिशत लाभप्रद हैं यह हैं—

श्वेत निर्बिसी, काली निर्बिसी, गोलाकर कन्द, अनन्त मूल (सारिवा), बांझ ककोड़े की जड़ (कन्द), द्रोण पुष्पी (गोमा या गुम्मा), कसोंधी, सफेद पुनर्नवा या विसखपरा, जमालगोटा, जीव धारियों में मुर्गी का चूजा, दो मुंह वाला सांप जिसे दुमुही कहते हैं सर्प विष की अचूक औषधि हैं।

हमारे अनुभव में दो वस्तुओं ने शत प्रतिशत सफलता दिखाई है और लोगों की जान बचा कर पुनः जीवन प्रदान किया है। हम नीचे वह प्रयोग लिखते हैं—

१—आंखों में लगाने की दवा—

जमालगोटे की गिरी एक तोला, काली मिर्च एक तोला चार कागजी नींबू के रस में खरल करें। जब गोली बनाने योग्य हो जावे तब जंगली बेर के बराबर गोली बना लें। छाया में सुखाकर शीशी में रखलें। जिसको सर्प ने काटा हो गोली पानी में घिस कर या मनुष्य या घोड़े की लार में घिस कर उसकी आंख में लगावें। विष उतर जायेगा। परन्तु इस योग को सर्प काटते ही जल्दी आंखों में लगा देना चाहिए। इस योग में जमालगोटा अशुद्ध ही डालना पड़ता है। बाजार से जमालगोटा लाकर छील कर कार्य में लाओ। गोबर में पचाने या जीभी निकालने की जरूरत नहीं। यदि शुद्ध जमालगोटा डालोगे तो लाभ नहीं होगा।

शार्ङ्गधर संहिता में जमालगोटे के बीजों का योग इसी प्रकार दिया है। परन्तु नींबू की ... देने को लिखा है। वह योग भी अच्छा है। ... पच्चीस वर्ष से अपना दिया हुआ योग तैयार कर ... जनता की मुफ्त सेवा कर रहे हैं। पूर्ण ...

दायक है।

योग नं० २—श्वेत निर्बिसी

पहचान—यह बूटी कैर की जड़ के आस पास मिलती है। पत्ते कुछ लम्बे हरे रंग के होते हैं, पत्तों में मामूली धारी होती हैं। इसका पौधा एक फुट तक ऊँचा होता है। खोदने पर मूली सी निकलती है। रंग बादामी होता है। इस मूली सी का रंग अन्दर से श्वेत या पीला होता है। जो पौधा बहुत दिन का हो उस का रंग पीला पड़ जाता है।

बूटी को फाबड़े से खोद कर निकाल लें और पानी से धो कर उस मूली के आकार की जड़ को चाकू से छील कर छिलका दूर करें। काट कर टुकड़े बनालें और छाया में सुखा कर शीशी में रख लें।

विधि-जब किसी को सर्प काट ले तो एक तोला चिलम का टीटा (जो चिलम में अन्दर जमा रहता है) और एक तोला या छः माशे यह जड़ मिला कर सिल पर पानी डाल कर चटनी की तरह बारीक पिसवा लें। और खूब बारीक हो जाने पर आधी दवा चीनी के प्याले में रख दें और आधी दवा को १ छटांक पानीमें घोल कर रोगी को पिलादें। और पांच सात मिनट बाद असली घी जितना रोगी पी सके पिलादें। बाकी बची हुई दवा तीन घंटे के बाद एक छटांक पानी में घोल कर फिर पिलादें। और खाने को कुछ न दें। यदि भूख लगे तो घी पिलाएं। रात को या दिन को रोगी को नींद आये तो सोने न दें। यदि नींद आये तो रोगी को तमाचा मार कर भी चेतन्य करें। यदि रोगी सो गया तो जहर शरीर में फैल जायगा और मृत्यु हो सकती है। अगले दिन सवेरे रोगी की हालत देखें और दवा की आवश्यकता नहीं होगी।

खिलाने की दवा के साथ साथ रोगी के दंश स्थान को भी गुड़ के शर्वत से नीम की टहनी से आठ दस घंटे तक निम्न प्रकार से झारते रहें-

अक्सर सांप हाथ या पांव में काटता है। यदि हाथ की अंगुली या हाथ में काटे तो इस प्रकार झारना चाहिये--

गुड़ का शर्वत इस बर्तन में गिरता रहेगा।

यदि हाथ में काटा हो तो इस प्रकार झारो

आध सेर गुड़ लेकर तीन सेर पानी में डाल कर घोल लो। एक परात या किसी और चौड़े मुंह के बर्तन में शर्वत को रख कर नीम की टहनी से झारो और शरबत को घंटे दो घंटे के बाद फैंक दो तथा नया शर्वत ले लो।
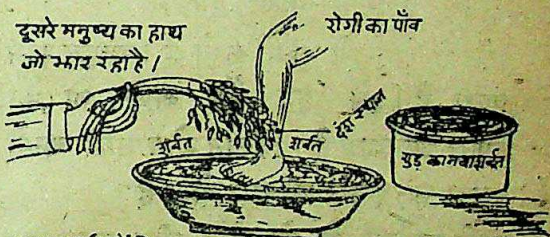
इस बर्तन में गिरता रहेगा पाँव बर्तन के अन्दर रखा होगा।

यदि पांव में काटा हो तो इस प्रकार झारो

क्योंकि विष के कारण शोथ अधिक होती है और हाथ या पाँव विष की अधिकता से फटने के सदृश हो जाते हैं इसीलिए झारना चाहिए। शोथ बढ़ती रहे कोई चिन्ता नहीं।

२४ घंटे तक रोगी को घी के अतिरिक्त कोई वस्तु खाने को न दें। तीसरे दिन प्रातः यदि रोगी स्वस्थ है तो बेसन की रोटी अलोणी घी में भिगो कर दें।

रोगी खीर न खाये। खीर का परहेज साल भर तक रख ले तो अच्छा है। हम रोगी को स्वस्थ हो जाने पर बेसन की रोटी तथा घी खिलाते हैं या प्याज कच्ची रोटी से खिला दिया करते हैं।

घी का प्रयोग रोगी को कुछ दिन तक अधिक रखना चहिए।

श्वेत निर्विसी हमारे पास हर समय रहती है। वैद्य बन्धु अपने आस पास तलाश करके जनता की सेवा करें। यदि आप बूटी भी तलाश नहीं कर सकते तो इतना तो अवश्य करें कि जमालगोटे वाला योग बनालें और मुफ्त दिया करें। आँख में अंजन करायें। विष दूर होगा। उपरोक्त अनुभवों के अतिरिक्त और भी ऐसे योग हैं जिनसे वैद्य वन्धु लाभ उठालें। और समय पर जो भी औषधि मिल जाये उसी से रोगी की जान बचावें।

शारिवा (अनन्तमूल) की जड़–

-विधि–शारिवा की जड़ एक तोला, काली मिर्च २१। एक छटांक पानी में पीस कर दो तीन बार पिलाओ और ऊपर से घी पिलाओ। नींद न आने दो।

द्रोणपुष्पी (गुम्मा–गोमा-धुर्की)

गाँव के लोग इसे गुम्मा कहते हैं। संस्कृत नाम द्रोणपुष्पी है। इसे गाय भैंस खाले तो पेट पर अफरा आ जाता है। किसान लोग सभी जानते हैं। इसका फूल इस्फंज की तरह होता है।

गुम्मे का रस दो–दो तोले तीन चार बार पिलाना चहिए।

पुनर्नवा(विष खपरा, श्वेत गदहपुरना)–

अनन्त मूल की भाँति काली मिर्च के साथ एक तोला घोट कर पिलाओ।

बाँझ ककोड़े का कन्द (जड़)–

यह शकरकन्दी की भांति लाल से रंग की जड़ होती है। कई बार इस के नीचे सर्प मिलते हैं।

एक तोला जड़ पानी में पीस कर पिलाओ। घंटे २ बाद पिलाते रहो विष उतर जायेगा। घी प्रत्येक योग पर पिला देना चहिये।

दो मुँह वाला सांप (दुमुँहीं) (सर्पविष की अचूक औषधि)–

दुमुँही लेकर उस के टुकड़े छोटे छोटे करके छाया में सुखालो और शीशे के वर्तन में रख लो।

जब किसी को सर्प काटे तो दंश स्थान पर एक टुकड़ा लगा दो। उसमें जहर भर कर टुकड़ा फूल जायेगा। उसे उतार कर दूसरा लगा दो जब टुकड़ा फूलना बन्द हो जाये तो समझ लो कि शरीर में विष नहीं रहा। जिन टुकड़ों में जहर भर गया है उन्हें पृथ्वी में गढ़ा खोद कर दबा दो।

मुर्गी के चूज़े–

मुर्गी के चूज़े की गुदा के बाल तोड़ कर दंश स्थान पर लगा दो वह दंश स्थान पर चिपट जायगा और बिष को खेंच लेगा। विष भर जाने पर नीचे गिर जायेगा। पश्चात् दूसरा चूज़ा लगा दो। उसमें भी विष भर जाये तो तीसरा लगा दो। जब विष नहीं रहेगा तो चूज़ा नहीं मरेगा।-मनुष्य स्वस्थ हो जायगा।

—श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०,
१५५६/२६ नाई वाला करौल बाग़, दिल्ली

आयुर्वेद की दृष्टि में श्वास रोग

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

[वर्ष ३४ अङ्क ६ से आगे]

प्राणाद्यु दानानुगतः का रहस्य—

यहां यह भी रहस्य विचारणीय है कि उदानुगतः शब्द उदानेन अनुगतः इस तृतीया तत्पुरुष तथा उदानम् अनुगतः इस द्वितीया तत्पुरुष इन दो प्रकारों से बनता है और इस तरह पूर्ण विग्रह में प्राण का अनुगमन उदान करता है और द्वितीय विग्रह में उदान का अनुगमन प्राण किया करता है।

यद्यपि दोनों ही स्थितियों में कास का एवं तदनुबन्धी श्वास का भी होना शास्त्र सिद्ध है। किंतु द्वितीय विग्रह वाले अर्थ में रोग की कष्टाधिक कारकता अभिव्यंजित है जिसमें ओजस और बल के क्षय के साथ साथ वर्ण का क्षय भी हुआ करता है।

इस रहस्य को हृदयङ्गम करने के लिये आचार्य वाग्भट का यह कथन है कि–

प्राणादयस्तथान्योऽन्यमावृण्वन्ति यथाक्रमम् ।
सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणं च तत् ॥५१॥
निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः ।
हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनोदान आवृते ॥५२॥
उदानेनावृते प्राणे वर्णौजोबलसंक्षयः ॥५३॥
दिशानया च विभजेत् सर्वमावरणं भिषक् ।
स्थानान्य वेक्ष्य वातानां वृद्धि हानिं कर्मणाम् ॥५४॥
(अष्टांग हृदय निदान १६ अ०)

अर्थात्—जिस प्रकार पित्त और कफ से प्राणादि वायु आवृत हुआ करते हैं उसी प्रकार प्राणादि वायु यथाक्रम परस्पर को आवृत्त किया करते हैं। यह आवरण कुल मिलाकर २० प्रकार का होता है। ५१॥ प्राण से उदान का आवरण होने पर निःश्वास और उच्छ्वास लेने में रुकावट, जुकाम, शिर का भारीपन, हृद्रोग तथा मुंह का सूखना–ये लक्षण होते हैं। ५२॥ उदान से प्राण का आवरण होने पर बल, वर्ण और ओजस् का क्षय होता है। ५३॥ इस प्रकार से वैद्य सभी आवरणों का विभाग वायु के स्थानों एवं कार्यों की वृद्धि और हानिः को देखते हुए करें। क्योंकि–

विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते ।
स्यात्तयोः पीड़नाद्धानिरायुषश्च बलस्य च ॥५८॥
(अष्टांग हृदय नि० १६)

अर्थात्—प्राणवायु विशेष रूप से जीवन कहा जाता है और उदान वायु बल कहा जाता है। इन दोनों में परस्पर पीड़न होने से आयु और बल की भी हानि होगी। तथा—

आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाताश्च वत्सरस्थिताः ।
प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वानुपक्रमाः ॥५६॥
(अष्टांग हृदय नि० १६)

अर्थात्—एक दूसरे से आवृत वायु यदि अज्ञात रह गये या ज्ञात होकर भी एक वर्ष रह गये तो प्रयत्न से भी दुःसाध्य वा अचिकित्स्य ही हो जायगें।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि अमूर्त वायु का परस्पर आवरण कैसे होगा ? क्योंकि आवरण तो मूर्त्त पदार्थ का कार्य माना जाता है। इस प्रश्न का समाधान अरुणदत्त ने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। उनका कहना है कि–

"ननु च पित्तादिभिः प्राणादीनामावरणंयुक्तम् । परस्परन्तु प्राणादीनां यदावरणं तदमूर्तत्वान्नानुपपन्नमिव मन्यामहे। ब्रूमः, द्वयोर्वातयोरन्योन्यमुपसर्पतोर्बलवता दुर्बलस्याभिघातेन गतिभगात् स तेनावृत्त मार्ग इत्युच्यते। तस्माद् वातानामपि परस्परमावरणंयुक्तमेव ॥"

[अष्टांग हृदय नि० १६, ५३ श्लोक की टीका]

अर्थात्—प्रश्न–यह तो ठीक है कि पित्त आदि से प्राण आदि वायु का आवरण हो। किन्तु प्राणादि वायु का परस्पर आवरण तो वे ठीक सा मालूम होता है। क्योंकि वायु सभी अमूर्त्त हैं और आवरण मूर्त्त ही कर सकते हैं।

उत्तर–दो वायु जब एक दूसरे के निकट पहुंचते हैं तो बलवान् वायु से दुर्बल वायु का अभिघात हो जाता है और दुर्बल का गतिभंग होजाने से दुर्बल वायु बलवान् वायु द्वारा आवृत मार्ग हो गया है, ऐसा कहा जाता है। इसलिये वायुओं का भी परस्पर आवरण ठीक ही है।

इस स्पष्टीकरण के बाद चिकित्सकों को यह भी समझने में कठिनाई नहीं होगी कि निश्वासोच्छ्वास-भंग जहां उदानानुगत प्राण वायु का अस्तित्व बताता है वहां ऊर्ध्वश्वास उदानानुगत प्राण का सूचन करता है।

औषधि ग्राणज श्वास अन्तर्भाव—

यह आयुर्वेदीय विज्ञान की विशेषता है कि स्ट्रामोनियन (*Sramonium*) तथा एड्रीनलीन (*Adrenaline*) आदि द्रव्यों के श्वासनान्तः प्रवेश-जन्य श्वास भी इसी कोटि के अन्दर अन्तर्भूत होता है। क्योंकि रूक्षण साधर्म्यात् रजस् पद से सभी प्रकार के ऐसे द्रव्यों का स्पष्टतः ग्रहण होता है जो प्राणवह स्रोतों में क्षोभ (*irritation*) पैदा किया करते हैं।

कहना न होगा कि आयुर्वेदोक्त इसी कोटि में अत्यानुभविक श्वास (*allergic asthma*) से लेकर लक्षणजश्वास (*Symptomatic asthma*) तथा हृदधिग्रंन्थिक श्वास (*Thymic asthma*) को छोड़ अन्य सभी आजाते हैं।

अन्नोदकवाही स्रोतोदक दोष–

आचार्य चरक आदि आयुर्वेद के आचार्यों को केवल प्राणवाही स्रोतोविकृतिज श्वास के परिदर्शन से सन्तोष नहीं हुआ और वैज्ञानिक वास्तविकता बाद के पुजारी होने के कारण उसका और भी व्यापक निदान किया गया है। आचार्य चरक का कहना है कि—

> यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफ पूर्वकः।
> विष्वग् व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः॥
> च० चि० अ० १७ सू० ४२

अर्थात्–जब स्रोतों—प्राण, उदक तथा अन्नवह स्रोतों–को संरोध कर कफपूर्वक वायु संरुद्ध होकर इधर उधर (सभी ओर) गमन करता है तो श्वास रोग पैदा करता है।

चरक के प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने यद्यपि स्रोतांसि का अर्थ प्राणोदक वाहीनि किया है, किन्तु यह उचित नहीं जंचता। क्योंकि उन्होंने उस अर्थ में कारण बताते हुए "प्रकृत्वात्" कहा है जो हिक्का रोग प्रकरण में—

> "प्राणोदकान्न वाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिल: ॥१८॥"
> (च० चि० १७)

से कथित 'प्राणोदकान्नवाही' ही हो सकते हैं। इस कथन में एक पुष्टि और है कि माधव निदान-कार ने भी इस श्लोक को अविकलरूप से हिक्का श्वास निदान (श्लोक १७) में लिया है और आतंक दर्पणकार ने "प्राणोदकान्नवाहीनि" स्रोतांसि स्पष्ट कहा है और माधवकार ने—

> प्राग्रूपं तस्य हृत् पीड़ा शूलमाध्मानमेव च।
> आनाहोवक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च॥१८॥

अर्थात्–हृदय प्रदेश में पीड़ा, शूल, आध्मान, आनाह, मुख वैरस्य और शंख प्रदेश में पीड़ा-ये श्वास रोग के पूर्वरूप हैं।

जो पूर्वरूप गिनाये हैं उनमें आध्मान और आनाह तो स्पष्ट रूप से अन्नवह स्रोतों की विकृति के परिचायक लक्षण हैं। और आचार्य चरक ने आगे चलकर स्वयं भी—

> "कारणस्थानमूलैक्यादेकमेव चिकित्सितम् ॥"
> —च० चि० अ० १७

अर्थात—कारण, स्थान, मूल इनकी एकता के चलते हिक्का श्वासका एक ही चिकित्सा प्रकार है। कह कर स्पष्ट कर दिया है, दोषाधिष्ठान भी दोनों के एक ही हों। फलतः 'प्राणोदक वाहीनि' इस चक्रपाणिदत्त के पाठ को लेखक प्रमाद् मानकर प्राणोदकान्नवाहीनि के रूप में पढ़ना अधिक वैज्ञानिक होगा और इस दृष्टिकोण से आहार, अन्न-जल तथा प्राणन-श्वास प्रश्वास कर्म के स्रोतों की दुष्टि से होगी जिसमें आयुर्वेदीय पद्धति से अन्नवह तथा जलवह स्रोतों का विकृत होना, पित्त विकृति का सूचक होगा।

आयुर्वेद के अनुसार उदकवह स्रोतों का मूल तालु तथा क्लोम अन्नवह स्रोतों का मूल आमाशय और वामपार्श्व हैं।

कहना न होगा कि ये स्रोत दुष्ट होकर प्रत्यासन्न स्रोतों का दूषण स्वदोष संक्रांति के द्वारा कर दिया करते हैं। जिससे सारी शरीर क्रियाएँ विकृत भावापन्न हो जाया करती हैं और शरीर में अनेकानेक रोग पैदा किया करती हैं।

आचार्य चरक ने इन दोनों स्रोतों की दुष्टि का कारण भी बताया है। उनका कहना है कि–

औष्ण्यादामाद् भयात् पानादति शुष्कान्न सेवनात् ।
अम्बुवाहीनि दुष्यन्ति तृष्णायाश्चाति पीड़नात् ॥

अतिमात्रस्य चाकाले चाहितस्य च भोजनात् ।
अन्नवाहीनिदुष्यन्ति वैगुण्यात् पावकस्यः च ॥

[चरक विमान ५ अ०]

अर्थात्–उष्णता, आमदोष, भय, अतिरिक्त पान, अतिशुष्क अन्न भक्षण तथा तृष्णा द्वारा अति पीड़न से उदकवाही स्रोत दूषित हुआ करते हैं। अतिमात्र भोजन, अकाल भोजन, अहितकर भोजन तथा जठराग्नि की विगुणता से अन्नवाही स्रोतों का दूषण हुआ करता है।

आन्तर दोषोत्थश्वास रोग—

निःसंदेह, मूलतः उदकान्नवाही स्रोतों की दुष्टि से उत्पन्न श्वास रोग आन्तर दोषोत्थ श्वास रोग के परिचायक हैं जिनकी संप्राप्ति बतावे हुए आचार्य चरक ने स्पष्ट कहा है कि–

''अतीसार ज्वरच्छर्दि प्रतिश्याय क्षत क्षयात् ।
रक्तपित्तादुदावर्ताद् विसूच्यलसकादपि ॥
पाण्डुरोगाद् विषाच्चैव प्रवर्तेते गदा विभो ॥

[चरक चिकित्सा १७ अ०]

अर्थात्–हिक्का और श्वास ये दोनों रोग, अतिसार, ज्वर, वमन, जुकाम, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसूचिका, अलसक, पांडु रोग और विष से उत्पन्न होते हैं।

आधुनिक मतानुसार यह रोग रक्ताधिक्य जनित हृदयातिपात (Congestive heart failure), रक्तमूत्रता (Uraemia), मधुमेह सन्यास, अक्षि गलगण्ड (Exophthalmic goitre), जानपदिक शोथ, गम्भीर रक्तक्षय, गम्भीर कामला, अंशुघात, तीव्र संक्रामक ज्वर, घनास्रता (Thrombosis), मस्तिष्क तथा सुषुम्ना शीर्षगत फिरंग रोग, उदरावरण प्रदाह, आध्मान, जलोदर, सगर्भता, हिस्टीरिया, त्रास आदि से वातनाद्युत्कर्ष, वातरक्त (Gout) आदि रोगों में उपद्रव के रूप में तथा क्लोरल हाइड्रेट, मल्ल के विष प्रकोप से होना माना गया है।

श्वास रोग के भेद—

माधवकार के अनुसार इस श्वास रोग के ५ भेद होते हैं। उनका कथन है कि—

महोर्ध्वच्छिन्नतमकं क्षुद्र भेदैस्तु पंचधा ।
भिद्यते समहाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥१५॥

अर्थात्—महाव्याधि श्वास रोग एक होता हुआ भी विशेषतानुसार महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्न श्वास, तमक श्वास और क्षुद्र श्वास भेद से ५ प्रकार के होते हैं।

"श्वासस्तु भक्त्रिकाध्मान सम वातोर्ध्वगामिता"

इस आचार्यान्तर के परिभाषणानुसार वेगवत् ऊर्ध्ववातत्वरूप श्वासत्व साधर्म्येण सभी श्वास रोग मूलतः एक ही हैं। किन्तु लक्षण भेदजनित पंचभेद कथन कर 'पंचधा' इसलिये कहा गया है कि तमक और प्रतमक ये दोनों श्वास एक ही माने जांय, दो नहीं। और इनमें दोषों की उत्कटता के बारे में भी तन्त्रान्तर में यह बताया गया है कि—

"वातेन क्षुद्रकः, श्लेष्मभूयिष्ठः तमकः स्मृतः।
छिन्नः पित्त प्रधानःस्यात्तु अन्यौ मारुतकोपजौ॥
[निदानटीका आतंक दर्पण]

अर्थात्— क्षुद्र श्वास वात से, तमक श्वास कफाधिक्य युक्त, छिन्नश्वास पित्त प्रधान तथा अन्य दो श्वास ऊर्ध्व श्वास और महाश्वास वायु प्रकोप से होने वाले कहे गये हैं।

माधव निदान में भी एक प्रक्षिप्त श्लोक मिलता है कि—

वाताधिको भवेत्क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः।
कफ वाताधिकश्चैव संसृष्टश्छिन्न संज्ञकः॥
श्वासो मारुत संसृष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः॥
[माधव निदान, श्वास निदान]

क्षुद्रश्वास वातोल्वण, तमकश्वास कफोल्वण, छिन्नश्वास कफ वातोल्वण तथा महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास वायु संसृष्ट बताये गये हैं।

यद्यपि इन दोनों मतों में पूर्व मत में छिन्न श्वास पित्त प्रधान तथा परमत में छिन्न श्वास कफ वातोल्वण बताया गया है किन्तु परमत में 'संसृष्टः' शब्द इस बात का सूचक है कि पित्तसार भी उसमें रहता है। जो छिन्न श्वास के 'दह्यमाने न वातानां' तथा 'परिशुष्कास्यः' इन कई एक लक्षणों से स्पष्ट प्रमाणित होता है।

"न कासेन विनाश्वासः कासेन श्लेष्मणा विना"

इस हारीत सिद्धान्तानुसार कफाधिक होना भी सिद्ध होता है।

आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार दोष दूष्यानुबन्धानुकारी इन ५ श्वासों को दो भेदों में बांटना आसान होगा। १-साधारण श्वास तथा २-सांघातिक। प्रथम कोटि में छिन्न श्वास को तथा द्वितीय कोटि में अन्य ४ श्वासों को रखना चाहिए।

श्वास का लक्षण—

क्षुद्रश्वास का लक्षण लिखते हुए आचार्य चरक ने कहा है कि—

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्ग प्रबाधकः॥
निहन्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे।
न च भोजन पानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम्॥
नेन्द्रियाणां व्यथां नापि कांचिदुत्पादयेद्रुजम्।
स साध्य उक्तो बलिनः..............॥
[चरक चिकित्सा १६ अ०]

अर्थात्—रूक्षता और आयास से कोष्ठ में उत्पन्न स्वल्पवात जब ऊपर को चढ़ता है तो उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं। यह अत्यन्त कष्ट देकर अंगों को बाधा नहीं पहुँचाता है। यह शरीरावयवों को अन्य श्वास रोगों की भांति न तो आघात ही पहुँचाता है और न रोगी को सताता ही है और न तो यह भोजन-पान आदि की उल्लसित गति को ही निरुद्ध करता है और न किसी भी प्रकार की इन्द्रियों में व्यथा ही पैदा किया करता है। यह बली व्यक्ति के लिये साध्य श्वास रोग है।

सामान्य परिश्रम से अधिक श्वास फूलना शारीरिक रूक्षता और बलक्षय की निशानी है जो आधुनिक पद्धति के अनुसार आयासजश्वास (*exertional asthma*) कहा जायगा। इसका संबन्ध द्विपत्र कपाट (*miltral valve*) के रोगों किंवा वाम निलयातिपात (*left ventricular failure*) से रहता है। रोगी के बल मात्रानुसार पूर्ण बली को सौम्यक्षुद्र श्वास होता है जो परिश्रम से विरत होने पर शीघ्र ही बन्द होजाता है। मध्यबली को सामान्य क्षुद्रश्वास का आक्रमण होता है जिसमें साधारण खांसी आना, गले में खुरखुराहट, यकृत् स्थल को दबाने से साधारण दर्द भी होता है।

रोग साधारणतः सन्ध्याकाल में आरंभ होता है। और पुराना होजाने पर पांव के टखनों के पास साधारण सूजन भी होती है।

हीन बली रोगी को यह क्षुद्रश्वास भी गंभीर श्वास हुआ करता है जिसमें आक्रमण का चिर अनुबन्धत्व बना रहता है और मातृका शिराओं (Jugular veins) में स्फुरण, अनियमित नाड़ी तथा हृदय का अनुप्रस्थ व्यास (*transverse diametre*) बढ़ जाता है। किसी किसी रोगी को गुल्फ शोथ भी देखा जाता है। और इस तृतीय अवस्था को पाकर रोगी के नष्ट बली होजाने पर यह प्राण हर बन जाता है।

तमक श्वास—

क्षुद्रश्वास के बाद आसान श्वास रोगों में तमक का स्थान है। इसका लक्षण आचार्य चरक ने लिखा है कि—

प्रतिलोमंयदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्यश्लेष्माणं समुदीर्य च ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा।
अतीव तीव्र वेगं च श्वासं प्राण प्रपीड़कम् ॥
प्रताम्यत्यति वेगाच्च कासते सन्निरुध्यते।
प्रमोहं कासमानश्च सगच्छति मुहुर्मुहुः ॥
श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दुःखितः।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥
अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्।
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वास पीड़ितः॥
पार्श्वेतस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ।
विशुष्कास्यो मुहुःश्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥
मेघाम्बुशीतप्राग् वातैः श्लेष्मलैश्चाभिवर्धते ।
सयाप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वास्यान्नवोत्थितः ॥
[चरक चिकि० १७ अ०]

अर्थात्—वायु प्रतिलोम होकर जब स्रोतों में जाती है तब वह गला और शिर को पकड़ कर कफ को (विशेष रूप से) कुपित कर पीनस को उत्पन्न करती है। उस पीनस से श्वासवह नलिकायें अवरुद्ध हो जाती हैं और घुरघुर (घर-घर) शब्द से युक्त प्राणों को कष्ट देने वाला अत्यन्त तीव्र वेग वाला श्वास विकार पैदा हो जाता है। इस रोग का रोगी श्वास के वेग से अत्यन्त बेचैन हो जाता है। दम घुटने की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जोरों की खांसी होती है और खांसते खांसते रोगी बारम्बार मूर्च्छित हो जाता है। कफ नहीं छटने पर रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है और कफ छट जाने पर थोड़े समय तक आराम मिलता है। कण्ठ में एक प्रकार की खुसखुसी उठती है और रोगी कष्ट से बोल नहीं पाता, लेटे रहने पर निन्द्रा नहीं आती। दोनों पार्श्वों को वायु जकड़ लेता है। पार्श्वों में पीड़ा होती है। बैठे रहने पर थोड़ा आराम मिलता है। गर्म पदार्थों को वह पसन्द करता है। आंखें उलटी सी रहती हैं, ललाट स्वेद युक्त रहता है और मुंह तथा कण्ठ सूखा रहता है। बारम्बार श्वास का दौरा आता है। मेघ, जल (वर्षा), शीत और पूरबी हवा से तथा कफकारी आहार विहार से रोग बढ़ता है। यह तमक श्वास (वस्तुतः) याप्य है किन्तु नवोत्थित होने पर साध्य भी हो सकता है।

आधुनिक मान्यताओं के अनुसार यह तमक श्वास मुख्यतः श्वासनलिका श्वास (bronchial asthma) है जिसे आक्षेपिक प्रकार के होने के कारण आक्षेपिक श्वास (spasmodic asthma) भी कहा जाता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य चिकित्सक श्री ब्यूमाउण्ट ने इसके तीन कारण माने हैं—

१. वंशानुगति, २. योनि तथा ३. आयु।

वंशानुगति श्वास रोग उन परिवार में पाया जाता है जिनमें अनूर्जता वृत्ति (allergic diathesis) वंश परम्परा से आया करती है।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि यह वंशानुगत श्वास रोग उन व्यक्तियों में पाया जाता है जिनका वक्ष पतला और अंशफलक अधिक

उभड़ा हुआ पाया जाता है।

यौन तमक श्वास अधिकतर पुरुषों को हुआ करता है। स्त्रियों के सौम्य तत्व भूयिष्ठ होने के कारण श्लेष्मा का 'समुदीरण' मेरे खयाल से अत्यंत आसान नहीं रहने के कारण स्त्रियों में यह प्रायः बहुत कम देखा जाता है।

आयुज तमक श्वास साधारणतः बचपन या आरंभिक यौवन में हुआ करता है। किन्तु इसका उग्र रूप वृद्धावस्था में देखा जाता है जब कि अवस्थाकृत शारीर बल क्षीण होने लगता है।

कई एक वैज्ञानिकों के अनुसार इस रोग की उत्पत्ति सुषुम्ना शीर्ष में अवस्थित श्वास केन्द्र की विकृति से होती है जिसके कारण प्राणवहा नाड़ी की शाखायें अत्यधिक क्रियाशील होकर श्वासनलिका स्तम्भ किया करती हैं। 'ग्रीवां शिरश्च संग्रह्य'—इस आचार्योक्ति का तात्पर्य भी कुछ इसी प्रकार का रहा होगा।

डाक्टर ब्यूमाउन्ट का कहना है कि इस रोग का इतिहास बताते समय रोगी या तो यह बताता है कि बचपन में उसे *eczema* हुआ था या श्वास नलिका प्रदाह (*bronchitis*) या श्वास-नलिका-फौफ्फुस प्रदाह (*broncho-pneumonia*) हुआ था।

उनका यह भी कहना है कि खास-खास जगहों में इस रोग का आक्रमण रात में हुआ करता है और रोगी सोने के समय तक बिलकुल ठीक रहता है किन्तु २ बजे रात के करीब श्वासकृच्छ्रता का अनुभव करता हुआ जागता है।

इसके आक्रमण के समय श्वास नलिका पेशियों (*bronchial muscles*) में आकुंचन होता है और बहिः श्वसन (*expiration*) उसके साथ रहता है। इसके अतिरिक्त रक्त संचय या श्लैष्मिक कलाओं में शोथ रहता है और आक्रमण के अन्त में श्लेष्मा निःसरण में वृद्धि होती है। फेफड़े अधि-विस्फारित (*overdistended*) हो जाते हैं जिसमें वायु का अन्तःप्रवेश तो अपेक्षाकृत आसानी से हुआ करता है किन्तु बहिः प्रक्षेप में कठिनाई होती है। इसका परिणाम वातोत्फुल्लता (*emphysema*) हुआ करती है।

मृत्यूत्तर परीक्षण में फेफड़ों में कुछ भी नैदानिक परिवर्तन प्राप्त नहीं होता है।

आक्रमणकालीन परीक्षण में रोगी के चेहरे का पीला होना स्पष्ट लक्षित होता है। ओठों और कानों की श्यामता भी परिलक्षित हो सकती है। गम्भीर-श्वास कष्ट रहता है और अधः श्वास अल्प तथा श्रम साध्य होता है और ऊर्ध्वश्वास दीर्घ तथा शुष्क घरघर ध्वनियुक्त हुआ करता है। वाङ्नाड़ीध्वनि (*vocal resonance*) साधारणतः क्षीण रहती है। नाड़ी अधिकतर तीव्र एवं दुर्बल रहा करती है और रक्त में उषधियूर (*eosinophilia*) ५० प्रतिशत तक पाया जाता है।

इस रोग में जैसे जैसे कफ छंटकर निकलता है वैसे वैसे वेग कम होते भी देखा जाता है।

थूक की परीक्षा करने पर कर्शमान कुण्डलक (Curschmann's spirals) पाये जाते हैं जिनमें गोलाकार लिपटे हुए श्लेष्मतन्तु रहते हैं और साथ ही कुछ श्वेत कण (leucocytes) तथा उषसिदूर कोषा (eosinophil cells) रहते हैं। थूक में जैक भास्वराम्ल लवण (spermin phosphate) जनित अष्टशीर्ष चार कौट लेडन के रवे (Octahadral charcot-leyden crystals) भी पाये जा सकते हैं।

यह आक्रमण दो में घण्टे या उससे अधिक काल तक भी जारी रहता है किन्तु फेफड़ों में घरघराहट दो-एक दिन तक बनी रहती है। जो वक्ष परीक्षक यन्त्र द्वारा सुनी जा सकती है। आक्रमण समाप्त होने पर रोगी शान्त होकर निद्रामग्न सा हो जाया करता है।

—क्रमशः।

अपामार्ग

श्री तारादत्त त्रिपाठी

यह एक भारत प्रसिद्ध अनेक रोग नाशक 'बूटी' है। वर्षा ऋतु में यह पर्वतीय स्थानों में विशेष कर पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक रक्त (लाल) दूसरा-श्वेत। श्वेत की डंडी, पत्ते हरे फूल श्वेत, एवं रक्त की डंडी, पत्ते फूल लाल ही होते हैं। केवल इन दोनों के बीज श्वेत होते हैं।

अपामार्ग के भाषान्तर नाम-संस्कृत में-अपामार्ग। हि० में चिरचिटा, लटजीरा, साजी ओंगा, पुठकंठा। बं०-अपांग, म०-अघाड़ा, क० उतरणे, चिरचिरा। इं०-रफचेफट्री (*Rough cheff tree*) लै. एफिरेथिस एस्पिरा (*Aphyrathis aspera*) फा०-खारवास गोता अ०-अत्कम। ऐसे ही निघण्टु में भी—

अपामार्ग नाम गुण—

अपामार्गस्तु शिखरी किणही खर मंजरी।
अधः शल्यः शैखरिकः प्रत्यक्पुष्पी मयूरका॥

अपामार्ग, शिखरी, किणही, खरमञ्जरी, अधः शल्य, शैखरिक, प्रत्यक्पुष्पी, मयूरका यह नाम श्वेत अपामार्ग के हैं।

अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनः कफवातजित्।
निहन्ति दद्रू सिध्मार्शः कण्डु शूलोदरा रुचीः॥

अपामार्ग सारक है, तेज है, दीपन है, कफ, वात का मर्दन करता है। दाद, सिध्म, अर्श (बवासीर), (बवासीर), खाज, शूल, उदर रोग, अरुचि इनको नाश करता है।

रक्तापामार्ग नाम गुण—

अन्योरक्तवृन्त फलो वशिरः कपि पिप्पली।

वृन्तफल, वशिर, कपि पिप्पली ये नाम रक्त-अपामार्ग के हैं—

अपामार्गोऽरुणोवात विष्टम्भी कफ नाशनः।
ऊनःपूर्व गुणे रूक्ष स्तत्पत्रं रक्तपित्तनुत्॥

यह वात एवं विष्टम्भ को करता है, कफ नाशक है, रूखा है, इसका पत्र (पत्ता) रक्तपित्त नाशक है। कहीं कहीं इसको वांगा, मांगा, आधाभारा, पुठकंटा भी कहते हैं, यह प्रायः सर्वत्र सुलभ है। यह क्षुप लगभग ३ या ४ फीट ऊंचा होता है। इसके पत्ते ½ से १½ इञ्च तक चौड़े २ से २½ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसकी प्रत्येक शाखा वितस्ति (बालिस्त) मात्र में गांठ सी होती है। इन्हीं गांठों से शाखायें (त्रिशूलाकृति) एवं दो दो पत्ते निकलते हैं, उन्हीं पत्तों की जड़ों से छोटी छोटी कांटेदार बालियां निकलती हैं, कोई आध फीट तक लम्बी होती हैं। इसके बीज छोटे छोटे लम्बे लम्बे बाजरा के समान छोटे सफेद होते हैं। इनको एक तोला दूध में पका कर खाने से २ दिन तक भूख नहीं लगती है। परन्तु स्वास्थ्य हानि नहीं होती हैं। यही इसकी

विलक्षणता है। यह प्रयोग रक्तार्श (खूनी बवासीर) के लिये अत्युत्तम है। इसका क्षार कास तथा यकृत् के लिए अति उपयोगी है।

निरन्तर एक वर्ष तक मौन रहकर इसकी जड़ की दातून की जावे तथा तब तक ब्रह्मचर्यावस्था में रहे तो वह मनुष्य सिद्ध भाषी हो जाता है। अर्थात् वह जैसा कहे वैसा ही अवश्य होगा। यही नहीं कि अपामार्ग की जड़ को पानी में घिसकर तिलक लगाके जिस कामना से जिसे देखा जाय तो यथेच्छ लाभ होगा परन्तु यह स्मरण रहे कि पहले सिद्ध की हुई बूटी (जड़ी) होनी चाहिए। कास, श्वास, जलोदर, कण्डू, अर्श, दद्रु, रतौन्धी, परवल, दन्तशूल, बहरापन आदि के लिए अत्यन्त गुणवर्द्धक है। जिस प्रसूता के दूध न हो तो यह दुग्धवृद्धि के लिये भी लाभदायक है। ऐसे ही सर्प, बिच्छू, चूहा, सियार (गीदड़), बाघ, भिड़ आदि विषैले जन्तुओं का विष नष्ट करने में रामबाण है।

अपामार्ग के पत्ते १ तोला, काली मिरच १० दाने खरल करके शुद्ध (ताजे) जल के साथ ३ घूंट प्रातः सन्ध्या एक सप्ताह तक प्रयोग करते रहें तो अर्श समूल नष्ट होजायगा। पथ्य में रोटी, घी, दूध आवश्यक है। अथवा इसके पत्ते घीकुवार के साथ घोट कर झरबेरी प्रमाण वटिका (गोली) बनाकर एक गोली प्रतिदिन सेवन करने से अर्श (बवासीर) तथा जलन्धर रोग भी शान्त होजाता है।

मलहम—अपामार्ग के पत्रों का रस सेर भर, लहसन तथा प्याज का रस पाव भर, मैनसिल १ तोला, लाही का तैल पाव भर, मधुमक्खी का मोम एक छटांक, उक्त तीनों (अपामार्ग, लहसन प्याज) के रस को तैल में मन्द मन्द २ आंच से पकाकर जब (रस जलकर) तैल मात्र शेष रहे, तब सूक्ष्म पिसा हुआ मैनसिल डाल कर खूब घोटें। ठंडे होने पर शीशियों में भर दें। इस मरहम को अर्श के मस्सों पर निरन्तर २-३ सप्ताह तक लगाने से निःस्सन्देह आराम होजाता है। इसी से दाद, खुजली, लूता विष्फोटक को भी तत्काल लाभ होता है।

अपामार्ग के पत्तों के रस में फिटकरी का [illegible] बटकर बटी (गोली) बनालें। आवश्यकता होने पर उसे पानी में घिसकर लगाने से रतौन्धी, परवल अच्छे हो जाते हैं। इसके तण्डुल (चावल) शहद [illegible] पीसकर प्रयोग करने से चूहे का विष नष्ट होजाता है। इसकी जड़ का चूर्ण १ तोला नीबू के बीज ½ तोला दोनों को खरल करके शहद के साथ चाटने से कुत्ते का विष दूर हो जाता है। इसका रस दांतों पर लगाने से दंत पीड़ा नहीं होती है। अपामार्ग का पञ्चाङ्ग (जड़, शाखें, पत्ते, फूल, फल) भस्म करके राख बनालें। उस राख को उससे अठगुने पानी में डालकर मन्थन करके छोड़ दें। तत्पश्चात् उस पानी को निथार एक कढ़ाही में मन्द आंच से पकावें। जब सब पानी सूख जाय तो कढ़ाई में जो सफेद वस्तु शेष रहे वही अपामार्ग क्षार है।

यह क्षार बिष नाशक है। क्षार ही नहीं इसका आसब भी अधिक गुणबर्धक होता है।
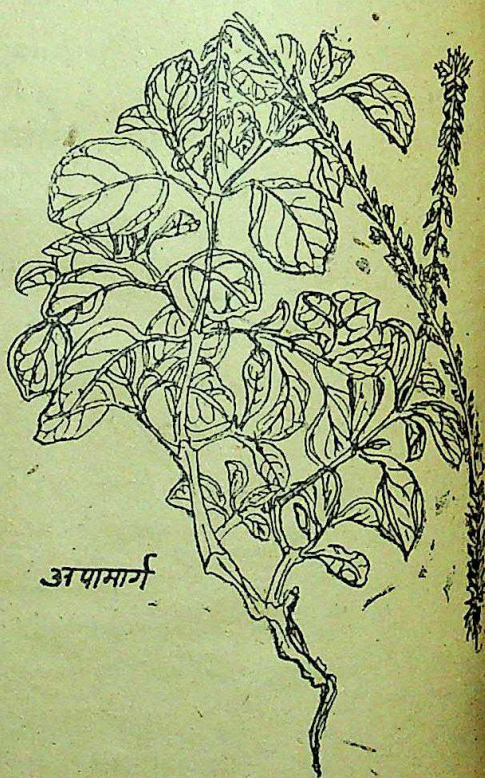
अपामार्ग

अपामार्ग समूल, बेरी जड़ की त्वचा (छाल), वांसा (अडूसा)पत्र, रम्भा (केला) पत्र समभाग अर्थात् २, २ सेर प्रमाण कूट कर ४ सेर गुड़ आठ सेर पानी में कुचल कर इसी में उक्त वस्तु भी डालकर हांडी में मिलाकर यों ही बन्द करके छोड़ दें। तदनन्तर दूसरे दिन पपड़िया क्षार ३ तोला, सज्जीक्षार १½ छ०, यव क्षार १½ छ० उसी मटके में डाल कर उसका मुंह बन्द करके १५-२० दिन तक रहने दें। जब खमीर चढ़ जावे, तब कपड़छन करके बोतलों में भर के बन्द रक्खें। मात्रा ½ तोला से १½ तो० तक अवस्थानुकूल प्रातः सायं सेवन करें। श्वास, कास के लिये अनुभूत है। अपामार्ग की जड़ कूटकर उसका रस निकालें। रस से आधा शुद्ध तिल तेल मिलाकर मन्द २ आंच पर पकावें। जब तैल शेष रह जाय तो छानकर बोतलों में बन्दकर रक्खें। समोष्ण तीन-तीन चार-चार बूंद प्रति दिन कान में दो मास तक टपकाने से बधिरता नष्ट होकर श्रवण शक्ति बढ़ जाती है।

अपामार्ग सिद्ध करने की विधि—कृष्ण चतुर्दशी रविवार को शुद्धाचरण से निराहार व्रत करके सन्ध्या समय पुनः स्नान कर पूर्वाभिमुख हो रक्तअपामार्ग को भी स्नान कराकर श्रद्धा पूर्वक मौन होकर कुङ्कुम रक्तचन्दनादि से कर्पूर गुग्गुल की धूप दें। अपितु त्रिगुणित रक्त सूत्र तीन बार उस धूप (अपामार्ग) में बांध कर अपनी कामना का (जो इच्छा हो) नाम लेकर आमन्त्रित करके रात्रिभर "शिवे सर्वार्थ साधिके" मन्त्र का कीर्तन करें। दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र वाली सोमवती अमावास्या को सूर्योदय से पूर्व स्नान करके मौन होकर किसी लकड़ी से सम्पूर्ण जड़ अखण्डित उखाड़ें। उखाड़ने के पश्चात् पीछे को को न देखें न किसी से बोलें। बस यही सिद्ध अनुभूत योग है। इसको बाहु पर बांधने से शीत पूर्वी विषम ज्वर तथा बिच्छू का भयंकर विष जादू की तरह नष्ट हो जाता है।

प्रसव काल में अत्यन्त कष्ट होने पर स्त्री की कमर में यह जड़ी बांध देने से सुखपूर्वक (बिना कष्ट के) शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसव होते ही यह जड़ी तत्काल खोल देनी चाहिये। मृतक गर्भ जो तुरन्त बाहर न निकल सके, न कोई डाक्टरी सहायता का ही साधन हो, ऐसी दशा में माता की मृत्यु के अतिरिक्त जीवन की आशा किञ्चित मात्र भी नहीं हो? ऐसे दारुण समय में यदि कोई जीवनदातृ (संजीवनी) है तो वह सिद्ध अपामार्ग की जड़ रेशमी त्रिगुणित (तेसूती) तागे में बांधकर जननेन्द्रिय मार्ग के द्वार पर कुछ भीतर को रखदें, कोई हानि नहीं, मृतक गर्भ विना कष्ट के बाहर निकल आयगा। तत्काल वही बूंटी (जड़ी) बाहर को खींच लेनी चाहिये। विलम्ब करने से कहीं गर्भाशय भी बाहर को न आजावे। इस बूंटी में (बाहर खींचने की) आकर्षण शक्ति है। कभी चतुर दायी की भी आवश्यकता नहीं। यही नहीं इसकी जड़ का चूर्ण दांतों पर मलने से वीर्य स्तम्भन होता है। अनुभूत है। इसकी जड़ उबाल कर ऋतुकाल में एक सप्ताह तक पीने से बन्ध्यत्व नष्ट होकर सन्तानोत्पत्ति होती है। इसके तण्डुल को खीर खाने से क्षुधाग्नि (भूख) शान्त हो जाती है।

—श्री तारादत्त त्रिपाठी,
श्री ब्रह्मकुटी शिलौटी, भीमताल (नैनीताल)

ऊंटकटारा बूटी

श्री आत्माराम बर्वे शास्त्री

ऊंटकाटारा प्रायः जङ्गलों तथा खेतों के किनारे पथरीले स्थानों पर अधिक पाया जाता है। कई स्थानों पर देखा जाता है कि ताल मखाना क्षुप को ही ऊंटकटारा मानते एवं प्रयोग में लाते हैं। पर यह गलत है।

परिचय—पत्ते सत्यानाशी की पीली कटाई से मिलते जुलते लम्बे कांटेदार होते हैं। पुष्प, श्वेत रङ्ग के कुछ नीलिमा लिये हुए होते हैं। प्रथम फल के समान उत्पन्न होकर उसके चारों ओर फूल लगता है। फल, अखरोट के समान प्रत्येक शाखा के सिरे पर लगता है जिस पर लम्बे लम्बे कांटे होते हैं। पक कर सूख जाने पर उसमें से रूई के समान सफेद रङ्ग की वस्तु निकलती है। बीज छोटे छोटे होते हैं। फल, पत्र दूर से दीख जाने पर यह बूटी पहचान में आ जाती है।

आयुर्वेदीय गुण-धर्म—कड़वा, चरपरा, गरम, कफ वात नाशक, हलका, रुचिकारक, वीर्यवर्धक एवं मूत्रकृच्छ्र, पित्तवात, प्रमेह, तृष्णा, हृदय रोग तथा विस्फोटक को दूर करने वाला है। बीज शीतल वीर्यबर्धक, तृप्तिकारक तथा मधुर है। जड़ गर्भ-स्रावक एवं कामोद्दीपक है।

यूनानी गुण-धर्म—कड़वा, अग्निबर्द्धक, ज्वर-नाशक, यकृत् को उत्तेजना देने वाली, क्षुधाबर्द्धक है तथा नेत्रों की पीड़ा, जीर्ण ज्वर, संधिवात, मस्तिष्क रोग में लाभदायक है। जड़ कामोद्दीपक, पौष्टिक तथा मूत्र खोलने वाली है।

प्रयोग—

(१) ऊंटकटारा की जड़ ५ तोला, खारक की गुठली ४ तोला, पीपल का फल ३ तोला तीनों औषधियों को छाया में सुखाकर कूट कपड़छन करे तथा समभाग मिश्री मिला लें। मात्रा ६ माशा सुबह शाम ताजा जल के साथ सेवन करें। यह योग पाचन शक्ति के लिए अचूक है। इसके कुछ दिन सेवन से भूख खूब लगती है तथा निर्बलता दूर होकर शरीर पुष्ट होता है।

उत्कण्टक (ऊंटकटारा)
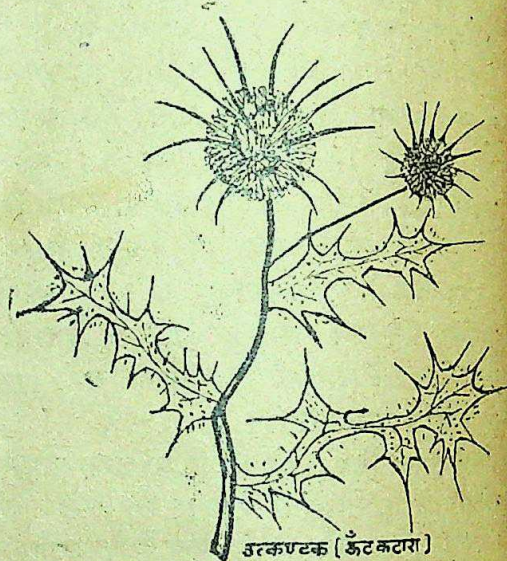
(२) ऊंटकटारा की जड़ की छाल १ तोला लें तथा छोटे छोटे टुकड़े करलें। बाद में १॥ पाव गाय के दूध में १॥ पाव पानी मिलाकर इसमें टुकड़ों को डालदें और आग पर पकने को रखदें। जब पकते पकते पानी जल जावे केवल दूध शेष रहे तब थोड़ी मिश्री मिलाकर छान लें। यह एक मात्रा है। सुबह शाम सेवन करें। इसके कुछ दिन सेवन करने से निराश नपुंसक रोगी पुंसत्व शक्ति प्राप्त कर सकता है। कई बार का अनुभव सिद्ध है।

(३) ऊंटकटारा की जड़ की छाल ½ तोला ½ सेर पानी में घोट छान कर तथा थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्र खुलकर उतर जाता है।

(४) ऊंटकटारा की जड़ को छाया में सुखालें तथा बारीक पीसलें। ४ रत्ती पान में रख कर खाने से दमा खांसी एवं श्वास रोगों में

अचूक गुणकारी है।

(५) ऊंटकटारा की जड़ को थोड़ी मात्रा में पीसकर स्त्री की नाभि के नीचे लेप करने से प्रसव सरलता से हो जाता है। तथा इस प्रयोग से प्रसव की पीड़ा भी दूर हो जाती है।

(६) ऊंटकटारा की जड़ पानी में घिसकर तोला भर पिला देने से तुरन्त प्रसव हो जाता है। इस प्रयोग को उस वक्त किया जाता है जबकि स्त्री भयङ्कर रूप से कष्ट में पड़ी हो।

(७) ऊंटकटारा की जड़ अमावस्या के दिन या सूर्य ग्रहण के अवसर पर खोद कर लें।

नोट–कोई खुबटने न पावे, लाकर अपने पास रखलें। वक्त पर काम में लावें।

गुण–जब स्त्री प्रसव में हो तब उसकी चोटी में यह जड़ रख दें। उसी समय बच्चा बाहर आ जावेगा चाहे जीता हो अथवा मर गया हो।

नोट–बच्चा बाहर आते ही यह बूटी तुरन्त चोटी से निकाल लें नहीं तो उस स्त्री का गर्भाशय बाहर निकल आवेगा। फिर जड़ी को दूध में रखलें। कई दिनों तक काम देगी।

(८) ऊंटकटारा की जड़ का छिलका ३ माशा, दालचीनी ४ रत्ती पानी के साथ खूब खरल करें तथा गुप्तांग पर लेप करें ऊपर से बंगला पान का पत्ता बांधें। यह योग ८-१० दिन तक लगातार करते रहें। इस प्रयोग से नसें ठीक हो जाती हैं। नुकसान कुछ भी नहीं होगा।

(९) ऊंटकटारा की जड़ का लेप करें तथा पीसकर अर्क पिलावें। सर्प, विच्छू का जहर उतर जाता है और रोगी ठीक हो जाता है।

(१०) सुरमा–ऊंटकटारा के फूलों के रस को काले या सफेद सुरमा में खूब खरल करें। यहां तक कि १ तोला सुरमा में १० तोला फूलों का रस समा जावे। फिर शीशियों में सुरक्षित रखें। यह सुरमा नेत्रों के सभी रोगों के लिये उपयोगी है।

(११) ऊंटकटारा के फूलों का रस—ऊंटकटारा के छोटे छोटे फूलों को एकत्र कर छाया में सुखालें और सुरक्षित रखें। आवश्यकता के समय ३ माशा फूल, २ तोला उत्तम गुलाबजल में २४ घण्टे भिगोकर रखें। बाद में साफ मलमल के कपड़े से छान लें और शीशी में भरलें। पिचकारी (ड्रापर) से एक एक बूंद नेत्रों में डाला करें।

गुण–नेत्रों के जाला, फूला, धुन्ध, नक्तान्ध, लाली इत्यादि रोगों के लिये हितकारी है। एक दिन का बना हुआ कई दिनों तक चलता है।

(१२) ऊंटकटारा घृत–ऊंटकटारा की जड़ आधा सेर, सफेद संखिया की पूरी डली १ तोला दोनों को गाय के १० सेर दूध में मिलाकर पकावें। जब बूटी का अर्क दूध में उतर आवे तब उतार लें। दूध ठंडा होने पर दही (छाछ) थोड़ा सा डाल दें। दही जम जाने पर दूसरे दिन मथकर मक्खन निकाल लें। मक्खन को गरम कर घृत बनालें।

गुण–यह घृत कामोद्दीपक, मुख मण्डल को निखारने वाला, बाजीकरण शक्ति को बढ़ाने वाला प्रमेह, स्वप्नदोष इत्यादि रोगों पर अकसीर है।

मात्रा–८ बूंद से १० बूंद तक एक चम्मच दूध में मिलाकर पिलादें। ऊपर से रुचि के अनुसार दूध पीलें।

(१३) प्रभावशाली लेप—ऊंटकटारा की जड़ की छाल, मदार की जड़ की छाल, सफेद कनेर की जड़ की छाल, धतूरा के जड़ की छाल चारों औषधि समभाग लेकर छाया में सुखालें। बाद में कूट पीस चूर्ण करें। धतूरा के पत्तों के रस में खूब घुटाई करें। बाद में जङ्गली बेर के बराबर गोली बनालें। आवश्यकता के समय एक गोली शहद और भेड़ के दूध में घोट कर गुप्तांग पर लेप करें। सूख जाने के बाद रति क्रीड़ा करें।

(१४) ऊंटकटारा चूर्ण–ऊंटकटारा की जड़ की छाल सुखाकर चूर्ण करें। मुगली दाना १ तोला, मिश्री २ तोला दोनों को पाव भर पानी में रात्रि को भिगोकर रख दें। प्रातःकाल मलकर छान लें। ४ माशा चूर्ण इसमें मिलाकर सेवन करें।

गुण—इसके कुछ ही दिन सेवन करने से

पुराने से पुराना प्रमेह, सुजाक नष्ट हो जाते हैं।

(१५) ऊंटकटारा की जड़ की छाल ३ माशा, गेरू ३ माशा, मिश्री ६ माशा तीनों को चूर्ण कर लें। यह मात्रा एक है। प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग ठीक हो जाता है।

(१६) पौष्टिक चूर्ण–ऊंटकटारा की जड़ की छाल, शङ्खाहुली की जड़ की छाल, उड़द की छाल प्रत्येक २-२ तोला छाया में सुखाकर अलग अलग बारीक पीसकर बाद में मिलालें।

मात्रा–६ माशा दूध के साथ सेवन करें। यह योग शक्तिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक है।

(१७) शर्बत–ऊंटकटारा की जड़ १ सेर, शाखाएं आधा सेर, पहाड़ी पोदीना १ पाव, तेजपत्र १ पाव, मुन्डी के फूल १ पाव, मुनक्का ½ पाव, प्रसिद्ध विधि के अनुसार शर्बत बनालें।

मात्रा–१॥ तोला। गुण–प्लीहा शोथ, यकृत, पांडु आदि रोगों में अद्भुत गुणकारी है।

(१८) पौष्टिक चूर्ण नं० १–ऊंटकटारा के जड़ की छाल, केवाच के बीज, मूसली सफेद, तालमखाना, विदारी कन्द, शतावरी, बीजबन्द, मोचरस, गोखरू, सेमल के फूल, असगंध, जायफल, बंशलोचन, भांग, सोंठ, उड़द की दाल, गुरसुकलू की जड़। प्रत्येक ५-५ तोला। सर्वप्रथम उड़द की दाल को घी में भूंज लें। बाद में सभी औषधियों को कूट पीस छान चूर्ण तैयार करें तथा समभाग मिश्री मिलालें। मात्रा–३ माशा से ६ माशा तक सुबह शाम दूध के साथ सेवन करें।

गुण–यह चूर्ण अत्यन्त पौष्टिक रसायन है तथा प्रमेह को नाश करता है। स्वप्नदोष, शीघ्र वीर्य गिर जाना, वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ वीर्य का गिरना इत्यादि रोगों पर अमृत के समान गुणकारक है। यह चूर्ण शुक्र की विकृति को दूर कर वीर्य को गाढ़ा करता है तथा शरीर में बल बढ़ाता है।

—श्री वैद्य आत्माराम बर्वे शास्त्री
बल्देवगढ़ (टीकमगढ़)

पाठकों की शंकाएं

महोदय,

ब्रह्म वैवर्त पुराण गणेश खण्ड अध्याय ३२, श्लोक ४६ में जो वैष्णव ज्वर का वर्णन आया है उस ज्वर का वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थों में किस नाम से है तथा Medical term में उसका क्या नामकरण किया गया है? कृपया पूर्ण विवरण के साथ समाधान करने का कष्ट करें।

"सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवोज्वरः।
तेजसां ब्रह्म तेजश्च वरेण्वं च नामम्यहम्॥

—वैद्य रुद्रदत्त मिश्र
पिपारा, पो० कुन्द (गया)

× × ×

महोदय,

धन्वन्तरि भाग ३४, अङ्क ५ पृष्ठ ६६० में प्राणायाम और आरोग्य सम्बन्धी लेख है जो योग्यतापूर्वक लिखा गया है। उसमें दो बातें और स्पष्ट हो जातीं तो बहुत सुन्दर था। खतरे का मार्ग दूर हो जाता।

(१) पृष्ठ ६६० कालम दूसरा १८ वीं लाइन में अब एक नथने से सांस खींचे और दूसरे से छोड़े। यह क्रिया १०-१५ बार करनी चाहिये। यह स्पष्ट नहीं है कि एक ही नथने से खींचने दूसरे से छोड़ने का क्रम जारी रहेगा या छोड़ने वाले से सांस खींचना पड़ेगा और पहिले खींचने वाले से छोड़ना......

(२) प्राणायाम पूरक कुम्भक रेचक करने के बाद यह स्पष्ट नहीं है कि अब दुबारा रेचक नथने से पूरक हो या जैसा पहिले किया गया है इससे बड़ी गलती हो सकती है। कृपया बहिर्द्वार स्पष्ट करिये ताकि समान सब लाभ उठा सकें।

—श्री केदारनाथ अवस्थी वैद्य
मु० पो० सेमरझील (कानपुर)

सीताफल

श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य

कहते हैं कि राम की प्रतीक्षा में अशोक वन में बैठी सीता जी एक कंकड रोज बोती थीं। उनके सतीत्व-बल से वह कंकड़ बीज की तरह अंकुरित हो कर फलदार वृक्ष बन जाया करता था। सीता के हाथों उपजाये जाने के कारण यह वृक्ष 'सीताफल' कहलाया जाने लगा।

सीताफल के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। ये पेड़ प्रकृति की क्रूरता को किस हद तक सहन कर सकते हैं इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि चट्टानों की दरारों में भी इनके अंकुर विकास पा जाते हैं। और इनकी बहुतायत भारत में किस कदर है यह इस बात से आँकी जा सकती है कि जंगली रूप में बिना काश्त पैदा होने पर भी अकेले आंध्र में सीताफल ने १ लाख एकड़ भूमि ले रखी होगी। इसको हिन्दी बोलने वाले सीताफल या शरीफा कहते हैं। इसके पेड़ में चार पांच वर्ष के बाद में फल आने लगता है।

इसके खाने से तृप्ति होती है, रक्त बढ़ता है। खाने में स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक होता है। रक्त-पित्त और वात को शान्त करता है। बल को बढ़ाता है, कफ को उत्पन्न करता है। प्रकृति में अत्यन्त शीतल और हृदय के लिए हितकारी है। मांस को बढ़ाता है एवं दाह को शान्त करता है।

कुन्नूर को रसायन शाला के परीक्षणों के अनुसार सीताफल में विटामिन 'ए' और 'सी' तथा ग्लूकोज सेव से अधिक होते हैं।

भारत में सीताफल की जाति के चार फल उपलब्ध होते हैं—सीताफल, रामफल, लक्ष्मण फल जिसे तेलुगु में 'मुडंला' कहते हैं। इनमें से सीताफल एवं लक्ष्मण फल अधिक प्रचलित दिखाई देते हैं। लक्ष्मणफल को आंध्र में 'गरीबों का सेव' माना जाता है। सीताफल अधिकतर खाने के ही काम में आता है। यह स्वास्थ्य और बल को बढ़ाने वाला है।

इसके अलावा सीताफल का और कोई अधिक उपयोग नहीं होता हैं। सिर में जुएं पड़ जाने पर सीताफल के बीजों को इकट्ठे करो। उन्हें बारीक पीस कर सिर में लगाना चाहिये। रात को सोते समय एक मोटा कपड़ा सिर में कस कर बांध कर सो जाना चाहिये। इससे सिर के जुएें सब मर जाते हैं। स्मरण रहे यह दवा आंखों के लिए लिये नुकसानदायक है अतः आंखों में न लगने पावे, ध्यान रखना चाहिये ? जलन को शान्त करने के लिए—सीताफल को रात में ओस में रख देना चाहिये और सवेरे इसके सेवन करने से शरीर की जलन और दाह शान्त हो जाती है।

बागवानी विशेषज्ञों द्वारा १५ वर्षों से सीताफल में बीजों की अधिकता को दूर करने के प्रयत्न हो रहे हैं। अन्त में आंध्र के मेडक जिले में सैंगरेडडी-स्थित राजकीय फल अनुसंधानशाला के विशेषज्ञों ने सीताफल को अब बीजरहित स्वादिष्ट फल बना दिया है। उसी जाति के एक अन्य फल लक्ष्मण-फल के पौधे से संयोग कराकर इस नये फल को वैज्ञानिकों ने उपजाया है। फल में सीतफल सरीखा रसदार गूदा है और लक्ष्मण फल का जरा-सा खट्टापन है। इसका नामकरण 'ऐटीमोया' किया गया है। परन्तु यह नाम अन्य फलों सरीखा आकर्षक तथा भव्य नहीं है।

प्रायः लोगों का विश्वास है कि यह फल गोरी जातियों द्वारा अमेरिका से भारत लाया गया है, क्योंकि इसी जाति का एक फल अमेरिका में पाया जाता है। परन्तु यह धारणा निर्मूल है। सीताफल भारतीय फल है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अजंता और एलोरा की प्राचीन गुफाऐं हैं जहां पर सीताफल के अंकित चित्र हमें उपलब्ध होते हैं।

—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य आयुर्वेदरत्न,
४५ शनि गली, जूनी, इन्दौर।

प्रवाहिका नाशक तीन योग--

१-बेलगिरी २ तोला, नागर मोथा २ तोला, इन्द्रजौ २ तोला, धाय के फूल, मोचरस, सोंठ प्रत्येक २-२ तोला। उपरोक्त दवाओं को कूट-चूर्ण कर बारीक बनालें तथा कपड़छन कर रखलें।

मात्रा—२ माशे से ४ माशे तक दिन में ३-३ बार सेवन करें।

अनुपान—दवा से आधी मिश्री मिलाकर फांक जाएं तथा ऊपर से जल पी लें। पथ्य में दही भात मिश्री खाएं।

गुण-इस दवा के सेवन से आंव, खून के या सादा, पतले दस्त निःसंदेह तीन ही दिन में ठीक हो जाते हैं।

२-एक सफेद प्याज को छुरी से खूब महीन-महीन काटलें। तत्पश्चात् उसे गिनकर छै पानी से अर्थात् छः बार खूब मलमल कर धो डालें।

सेवन विधि—धोये हुए प्याज को एक कांसे या शीशे के बर्तन में रखकर गाय का ताजा दही मिलाकर खा जायें। पथ्य में दही भात मिश्री खायें। उपरोक्त विधि से दिन में तीन बार दवा को सेवन करने से भयङ्कर से भयङ्कर आंव की बीमारी ३ दिन में आराम हो जाती है।

३-संगजराहत, उजला चूना, बेलगिरी ५-५ तोला इन सारी दवाओं को कूट चूर्ण कर कपड़छन कर एक बोतल में रखलें।

मात्रा-३ माशे से ६ माशे तक दिन में तीन बार।

अनुपान—दवा में दही मिलाकर सेवन करें।

गुण—इस दवा को सेवन करने से भयङ्कर से भयङ्कर आंव एवं दस्त की बीमारी ३ दिन में ही आराम हो जाती है। बेग को एक दो खुराक के सेवन से ही रोक देता है।

अर्श नाशक घृत —

कड़वे नीम (बकायन) २१ पत्ते, मूंग का आटा २ छटांक, गाय का घी १ पाव। बकायन के पत्ते को महीन महीन पीसकर मूंग से छिलका निकाली हुई दाल के बेसन (आटा) को मिलाकर सान दें और उसी की घी में पूरी बनालें। तत्पश्चात् पूरी को फेंक दें और कढ़ाही में बचे हुए घृत को एक सफेद बोतल में रखलें।

सेवन विधि—दवा को सुबह के समय एक एक तोला खाना चाहिए। दवा सेवनकाल में खट्टा, तीता, मीठा, तेल, दही नमक खाना बिलकुल निषेध है।

गुण—इस दवा को ४१ दिन तक नियमित रूप से सेवन करने पर खूनी बादी दोनों प्रकार के अर्श निश्चय ही जड़ से आराम हो जाते हैं।

व्रण नाशक मलहम —

तूतिया १॥ मासा, फिटकरी ३ माशा, चूना ६ माशा कड़वा तेल १० तोला। सभी दवाओं को चूर्णकर बारीक बनालें। तदुपरांत कांसे के थाल में कड़वा तेल डालकर सभी दवाओं को उसमें छोड़ दें और पचने भर पानी देते जाएं तथा हाथ से खूब मन्थन करें। करीब छः घण्टे तक इसी तरह करते रहें। सफेद मक्खन जैसा मलहम तैयार हो जायगा।

व्यवहार विधि—मलहम लगाने के पूर्व जख्म को अच्छी तरह नीम के पत्ते या छाल मिलाकर औटे हुए पानी से धो डालें। शीघ्र ही फायदा दिखलायेगा।

गुण—इस मलहम के सेवन से हरेक तरह का जखम फोड़ा फुंसी जला हुआ व्रण आदि भयङ्कर से भयङ्कर जख्म ठीक हो जाता है। दवा लगाने के पहले दिन जखम को अधिक बढ़ा देता है उसके बाद फायदा दिखलाता है अतः रोगी को घबड़ाना नहीं चाहिये। जब समझ जाए कि जखम दो चार रोज में बिलकुल भर जायगा तो मलहम लगाना छोड़ देना चाहिए नहीं तो मांस ऊपर तक उठ जावेगा।

आंख दुखने पर अनुभूत योग—

इमली के हरे पत्ते १ तोला, फिटकरी आधा तोला दोनों को पानी के साथ खूब महीन पीस लें। उसके बाद थोड़ा गरम करके आंख के चारों तरफ (पलकों के ऊपर भी) गाढ़ा लेप करदें।

गुण—दिन में ३ बार इस दवा के लेप करने से कैसी भी सूजन, लाली, दर्द क्यों न हो एक से दो दिन में निःसंदेह आराम हो जाता है। लाली को एक दो बार के लेप से ही काट देता है।

—श्री डा० अखिलेश्वरप्रसाद शर्मा आयु० शा०
श्री गांधी दातव्य औषधालय, मोदनगंज (गया)

× × ×

उष्णमेह (सुजाक) पर—

खाने की—कबाबचीनी, मिश्री, नौसादर तीनों १-१ तोला। सबको महीन पीस कर सुबह शाम ४-४ माशे, श्वेत चन्दन घिसे पानी से खा लेवें। २१ दिन सेवन करें।

पिचकारी—फिटकरी २ तोला, रसौत २ तोला पीसकर पिसी कबाबचीनी आधा तोला अफीम ३ माशा पिसा गेरू १ छटांक २ बोतल पानी में मिश्रण बना रख लें। सुबह शाम गुप्तेन्द्रिय में पिचकारी दें। लगता नहीं कष्ट नहीं होता खून मवाद बन्द करता है।

वृश्चिक दंश की सर्वोत्तम दवा—

अशुद्ध काली या सफेद या पीली किसी संखिया को पानी में रगड़कर पतला लेप लगादें, तुरन्त फायदा होगा।

खालित्य पर—

अगर कहीं के १ रुपया या २ रुपया भर बाल उड़ रहे हों तो अशुद्ध जैपाल (जमालगोटा) की गूदी पानी में पीसकर सिर्फ १ या २ बार लेप कर दें। वहां दाने पड़ कर पानी निकलेगा और जख्म हो जावेगा। बाद में नारियल का तेल लगाते रहें। प्रथम बाल भूरे निकलेंगे, बाद में काले हो जावेंगे। शतशोनुभूत है। अगर सारे बाल या शिर के आधे बाल झड़ चुके हों तो न लगावें क्योंकि तकलीफ अधिक होगी।

—श्री ब्रह्मेश्वर शर्मा वैद्य भास्कर, आयु०
ब्रह्मेश्वर वैदिक खोज मंडल,
नवतनवां बाजार (गोरखपुर)

× × ×

गर्भाशय विकृति पर—

माईं छोटी, माईं बड़ी, मोचरस, माजूफल, मैनफल, मकोय खुश्क, मजीठ, मौलश्री की छाल, वायविडङ्ग, वायखुम्भा, बबूल की फली, बाबूना, बालछड़, बहेड़ा, कत्था, कमरकस, कपूर, फिटकरी सफेद, फिटकरी लाल, हर्रा बकुली, अनार का छिलका, अजवाइन, आंवला, गूलर छाल, गुलधावा, गोंद चूनियां, गोखरू छोटा, लोवान नाखूना, हर्जाङ्गी, पलंगतोड़, सुपारी चिकनी, इन सब औषधियों को समभाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण कर लेवें। पुनः देशी शराब में घोटकर झरबेरी के प्रमाण गोलियां बना लेवें। इन गोलियों को सर्षप तेल से चिकना कर योनि में प्रातः सायं धारण करें। यह योनिकन्द, योनि शिथिलता, गर्भाशय का नीचे झुक जाना, तथा गर्भाशय शोथ पर लाभदायक है।

—श्री कृष्ण कुमार स्वर्णकार,
कृष्णा दातव्य औषधालय, फ़रबरपुर, बहिराइच।

—शेषांश पृष्ठ ८२८ पर

समाचार एवं सूचनाएँ

४३ वां अ. भा. आयु० महासम्मेलन दिल्ली—

दिनांक २६-६-१६६० (डाक से)—अ०भा०आयुर्वेद महासम्मेलन का चिर प्रतीक्षित ४३ वां वार्षिक अधिवेशन, जो कि गत दो वर्ष से स्थगित था, अब दि० २४, २५ और २६ दिसम्बर १६६० को दिल्ली में होगा। यह निर्णय दि० १५-६-६० को स्वागताध्यक्ष कविराज श्री वैद्यनाथ सरकार के निवास स्थान पर सम्पन्न स्वागत समिति की कार्यकारिणी समिति तथा महासम्मेलन स्थायी समिति द्वारा गठित 'तिथि निर्धारण उप-समिति' की सम्मिलित बैठक में किया गया है। इस बैठक में महासम्मेलनाध्यक्ष कविराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा एवं प्रधान मन्त्री श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य की उपस्थिति उल्लेखनीय है।

स्वागत समिति के सदस्यों एवं कार्यकर्त्ताओं से सानुरोध प्रार्थना है कि तन-मन-धन से अधिवेशन की सफलता के लिये प्रयत्नशील होकर आयुर्वेदोन्नति के इस पुण्य कार्य में सहयोग के भागी बनें। —स्वागत मंत्री

× × ×

भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ मानकपुरा दिल्ली का परामर्श मण्डल

भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ आयुर्वेदानुसार ही जनता की सेवा कर रहा है। इसके कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए देश के विभिन्न भागों के १२ आयुर्वेदज्ञों का आगामी वर्षों के लिये परामर्श मण्डल बनाया गया है।

× × ×

किशनगढ़ वैद्य सभा का चुनाव—

दिनांक २६-६-६० को मदनगंज में श्री महावीर औषधालय में किशनगढ़ वैद्य सभा की एक सभा श्रीमान् वैद्य राधावल्लभ जी व्यास मदनगंज की अध्यक्षता में हुई। सभा का विधान पास हुआ व इसी समय सभा का निम्नाङ्कित चुनाव हुआ व एक ११ सदस्यों की कार्यकारिणी समिति का गठन हुआ। चुनाव इस प्रकार हुआ—

अध्यक्ष—वैद्य पं० राधावल्लभ जी व्यास
उपाध्यक्ष—वैद्य श्री पुरुषोत्तमलाल जी शर्मा
मन्त्री—श्री वैद्य गोकुलचन्द्र जी शर्मा भिषक्
उपमन्त्री—श्री वैद्य कल्याणसिंह जी
कोषाध्यक्ष—वैद्य मन्नालाल पाटनी।

—मन्त्री

× × ×

सरदार शहर में पारद संस्कार की अभूतपूर्व योजना—

पारद संस्कार प्रेमियों की एक सभा १-६-६० को परमहंस स्वामी बालकनाथ जी वैद्य की अध्यक्षता में हुई जिसमें यह निर्णय किया गया कि जून के अन्तिम सप्ताह तक पारद के संस्कार प्रारम्भ कर दिये जायें। इस योजना द्वारा इन दोषों का प्रत्यक्ष रूप से निराकरण कर जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत किया जावेगा। बाद में अठारह संस्कार सम्पादित किये जायेंगे।

रस चिकित्सा प्रेमियों को इस पारद अनुसंधान सम्बन्धी स्वर्ण अवसर पर सत्परामर्श व सहयोग के लिए आमन्त्रित किया जाता है। यह वैज्ञानिक कार्य रसवैद्य पं० नीलकण्ठ जी शर्मा भीलवाड़ा निवासी के संरक्षण में सम्पन्न होगा।

इस समिति के अध्यक्ष व मन्त्री क्रमशः आयुर्वेद सेवी सेठ श्री जयचन्दलाल जी सेठिया तथा वैद्य सोहनलाल दाधीच आयुर्वेदाचार्य और कार्य समिति के पांच अन्य सदस्य निर्वाचित हुए।

—मन्त्री

नवीन औषधियों और चिकित्सा-उपकरणों की खोज

'अमेरिकन-मेडिकल एसोसिएशन' की वार्षिक बैठक में जिन खोजों और आविष्कारों की घोषणा की गई, वे इस प्रकार हैं—

(१) खून के थक्के पिघलाने वाली औषधि—अभी तक डाक्टरों को ऐसी औषधियां ही ज्ञात थीं, जो खून में थक्के न पड़ने देने के लिए प्रयुक्त की जाती थीं। रक्त धमनियों में खून के थक्के पड़ जाने से रक्त-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और प्रति वर्ष हजारों व्यक्तियों को इसके कारण अपने प्राण गंवाने पड़ते हैं। अब वैज्ञानिकों ने एक ऐसी औषधि तैयार की है, जो खून के थक्कों को पिघला देने की क्षमता रखती है।

(२) आंख की चोट का इलाज करने वाला यन्त्र—एक ऐसे सूक्ष्म यन्त्र का आविष्कार किया गया है, जिस का उपयोग आंख की गम्भीर चोटों के इलाज के लिए किया जा सकता है। इस यन्त्र से निःसृत होने वाली प्रकाश-किरणों की सहायता से नेत्र चिकित्सक आंखों में हो जाने वाले फोड़ों का आपरेशन करने, पुतलियों में हो जाने वाले छिद्रों को बन्द करने तथा दृष्टि-दोष उत्पन्न करने वाले अन्य अनेक नेत्र-रोगों का इलाज करने में समर्थ हो गए हैं।

(३) ग्लूकोमा नामक असाध्य नेत्र रोग का निदान करने वाला सूक्ष्म चिकित्सा उपकरण—इस उपकरण की सहायता से ग्लूकोमा नामक असाध्य नेत्र रोग का प्रारम्भिक अवस्था में ही पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार असाध्य होने से पहले ही उस पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। यह इस कार्य के लिए अब तक प्रयुक्त होने वाले उपकरणों से अधिक उत्तम, सही और सरल है। इसके उपयोग के समय रोगियों को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। इसका-कार्य आंख के अन्दर बढ़ने वाले दबाव को मापना होता है, क्योंकि ग्लूकोमा रोग का पहला लक्षण यही होता है।

(४) रेडियो सक्रिय अनुसूचक यन्त्र—इस यन्त्र की सहायता से यह भविष्यवाणी की जा सकेगी कि क्या किसी व्यक्ति को हृदय रोग से पीड़ित होने का आसन्न खतरा है। इस यन्त्र में फिट 'रेडियेशन काउण्टर' की सहायता से हृदयकक्षों में रक्त-प्रवाह को मापा जा सकेगा। इसके पूर्व भी रक्त-प्रवाह को माप करने के लिए कई अन्य विधियों का सहारा लिया गया है, परन्तु हृदय के बाएं कक्ष में रक्त के प्रवाह का माप करने में उक्त विधि अन्य सभी विधियों से प्रभावशाली और सही सिद्ध हुई है।

(५) इस बात के वैज्ञानिक प्रमाण एकत्र करने में पहली बार सफलता प्राप्त हुई है कि भय और क्रोध के फलस्वरूप मनुष्य मस्तिष्क के पक्षाघात से पीड़ित हो सकता है—जानवरों पर किए गए परीक्षण से सिद्ध हुआ है कि उत्तेजना होने पर रक्त में एड्रीनलीन नामक हारमोन की अधिकता हो जाती है, जिसके फलस्वरूप रक्त की धमनियां सहसा सिकुड़ जाती हैं। यदि यह सिकुड़न अधिक होती है, तो मस्तिष्क में रक्त का पहुंचना रुक जाता है और फलस्वरूप व्यक्ति मस्तिष्क पक्षाघात रोग से पीड़ित हो जाता है।

(६) शरीर में प्रजनन शक्तिनाशक पदार्थों की उत्पत्ति—भारतीय, अमेरिकी और डच वैज्ञानिकों के एक दल ने अनुसन्धान द्वारा इस बात का पता लगाया है कि प्रजनन शक्ति से हीन स्त्री-पुरुषों के शरीर में कुछ ऐसे पदार्थों का निर्माण होता रहता है, जो शुक्राणुओं और रजकणों की प्रजनन क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

शरीर की विकास-प्रक्रिया के सम्बन्ध में नवीन जानकारी—

परड्यू विश्वविद्यालय में मानव शरीर की विकास प्रक्रिया के सम्बन्ध में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में निम्न खोजों की घोषणा की गई—

(१) एक ऐसी प्रक्रिया का पता चला है जिसके द्वारा शरीर के प्रारम्भिक सूक्ष्म कोष, जो डिम्ब अवस्था में एक जैसे होते हैं, विकास की

प्रक्रिया में उन विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म कोषों में परिवर्तित होते हैं, जिनके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों-तन्तुओं, मांसपेशियों, चमड़ी, ग्रन्थियों इत्यादि का निर्माण होता है।

(२) **शरीर के अन्दर प्रोटीन के निर्माण से सम्बन्धित प्रक्रिया के एक चरण की खोज**—वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसन्धान से यह पता चला है कि इस कार्य के लिए शरीर के अन्दर बनने वाले एक अम्ल रिबोन्यूक्लिक एसिड का उपयोग किया जाता है।

(३) **कैंसर रोग के नियन्त्रण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण खोज**—एक ऐसा परीक्षण किया गया है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं पर कठोर नियन्त्रण स्थापित कर कैंसर रोग पर काबू पाया जा सकता है। कैंसर की प्रक्रिया विकास की प्रक्रिया के बिल्कुल विपरीत है। इसमें सूक्ष्म कोष अपनी प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त होने लगते हैं। उक्त प्रक्रिया के अनुसन्धानकर्त्ता का कथन है कि शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं पर कठोर नियन्त्रण कर के कैंसर के प्रसार को रोका जा सकता है। उसने यह भी बताया कि उसने अपने सिद्धान्त की परीक्षा एक पौधे पर की है और अपने इस परीक्षण में वह पौधे के कैंसरग्रस्त सूक्ष्म कोषों को पुनः सामान्य कोषों में बदलने में सफल रहा है।

[अमेरिकन राजदूतावास के एक पत्रक से उद्धृत]

× × ×

आयुर्वेद में अनुसंधान

ललित हरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत उ० प्र० में आगामी वर्ष कृमि रोग व स्त्री रोग पर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने की योजना हो रही है। आयुर्वेद के विद्वानों से प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व अनुभव लिखने की कृपा करें। इस संस्था में इन्टरमीडिएट अथवा संस्कृत मध्यमा उत्तीर्ण छात्रों के लिये उत्तर प्रदेशीय बोर्ड आफ इन्डियन मेडिसिन लखनऊ द्वारा संचालित पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य कोर्स पढ़ाया जाता है। नवीन प्रवेश १ जुलाई सन् ६० से होगा। संक्षिप्त नियमावली निःशुल्क मंगाइये। छात्रों के क्रियात्मक ज्ञान के लिये आधुनिक यंत्र शस्त्र से सुसज्जित आतुरालय, शल्य चिकित्सालय, नेत्र चिकित्सालय वनस्पति वाटिका, औषधि निर्माण शाला, विज्ञानशाला, शवच्छेद भवन आदि की पूर्ण व्यवस्था है।

—प्रिन्सीपल।

× × ×

आवश्यक सूचना—

राजस्थान सरकार द्वारा संचालित गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर का नवीन सत्र दिनांक ७ जुलाई १९६० से प्रारम्भ हो रहा है। प्रायोगिक कर्माभ्यास के लिये महाविद्यालय में सारी सुविधा उपलब्ध हैं। जल बिजली एवं भृत्य सहित छात्रावास की व्यवस्था है। संस्कृत मध्यमा या तत्सम, प्रवेशिका या तत्सम, अथवा संस्कृत विषय के साथ मैट्रिक या हायर सेकेण्डरी उत्तीर्ण प्रवेशेच्छुक छात्र प्रवेश हेतु अपने आवेदनपत्र प्रवेशकुल्क २) (दो रुपये) के पोस्टल आर्डर के साथ शीघ्र ही भिजवाकर प्रवेश प्राप्त करलें।

—प्रिंसीपल।

× × ×

छात्रों का प्रवेश प्रारंभ हो गया—

लखनऊ का नागार्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय और अष्टाङ्ग आयुर्वेद महाविद्यालय दिनांक १ जुलाई से खुल गया।

इनमें नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ देहली की आयुर्वेद भिषग् विशारद, वैद्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वैद्य विशारद आयुर्वेद रत्न, उ० प्र० इंडियन मेडिसिन बोर्ड की "सहायक वैद्य" परीक्षा प्रथम तथा द्वितीय वर्ष में प्रवेश लेकर क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

उक्त महाविद्यालयों में प्रविष्ट होने वाले छात्रों को क्रियात्मक ज्ञान के लिये चिकित्सालय, आतुरालय, प्रयोगशाला, औषधिनिर्माणशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, वनौषधिवाटिका, शवच्छेदन आदि की समुचित व्यवस्था है।

छात्रावास और भोजनालय का भी उचित प्रबन्ध है। "सहायक वैद्य" परीक्षा में ८ वीं कक्षा पास विद्यार्थी प्रवेश पा सकते हैं।

"सहायक वैद्य" परीक्षा के साथ साथ विद्यापीठ की आयुर्वेद भिषग् परीक्षा भी दे सकते हैं।

प्रवेश शुल्क, अध्ययन शुल्क आदि जानने तथा आवेदन पत्र प्राप्त करने के लिये निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें।

—संचालक श्री धन्वन्तरि सेवा मडंल,
कार्यालय त्रिवेणी गंज, लखनऊ।

× × ×

सहायक वैद्य प्रवेशार्थ सुविधा—

आयुर्वेदिक कालेज देहरादून ने इंडियन मेडिसिन बोर्ड उत्तर प्रदेश की सहायकवैद्य परीक्षार्थ हिमाचल, देहरादून, टिहरी गढ़वाल, अलमोड़ा तथा नैनीताल निर्धन पर्वतीय आयुर्वेद शिक्षार्थियों को केवल सन् १९६० प्रवेश और परीक्षा के लिये हाईस्कुल के स्थान पर जूनियर हाईस्कूल अर्थात् ८ वीं क्लास तथा २ वर्ष शिक्षा कोर्स के स्थान पर १।। वर्ष की शिक्षा स्वीकार कर ली है।

किन्तु ५ वर्षीय आयुर्वेदाचार्य डिग्री कोर्स के लिये इण्टर एवं मध्यमा ही प्रवेश योग्यता होगी।

—प्रिंसीपल।

× × ×

इण्टर पास विद्यार्थी ध्यान दें—

इन्टर पास विद्यार्थियों को चाहिये कि बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज झांसी में प्रवेश के लिये प्रार्थना पत्र भेजें। कालेज *hospital, loborateries, library, botanical gardens* आदि से सुसज्जित है। बाहर के विद्यार्थियों के लिए उत्तम छात्रावास है। प्रवेश शुल्क २), मासिक अध्ययन-शुल्क १५), काशन मनी १५) कुल ३२) भेजकर प्रविष्ट होवें। छात्रावास के लिए ४) अतिरिक्त भेजें।

—प्रिन्सीपल।

× × ×

बांदा जिला वैद्य सभा—

दिनांक १६-६-६० को बांदा जिला वैद्य सभा की कार्यकारिणी की बैठक आयुर्वेद कालेज अतर्रा में हुई जिसमें निम्न प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुए—

(१) प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के लिये निम्न प्रतिनिधि चुने गये।

१. कविराज राजकिशोर अरोड़ा, प्रिन्सीपल आयुर्वेद कालेज, अतर्रा।

२. वैद्य भवानी दत्त शास्त्री बांदा।

३. वैद्य छोटेलाल जी कर्वी।

(२) आजकल केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकार आयुर्वेद को उत्साहित करने की नीति को छोड़कर पाश्चात्य पद्धति को विशेष रूप से प्रोत्साहित कर रही है। काशी विश्वविद्यालय जैसी उज्ज्वल संस्था को मैडीकल कालेज में बदलने से आयुर्वेद जगत की अपूर्णनीय क्षति हुई है। यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि इस नीति को त्याग कर आयुर्वेद की उन्नति की तरफ ध्यान दे।

(३) बांदा जिले में विशेषकर चित्रकूट, कालिंजर एवं केन नदी के तट पर आयुर्वेदिक औषधियों का कोष भरा पड़ा है जो आयुर्वेद की उन्नति एवं उत्थान का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह सभा प्रान्तीय सरकार से अनुरोध करती है कि इसके लिये समिति मनोनीत कर इन अलभ्य औषधियों की प्राप्ति के लिए अन्वेषण विभाग खोले।

(४) आयुर्वेदिक कालेज अतर्रा के अस्पताल में आमवात (Rheumatism) पर अनुसंधान

चल रहा है। यह सभा जिला भर के वैद्यों से अनुरोध करती है कि अपने पूर्ण योग द्वारा इस महत्वपूर्ण कार्य में सहायता करें।

(५) द्विवर्षीय सहायक वैद्य उत्तीर्ण छात्रों की हालत को देखते हुए यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि आयुर्वेदिक चिकित्सालयों एवं औषधालयों में इन सहायक वैद्य उत्तीर्ण छात्रों को ही कम्पाउण्डर के रूप में रखा जाय और जो उपरोक्त द्विवर्षीय कोर्स उत्तीर्ण न हों उन्हें उक्त कोर्स पास करने के लिये बाध्य किया गया।

—मन्त्री।

× × ×

वैद्य-हकीम बन्धुओं से निवेदन—

बन्धुओ! मुझे वनस्पति सम्बन्धी शोध के लिये निम्न पुस्तकें चाहिए। जो बन्धु कीमतन या देखने के लिये दे सकें या दिलवा सकें वे कृपया शीघ्र सूचित कर उपकृत करें।

(१) बनौषधि गुणादर्श भाग १ से ७ मराठी (शङ्करदाजी पदे शास्त्री)

(२) सचित्र बनस्पति गुणादर्श भाग १ (हीरामण जी जङ्गले)

(३) निघण्टु आदर्श (पूर्वार्द्ध) गुजराती (वैद्य बापालाल शाह)

(४) रहनुमाय अकाकीर उर्दू (अल हकीम लाहोर)

(५) Indian Medicinal Plants Part 5 to 8 with 1000 lithographic plates By (Kirtiker & Basu)

—वैद्य उदयलाल महात्मा
देवगढ़ (उदयपुर)

× × ×

सन् १९५७ की धन्वन्तरि की फाइल जो सज्जन धन्वन्तरि के आगामी वर्ष के वार्षिक मूल्य के बदले में देना चाहें वह निम्न पते से पत्र लिखें। वर्ष १९५८ के साधारण अङ्क जो मूल्य से दे सके वह भी लिखें।

पता—श्री मुंशीलाल जी वैद्य
मु० चन्दनपुर पो० कछला (बदायूं)

भूल सुधार—

नारीरोगांक में रजोरोध शीर्षक लेख के अन्तर्गत पृष्ठ १५६ पर जो स्वर्णजल का प्रयोग छपा है उसमें गलती से तेजाबशोरा की बजाय केवल शोरा ४ माशा छप गया है।

२—नारी-रोगांक परिशिष्ट में ६४३ पृष्ठ पर संतति निरोध पर परीक्षित प्रयोग संतति निरोधहर तैल के अन्दर निर्मली बीज की जगह निम्ब बीज पढ़ें।

:: पृष्ठ ८२३ का शेषांश ::

पूर्व प्रकाशित परीक्षित प्रयोग—

घाव का मलहम—(धन्वन्तरि का गुप्त सिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग पृष्ठ १८७)।

तिल का तैल (विशुद्ध) १० तोला, चन्दन का तैल २॥ तोला, पीलेरंग की बड़ी हरड़ का चूर्ण ५ तोला, हिंगुल पिष्टी आधा तोला, सुहागा फूला आधा तोला, जल एक पाव।

विधि—पहले हरीतकी चूर्ण औटा कर काढ़ा बनावें (अर्धावशेष) काढ़े को छानकर उसमें अवशिष्ट सभी वस्तु डालकर मलहम बनालें।

प्रयोग—हर प्रकार की फुंसियां, फोड़े और घाव जल्दी ठीक करने का विलक्षण कार्य इस मलहम में है। इसको मलहम की भांति प्रयोग में लाइये।

—श्री महादेव प्रसाद उत्तम आयुर्वेद रत्न,
श्री धन्वन्तरि सेवा सदन,
नगरा, सरसौल (कानपुर)

११-कुम्भी स्वेद-एक कुम्भी लें। इसे वातघ्न औषधि क्वाथ आदि से भर लेवें। इस कुम्भी को आधा या एक तिहाई भू-गर्त में रख दें। इसके थोड़ी ऊपर पीढ़ी या चारपाई बिछाकर विस्तर पर स्वेद्य पुरुष को लिटा या बिठा दें। अब कुम्भी में लोहे के अथवा पत्थर के गोले लाल गर्म कर डालते जाएँ। इससे काथ में से वाष्प निकलती जायगी और स्वेदन हो जायगा। यह ऊष्म स्वेद समझना चाहिए।

१२-कूप स्वेद-निर्वात स्थान पर एक गर्त-जिसकी लम्बाई चौड़ाई चारपाई के समान हो, तथा गहराई (depth) लम्बाई से दुगनी हो-कूप जैसा बनावें। इसे अन्दर से लेपकर सूखे गोबर लीद आदि से भर दें और आग लगादें। जब आग निर्धूम हो जाए तब उस पर चारपाई लगावें और स्निग्ध हुए रोगी को कम्बल ओढ़ा कर लिटा देवें। इस प्रकार इस द्वारा उसका स्वेदन हो जायगा।

१३-होलाक स्वेद-चारपाई के अन्दर के प्रमाण के अनुसार लम्बी, चौड़ी, ऊँची हाथी घोड़ा आदि की लीद की एक धीतिका बना उसमें आग लगा दें। आग के निर्धूम हो जाने पर इस पर स्तर लगी चारपाई बिछा देवें। अब स्नेह युक्त रोगी को कम्बल उढ़ा लिटा दें। इस तरह ताप लगने पर उसका स्वेदन हो जाएगा।

विशेषता--

चरक ने साग्नि स्वेद के यह तेरह प्रकार बताये हैं जैसा कि हम पीछे लिख आये हैं ये सुश्रुत के चार प्रकार में ही समाविष्ट हो जाते हैं परन्तु इनकी अपनी अपनी पृथक् विशेषता है। एक समान दीखने वाले दो विधानों को यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उनके भिन्न भिन्न होने का कारण ज्ञात हो जायगा। क्योंकि चरक काय चिकित्सा में अपनी विशेषता रखता है अतः इसमें यह बात होनी ही चाहिए। कूप स्वेद और होलाक स्वेद को ही लीजिये इनका स्वरूप बिलकुल एक समान लगता है। परन्तु केवल यही दिखाई पड़ता है कि कूप स्वेद में गर्त कर लीद आदि भरी और होलाक में भूमि के ऊपर ही धीतिका बनाई जाती है। शेष सब विधान एक समान है। अतः कई एक टीकाकार तो लिख देते हैं कि धीतिका के स्थान पर गर्त में ही लीद आदि भर कर (कूप के अनुसार) यह कार्य (होलाकवत्) हो सकता है, परन्तु ऐसी बात नहीं। आचार्य का इन्हें अलग अलग लिखने का यह प्रयोजन है कूप स्वेद में और होलाक स्वेद में ताप द्वारा ही स्वेदन होता है। परन्तु कूप द्वारा और होलाक के विधान से कराए गए स्वेदन में तापांश(Temperature) का अन्तर पड़ता है। कूप स्वेद में गर्त से चारपाई के कुछ ऊंचा होने से ताप कम रह जाता है और होलाक में चारपाई के भीतरी प्रमाण तक धीतिका होने से (अग्नि के बिलकुल निकट ही रहने से) ताप अधिक हो जाता है। किसी रोगावस्था में कम ताप की और किसी में अधिक ताप की आवश्यकता होती है। उन भिन्न भिन्न अवस्थाओं में प्रयोजनीय 'कूप और होलाक की कल्पना हुई है।

हां, अवस्थाओं का ज्ञान कर भिन्न भिन्न विधानों के मर्म को जानने वाला चिकित्सक ही विशाल बुद्धि आचार्य द्वारा प्रतिपादित इन सूक्ष्म तत्वों को जान सकता है। अतः चरकोक्त तेरह विधान तो अपनी अपनी निजी विशेषता रखते हुए भिन्न भिन्न ही हैं। उनमें किसी प्रकार भी साम्य करने की चेष्टा करना उचित नहीं। इनके अतिरिक्त कोई विधान बनाने में बुद्धि लगाना सुकार्य समझा जा सकता है।

आधुनिक मतानुसार--

स्वेदन का प्रयोग आधुनिक समय में भी होता है। आयुर्वेदिक चिकित्सकों के अतिरिक्त पाश्चात्य विज्ञान के चिकित्सक भी इसका प्रयोग कराते हैं। विषय को पूर्ण स्पष्ट करने के लिये उनके स्वरूप का वर्णन करना भी आवश्यक है। आधुनिक उपादानों की सहायता से यदि अभिप्रेत कार्य सम्पन्न हो जाए तो क्या ही अच्छा हो। अतः इनका भी संक्षिप्त वर्णन करते चलते हैं।

यदि देखें तो आधुनिक समय में स्वेदन के मुख्य विधान निम्न हैं--

1. Hot Air Bath
2. Hot Bath
3. Fomentations
4. Vapour Bath

इनका समन्वय करते हुए हम कह सकते हैं कि Hot Air Bath सुश्रुतोक्त ताप स्वेद का ही प्रतिरूप है। Hot Bath द्रव स्वेद, Fomentation उपनाह और Vapour Bath ऊष्म स्वेदान्तर्गत आ जाते हैं। इनका (सुश्रुतोक्त, चरकोक्त और आधुनिक) समन्वय निम्न समन्वयात्मक चित्र से हो जाता है-

साग्निस्वेद के समन्वयात्मक चित्र

सुश्रुतोक्त ४	चरकोक्त १३	आधुनिक मतानुसार
१. ताप स्वेद	१-जेन्ताक स्वेद	Hot Air Bath
	२-कुटी स्वेद	
	३-कूप स्वेद	
	४-होलाक स्वेद	
	५-कर्पू स्वेद	
२. उपनाह स्वेद	१-अश्मघनस्वेद	Fomentation
	२-भूस्वेद	
	३-प्रस्तरस्वेद	
	४-शंकरस्वेद	
३. द्रव स्वेद	१-अवगाह परिषेक	Hot Bath
	२-परिषेक स्वेद	
४. उष्म स्वेद	१-नाड़ी स्वेद	Vapour Bath
	२-कुम्भी स्वेद	

I. Hot Air Bath (तापस्वेद)—

इसके लिये या तो किसी कमरे में गर्म वायु को भरा जाता है अथवा वहां ताप उत्पन्न करके वहां की वायु को गर्म किया जाता है। उस स्थान का कितना तापांश रहे इसका विचार रोग एवं रोगी की अवस्थानुसार भिन्न भिन्न होता है। आजकल इसके लिये सबसे सरल उपचार है और वह यह है कि उस कमरे में विद्यु[illegible] अंगीठियां (Electric Heaters) रखें। उस स्थान को जितना चाहिए उतना गर्म कर[illegible] मनुष्य को उस कमरे में प्रवेश करा स्वेदन[illegible] यह रूक्ष स्वेद है जिसमें तापयुक्त वस्तु को से छुआना नहीं पड़ता।

2. Fomentation (उपनाह स्वेद)—

शरीर की त्वचा पर (Surface o[illegible] body) कपड़े, बोतल अथवा अन्य व[illegible] ताप पहुंचाया जाता है। यह दो प्रका[illegible] होता है—

१. आर्द्र (wet) २. रूक्ष (Dr[illegible]

आर्द्र का प्रयोग इस प्रकार बताया है[illegible] के दो टुकड़े लें। इनको यथावश्यक उष्ण[illegible] भिगोलें। इनमें से एक को द्रव में से निकाल[illegible] प्रकार निचोड़ अभिप्रेत स्थान पर रखें और तैलिय रेशम (oiled silk) से ढक कर काटन वूल (cotten wool) रखकर बांध देवें। इसे ३० मिनट तक बंधा रहने दें फिर दूसरा टुकड़ा इसी प्रकार बांधलें। इ[illegible] जो स्वेदन होगा वह अवश्य ही थोड़ी [illegible] लिये होगा।

शुष्क उपनाह का ही प्रायः प्रयोग [illegible] है। यह सरल होता है। इसे करने के लिये [illegible] (bags) में उष्ण बालू, नमक आदि भर [illegible] जाते हैं और सेक किया जाता है। रबर की [illegible] या शीशे की बोतल उष्ण द्रव से भर सेक के [illegible] लाई जाती हैं।

3. Hot Baths (द्रव स्वेद)—

Baths का प्रयोग ही स्वेद का अधिक प्र[illegible] रूप है। आज का प्राकृतिक चिकित्सक तो प्रा[illegible] Baths पर ही निर्भर करता है।

आरम्भ में इनके गुण बताते हुए लिखा [illegible]

१-उपत्वचा को कोमल करता तथा वसा को [illegible] लाता है जिससे यह अनेक त्वचा रोगों को (वि[illegible]

एवं व्रणयुक्त) ठीक करता है ।

स्थानिक रक्त परिभ्रमण को बढ़ाता है और रिक अगो को आराम पहुँचाता है जिससे (intestinal) पित्ताश्मरी (Bile Stone) अश्मरीज शूल (Renal colic) को ता है ।

Tissues को विस्फारित करता है और मूत्र-ली में अवरोध, तीव्रशूल, हर्निया आदि संकोच को मिटा कर आराम पहुँचाता है ।

यह Sudoriferous glands के स्राव को करता है जिससे वृक्कजन्य व्याधियाँ न हो कर याव (Ureamia) नहीं हो सकता ।

उष्ण स्नान कई प्रकार के बताए हैं जिनका हम संक्षेप में करते हैं—

(A) Tapid Bath-ज्वर और बेचैनी में 85° 95° F तक तापांश वाले द्रव से स्नान करना ।

(b) Warm Bath-ज्वर, कास, निमोनियां में F से 100° F तक उष्ण द्रव से स्नान करना ।

(C) hot Bath 100 से 106° F ताप तक ।

(D) hot foot bath—जुकाम, नजला, नक्सीर, मृगी (infantile convulsions) और मासिक स्राव में लाभ करता है ।

(E) hot Sitz Bath—एक टब में कटिप्रदेश पुरुष को रखना चाहिए । इससे अनार्तव, ठंड आदि के कारण रुका हुआ मासिक कृच्छ्र और Cystits में लाभ करता है ।

(F) hotwater Spoonging—सिर कनपट्टी का सिंचन करने से जुकाम आदि के उत्पन्न सिरोशूल नष्ट हो जाता है ।

सभी स्नान साधारण अथवा औषधियों से कराए जा सकते हैं । इसके तुरन्त बाद ही पोंछ कर गर्म बिस्तर पर लिटा दें और अथवा दूध देवें ।

4. Vapour Bath (उष्णस्वेद)—

इसमें किसी भी विधान द्वारा वाष्प शरीर पर छोड़े जाते हैं । यह रोगी को बिठाकर या लिटाकर किया जा सकता है । इसका प्रयोग आम वात, वातरक्त (Gout), वृक्कजन्य रोग तथा त्वचा के रोगों में होता है । यह दो तरह का है—

I. Russian Bath 2. Turkish Bath

ऊपर के वर्णन को देखने से ज्ञात होगा कि आधुनिक समय में जो स्वेदन होता है वह चरक-कालीन स्वेदन का शतांश भी नहीं है । हां यह अवश्य है कि उसका प्रतिबिम्ब आज भी दिखाई दे रहा है जो चाहे अपने जीवन के उदयकाल में ही हो ।

स्वेदन योग्य—

स्वेदन अध्याय में उपर्युक्त वर्णन के पश्चात जो लिखना शेष है वह यह है कि किन अवस्थाओं में स्वेदन करावें और किन में नहीं । प्रथम 'स्वेदन योग्य' का अर्थात् जिनका स्वेदन करा सकते हैं उनका वर्णन करते हैं । चरक में लिखा है—

"प्रतिश्याये च कासे च हिक्काश्वासेष्वलाघवे ।
कर्णमन्याशिरःशूले स्वरभेदे गलग्रहे ॥
अर्दितैकांगसर्वांग पक्षाघाते विनामके ।
कोष्ठानाह विबन्धेषु शुक्राघाते विजृम्भके ॥
पार्श्वपृष्ठ कटि कुक्षि संग्रहे गृध्रसीषु च ।
मूत्रकृच्छ्रे महत्वे च मुष्कयोरांग मर्दकः ॥
पादोरुजानुजङ्घार्ति संग्रेहं श्वयथावपि ।
खल्लीष्वामेषु शीते च वेपथौ वात कण्टके ॥
संकोचायाम शूलेषु स्तम्भगौरव सुप्तिषु ।
सर्वेषामेव विकारेषु स्वेदनं हितमुच्यते ।।"

अर्थात्—प्रतिश्याय, कास, श्वास, हिक्का, शरीर गौरव, कर्णशूल, मन्याशूल, शिरःशूल, स्वरभेद, गलग्रह, अर्दित, एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, विनामक, आध्मान, मलबन्ध, मूत्रावरोध, शुक्राघात, जृम्भा, पार्श्वग्रह, कटिग्रह, कुक्षिग्रह, गृध्रसी, मूत्र कृच्छ्र, अण्डवृद्धि, अङ्गमर्द, पादशूल, पादग्रह, उरूशूल, उरूग्रह, जानुशूल, जानुग्रह, जङ्घार्ति,

जङ्घाग्रह, शोथ, खल्ली, आमदोष, शीत, कम्पन, वातकण्टक, संकोच, आयाम, शूल, स्तम्भ, गौरव, सुप्ति आदि विकारों (रोगों) में स्वेदन करना चाहिए।

ऊपर जितनी भी अवस्थाऐं स्वेदनीय बताई गई हैं उनमें एक साम्य अवश्य मिलेगा और वह है वात अथवा कफ की प्रधानता। एक भी अवस्था ऐसी नहीं कही गई जो कि पित्त प्रधान या पित्त बाहुल्य हो। यों तो कोई भी विकार केवल एक दोषज नहीं हो सकता, जैसा कि लिखा भी है—

"द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येक दोषजः।
योऽधिकस्तेन निर्देशः क्रियते रस दोषयोः॥"

अतः बाहुल्य से ही हम आचार्य द्वारा प्रतिपादित एक सूत्र में ही स्वेद योग्य अवस्थाऐं कह सकते हैं और वह हैं—

"वातश्लेष्माणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते।"

जो सभी अवस्थाओं को स्पष्ट कर रहा है। ऊपर लिखी बीमारी हों या इनके अतिरिक्त कोई विकृतावस्था जो वात-श्लेष्मा बाहुल्य हो वहीं स्वेदन कराया जा सकता है।

स्वेदन अयोग्य—

कई प्रकार के पुरुष स्वेदन के योग्य नहीं होते, यथा नित्य कषायसेवी, नित्य धूम्रपान करने वाले, गर्भिणी, रक्तपित्ती, पित्त प्रकृति वाले, अतिसारी, मधुमेही, क्षाराग्नि दग्ध पुरुष, गुदपाकी, गुदभ्रंशी, स्थूलकाय, कामला का रोगी, उदरी, वातरक्ती, दुर्बल, ओजक्षीण और तिमिर रोगी को कभी भी स्वेदन नहीं कराना चाहिए।

निम्न अवस्थाओं में भी स्वेदन कराना वर्जित है—विष एवं मद्यपान की अवस्था में, श्रम से थके होने पर, बेहोशी में, तृषा एवं क्षुधावस्था में, क्रोध शोक चिन्ता भय की अवस्था में।

स्वेद का सम्यक् योग—

स्वेदन करते हुए यह जान लेना आवश्यक है कि कब स्वेद देना बंद कर दिया जाए या यों कहिए कि ठीक प्रकार से स्विन्न हुए के क्या लक्षण होते हैं। लिखा है कि—

"शीत और शूल के शान्त होजाने पर शरीर की स्तब्धता-गौरवता और निग्रहता मिट जाने पर शरीर में मृदुता आ जाने पर तथा पसीना आने पर स्वेदन उचित हुआ जानना चाहिए।

अतिस्विन्न-पित्त प्रकोप, मूर्च्छा, शरीर की शिथिलता, दाह और अंगो की दुर्बलता होना चरक ने अतिस्विन्न के लक्षण कहे हैं।

सुश्रुत एवं अष्टांगसंग्रह में इनके अतिरिक्त सन्धियों में पीड़ा, फफोलों का पड़ना, रक्तपित्त, भ्रम, तृष्णा, क्लम, श्याम एवं अरुण वर्ण के मंडल पड़ना, वमन तथा विदाह आदि लक्षण भी बताए हैं।

अतिस्विन्न की चिकित्सा के लिये आचार्य ने मधुर, स्निग्ध तथा शीतल विधि, जिसका वर्णन ग्रीष्म ऋतुचर्या में किया है, बरतने को कहा है। चरक में ग्रीष्म ऋतुचर्या इस प्रकार लिखी है—

"मयूखैं जगतः सारं ग्रीष्मेपेपीयते रविः।
स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धं अन्नपानं तदाहितम्॥"

पथ्य—

स्विन्न हुए पुरुष को पथ्य का भोजन करना चाहिए। जिस दिन स्वेदन किया जाय उस दिन व्यायाम वर्जित होता है। स्वेदन से पूर्व स्नेहन आवश्यक है। लिखा भी है-

"नानाभ्यक्ते वापि च स्निग्धदेहे
स्वेदोयोज्यः स्वेदविद्भिः कथञ्चित्।
दृष्टं लोके काष्ठमस्निग्धमाशु,
गच्छेद् भङ्गम् स्वेदयोगैर्गृहीतम्॥"

निराग्नि स्वेद—

स्वेद के वर्णन को समाप्त करने से पूर्व आवश्यक है कि स्वेद के दूसरे प्रकार निराग्नि का भी वर्णन कर देवें। चरक में दस प्रकार निराग्नि स्वेद बताये हैं-

"व्यायामं उष्ण सदनं गुरुप्रावरणं क्षुधा ।
बहुयानं भयक्रोध उपनाहादवातपा ॥
स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्नि गुणादृते ॥"

जिसके अनुसार व्यायाम, उष्णघर, भारीवस्त्र, भूख, मद्यपान, भय, क्रोध, उपनाह, युद्ध या आतप- यह दस अग्नि के संयोग बिना ही स्वेदन करते हैं।

इसके विषय में दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम यह कि यह सभी उष्ण स्वभाव के होने से ही स्वेदन करते हैं। अनग्नि इसलिए हैं कि इनके साथ अग्नि का संयोग नहीं होता।

दूसरी बात यह कि उपनाह को सुश्रुत में साग्नि स्वेद कहा है और यहां निराग्नि। उपनाह दोनों ही प्रकार का हो सकता है। यदि उपनाह द्रव्यों को अग्नि पर गर्म कर बांधे तो वह साग्नि स्वेद होगा और यदि बिना अग्नि पर गर्म किए ही राई आदि द्रव्यों को बांध दें तो वह निराग्नि स्वेद होगा और स्वेदन उन द्रव्यों के स्वभाव से उष्ण होने से हो जाएगा।

निराग्नि स्वेद की प्रयोज्यनीय अवस्थाऐं—

इन अनग्नि स्वेदों का प्रयोग किन अवस्थाओं में किया जाए इसके लिए चिकित्सक को स्वयं विचार करना पड़ता है। सुश्रुत का एक सूत्र अवश्य ही मार्ग प्रदर्शन करता है। लिखा है-

"कफमेदोऽन्विते वायौ
निवातातप गुरु प्रावरणानि ।
युद्धाहव, व्यायाम, भारहरण
मोर्षं, स्वेदमुत्पादयेदिति ॥"

जिसके अनुसार वायु के कफ अथवा मेद युक्त होने पर अनग्नि स्वेदों का प्रयोग करना चाहिए।

चतुर्थ प्रकरण—

वमन

वमन ही प्रथम क्यों—

वात, पित्त और कफ हमारे शरीर को धारण किये हुए हैं। इनके स्थान क्रमशः पक्वाशय (वृहदान्त्र), नाभि (लघु आन्त्र) और उरु (वक्षस्थल) माने जाते हैं। इनकी विकृतावस्था में समता उत्पन्न करने के लिये क्रमशः बस्ति, विरेचन तथा वमन का निर्देश किया है। इनमें वायु को प्रधान माना जाता है पित्त तथा कफ को गौण। इसी से लिखा है-

"पित्तं पंगु कफं पंगु, पङ्गवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते, तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥"

और इसी से पित्त एवं कफ वाताश्रित सिद्ध हो जाते हैं। अतः रोगावस्था में वायु को समावस्था में लाना प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है, जिससे पित्त और कफ जो वात की गतिविधियों पर चलते हैं, स्वयं समावस्था में आ जायें। इस प्रकार आवश्यक हो जाता है कि आरम्भ में वात शान्त्यर्थ वस्ति का प्रयोग किया जाए। परन्तु आचार्य ने आरम्भ में वमन कराने को कहा है। इसका क्या कारण है ? इस शंका का समाधान करते हुए यह ही कहा जाएगा कि 'ठीक है कि त्रिदोष में वायु ही प्रधान है और इसी से बस्ति भी चिकित्सा में प्रधान मानी गई है तो भी आरम्भ में वमन कराने का रहस्य यह है कि हमारा शरीर आहाराश्रित है और जो भी आहार हम खाते हैं उसका आरम्भ में क्लेदक कफ बनता है। यह क्लेदक कफ ही आगे आंत्र में पहुँच कर सूक्ष्म स्रोतों द्वारा स्रवित

किया जाता है, जिससे यह क्लेदक कफ सर्व शरीर व्याप्त हो जाता है और विकृतावस्था में विकार का कारण बना रहता है। यदि बस्ति का आरम्भ में ही प्रयोग कर वायु को समावस्था में ला भी दिया जाय तो इस कफ के प्रतिक्षण सर्व शरीर व्यापी होते रहने से पुनः विकृति उत्पन्न होती जाएगी और यदि कफ का शोधन कर दिया गया तो आगे विकार बढ़ते रहने की सम्भावना ही नहीं रहेगी तथा विरेचन और बस्ति का पश्चात् प्रयोग करने से शरीर पूर्ण स्वस्थ हो जायगा। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए मूल स्रोत का अवरोध करने के हेतु कफ शोधनार्थ आरम्भ में वमन का निर्देश किया गया है।

वमन से अभिप्राय--

"तत्र दोष हरणमूर्ध्व भागं वमन संज्ञकं, अधो-भागं विरेचन संज्ञकम्।"

जिसके अनुसार दोषों का उर्ध्व भाग से हरण करना वमन कहलाता है। उर्ध्व भाग से क्या समझना चाहिए। इसका अर्थ बताते हुए लिखा है कि-

'उर्ध्वं मुखेन दोष निर्हरणं भजत इत्यूर्ध्वभागं।'

अर्थात्--ऊपर मुख से दोष निर्हरण क्रिया को उर्ध्व भाग समझना चाहिए। अतः कह सकते हैं कि मुख के द्वारा दोष हरण को वमन कहा जाता है।

वमन प्रक्रिया—

उर्ध्व भाग द्वारा दोष हरण कराने की एक विशेष प्रक्रिया है और उसका जानना एक विज्ञ चिकित्सक के लिए आवश्यक है। चरक ने इस प्रक्रिया का सूत्रेण निरूपण करते हुए लिखा है कि—

"उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी औषधि अपनी शक्ति (प्रभाव) से हृदय में पहुँच कर धमनियों के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म स्रोतों में से देह में स्थित सम्पूर्ण दोष समूह को आग्नेय या उष्ण होने से पिघलाती है, तीक्ष्ण होने से छिन्न भिन्न कर देती है। यह छिन्न भिन्न हुए दोष इधर उधर गमन करते हुए स्नेहभावित देह में, स्नेह से चुपड़े पात्र में पड़े मधु की भांति, कहीं भी सङ्ग न करता हुआ, सूक्ष्म मार्गों में संचार करने वाला तथा कोष्ठ की ओर झुकाव होने से आमाशय में आ जाता है। यहां उदान वायु से प्रेरित किया जाने पर औषधि के अग्निवायात्मक होने से तथा ऊपर की ओर दोष हरने की शक्ति होने से ऊपर को उछलता है।"

इस सूत्र को समझ लेने से वमन प्रक्रिया का स्वयं ज्ञान होजाता है। वमन किस प्रकार होता है यह इस सूत्र में स्पष्ट हो रहा है। अग्नि तथा वायु प्रधान द्रव्य लघु होते हैं, लघु होने के कारण गति ऊपर की ओर होती है, जिससे दोष सुखेन निर्हरित होते हैं।

यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि विरेचक द्रव्य भी तीक्ष्ण आदि गुणों से युक्त होते हैं। इन द्रव्यों द्वारा भी दोष समान प्रक्रिया द्वारा ही आमाशय में आजाते हैं, परन्तु यह विरेचक द्रव्य पृथ्वी-जल बाहुल्य होते हैं जिससे इनमें गुरुता होती है, और गुरुता के कारण उनकी गति नीचे की ओर होती है जिससे दोष गुदा द्वारा (विरेचन द्वारा) बाहर निकलते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक वमन प्रक्रिया में कई एक प्रत्यंगों का कार्यान्वित होना बताते हैं। इनके अनुसार जब वमन होता है, उस समय आमाशय की निम्न अवस्था होती है-

"*During the act of vomiting the cardiac sphincter opens and the pyloric portion of the stomach tightly contracts, and the contents of the stomach are expelled by a simultaneous contraction of the abdominal muscles and the*

diaphragm. The co-ordination of all these movements is controlled by the vomiting centre."

(*Dr. Ghose*)

अर्थात् "वमन के समय आमाशय का हार्दिक द्वार खुल जाता है तथा पक्वाशय-भाग पूर्ण रूपेण संकुचित हो जाता है। इससे आमाशयिक द्रव्य उदरस्थ मांसपेशियों तथा उदर कला के एक साथ संकुचित होने पर मुख द्वारा बाहर निकल पड़ते हैं। इन सभी क्रियाओं का एक ही समय में एक साथ होना वमन केन्द्र आश्रित होता है।"

इस वर्णन को देखते हुए यह ही कहना होगा कि शरीर रचना एवं शरीरक्रिया विज्ञान के अनुसार यह पूर्ण रूपेण प्रतिपादित है-परन्तु सूक्ष्म दोषों की कल्पना-जो आयुर्वेद ने की है, उसके द्वारा सर्व शरीर व्यापी दोषों को आमाशय में लाने की क्रिया को समझने में अभी और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

आयुर्वेदोक्त मुख्य वामक द्रव्य —

चरक ने वामक द्रव्यों को एक स्थान पर लिख दिया है, जिससे पाठकों को बहुत सरलता रहती है। यों तो अनेक कल्पनाएं, जिनका वर्णन हम अभी करेंगे वामक हैं-तो भी यदि उनके घटक देखें जायें तो उन में इन ६ द्रव्यों में से कोई न कोई अवश्य होगा और इसी से आचार्य ने इन्हें मुख्य वामक संज्ञा दी है। वे हैं-

(१) मैनफल (२) देव दाली
(३) कड़बी तुम्बी (४) पीत घोषा
(५) कुटज (६) कृत वेधन

इन सबका अलग अलग गुण वर्णन तो यहां अभिप्रेत नहीं, तो भी इतना समझ लेना आवश्यक है कि यह द्रव्य पूर्व लिखित तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणों से युक्त होने तथा वायु एवं अग्नि प्रधान होने से विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा वमन उत्पन्न करते हैं। उस प्रक्रिया का वर्णन हम अभी पीछे कर आए हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक वामक द्रव्यों के दो वर्गीकरण करते हैं-

(१) स्थानीय वामक (*Local emetics*)
(२) केन्द्रीय वामक (*Central emetics*)

स्थानीय वामक आमाशयस्थ वात-तन्तुओं (*Sensory endings of the vagus in the stomach*) को उत्तेजित करके वमन लाते हैं। इनका प्रभाव उस समय होता है जब यह आमाशय के पक्वाशयिक द्वार पर पहुंचते हैं। इनके उदाहरण नमक, तुत्थ आदि हैं।

केन्द्रीय वामक रक्तप्रवाह में मिल कर सौष्मण शीर्ष (*Medulla-Oblongata*) स्थित वमन केन्द्र को उत्तेजित करके वमन लाते हैं। इन द्रव्यों द्वारा वमन कुछ देर में आती है तथा हृल्लास, लालास्राव, स्वेद आदि पूर्व लक्षण उपस्थित होते हैं। इसके उदाहरण एपोमार्फीन (*Apomorphine*), डिजिटेलिस (*Digitalis*), मार्फिन (*Morphine*) आदि हैं।

इस वर्गीकरण के अनुसार चरकोक्त मुख्य वामक द्रव्य केन्द्रीय वामक हैं जिनका प्रभाव भौतिक दृष्टि से उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार होता है तथा सूक्ष्म दृष्टि से आयुर्वेदोक्त पूर्व वर्णित वातादि द्वारा।

चरकोक्त कल्पनायें—

इन छः मुख्य वामक द्रव्यों द्वारा चरक ने कल्पस्थान के प्रथम छः अध्यायों में ३५५ कल्पनाओं का वर्णन किया है। इन कल्पों का वर्णन करने का कारण बताते हुए लिखा है कि—

"इन औषधियों के नाना प्रकार के देश और काल में उत्पन्न होने से नाना प्रकार का स्वाद पाया जाने से नाना प्रकार का रस वीर्य, विपाक वा प्रभाव देखा जाने से और देह, दोष, प्रकृत, वयस, बल, अग्नि, रुचि, सात्म्य, रोगावस्था आदि के अनुसार नानाविध प्रभाव वाला होने से तथा विचित्र गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्शों के सुखमय उपयोग के लिए द्रव्यों में अगणित संयोग होने पर भी कल्पना के

मार्ग को दर्शाने के लिए इन योगों का वर्णन किया है। इसे देखते हुए आचार्य की विशाल बुद्धि के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कितना सूक्ष्मातिसूक्ष्म तात्विक विवेचन उन वैज्ञानिकों ने किया था यह देखते ही बनता है।

इन कल्पनाओं का प्रयोग अल्प बुद्धि चिकित्सकों के लिए ही बताया है ताकि प्रत्येक अवस्था में इस से काम लिया जा सके। बुद्धिमानों के लिए तो कहा है—

"स्वबुद्ध्यैवं सहस्राणि कोटिर्वापि प्रकल्पयेत् ?

अर्थात्—अपनी बुद्धि से सहस्रों व करोड़ों कल्पनाएें कर सकते हैं।

दोषानुसार भावना—

इन कल्पनाओं अथवा वामक द्रव्यों का प्रयोग दोषानुसार तत्तद् द्रव्यों से भावित कर करना चाहिए। दोषानुसार भावनार्थ निम्न द्रव्य बताए हैं—

वात में—सुरा, सौवीर (निस्तुष जौ की कांजी) तुषोदक, धान्याम्ल, फलाम्ल आदि।

पित्त में—मृद्विका, आंवला, शहद, मुलहठी, एवं फालसा तथा दूध आदि।

कफ में—शहद, गौमूत्र, तथा क्वाथ आदि से।

वमन से पूर्व—

वमन कराने से पूर्व हमें दो प्रकार की तैयारियाँ करनी पड़ती हैं—

१. उपकरण विषयक २. रोगी विषयक

उपकरण विषयक पूर्वकर्म में चरक सू० अ० १५ में बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें सर्वप्रथम गृह निमार्ण करना बताया है। इस गृह की चरकोक्त कल्पना को देखते हुए एक आदर्श रोगी गृह (model hospital) का चित्र सामने आजाता है। विज्ञ एवं अनुरक्त परिचारिकाओं का सुप्रबन्ध, भोज्यपदार्थ तथा पात्र आदि उपकरणों का प्रबन्ध हो। पात्र एवं भोज्य पदार्थों की जो गणना चरक ने की है उस में न कुछ अधिक ही है और न कम ही जितने भी उपकरणों की आवश्यकता पड़ सकती है उन सबका वर्णन आचार्य ने कर दिया है।

आचार्य ने यह सभी धनी एवं राजाओं के लिए बताया है। ऐसा सम्भव नहीं कि प्रत्येक मनुष्य इन उपकरणों के संग्रह में समृद्ध हो, अतः लिखा है कि-

"न हि सर्वं मनुष्याणां सन्ति सर्वं परिच्छदः।
न च रोगा न बाधन्ते दरिद्रानपि दारुणः॥
यद्यच्छक्यं मनुष्येण कर्तुमौषधमापदि।
तत्सेव्यं यथा शक्ति वसनान्यशनानि च॥

और इसी से आचार्य ने वैद्य आज्ञा से यथा शक्ति साधन जुटाने को कह दिया है—

वाम्य को वमन कराने से तीन दिन पूर्व से स्वेदन कराना चाहिये। इसके पश्चात् वमन से एक दिन पूर्व ग्राम्य आनूप व औदक मांसरस दुग्ध दही तथा तिल आदि का प्रयोग करावें। इससे कफ का क्लेदन हो जाएगा। अब रात को भिगो कर रखा हुआ वामक कल्प प्रातः काल उचित मात्रा में उत्तराभिमुख कर अथवा पूर्वाभिमुख कर पिलायें। कल्प पान कराते समय "ॐदच्च" आदि मन्त्र का उच्चारण करने को आचार्य ने बताया है।

अवाम्य—

यों तो आयुर्वेद कई एक प्रकार के मनुष्यों की चिकित्सा ही न करने का आदेश देता है। उन मनुष्यों के अतिरिक्त जिनकी चिकित्सा की जा सकती है परन्तु वमन नहीं कराया जा सकता उनको ही यहां अवाम्य संज्ञा दी है।

चरक ने निम्न अवस्थाओं में वमन न करने को बताया है और यह भी स्पष्ट किया है कि किस किस अवस्था में वमन कराने से क्या क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं।

क्षत, क्षीण, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, प्यासा, और भूखा औषधि के बल को नहीं सह सकता। यदि उसे औषधि पिला दी गई तो बलनाश एवं मृत्यु तक हो सकती है।

'मेडिकल पुस्तक भवन' के अभिनव प्रकाशन

डा० सुरेश प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित पुस्तकें–उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

एलोपैथिक पुस्तकें—

इंजेक्शन—(पंचम संस्करण) आज के इस वैज्ञानिक युग में सूचीवेध विज्ञान, चिकित्सा क्षेत्र में अपना प्रथम स्थान रखता है। इस पुस्तक के ४ खण्डों में—सूचीवेध की आवश्यकता, सूचीवेध सम्बन्धी वैज्ञानिक तत्वों का संग्रह इत्यादि से लेकर पूतीकरण (Sterlization) तथा समस्त सुई की ओषधियों का वर्णन है। ग्रन्थिस्राव (Harmon's therapy) तथा प्रस्तुत सभी चमत्कारिक ओषधियाँ आदि, सद्यः लाभकारी इंजेक्शनों के बारे में विस्तारपूर्वक लिख दिया गया है। सुन्दर छपाई, कागज एवं २० चित्रों से परिपूर्ण। मूल्य १०) सजिल्द।

एलोपैथिक चिकित्सा—(तृतीय संस्करण) हिन्दी जगत् में चिकित्सा सम्बन्धी प्रथम अनूठी पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न ८ अध्यायों में लिखी गयी है। 'शरीर विज्ञान' को संक्षिप्त रूप में, प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से बड़े ही स्पष्ट शब्दों में दिया गया है। नवीनतम चमत्कारिक ओषधों से युक्त प्रस्तुत पुस्तक हर प्रकार के विषयों से परिपूर्ण एवं सांगोपांग है। उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत हो चुकी है। मूल्य सजिल्द १०) केवल।

एलोपैथिक पाकेट गाइड—इस पुस्तक में आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रचलित चमत्कारिक ओषधियों के नुस्खे, प्रमुख रोगों के संक्षिप्त परिचय एवं निदान के अनुसार वर्णन दिया गया है। परीक्षित नुस्खे के साथ-साथ इंजेक्शन और पेटेण्ट ओषधियाँ भी दी गयी हैं। मूल्य ३) मात्र।

मिक्श्चर—चिकित्सा-जगत् में जिस किसी एलोपैथ डाक्टर ने ख्याति प्राप्त की है, तो वह अपने रामबाण की तरह अचूक चलानेवाले नुस्खे के बल पर ही। ऐसी ही एलोपैथी अचूक नुस्खों को बड़ी मिहनत और बड़े खर्च से एकत्रित कर इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। १८५ रोगों पर चलनेवाले ३५० अचूक नुस्खे इसमें हैं और अब थोड़े-से थोड़े पैसों में हरेक व्यक्ति इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य २)

डा० शिवदयाल गुप्त ए० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें-

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—एलोपैथी आज की सर्वाधिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति है। इसकी जानकारी बिना इसके मेटेरिया मेडिका (द्रव्य-गुण विज्ञान) के अध्ययन किये नहीं हो सकती। अतः हिन्दी भाषा में प्रस्तुत ग्रन्थ को लेखक ने लिखकर चिकित्सा जगत् की अपूर्व सेवा की है। पुस्तक पाँच खण्डों में लिखी गयी है। पाँच खण्डों में समूचा एलोपैथी विज्ञान भरा है। पृष्ठ संख्या १३०० —चिकने कागज पर छपी हुई कपड़े की बाइंडिंग। मूल्य १२) लागत मात्र।

सचित्र नेत्र-रोग विज्ञान (एलोपैथिक)—(उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत) २३ अध्यायों में नेत्र-रचना, उसकी कार्यक्षमता आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, जैसे निकट दृष्टिज्ञान, दूरदृष्टिज्ञान, वर्णदृष्टिज्ञान आदि। इनकी परीक्षा किस प्रकार की जाती है, चित्र सहित सरल ढंग से बतलाया गया है। विभिन्न संस्थानों के रोगों का नेत्र पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, उनके कारण कौन-सी बीमारी हो सकती है आदि का वर्णन है। १३० चित्रों के साथ-मूल्य ८) मात्र।

एलोपैथिक सफल औषधियाँ—आज का युग वैज्ञानिक युग है। एलोपैथी चिकित्सा की जान कही जानेवाली सभी नयी सफल ओषधियाँ (Chemotherapy)—जैसे—पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेरामाइसिन, ऑरियोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटीन, बेसीट्रेनिन, गार्लीसिन, टायरोथ्रायसीन, मैग्नेमाइसीन, पी० ए० एस० आदि का विस्तृत वर्णन दिया गया है। मूल्य ३।।) मात्र।

धात्री-विज्ञान—(Midwifery) डाक्टर गुप्त ने धात्री विषय को अधिकृत रूप में सामने रख कर गृहस्थ समाज के जिस अभाव की पूर्ति की है, भारतीय समाज इसका ऋणी रहेगा। स्वयं पढ़िये और अपनी बहू-बेटियों को पढ़ा कर भावी पीढ़ी को सम्पूर्ण स्वस्थ्य रखिये। मूल्य २।।) मात्र।

मल-मूत्र रक्तादि परीक्षा (एलोपैथिक)—भूमिका लेखक—डा० शिवनाथ खन्ना एम० बी० एस० । प्रस्तुत पुस्तक में बड़े ही सरल शब्दों में उपर्युक्त परीक्षाओं सम्बन्धी सभी बातों का स्पष्ट वर्णन दिया गया है । इसमें न केवल मल, मूत्र रक्तादि की परीक्षाओं का ही वर्णन है बल्कि-स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि की भी परीक्षा विधि सरल ढंग से दी गयी है । २८ चित्रों के साथ । मूल्य ३) केवल

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—ले०—हरिस्वरूपकुलश्रेष्ठ बी० ए०; ए० एम० एस० प्रोफेसर—ललित हरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत उ० प्र०—शरीर रचना (Anatomy) विषय संसार प्रचलित सभी चिकित्सा प्रणालियों में अत्यन्त आवश्यक मौलिक विषय सदैव से माना जाता है। इसीलिए आयुर्वेद, तिब्ब (हकीमी), होमियपैथी और एलोपैथी आदि चिकित्सा प्रणालियों के अनुयायी चिकित्सक प्रारम्भ में इस मूलभूत विषय का अध्ययन अवश्य करते हैं । यह सुपरिचित तथ्य है कि सर्जन (शल्यकर्ता) को तो इसकी पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है । इस विषय का पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान शवच्छेद (Dissection) के बिना किये अधूरा रहता है । यही कारण है कि शवच्छेद के पूर्ण शिक्षण में २ वर्ष का लम्बा समय चिकित्साध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को लगाना पड़ता है । इससे विषय के कलेवर का अनुमान हो सकता है । मूल्य १५) लागत मात्र।

डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय द्वारा लिखित पुस्तकें—

एलोपैथिक पेटेण्ट मेडिसिन—प्रस्तुत पुस्तक दो खण्डों में लिखी गई है । सभी प्रचलित कम्पनियों द्वारा निकाली गयी सभी पेटेण्ट ओषधियों का वर्णन है । यदि पाठक रोगों का निदान कर लें तो उसकी चिकित्सा पुस्तक में दी गयी पेटेण्ट ओषधियों द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है । अतः यह पुस्तक विशेषकर साधारण चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है । मूल्य ४) मात्र।

ज्वर-चिकित्सा—इस पुस्तक में ज्वरों के भेद-उपभेद, उनकी अवस्थायें आदि बातों की शास्त्रीय ढंग से व्याख्या की गयी है । चिकित्सा वर्णन में हर पैथियों का सहारा लिया गया है । उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत । मूल्य २) मात्र।

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—कहने की आवश्यकता नहीं, आज ७५% एलोपैथिक चिकित्सक पेटेण्ट ओषधियों के बल पर ही कठिन से कठिन चिकित्सा चला रहे हैं । विद्वान लेखक ने ऐसी ही परम उपयोगी समस्त पेटेण्ट ओषधियों का संग्रह इस पुस्तक में दिया है । ऐसी अमूल्य पुस्तक का मूल्य १।।) मात्र ।

मलेरिया और कालाजार चिकित्सा—(एलोपैथिक) ले०—डा० रा० च० भट्टाचार्य ए० एम० एस, इस पुस्तक में मलेरिया और कालाजार का विशद वर्णन किया गया है । रोग का इतिहास, परिचय, रोग का संक्रमण, शारीरिक विकृति, खून का तुलनात्मक अध्ययन और खून जांच करने की विधि तथा रोग की सामान्य चिकित्सा, लाक्षणिक चिकित्सा और विशिष्ट चिकित्सा का सविस्तार वर्णन दिया गया है । मूल्य १।।) मात्र।

आदर्श एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—(लेखक-डाक्टर रामनारायण सक्सेना वाइस-प्रिन्सिपल बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झाँसी) केवल एक इस पुस्तक के बल पर आप अपनी एलोपैथी चिकित्सा चला सकते हैं । साधारण भाषा में अति सरल ढंग से सम्पूर्ण चिकित्सा विषय आप आयत्त कर सकते हैं । मूल्य ११) मात्र।

गर्भस्थ शिशु की कहानी—(लेखक—डा० एल० बी० 'गुरु', प्रोफेसर-आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ।)—गर्भ का शिशु भला कौन-सी कहानी कहेगा ? आश्चर्य न कीजिये। इस विज्ञान को समझिये, इसके अनुसार दिनचर्या बनाइये और सबल सुपुष्ट शिशु को जन्म दीजिये—यही गर्भस्थ शिशु कहता है । ऐसी अमूल्य पुस्तक का मूल्य २) मात्र ।

व्रणशोथ विमर्श—(ले०-डा० अवधबिहारी अग्निहोत्री, ए० एम० एस० (का. हि. वि. वि.) प्राध्यापक अर्जुन दर्शनानन्द आयुर्वेद विद्यालय प्रशिक्षक रसशास्त्र विभाग, आयुर्वेद कालेज (का. हि. वि.

(Inflammation) के कारण, उत्पत्तिक्रम, लक्षण, निदान, सापेक्ष्य निदान (Differential Diagnosis), व्रणशोथ ग्रस्त रोगी की परीक्षाविधि, सामान्य चिकित्सा, विशिष्ट चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य आदि का आयुर्वेदिक तथा पाश्चात्य चिकित्साप्रणाली (एलोपैथी) के मतानुसार विशद रूप में तथा भली प्रकार समझाकर लिखा गया है। मूल्य ३) मात्र।

सामान्य शल्य विज्ञान—डा० शिवदयाल गुप्त। सर्जरी का बृहत् विवेचन सचित्र किया गया है। सजिल्द मूल्य १२) मात्र।

बाल रोग चिकित्सा—ले० डा० रमानाथ द्विवेदी। बच्चों के समस्त रोगों का इलाज बड़े ही सुगम ढंग से एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक ढंग से बताया गया है। मूल्य ५) मात्र।

होमियोपैथिक पुस्तकें—

होमियो कम्परेटिव प्रिंस मेटेरिया मेडिका—तुलनात्मक विवेचन, फार्माकोपिया आदि के साथ हिन्दी में यह सर्वश्रेष्ठ मेटेरिया मेडिका है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। मूल्य ६) मात्र।

होमियो पारिवारिक चिकित्सा (द्वितीय संस्करण)—हरेक रोगों के बारे में विशद ज्ञान देकर, कारण, निदान, लक्षण के साथ चिकित्सा देखकर आप घर बैठे अपनी चिकित्सा आप ही कर सकते हैं। मू० सजिल्द ६) मात्र।

स्त्री-रोग चिकित्सा (सचित्र द्वितीय संस्करण)—स्त्री रोग पर ऐसी बृहद् पुस्तक पहली है। एक खण्ड में अवयव वर्णन, दूसरे में उसमें होने वाले रोगों का सकारण वर्णन और तीसरे में तुलनात्मक चिकित्सा है। गृहिणी की चिकित्सा स्वयं कर लें। मूल्य ४।।) मात्र।

आर्गेनन (द्वितीय संस्करण)—महात्मा हैनिमैन कृत आर्गेनन का साक्षर अनुवाद और साथ में अनुभव पूर्ण व्याख्या। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत। मूल्य ४) मात्र।

बायोकेमिक चिकित्सा (द्वितीय संस्करण)—टीशू रेमिडीज की कुल १२ औषधियों का पूरा वर्णन और उससे चिकित्सा। उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत। मूल्य ४) मात्र।

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका—प्रारम्भिक चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिये परम उपयोगी। साथ में रोग चिकित्सा भी। मूल्य ३।।।) मात्र।

रोगी की सेवा और पथ्य (सचित्र)—हरेक घर में तीमारदारी का ज्ञान रखना आवश्यक है। साथ में आहार गुण, पट्टी बाँधना (फर्स्टएड), किसको कितने आहार की आवश्यकता है, टेबुल देकर समझाया गया है। मूल्य ३) मात्र।

होमियो गृह चिकित्सा—२।।)। **भेषजसार**—२)। **होमियो इंजेक्शन चिकित्सा**—हिन्दी में पहली पुस्तक, तृतीय संस्करण—१।।।)। **भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेण्ट मेडिसिन** (तृतीय संस्करण)—मू० १।।)। **होमियो पाकेट गाइड** (तृतीय संस्करण) मू० १)। **बायोकेमिक पाकेट गाइड** (द्वितीय संस्करण) मू० १)। **होमियो गीतावली**—२)। **बायोकेमिक रहस्य** १।।)। **होमियो टायफायड चिकित्सा**—मू० ।।।)। **होमियो थाइसिस चिकित्सा**—मू० ।।।)। **होमियो न्यूमोनियां चिकित्सा**—मू० ।।।)। **एनीमा और कैथेटर** (द्वितीय संस्करण) ।=)। **थर्मामीटर**—मू० ।)। **रोग लक्षण संग्रह** ≶)।

आयुर्वेदिक पुस्तकें—

आयुर्वेद विज्ञान—(ले०—डा० कमला प्रसाद मिश्र) इस अनुपम पुस्तक में मानव शरीर की विशद रचना का विशद वर्णन देकर त्रिधातु, त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। दार्शनिक और शारीरिक दृष्टिकोण से सारी बातें समझायी गयी हैं। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के साथ तुलनात्मक विवेचन करके आलोच्य विषयों को सरल रीति से बताया गया है। सुन्दर कागज एवं सुन्दर छपाई के साथ। मूल्य ३।।) मात्र।

नाड़ी रहस्य—लेखक—डाक्टर अयोध्यानाथ पाण्डेय। कहना न होगा, नाड़ी-ज्ञान एक साधना है। इस साधना में जो जितने पारंगत हैं, वह उतने ही विशिष्ट चिकित्सक हुए हैं। आज भी भारत में ऐसे नाड़ीज्ञान कलाविद् मौजूद हैं, जो केवल नब्ज पर हाथ रखकर ही आपका समूचा रोग-वर्णन निदान के रूप में सामने रख सकते हैं। रोगी से कुछ भी पूछने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती। इसी नाड़ी-रहस्य का क्रियात्मक ज्ञान घर बैठे आप कर सकेंगे। मूल्य ।॥) मात्र।

ग्राम सिरीज प्रकाशन—

वृक्ष-विज्ञान चिकित्सा—ले०—डा०—राधाकृष्ण पाराशर बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज झाँसी। प्रायः हर देशों में विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं और उनके फल-फूल, छाल, पत्ते, रस आदि के विभिन्न गुण होते हैं, जिनका चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। आयुर्वेदिक पद्धति में तो इनका प्रचलन है ही, आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा जगत् में भी इन्हीं चीजों का रूप बदलकर टेबलेट, अर्क या सुई के रूप में प्रयोग में ला रहे हैं। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। इससे न केवल चिकित्सक समुदाय ही लाभ उठा सकेगा बल्कि सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। मूल्य २।) मात्र।

आरोग्य विज्ञान—(लेखक डा० लक्ष्मीनारायण 'सरोज') पुस्तक सँजोकर रखिये और दीर्घ आयु का आनन्द उठाइये। पदार्थविज्ञान के अनुसार भौतिक शरीर-रूपी मशीन कैसे चलती है, इसके वर्णन के साथ उन भौतिक तत्वों का तारतम्य कैसे बनाये रखा जा सकता है और गड़बड़ी होने पर प्राकृतिक उपायों से कैसे पूर्ण निरामयता प्राप्त कर सकते हैं, इस पुस्तक को मँगाकर पढ़िये और अपने परिवार को पढ़ाइये। ऐसी अमूल्य पुस्तक का मूल्य २) मात्र।

नीम-चिकित्सा-विधान-मूल्य ॥=) मात्र। **तुलसी चिकित्सा विधान**-मूल्य ।=) मात्र। **आयुर्वेदिक घरेलू चिकित्सा**—मूल्य १।) मात्र। **बबूल-चिकित्सा विधान**—मूल्य ।=) मात्र। **मधुचिकित्सा विधान**—मूल्य ॥) मात्र। **कब्ज या कोष्ठबद्धता**—मूल्य ।॥) मात्र। **प्राकृतिक शिशु-चिकित्सा**—मूल्य २) मात्र। **मवेशियों की घरेलू चिकित्सा**—मूल्य ।॥) **सुलभ देहाती नुस्खे** मूल्य १।) मात्र। **जल चिकित्सा** ॥) मात्र।

डा० प्रिय कुमार चौबे बी० ए० बी० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

१—**चर्म रोग चिकित्सा**—प्रस्तुत पुस्तक एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक मतानुसार बड़े सरल भाषा में लिखी गई है। मू० २) मात्र।

२—**विटामिन्स**—वानस्पतिक खाद्य पदार्थों में पाये जाने वाले समस्त जीवनीय द्रव्यों का वर्गीकरण तथा वृहत् वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत विटामिन्स का औषधि रूप में योगों का भी पूर्ण विवेचन है। मूल्य २)।

३—**मासिक विकार तथा गर्भपात**—प्रस्तुत पुस्तक में स्त्रियों में होनेवाले समस्त मासिकगत विकारों के कारण एवं उसके निवारण करने की विधि एलोपैथी तथा आयुर्वेद मतानुसार लिखी गई है। साथ ही गर्भपात के मूल कारणों एवं उपायों का भी वर्णन है। मू० १॥)।

४—**जनेन्द्रिय संस्थान के रोग**—पुरुषों एवं स्त्रियों के गुप्त रोगों की चिकित्सा बतायी गई है। मू० १॥)

५—**एण्टीबायोटिक्स और सल्फोनामाइड**—आधुनिक चिकित्सा जगत की एक मात्र सफल औषधियों का प्रस्तुत पुस्तक से पूर्ण वर्णन है। मू० २)

प्राप्तिस्थान
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़, अलीगढ़।

वैद्यों के लिए आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखे। चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानून दोनों दृष्टि से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिसमें आवश्यक कालम (खाने) दिए हैं। मूल्य ३.५० रु,

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिये प्रमाण पत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रङ्गों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.००. रु. मात्र। अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साईज में दो रङ्गों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५. रु.

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुँचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ हैं' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगा कर स्वस्थ-प्रमाण-पत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.०० रु. अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.००. रु.

रोगी व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख औषधि आदि इन फार्मों पर लिख कर रोगी को दे दीजिये। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहला पूरा हाल आपके सामने आजयगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी का मूल्य ०.३८ रु. प्रति सैकड़ा

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाण पत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.०० रु.

तापमापक तालिका (टेम्परेचर चार्ट)—इनसे रोगियों का तापमान अङ्कित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अङ्कित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १.०० रु. मात्र

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि
कासारि
कफ-खांसी नाशक
शीघ्र प्रभाव कारी।
कासारि
कफ-खांसी
नाशक
शीघ्र प्रभाव
कारी
नि० मा० ता०: धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

वर्ष ३४ अङ्क ८ अगस्त १९६०

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराए गए हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है. कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १ – अस्थि-पञ्जर–इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया गया है। हाथ की, अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आसकती हैं। मूल्य ५.०० रु०

नं० २–रक्त परिभ्रमण—इस चित्र में शुद्ध अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई हैं। मूल्य ५.०० रु०

नं० ३–वातनाड़ी संस्थान—इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग–वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क के सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५.०० रु०

नं० ४–नेत्र रचना एवं दृष्टि–विकृति—इस चित्र में पृथक्–पृथक् ६ चित्र हैं। १–दक्षिण चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २–पटलों और कोष्ठों को देखने के लिये चक्षु का क्षितिजकाट ३–चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४–नेत्रचालिनी पेशियां ५–दृष्टिभेद (दर्शन-सामर्थ्य)। ६–साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५.०० रु०

नोट १– चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६.०० रु०
नोट २—सादा–बिना कपड़ा–लकड़ी लगे चित्र, शीशा में मढ़ने के लिए १ चित्र ४.०० रु०, चारों मंगाने पर १२.०० रु०

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक–वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
सम्पादक–वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc. दाऊदयाल गर्ग A. M. B. S.

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषाङ्क

प्रसूति विज्ञानाङ्क—प्रसूति तन्त्र पर यह सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य है। सम्पादक श्री पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S. हैं। इसमें ५०४ पृष्ठ तथा १२५ चित्र हैं। प्रसूता को होने वाली सम्पूर्ण व्याधियों के विषय में क्रमबद्ध सुन्दर सुविस्तृत विवरण दिया है। मूल्य ८.५० रु० (राजसंस्करण)

माधव निदानाङ्क—इसमें सम्पूर्ण माधवनिदान सरल हिन्दी टीका सहित है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्सम्बन्धित एलोपैथिक समन्वयात्मक विवेचन दिया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये विशेष वक्तव्य एवं चित्र दिये गए हैं। इस टीका की सभी विद्वानों ने प्रसंशा की है तथा विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बतलाया है। पृष्ठ ६४४ तथा चित्र १५५ हैं। मूल्य ८.५० रु०

गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क चतुर्थ भाग (राजसंस्करण)—इस विशेषांक ने आयुर्वेद जगत में बड़ी ख्याति प्राप्त की है तथा धन्वन्तरि की कीर्ति में चार चांद लगा दिये हैं। इसमें २५१ अनुभवी वैद्यों के १३०८ उत्तमोत्तम, सरल, पूर्ण परीक्षित प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह है। प्रयोगों की अन्य पुस्तकों तथा इस विशेषाङ्क में एक मौलिक अन्तर है—जहां पुस्तकें एक लेखक द्वारा ही इधर उधर के प्रयोगों को संग्रह कर तैयार की जाती हैं वहां इसमें भारत के प्रसिद्ध एवं सफल २५१ चिकित्सकों के हृदय में छिपे हुए प्रयोगरत्न बड़े आग्रह से प्राप्त कर उनके फोटो व परिचय सहित प्रकाशित किये गए हैं। मूल्य ८.५० रु०

गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण) मूल्य ६.०० रु०, द्वितीय भाग २.०० रु०, तृतीय भाग २.०० रु०

कायचिकित्सांक—आचार्य पं. रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी के सफल सम्पादकत्व में प्रकाशित यह अनमोल विशेषाङ्क है। ५४४ पृष्ठों में १२५ चित्रों सहित विभिन्न रोगों की सफल चिकित्सा विधि, उसके विषय में आयुर्वेद के सिद्धान्त एवं चिकित्सा सूत्र बड़ी सुन्दरता से वर्णित हैं। इस विशेषांक के निर्माण में भारत के चोटी के विद्वानों ने अपना सहयोग देकर इसे अति उत्तम बना दिया है। यह आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिए, आयुर्वेद के आचार्यों के लिए तथा आयुर्वेद विद्वानों के लिए अनेक उलझी गुत्थियों को सुलझाने में सहायक तथा उच्च कोटि का ग्रन्थ बन गया है। मूल्य ८.५० रु०

यकृत् प्लीहा रोगांक—यकृत् और प्लीहा मानव शरीर के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। इनमें विकृति होने से मनुष्य को भीषण कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसके विविध रोगों के यदि आप सफल चिकित्सक बनना चाहते हैं तो इस विशेषांक की एक प्रति अवश्य मंगा लेनी चाहिए। पृष्ठ १६४, अनेक चित्रों से सुसज्जित मूल्य २.०० रु०

मधुमेह अङ्क—इस अङ्क में मधुमेह रोग पर अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित किये गए हैं। मधुमेह पर आपको अनेक सफल सरल प्रयोग इस अङ्क में प्राप्त होंगे। मूल्य केवल १.०० रु०

श्वास अङ्क—श्वास मनुष्य को अत्यन्त कष्ट देने वाला रोग है। प्रायः इसको असाध्य ही माना जाता है। इस अङ्क में श्वास रोग की आयुर्वेद के माने हुए विद्वानों द्वारा चिकित्सा दी गई है। मूल्य केवल १.०० रु०

श्वास अङ्क (थीसिस)—आचार्य श्री शिवकुमार मिश्र द्वारा आयुर्वेदान्वेषण केन्द्र जामनगर में प्रशिक्षण प्राप्त करते समय लिखी गई श्वास रोग पर अनेक नवीन अन्वेषणों, सहित थीसिस। चिकित्सा जगत के लिए यह एक अमूल्य ग्रंथ है। मूल्य केवल १.५० रु०

नोट—धन्वन्तरि के स्थायी ग्राहकों को उपर्युक्त मूल्य पर २५% कमीशन दिया जायगा। पोस्ट व्यय ग्राहकों को पृथक् देना होगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि

★

सम्पादक—
देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc.
दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

वार्षिक मूल्य ५.५० रु०
भाग ३४ अङ्क ८

★ आयुर्वेद के प्रचार में धन्वन्तरि गत ३४ वर्षों से अनवरत संलग्न है।

★ आयुर्वेद का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वत्र सम्मानित सर्वोत्तम सचित्र मासिक पत्र है।

★ इसका प्रचार करना आयुर्वेद प्रचार में सहयोग प्रदान करना है।

★ समस्त चिकित्सक समुदाय इसे पढ़ता और मनन करता है, अतएव वैद्यों-हकीमों एवं डाक्टरों से सम्बन्धित व्यवसाइयों के लिए विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन है।

प्रकाशक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० १-४०

भाग ३४ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | अगस्त
अङ्क ८ | | १९६०

धन्वन्तरिर्जीव्यताम्

लोकानां नितरां हरन् रुग्भरं दैन्यं सुकष्टं परम् ।
नित्यं मानस तुष्टये विलसतां प्राणप्रदं सुखकरम् ॥
सन्तत्यं क्रियतां नितांतमवनौ सौख्यं यशो निर्मलम् ।
कल्याणं प्रवदन् कलौऽघहो हरिः स्वयं धन्वन्तरिर्जीव्यताम् ॥

अर्थात्—रोग-भार से पीड़ित लोगों के दुःख, दीनता एवं परम् कष्ट को निःशेष करते हुए, तथा सबके मानसिक संतोषार्थ प्राणों को प्रफुल्लित एवं परम सुख प्रदान करते हुए, सदैव ही अपनी शोभा को छिटकाते हुए, और पृथ्वी पर नित्य ही सौख्य एवं निर्मल यश की धारा बहाते हुए, सबका परम कल्याण करते हुए, कली [कलियुग] के पापों को नष्ट करने वाले ऐसे धन्वन्तरि रूप स्वयं श्री हरि भगवान चिरायु हों।

—श्री रामस्वरूप शास्त्री "अमर"
तालबेहट (झांसी)

वेगोदीरणधारण जन्य व्याधियां तथा उनका प्रतिकार

श्री हरिशंकर राव निरखी

व्याधियों के दो प्रमुख कारण हैं--

१-अन्तरंगहेतु २-बहिरंगहेतु, दोष दूष्य अंतरंग हेतु हैं। बहिरंगहेतु-द्विविध आहार और विहार हैं। (द्रव्य प्रधानो आहारः क्रिया प्रधानो विहारः इति आहार विहारयोः भेद।) विहार दो प्रकार का होता है एक नियत कालिक और दूसरा अनियत कालिक। नियत कालिक का पहला प्रकार दैनन्दिन जिसे दिनचर्या तथा दूसरा प्रकार आर्तव जिसे ऋतु-चर्या कहते हैं। अनियत कालिक विहार पंचविध है-(१) वेगधारण (२) वेगोदीरण (३) शोधन (४) बृंहण और (५) भूताद्यस्पर्शन। अब हमें अनियत कालिक के प्रथम एवं द्वितीय प्रकार वेग-धारण वेगोदीरण के विषय में विचार करना है।

व्याधीनां कारणम्

- अंतरंगहेतुः
  - दोष दूष्य
- बहिरंग हेतुः
  - विहारः
    - नियत कालिक
      - दैनन्दिन
      - आर्तव
    - कालिक
      - वेगधारण
      - वेगोदीरण
      - शोधन
      - बृंहण
      - भूताद्यस्पर्शन
  - आहारः

टीकाकार "प्रवृत्युन्मुखत्वं वेगः" ऐसी वेग शब्द की व्याख्या करते हैं। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है एक शारीरिक तथा दूसरी मानसिक। अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक प्रवृत्तियों का उन्मुख होजाना ही वेग कहलाता है। यह प्रवृत्तियां एक तो स्वभावतः प्रवृत्त होती हैं या उन्हें बलात् प्रवृत्त किया जाता है। इनमें स्वभावतः प्रवृत्त होने वाली प्रवृत्ति को रोकना वेगधारण और प्रवृत्तियां बलात् प्रवृत्त करना वेगोदीरण कहा जाता है। यह दोनों ही व्याधि जनक हैं।

> वेगान्नीरयेद्बलात्। नवोगतोऽन्यकार्यः स्यात्।

यह कह कर आचार्य वेगोदीरण-धारण का निषेध करते हैं। वेगोदीरण-धारण व्याधियों का बहिरंग हेतु है यह तो इसके पूर्व चार्ट में देख ही चुके हैं। आचार्य कुछ वेगों का धारण करो बोलते हैं और कुछ वेग मत धारण करो ऐसा कहते हैं।

> धारयेत्तु सदावेगान् हितैषी प्रेत्य चेइच।
> लोभेर्ष्या द्वेषमात्सर्यं रागादीनां जितेन्द्रियः॥

अर्थात् लोभेर्ष्यादि मानस वेगधारण अवश्य करे ऐसा उनका अभिप्राय है। तथापि वातादि शारीरिक वेगोदीरण धारण उन्होंने निषिद्ध माना है। अब हम वेगधारणजन्य व्याधि, अधारणीय वेग तथा उनकी चिकित्सा देखेंगे।

अधारणीय वेग--

> वेगान्न धारयेद्वात विण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम्।
> निद्राकास कफ श्वास जृंभामूर्च्छाश्रुरेतसाम्॥
>
> —प्र० ह०

वात (अपान-उद्गार) मल-मूत्र, छींक, प्यास, भूख, कास, जम्भाई, वमन, अश्रु (आनन्दज या शोकज)-रेतस निद्रा और श्रम श्वास। इन तेरह वेगों को रोकना नहीं चाहिए।

१-अधोवातरोध जन्य व्याधियां--

अधोवात को रोकने से आध्मान, शूल, सिर दुःखना, गुल्म, उदावर्त, क्लोम, मलमूत्रावरोध, दृष्टिमांद्य, अग्निमांद्य, हृद्रोग, श्वास, हिक्का, कास, जुकाम, गलग्रह, मुख से पुरीषवमन इत्यादि विकारों का प्रादुर्भाव होता है।

चिकित्सा—इन विकारों का प्रादुर्भाव होने पर आतुर का प्रथम स्नेहन स्वेदन करें। वस्ति, फलवर्ति (*Suppositories*) तथा वातानुलोमक औषधि लाभप्रद हैं।

ऊर्ध्व वायु निग्रह जन्य व्याधियां—उद्गार को रोकने से हिक्का (हिचकी), श्वास, अरुचि, कम्प, हृदय तथा छाती का बन्द या भारी हुआ सा मालूम होना प्रभृति लक्षण पैदा होजाते हैं। उनकी चिकित्सा हिक्का रोग के समान ही जाननी चाहिए।

३-मलावरोध जन्य व्याधियां—

पुरीष अर्थात् मलवात के वेग को रोकने से पक्वाशय में शूल, शिरोवेदना, मलवात का बाहर न निकलना, पाखाना न आना, जंघा की पिंडलियों में खिचाव सा मालूम होना, आध्मान, मुख से मल-प्रवृत्ति ये विकार होते हैं।

चिकित्सा—मलावरोधजन्य विकारों में स्नेहन, स्वेदन, वस्ति, वर्ति प्रयोग, अनुलोमक (आंतों की स्वाभाविक गति को ठीक प्रकार चलाने में सहायक) अन्नपान तथा औषधि हितप्रद हैं।

३-मूत्रावरोध जन्य व्याधियां—

वस्ति (मूत्राशय) तथा मूत्रेन्द्रिय में शूल, मूत्रकृच्छ्र, सिरदर्द, विनाम, वंक्षणदेश कामानाह प्रभृति विकार मूत्रनिग्रहजन्य हैं।

चिकित्सा—मूत्रनिग्रहजन्य विकार होने पर फलवर्ति, स्वेदन, अवगाहन, घृत का अवपीडक रूप से प्रयोग तथा आस्थापन, अनुवासन, उत्तर वस्ति ये त्रिविध वस्ति कर्म कराने चाहिए। मूत्ररोधजन्य विकारों में भोजन के पूर्व और भोजन जीर्ण होने के पश्चात् जितना पचे उतना ही घृतपान करें। इन दोनों प्रकार के घृतपान को 'अवपीडक' यह संज्ञा दी जाती है। 'स्वस्थाने कथा प्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति' इस सिद्धांतानुसार मूत्रावरोध से वात प्रकोप होता ही है। वात नाश करने में परमश्रेष्ठ औषधि है 'शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधं। वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु॥' (अ.हृ.) ऐसा कह कर भी आचार्य मूत्रनिग्रहजन्य विकारों में अवपीडक स्वरूप में घृतपान करने का आदेश क्यों देते हैं? उन्होंने तो अवपीडक स्वरूप में तैल पान करने का ही आदेश देना था। इसका उत्तर अ० हृ० के टीकाकार अरुणदत्त इस प्रकार देते हैं—तेल स्वभावतः वातनाशक होकर भी मलावरोधक व मूत्रावरोधक ही होता है।

> तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च।
> बद्धविट्-कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्व दोषजित्॥
> उष्णत्वच्च हिमस्पर्शः केश्यो बल्यस्तिलोगुरुः।
> अल्पमूत्र कटुः पाके मेदाग्नि कफ पित्तकृत्॥

यहां तो मूत्रनिग्रह से मलावरोध मूत्राल्पता निर्माण होती है। इस अवस्था में तेल का उपयोग किया जाय तो मलावरोध और मूत्रावरोध अधिक बढ़कर व्याधि प्रतिकार नहीं होगा इसलिए मूत्ररोधोत्थ विकारों में आचार्य तेल का उपयोग न कह कर अवपीडकस्वरूप में सर्पिपान (घृत) का निर्देश करते हैं। अर्थात् यहां तेल का उपयोग सर्पिसदृश युक्त नहीं है।

४-क्षवथुनिग्रह जन्य व्याधियां—

छींक के वेग को रोकने से मन्यास्तम्भ, शिरोवेदना, इन्द्रियदौर्बल्य, अर्दित, अर्धावभेदक प्रभृति विकार उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—इन विकारों पर क्षुत्प्रवृत्ति के लिए तीक्ष्ण धूम्रपान, अंजन, नस्य, जत्रुसन्धि के ऊपर के प्रदेश में अभ्यङ्ग; वातहर अन्न का सेवन तथा भोजनोत्तर घृतपान हितकर हैं।

५-तृषा निग्रह जन्य व्याधियां—

कण्ठ मुख शोष, बहरापन, थकावट, शिथिलता, मूर्च्छा, भ्रम, हृद्रोग यह विकार तृषा निग्रह जन्य हैं। इनके निवारण के लिये शीत एवं तृप्तिकर पानकादि का उपयोग करना चाहिए। सुश्रुत में भी—

कण्ठास्य शोषश्रवणावरोधस्तृष्णा विघाताद् हृदये व्यथा च।
तृष्णाघाते पिबेमन्थं यवागू वापिशीतलाम्।

६-क्षुधा निग्रह जन्य व्याधियां—

भूख के वेग को रोकने से कार्श्य, दुर्बलता,

विवर्णता, अङ्गों में पीडा, अरुचि भ्रम प्रभृति लक्षण उत्पन्न होते हैं। सुश्रुत ने भी 'तन्द्राङ्ग मर्दाव-रुचि भ्रमश्च क्षुधो विघातात् कृशताच दृष्टेः।' ऐसा कहा है।

चिकित्सा–इसकी चिकित्सा के लिये रोगी को स्निग्ध उष्ण, और हलका (लघु) भोजन करायें।

७–निद्रा निग्रह जन्य व्याधियां—

मोह मूर्च्छादिगौरव (सिर-नेत्र गौरव) आलस्य, जम्भाई, अंगो में पीडा इत्यादि लक्षण पैदा होते हैं।

चिकित्सा–इनके निवारण के लिये स्वप्न (शयन-सोना) तथा संवाहन अर्थात् टांग, हाथ अथवा शिर आदि को दबवाना (सुखस्पर्शमर्दन) आदि हितकर हैं।

निद्राघाते पिवेत्क्षीरं सुप्याच्चेष्ट कथारतः।

८–कास निग्रह जन्य व्याधियां—

कासवृद्धि (आधिक्य), श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोष, राजयक्ष्मा इत्यादि पैदा होते हैं। इनकी चिकित्सा कासरोग के जैसा करो ऐसा आचार्य कहते हैं—कार्योऽत्र कासहासुतरां विधि।

९–श्रम श्वास निग्रह जन्य व्याधियां—

गुल्म, हृद्रोग संमोह ये श्रमश्वास निग्रह से पैदा होते हैं। इनकी चिकित्सा-पूर्ण विश्राम तथा वात नाशक क्रिया करनी चाहिए।

'हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्चक्रियाक्रमः। अ. हृ.

१०–जृम्भा निग्रह जन्य व्याधियां—

जृंभा, रोकने से होने वाले रोग शिरोवेदना, इन्द्रियदौर्बल्य (स्वविषय ग्रहणासमर्थता), मन्यास्तम्भ, अर्दित, तथा विनाम (शरीर का नमना), आक्षेप(*Convulsions*), संकोच,सुप्तिवात(स्पर्शज्ञान न होना), कंपवात प्रभृति हैं। इसलिए इनमें वात-नाशक आहार विहार तथा औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

११-अश्रु निग्रह जन्य व्याधियां—

अक्षिरोग, शिरो रोग, हृद्रोग, मन्यास्तम्भ, अरुचि, भ्रम, गुल्म यह रोग उत्पन्न होते हैं। इनकी चिकित्सा के लिए शयन, मद्य, प्रिय कथा आदि हितावह हैं।

१२–वमन निग्रह जन्य व्याधियां –

विसर्प (*Erysipelas*), कोठ प्रादुर्भाव (शरीर पर चकत्ते उठना), कुष्ठ (*Skin diseases*), अक्षिरोग, कण्डू, पांडु रोग (*Anaemias*), ज्वर, कास, श्वास, हृल्लास (जी मचलना), व्यङ्ग, शोथ ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—इसमें भोजन कराकर तत्क्षण वमन कराना, धूम्रपान, लंघन, रक्तमोक्षण, विरेचन, गण्डूष, क्षार लवण युक्त तैलाभ्यंग, रूक्ष खान पान तथा व्यायाम हितकर हैं।

१३–शुक्रवेगधारण जन्य व्याधियां--

शुक्र स्रावण, मूत्रेन्द्रिय तथा वृषण में शूल, अंगो में पीडा, श्वयथु, ज्वर, हृदय व्यथा, मूत्ररोध, अश्मरी, और षण्ढता निर्माण होती है। इसलिए इस अवस्था में कुक्कुट, सुरा, रक्तशालि, अवगाह, त्रिविध वस्ति, वस्ति शुद्ध कर द्रव्यों से सिद्ध दुग्ध तथा प्रिय स्त्रियों का सेवन करें।

अब तक हम वेगसंधारणजन्य व्याधियां और उनकी संक्षेप में चिकित्सा देख आये हैं। यहां एक यह शंका उपस्थित हो सकती है कि आचार्यों ने केवल वेगसंधारण जन्य व्याधियों का वर्णन किया है, क्या वेगोदीरण से व्याधियां पैदा ही नहीं होतीं? इसका उत्तर आचार्य 'रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरण धारणैः।' ऐसा देते हैं। अर्थात् वेगोदीरण धारण से सभी रोग पैदा होते हैं। सारांश 'वेगोदीरण धारण' अनेक व्याधियों का हेतु है इसलिये व्यक्ति इनसे दूर रहे।

—श्री हरीशंकर राव निरखे
मोरंडी पो. पुराना जालना (औरंगाबाद)

स्वर विज्ञान

श्री वैद्य जानकीप्रसाद अग्रवाल

प्रकृति द्वारा आयोजित वायु प्राण और शरीर ये तीन ही प्राणीमात्र के आधार स्तम्भ हैं। जिसके बल में यह सारा जगत है वह प्राणी पृथ्वी पर है अन्तरिक्ष में है, भूलोक में है। प्राण पृथ्वी पर आने के पश्चात् वायु तत्व से मिल कर शरीर धारण किये रहता है। इस प्रकार स्वर ही सब प्राणियों की जीवनशक्ति है। अनेक महायोगी स्वर क्रिया का अवलम्बन कर मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। स्वर शरीरस्थ एक अत्यन्त आवश्यक क्रिया है। पंच महाभूतात्माओं के सहयोग से ही मनुष्य शरीर संचालित होता है। मृत्यु का निश्चय करने के लिये भी वायु की गति का ही निरीक्षण किया जाता है। इसकी गति पर ही मनुष्य की साध्यता असाध्यता का अनुमान होता है। हमारे पूर्वकालीन महर्षियों ने लोक कल्याण के निमित्त जो जो विज्ञान की खोज की है उनमें स्वर विज्ञान भी चमत्कारपूर्ण है। स्वर विज्ञान प्रायः लुप्त हो चुका है। अकथ परिश्रम से कहीं कहीं इसके कलाकारों के दर्शन हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह जो कुछ सूक्ष्म संकलन है इससे यथेष्ट अनुकूल लाभ प्राप्त किया जा सकता है। स्वर विज्ञान का आधार मनुष्य के नस कोरे से चलते श्वास की गति है। मनुष्य जीवन की प्रत्येक क्रिया सुख दुःख शारीरिक मानसिक रोगादि व्याधि स्वर गति से ही प्रभावित हैं। शरीर रूपी रथ के संचालन के निमित्त स्वर गति ही सूत्राधार है। साधारणतया मनुष्य प्रति मिनट १३ से १५ श्वास प्रश्वास निस्सारण करता है। इस प्रकार २४ घन्टे में यह संख्या करीब २१६०० तक पहुंच जाती है। श्वास प्रश्वास की संख्या जिस मनुष्य की प्रति मिनट कम होती उसकी आयु अपेक्षाकृत उतनी ही अधिक मानी गई है। श्वास प्रश्वास पर नियन्त्रण रखने से मनुष्य की आयु कुछ काल अधिक बढ़ाई जा सकती है।

स्वरोदय तथा काल—मनुष्य शरीर में अबाध गति से चलने वाला श्वास प्रश्वास क्रमशः समयानुसार पृथक २ नसकोरों से निस्सारण होते हैं। एक रन्ध्र का निश्चित समय पूर्ण हो जाने पर स्वयं दूसरे रन्ध्र से निकलने लगता है। इस गति का नाम ही स्वर है। इस गति का एक नासिका रन्ध्र से दूसरे रन्ध्र में जाना ही स्वरोदय कहा गया है। प्रत्येक नासिका रन्ध्र में स्वर उदय होने के पश्चात् वह एक घन्टे तक विद्यमान रहता है पश्चात् बदलकर दूसरे रन्ध्र से निकलने लगता है। इस प्रकार स्वर की गति अबाध रूप से चलती रहती है। किस काल में किस छिद्र से श्वांस चल रही है इसका निरीक्षण करने के लिये किसी एक रन्ध्र को बन्द करके दूसरे से कुछ जोर से श्वासोच्छ्वास करना चाहिये। जिस नसकोरे की गति में कुछ अवरोध प्रतीत हो उसे बन्द तथा दूसरे को खुला हुआ समझना चाहिये।

पंचमहाभूत तत्व—स्वरोदय के निश्चित काल में पंचतत्वों का भी उदय होता है एवं तत्व अपने निश्चितकाल तक रहकर अस्त हो जाता है। पंच तत्व एक स्वर में उदय होने के पश्चात् निम्नलिखित अवधि तक विद्यमान रहते हैं—

पृथ्वी तत्व २० मिनट, जल तत्व १६ मिनट, अग्नि १२ मिनट, वायु ८ मिनट, आकाश ४ मिनट; इस प्रकार स्वरोदय के एक घण्टे के काल में पांचों तत्व उदय एवं अस्त हो जाते हैं। स्वर विज्ञान के पश्चात् पंचतत्वों की गति, आकार, स्थान, रंग भिन्न प्रकार के माने गये हैं।

स्वर के तत्व की उपस्थिति का ज्ञान रंग भेद के अनुसार दोनों हाथों के अंगूठों से, दोनों कर्ण के छिद्र, मध्यमा अंगुली से, दोनों नासिका रन्ध्र, दोनों अनामिकाओं से, दोनों नेत्र तथा दोनों तर्जनी एवं कनिष्ठाओं से मुख बन्द करने पर यदि पीले रंग

का दर्शन हो तो पृथ्वी तत्व, श्वेत जल तत्व, लाल रंग अग्नि तत्व, हरा आसमानी काला रंग वायु तत्व तथा विभिन्न रंग का अवलोकन होने पर आकाश तत्व का उदय समझना चाहिये। हमारे दोनों स्वर मुख्यतः बांयें तथा दक्षिण नासिका में चला करते हैं, पर कभी कभी वह सुषुम्ना से भी परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार हमारे सम्पूर्ण कार्य तीन वर्ग में विभक्त किये गये हैं। किसी विशेष कार्य के लिए जहां अमुक स्वर की आवश्यकता है, उसी स्वर के साथ एक निश्चित तत्व भी आवश्यक है अन्यथा सफलता संदिग्ध रहती है।

कार्य सिद्धिकरण —

सन्तानोत्पत्ति—जब दक्षिण स्वर के साथ अग्नि तत्व का उदय हो रहा हो ऐसे काल में गर्भाधान करने से सन्तानोत्पत्ति होती है।

भाग्योदय—ब्रह्म मुहूर्त में प्रातःकाल शैया त्यागने के पूर्व आंख खुलते ही जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी तरफ का हाथ मुख पर फेर कर बैठ जाएं एवं चारपाई से उतरते हुए उसी तरफ का पैर पृथ्वी पर रखकर शैया त्याग दें। इस क्रिया को नित्य प्रति करना चाहिए।

रोगोपचार —

ज्वर—जब शरीर में ज्वर प्रतीत हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उस चलने वाले स्वर को बन्द करके दूसरे नासिका रन्ध्र से स्वर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। इस क्रिया को आरोग्य लाभ प्राप्त होने तक चालू रखें।

आधा सीसी—रोग की दशा में जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी तरफ के हाथ की कोहनी को रस्सी से बन्धन करना चाहिए। कुछ देर पश्चात् वेदना शान्त हो जाती है।

अग्निमान्द्य—जो मनुष्य अजीर्ण रोग से ग्रसित हैं उन्हें सर्वदा दक्षिण स्वर की उपस्थिति में भोजन ग्रहण करने से कुछ दिनों में पाचन शक्ति प्रबल हो जाती है।

दन्तक्षय—शौच तथा पेशाब के समय दांतों को दबाये रखने से दन्त सम्बन्धी रोगों का निराकरण होता है।

शूल-शमनार्थ—शरीरस्थ कहीं भी दर्द हो जाने पर उस काल में जो स्वर चल रहा हो उसे पूर्ण रूप में बन्द कर देने से कैसा भी दर्द हो शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

दमा—जब श्वास का वेग प्रबल हो रहा हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उसे बन्द कर दूसरे नासिका रन्ध्र से स्वर निकालना चाहिये। इस क्रिया से दस-पन्द्रह मिनट में आराम होने का अनुमान लगाया जाता है। स्थायी लाभ के लिये नित्य प्रति स्वर बदलने का अभ्यास करने से शीघ्र लाभ दृष्टिगोचर होता है।

स्वप्नदोष—नित्य प्रति सिद्धासन से बैठकर आध घण्टे तक नाभि पर दृष्टि जमाने से कुछ दिनों में रोग दूर होता है।

मृत्यु का ज्ञान—

(१) यदि पांच घड़ी तक सुषुम्णा चलकर न बदले तो उसी समय मृत्यु हो जाती है।

(२) जिस व्यक्ति को अपनी नासिका का अग्रभाग दिखाई न दे उसकी तीन दिन में मृत्यु हो जाती है।

(३) स्नान के पश्चात् जिसके हाथ पैर मस्तिष्क हृदय तुरन्त सूख जायें उसकी तीन माह की आयु मानी गई है।

(४) दक्षिण हाथ की मुट्ठी बांधकर नासिका की सीध में माथे पर लगाने से यदि हाथ की कोहनी मुट्ठी से बिलकुल पृथक् प्रतीत होने लगे तो उस मनुष्य की आयु ६ माह शेष रह जाती है।

(५) २० दिन रात तक यदि दक्षिण स्वर चलता रहे तो क्रमशः अग्नि तत्व सूक्ष्म होकर तीन माह में मृत्यु हो जाती है।

—वैद्य श्री जानकीप्रसाद अग्रवाल,
दादुल कार्यालय, झांसी।

रोगी परीक्षा प्रणाली

श्री पं० घनेन्द्र हर्पुल मिश्र

वागभट्ट जी कहते हैं—

दर्शनस्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेतार्थ रोगिणाम् ।
रोग निदान प्राग्रूप लक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

वैद्य देखने, छूने और पूंछने से रोगियों की परीक्षा करे तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति से रोगों की परीक्षा करे।

हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि ज्वर में शरीर तपने लगता है, मगर जब तक हम शरीर को अपने हाथों से स्पर्श न करें हमें शरीर के गर्म होने का ज्ञान कैसे हो सकता है। पीलिया में रोगी के नेत्र, नखादि पीले पड़ जाते हैं, किन्तु बिना नेत्रों से देखे हम पूर्ण निर्णय नहीं दे सकते। यद्यपि हम जानते हैं कि अमुक रोग में आंते गूंजती हैं, लेकिन बिना कानों के सुने हमें दृढ़ निश्चय कैसे हो सकता है? चेचक अथवा मौक्तिक ज्वर में रोगी के शरीर में एक विचित्र प्रकार की बदबू आया करती है। लेकिन बिना नासिका से सूंघे हमें इस बात का पक्का विश्वास कैसे हो सकता है? रोगी का रक्त दूषित हुआ है या नहीं इसका ज्ञान हमें तभी होगा जब हम जीभ से चखकर देखें। वैद्य ऐसा कर नहीं सकते। अतएव सन्देह होने पर रोगी का रक्त कुत्तों या कौवों के आगे डाल दें। यदि वे उस रक्त को चाट जाते हैं तो समझना चाहिए कि रक्त शुद्ध है, यदि नहीं तो अशुद्ध रक्त समझना चाहिए। यहां हमें अपनी न सही तो भी कुत्ते या कौवों की जीभ का सहारा लेना पड़ा। इस तरह हम कह सकते हैं कि रोगों के जानने के छः उपाय हैं। कान, नाक, जीभ, आंख और त्वचा (चमड़ा) इन पांच इन्द्रियों तथा पूंछने से रोगी के रोग का ज्ञान होता है। अब रहा पूंछना। अमुक रोगी के मुख का स्वाद कैसा है? उसे भूख लगती है या नहीं? बिना पूंछताछ के यह कैसे ,जाना जा सकता है? अभिप्राय यह है कि रोगी के रोग का प्रत्यक्ष (Objective) लक्षण प्राप्त करने के लिये हमें पांचों इन्द्रियों से काम लेना होता है। और जिस विषय का ज्ञान हमें हमारी पांचों इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उसका ज्ञान हमें पूंछने या प्रश्न करने से होता है जिसे प्रश्नगत (Subjective) लक्षण कहते हैं।

उपरोक्त कथन यद्यपि हमें उचित प्रतीत होता है और उचित है भी क्योंकि इससे हमें काफी सहायता प्राप्त होती है। बशर्ते हम इन तमाम बातों को स्मरण रखें। फिर भी हमें अभी इतने से सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि हमें अपने विषय की गहराई को परखना है और चूंकि हम एक 'वैद्य' हैं, इसलिए एक चिकित्सक का अपने रोगी के प्रति क्या कर्त्तव्य है? उसे रोगी के रोग की परीक्षा कैसे करनी चाहिये इत्यादि बातों को ध्यान में रखते हुए हम निम्नलिखित पंक्तियों पर गौर करेंगे—

(१) यद्यपि मैंने उपरोक्त कथन में 'नाड़ी-परीक्षा' का जिक्र नहीं किया है क्योंकि प्राचीन काल में ऋषि मुनियों को उसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती थी और इसलिये चरक, सुश्रुत, वागभट्ट और हारीत संहिता प्रभृति ऋषि मुनि प्रणीत ग्रन्थों में कहीं भी 'नाड़ी-परीक्षा' का जिक्र नहीं है तो भी आजकल इसका इतना प्रभाव जम गया है कि जिस रोगी को देखिये वही वैद्य के सामने पहले अपना हाथ कर देता है। यदि विचारा वैद्य नाड़ी-ज्ञान में प्रवीण है तो अवश्य ही रोगी के रोग का हाल नाड़ी देखकर बता देगा और उस रोगी की श्रद्धा वैद्य महाशय पर हो जायगी और यदि वह नाड़ी छूकर चुप रहा तो परिस्थिति बिगड़ जाती है तथा रोगी वैद्य को वैद्य नहीं समझता। इसलिये आजकल की हवा को देखते हुए प्रत्येक वैद्य को कुछ न कुछ नाड़ी-परीक्षा अवश्य ही सीखनी चाहिये।

(२) सर्व प्रथम वैद्य को मधुर भाषी होना चाहिए। जिस गांव में या शहर में वह रहता है उसे अपने आसपास के वातावरण को गांव के लोगों से जहां तक बन सके अपने सुन्दर व्यवहार से, अपनी सेवाओं से प्रसन्न बनाये रखना चाहिये। इससे वैद्य की प्रतिष्ठा बढ़ती है और वह लोक प्रिय वैद्य बन जाता है।

(३) व्यक्ति चाहे बड़ा आदमी हो या छोटा आदमी परन्तु जब तक बुलावा न आवे चिकित्सक को रोगी के घर में स्वयं ही कभी नहीं जाना चाहिए। यदि बुलावा आता है तो वैद्य को रोगी के घर में प्रवेश होने के पूर्व अपने आगमन की सूचना उसके घर वालों को देनी चाहिए।

(४) पवित्र भावना से रोगी को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य लेकर रोगी के समीप जाकर सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में बात करनी चाहिए तथा रोगी से उसकी अवस्था के विषय में प्रश्न करना चाहिए। अगर रोगी कुछ बताने में असमर्थ है तो उसके पास जो आदमी हमेशा रहता है उससे प्रश्न करिये। जब वे लोग रोगी का सब हाल बतालें तब उसे स्वयं रोगी की अच्छी तरह से परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि इसी के ऊपर उसकी चिकित्सा की सफलता निर्भर है। प्रधानतः लक्षण दो प्रकार के होते हैं। जो लक्षण सिर्फ रोगी ही अनुभव कर सकता है, किन्तु चिकित्सक नहीं और देख भी नहीं सकता है, उस लक्षण को प्रश्नगत (Subjective) लक्षण कहते हैं। यथा—दर्द, जी मचलाना, मानसिक अवस्था आदि। जो लक्षण वैद्य स्वयं परीक्षण करके मालूम कर सकता है उस लक्षण को प्रत्यक्ष (Objective) लक्षण कहते हैं।

(५) जहां तक सम्भव हो सके अच्छी तरह से रोग का कारण और उसके हाल की जांच करनी चाहिए और बड़ी सावधानीपूर्वक औषधि, पथ्य और आहार विहार की व्यवस्था करनी चाहिए।

(६) रोगी के मन की हालत, शारीरिक धर्म, स्वभाव, उम्र इत्यादि पर ध्यान रखना चाहिए। रोगी पुरुष अथवा स्त्री है इस विषय में भी जांच करनी चाहिए।

(७) स्त्रियों की परीक्षा एकांत में कभी नहीं करनी चाहिये। उनके घर वालों या पति के समक्ष शुद्ध भावना से रोग परीक्षा करनी चाहिये। यदि गुप्तांगों के परीक्षण की आवश्यकता महसूस हो तो किसी योग्य वैद्य की सहायता और सलाह लेनी चाहिये। वैद्य को कभी भी स्त्रियों द्वारा दिया हुआ कोई भी उपहार या फीस अकेले में नहीं लेना चाहिये।

(८) दर्द, पाखाना, ज्वर, पेशाब इत्यादि का स्वभाव और मल, वमन इत्यादि का रंग, गन्ध आदि और इन सब के निकलने का तरीका भी जानना अनिवार्य है।

(९) पीड़ा अथवा कोई तकलीफ रोगी की दाहिनी या बायीं तरफ है इस पर ध्यान रखना जरूरी है। तथा शिर दर्द, पेट दर्द, वगैरह किस तरह से बढ़ता और कम होता है इस पर भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। रोगी किस हालत में सोता या जागता है यह सब देखना चाहिये।

(१०) कभी कभी ऐसे भी अवसर आते हैं कि वैद्य यद्यपि रोगी को पूर्ण परीक्षा करता है किन्तु रोग का पता नहीं लगा पाता। ऐसी स्थिति में उसे निःसंकोच रोगी को अपने से बड़े चिकित्सक के पास जाने की उचित सलाह देनी चाहिये। ऐसा करने से वैद्य की प्रतिष्ठा बनी रहती है।

(११) वैद्य को सहनशील, विवेकशील और धैर्यवान होना अनिवार्य है। उसे गंभीर रोगों में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। तथा रोगी के समक्ष अपनी घबराहट प्रकट नहीं करनी चाहिये। इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि असाध्य रोगियों को चिकित्सक हाथ में न ले।

(१२) बिना पहिचाने ही चिकित्सा आरम्भ कर देने वाला वैद्य चाहे सम्पूर्ण औषधियों के प्रयोग को क्यों न जानता हो लेकिन उसे चिकित्सा में सिद्धि होना

—शेषांश पृष्ठ ८५५ पर।

मत्स्यपुराण में सगर्भा स्त्री के कर्त्तव्याकर्त्तव्य

श्री गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

पुराण-ग्रन्थ रत्नाकर समुद्र हैं। इनके मंथन से हमें चौदह रत्न ही नहीं, प्रत्युत असंख्य रत्नराशि की उपलब्धि हो सकती है। ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके सम्बन्ध में इन ग्रन्थों में कुछ न मिले। विश्व की प्रत्येक समस्या का हल इनमें प्राप्य है। संसार के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर इनसे प्राप्त किया जा सकता है। उलझी गुत्थियों को इनके द्वारा सुलझाया जा सकता है। ऐहिक ही नहीं बल्कि पारलौकिक तत्वों को भी इनके द्वारा समझा बूझा जा सकता है। पुराणों में सब कुछ है, यदि अध्यवसाय पूर्वक स्वाध्याय, मनन, और अनुशीलन द्वारा खोज की जाय। सगर्भा स्त्री के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में वर्णित बातें यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं। अदिति से कश्यप ने कहा था—

सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्यावर वर्णिनि।
न स्यातव्यं न गन्तव्यं वृक्ष मूलेषु सर्वदा।
नोपस्करेषूपविशेन मूसलोलूखलादिषु ॥ ३८॥
जलेच नावगाहेत शून्यागारञ्च वर्जयेत्।
वल्मीकायां न तिष्ठेत नचोद्विग्नामना भवेत् ॥३९॥
विलिखेन्न नखैर्भूमिन्नाङ्गारेणच भस्मना।
नशयालुः सदातिष्ठेत् व्यायामञ्चविवर्जयेत् ॥४०॥
नतुषाङ्गारभस्मास्थि कपालिषु समाविशेत्।
वर्जयेत् कलहं लोकैर्गात्र भङ्गं तथैवच ॥४१॥
न मुक्तकेश तिष्ठेत नाशुचिः स्यात् कदाचनः।
न शयीतोत्तरशिरा नचापर शिरोः क्वचित् ॥४२॥
न वस्त्रहीना नोद्विग्नानचार्द्रा वरणासती।
नामङ्गल्यां वदेदवाचं न च हास्याधिकाभवेत् ॥४३॥
कुर्यातु गुरु सुश्रूषां नित्यंमाङ्गल्यतत्परा।
सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणास्नानमाचरेत् ॥४४॥
यस्तुतस्या भवेत् पुत्रः शीलायु बुद्धि संयुतः।
अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ॥४६॥

अर्थात्—अदिति! तू गर्भिणी होकर सन्ध्याकाल में भोजन मत करना। वृक्षों की जड़ों में, बुहारी, सूप ऊखल मूसल के समीप नहीं बैठना। जल में गोता न लगाना। सूने घरों में तथा बांबी के पास न जाना और कभी अनमनी न रहना। अपने नाखूनों से भूमि न कुरेदना और कोयले तथा राख से जमीन पर लकीरें न बनाना। अधिक न सोना। अधिक श्रम न करना। तुष अंगार, भस्म, हड्डी, और कपाल पर पांव न रखना। कलह कभी न करना। अंगडाई न तोड़ना। सिर के बालों को खुले न रहने देना। अपवित्र न रहना। उत्तर दिशा की ओर सिर करके कभी न सोना। चारपाई के पैताने की ओर सिर करके न सोना। नग्न न रहना। गीले वस्त्र धारण नहीं करना। शोकाकुल न होना। अशुभ, अभद्र तथा कटु बचन कभी न बोलना। खूब कहकहा मार कर अट्टहास न करना। गुरुजनों तथा अपने पति की सेवा में मन लगाना। सदैव मङ्गल कार्यों एवं शुभ कृत्यों में तत्पर रहना। औषधि से सिद्ध किए जल से स्नान करना। इन नियमों के अनुसार आचरण करने वाली स्त्री के गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा। वह उत्तम आयु और अबाधवृद्धि को प्राप्त करेगा। इन बातों के विपरीताचरण में या तो गर्भपात होगा अथवा सन्तान दीर्घजीवी नहीं होगी।

ये सब बातें बड़े अनुभवों के बाद कही गई हैं। गर्भ में बालक पर उसकी जननी के छोटे कार्यों का गहरा प्रभाव होता है। अतएव सगर्भा स्त्री का दायित्व अत्यधिक होता है। उसे मन, वचन और कर्मों की पवित्रता तथा नियमितता पर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए। उठना, बैठना, चलना, फिरना, खाना, पीना, वेषभूषा, शृङ्गार, बातचीत तथा विचारों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। गर्भस्थ सन्तान पर

—शेषांश पृष्ठ ८५५ पर।

पोथकी (Trachoma) रोग और उसकी चिकित्सा

श्री जगदीशचन्द्र भारद्वाज

पर्यायवाची नाम—संसार में यह रोग भिन्न भिन्न नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु प्रायः करके लोग इन्हें रोहे कहते हैं। पंजाबी में कुकरे और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पोथकी तथा पाश्चात्य विद्वान ग्रेनुलर कंजक्टिवाइटिस अथवा ट्रोकामा भी कहते हैं।

संक्षिप्त इतिहास—भारत में यह रोग पहले इतना अधिक नहीं था। कहते हैं कि १८०३ से १८१५ में नैपोलियन बोनापार्ट नामक योधा से एक बड़ा भारी युद्ध हुआ था। इस युद्ध में प्रायः करके मिश्र से लेकर योरुप तक के जवान भर्ती हुए थे जैसे-एशिया, पौलैंड, हङ्गरी, जापान, चायना, आयरलैंड, अरब और मिश्र देश आदि। जब सिपाही अपने घर गये तो उनके नेत्रों में इस रोग का विशेष प्रभाव था। इसी प्रकार मिश्र के सिपाही जब भारत में आये तभी से यह रोग विशेष रूप से फैला तथा इसी कारण इसे मिश्री रोग तथा पाश्चात्य भाषा में ईजिप्ट ओफ-थलमिया कहते हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों ने पोथकी संज्ञा दी है तथा जनता में विश्व विख्यात कुकरे, रोहे के नाम से पुकारी जाती है। इससे पूर्व भारत में इसका प्रसरण इतना नहीं था। यह व्याधि मिश्र वालों की देन होने से इसे मिश्री बीमारी भी कहते हैं और प्रायः करके तङ्ग बस्तियों में इसका अधिक प्रकोप होता है।

प्रसरण प्रकार—यह निर्विरोध सिद्ध है कि आधुनिक चिकित्सक भी प्राच्य चिकित्सकों की भांति प्रसरणशील संक्रामक (फैलने वाली) बीमारी मानते हैं। इसके कारण अनेकों हैं इसका फैलाव एक दूसरे के संसर्ग द्वारा होता है। इस रोग से पीड़ित मनुष्य के नेत्र का जल स्राव दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के नेत्र से सम्पर्क करता है तो उसके भी रोग उत्पन्न कर देता है। यह एक प्रकार से नहीं, भिन्न प्रकार से एक दूसरे पर लगता है, जैसे रोगी वस्त्र से अपनी आंखें पोंछता है और वही वस्त्र अन्य व्यक्ति प्रयोग करेंगे तो उन्हें भी यह रोग लग जाने का पूरा अन्देशा रहता है। यह रोग प्रायः कल कारखानों में काम करने वाले, अति गन्दगी युक्त तङ्ग बस्तियों वाले, मित्र मण्डली में ध्यान न करने वाले एक दूसरे का रूमाल, तौलिया साबुन आदि का प्रयोग करने एवं अति प्रेम दिखाने वाली माता जो कि अपने बच्चों को नित्य प्रति काजल का प्रयोग करती हैं उन्हीं में किसी बच्चे को इस रोग का प्रकोप है और माता अज्ञानवश उसी अंगुली द्वारा अन्य बच्चों के भी काजल लगाती हैं तो उन्हें भी इस रोग का शिकार होना पड़ता हैं। इसी प्रकार आजकल प्रायः करके कालेज या बोर्डिङ्ग में पढ़ने वाले शिक्षार्थीगण का एक दूसरे के ऊपर हाथ धोना तथा उसी तौलिये द्वारा मुख साफ करना तथा आपस में एक दूसरे की एनक (गौगल) का प्रयोग करता या उसी पात्र के जल से हाथ धोता है तो उस पात्र में रोग का विष लग जाता है तथा इससे एक दूसरे पर फैलने में सरलता हो जाती है। अतः यह सभी बातें असावधानता के कारण करने से स्वस्थ व्यक्ति भी रोगग्रस्त हो जाता है और सावधानता रखने से काफी बचत हो जाती है। इसलिये स्वच्छता रखना अति लाभप्रद है।

रोग उत्पादक हेतु—धूम, अग्नि अथवा अति परिश्रम से अभितप्त होकर स्वेद से तरवतर व्यक्ति का शीतल जल में अचानक प्रवेश करना, दूर की वस्तु निरन्तर देखना, असमय सोना, नेत्रों में धूप, धूंआ, विकृत वमन का रोकना, अधिक वमन से, रात्रि में द्रव पदार्थ सेवन करना, मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, क्रोध शोकादि करने, अचानक आघात से ऋतु के विपरीत परिवर्तन से, अति मद्यपान, सूक्ष्म वस्तु अति देर तक देखने से कुपित वातादि

दोष नेत्रों में जाकर स्थान भेदानुसार अन्यान्य रोग उत्पन्न कर देते हैं। इन्हीं में यह पोथकी एक प्रसिद्ध रोग है।

सम्प्राप्ति—अपने अपने कारणों से कुपित वातादि दोष शिर में स्थित हो ऊर्ध्वभाग में जाकर नेत्र के किसी भाग में स्थित हो दोषानुसार अवस्थानुसार, स्थानानुसार, नेत्रों में जाकर अत्यन्त भयङ्कर रोग उत्पन्न कर देते हैं।

लक्षण—

स्राविण्यः कण्डरा गुर्व्यो रक्त सर्षपसन्निभाः।
रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः॥

अर्थात् नेत्र के पलक (बरोनी) स्राव युक्त, खुजली, लालिमा, भारीपन से युक्त वेदना करने फुंसियां सरसों के दानों के समान निकलती हैं। इन्हें पोथकी रोहे, ट्रोकोमा कहा जाता है। इनसे कुछ अधिक महर्षि वाग्भट्ट जी ने कहा है—

पोथक्यः पिडकाः श्वेता सर्षपभा घना कफात्।
शोफोपदेह रुक्कण्डू पिच्छिलाश्रु समन्विताः॥

अर्थात् कफ के कारण श्वेत सरसों के आकार वाली घनी शोथ युक्त मैल पीड़ा कण्डू पिच्छल (चिपचिपापन) तथा अश्रुयुक्त पिडिकाऐं हो जाती हैं उन्हें पोथकी कहते हैं। प्राचीन शालाक्य की दृष्टि से यह वर्त्मगत रोग है किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने ग्रे नुलर कंजक्टिवाइटिस कहा है। अर्थात् वर्त्मगत कंजक्टइवा का ऐसा शोथ जिसमें उपरोक्त लक्षण हो गये हों उसे ट्रोकोमा कहते हैं विशेष अन्तर नहीं होता। यह रोग बड़ा हठीला चिर समय तक रहने वाला है। इसके दो भेद हैं। एक आशुकारी, दूसरा चिरकारी। पहली एक तो अचानक हो जाता है नेत्रादि लाल होकर शोथ युक्त हो जाते हैं और ऊपर कहे सभी लक्षण मिलते हैं। दूसरा चिरकारी है जिसके होते हुए भी उसे ज्ञात नहीं होता, शनैः शनैः बढ़ता जाता है और आखिर में ज्योतिहीनता, कण्डू, जलस्रावादि होने पर ज्ञात होता है कि नेत्रों में कोई व्याधि है। पाश्चात्य वैद्य या डाक्टर देखते ही कहते हैं कि यह रोग पुराना है। प्रथमावस्था की उचित चिकित्सा न कराने से याप्य होजाता है अर्थात् जितने समय चिकित्सा उपचार होता रहे उतने समय ठीक रहता है। चिकित्सा समाप्ति पर पुनः लक्षण पैदा हो जाते हैं जैसे कि पूर्व थे। इससे नेत्र वर्त्मगत श्लेष्मकला में दाने पड़ जाते हैं। नेत्रों में जल स्राव होना, प्रकाशासह्यता, पीड़ा, चकाचौंधादि लक्षण हो जाते हैं। दोष तथा अवस्थानुसार कभी अधिक कभी कम। इसके अतिरिक्त पलकों का फूलना, मोटा होना, पलकों का बन्द रहना आदि लक्षण भी होते हैं।

उपरोक्त जो दो प्रकार कहे गए हैं उनमें एक में शोथ नेत्र की श्लेष्म त्वचा में ललाई आदि लक्षण उपरोक्त लक्षण होते हैं।

द्वितीय साधारण—शोथहीन जिसमें उपरोक्त लक्षण बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं होते यहां तक कि रोगी को बीमारी की उपस्थिति का ज्ञान नहीं होता। रोग के अधिक बढ़ जाने पर ही ज्ञान होता है। अभी तक वैज्ञानिकों में पोथकी रोगोत्पादक कीटाणुओं के विषय में मतैक्य नहीं है। जापानी वैज्ञानिक नोगुची ने एक प्रकार के कीटाणुओं को रोगोत्पादन में उत्तरदायी ठहराया है। इसी प्रकार एक जर्मनी वैज्ञानिक प्रोवाझेक ने रोहों के दानों की अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा कर यह ज्ञान किया कि यह कीटाणु एक विशेष प्रकार के पिण्ड (प्रोवाझेक्स इन्क्यूजन बौडिज) को रोगोत्पादक ठहराया है, परन्तु अभी तक निश्चित नहीं किया गया।

रोग ज्ञानोपाय चिन्ह—

(१) नेत्रों से स्राव लगातार होना जो कि विशेषकर वायु धूप धूआं की वजह से या नेत्रों पर जोर पड़ने वाले कारणों से होता है।

(२) प्रकाशासह्यता—कभी कभी इतनी अधिक पीड़ा होती है कि रोगी अंधेरे में सिर को नीचा किये पड़ा रहता है। यदि कुछ कम हुआ तो चश्मा लगाकर बाहर निकल सकता है अन्यथा नहीं।

(३) वेदना—पीड़ा सदैव बनी रहती है। प्रायः प्रातःकाल उठने पर नेत्र रगड़ते अनुभव होते हैं मानों नेत्रों में रजःकण पड़े हैं।

(४) नेत्र खोलने में असमर्थता-रोग आंखों की पलकों के भीतर होने से नेत्र लालिमा युक्त होकर अश्रु बहने लगते हैं जिससे कीचड़ उत्पन्न होकर नेत्र चिपक जाते हैं। रोगी पूर्णतया खोलने में असमर्थ होता है।

(५) दर्शन परीक्षा—नेत्रों की पलकों को उलट कर देखने से ज्ञात होगा कि पलकों पर लालिमायुक्त खुरदरे से बहुसंख्यक सरसों के समान उभड़ते हुए दाने दृष्टिगोचर होते हैं। यह दाने छोटे बड़े कई प्रकार के हो सकते हैं। विशेषतः साबूदानें या सरसों के समान खुरदरापन लिए होते हैं। यह दाने अपेक्षाकृत् ऊपर वाली पलक में अधिक पाये जाते हैं। अधिक समय व्यतीत होने पर कतारनुमा होकर मोटे हो मांस की तरह झिल्लीनुमा बन जाते हैं, चिरकाल तक चिकित्सा कराने से ठीक होते हैं। इतने विस्तार से वर्णन किया गया है फिर भी अनेकों बार निर्णय में शङ्का रह जाती है।

(६) चिरकालीन होने पर तीन अवस्थाएं—

१—नेत्रों में शोथ होकर मांस की सतह सी बन जाती है और कभी घिस कर पीड़ा शांत हो जाती है।

२—कुछ समय पर्यंत फिर उत्पन्न हो जाते हैं।

३—यह रोग दीर्घकाली बनकर सदैव जीवन भर दुःख ही देता रहता है। रोगी की दृष्टि क्षीण होती जाती है।

उपरोक्त व्याधि में चिकित्सा न कराने से नेत्र व्रण, परवाल, फूला, क्षत, श्लेष्मावरण की शुष्कता, असह्य वेदना, दृष्टिमान्द्य आदि रोग हो जाते हैं।

चिकित्सा विधि—

प्रायः करके चिकित्सा के दो भेद हैं। एक रोग की रोध का, दूसरी रोग शामक चिकित्सा होती है।

सर्व प्रथम इसका उपचार करने वाले डाक्टर अथवा वैद्य को भी स्वच्छता की ओर ध्यान रखना चाहिये। नेत्रादि को धोने के बाद अपने हाथ भी तुरन्त साबुन द्वारा स्वच्छ कर लेने चाहिए। यदि संक्रमण की शंका हो तो आर्जिरोल या सिलवर नाईट्रेट की एक एक बूंद नेत्रों में अवश्य डालें।

चिकित्सक रोग परीक्षा के बाद रोगी को टेबल पर लिटाकर बोरिक एसिड के जल द्वारा फोमेन्टेशन करे। तत्पश्चात् अर्जिरोल डाल कर मरहम लगादें। दूसरे अगर रोग बढ़ा हुआ हो तो पहले आयोडाइड लोशन की १-२ बूंद नेत्रों में डालें। औषधि लगेगी रोगी को आदेश दें कि नेत्र खोले बन्द करे। एसा करने से जल स्राव होगा नेत्र लाल हो जांयगे। पश्चात् उपरोक्त विधि से बोरिक के उष्णोदक से धावन करे। बाद में उसी प्रकार आर्जिरोल, सल्फासिटेमाइड का घोल (प्रसिद्ध औषधि लोक्यूला) डाले। या मरक्यूरोक्रोम या पोटाशम लोशन इनमें कोई एक डालकर पश्चात् वैसलीन या टैरामाईसीन, पैनसलीन, एरोम.ईसीन या सल्फा मरहम कोई एक को जरा जरा दोनों आंखों में डाल हलके हाथ से लगादें। यह उपचार सर्वश्रेष्ठ है। बाकी चिकित्सा दोष अवस्था भेद से की जाती है। हर स्थान पर हर औषधि कार्य नहीं करती किन्तु फिर भी हम कुछ निजी प्रयोग लिख रहे हैं। पाठक गण लाभ उठावें—

सर्व प्रथम हर एक व्यक्ति आयोडाईड घोल नहीं बना सकता सो इसकी विधि यह है। (१) सिलवर नाइट्रेट क्रिस्टल १ ड्राम विशुद्ध जल १ औंस को काली शीशी में हल करलें। उसे सूर्य प्रकाश से बचा कर रक्खें। (२) दूसरी शीशी में इसी प्रकार पोटाश आयोडाइड २ ड्राम, जल २ ओंस, ग्लसरीन ४ ओंस का घोल बनालें। इन दोनों के मिश्रण से सिलवर आयोडाइड बनता है। अब जब भी दवा तैयार करनी हो नं० १ की शीशी से ४ बूंद और नं० २ की शीशी से ८ बूंद दवा लें। दोनों को ड्रापर द्वारा

मिश्रित करलें। यह पीतिमायुक्त दूधिया रङ्ग की औषधि बनेगी। डालने के समय भी मिक्स करके डालना चाहिए। प्रयोग विधि ऊपर चिकित्सा में वर्णन कर चुके हैं।

अन्य उपयोगी औषधियां—

१-आर्जिरोल घोल १ % का सर्वोत्तम होता है।

२-इसी प्रकार पोटारगल भी १ % का बहने के लिए उत्तम है।

३-कोपर ग्लसरीन भी उत्तम दवा है जिसकी विधि यह है कि तवे पर फुलाकर शुद्ध तुत्थ ½ रत्ती, विशुद्ध जल २ ड्राम ग्लसरीन २ ड्राम मिलालें। पानी के रूप में औषधि तैयार है। १-१ बूंद डालें। औषधि कुछ लगेगी। पश्चात् कोई एक मरहम लगाना चाहिए।

४-आईटो आंखों की महान दवा-गुण तथा रंग में नैनोल के समान है। रसौत २ तोले, तुत्थ १ माशा, स्फटिका ३ माशा, जिंकसल्फेट १० ग्रेन, बोरिक २ ड्राम, एक्रीफ्लेविन ४ रत्ती, कैम्फर (कपूर) १ माशा, जल १ सेर। विधि यह है कि एक सेर जल जब खूब खौलने लगे तब क्रम से सभी औषधियां इसमें डाल दें। तीन पाव रहने पर उतार लें। शीतल होने पर नितार कर शीशी में भर दें। पश्चात् २ ग्रेन मेथलीन ब्ल्यू डाल दें। अति सुन्दर हरा रङ्ग हो जायेगा। प्रातः सायं डालें। सभी अवस्था में लाभप्रद है। बनी आंखों के बाद भी डाली जासकती है।

५-आयुर्वेदिक चन्द्रोदयवर्ती भी इसकी अच्छी औषधि है।

६-निम्न मरहमों को भी प्रयोग कर सकते हैं-पैनसलीन, टेरामाइसीन, एरोमाइसीन, लोक्यूला मरहम आदि आदि अथवा ५ गोली सल्फोनामाईड पीस कर वैसलीन १ औंस में मिलालें। यह मरहम भी अच्छा कार्य करती है।

७-शुद्ध गंगाजल १ बोतल, स्फटिका १॥ माशा, तुत्थ २ रत्ती डाल दें। १५ दिवस बाद उत्तम औषधि तैयार है।

—कवि० श्री जगदीश चन्द्र भारद्वाज *B.A.M.S.*
राजकीय औषधालय, जोधका (हिसार)

:: पृष्ठ ८५१ का शेषांश ::

किसी अशुभ तथा अपवित्र बातों का संस्कार नहीं होने देना चाहिए। सदैव यह भावना रहनी चाहिये कि गर्भस्थ शिशु संसार का महान व्यक्ति होगा। इसी उद्देश्य से जननी को अपना आचार विचार और आहार विहार उत्तम रखना चाहिए। उत्तम सन्तान के माता पिता जगत में यश कीर्ति पाते हैं। लोग सुसन्तान के जनक जननी की प्रशंसा करते हैं और उन्हें धन्यवाद तथा साधुवाद देते हैं। जननी को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे उत्तम सन्तान उत्पन्न करनी है। सुसन्तान के अभाव में जननी को बांझ रहना ही श्रेयस्कर है, यह सार्वभौमिक मान्यता है। मत्स्य पुराणवर्णित उक्त बातें सगर्भा के लिये सुन्दर सङ्केत हैं। सगर्भाओं को इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

—विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगर (म० प्र०)

\+ + +

:: पृष्ठ ८५० का शेषांश ::

अनिश्चित है। परन्तु जो वैद्य रोगों को समझता है तथा सम्पूर्ण औषधियों के प्रयोग को जानता है और साध्यासाध्य विवेक (*Prognosis*) अच्छी तरह कर सकता है उसके समक्ष सिद्धि हमेशा हाथ जोड़े खड़ी रहती है।

—डा० पं० घनेन्द्र हुसुल मिश्र
भिलाई स्पात योजना,
भिलाई (दुर्ग) म० प्र०

सांप का स्वभाव

[ऑल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली से ३०-४-६० को प्रसारित वार्त्ता]

वार्ताकार श्री रामेश वेदी

जुलाई १६६० की बात है कि मेरे घर में एक ही पिंजरे में दो सांप रह रहे थे। एक था धामन और दूसरा था दुमदराज हफ़ई। उनके भोजन के लिये मैंने छोटे-छोटे मेंढ़क पिंजरे में डाले। धामन एक मेंढक पर झपटा। मेंढक की बजाय दुमदराज़ हफ़ई का मुख धामन के खुले जबड़ों में आगया। धामन ने उसी को निगलना शुरु कर दिया। सांपों में एक दूसरे को हड़प जाने की ऐसी घटनाऐं अनेक बार देखने में आ जाती हैं। वैसे, बन्दी जीवन में बहुत से सांप खाना पीना छोड़ देते हैं। मेरे एक अजगर ने चार मास तक कुछ नहीं खाया था। मेंढक, चूहे, छुछुन्दर, खरगोश, पिल्ले अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उसके पिंजरे में चहल पहल मचाये रखते, परन्तु वह शान्त पड़ा रहता। हमारे देश में जनसाधारण का यह विश्वास है कि सांपिन अपने सौ अण्डों में से केवल एक छोड़ती है और निन्यांनवे को खा जाती है।

बातचीत में यदि सांप का प्रसंग आ जाये तो इसके रहस्यमय स्वभाव के किस्से कहानियों का और रोमांचकारी घटनाओं के क्रम का कहीं अंत ही नहीं होता।

जीवों का ऐसा समूह सांप ही है जो किसी भी दृश्य साधन के बिना और प्रकट रूप में बिना किसी कठिनाई के इतनी सुगमता से और तेज़ी से दौड़ लेता है। सांप कैसे चलता है यह जानने के लिये हमें उसकी अन्तः रचना को समझना चाहिये। सांप की रीढ़ की हड्डी में तीन से चार सौ तक कशेरुका होते हैं। पहले दो या तीन कशेरुकाओं को छोड़ कर प्रत्येक के साथ पसलियों का एक जोड़ा लगा रहता है। पसलियों का केवल एक सिरा कशेरुकाओं से जुड़ा होता है और दूसरा सिरा स्वतन्त्र रहता है। ये लम्बी मुड़ी हुई लचकीली और प्रायः खोखली होती हैं। ये सुगमता से आगे तथा पीछे गति कर सकती हैं। सांप के चलने को पसलियों की अन्तः गति का बाह्य निरूपण समझना चाहिये। पसलियों के स्वतन्त्र सिरे साथ-साथ रेंगते हैं। सर्पण में सांप वास्तव में अपनी पसलियों के सिरों पर चलता है जिसमें उसकी त्वचा के छिलके भी सहायता करते हैं। रेंगने की प्रक्रिया सदा पेट के बाहरी भागों से सम्पादित होती हैं। जब सांप रेंगता है तो शरीर के एक पार्श्व की पसलियां आगे जाती हैं और तब छिलकों के किनारे धरती को पकड़ लेते हैं। तब, दूसरी ओर की पसलियां अपने स्थान से उठकर उनके सामने चली जाती हैं। इस क्रिया से शरीर का पिछला भाग आगे खींचा जाता है तथा अगला भाग आगे धकेल दिया जाता है।

इस प्रक्रिया में त्वचा के छिलके कितना महत्वपूर्ण भाग लेते हैं यह इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि सांप को शीशे की चपटी चादर पर रख दें तो वह जरा भी रेंग नहीं पाता क्योंकि वहां पर उसे अपने छिलकों को अटकाने का अवसर नहीं मिलता। चिकनी धरती पर या शीशे की चादर के ऊपर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खूटियां गाड़ दी जांय तो सांप उनके साथ अपने छिलके अटका कर चलने लगता है। सांप की ऊपर की खाल जब पुरानी पड़ जाती है तो त्वचा के नीचे एक तैलीय पदार्थ आ जाने से उसका संबंध नीचे से टूट जाता है। तब यह पुरानी खाल एक लम्बे चोले की तरह पूर्णतया उतर जाती है इसी को कैंचुली कहते हैं। कैंचुली उतरने के बाद सांप चुस्त, सावधान, सजीव और चमकीला दीखता है।

प्रत्येक सांप की जीभ आगे से दो भागों में चिरी हुई होती है। जीभ के आधार पर एक थैली होती है जिसमें उसे समेटा जा सकता है। मुख के अन्दर

जाते ही जीभ इस थैली में चली जाती है। इसलिये सांप का मुख खोलकर देखने से इसका पता ही नहीं चलता। अपनी इच्छानुसार सांप जीभ को बाहर निकाल सकता है और थैली के अन्दर ले जा सकता है। सांप की ऊपर की थूथनी के नीचे बीच के छिलके में एक गढ़ा होता है। मुख बन्द कर लेने पर भी जीभ इसमें से बाहर निकल सकती है। समुद्रीय सांपों में इस गढ़े के दो भाग बन गये होते हैं और जीभ का केवल चिरा हुआ भाग ही बाहर आ सकता है।

जीभ लपलपाने के अनेक प्रयोजन हैं। जब सांप चलता फिरता है तो जीभ खोज करने के अङ्ग या स्पर्शेन्द्रिय के समान कार्य करती है। इसके द्वारा यह मार्ग को टटोलता हुआ आगे बढ़ता है। वस्तुओं को स्पर्श करके उनके विषय में यह ज्ञान प्राप्त करती है। इसके द्वारा यह बहुत सी सूक्ष्म चीजों का भी अनुभव कर लेता है। केंचुली के आवृत हो जाने पर आंखों का छिलका जब अपारदर्शक सा हो जाता है और सांप कुछ समय के लिये आंखों से स्पष्ट देखने में असमर्थ हो जाता है तब वह जीभ से अनुभव करके अपना कार्य सम्पादन करता है। अन्धे की लाठी की तरह यहां सांप की जीभ सहायता करती है।

बहुधा लोग जीभ को डंक मारने का अङ्ग समझते हैं। इसलिये वे सांप को जीभ लपलपाते देखकर बहुत भयभीत हो जाते हैं। सचाई यह है कि जीभ का सांप के विष यंत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ सांप जीभ को वास्तव में डराने के काम में लाते हैं। जीभ के दोनों सिरों को फैलाकर ये हवा में धीरे धीरे तैराते हैं या इसे बाहर निकाल कर एक ही स्थान पर लम्बे डंक की तरह गति शून्य रखते हैं। इस मुद्रा में सांप डरावने भी दीखते हैं। भय से तब जीभ को डंक भी समझ लिया जाता है। जीभ विचारी तो कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती है। यह इतनी मुलायम तथा लचकीली रचना है कि एक पतले झिल्लीदार कागज में भी छेद नहीं कर सकती।

दो भागों में फटी हुई जीभ संभवतः दो नथुनों को गंध पहुँचाने का काम भी करती है। अण्डे खाने वाले सांप को जब कोई अण्डा मिलता है तो वह अपनी जीभ से उसको चारों ओर से टटोल कर निश्चित करता है कि वह खाने के योग्य है या नहीं। ताजा और अच्छा हुआ तो वह उसे झट निगल जायेगा। उसमें कुछ खराबी हुई तो वह उसे वहीं छोड़ देगा। इस बात से ज्ञात होता है कि जीभ द्वारा सांप उसकी अच्छाई और बुराई को जान जाता है।

सरदी के मुकाबिले में सांप धूल और गरमी को अधिक पसन्द करते हैं। सरदी को ये सहन नहीं कर सकते इसलिए इन दिनों ये बाहर नहीं निकलते, पूर्ण विश्राम लेते हैं। यहां तक कि सरदियों के चार महिने ये खाना तक छोड़ देते हैं। यह एक प्रकार की सुषुप्ति की सी अवस्था होती है इसलिए इसे शीत स्वाप कहते हैं। शीत स्वाप में पड़ा हुआ सांप सम्भवतः उस चरबी पर जीवित रहता है जो उसकी खाल के नीचे गरमियों में जमा हो गई थी।

इस समय ये जीवन की प्रायः सब क्रियाओं को स्थगित कर देते हैं। इनके शरीर में रुधिर का संचार भी मन्द पड़ जाता है। सांस इतना मद्यम हो जाता है कि सांप का शरीर हिलता डुलता हुआ नहीं दीखता। फेफड़े निश्चेष्ट से जान पड़ते हैं। शीत स्वाप में फनियर जैसे घातक सांप को छेड़ा जायगा तो वह भी काटने की चेष्टा तक नहीं करता। वायु मण्डल में अनुकूल अवस्थाएं आ जाने पर सांप अपने स्थगित जीवन को पुनः सक्रिय कर लेते हैं।

सांप अंधेरे में रहना पसन्द करते हैं और इसलिए भूमि के अन्दर बिलों को अपने निवास के लिए चुनते हैं। खोदने के साधन न होने से ये स्वयं तो बिल खोद नहीं सकते, चूहे, दीमक तथा छोटे प्राणियों के द्वारा बनाये हुए बिलों पर अधिकार कर लेते हैं। दुमुही जैसे सांप अपनी

थूथनी द्वारा नरम मिट्टी में गड़ जाते हैं। तरु-मण्डल और ड्रायोफिस सांप वृक्षों पर रहते हैं और हरे पत्तों में खूब विचरते हैं। शेषनाग बड़े वृक्षों वाले जङ्गलों को पसन्द करता है। दबोइया ताड़ जैसे किसी ऊंचे वृक्ष पर पक्षियों के घोंसलों की खोज में चढ़ जाता है और मछलियों को पकड़ने के लिए पानी में गोता भी लगा लेता है। फनियर और कौड़िया सांप पहाड़ों पर चट्टानों की दरारों में, ईंट के पुराने भट्टों में और मानवीय निवासों में रहते हैं। कामन वुल्फ स्नेक प्रायः कर घरों में ही मिलता है। अजगर पहाड़ों पर और तराई के जङ्गलों में रहता है। जलीय सांप समुद्र तट पर या नदी के किनारों पर पानी के नीचे छिद्रों में रहते हैं। गिण्डोले जैसे छोटे चमकीले सांप नमीदार स्थानों में सड़े गले लट्ठों और कूड़े करकट में रहते हैं।

प्रायः सभी सांप डरपोक होते हैं। छेड़ने पर भाग निकलने या किसी स्थान पर छिप जाने का प्रयत्न करते हैं। ये तभी काटते हैं जब पैर के नीचे दब जांय और बचकर निकल न सकते हों। शिकार का पीछा करते हुए किसी से डरते नहीं, आदमी के पास भी पहुँच जाते हैं।

सांप क्यों काटता है? इसका उत्तर आचार्य वाग्भट् ने यह दिया है—भोजन के लिए, भय से, पांव का स्पर्श हो जाने से, ग्रन्थियों में विष अधिक भर जाने से, क्रुद्ध होने से, दुष्ट स्वभाव होने से, बैर के कारण देव, ऋषि तथा यम की प्रेरणा से। भविष्य पुराणकार इन कारणों में निम्नलिखित कारणों को और शामिल करते हैं। मस्ती में, अपने अण्डे बच्चे की रक्षा के लिए या उसे मारने पर।

अजगर जैसे भारी भरकम और फनियर जैसे अत्यन्त घातक सांपों को पाल के मैंने कुछ परीक्षण किये हैं। मेरा अनुभव है कि यदि कोमलता से उन्हें पकड़ा जाय और उनकी उचित देख-रेख की जाय तो वे काटने की आदत को प्रायः छोड़ देते हैं। १९५७ में एक युवा अजगर मेरे पास कोई साल भर रहा। वह मेरी बैठक के किसी कोने में या अलमारी में पुस्तकों के पीछे कुण्डली मारकर आराम से पड़ा रहता। छोटे बच्चों से भी खूब परिचित हो गया था। लोक विश्वास के विपरीत मैंने आस्तीन के सांप को भी बड़ा भद्र पाया। हां, यह ठीक है कि यदि पालक से कभी उसे आवश्यक उत्तेजना मिल जाय तो वह उसके बदले में तुरन्त घातक यन्त्रों को क्रियाशील करने में चूकेगा नहीं जिसका परिणाम पालक के लिए खतरनाक हो सकता है।

[आकाश वाणी, नई दिल्ली के सौजन्य से।]

—श्री रामेशवेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सर्वाङ्ग शोथ पर अनुभव

श्री देवराज शर्मा

रोगी का नाम–बाबूलाल, व्यवसाय–बीड़ी का रोजगार
आयु–३२ वर्ष रोग–सर्वांग शोथ
निवास स्थान–नई वस्ती झांसी
प्रवेशतिथि–२५-४-५८ निर्गमतिथि–११-७-५८

आयुर्वेद शास्त्र में शोथ शोफ श्वयथु इन तीनों का पर्याय रूप में व्यवहार होता है। यह उस अवस्था का नाम है जिसमें दोष त्वचा और मांस के बीच स्थित हो कर उभार उत्पन्न करते हैं। इस उभार में पाक की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसीको प्रचलित भाषा में सूजन तथा आंग्ल भाषा में (*Oedema or Anasarca*) कहते हैं।

परन्तु कटने, जलने, आघात लगने, विद्रधि (फोड़ा आदि) आदि कारणों से जो एक देशीय उभार होता है, उसमें दोष त्वचा, मांस, रक्त, आदि आठ व्रण वस्तुओं को दूषित करते हैं। तथा इसमें पाक की भी प्रवृत्ति होती हैं। इसको आयुर्वेद शास्त्र में व्रण शोथ की संज्ञा दी गई है। आधुनिक विद्वान इसे (*inflammation*) के नाम से पुकारते हैं। उपरोक्त बाबूलाल रोगी सर्वांग शोथ से ग्रस्त था तथा जिस दिन मेरे पास आया निम्न लक्षण विद्यमान थे। सिर से लेकर पैर के नाखुन तक कोई भी ऐसा अंग प्रत्यंग नहीं था जो कि फूला हुआ न हो। यहां तक कि शिश्नेन्द्रिय, अण्डकोष भी फूले हुए थे। उदर परीक्षा करने पर क्षुद्रान्त्र तथा बृहदन्त्र भी शोथ युक्त थे, रक्त की न्यूनता के कारण पाण्डु वर्ण, कोष्ठबद्धता, मूत्र बूंद २ तथा दिन भर में केवल १ या २ बार होता था। क्षुधा नाश, इसके साथ ही साथ तमक श्वास (*Asthma*) उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला हुआ था, जिसके कारण उसे रात्रि में भी निद्रा नहीं आती थी। रोग किस प्रकार और कैसे २ आरम्भ हुआ, यह पूछने पर उसने निम्न कथा सुनाई–

१-२-५८ की तमक श्वास के कारण खांसी अधिक हुई जिसके परिणाम स्वरूप नींद भी न आई तथा प्रातः पेट पर कुछ २ सूजन दिखाई दी जो कि धीरे २ बढ़ती और फैलती गई। चार छै दिन तो मैंने कोई परवाह न की परन्तु जब सूजन अधिक बढ़ने लगी तो मैं घबड़ा कर एक प्रतिष्ठत डाक्टर महोदय के पास गया। उन्होंने मुझे एक सूई लगादी तथा चार खुराक मिक्सचर दे दी और दूसरे दिन मूत्र भी साथ लाने को कहा। मैं भी उस डाक्टर महोदय के आदेशानुसार दूसरे दिन अपना मूत्र लेकर पहुँच गया। पुनः पूर्व दिनवत् सूई तथा मिक्सचर मिला, ऐसी व्यवस्था एक सप्ताह तक चली तथा मैं भी अपने आप को स्वस्थ प्रतीत करने लगा।

एक सप्ताह के बाद पुनः सूजन होनी आरम्भ हुई तथा पूर्ववत् चिकित्सा करने पर शान्त हो गई। कुछ दिन के बाद फिर सूजन आरम्भ हुई। तब तो मैं चिकित्सा से भी तंग आ गया था तथा जिस सूई से मुझे तत्काल लाभ होता था उस का नाम नैप्टाल (*Neptol*) था। फिर वही सूईयां कुछ और भी लीं परन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होने लगी और मैं फिर फूल कर कुप्पा हो गया तथा स्थानीय सिविल अस्पताल में भरती होने के निमित्त चल. गया। वहां पर एक सप्ताह भरती रहने से भी मुझे कुछ लाभ न हुआ तथा मुझे मेरी इच्छा न होते हुए भी छुट्टी दे दी गई तथा मैं अपने घर चला आया। कल कुछ सज्जनों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा की राय दी अतः आज मैं आप की शरण में आया हूं।

उसकी यह कथा सुन कर तथा दशा को देख बिपत्ति में पड़ गया कि इसको अन्तरंग विभाग में लूं या नहीं। मेरे कर्मचारी भी चुपके चुपके यह कह रहे थे कि यह दो चार दिन का महमान है इसको भरती करने से क्या लाभ, परन्तु उस का शोथ जो कि पेट से हुआ था वह मुझे कुछ ढ़ाढस बंधा रहा था कि स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुआ शोथ यदि मनुष्य को पैरों से आरंभ हो और स्त्री को मुख से आरंभ

हो तथा स्त्री और पुरुष दोनों को ही यदि गुप्त स्थान से आरंभ हो तो असाध्य होता है अर्थात् रोगी नहीं बचता अवश्य ही मर जाता है ऐसा शास्त्र का आदेश है।

अस्तु मैंने भगवान का नाम लेकर तथा अपने आयुर्वेद शास्त्र पर भरोसा रख कर उसे अन्तरंग विभाग में भरती कर लिया तथा औषधि की व्यवस्था शाम को होगी ऐसा कह कर मैं चला गया शाम को चार बजे लौटने पर मैंने अपने बहिरंग विभाग के काय चिकित्सा के प्रधान चिकित्सक आदरणीय श्री लालचन्द्र जी वैद्य से भी उस रोगी को दिखा कर सम्मति ली। उसकी निम्न प्रकार चिकित्सा व्यवस्था की गई—

पुनर्नवाष्टक क्वाथ के आठों द्रव्य एक २ पाव लेकर मोटा चूर्ण करके आठ सेर पानी डाल कर उबालने को रख दिया। आधा जल शेष रहने पर छान करके एक बड़ी बोतल में भर कर रोगी के पास रखी हुई जाली में रख दिया तथा नर्स को आदेश दे दिया कि हर दो घंटे के अन्तर से एक २ कप बराबर पिलायें।

२६-४-५८ को प्रातः रोगी की दशा पूर्ववत् ही थी परन्तु रात में तीन दस्त हो गये थे। यही चिकित्सा क्रम एक सप्ताह तक निरन्तर किया गया।

इससे रोगी को दिन भर में ३/४ दस्त तथा ६/७ बार अधिक मात्रा में मूत्र भी हो जाता था। तथा शोथ भी चौथे दिन से कुछ कम होना आरम्भ होगया। उपरोक्त क्वाथ पूर्ववत् ३०-५-५८ तक निरन्तर दिया गया। तब तक रोगी का शोथ समाप्त प्रायः हो चुका था।

पथ्य—में केवल दूध तथा पका हुआ पपीता ही दिया जाता था। नमक तथा जल भी बन्द था। (बर्जयेत् लवणं जलम्) अब रोगी भी कड़ुवा काढ़ा पी कर तंग आ चुका था तथा उसका रोग भी दूर हो चुका था। अतः उसने किसी रूप में भी काढ़ा पीने से इनकार कर दिया अतः निम्न व्यवस्था की गई—

(१) प्रातः तथा सांय १-१ कप पुनर्नवाष्टक क्वाथ।

(२) पुनर्नवा मंडूर १ माशा श्वेत पर्पटी आधी आधी प्रातः सायं मधु से दी गई।

पथ्य—दलिया दूध फल पुनर्नवा तथा मकोय का शाक (बिना नमक) भुने हुए चनें कभी कभी उबाल कर ठंडा किया हुआ जल भी पीने को दिया जाता था। गेहूं तथा चने की रोटी दूध के साथ।

१०-७-५८ तक यही चिकित्सा क्रम चला। अब रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ था। परन्तु तमक श्वास का दौरा कभी-कभी हो जाया करता था। उसको याप्य रोग समझते हुए मैंने भी अधिक ध्यान न दिया।

नोट—पुनर्नवाष्टक क्वाथ के द्रव्यों को तीन बार उबालने के बाद फैंक दिया जाता था।

—श्री देवीराम शर्मा,
आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झांसी।

आयुर्वेद की दृष्टि में श्वास रोग

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

[वर्ष ३४ अङ्क ७ से आगे]

तमक श्वास के उपसर्ग--

आधुनिक पद्धति के अनुसार यह आक्रमण २-३ सप्ताह तक जारी रहता है जिस स्थिति को श्वास रोग यावस्थिति (Status asthmaticus) कहा जाता है। बच्चों का यह तमक श्वास बिना विशेष कारण के भी बन्द होते देखा गया है।

इसके उपसर्ग के रूप में वातोत्फुल्लता, श्वास नलिका प्रदाह तथा हृदभिस्तार (dilatation of the heart) हुआ करता है। फौफ्फुसीय शोष (pulmonary tuberculosis) भी इस श्वास का उपसर्ग बनते देखा गया है।

चूंकि श्वास रोगी मुख्यतः अत्यधिक अनुभूतिशीलता (anaphilaxis) के शिकार हुआ करते हैं इसलिए बिना प्रारम्भिक अनुभूतिशीलता निवारण किये किसी भी अन्य रोग की चिकित्सा के सिलसिले में 'सीरम' का प्रयोग कथमपि नहीं करना चाहिए।

तमक श्वास की साध्यासाध्यता--

आधुनिक चिकित्सक भी इस बात को मानते हैं कि आक्रमण के समय मृत्युजनक सी स्थिति होने पर भी इस रोग से मृत्यु नहीं होती है। फिर भी उपसर्गों को लाकर यह जीवन की अवधि को कम बनाती है और जीवन काल में भी अत्यन्त कष्टमय बना छोड़ता है।

आयुर्वेदीय आचार्यगण तमक श्वास को 'तमकः कृच्छ्र उच्यते।" [माधव निदान, श्वास निदान] कह कर कष्टसाध्य माना है किन्तु आचार्य चरक के अनुसार यह नवोत्थित रोग अवश्य ही साध्य माना गया है।

प्रतमक और सन्तमक श्वास--

आचार्य चरक ने तमक श्वास से भिन्न प्रतमक और सन्तमक श्वास ये दो श्वास रोग बताए हैं। उनका कहना है कि—

"ज्वर मूर्च्छापरीतस्य विद्यात् प्रतमकं तु तम्।
उदावर्त्त रजोऽजीर्ण क्लिन्नकाय निरोधजः॥"

[चरक चि० १७]

अर्थात्--यदि तमक श्वास रोगी ही ज्वर और मूर्च्छा से युक्त हो तो वह प्रतमक श्वास मानना चाहिए। यह उदावर्त रजस्, अजीर्ण, क्लिन्नता और वेगनिरोध से उत्पन्न होता है। मतान्तर में क्लिन्नकायों, वृद्धों को यह रोग होता है। इस श्वास में ज्वर और मूर्च्छा पित्तोल्वणता के प्रतीक हैं। सन्तमक श्वास का लक्षण बताते हुए आचार्य चरक का कहना है कि—

"तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात् संतमकं तु तम्॥"

[चरक चि० १७]

अर्थात्--तमक श्वास अन्धकार अथवा क्रोध आदि मानसिक दोषों से बहुत बढ़ता है और शीतल आहार विहार से शीघ्र शान्त होता है वह संतमक श्वास है। इसमें रोगी अन्धकार में डूबने जैसा अनुभव करता है।

प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त के अनुसार जैसे—मद्य विकार का जिस प्रकार मद्य प्रशमनकारी होता है उसी प्रकार शीतल आहार विहार से उत्पन्न इस प्रतमक श्वास का शीत से भी प्रशमन समर्थित किया जा सकता है।

महा श्वास का लक्षण—

महाश्वास का लक्षण करते हुए चरक में लिखा है कि—

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद् दुःखितो नरः।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम्॥
प्रनष्ट ज्ञान विज्ञानस्तथा विभ्रान्त लोचनः।
विकृताक्ष्याननो बद्ध मूत्रवर्चा विशीर्ण वाक्॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्।
महाश्वासोपसृष्टश्च क्षिप्रमेव विपद्यते॥"

अर्थात्—महाश्वास रोग में वायु के ऊर्ध्वगत होने से रोगी अत्यन्त दुःखित होता हुआ बंधे मत्त वृषभ की भांति निरन्तर शब्दयुक्त दीर्घ श्वास छोड़ा करता है। इसमें रोगी का ज्ञान विज्ञान नष्ट हो जाता है। आंखें चञ्चल और विस्तृत हो जाती हैं, मुख फैल जाता है और विकृत हो जाता है। पाखाना व पेशाब बंध जाता है। वाक्य विशीर्ण तथा मन अवसन्न हो जाता है। रोगी का श्वास शब्द दूर से सुना जाता है। जिस रोग में यह महाश्वास उपसर्ग के रूप में आ जाय उसका रोगी शीघ्र ही मर जाता है।

ऊर्ध्वश्वास का लक्षण—

आचार्य चरक का ऊर्ध्व श्वास लक्षण भी इस प्रकार है कि—

"दीर्घं श्वसिति यस्तूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृत मुख स्रोतः क्रुद्धगन्धवहार्दितः॥
ऊर्ध्व दृष्टिविपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः।
प्रमुह्यन् वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरति पीड़ितः॥
ऊर्ध्वश्वासे प्रवृत्ते च यश्चाधः श्वासरोधभाक्।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून्॥"

अर्थात्—ऊर्ध्वश्वास का रोगी जिस प्रकार ऊर्ध्वश्वास का ग्रहण करता है उस प्रकार अधः श्वास का त्याग नहीं कर पाता है। वायु प्रकुपित रहती है। रोगी की आंखें ऊपर को तनी रहती हैं, चंचल रहती हैं और वह इधर उधर देखा करता है। रोगी वेदना से मूर्च्छित हो जाया करता है। मुख सूखा रहता है और रोगी बेचैन रहा करता है। इस रोग में 'अधः श्वास' बन्द हो जाने पर रोगी का दम घुट कर मर जाता है।

छिन्न श्वास का लक्षण—

आचार्य चरक ने छिन्न श्वास का लक्षण करते हुए लिखा है कि—

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्व प्राणेन पीड़ितः।
न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मच्छेद रुगर्दितः॥
आनाह स्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन् नरः।
छिन्न श्वासेन संच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून्॥

अर्थात्—छिन्न श्वास का रोगी सारी ताकत लगाकर रुक रुक कर सांस लेता है अथवा वह सांस ले ही नहीं सकता है। वह अत्यन्त दुःखित तथा मर्मच्छेदनवत् यन्त्रणा भोगता है। इसमें आनाह स्वेद, मूर्च्छा, वस्ति में प्रदाह, अश्रुपूर्ण नेत्रता, क्षीणता, एक आंख की रक्तवर्णता, बेचैनी, मुख का का सूखना और विवर्णता प्रलाप—ये लक्षण सम्मिलित होते हैं। श्वास विच्छेद से यह रोगी भी शीघ्र ही प्राण त्याग कर बैठता है।

वैज्ञानिक वर्गीकरण—

आयुर्वेद के गम्भीर अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रजस् आदि से केवल प्राणवह स्रोत के दूषण होने से जनित श्वास रोग बहिःकारणज माना जाना चाहिए और प्राणोदकान्नवाही स्रोतों के दूषण से जनित श्वास रोग आभ्यन्तर कारणज। इनमें भी दोष और दूष्य के मात्रा वैषम्य से क्षुद्र तमक आदि श्वास की परिकल्पना है और उसी आधार पर साध्य, कृच्छ्रसाध्य का भेद भी किया गया है जिसके कि सन्बन्ध में माधवकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

"क्षुद्रः साध्योमतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते।
त्रयः श्वासान सिद्धयन्ति तमको दुर्बलस्य च॥"

[माधव निदान, श्वास निदान]

अर्थात् पंचविध श्वास रोगों में क्षुद्र श्वास साध्य माना गया है। तमक कष्ट साध्य माना गया है और शेष तीन श्वास महाश्वास, ऊर्ध्व-श्वास और छिन्न श्वास असाध्य हैं और दुर्बल रोगी का तमक श्वास भी असाध्य हुआ करता है।

आचार्य वागभट का स्पष्ट विचार है कि 'कासवृद्धया भवते श्वास' अर्थात् कास (खांसी) बढ़कर श्वास रोग बन जाता है और प्राणोदकान्न-वाही स्रोतों को दूषित कर पैदा होने वाला श्वास रोग आमाशय समुद्भव हुआ करता है।

"कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः।
प्राणोदकान्न वाहीनि दुष्टः स्रोतांसि दूषयन्।
उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशय समुद्भवम्॥"

[अष्टाङ्ग हृदय निदान ४]

अर्थात्—वायु का मार्ग जब कफ से अवरुद्ध हो जाता है तो वह सर्व शरीर व्यापी वायु उरःस्थ हो कर प्राण-उदर-अन्नवाही स्रोतों का दूषण करता हुआ आमाशयोत्थ श्वास रोग को पैदा करता है। अरुणदत्त का इसी आधार पर मन्तव्य है कि वात-जित तथा दीपन-पाचन औषधि इसमें प्रशस्त हैं।

श्वास रोगों की चिकित्सा—

चिकित्सा विज्ञान के पण्डितों से यह बात भी छिपी नहीं है कि आयुर्वेद की पद्धति जहां दोष शामनी मुख्यतः मानी गयी है वहां आधुनिक चिकित्सा पद्धति-एलोपैथी-मुख्यतः लक्षण शामनी है। इस मौलिक भेद के कारण दोनों चिकित्सा पद्धतियों में आमूल विभेद है जिसको अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए यहां प्रथम आधुनिक चिकित्सा प्रणाली से श्वास रोग चिकित्सा का संक्षेप में वर्णन करूंगा।

कहना न होगा कि उक्त आमूल विभेद के कारण आधुनिक चिकित्सा पद्धति में उक्त पंचविधश्वास का पार्थक्येन चिकित्सा विधान नहीं है। अपितु सब की एक ही चिकित्सा पद्धति है।

यहां मैं सर्व प्रथम भूतपूर्व साम्राज्ञी के अवैतनिक चिकित्सक सर विलियम भूर के० सी० आई० टी० लिखित, तथा जे० एच० तुलवाहस आई० एम० एफ० एफ० एल० एस० द्वारा परिवर्धित मेन्युअल औफ फैमिली मेडीसिन एण्ड हाईजिन फौर इन्डिया (सप्तम संस्करण या १६०६ का पुनः प्रकाशन) से इसका संक्षिप्त चिकित्सा क्रम देना उचित मानता हूं जिसका प्रकाशन ही भारतीय जनता के प्रयोग के लिए भारत सरकार द्वारा व्यवस्थित हुआ था।

उनका कहना है कि रोग के दौरे के समय रोगी को बैठा कर रखना चाहिये। यदि दौरा प्रबल हो तो पलंग के समीप आराम कुर्सी पर रोगी को बिठाना चाहिये और टेबुल पर तकिया रख कर उसके सहारे रोगी लेट जाय। मेरुदण्ड पर समान भाग तैल तथा ब्रांडी मिलाकर मालिश की जाय और उपलब्ध हो सके तो साबुन तथा अफीम के तरल लेप की मालिश करें। भुजाओं की रक्तवह धमनियों को अनुलोम क्रम से अंगूठे से दबाने से भी श्वासकष्ट में आराम मिलता है। रक्ताधिक्य वाले रोगी को एक औंस जल में २० बूंद सुराइपीकाक (*ipecacuana wine*) देनी चाहिये।

आपेक्षिक दुर्बल व्यक्तियों के लिए कपूर युक्त अहिफेन सार एमोनिया आदि उत्तेजक द्रव्य के साथ देना अधिक अच्छा रहेगा। इसके लिए—

केम्पोरेटेड टिञ्चर आफ ओपियम (Peregonic) ३ ड्राम, एरोमेटिक स्पिरिट आफ एमोनिया २ ड्राम, परिश्रुत जल ८ औंस—मिश्रित कर प्रति २ या ३ घंटे पर दो चम्मच की मात्रा से दें। अहित भोजन के बाद ही दौरा प्रारम्भ होने पर सार्षप वमन देना चाहिए। इसके लिए—

सरसों का आटा १ चम्मच, नमक १ चम्मच, गर्म जल १० या १२ औंस। मिश्रित कर एक बार में पी जायें। ५ से ८ मिनट तक में यह वमन करा देता है। यदि और भी वमन कराना जरूरी हो तो भर पेट गरम जल पिलावें।

यदि कोष्ठबद्धता के बाद यह आक्रमण हो तो विरेचन के लिए सल्फेट आफ सोडा दें। इसके लिए—

सल्फेट आफ सोडा ६ ड्राम, टिंचर जिन्जर २० बूंद, परिस्रुत जल २ औंस। मिलाकर एक ही मात्रा में पी जायें।

कभी कभी गरम जल में ब्रांडी मिलाकर पीने से या बिना चीनी और दूध के एक कप गरमागरम काफी पीने से दौरे में सुधार आता देखा गया है।

नासा श्लैष्मिक कला दहन—

सर बिलियम भूर ने नासा श्लैष्मिक कला के आंशिक दहन को भी लाभप्रद बताया है जो प्रसिद्ध चिकित्सा पत्रिका लेन्सेट के अक्टूबर २५, १६०२ के अङ्क में प्रतिपादित है।

धत्तूर धूम्रपान—

इस रोग का उन्होंने एक शमन धत्तूर धूम्रपान भी बताया है। उनका कहना है कि दौरा प्रारम्भ होने से पहले यदि धत्तूर पत्र का धूम्रपान किया जाय तो इसमें विशेष रूप से लाभ होता है। रोगी के बलाबल के अनुसार ५ रत्ती से १५ रत्ती तक पत्ते का धूम्रपान करना चाहिए। सिगरेट के रूप में इसका प्रयोग उन्होंने अधिक लाभप्रद बताया है।

भोजन पान का संयम बताते हुए उन्होंने लिखा है कि विकाल भोजन श्वास रोगी को एक दम परित्याग कर देना चाहिए और आकण्ठ भोजन कदापि नहीं करना चाहिए।

आबोहवा का परिवर्तन तथा कभी कभी तो एक घर से दूसरे घर का बदलना भी लाभदायक रहता है।

डक्टर ब्यूमाउण्ट का चिकित्सा क्रम—

प्रसिद्ध ब्रिटिश डा० ब्यूमाउण्ट (Medicine 1942 Ed.) का कहना है कि दौरा प्रारम्भ होते ही तरल एड्रिनलीन हाइड्रोक्लोर की २ सी. सी. का अन्तश्चर्म सूची प्रवेशन कराया गया। जिससे बहुधा आक्रमण रोका जा सकता है।

कुछ रोगियों को एफेड्रीन हाइड्रोक्लोराइड की ¾ ग्रेन की वटी सेवन करानी चाहिए। यदि इन उपायों में लाभ नहीं हो तो १ मिलि. एवेटमीन का अन्तश्चर्म सूची प्रवेशन कराया जाय। इसमें पोषग्रन्थिसार तथा एड्रीनलीन रहता है। यदि इससे लाभ नहीं हो तो अन्य उपचार किये जांय जैसे—गर्म बोतल पांव पर रखी जाय, एक कप कड़ी काफी पिलायी जाय या ३ बार तक प्रति २० मिनिट पर काफी के साथ ग्रिण्डली (grindeliae) के तरल सार के २० बूंद दिये जांय। एमिल नाइट्रेट किंवा स्ट्रैमोनियम का धूम्रपान करना लाभदायक होता है। अधिक भयानक स्थिति में क्लोरोफार्म का सूंघना भी उचित है।

यदि बारम्बार एड्रिनलिन के सूची प्रवेशन से भी लाभ नहीं हो तो ६० प्रतिशत आक्सीजन या २० प्रतिशत आक्सीजन तथा ८० प्रतिशत हालियम का मिश्रण बी० एल० बी० मास्क के द्वारा सुंघाया जाना चाहिए

५० प्रतिशत के लगभग रोगियों में अम्ल स्राव (acid secretion) की मात्रा कम हो जाती है। यदि लवणाम्ल हीनता (achlorhydria) भी हो तो एसिड हाइड्रोक्लोराइड ३० से ६० बूंद तक मुंह से लेना चाहिए।

श्वासनलिक श्वास में उन्होंने पोटासियम आयोडायड तथा स्ट्रैमोनियम का प्रयोग करना भी बताया है।

एड्रिनलीन की सदोषता—

एड्रिनलीन का प्रधान कार्य स्वतन्त्र नाड्यग्रों (*Sympathetic nerve endings*) को उत्तेजित करना है, इसलिए श्वास रोग में इसका प्रयोग करने पर श्वास-नलिकाओं का संकोच दूर होकर उनमें विस्फारशीलता बढ़ती है जिससे वायु का अधिक मात्रा में अन्दर तथा बाहर जाना संभव होजाता है। यही कारण है कि तमक श्वास में इससे लाभ देखा जाता है। किन्तु यह लाभ क्षण स्थायी होता है।

किन्तु अधिक मात्रा में प्रयोग होजाने से माथे के फट जाने जैसा दर्द, वमन, कम्प, चक्कर आदि लक्षण प्रकट होते हैं, रक्तचाप में द्रुत वृद्धि से दुर्बल रोगी को प्राण कष्ट तक उत्पन्न हो सकता है। हृद

विस्फार रोग उत्पन्न होकर भी रोगी की मृत्यु हो सकती है। इसीलिये यह पद्धति भी सर्वथा सदोष कही जायगी।

आयुर्वेदीय चिकित्सा क्रम—

उक्त एलोपैथिक चिकित्सा क्रम से उत्तम चिकित्सा क्रम आयुर्वेद का है जिसमें मूल दोष कफ रहने तथा उसके चालक दोष वात के विलोमग होने के कारण कफ वातघ्न तथा वातानुलोमन भेषजान्नपान का सेवन अधिक वैज्ञानिक माना जायगा।

आचार्य चरक ने श्वास और हिक्का का सामान्य चिकित्सा क्रम बताते हुए सूत्र रूप में कहा है कि—

यद् किंचित् कफ वातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वास हिक्कने॥
वातकृद् वा कफहरं, कफकृद्वाऽनिलापहम्।
कार्यंनैवान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम्॥
(चरक चिकित्सा अ० १७)

अर्थात्-जो कोई भी औषधि, भोजन व पान कफ-वात नाशर्क, उष्ण वीर्य, वायु का अनुलोमन करने वाला हो वह श्वास और हिक्का रोग वाले के लिये हितकर हैं। जो द्रव्य वातजनक होता हुआ कफनाशक हो अथवा कफजनक होता हुआ वातनाशक हो उसका अविच्छिन्न भाव से व्यवहार नहीं करें। उन दोनों में वायु का नाश करने वाला भेषजान्नपान प्रायः मंगलजनक हुआ करता है।

कफ निर्हरण ही मूल चिकित्सा —

आचार्य चरक के अनुसार प्राणोदकान्नवाही सभी स्रोतों का मुख्यः अवरोधन कफ ही किया करता है अतः श्वास रोगों में कफ निर्हरण ही मूल चिकित्सा होनी चाहिए।

हिक्का या श्वास रोग से आक्रान्त व्यक्ति को पहले स्नेह द्वारा स्निग्ध कर स्वेदन चिकित्सा करनी चहिये। सेंधानमक युक्त सरसों का तेल मालिस कर नाड़ी स्वेद, प्रस्तरस्वेद या शंकर स्वेद की पद्धति से स्वेदन करें। इससे स्रोतोगत गांठदार श्लेष्मा विलय होता है और वायु का अनुलोमन होता है। जिस प्रकार पर्वत कुंजों में स्थित हिम सूर्य किरणों से तप्त होकर पिघलता है ठीक उसी प्रकार स्रोतः कुंजगत श्लेष्मा जो स्थिर हो गया रहता है वह पिघल कर बाहर चला करता है। इसी प्रकार शरीरस्थ दुष्ट कफ निकल जाने पर सभी स्रोत विशुद्ध हो जाते हैं और वायु अप्रतिहत भाव से विचरण करने लगजाता है। कहना न होगा कि दोषानुबन्धी यह आयुर्वेदीय चिकित्सा क्रम इतना वैज्ञानिक है कि आज भी इसका समुचित प्रयोग करने से शत प्रतिशत लाभ होना निश्चित रहता है।

आचार्य चरक ने यह भी व्यवहार में देखा है कि सभी रोगियों का स्नेहन स्वेदन पद्धति से सारा दुष्ट कफ निकाला नहीं जा सकता है। इसलिए उन्होंने धूम्रपान द्वारा श्वासवह स्रोतों का शोधन-दोष शमन बताया। उनका कहना है कि—

लीनश्चेद्दोषशेषः स्यात् धूमैस्तंनिर्हरेद् बुधः।

अर्थात्—पूर्वोक्त चिकित्सा क्रम द्वारा कफ निकल जाने पर भी यदि दोष शेष रहजाय तो धूम्रपान द्वारा उसका भी निर्हरण करना चाहिये। इसके लिए हल्दी, जौ, एरण्ड की जड़, लाख, मैनसिल, देवदारु, हरताल, जटामांसी इनको पीसकर बत्ती बनाकर गौघृत में चुपड़ कर उसका धूम्रपान करे। अथवा घी मिलाकर जौ का धूम्रपान करें।

कहना न होगा कि आचार्य चरक के ये दोनों योग इसका संकेत करते हैं कि अल्पदोषानुबन्ध में घृत यव धूम्रपान तथा अधिक दोषनुबन्ध में हरिद्रादि बत्ति का धूम्रपान करना चाहिये।

यही नहीं, आचार्य चरक ने प्राणवह स्रोतों के संशोधन पर विशेष जोर दिया है। इनका स्पष्ट कथन है कि जिस प्रकार वृहज्जल विशिष्ट कहीं का मार्ग रुद्ध हो जाने पर और भी अधिक तीव्र उमड़ना देखा जाता है। ठीक उसी प्रकार वायु का मार्गरोध होने पर वह अत्यधिक कुपित हो जाता है। इसलिए वायु मार्ग शोधन अवश्य होना चाहिये।

—क्रमशः

अजगर-खनखजूरा और बिच्छू

कविराज श्री हरिकृष्ण सहगल

अजगर एक प्रकार का बड़ा सर्प है। यह सर्प लम्बाई, मोटाई और भार में सभी सर्पों से अधिक बड़ा होता है। दुनियां में सर्वत्र पाया जाता है। इस सर्प के विषैले दन्त नहीं होते परन्तु इसकी आंखों में बहुत शक्तिशाली मिकानातीसी ताकत होती है। जिस जीव से दृष्टि मिला लेता है, वह जीव फिर गति करने में असमर्थ हो जाता है।

कहा जाता है कि अजगर अपने श्वास से भस्म करने की शक्ति रखता है। और यह चूहे, मेंढक ही नहीं खाता अपितु बन्दर, भेड़ें, कुत्ते, भेडिये, गीदड़, लोमड़ी सब को ही समूचा निगल जाता है। भारत में शिवालक की पहाड़ियों (चंडीगढ़ से उपर) हिमालय की तराई और ब्रह्मा में बहुत अधिक होता है। इसे असदहा भी कहा जाता है।

यह अजगर दो प्रकार के कहे जाते हैं एक भूमि के और दूसरे जल के। सर्प भी भूमि और जल दोनों प्रकार के होते हैं। पृथ्वी का अजगर मुख द्वारा आक्रमण करता है और जल का अजगर अपनी पूंछ से प्रहार करता है।

इन अजगरों का बड़ा वंश है। इस वंश में महोरग तथा विशाल हिक, ऐसे दो प्रमुख उपवंश हैं। महोरग उपवंश में शल्य महोरग (चीन, उत्तर-प्रदेश) परियापम्बु, मलय पम्बु (तामिल), पिबेरा (सिंहल) राजकीय महोरग प्रमुख हैं।

विशाल हिक वंश में स्वर्णाभ, विशालहिक, रजल विशाल हिक, संकोचक विशाल हिक, द्वितुण्डी (उत्तर प्रदेश) हुतोण्डमा (मराठी) इडुतसेइ (तामिल) सिकताभ विशाल हिक, सुकुरी, वर्षाहिक (मराठी) ककडिया (गुजराती), पन्नुनी, पम्बु, मन्नुली, पम्बु (मद्रास) प्रमुख हैं।

स्त्री अजगर ३ वर्ष की आयु से अण्डे देने आरंभ करती है। तथा ५० वर्ष की अवस्था हो जाने पर उसकी लम्बाई ३० फुट तथा भार २०० पौंड हो जाता है।

दिल्ली में बहुधा सपेरों के पास इन अजगरों के बच्चे देखे जाते हैं। सपेरे इस नाग देवता को दिखा कर जो कि चीन देश का राज्य चिन्ह भी है, लोगों से पैसा मांगते हैं।

दिल्ली के सपेरे जब धनाभाव से तंग हों तो वह इन अजगरों को बेच देते हैं। किस के पास? चीनी, ब्रह्मा, व स्यामी राजदूतावास के कर्मचारियों के पास। यह कर्मचारी इन्हें पालते नहीं बल्कि वह एक दावत करते हैं। इस अजगर के मांस भोजन का लुत्फ वह अपने मित्रों में लेते हैं। लेखक ने एक दिन दिल्ली में बारह टूटी के निकट एक सपेरे को अजगर सांप के कटे टुकड़ों को बेचते अपनी आंखों से देखा था। दिल्ली में अजगर मांस का व्यापार भी खूब चलता है।

ब्रह्मा निवासी तथा कैरन जाति के लोग अजगर मांस को बहुत रुचि से खाते है। उन्हें कारण पूछा जाये तो कहते हैं श्रीमान् अजगर मांस श्वेत और मन को लुभाने वाला है। कर्नल एच० पुले लिखते हैं कि ब्रह्मा ही नहीं लंका निवासियों के निकट भी अजगर मांस अतीव रोचक होता है।

चीन में अजगर को होआइजों कहा जाता है। दक्षिण चीन में अर्थात ब्रह्मा श्याम व वियननाम के साथ के चोन में अजगर स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन है। गियाना (शान्त सागर) निवासियों की अजगर मांस खाने में विशेष रुचि होती है। अफ्रीकन ब्रशमैन (आदिम वासी) को जिस दिन जंगल में अजगर मिल जाता है उस दिन सारा कबीला रात्रि भर प्रसन्नता से नाचता रहता है तथा अजगर मांस खाता है। आस्ट्रेलिया के उत्तरी तट पर रहने वाले आदिमवासियों के भोजन का

एक अंग यहां अजगर मांस भी है। मार्कोपोलो लिखता है कि अजगर मांस खाने में अतीव स्वादयुक्त होता है।

चरकानुसार अजगर मांस—नरम, स्वादु, मल मूत्र गाढ़ा करने वाला, उष्ण, वात नाशक, कफ दोष को बढ़ाने वाला, कास, श्वास, कृशता निवारक है। ह. सन्त सिंह भोगल ने जो दिल्ली में रहते हैं, कुछ वर्ष पूर्व मिलाप पत्र में लिखा था कि उन्होंने ब्रह्मा में अजगर मांस के दो टुकड़े खाये थे। इससे उनके सिर का एक भी बाल श्वेत नहीं हुआ अगरचे उनकी आयु ६६ वर्ष की हो गई है। और वह अपने आप को पूर्ण युवा अनुभव करते हैं।

अजगर मांस खाने से वीरता उत्पन्न होती है। रक्त को इन्द्रिय पर लगा कर प्रयोग करने से उभय पक्ष को विशेष रति सुख की प्राप्ति होती है। अजगर की भस्म करके मधु में मिला कर अर्शांकुरों पर लगाने से वह जाते रहते हैं। श्वेत व रक्त कुष्ठ पर लगाने से बहुत लाभ होता है। अजगर की लेंड़ी पीस कर लगाने से त्वचा का वर्ण श्वेत हो जाता है। (प्रैटिल्य) अजगर चर्म पीस कर लगाने से भगन्दर रोग मिट जाता है।

खनखजूरा (शतपदी) Centipede—

खनखजूरा एक ऐसा जीव है, जिसे भूमि पर कहीं खाया नहीं जाता। अब यह पुराने खण्डरों में अधिक दीखने में आता है। कन्करीट और सीमेंट की दीवारों ने इस जीव के दर्शन दुर्लभ बना दिये हैं। कहा जाता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य आत्रेय एक रोगी के कपाल को खोल कर जब उसके मस्तिष्क में घुसी शतपदी को उठाने लगे तो जीवक ने उस्ताद का हाथ पकड़ लिया कि इस तरह नहीं उठाओ, उष्ण शलाका को लगाइये यह जब मस्तिष्क को छोड़ दे तो उठा लेना, नहीं तो इसके पैर टूट कर मस्तिष्क में रह जायेंगे। कहते हैं, इस पर आचार्य ने उसके कथानानुसार ही किया, मगर इसके बाद शिष्य को यह कह कर बिदा कर दिया कि एक मयान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

इससे मिलती जुलती एक कहानी यूनानी साहित्य में भी आती हैं। उसमें अफलातून अपने गुरू का हाथ पकड़ लेता है और कहता है कि शतपदी को इस तरह मस्तिष्क से न उठाओ।

इन खनखजूरों की आठ किस्में कही जाती हैं। परन्तु अब देखने में दो आती हैं, भूरे और कृष्ण। यह खनखजूरा गीली लकड़ी का गूदा, फफूंदी और कई प्रकार के छोटे कीड़ों का भोजन करता है। यह लगभग एक बालिस्त भर लम्बा होता है और इसके कांटों में विष होता है। इसके दंश से शोक, पीड़ा, जलन, व्रण, मूर्च्छा और स्वेद होते हैं। शतपदी दंश स्थान पर स्वेद, शूल और दाह करती है ऐसा चरक में लिखा है। जहां यह काटे वहीं इसे कूट कर बांधने से लाभ होता है।

(१) खनखजूरा पकड़ कर सुखालें और रूई में लपेटकर, तिल तेल में डुबोकर और जलाकर काजल तैयार करें। यह काजल लगाने से परबाल (रोहे) में आराम होता है।

(२) खनखजूरा को तिल तेल में जलालें। इसमें पट्टी भिगोकर नासूर पर रखने से नासूर ठीक होता है।

(३) दो मोटे काले खनखजूरों को पकड़ हांडी में बन्द कर भस्म कर लें। इसकी नस्य देने से मृगी में लाभ हो जाता है।

(४) एक खनखजूरे को सर्षप तेल में जलालें और जब जल जाए तो तेल से निकाल लें। इस जले खनखजूरे को एक चावल भर की मात्रा में पान में रखकर खिलाने से मासिक धर्म खुल जाता है।

(५) जब वृक्कशूल हो, खनखजूरा पकड़ धागा में पिरो कर सुखालें। फिर खरल में पीस कर कुछ गुड़ मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। एक गोली जल से देकर आश्चर्य देखें।

खनखजूरा दंश चिकित्सा—

(१) सैन्धव लवण, हरिद्रा और आमियां हल्दी

तीनों समभाग लेकर चूर्ण करें तथा घृत के साथ मिलाकर लेप करें ।

(२) घृत में चीनी मिलाकर दंश स्थान पर लगाने से भी शान्ति हो जाती है ।

(३) खनखजूरे के दंश पर गूगल का धूंआ देने से भी लाभ हो जाता है ।

बिच्छू (यु. अक्रब) (Scorpion)--

कैलाशपति भगवान शिव के सम्पर्क में रहने वाला बिच्छू भी नटराज की नृत्य कला की नकल करने में कुशल है। एकांत में किसी पत्थर की ओट में अगर आपको बिच्छुओं के जोड़े को देखने का अवसर मिले तो आप देखेंगे कि बिच्छुओं का जोड़ा मिलकर बहुत सुन्दरता से नृत्य करता है ।

सुश्रुत के मतानुसार सर्पों के शरीर के गलने सड़ने से जो खाद बनती है, यह वृश्चिक उसकी पैदावार है। जहां कहीं वृश्चिक दिखाई दे लोग बिना किसी कसूर के, ईंट पत्थर जो कुछ मिल जाये, इस निरपराध पर प्रहार कर देते हैं। लोग ही क्या स्वयं इसकी प्रेमिका जब यह सम्भोग के बाद निर्बल होकर गिर पड़ता है तो इसे खा जाती है। वृश्चिक, मादा वृश्चिक से टिड्डे के समान सम्भोग करता है। वह वृश्चिक जिसके डंक से पत्थर संखिया में बदल जाता है सम्भोग के बाद विवश हो जाता है।

स्त्री वृश्चिक का गर्भ एक मास में पक जाता है, स्त्री वृश्चिक तीन दिन तक बच्चे देती रहती है। यह संख्या में ४० होते हैं। यह नन्हें वृश्चिक ५-७ दिनों में ही अपनी पूंछ उठाकर चल देते हैं। बिच्छू तीन-चार वर्ष तक जीवित रहता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि बिच्छू में यह शक्ति है कि वह वायु की आर्द्रता से पिपासा मिटाले। ऊंट कुछ दिनों तक जल के बिना जीवित रह सकता है, परन्तु वृश्चिक आयु पर्यन्त जल को न पीकर भी जीवित रह सकता है।

बिच्छू कितना बड़ा हो सकता है ? साधारणतया १० इञ्च तक का लम्बा बिच्छू जङ्गल में देखने से मिल जाता है। परन्तु झांसी के सपेरों के गुरू करीम ने १९५६ में एक बिच्छू पकड़ा था जिसका भार ७ सेर २ छटांक था।

बिच्छू दो प्रकार के होते हैं, काले और भूरे। काले बिच्छू को भूरे से अधिक विषैला समझा जाता है । बिच्छू केवल भूमि के ही नहीं होते जल सर्पों के समान जल के बिच्छू भी होते हैं। बिच्छू की पूंछ में अन्तिम उठे भाग में डंक होता है। इनकी पुच्छ में पर्व होते हैं। सुश्रुत के मतानुसार (सुश्रुत असम के रहने वाले थे। वहां बिच्छू अधिक होते हैं।) उग्र बिष वाले बिच्छू की पुच्छ में तीन पर्व होते हैं। पुरुष बिच्छू का डंक भाग पतला और स्त्री बिच्छू का डंक भाग मोटा होता है। जब यह बिच्छू किसी के डंक मारता है तो उसका डंक गिर जाता है और यह पुच्छ को घसीटता हुआ चलता है।

यूनानी पुस्तक मुर्जबात अकबर में लिखा है कि जीवित बिच्छू को पकड़ कर तथा कपड़े में लपेट कर स्त्री के पास रखें तो गर्भपात न होगा।

बर्थ कन्ट्रोल—बिच्छू को ताबीज में बन्द करके बाजू पर बांधकर सम्भोग करने से गर्भ स्थिति नहीं होती। ऐसा बताया जाता है कि वीर्य कीटाणु बिच्छू से डर कर स्त्री डिम्ब से नहीं मिलते।

बालचर—बिच्छू को जैतून के तैल में जला लीजिये। इस तेल को बालचर पर लगाने से वह दूर होता है। पक्षाघात और अर्दित के लिये इस तेल की मालिश कीजिये।

मृगी—बिच्छू ४ नग, मिर्च काली ११ दाने, कौए का मस्तिष्क १ तोला—सबको खरल करके गोला बनाकर, जङ्गली चूहे के पेट में भर कर एक हांडी में बन्द करके भूमि में गाड़ दें। एक मास में वह शुष्क हो जाएगा। इसे निकाल तथा पीस कर शीशी में रखलें। एक चावल भर लेकर प्रतिदिन नस्य दिया करें।

नोट—यह नुसखा बढ़िया मालूम होता है।

कर्ण व्रण—वृश्चिक एक नग को खौलते हुए १० तोला तिल तैल में डालें। उसके गल जाने पर, तैल को ठण्डा कर फिल्टर कर लें। कान में घाव हो, राध बहती हो, अवश्य आराम होगा।

कर्ण बाधिर्य—गोमूत्र ५ तो०, दूध बकरी ५ तोला, तिल तैल १¼ सेर। तैल को अग्नि पर गरम करें उसमें एक जीवित काला विच्छु तथा मोर का एक पैर डाल दें। जब दोनों जल कर ठठरी बन जायें तो दोनों को निकाल दें। पश्चात् उपर के द्रव्यों को घोल कर तथा तैल में डाल कर जलायें। जब यह द्रव्य आधे जल चुकें तो बकरी का दूध और नींबू का रस १-१ पाव, समुद्र फेन ५ तोले, में घोट कर इस में डाल दें और जब चिड़ चिड़ाहट बन्द हो चुके तो उतार कर छान कर शीशियाँ भर लें। प्रतिदिन कान को साफ करके ५-६ बूंद डालें। ऐसा १ मास तक करने से बहरे भी सुनने लगते हैं।

वृक्क पीड़ा—मेरे एक रोगी ने बताया था कि एक डाक्टर ने एक काले वृश्चिक को नारियल के १ तोला तैल में डाल बारह दिन भूमि में दबवाये रखा। फिर इसे फिल्टर करके ओलाइव आयल (रोगन जैतून) में दो बूंद मिलाकर ऐसे छः इंजैक्शन लगाये थे। इससे उसे कभी वृक्क पीड़ा न हुई।

वृक्काश्मरी—काले बिच्छू की चावल भर भस्म मक्खन में लपेट कर निगलवा दें, उपर से वरुणादि क्वाथ पिलावें। एक सप्ताह में वृक्काश्मरी चूरा हो कर मूत्र के साथ निकल जायेगी। हकीम अजमल खान का कथन है कि माजून अकरवा के खाने से पथरी निकल जाती है। मधुमेह के लिये देना हो तो एक काले बिच्छू को ५ तो० हरमल के बीज रख कर कपरौटी करें और १५ सेर उपलों में रख कर भस्म कर लें। यह भस्म मधुमेह की बढ़िया दवा है। भस्म एक तिल भर लेकर और मुनक्का के दाने निकाल कर उस में भर कर दें। मधुमेह के रोगी को आराम होगा। पेशाब शकर से साफ हो जायगा। वर्तमान संसार में २½ करोड़ मधुमेह के रोगी हैं। इस भस्म की परीक्षा होनी चाहिये। एक अन्य चिकित्सक का कहना है कि पथरी के लिये मात्रा १ चावल से ४ रत्ती तक है। यही भस्म अर्श के मस्सों पर लगाने से वह झड़ जाते हैं। इसे जिस स्थान पर लगा दें फिर वहां बाल नहीं उगते। वह स्त्रियां जिनके मूंछें आ जाती हैं व जिनके सौन्दर्य को ठोड़ी के बाल बिगाड़ देते हैं इससे लाभ उठा सकती हैं।

पथरी मसाना—पथरी के लिये यूनानी औषधि हजरल यहूद, जिस पत्थर बेर और संगयहूद भी कहा जाता है की भस्म बहुत अच्छी दवा है। पांच बड़े बिच्छुओं की लुगदी में १ तो० हजरल यहूद को रख कर और १५ सेर उपलों की आग दे कर भस्म तैयार कर के रखलें तो शर्बत बजुरी से १-२ चावल की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है। (हजरल यहूद और बिच्छू भस्म दोनों को पीस लेना चाहिये।

मूत्राशय अश्मरी—बिच्छू को रोगन जैतून में डालकर १० दिन धूप में रखें। मूत्रेन्द्रिय में इस तेल की पिचकारी लगाने से पथरी निकल जाती है। चालीस दिन तक धूप में रखने से जो तेल बनता है, उसे अर्शांकुरों पर लगाने से लाभ होता है और तिल तेल में बिच्छू को जलाकर, उस तेल में कपड़ा भिगो, अर्शांकुरों पर रखने से भी लाभ होता है।

बिच्छू तेल के अन्य योग—काले बिच्छू, संखिया श्वेत, बीर बहूटी, टिड्डी जङ्गली, काबुली ततैया (भिरड़), मुर्गी की चर्बी, केशर और लबङ्ग। समभाग लेकर पाताल यन्त्र से तेल निकालें। तिला के तौर पर प्रयोग करें। गठिया के दर्द पर मलें।

दो काले बिच्छुओं को गव्य घृत ५ तोले में जलालें। इस घृत को छानकर कुछ बूंद मूत्रेन्द्रिय मुख में टपकावें (ड्रापर से डाले) पथरी निकल जावेगी। इसी घृत को बत्ती में लगाकर गुदा में रखने से अर्श, भगन्दर में लाभ होता है तथा इसी घृत को पिचकारी द्वारा भगन्दर व नासूर में भरने से लाभ हो जाता है।

—शेषांश पृष्ठ ८७५ पर

मस्तिष्क के रोगों की सफल चिकित्सा

श्री लक्ष्मीनारायण राठौर "अलौकिक"

मस्तिष्क के किसी भी रोग को हम शरीर व्यापी रोग कहें तो ज्यादती नहीं होगी। शरीर में नाना प्रकार के रोगों का कारण मात्र शरीर की अपर्याप्त शुद्धि ही है। वैद्यकीय तथा डाक्टरी भाषा में एक रोग और उसके कई लक्षणों के चाहे प्रथक् २ नाम और उनपर विविध औषधियों का व्यवहार हो परन्तु सीधे सच्चे और सरल तरीके से हर रोग का कारण आहार विहार की अनियमितता के परिणाम-स्वरूप शरीर की दूषित अवस्था है। तथा उनकी सफल चिकित्सा सुपथ्य सेवन के साथ साथ शरीर की दूषित अवस्था को डूश, वाष्पस्नान, कटिस्नान, धूपस्नान, वायुस्नान, उपवास आदि के द्वारा दूर कर देना भर ही है।

मस्तिष्क रोगों में छोटे पैमाने पर शिरःशूल, आधाशीशी, दिमाग का भारीपन, बेचैनी, नींद की कमी आदि तथा मोटे पैमाने पर स्मरणशक्ति का ह्रास, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, प्रलाप, उन्माद, हिस्टेरिया, पागलपन, भूत-व्याधा आदि रोग होते हैं। कहना नहीं होगा कि मोटे पैमाने के रोग छोटे पैमाने के रोगों की चिकित्सारहित अवस्था का ही परिणाम हैं। इनमें अधिकांश छोटे पैमाने के रोगों का कारण बड़ी आँत की मलाभार अवस्था ही होती है। आहार का रसविहीन अवशिष्ट भाग छोटी आँत से जब बड़ी आँत में आता है तब इसका भूल या उतावली से पाचन किये हुए द्रव्य का कोई शेषांश शरीर के ग्रहण योग्य रह जाता है तो यह आंत उसका शोषण कर लेती है।

इस आंत में शोषण की अद्भुत कला है। यह हर क्षण शोषण के कार्य में लगी रहती है। यदि पेट में नियत समय से ज्यादा समय तक मल पड़ा रहे तो वह प्रतिक्षण दुर्गन्धित होता रहता है और दुर्गन्धित मल का शोषण बड़ी आंत के द्वारा हो कर शरीर में विष और गंदगी का विस्तार होता रहता है जो शरीर में नाना-विधि रोगों के आविर्भाव का कारण बन जाता है। सारांश यह कि कब्ज अनेक रोगों का मूल कारण है, जिसकी चिकित्सा सर्व प्रथम करनी चाहिए।

मस्तिष्क के शिरःशूल, बेचैनी आदि रोगों का कारण केवल कोष्ठबद्धता ही हो, एसा नहीं। अत्याधिक विचारों के उहापोह में रहने से रक्त का प्रवाह अधिक तादाद में मस्तिष्कगत शिराओं में होता रहता है और इस अनैच्छिक भार से ही मस्तिष्क व्यथित हो कर रोगाक्रांत हो जाता है। नींद कम लेने से शरीरगत श्लेष्मा घट जाता है। इससे भी मस्तिष्क के रोग उत्पन्न होते हैं।

मस्तिष्क में बड़े पैमाने के रोग साधारणतः ज्वर की तीव्र अवस्था में देखे जाते हैं। इसका कारण मस्तिष्क की ओर रक्ताधिक्य ही प्रमुख है। अन्यान्य मस्तिष्क के दुःसाध्य रोगों का कारण भारी चिन्ता, वियोग, मैथुनाधिक्य, आहार में प्राण पोषक तत्वों के अभावस्वरूप स्नायुओं की दुर्बलता मात्र है। भूत व्याधा मानसिक भ्रम है, यह कहने में हमें लवलेश आपत्ति भी नहीं है। प्रायः भूत व्याधा में एसे ही व्यक्ति फंसे देखे जाते हैं जिनके जीवन-संस्कार अंधविश्वासी समाज की ज्ञानविहीन परिधि में हुआ करते हैं।

अस्तु। मस्तिष्क मानव का सर्वस्व है अतः इसमें रोग होते ही रोग का कारण शरीर की सदोष अवस्था समझकर प्राकृतिक चिकित्सा आदि के द्वारा शरीर को विकाररहित कर लेना चाहिए। रोग के प्रति हमारी अबोध उपेक्षा उसे स्थायी जीर्ण रोग न बना दे इसका ध्यान रखना चाहिए।

साधारण अथवा आकस्मिक तीव्र शिरःशूल के पैदा होते ही तीन पाव पानी का डूश ले लेना

चाहिए। छोटी उम्र के व्यक्तियों के डूश में कम पानी का प्रयोग होना चाहिये अन्यथा लाभ की जगह हानि की सम्भावना रहती है। अधिकतर एक डूस लेने से ही शिर दर्द की कमर टूट जाती है। फिर भी शरीर की सफाई के लिये दो समय का भोजन छोड़ उपवास कर लेना अत्यन्त हितप्रद है। यदि उपवास काल में निम्बू रस से मिला पानी प्रति घण्टे एक गिलास पिया जाए तो शरीर की गन्दगी मूत्र के द्वारा बाहर आ जाती है। उपवास के बाद लिवर कमजोर न हो तो यथेष्ट मात्रा में शुद्ध चिकनाई युक्त आहार का सेवन करना चाहिये जैसे कि मूंग, चावल अथवा गेहूं के दलिये की खिचड़ी में शुद्ध देशी घी डालकर खाना। दूध का सेवन भी अत्यन्त हितकर होता है। असाधारण रोग की अवस्था में ८-१० रोज पके फल, दूध एवं १२ घण्टे भिगोई किशमिश पर रखा जाना चाहिये। प्रातः कब्ज की शेष हालत में नित्य प्रति एनिमा (डूश) लिया जाय तो आंत की सफाई भली प्रकार होती रहती है जिससे पूर्ण लाभ में संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। शौच से फारिग होकर गीले गमछे से सारे शरीर को पौंछ कर खुली हवा एवं प्रातःकालीन सूर्य की अमृत रश्मियों में विचरा जाय तो स्नायु सबल स्वस्थ एवं कार्य क्षम हो जाते हैं जिससे मानसिक रोग ही क्यों हर रोग को दूर करने में सहायता मिलती है। बहुत बार बालों में तेल कन्घी करने से दिमाग का भारीपन मिटते देखा गया है। नींद में कटौती करने से हुए शिर दर्द में खूब गहरी नींद ले लेना ही अव्यर्थ चिकित्सा है। सर्दी के शिरःशूल में पसीना लाने वाला काढ़ा पीकर सोया जाए। जेठ की गर्म हवा शरीर के स्पर्श होने से स्नायु वितृष्णा से भर उठते हैं और शिरःशूल ही नहीं सारा शरीर संतप्त एवं निष्क्रिय सा हो जाता है। ऐसे समय हवा के झोंके रहित खुले स्थान में शरीर के ताप उतने ही गर्म पानी में अङ्ग-प्रत्यङ्ग मसल-मसल कर स्नान कर सूखे तौलिए से सारा शरीर रगड़ कर पोंछ लेना चाहिए। पश्चात् निम्बू या मौसम्बी का रस देते रहना चाहिए तथा विश्राम लेना चाहिए।

मस्तिष्क के पुराने रोग जैसे मृगी, उन्माद, बेहोशी, हिस्टेरिया, निरन्तर शिरःशूल, पागलपन आदि को दूर करने में विशेष श्रम साधना की आवश्यकता है। पुराना रोग प्रायः लम्बी चिकित्सा के सेवन से ही दूर हो सकता है।

इन रोगियों का आहार सदैव सादा सुपाच्य और स्निग्ध होना चाहिए। चिकित्सा काल में भोजन कम से कम देकर ताजे पके फल, कच्ची तरकारी में निम्बू दही आदि मिलाकर बनाया सलाद, उबली तरकारी, रात भर भिगोई किशमिश, पके अंगूर, आंवले आदि देने से शरीर का नवीन संस्कार हो जाता है।

नित्य प्रातः डूश देकर पेट साफ करा लेने के बाद चिकनी मिट्टी से शिर धुलवा लेना तथा स्नान करा देना चाहिए। पुरुष रोगी है तो शिर के बालों का मुंडन करवाते रहना चाहिए। स्नान के बाद नित्य खुली हवा में रोगी को टहलना चाहिए। नित्य या एक दिन छोड़कर १ इंच तह की मिट्टी की पुल्टिस पानी से शिर धोने के बाद शिर पर रखी जाय। यह अत्यन्त हितकर है। मिट्टी शरीर का विष जादू की तरह खींचती है। परन्तु आधा घण्टे से अधिक समय तक के लिये यह पुल्टिश शिर पर नहीं रहना चाहिए अन्यथा खींचा हुआ विष पुनः शरीर में चला जा सकता है।

हर प्रकार के मिर्चे मसालों से दूर रहने देना प्रथम कर्त्तव्य है। नशीली वस्तुओं के त्याग के साथ ब्रह्मचर्य का पालन अत्यावश्यक है। मैथुन से ओजःस्रावी ग्रन्थियां विपन्न हो जाती हैं और ओज के अभाव में रोग मुक्ति की आशा सपने की कहानी बन जाती है।

इन रोगियों की देह पर हमेशा तेल मालिश की जाय तो बहुत उपकार होता है। कटि स्नान का

—शेषांश पृष्ठ ८७५ पर

उन्माद रोग पर मेरे दो अनुभव

श्री वैद्य दुलीचन्द आर्य

उन्माद (पागलपन), मृगी, हिस्टेरिया और मदात्यय चारों रोग मिले-जुले कारणों से ही होते हैं। यह रोग हृदय और मस्तिष्क की कमजोरी से होते हैं। मैं चौदह साल से इन रोगों की चिकित्सा कर रहा हूं। जिनमें मुझे ६० प्रतिशत सफलता मिली है उनमें से दो गम्भीर रोगियों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है तथा अपने अनुभव उपस्थित कर रहा हूं।

उन्माद रोग पांच प्रकार होता है। (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) सन्निपातज (५) आगन्तुक कारणों से होने वाला। सब प्रकार का उन्माद रोग दोषज और मानसिक होता है क्योंकि यह रोग प्रायः मन के दूषित होने से होता है।

विमार्गगामी दूषित दोष थोड़े सत्व गुण वाले मनुष्य की बुद्धि के स्थान रूप हृदय को दूषित करके तथा मन के चलने वाले स्रोतों में स्थित होकर चित्त को मोहित करते हैं। बुद्धि तथा स्मृति को शीघ्र नष्ट करते हैं फिर दोष अपने अपने बल के अनुसार लक्षण करते हैं, जैसे—

(१) वातज उन्माद में बेकायदा हंसना, मुस्कराना, नाचना, गाना, बकना, अङ्गों को चलाना, रोना, निद्रानाश और मल का रुकना आदि।

(२) पित्तज उन्माद—असहनता, आडम्बर, नंगापन, डराना, भागना, शरीर में दाह, क्रोध और शीतल अन्नपान में अभिलाषा।

(३) कफज उन्माद—अरुचि, छर्दि, लार का बहना, अधिक निद्रा, थोड़ा बोलना, नख आदि में श्वेतता, तन्द्रा आदि लक्षण होते हैं।

(४) सन्निपातज उन्माद—ऊपर के प्रायः सभी लक्षण होते हैं।

(५) आगन्तुक कारणों से होने वाला—विष दिया जाए (खिलाया जाए) या डर, भय से घबरा कर होने वाला आगन्तुक उन्माद कहलाता है।

कारण—

उन्माद रोग अधिकतर दो कारणों से होते हैं। (१) अत्यधिक दुःख, (२) अत्यधिक सुख। जैसे—किसी का मित्र भाई सम्बन्धी, पुत्र, स्त्री का वियोग, धन का नाश, किसी धनवान की एक दम अर्थ-हानि होना चित्त और बुद्धि को नष्ट करता है। इसी प्रकार लम्बे वियोग के बाद पुत्र, स्त्री, भाई का मिलन, अचानक अधिक धन की प्राप्ति की खुशी से हृदय दूषित होकर बुद्धि का नाश करता है और उन्माद को उत्पन्न करता है।

इस प्रकार का रोगी जो सुख, खुशी का रोगी है यदि किसी मनुष्य को देखता है तो वह हंसता और अपने सुख को प्रकट करता है। दुःख से हुए उन्माद का रोगी जब किसी को देखता है तो दुःख के कारण को बार बार कहता है, रोता है और घबराता है।

उन्माद के एक रोगी का विवरण नीचे दिया जाता है—

नाम रोगिणी—सुन्दर बाई पुत्री श्री अमीलाल, ग्राम बसीरवास, पोस्ट लोहारू, जिला हिसार। आयु १६ वर्ष। रोगिणी का भाई श्री माणिकचन्द ११-७-५० को मेरे पास आया और मुझसे कहा कि मेरी बहन पागल हो गई है आप चलकर देखने का कष्ट करें।

मैं प्रातःकाल ७ बजे ही वहां पहुँचा और रोगिणी के रोग का निदान किया जो निम्न प्रकार था—

लक्षण—अन्ड-बन्ड बकना, हाथ-पैर शीतल, कब्ज, पेट में वायु गोले का दर्द, निद्रानाश (२४ घण्टे में केवल १ या २ घण्टे ही नींद आती थी),

मूर्च्छा दिन में दो तीन बार बड़ी गम्भीर होती थी, मूर्च्छा के समय रोगिणी बेहोश मृतक के समान पड़ी रहती तथा एक दो घण्टे बाद मूर्च्छा कम होने लगती, उस समय वह हाथ पैर फेंकती और चिल्ली मार मार कर हंसती, नाचती, गाती तथा कभी कभी इस प्रकार से बोलती थी कि उर्दू या फारसी में बातें कर रही हो। कभी कभी दमा और हिचकी गम्भीर वेग से चलती थी। चेहरा उदासीन, शरीर कमजोर, आंखें बन्द रखती थी।

चिकित्सा —

प्रथम ५ तोला कास्ट्रायल (दूध में मिलाकर) दिया, जिससे दस दस्त आए। महालक्ष्मीविलास रस १ रत्ती, चतुर्भुजरस १ रत्ती, भोजन से पहले हिंग्वाष्टक चूर्ण ३ माशे तथा अश्वगन्धारिष्ट २ तोले दुगना जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दिये गए। तिल तेल ५ तोला में ६ माशे लहसुन मिला अग्नि पर गर्म कर सारे शरीर पर मालिश कराई गई, सिर पर ब्राह्मी तेल की मालिश कराई।

यह चिकित्सा १५ दिन तक चलती रही। रोग शान्त हो गया। पैसे की कमी तथा घर वालों की लापरवाही से १५ दिन बाद मेरी चिकित्सा बन्द हो गई।

एक माह तक ठीक रहने के बाद वही रोग फिर उग्र रूप से सामने आया। फिर निम्न चिकित्सा प्रारम्भ की—

योगेन्द्र रस, चतुर्भुज रस और महालक्ष्मीविलास तीनों के मिश्रण से दो दो रत्ती की पुड़ियां बनाई। प्रातः सायं १-१ पुड़िया शहद से, खाना खाने के पूर्व ३ माशा हिंग्वाष्टक चूर्ण दिया गया। भोजन के एक घण्टे के बाद अश्वगन्धारिष्ट २ तोला दुगना जल मिला कर दिया गया। पीपलामूल का चूर्ण ६ माशे में दुगना पुराना गुड़ मिलाकर सोते समय दिया गया। विरेचन के लिए कास्ट्रायल सप्ताह में दो बार देनेको कहा।

पथ्य—गाय का दूध, ताजे चावल, गेहूँ की रोटी आदि खाने को कहा। ११-६-५० को मैंने रोगिणी को फिर देखा तो वह कुछ होश में थी तथा मूर्च्छा कम होने लगी थी।

मैंने उपरोक्त चिकित्सा फिर आरम्भ कर दी दिन प्रति दिन लाभ होता गया एक माह में सब उपद्रव शान्त हो गये।

उसके बाद उपरोक्त औषधियों की मात्रा आधी कर दी गई खाने के लिये गाय का दूध गेहूँ की रोटी और चावल गाय का घी देने को कहा गया। ईश्वर की कृपा से वह लड़की अब तक बिल्कुल स्वस्थ है।

उन्माद के रोगी को पेट साफ रखना चाहिए और नींद दिलानी चाहिए। इससे लाभ रहेगा। कब्ज और निद्रानाश उन्माद के मूल कारण हैं।

एक दूसरा रोगी—

ता० ५-१०-५६ से बड़े भाई श्री भरतसिंह जी की सुपुत्री (मेरी भतीजी) सुमित्रा देवी पर अचानक उन्माद रोग का आक्रमण हुआ। कुछ पहले सिर दर्द आदि साधारण लक्षण दिखाई दिये तत्पश्चात् अचानक भयङ्कर रोग ने आक्रमण किया। भाई भरतसिंह जी ने मुझे बुलाया। मैंने निदान किया। रोग त्रिदोषज मालूम हुआ, सुमित्रा से पूछने पर पता लगा कि उसे कब्ज है।

लक्षण—कब्ज, आंखें फूली हुई, चेहरा उदास, भूख बन्द, नाड़ी कमजोर, वात की प्रधानता, कुछ लक्षण पित्त कफ के भी थे, निद्रा कम आती थी।

उपचार—विरेचन के लिए ५ तोला कास्ट्रायल दिया गया जिससे दो दस्त आये। मुझे जरूरी काम के लिए कहीं जाना था अतः चला गया। ७-१०-५६ को वापिस आया तो देखा रोग बढ़ा हुआ था लक्षण इस प्रकार पाए—

लक्षण—उपद्रव गम्भीर, निन्द्रानाश, अन्ड-बन्ड बकना, प्रातःकाल तन्द्रा, चारपाई से उठने को दिल नहीं चाहना, भूख बन्द, मलमूत्र कम उतरना, दिन के दो बजे भयानक दौरा होता

जिससे रोगिणी चिल्ला मार-मार कर रोती और भय भी होती। हाथ पैर शीतल हो जाते और सिर गर्म हो जाता, दिल में भारी धड़कन होती, नाक और मुख से कफ बहता। फूली हुई एवं फटे त्यौर से देखती। शाम को ६ बजे के लगभग थोड़ा होश होता था।

होश होने पर परिवार के मनुष्यों का नाम पुकारती, बड़े भाई (जो सर्विस पर बाहर है) को पुकार २ कर कहती कि ब्रह्मदेव अकेला रह गया इत्यादि। कभी २ ऐसा नाम पुकारती जो न परिवार में है और न गांव में ही।

चिकित्सा—कैलशिम ब्रोमाइड के इन्जेक्शन दिये, चन्द्रोदय मकरध्वज, बचादि चूर्ण, शहद के साथ दिया। उपरोक्त औषधियां तीन दिन लीं। बाद में अरुचि होने से औषधि लेने से इन्कार कर दिया। अगले दिन से प्रातः काल घी में कस्तूरीभैरव रस मिला कर भोजन के ग्रास में इस प्रकार दिया कि रोगिणी को यह मालूम न हो कि उसको औषधि दी गई है। सांयकाल मकरध्वज का योग भोजन में अन्धेरे स्थान में डाल कर दिया ताकि भोजन में देख न सके। दौरे के समय मुस्क कस्तूरी का इन्जेक्शन दिया। बच की धूप दिन में कई कई बार दी गई।

तिल के तैल में लहसुन डाल कर मालिश की गई। ब्राह्मी, महानारायण तैल से सिर के बाल साफ करने के बाद मालिस की।

खाना—गेहूं चावल, मूंग चावल की खिचड़ी फल-दाख, मुनक्का, छुहारा।

एक वर्ष का घी, बच, ब्राह्मी, शंखाहुली, जटामांसी, छुहारा, त्रिफला, अष्टवर्ग, कोंच की जड़ आदि स्मृतिवर्धक औषधियां से सिद्ध करके दिया। एक सप्ताह में ही मल मूत्र ठीक आने लगा। थोड़ी थोड़ी भूख लगने लगी। रात्रि को निद्रा भी आने लगी।

दूसरे सप्ताह भी यही योग चलता रहा तन्द्रा कम हुई, कुछ कुछ ज्ञान भी होने लगा। मनुष्यों को पहचानने लगी। दौरा पहले से आधे समय तक रहने लगा। दोष शान्त होने लगा, निन्द्रा अच्छी आने लगी।

तीसरे सप्ताह भी यही योग चला। साथ ही कोरामीन के इन्जेक्शन भी दिये जिससे दिल की तेज धड़कन कम हो गई। ज्ञान शक्ति बढ़ने लगी। हाथ-पैर की शीतलता भी कम हो गई दौरा दिन में एक आधा घण्टे आने लगा और दिन प्रतिदिन होश होने लगा। चलने फिरने को दिल चाहने लगा।

चौथे सप्ताह के अन्त में फिर उग्र रूप सामने आया। घटना इस प्रकार हुई कि १-११-५६ को प्रातः काल सुमित्रा अपनी माता के साथ खेत में चली गई। दिन के २ बजे खेत से घर को चली। अकेली चलने का रोगिणी का पहला मौका था। रास्ते में उमरावसिंह अहीर का खेत था। उसकी स्त्री का कुछ दिन पहले देहान्त हुआ था। खेत में बाजरे की पूलियों पर लाल कपड़ा डाला हुआ था। रोगिणी ने कपड़े को देख मन में विचार किया कि यह उमराव की बहू ही भूतनी बन कर खड़ी है। यह देख रोगिणी भागी हुई घर आई, रोने चिल्लाने लगी कि मेरे में उमराव की बहू भूतनी बन कर घुस आई है।

मैंने सुमित्रा को काफी समझाया कि भूतनी कोई चीज़ नहीं होती, तू घबरा मत। लेकिन उसे कोई तसल्ली नहीं हुई और उसी प्रकार चिल्ला चिल्ला कर कहती रही कि मेरे में भूतनी घुस गई है।

मैंने दिल में विचार किया कि है तो रोग लेकिन साथ ही तसल्ली के लिए एक सफेद कागज उसके गले में बांध दिया और चार धागे चारों अगूंठों में बन्धवाए। एक अंगूठे से बड़ा धागा बांध उसे पकड़ कर मैं सामने के मकान में चला गया और मकान में मिट्टी के पात्र को बालू रेत से भर कर ढक्कन लगा दिया। मैंने भरतसिंह की बड़ी लड़की से कहा सुमित्रा को यहां ले आ। मैंने धागे को इकट्ठा किया और मकान में बच के धूएं को इतना किया कि आंख न खुल सके। ऐसे समय धागे को अचानक मिट्टी के पात्र में डाल ढक्कन लगा कर गोबर से बन्द करवा दिया।

सुमित्रा से कहा गया कि इस पात्र में भूतनी डाल दी है इसे उठा कर ले चल। उसने पात्र को उठाने की कोशिश की लेकिन बालू के वजन के कारण नहीं उठ सका वजन लगभग ३० सेर था। मैंने कहा इसमें यह वजन भूतनी का है क्योंकि हमने उसे इसमें डाल दिया है।

मैंने कहा कि तुम एक कपड़ा ओढ़ कर सो जाओ मैं इसे कहीं दूर गाढ़ आता हूँ लेकिन मेरे आने तक उठना नहीं। मैं पात्र को लेकर चला गया दो घन्टे बाद आया तो सुमित्रा को सोती हुई पाया। मैंने पुछा सुमित्रा सो रही है? उसी समय सुमित्रा ने कहा नहीं। क्या तुम भूतनी को गाढ़ आये? मैंने हां उत्तर दिया। उसका भय उसी समय दूर हो गया। इसके बाद दिन प्रतिदिन लाभ होता गया और १५-११-५६ को बिलकुल स्वस्थ हो गई।

वैद्य श्री दुलीचन्द्र आर्य "आयुर्वेद विशारद"
आर्य आयुर्वेदिक औषधालय,
आर्य नगर बाढड़ा (महेन्द्रगढ़)

:: अजगर-खनखजूरा और बिच्छू ::

नामर्दी—एक बीड़ा पान लगवा कर और उसे सींक में पिरोकर किसी बिच्छू से डंक लगवावें, इस पान को खिलावें तो नामर्दी दूर हो। अथवा एक कागजी नीबू पर बिच्छू का डंक लगवाकर और उसे शक्कर के शर्बत में निचोड़कर पिलाने से एक ही दिन में नामर्द शक्ति का अनुभव करने लगता है।

बिच्छू दंश हो तो—मैथिलेटिड स्प्रिट में १ छटांक जीवित बिच्छू डाल दें, एक सप्ताह पड़ा रहने दें, फिर छान लें। इस बिच्छू टिंचर को २-४ बार लगाने से विषवेदना नष्ट होती है। अथवा चीनी व लवण जल में मिलाकर लगावें।

नोट—अगर कोई काले बिच्छू सप्लाई कर सकते हों तो एक पाव व एक सेर का मूल्य लेखक को लिखें।

—श्री कवि० हरिकृष्ण सहगल बगीची अलाउद्दीन
१३६२३/६ नजर मोतिया खान दिल्ली

:: पृष्ठ ८६६ का शेषांश ::

:: मस्तिष्क के रोगों सफल चिकित्सा ::

स्वस्थ हो सके तो शीघ्र ही अप्रत्याशित लाभ दृष्टिगोचर होता है। स्नायु का केन्द्र मण्डल रीढ़ की हड्डी का ऊपरी भाग रहता है अतः समूची रीढ़ की हड्डियों को २ मिनट गर्म सेक के बाद दो मिनट के लिये गीले वस्त्र से ठंडा किया जाय तो इस प्रयोग से ही स्नायुओं की अकर्मण्यता दूर हो जाती है। ध्यान रहे इस गर्म ठंडे का प्रयोग २ मिनट पर्याप्त है।

:: पृष्ठ ८७१ का शेषांश ::

उपर्युक्त चिकित्सा के साथ रोगी को यह विश्वास दिलाते रहना आवश्यक है कि वह अच्छा होता जा रहा है। इस स्वकल्प भावना से रोगी अल्पावधि में ठीक हो सकता है।

—श्री लक्ष्मीनारायण राठौर 'अलौकिक'
शामगढ़ (म० प्र०)

हरी तरकारियों के गुणावगुण

श्री माधव

हमारा शरीर भोजन पर विशेष कर अवलम्बित है। पौष्टिक भोजन ही शरीर को तन्दुरुस्त रखता है। हम जैसा भोजन करेंगे, शरीर की वृद्धि भी उसी के अनुसार होगी और हमारे मस्तिष्क का विकास भी वैसा ही होगा। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारे शरीर का विकास हो, हमारा मस्तिष्क परिपक्व हो, बुद्धि तीव्र हो तो इसके लिए हमें सतर्क रहना होगा और भोजन पर विशेष ध्यान देना होगा।

हम लोग भोजन करते हैं पर स्वाद के लिए, न कि शरीर के लिए। स्वादिष्ट भोजन तैयार करने में भोजन के पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं। भारत में अभी भुखमरी की समस्या है। लोग दाने-दाने के मुंहताज हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में हम भारतीयों का यह कर्त्तव्य है कि अपने भोजन की पूर्ति स्वयं करें। अधिक तादाद में शाक तरकारियां उपजावें। इन्हीं शाक तरकारियों में विशेष पौष्टिक तत्व रहते हैं। यहां पर संक्षेप में कुछ एक तरकारियों के पौष्टिक तत्व एवं उनके उपयोग के संबंध में बताया जा रहा है। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ें और इसे अमल में लावें।

टमाटर

यह हरी तरकारियों में विशिष्ट स्थान रखता है इसे विलायती बैंगन भी कहते हैं क्योंकि यह विलायत की देन है। इसे तरकारी और चटनी बना कर खाते हैं। पका टमाटर यों ही खाया जाता है।
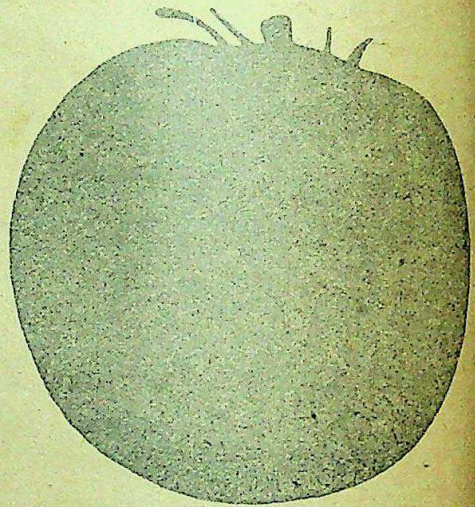
तरकारियों में थोड़ा टमाटर डाल देने से उसके स्वाद में वृद्धि हो जाती है। इसमें ९२.८% जल, ०.७% खनिज पदार्थ, १.९% प्रोटीन, ०.१% वसा, ०.५% कार्बोहाइड्रेट ०.०२% कैलशियम, ७.०४% फास्फोरस २.४ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, ३२० इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, २३ इ० यू० विटामिन बी प्रति सौ ग्राम, ३१ मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।

यह कुछ खट्टा मीठा, अग्निदीपक, क्षुधावर्द्धक, रुचिकर, शक्तिवर्द्धक और पाचक होता है। इसके

...न से अतिसार उदर रोग, एपेंडिसाइटिस और शरीर की स्थूलता दूर होतीहै। यह दस्तावर ...ता है। इससे रक्त-विकार दूर होता है। गठिया और बेरी-बेरी की बीमारी भी जाती रहती है।

तोरई

इसकी तरकारी बहुत अच्छी होती है। इसमें ...सापन अधिक होता है। मीठी तोरई और कड़बी

...ई इसके दो भेद हैं। मीठी तोरई मुलायम, ...र और शीतल होती है। इससे कफ और पित्त ...न होता है। कड़वी तोरई कफ और पित्त को ...न करती है और वात को उत्पन्न करती है। ...में ९५.४% जल ०.३% खनिज पदार्थ, ०.५% ...टीन ०.१% वसा, ३.७% कार्बोहाइड्रेट ०.०४% ...ल्शियम ०.०४% फासफोरस, १.६ मिलीग्राम प्रति ...ग्राम लोहा, ५६ इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम ...इ०यू० विटामिन बी १ प्रति सौ ग्राम होता है। तोरई रुचिकर, शक्ति और बल वीर्यवर्द्धक ...यह स्वादिष्ट और मधुर है। इसके प्रयोग से ..., खांसी, ज्वर और उदर कृमि दूर होते हैं।

परवल

यह भी दो प्रकार का होता है। एक कड़वा और दूसरा मीठा। मीठे परवल की तरकारी खायी
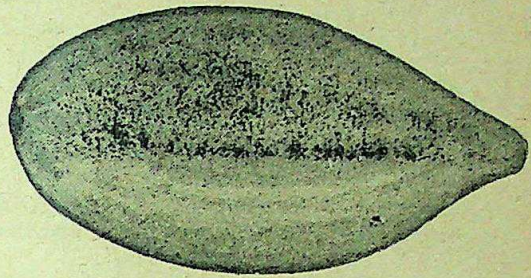
जाती है। कड़वा परवल गर्म और दस्तावर होता है। यह कफ, पित्त, खाज, कुष्ठ, रक्त-विकार, ज्वर और दाह वालों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। आंखों की बीमारी के लिए रामबाण है। मीठा परवल रक्त-विकार, दाह, कफ, और पित्त को शान्त करता है। यह दस्तकारक, तिक्त, कटु और उष्ण होता है।

इसमें ९२.३ प्र० प्र० जल, ०.५ प्र० श० खनिज पदार्थ, २.५ प्र० श० प्रोटीन, ०.३ प्र० श० वसा, १.९ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०३ प्र० श० कैल्शियम, ०.०४ प्र० श० फासफोरस, १७ मिलिग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा होता है।

यह शक्तिबर्द्धक होता है। शरीर को पुष्ट करता है। वात, पित्त और ज्वर को दूर करता है।

करेला

करेले की तरकारी बड़ी अच्छी होती है। यह दो प्रकार का होता है। छोटे आकार वाले को करेली और बड़े आकार वाले को करेला कहते हैं। करेला कड़वा, शीतल, हलका और दस्तावर होता है। इसके प्रयोग से कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, पांडु रोग, कृमि आदि रोग दूर होते हैं।

इसमें ९२.४ प्र० श० जल, ०.८ प्र० श० खनिज पदार्थ, १.६ प्र० श० प्रोटीन, ०.२ प्र० श० वसा, ४.२ प्र०श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०३ प्र० श० कैल्शियम, ०.७० प्र० श० फासफोरस, २२ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, २१० इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, २४ इ० यू० विटामिन बी १ प्रति सौ ग्राम, विटामिन बी २ आधी मात्रा में, ८८ मिली-

ग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।
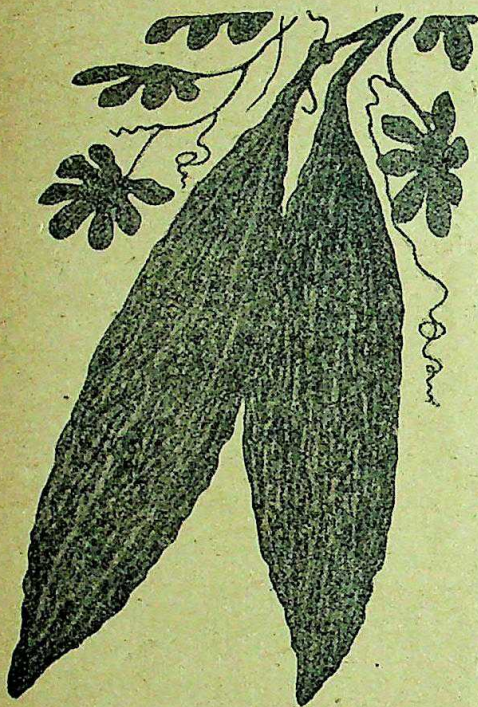
इसके प्रयोग से रतौंधी, बालकों का पेट फूलना, खूनी बवासीर, शीत ज्वर, मूत्राघात आदि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त जोड़ों का दर्द, नेत्र रोग, रक्तार्श, पथरी आदि बीमारी नष्ट होती हैं।

बैंगन

बैंगन गर्म, मधुर, वीर्यवर्द्धक, हलका, तीक्ष्ण, अग्नि प्रदीपक और रुचिकर होता है। यह पित्त का नाश करता है और कफ को शान्त करता है। बल को बढ़ाता है, हृदय को सबल बनाता है और शरीर को पुष्ट करता है।

इसमें ६१.० प्र० श० जल, ०.५ प्र० श० खनिज पदार्थ, १.३ प्र० श० प्रोटीन, ०.३ प्र० श० वसा, ६.४ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०२ प्र० श० कैल्शियम, ०.०६ प्र० श० फासफोरस, १.३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, १५ इ० यू० विटामिन बी १ प्रति सौ ग्राम, विटामिन बी २ काफी और
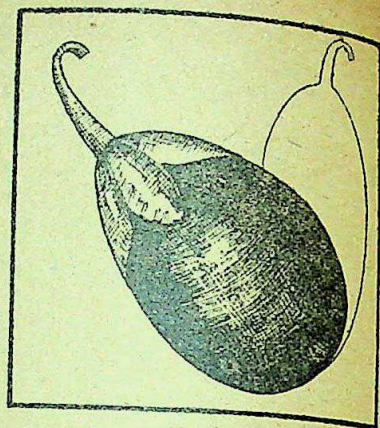
२३ मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।

सहजन

सहजन के फल और पत्ते की तरकारी होती हैं। यह चरपरा, गर्म, तीक्ष्ण, दीपक, मधुर और दाहकारक होता है। इसके फल में ८३.० प्र० श० जल, २.० प्र० श० खनिज पदार्थ, २.५ प्र० श० प्रोटीन, ०.१ प्र० श० वसा, ३.७ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०३ प्र० श० कैल्शियम, ०.११ प्र० श० फासफोरस, ५.३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, १८४ इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, २२० मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है। तथा इसके पत्ते में ७५.० प्र० श० जल, २.३ प्र० श० खनिज पदार्थ, ६.७ प्र० श० प्रोटीन, १.७ प्र० श० वसा, १३.४ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.४४ प्र० श० कैल्शियम, ०.०७ प्र० श० फासफोरस, ७.० मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, ११३०० इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, ७० इ० यू० विटामिन बी प्रति सौ ग्राम, २२० मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।

सहजन का फल स्वादिष्ट, कफ-पित्तनाशक कसैला तथा कुष्ठ, क्षय, शूल और गुल्मनाशक होता है। यह दीपन, गर्म, पाचक और कृमिनाशक है। इसके प्रयोग से सिर-दर्द, नेत्र रोग, सर्प विष, संखिया का विष, गण्डमाला, हिचकी आदि बीमारी दूर होती हैं।

—क्रमशः

एक्जिमा के लिये--

अजवायन ३ तोला, नीला थोथा ½ तोला, कबीला ½ तोला, रस कपूर १ माशा एवं गाय का शुद्ध घृत ३ तोला।

विधि—अजवायन को आक के दुग्ध में भिगोकर उसे छाया में सुखादें, जब वह अच्छी तरह सूख जावे तब उसे तवे या किसी बर्तन में जलाकर निर्धूम करलें और बाद में पीसकर चूर्ण करलें।

इसके बाद घृत को १५ बार कांसी की थाली में पानी के साथ घोलें तथा पानी को अलग कर उसमें अजवायन, नीला थोथा, कबीला व कपूर को पीस कर चूर्ण सहित घृत में मिलादें।

इसको जहां एक्जिमा हो उसको साबुन से धोकर १५ दिन तक लगाने से अवश्य फायदा होगा।

दाद के लिए अचूक दवा—

गूलर के दूध को जहां दाद हो उस पर अरण्योपल द्वारा रगड़ कर तीन दिन तक लगाने से दाद जड़ से नष्ट हो जाता है।

इसके लगने से जलन बड़ी तीव्र होती है उसे सहन कर तीन दिन तक लगातार प्रयोग करते रहना चाहिए।

—श्री श्रीगोपाल गुप्ता अध्यापक
गोठड़ा (बूंदी)

× × × ×

संग्रहणी पर—

१-जिसमें दस्तों में रक्त न आता हो—

औषधि—अफीम, हींग हीरा (घी में भुना आधा आधा कच्चा) भांग, जायफल सब वस्तुऐं १-१ माशे।

विधि--हींग भुना, भांग, जायफल को कूट कर कपड़े में छान लें। पश्चात् दो छुहारे लेकर उनकी गुठली निकालें और दोनों छुहारों में आधी आधी दवा भर दें। ऊपर से गुंधा हुआ आटा लपेट दें और भूभल (तेज गर्म राख) में दबा दें। जब आटा पक कर लाल हो जाये तो उसे आग से निकाल कर रख दें। ठंडा होने पर बारीक पीस कर कनक के बराबर गोलियां बनालें।

प्रयोग विधि--बड़े आदमी को पूरी गोली और बच्चे को आधी गोली देनी चाहिए।

मात्रा-दिन में तीन बार लस्सी से दें। दस्तों में खून न आता हो तो ऊपर वाली दवा देनी चाहिए।

२-दस्तों के साथ रक्त आता हो तो यह दवा दें—

औषधि--छुहारा एक, अफीम एक माशा।

विधि—छुहारे की गुठली निकाल कर अफीम उसमें भर दें। और आटा लपेट कर दीये की लौ पर (या गर्म राख में) भूनलें। जब आटा लाल हो जावे तब ठंडा होने पर खोलो। पीस कर कनक के दाने के बराबर गोलियां बनालो। दिन में तीन खुराक सवेरे दोपहर और शाम को लस्सी के साथ। खाने को मकई की रोटी, लस्सी दही के साथ खानी चाहिए। यदि ज्वर भी हो तो यह दवा लस्सी से नहीं देनी चाहिए बल्कि चौअर्के के साथ देनी चाहिए। लस्सी में नमक मामूली सा डाल देना चाहिए। दिन में लस्सी कितनी ही बार पीवें अच्छी है। तपेदिक वाले को दस्त हों और संग्रहणी

हो तो चौथर्के से गोली देनी चाहिए।

मरहम-रसौली पर—

औषधि—राल एक पाव, चूहे की मेंगनी आध पाव (जंगली चूहे की हो तो और भी अच्छा) गन्दा बिरोजा सूखा दो तोला। नील थोथा १। तोला।

बनाने की विधि—सब वस्तुओं को कूट कर कपड़े में से छान कर तैल सरसों आधा पाव या डेढ़ छटांक में डाल दो और हाथ से घोटो। हल्वा जैसा हो जावेगा पश्चात् एक कड़ाही लेकर इस हल्वे को डालकर मथो और पानी डाल कर धोओ। जैसे घी धोते हैं। बीस पच्चीस बार धोओ यहां तक कि धोते-धोते रंग सफेद हो जाये। फिर पानी निकाल कर कड़ाही को आग पर रखो। और पलटे से पलटते रहो। नीचे आग मन्दी हो। जब पकते पकते नसवारी रंग हो जावे तब उतारो। अन्त में कड़ाई में जब मरहम तय्यार होने पर आयेगी तो यह पहचान है कि उसमें से सफेद नीले रंग के बुलबुले निकलने लगेंगे। उबाल नहीं आने देना चाहिये। अगर उबाल आने से पहले न उतारा तो मरहम खराब हो जायेगा। पश्चात् डिबियों में भर कर रखलो।

सेवन विधि—रसौली किसी भी प्रकार की हो एक कपड़े पर मरहम लगाकर रसौली पर लगाओ। प्रातः सायं लगाते रहो। रसौली अपने आप निकल जावेगी पता नहीं लगेगा।

—श्री श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०
१५५६/२१ नाई वाला, करौल बाग, दिल्ली।

× × × ×

पौष्टिक पाक—

कौंच के बीज ६ तोला, कनेर बीज, विदारीकन्द, अश्वगन्धा, विधारा, कटेरी, लाजवन्ती के बीज, काली मूसली, सफेद मूसली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, काली मिरच, सौंठ, गोखुर, कमल के बीज, इमली के बीज, जंभीरी नीबू के बीज, ककड़ी के बीज सभी १-१ तोला लें। उपरोक्त द्रव्यों में से बीजों को पानी में भिगोकर उनकी मिंगी निकाल लें। फिर सभी चीजों को कूट पीस कपड़छन करलें। फिर आधा सेर गेहूं का आटा मिलाकर आधा सेर गोघृत में भून लें। पश्चात् २ सेर मिश्री की चाशनी मिलाकर ५-५ तोला के मोदक बनालें। एक पाव दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करें। यह अनुभूत पाक है। अत्यन्त पौष्टिक है।

—वैद्य श्री सियाराम शर्मा
एधिया पो० कलसन (फरुखाबाद)

× × × ×

लिङ्ग की शैथिल्यता नाशक—

काली मिरच नग ११, काली तुलसी बीज ११ नग, लवङ्ग ११ नग, भीमसैनी कपूर १ माशा इनको कूट-पीस कर कपड़छन करलें। इसी हिसाब से चाहे जितना बनालें। पानी में मिला लिङ्ग पर लेप करने से लिङ्ग की शैथिल्यता दूर होकर कड़ापन आता है प्रयोग करें।

दाद खाज नाशक—

पीपल की छाल, बादाम छिलका, गेहूं के दाने, नारियल के गोले के ऊपर की लकड़ी, शीशम की छाल प्रत्येक एक छटांक लें। तुत्थ ६ माशा लें। इनका पाताल यन्त्र से तैल निकाल लें। अथवा सभी सामग्री लेकर एक मिट्टी की हडिया में भर लें। उसके तले में पैंसिल के बराबर का छिद्र कर छोड़ें। छिद्र पर एक प्याला रख कर ऊपर सामग्री युक्त हड़िया रखदें। हांडी का सन्धि बन्धन पूर्व कर लेना चाहिये। पश्चात् एक गड्ढा खोद के उसमें रखदें। गड्ढा वराह पुट के समान होना चाहिये। ऊपर अग्नि जला दी जाय शान्त होने पर नीचे श्याम रङ्ग का स्निग्ध पदार्थ होगा। उसका पिचु दाद पर लगावें। यह लगेगी किन्तु लाभ अच्छा करती है।

प्रवाहिका हर—

सौंठ, सौंफ, हरड, छोटी पोस्त के डोंडा—प्रत्येक एक-एक छटांक लें।

निर्माण विधि—प्रथम सोंठ को कुछ कुचलें। पश्चात तवे पर जरा घृत छोड भूनलें। इसी प्रकार तवे पर हरड़ और सौंफ भी भूनलें। हरड़ फूल जावेगी सौंफ का रंग परिवर्तन हो जावेगा। अधिक न भूनें। पश्चात् सभी को चूर्ण कर चलनी से छान कर बोतल में रख छोड़ें।

मात्रा—एक से तीन माशा।

पथ्य—चावल मूंग की दाल खिचड़ी दही खाने को दें।

—श्री जगदीशचन्द्र भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य
राजकीय औषधालय, जोधका (हिसार)

× × ×

सूखा रोग पर मेरे दो अनुभूत प्रयोग—

१—एक बंगला पान पर चूना तथा कत्था डाल कर ६।। पत्ती कंघी का मिला कर सिल पर महीन पीस कर कमर के नीचे रीढ़ पर उंगली से १५ मिनट धीरे २ मालिस करें। बाद में कपड़े से पोंछने पर सूत के समान महीन कीड़े प्रगट होंगे उन्हें हटादेवें। एक सप्ताह इसी प्रकार लेप करने से सूखा रोग के कीडे मर जायगें, बच्चा सुखी होगा। माता नीम का फूल ६ माशे, सौंफ ६ माशे, काली मिर्च $\frac{१}{४}$ माशे सुबह बट कर एक सप्ताह तक पिये तो विशेष लाभ होगा। सूखा रोग न होगा तो कीड़ा नहीं प्रगट होगा।

सूखा रोग पर सूखा संहार तैल—

काला तिल का तैल ऽ।। भृंगराज (भंगरा) ऽ।। कुकरौंधा रस ऽ।। लह चिचिरा रस ऽ।।। सबसे प्रथम तैल में क्रमानुसार रस डाल कर सिद्ध करें। बाद में कछुवा के रीढ़ की हड्डी आधी छटांक कपड़ छान कर डालें। जब जल जावे तब उतार कर अफीम ४।। माशे और असली संदल सफेद तैल ७।। माशे डाल दें बाद खूब हिलाकर मालिस करें। सूखा रोग शर्तिया, दूर होगा। माता कब्जकारक पथ्य भोजन न करे। बच्चा सुखी होगा।

—श्री पं० सत्यशरण मिश्र वैद्य
धनवां (गौन्डा)

अनुभवी सफल चिकित्सक ध्यान दें

१—आप अनेक रोगियों की चिकित्सा करते हैं तथा उनको रोग मुक्त करते हैं। किसी कष्टसाध्य रोग से पीड़ित रोगी की यदि आपने सफल चिकित्सा की है तो उसका विवरण धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ अवश्य भेजें। निम्न शीर्षकों के आधार पर लेख संक्षेप में लिखें—

१. रोगी का नाम व पता। २. उसके रोग का पूर्व इतिहास (संक्षेप में)
३. उस समय का विवरण जब कि वह आपकी चिकित्सा में आया (संक्षेप में)
४. आपने क्या चिकित्सा की और उसका क्या परिणाम हुआ।
५. चिकित्सा में प्रयुक्त औषधियों के प्रयोग।

२—किसी भी शास्त्रीय प्रयोग के विषय में, अपने चिकित्सा काल में यदि आपने विशेष अनुभव किए हैं तो उनको अवश्य लिखियगा तथा प्रकाशनार्थ भेजियेगा।

उक्त दोनों प्रकार के आपके अनुभवों से आयुर्वेद समाज को लाभ होगा, पीड़ित जन समुदय को वे लाभ पहुंचावेंगे तथा आयुर्वेद का प्रचार होगा। हमको विश्वास है कि आयुर्वेद जगत के सफल चिकित्सक अपने व्यस्त जीवन का कुछ समय अपने सहकर्मी आयुर्वेद चिकित्सकों को अपने अनुभव प्रदान करने के लिए अवश्य देंगे।

—सम्पादक।

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद खण्ड की स्थापना —

नई दिल्ली, १३ जुलाई। आयोजन आयोग ने योजना मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता में आयुर्वेद खण्ड की स्थापना की है।

यह खण्ड आयुर्वेद के विकास सम्बन्धी चालू कार्यक्रमों की प्रगति पर विचार करेगा और तीसरी योजना के लिए आयुर्वेद कार्यक्रम के बारे में सुझाव देगा। श्री नन्दा के अलावा खंड में ३४ अन्य सदस्य हैं।

× × × ×

आयुर्वेद कालेज के मामले में कानूनी कार्यवाई का निर्णय–

ज्ञात हुआ है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की कार्यकारिणी समिति ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज को एक एलोपैथिक मेडीकल कालेज में परिवर्तित करने के निर्णय के विरुद्ध आवश्यक कानूनी कार्रवाई करने का निश्चय किया है।

× × × ×

उड़ीसा आयुर्वेदिक औषधि विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति

नयी दिल्ली २९ जून। राष्ट्रपति ने उड़ीसा आयुर्वेदिक औषधि विधेयक १९६० पर स्वीकृति दे दी है। विधेयक में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के विकास और पढ़ाई तथा प्रैक्टिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था की गयी है।

विधेयक के अन्तर्गत एक परिषद और विभाग का संगठन किया जायेगा जिसे प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बनाने, योग्यता निर्धारित करने आदि का अधिकार होगा। विभाग चिकित्सा पद्धति का उच्च स्तर बनाये रखने का कार्य भी करेगा। विधेयक में आयुर्वेदिक चिकित्सकों के रजिस्ट्रेशन के बारे में नियम बनाये गए हैं।

× × × ×

उ. प्र. इण्डियन मैडीसिन बोर्ड की सूचना–

बोर्ड के रजिस्ट्रार ने उन समस्त स्नातकों से अनुरोध किया है कि जिन्होंने सन् १९५७-५८ और ५९ की वार्षिक परीक्षायें उत्तीर्ण करली हैं और अब तक उन्होंने प्रमाण पत्र इस बोर्ड से प्राप्त नहीं किये हैं ऐसे समस्त स्नातकों को ५) शीघ्र ही रजिस्ट्रार उ० प्र० इण्डियन मेडीसिन बोर्ड लखनऊ को मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी अपनी उपाधियों के प्रमाण पत्र तुरन्त मंगा लेने चाहिए

× × × ×

काश्मीर में आयुर्वेदिक कालेज —

पता चला है कि जम्मू-काश्मीर में शीघ्र ही एक आयुर्वेदिक कालेज विशाल पैमाने पर खोला जायेगा। राज्य सरकार ने आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए एक समिति भी बनाई है जो कि इस सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देगी।

× × × ×

बिहार में आयुर्वेद उपसंचालक–

बिहार सरकार पहले आयुर्वेद का संचालक नियुक्त करना चाहती थी किन्तु अब उसने उपसंचालक आयुर्वेद रखने का निश्चय किया है। इसके लिये आवेदन पत्र मांगे गये हैं। अन्तिम तिथि २७ जून थी। शीघ्र ही प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिये आमंत्रित किया जायेगा।

रेलवे में वैद्य हकीमों के प्रमाणपत्र माने जायेंगे—

केन्द्रीय रेलवे विभाग (ईस्टर्न रेलवे कलकत्ता) के जनरल मैनेजर श्री एस. एस. खान ने अपने पत्र नं० ए. ई. १५७१६, ई. आर. जी. १६५, बी. एन. टी. ३६१ ए, दिनांक १६ दिसम्बर सन् ५६ को श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र नेवादा जिला गया को लिखा है कि रजिस्टर्ड वैद्य हकीम अथवा रजिस्टर्ड होम्योपैथिक चिकित्सकों के द्वारा बीमारी के सम्बन्ध में दिये गये मेडिकल तथा फिटनैस सर्टिफिकेट उसी प्रकार माने जावेंगे जिस प्रकार कि एक ऐलोपैथिक डाक्टर के माने जाते हैं।

इस सम्बन्ध में इस कार्यालय द्वारा समस्त सम्बन्धित कार्यालयों को आदेश दिये जा चुके हैं।

× × ×

धारा ५० का रजिस्ट्रेशन—

विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि धारा ५० के अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन अभी चालू नहीं हुआ है किन्तु आवेदन पत्र लिए जा रहे है। फीस ५.०० रु० ली जाती है। आयु का प्रमाणपत्र तथा ५ अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रमाणपत्र जिनमें से एक किसी मजिस्ट्रेट का होना चाहिए आवेदन पत्र के साथ भेजने होते हैं। आवेदक यदि ग्रामवासी है तो गांव के सभापति और एक अदालती सरपंच के प्रमाणपत्र होने चाहिए। कर्माभ्यास १० वर्ष तथा आयु कम से कम ३० वर्ष होनी चाहिए। फार्म अभी बने या छपे नहीं हैं, सामान्य रजिस्ट्रेशन फार्म को भर कर लोग भेज रहे हैं। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए श्री रजिस्ट्रार महोदय भारतीय चिकित्सा परिषद् उत्तर प्रदेश लखनऊ से पत्र लिखें। हमारे से इस विषय में पत्र व्यवहार कृपया नहीं करें।

—सम्पादक।

× × ×

डा० केशरवानी हटे—

पता चला है कि गुलाब कुंवरवां आयुर्वेदिक ट्रस्ट द्वारा संचालित आयुर्वेद महाविद्यालय जामनगर के प्रिन्सीपल आयुर्वेदालंकार डा० डी. एन. केशरवानी की सेवायें समाप्त करदी गयी हैं और अब वे स्वतन्त्र रूप से जामनगर में चिकित्सा व्यवसाय करने लगे हैं।

× × ×

आयुर्वेद की पढ़ाई अनिवार्य की जाये—

[योजना आयोग को सुझाव]

मद्रास १७ जुलाई। आन्ध्र प्रदेश आयुर्वेद बोर्ड के अध्यक्ष एवं सेवाग्राम ग्रामीण विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के डीन आफ फैकल्टी डा० ए० लक्ष्मीपति ने योजना आयोग के आयुर्वेद के पेनल को एक नोटिस प्रेषित कर सुझाव दिया है कि देश के सभी मेडीकल कालेजों में आरम्भ से ही आयुर्वेद को एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाना चाहिये। यदि इसके लिये पढ़ाई का वर्तमान साढ़े चार वर्ष का समय बढ़ाना भी पड़े तो भी कोई बात नहीं।

श्री लक्ष्मीपति ने कहा है कि भारत में डा० या वैद्य का पेशा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वह सब जानना चाहिए जो उसकी मां या दादी स्वास्थ्य एवं रोग, घरेलू औषधि एवं भोजन के नियमों के बारे में जानती हैं।

योजना आयोग के आयुर्वेद पैनल की बैठक १६ एवं २० जुलाई को नयी दिल्ली में होगी। यह पेनल देशी चिकित्सा प्रणाली के विकास, इन प्रणालियों की पढ़ाई एवं व्यवहार का एक स्तर निर्धारित करने, भारतीय औषधियों के लिए एक केन्द्रीय कानूनी परिषद् के गठन तथा स्नातकोत्तर अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना के प्रश्न पर विचार करेगा।

× × ×

आयुर्वेद सम्बन्धी योजना—

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में आयुर्वेद को

प्रमुख स्थान देने के लिए एक विस्तृत योजना बनाकर केन्द्रीय सरकार तथा योजना आयोग को भेजी गई है। इसमें आयुर्वेद पर आधारित ११ योजनाऐं हैं। जिन्हें पांच भागों में विभक्त किया गया है—

(क) आयुर्वेदिक प्रशासकीय योजनाऐं। (ख) आयुर्वेदानुसंधान योजनाऐं (ग) आयुर्वेदिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण विषयक योजनाऐं (घ) ग्राम स्वास्थ्य केन्द्र संगठन और ग्राम्य जनता को चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने की योजनाऐं (ङ) भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ विषयक योजना।

उपर्युक्त योजनाओं का विस्तृत विवरण अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मई अङ्क के साथ प्रकाशित किया जा चुका है। साथ ही "राष्ट्रीय स्वास्थ्य और आयुर्वेद" के नाम से पृथक पुस्तक छपाकर भी भेजी गई है।

जो सज्जन इसे देखना और अपनी सम्मति देना चाहते हों वे कृपया प्रधान मन्त्री अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय महालक्ष्मी मार्केट चांदनी चौक देहली को पत्र लिखकर इसे तुरन्त मंगालें।

× × ×

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणालियां साथ साथ चल सकती हैं—

श्री गुलजारीलाल नन्दा का भाषण—

नई दिल्ली २० जुलाई। आयोजन आयोग की आयुर्वेद समिति की बैठक में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री गुलजारीलाल नन्दा ने कहा कि भारतीय चिकित्सा प्रणाली साथ साथ चल सकती हैं। देशी चिकित्सा प्रणाली को अपने बल से आगे बढ़ने देना चाहिए और एक प्रणाली का दूसरी से किसी प्रकार का द्वेष नहीं होना चाहिए। आयुर्वेद का मूल्यांकन भावनाओं से ऊपर उठकर किया जाना चाहिए। इस प्रणाली का अपना अस्तित्व है और इसका स्वतन्त्र विकास होना चाहिये।

श्री नन्दा ने कहा कि असंख्य औषधियों की पहचान और उनके प्रमाणीकरण की आवश्यकता है। यह काम अभी तक अधूरा है। हमारी भारतीय चिकित्सा पद्धति को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से भी कुछ सीखना चाहिए और आयुर्वेद के ज्ञाताओं को अनुसंधान की ओर बढ़कर कमी को पूरा करना चाहिए। इसके लिये मैं चिकित्सा प्रणाली की केन्द्रीय परिषद् स्थापित करने के विचार से पूर्णतः सहमत हूं।

स्वस्थ बनाना आवश्यक—

इसी बैठक में स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर ने कहा कि मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि आयुर्वेद में कई अमूल्य बातें हैं जिन्हें स्वयं आयुर्वेदज्ञ नहीं जानते। वास्तव में आज इलाज की अपेक्षा लोगों को स्वस्थ बनाना अधिक आवश्यक है ताकि उन्हें रोग सतायें ही नहीं। अच्छे स्वास्थ्य के लिये शुद्ध शरीर, शुद्ध वातावरण, शुद्ध भोजन, शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा की आवश्यकता है।

बैठक में पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में आयुर्वेद की उन्नति और तीसरी योजना में देशी चिकित्सा को स्थान देने पर विचार किया जायेगा। देश के २५ से अधिक वैद्य इस बैठक में भाग ले रहे हैं।

× × ×

विदेशों के लिए अमेरिकी चिकित्सा-

अनुदानों में वृद्धि—

आशा है कि इस वर्ष अमेरिका की सरकार अन्य देशों में चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धान कार्यों की सहायता के लिये दिये जाने वाले अपने अनुदानों में वृद्धि करेगी। अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (नेशनल इन्स्टिट्यूट औव् हेल्थ) द्वारा चिकित्सा-अनुसन्धान विषयक अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के लिए लगभग ८८ लाख डालर व्यय करने की आशा है। इन अनुदानों की सहायता से विदेशों के उन वैज्ञा-

निकों के, जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान में अनुसन्धान के लिए आते हैं, यात्रा और वेतन सम्बन्धी व्यय पूरे किये जाते हैं। विदेशों में अध्ययन के लिये जाने वाले अमेरिकी चिकित्सकों को आर्थिक सहायता दी जाती है और अमेरिका में पढ़ने के लिए आने वाले विदेशी विद्वानों का खर्च पूरा किया जाता है। अनुदानों का उपयोग विदेशों में अमेरिकी युवक वैज्ञानिकों को तथा विदेशी युवक वैज्ञानिकों को अमेरिका में प्रशिक्षित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलनों में भाग लेने वाले अमेरिकी प्रतिनिधियों का व्यय पूरा करने में भी किया जाता है।

दांत के आपरेशन में संगीत द्वारा पीड़ा का निवारण--

मैसाचूसेट्स के एक दन्त-चिकित्सक ने सूचित किया है कि दांत के लगभग ५,००० आपरेशनों में हेडफोन धारण कर रखने वाले रोगियों को संगीत और ध्वनियां सुनाने से उनकी पीड़ा का निवारण हो गया। उसने कहा कि संगीत से रोगी आराम का अनुभव करता है, और ध्वनि से पीड़ा कम हो जाती है।

इस दन्त-चिकित्सक का नाम डा० वैलेस जे० गार्डेनर है। डा० गार्डेनर ने कहा कि यह विधि १,००० ऐसे रोगियों में से ६५ प्रतिशत पर पूर्णतया कारगर साबित हुई, जिन्हें इस प्रकार के आपरेशनों में सामान्यतः नाइट्रस गैस की आवश्यकता होती। २५ प्रतिशत रोगियों के मामले में स्वर के कारण पीड़ा में जो कमी हुई, यह आपरेशन की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा से कम थी। कुछ इनेगिने रोगियों ने ही यह शिकायत की कि तीव्र ध्वनि के कारण उन्हें कष्ट हुआ। रोगी ध्वनि की तीव्रता को स्वयं नियंत्रित कर सकता है। यह ध्वनि प्रपात की ध्वनि जैसी ही होती है।

[अमेरिकी राजदूतावास के पत्रक से उद्धृत]

आयुर्वेद विश्वभारती गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर—

नए सत्र की भर्ती चालू है। निम्नलिखित कक्षाओं में भर्ती होने वाले छात्र आवेदन पत्र शीघ्र प्रिंसीपल के नाम भेजें—

१—एक वर्षीय विशेष योग्यता पाठ्यक्रम-इसमें मान्यता प्राप्त संस्थाओं से उत्तीर्ण वैद्य व सरकार द्वारा पंजीकृत (रजिस्टर्ड) वैद्य प्रवेश पा सकेंगे।

२—त्रिवर्षीय भिषग्वर पाठ्यक्रम-इसमें संस्कृत की प्रवेशिका, प्रथमा, मध्यमा अथवा हाई स्कूल संस्कृत सहित उत्तीर्ण छात्र प्रवेश पा सकेंगे।

३-इसी सत्र से भिषगाचार्य की कक्षायें भी प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया है। शीघ्र ही स्वीकृति प्राप्त होने की पूर्ण आशा है। इसमें भिषग्वर उत्तीर्ण छात्र प्रवेश पा सकेंगे। योग्य एवं निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति भी दी जावेगी। नियमावलियां श्री संचालक, आयुर्वेद विभाग राजस्थान, अजमेर से प्राप्त की जा सकती है।

—वैद्य मणिराम शर्मा [प्रिंसीपल]

× × ×

सच्छात्र परिषद् का वार्षिक चुनाव—

दिनांक १६।७।६०-श्री दि० जैन संस्कृत कालेज जयपुर में स्थित आयुर्वेद विभागीय "सच्छात्र परिषद" के चुनाव सम्पन्न हुए, जिनमें पदाधिकारी निम्न प्रकार से निर्वाचित किये गये-

सभापति-श्री राजकुमार "भारिल्ल"
मन्त्री-श्री सुरेशकुमार "चौधरी"
उपमन्त्री-श्री गजानन्द शर्मा
पत्रिका सम्पादक-श्री जयशंकर शर्मा
" उपसम्पादक-श्री भागचन्द्र जैन
औषधि संग्राहक मंत्री-श्री श्रेयांसकुमार 'बड़कुल'
" सहायक मंत्री-श्री हुकमचन्द्र जैन 'फणीन्द्र'
श्री दुलीचन्द्र जैन।

—मन्त्री

श्वेत एवं पीत पुष्प पलाश वृक्ष—

जिला झाबुआ के खरड़ू ग्राम के पूर्व दिशा में ४ मील पर एक ग्राम है। वहां तलाब के पास पीला पुष्प ढाक है और भी जंगल में कई जगह देखे हैं। मैं खरड़ू डिस्पेन्सरी में था जब मैंने देखा था–पता-स्टेशन मेघनगर से (व्हाया झाबुआ) ८ मील दूर दक्षिण में है।

—डा० रामप्रसाद मित्तल वैद्य विशारद
ढोढर (रतलाम) म. प्र.

× × ×

सफेद पलास का वृक्ष गांव से चार कोस की दूरी पर है। जिस वक्त पलास फूल लगता है उसी वक्त फूल मिलेगा उस गांव का नाम ढ़ोल्ला है। अकलतरा स्टेशन से ६ मील पड़ेगा।

—श्री रामबली तरौद बिलासपुर)

× × ×

बीना जंकशन से कटनी (जबलपुर) रेलवे लाइन पर खुरई स्टेशन से दक्षिण की तरफ राहतगढ़ जाने वाली कच्ची सड़क पर १२ मील दूरी पर बरौदिया नौनागर है। यहीं के समीप के जङ्गल में श्वेत पुष्प वाला पलास है।

—डा० शिवकुमार शर्मा,
बरौदिया नौनागर (सागर) म० प्र०

× × ×

अनुभवी औषधियां बतलायें—

एक मेदस्वी रोगिणी का मोतियाबिन्द होने के कारण एक नेत्र शल्य चिकित्सक द्वारा जनवरी ६० में शल्य कर्म हुआ। शल्य कर्म सफल रहा परन्तु शल्य कर्म के उपरान्त से ही रोगिणी के लिये समस्त शरीर में सुईयां चुभने सा भयानक दर्द विशेषकर दोनों नेत्रों से सुइयां निकलने सी प्रतीत होती हैं और असहनीय दर्द प्रतिक्षण होता रहता है। साथ ही साथ रोगिणी ऐसा भी प्रतीत करती है कि समस्त खोपड़ी चहरा, माथे में, दोनों नेत्रों में चिथरे, धागे भरे हुए हैं और निकल रहे हैं। और ऐसा भी अनुभव करती है कि जो सुइयां निकल रही है वह आगे की तरफ नुकीली और पीछे की तरफ मोटी हैं। साथ ही दस्त भी साफ नहीं होता है। कभी कभी ४-६ दिन शौच क्रिया नहीं करती। अन्य स्वास्थ्य बहुत ही उत्तम है। अनुभवी चिकित्सक, विशेष कर नेत्र शल्य चिकित्सक, कारणादि सहित चिकित्सा धन्वन्तरि में प्रकाशित कराने का कष्ट करेंगे।

—डा० शिवकुमार शर्मा बरौदिया,
नौनागर (सागर)

× × ×

शोक समाचार

आगरा के सुप्रसिद्ध एवं सफल चिकित्सक श्री पं० मनोमोहन शर्मा का स्वर्गवास दिनांक ६।७।६० को होगया। श्री वैद्य जी आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे, साथ ही कुशल एवं सफल चिकित्सक थे। आपके चिकित्सा कौशल की ख्याति दूर-दूर तक थी। आयुर्वेद विज्ञान के अतिरिक्त उनको एलोपैथी चिकित्सा विज्ञान का अच्छा ज्ञान था तथा वे एलोपैथिक चिकित्सकों से डट कर मुकाबला लेते थे। आपके निधन से आयुर्वेद जगत की बड़ी हानि हुई है। भगवान से प्रार्थना है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य दें।

असली शहद

औषधियों के अनुपान रूप में व्यवहार करने के लिए हमने शुद्ध अत्युत्तम असली शहद ग्राहकों को सप्लाई करने का प्रबन्ध कर लिया है। यह निम्न पैकिङ्ग में आप प्राप्त कर सकते हैं --

१ पौण्ड ३.२५ रु.   १० तोला १.०० रु.   ५ तोला ०.६२ रु.

चौड़े मुंह की ढक्कनदार शीशियों में आकर्षक पैकिङ्ग किया जाता है।

शिलाजीत

स्वयं निकला हुआ अत्युत्तम तथा पूर्ण विश्वस्त सूर्यतापी शिलाजीत मंगा कर रोगियों को व्यवहार करावें तथा औषधि निर्माणार्थ काम में लावें।

मूल्य-, सूर्यतापी १ सेर ६५.०० रु.   ५ तोला ४.२५ रु.

अग्नितापी १ सेर ३२.०० रु.   ५ तोला २.२५ रु.

पता-धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

पत्थर के खरल

खरल का साइज	मूल्य कसौटी	मूल्य तामड़ा
३ इञ्ची	१.०० रु०	×
४ इञ्ची	१.२५ ,,	×
५ इञ्ची	२.२५ ,,	८.०० रु०
६ इञ्ची	३.२५ रु०	×
७ इञ्ची	४.५० ,,	१२.०० रु०
८ इञ्ची	६.२५ ,,	×
९ इञ्ची	७.७५ ,,	१८.०० रु०
१० इञ्ची	१०.०० ,,	×
११ इञ्ची	१४.०० ,,	२४.०० रु०
१२ इञ्ची	१८.०० ,,	×
१३ इञ्ची	२४.०० ,,	३२.०० रु०
१४ इञ्ची	२८.०० ,,	×
१५ इची	३५.०० ,,	४५.०० रु०
१६ इञ्ची	४०.०० ,,	×

नोट--तामड़ा पत्थर मजबूत कड़ा पत्थर होता है तथा बहुत कम घिसता है। पिष्टी एवं भस्मों के निर्माण के लिए उपयोगी है। पत्थर के खरल बजनी होते हैं। अतः रेल पार्सल से ही मंगाने में सुविधा और व्यय में बचत होगी। ५-६ इञ्ची तक के खरल पोस्ट से भी भेजे जा सकते हैं। आर्डर देते समय कम से कम २० प्रतिशत पेशगी अवश्य भेजें।

पता-दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

उपकरण-पेटिका

अपने ग्राहकों की सुविधार्थ हमने यह उपकरण पेटिका तैयार करायी हैं। इनमें उपकरण सुरक्षित रखे रहते हैं तथा सुविधा भी रहती है। किसी भी रोगी के निदानार्थ जाते समय उक्त पेटिका उठाइये और चल दीजिये। इसमें निदान के लिए आवश्यक साधारणतः प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के अतिरिक्त चाकू, चीमटी, कैंची भी हैं। इसका नाप ११ इञ्च × ७॥ इञ्च × ३॥ इञ्च बाहर से है। उपकरणों सहित इस पेटिका का वजन १॥ सेर है। लकड़ी की पार्सल पैक कराने पर वज़न लगभग २॥ सेर होगा। डाक खर्च ३.०० रु० के लगभग लगेगा। इस उपकरण पेटिका में निम्न उपकरण हैं—

१–स्टेथिस्कोप (वक्षपरीक्षा यन्त्र) २–थर्मामीटर ३–चीमटी
४–कैंची ५ इंची ५–चाकू ५ इंची सीधा ६–कैथीटर ७–गला देखने की जीवी
८–मोतीझला देखने का शीशा ९–इ. सिरिंज ग्राल ग्लास २ c. c. सूई सहित।

यह उपरोक्त ९ उपकरण उपकरण-पेटिका के साथ ही भेजे जायेंगे। इन उपकरणों के अतिरिक्त आप अन्य छोटा मोटा सामान भी स्टेथिस्कोप रखने के स्थान पर स्टेथिस्कोप के साथ रख सकते हैं।

इस उपकरण-पेटिका का मूल्य २५.०० रु० है लेकिन स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में १५ अगस्त से १५ सितम्बर तक प्राप्त होने वाले आर्डरों पर ५.०० रु० की रियायत दी जायगी तथा रियायती मूल्य २०.०० रु० होगा। पैकिंग तथा पोस्ट व्यय पृथक् लगेगा। आर्डर देने के साथ कम से कम ५.०० रु० एडवांस अवश्य भेजना चाहिए।

※ चिकित्सोपयोगी-उपकरण ※

आंख धोने का ग्लास ०.७५ रु०
गले व जवान देखने की जीवी १.७५ ,,
स्तनों से दूध निकालने का यन्त्र २.२५ ,,
डूस २ पिन्ट का ५.०० ,,
,, ४ पिन्ट का ७.५० ,,
कान धोने की पिचकारी–१ औंस ४.५० ,,
२ औंस ६.० रु०, ४ औंस ७.५० ,,
कान देखने का आला १२.०० ,,
थर्मामीटर जापानी २.५० ,,
इञ्जेक्शन सिरिंज–सम्पूर्ण कांच की–२ c.c. की २.५० रु०, ५ c.c. की ४.०० रु०, २० c.c. की ८.०० रु०, रिकार्ड–२ c.c. की ५.५० रु०
५ c.c. की ८.०० ,,
सूई नग १ ०.३७ ,,
रबड़ के दस्ताने–१ जोडी ३.५० ,,
गरम पानी की थैली ५.०० ,,
बरफ की थैली २.५० ,,

स्टेथिस्कोप–साधारण ८.०० रु०
उत्तम १२.०० रु०, चीन का बना २०.०० ,,
चीनी के गोल खरल–२॥ इञ्ची १.५० ,,
३ इञ्ची २.०० रु०, ४ इञ्ची २.५० रु, ५ इञ्ची ३.५० ,,
सुजाक की पिचकारी–मर्दानी ०.५० ,,
,, ,, जनानी ०.५६ ,,
कैथीटर—०.७५ रु०, जनाना धातु का १.२५ ,,
मोतीझला देखने का शीशा–छोटा २.०० ,,
बीच का २.७५ रु०, बढ़िया बड़ा ४.०० ,,
स्प्रिट लैम्प (कांच की) २.०० ,,
आंख में दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन ०.८७ ,,
कांटे दवा तोलने के (अंग्रेजी बैलेंस की तरह) ८.०० ,,
दांत निकालने का जमूड़ा— ६.०० ,,
ग्लेसरीन की पिचकारी—१ औंस की २.५० ,,
,, ,, २ औंस की ४.०० ,,
नपुंसकता निवारण यंत्र १४.०० ,,

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

भार उठाने एवं चलने से थका हुआ, उपवास में मैथुन, अध्ययन, व्यायाम तथा चिन्ता में निरत एवं शुष्क देह को वमन कराने से वात प्रकोप, रक्तप्रवृत्ति तथा क्षत हो सकते हैं।

गर्भिणी को गर्भपात, सुकुमार को वमन से हृदयघात हो उर्ध्व अथवा अधः रक्त प्रवृत्ति, दुश्छर्दि से दोष उत्क्लेशित हो कर शरीर से बाहर न निकल सकने से विसर्प, स्तम्भ, जड़ता, वैचित्य तथा मृत्यु कर देगा। उर्ध्वरक्तपित्त में अधिक रक्त प्रवृत्ति होगी।

उर्ध्ववात, आस्थापित, अनुवासित को वमन से वायु की ऊपर को अधिक प्रवृत्ति, हृदय रोग में हृद्गति अवरोध (*Heart failure*) उदावर्त में रोगवृद्धि, मूत्राघात, प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदर, अष्ठीला एवं स्वरभेद से वमन में अधिक तीव्र शूल, तिमिर में रोगवृद्धि, शिरःशूल, पार्श्वशूल, कर्णशूल, नेत्रशूल में वमन तीव्रतरशूल करेगा।

अतः उपर्युक्त अवस्थाऐं अवम्य हैं। क्यों का उत्तर इन अवस्थाओं में वमन कराने से उत्पन्न दुष्परिणाम स्वयं बता रहे हैं। हां इतना अवश्य है कि-"इन सब रोगियों में भी यदि विरुद्ध भोजन, अजीर्ण पर भोजन, आम दोष आदि से विष उत्पन्न हो गया हो तो अवश्य वमन करा देना चाहिए-कारण कि विषाक्तता शीघ्र प्राणघातक हो सकती है।"

डाक्टर घोष के अनुसार-

"The emetics are contra-indicated in hernia, aneurism, severe heart diseases, prolapse of the rectum and uterous, peritoneal and intestinal inflammation and in cases of threatened abortion or where there is tendency to haemorrhage or atheroma of the vessels and in debiliated conditions for fear of collapse।"

वमन योग्य-

"शेषास्तु वाम्याः" कह कर उपर्युक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त अवस्थाओं में आचार्य ने वमन कराने को कहा है। महारोगाध्याय च० सू० अ० २० में "वमनं तु सर्वेषक्रमेभ्यःश्लेष्माणि प्रधानतं मन्यन्ते भिषजः।" लिख कर वमन को श्लेष्माप्रधान अवस्थाओं के लिए आवश्यक बताया है। कफ के रोगों में वमन ही श्रेष्ठ उपक्रम समझना चाहिए। ऐसी मुख्य मुख्य वमन योग्य अवस्थाऐं बताते हुए सिद्धिस्थान के अध्याय २ में चरक ने लिखा है-"प्रतिश्याय, कुष्ठ, नवज्वर, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, प्रमेह, मन्दाग्नि, विरुद्ध भोजन, अजीर्ण में भोजन, विशूचिका, अलसक, विषपीत, गरपीत, सर्पदष्ट, दग्धविद्ध, अधोगरक्तपित्त, प्रसेक, जी मिचलाना, अरुचि, अपचन, अपची, अपस्मार, उन्माद, अतिसार, शोष, पाण्डु, मुखपाक और दुष्ट स्तन्य अवस्थाओं में वमन कराना चाहिए।

इन सभी अवस्थाओं में दो चीजें ही मुख्यतः स्पष्ट हो रही हैं-(१) कफाधिक्य (२) विषाक्तता। अतः पूर्वकथित कफजन्य अवस्थाओं में तथा विषाक्तता में वमन प्रयोजनीय है ऐसा समझना चाहिए।

वमन के समय-

जिसे वामक कल्प पिला दिया हो उसको वमन के समय विशेष अवस्था (*Position*) में बैठना बताया है। कहा है कि—

"वमन के समय स्वल्प परिश्रम से ही बर्हिमुख होते वेगों को प्रेरित करते हुए गर्दन तथा शरीर के ऊपर के भाग को झुका कर वेग के साथ वमन करनी चाहिए। उस मनुष्य को वमन करते हुए न बहुत झुक कर, न बहुत ऊंचा और न ही गर्दन को एक पार्श्व की ओर ही घुमाना चाहिए। बहुत ही ऊंचा अर्थात् सीधा बैठ कर वमन करने से पीठ व हृदय में पीड़ा होती है, अधिक झुक कर वमन करने से शिर और कोष्ठ में पीड़ा होती है, पार्श्व पर गर्दन झुका कर बैठने से पार्श्व, कोष्ठ, हृदय तथा जत्रु-

सन्धियों से ऊपर के भाग में पीड़ा होती है। अतः सुखकर अवस्था में बैठ कर ही वमन करे। यदि वेगों के आने में कुछ रुकावट अनुभव हो तो कमल नाल अथवा नखादि रहित साफ तर्जनी व मध्यमा उंगली को कंठ में स्पर्श कर वमन करना चाहिए।"

वमन के वेग और निसृत दोष—

इस प्रकार वमन करते रोगी को विज्ञ वैद्य देखता रहे और वमन के वेगों का ज्ञान करे। चरक सिद्धि-स्थान अ० में–"जघन्य मध्य प्रवरेतु, वेगाश्चत्वार अष्टा वमने षड्ष्ठौ। कहकर अवर वमन के चार वेग, मध्यम के छः और प्रवर के आठ वेग बताए हैं।

इन वेगों के साथ ही साथ निकले दोष के प्रमाण को भी देखें। सुश्रुतानुसार हीन अथवा अवर वमन का प्रमाण आधा प्रस्थ, मध्यम का एक प्रस्थ, तथा प्रवर का दो प्रस्थ होगा।

"तथाविधे च वमने क्रमात्तदर्धम"

कह कर वमन का प्रमाण विरेचन से आधा बताया है। इन प्रमाणों के लिए हमें १३॥ पल का एक प्रस्थ मानना होगा जैसा कि लिखा भी है—

"वमनं च विरेके च तथा शोणित मोक्षणे।
सार्धत्रियोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

यह सभी वेग और निसृत दोष के प्रमाण सम्यक् योग में होंगे। इन सब का ज्ञान करते हुए चिकित्सक वेगों को तथा दोष प्रमाण को देखें।

वमन द्वारा दोष निर्हरण—

वमन द्वारा अपक दोष का ही निर्हरण होता है। वामक कल्प लेते ही तत्काल वमन हो जाने का यही कारण है कि वह कल्प जाते ही दोषों को बिना परिवर्तन करे अपकावस्था में ही निकाल देता है। इसी से यदि कल्प देने के कुछ देर पश्चात वमन न हो तो पुनः और कल्प पिला देना चाहिये। इस दोष निर्हरण को चरक ने कल्प स्थान अ० १२ में इस प्रकार लिखा है—

"अपक्वं वमनं दोषं पच्यमानं विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनख्यातः पांक न प्रतिपालयेत"॥

अर्थात्—वमन औषधि अपक ही दोष को निकालती है और विरेचन पच्यमानावस्था में। अतः वमनौषधि के पाक की प्रतीक्षा न करें। यदि थोड़े समय बाद तक वमन न आवे तो शीघ्र ही पुनः औषधि पिलावें।

वमन का सम्यक योग—

वमनौषधि कब बन्द कर दी जाए या यों कहें कि कृत वमन के क्या लक्षण होते हैं इसके लिए चरक सूत्र० अ० १५ में बताया है कि –"वेगों की प्रवृत्ति होना, अत्यधिक कष्ट न होना, शोधन, पश्चात् स्वयं ही वेगों का रुक जाना तथा दोषों का क्रम से निकलना–सम्यक् योग में होता है।"

दोषों के क्रम के विषय में सिद्धिस्थान के अ० १ में चरक ने लिखा है—

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
पस्यैति सम्यक् वामितः स इष्टः।

कह कर सम्यक् योग में क्रमशः कफ, पित्त और वायु का निकलना बताया है। इसे हम पित्तान्त वमन ही कहेंगे क्योंकि पित्त के निकल जाने के बाद वायु ही उर्ध्व मार्ग में आवेगी। इसी से वमन के अन्त में वायु आना लिखा है।

चरक सिद्धिस्थान में हृदय, पार्श्व, मस्तिष्क और इन्द्रियों के मार्गों की शुद्धि तथा देह की लघुता पूर्व वर्णित लक्षणों के अतिरिक्त सम्यक् योगों के बताए हैं। सम्यक् योग ही वास्तव में फलदायक वमन का स्वरूप है।

वमन का अयोग और अतियोग-

"सर्वथा वमन का न होना अथवा अल्प मात्रा में होना, वमनार्थ पिलाई गई औषधि मात्रा का ही वमन द्वारा निकलना तथा वेगों का रुक रुक कर प्रवृत होना, अयोग, तथा झागयुक्त-चन्द्रिकाओं सहित रक्त का वमन में आना जो मयूरपुच्छवत् हों अति-योग होता है।

सिद्धिस्थान प्रथम अध्याय में चरक ने बताया है कि "अकृत वमन (अयोग) में स्फोट, कोठ, कण्डू की उत्पत्ति, हृदय-स्रोत तथा इन्द्रियों का शुद्ध न होना और देह का भारीपन होता है। अतियोग में तृषा, मोह, मूर्च्छा, वायु प्रकोप, निद्रानाश तथा निर्बलता आदि लक्षण होते हैं।

वमन के अयोग और अतियोग के चरकोक्त लक्षण हमने बताये। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि अयोग और अतियोग से हमारा क्या अभिप्राय है। एतदर्थ हम चरक सिद्धिस्थान अ. ६ में दिया गया एक सूत्र ही उद्धृत करना चाहेंगे जो इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर देगा। लिखा है—

"योग: सम्यक् प्रवृतिस्यादतियोगोऽतिवर्तनम् ।
अयोग: प्रतिलोमेन न च अल्पं वा प्रवर्तनम् ॥"

इस प्रकार जिसे अयोग अथवा अतियोग हुआ हो उसे विकृतावस्था समझनी चाहिये और क्योंकि विकृतावस्था को समावस्था में लाना आवश्यक है, अतः इसके लिये चिकित्सा करनी पड़ेगी।

अयोग और अतियोग की चिकित्सा —

अयोग हो गया हो तो हमें करना यही होगा कि किसी प्रकार वमन सम्यक्तम हो जाएें। एतदर्थ लिखा है—

'पीतोषधो न शुद्धश्चे ज्जीर्णे तस्मिन्पुनः पिवेत् ।'

अर्थात्—पी गई औषधि से संशोधन न हुआ हो तो पी गई औषधि के जीर्ण हो जाने पर पुनः वामक औषधि पीवें। इसी सूत्र के दूसरे चरण में अजीर्ण की अवस्था में पुनः औषधि पान का निषेध किया है क्योंकि अजीर्ण में पी गई वामक औषधि अतियोग उत्पन्न कर देगी।

यदि अयोगावस्था में ऐसा प्रतीत हो कि दोष अल्प ही शेष बचे हैं तो उस रोगी को लंघन पाचन कराना चाहिए। अल्प मात्रा में बचे दोष लंघन से नष्ट हो जाते हैं और वह मनुष्य पूर्ण शुद्ध माना जा सकता है।

अतियोग में जो क्रिया हो रही है उसे वहीं रोकने की चेष्टा करनी होगी। जो वामक कल्प दिया गया है उसे बाहर निकालना ही आवश्यक है। यदि उसे वमन द्वारा निकालने का प्रयास किया तो और भी अधिक वमन होगी जो हानिकारक रहेगा अतः मृदु विरेचन देना होगा जिस से वह विपरीत मार्ग द्वारा निकल जाए। अब शीतल परिषेचन तथा अवगाहन करना होगा। कषाय मधुर शीतल द्रव्यों द्वारा स्तम्भन करना अभीष्ट होगा। आचार्य ने ज्वरनाशक, दाहनाशक तथा रक्त-पित्त-वत् अन्नपान का प्रयोग करना बताया है।

वमन के पश्चात् —

जिसको सम्यक् वमन हो गया हो उस पुरुष के हाथ पैर धुलाकर निवात-गृह में बिठाना चाहिए। तदनन्तर उसी दिन सायंकाल अथवा अगले दिन उस संशोध्य पुरुष को सुखोष्ण जल से परिषेचन तथा स्नान कराना चाहिए। अब पेयादि क्रम की शास्त्राज्ञा है। चरक में सिद्धिस्थान अ. ६ में लिखा है—

"संशोधनाभ्यं शुद्धस्य हृतदोषस्य देहिनः ।
यात्याग्निर्मन्दतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ॥"

अर्थात्- संशोधन (वमन विरेचन) के द्वारा शोधन और दोष निर्हरण होने के बाद मनुष्य की अग्नि मन्द हो जाती है, अतः पेयादि क्रम कराना चाहिए।

पेयादिक्रम का विधान चरक सिद्धिस्थान अ० १ में बताया है। लिखा है—

'पेयां विलेपीमकृतं कृतं च,
यूषं रसं त्रिर्द्विरथैकशश्च ।
क्रमेण सेवेत विशुद्ध कायः
प्रधानमध्यावर शुद्धि शुद्धः ॥

अर्थात्—शोधन के पश्चात् शुद्ध देह पुरुष पूर्व पेया, तदन्तर क्रमशः विलेपी, कृताकृत यूष, कृताकृत मांसरस तीन अन्नकाल, दो अन्नकाल

तथा एक अन्नकाल के क्रम से प्रधान, मध्यम तथा हीन शुद्धि में लेवें।

जैसा कि हम पूर्व ही लिख आये हैं कि आठ वेग वाली वमन प्रधान शोधन, छः वेग वाली मध्यम और चार वेग वाली हीन होती है इनमें क्रमशः तीन दो और एक अन्नकाल तक विलेपी आदि का क्रमशः प्रयोग कराना चाहिए।

इसे समझने के लिये देखना इस प्रकार होगा कि प्रवर शोधन में प्रथम तीन अन्नकाल तक पेया, द्वितीय तीन अन्नकाल तक विलेपी, तृतीय तीन अन्नकाल तक कृताकृत यूष और चौथे तीन अन्नकाल तक कृताकृत मांस रस का प्रयोग करें। इस प्रकार प्रवर शोधन के पश्चात् १२ अन्नकाल तक यह पेयादि संसर्जन क्रम होगा। इसी प्रकार मध्यम शोधन में दो-दो अन्नकाल तक होने से आठ अन्नकाल में तथा अवर में चार अन्नकाल में ही यह संसर्जन क्रम समाप्त हो जायगा।

यह पेयादि क्रम कराने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि आरम्भ में तरल भोजन लेने से उस मनुष्य को वह ग्राह्य होगा और शनैः शनैः उसकी अग्नि गुरुतर अन्नपान के लिये भी बढ़ जायगी। चरक में लिखा है कि—

'यथाणुराग्निस्तृणगोमयाद्यैः
सन्धुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण।
महान् स्थिरः सर्व सहस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्नि ॥'

अर्थात्—जिस प्रकार स्वल्प सी अग्नि तिनके आदि के साथ प्रज्वलित होती हुई क्रमशः महान्, स्थिर और सब कुछ पका देने वाली होती है, उसी प्रकार संशोधन से शुद्ध पुरुष की अन्तराग्नि पेयादि के क्रमशः प्रयोग से महान् स्थिर और सब कुछ पचा देने वाली हो जाती है।

प्रत्येक अवस्था में ही पेयादि क्रम कराया जाता हो, ऐसी बात नहीं। यदि कफ और पित्त का अल्प ही शोधन हुआ हो तथा रोगी मद्यपायी तथा वातपित्त प्रकृति वाला हो, उस अवस्था में तर्पण क्रम कराना होगा। इसमें पेया के स्थान पर तर्पण का प्रयोग कराया जाता है, शेष विधान पेयादि के समान ही समझना चाहिए। अष्टांग संग्रह सू० अ० २७ में लिखा भी है—

'सुताल्प पित्तश्लेष्माणां मद्यपं वात पैत्तिकं।
पेयां न पाययेत्तेषां तर्पणादि क्रमो हितः ॥'

इस संसर्जन के पश्चात् आचार्य ने रसाभ्यास क्रम बताया है। रसाभ्यास क्रम बताते हुए चरक सिद्धि स्थान अ० १२ में लिखा है—

'स्निग्धाम्ल स्वादु हृद्यानि-
ततोऽम्लं लवणो रसौ।
स्वादु तिक्तो रसो भूयः
कषाय कटुको ततः ॥'

अर्थात्—पूर्व स्निग्ध अम्ल और मधुर रस जो हृदय को प्रिय लगें वे देने चाहिए। इसके बाद अम्ल लवण फिर मधुर तिक्त और अन्त में कषाय कटु रस का प्रयोग कराना चाहिए।

कई आचार्यों का मत है कि यह रसाभ्यास क्रम पेयादि क्रम के साथ साथ ही चलता रहे, जो पेयादि बनाकर दी जाए उनकी भावना उपर्युक्त रसाभ्यास क्रम से दी जाए। कुछ कहते हैं कि पेयादि क्रम के पश्चात् ही रसाभ्यास क्रम कराना चाहिए। यह सभी कराने के पश्चात् रोगी को स्वाभाविक आहार विहार पर ले आना होगा।

वर्जनीय—

जिसे वमन कराया गया है उसे आचार्य ने कुछ बातें वर्जनीय बताई हैं। यद्यपि चरक सूत्र स्थान अध्याय १५ में बहुत वर्जनीय कहे हैं तो भी उन सबका समावेश चरक सिद्धि स्थान १२ में दिये 'आठ महादोषकर त्याज्य' में हो जाता है। वे आठ महादोषकर त्याज्य निम्न हैं—

'उच्चैर्भाष्यं रथक्षोभमतिचङ्क्रमणासने।
अजीर्णाहित भोज्ये च दिवास्वप्नं च मैथुनम् ॥'

अर्थात्—१. ऊँचा बोलना, २. रथक्षोभ (क्षोभक सवारी), ३. बहुत चलना, ४. बहुत बैठना, ५. अजीर्ण में भोजन, ६. अहित भोजन, ७. दिवा-

स्वप्न, ८. मैथुन। यदि इनको न त्याग दिया गया तो यह अनेक रोग कर हो सकते हैं।

विरेचन में भी पश्चात् क्रम तथा वर्जनीय ठीक ऊपर के वर्णन के अनुसार ही समझने चाहिए।

व्यापत्तियां—

वमन और विरेचन के अयोग और अतियोग से दस व्यापत्तियां होती हैं। चरक ने इनकी उत्पत्ति का कारण परिचारक, भैषज्य, वैद्य तथा रोगी की विगुणता बताया है। क्योंकि यह ही चिकित्सा के चार पाद हैं, अतः इनकी विगुणता अवश्य व्यापत्कर होगी। लिखा है—

'भिषक् द्रव्यं उपस्थाता रोगी पाद चतुष्टयं।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥'

अतः जब भी यह चतुष्पाद गुणवत् नहीं होंगे तो विकार शान्त न करते हुए व्यापत्ति उत्पादक ही ही सिद्ध होंगे।

चरक सिद्धि स्थान अ० ६ में लिखा है—

आध्मानंपरिकर्तिश्च स्रावो हृदगात्रयार्ग्रहः।
जीवादानं सविभ्रंशः स्तम्भ सोपद्रवो क्लमः ॥
अयोगातियोगाश्च दशैता व्यापदो मताः।
प्रेष्य भैषज्य वैद्यानां वैगुण्यादातुरस्य च ॥

अर्थात् (१) आध्मान, (२) परिकर्तिका, (३) स्राव, (४) हृद्ग्रह, (५) अगंग्रह, (६) जीवादान, (७) विभ्रंश, (८) स्तम्भ, (९) उपद्रव, (१०) क्लम, ये दस व्यापद् प्रेष्य, भैषज्य, वैद्य तथा रोगी की अप्रशस्तता के कारण अयोग तथा अतियोग से उत्पन्न होती हैं।

सुश्रुत ने दस के स्थान पर १५ व्यापद् मानी हैं। लिखा है—

'वैद्यातुरनिमित्तं वमनं विरेचनं च पञ्चदशधा व्यापद्यते तत्र वमनस्याधोगतिरूर्ध्वं विरेचनस्येति पृथक ? सामान्यमुभयोः -स्रावशेषौषधत्वमं-जीर्णौषधत्वं-हीनदोषाय हृत्त्वं वातशूलं अयोगः अतियोगः जीवादानं आध्मान परिकर्तिका परिस्राव प्रवाहिकाहृदयोपसरणं विबन्ध इति।'

इनको केवल ग्रन्थकर्ता का भिन्न दृष्टिकोण ही समझना चाहिए। सामन्यतः वही चरकोक्त व्यापत्तियां यहां भी कही हैं। इसी प्रकार अष्टांग संग्रह में इन की संख्या बारह बतायी है। हम यहां चरकोक्त १० व्यापत्तियों के कारण लक्षण तथा चिकित्सा लिखेंगे।

१—आध्मान—

बहुत दोषयुक्त, रूक्ष, मन्दाग्नि, उदावर्त पीड़ित मनुष्य को दी गई अल्पौषधि दोषों को बहिर्गमनोन्मुख करके मार्गों को रोक कर नाभि को अत्यन्त फुला देती है। इससे पीठ-पार्श्व तथा सिर में वेदना होती है। श्वासावरोध-पुरीष-मूत्र तथा अपान वायु का अवरोध हो जाता है।

ऐसे आध्मान पीड़ित व्यक्ति को अभ्यंग, स्वेद फलवर्ति, निरूह तथा अनुवासन का प्रयोग कराना चाहिए। उदावर्त नाशक कर्म प्रशस्त समझने चाहिए।

२—परिकर्तिका—

वमन तथा विरेचनोत्पन्न परिकर्तिका का स्थान भिन्न २ है। विरेचन के अतियोग से स्निग्ध, गुरुकोष्ठी, सामदोषयुक्त होने से अथवा इनके विपरीत शुष्क देही, मृदुकोष्ठी तथा निर्बल व्यक्ति द्वारा पी गई बलवान विरेचनौषध गुदा में जा कर साम दोष को निकाल कर आंव तथा रक्तयुक्त तीव्र कतर्नवत् पीड़ा उत्पन्न करती है, जो परिकर्तिका (*colic*) कही जाती है।

इस प्रकार उपर्युक्त अवस्थाओं में वमनौषधि के अतियोग से जब श्लेष्मिक कला से रक्त तथा साम दोष निकल जाते हैं और कण्ठ में तीव्र शूल (कंठ क्षणन) होता है, वह वमन के कारण उत्पन्न परिकर्तिका समझनी चाहिए।

इसकी चिकित्सा करते समय ध्यान रहे कि यदि साम दोष की अवस्था में परिकर्तन होता हो तो लंघन-पाचन, रूक्ष-उष्ण एवं लघु भोजन देना चाहिए। विरेचन के अतियोग से उत्पन्न परिकर्तिका में पिच्छा बस्ति तथा स्नेह बस्ति देनी चाहिए।

३-परिस्राव-

बहुदोषयुक्तपुरुष को अल्प मात्रा में ही दी गई औषधि दोष का उत्क्लेश करके उसे थोड़ा थोड़ा स्रुत करती है। इससे कण्डु, शोथ, कुष्ठ, गुरुता, अग्निनाश, स्तिमिता, अरुचि तथा पाण्डु हो जाता है।

इनमें पाचनौषधि देनी चाहिए। या वमनोत्पन्न परिस्राव में वमन तथा विरेचनोत्पन्न में विरेचन करा के दीपन-पाचनीय चूर्ण तथा आसव अरिष्टों का प्रयोग करना चाहिए।

४-हृद्ग्रह-

औषध प्रयोग के पश्चात् वेगावरोध से वायु आदि दोष कुपित हो हृद्ग्रह का कारण बनते हैं। इससे हिक्का, कास, पार्श्वशूल, लालास्राव, नेत्रविभ्रम, दन्तकम्प तथा मूर्च्छा हो जाती है।

इस मूर्च्छा से मृत्यु हो गई है ऐसे भ्रम में न पड़ते हुए चिकित्सक तत्काल ही वमन करावे। पित्त से उत्पन्न मूर्च्छा में मधुर द्रव्यों से तथा कफ के कारण उदित में कटु द्रव्यों द्वारा वामक कल्प बनावें। यदि वामक कल्प देने पर भी मूर्च्छा के कारण वमन न आवे तो कंठ में उंगली आदि डालनी चाहिए। वमन के पश्चात् पाचन कराना हितकर होता है।

५-अङ्ग ग्रह-

औषधि पीने के बाद वेगों को रोकने से कुपित हुई वायु अथवा कफावरुद्ध वायु या अति विशुद्ध पुरुष में कुपित वायु जड़ता, कम्पन, निस्तोद, शिथिलता, उद्वेष्ठता, तथा मन्थन के सदृश पीड़ा उत्पन्न करती है। ऐसी अवस्था में स्नेहस्वेद आदि सम्पूर्ण वातघ्न कर्म करने चाहिए।

६-जीवादान—

मृदुकोष्ठ अथवा अल्प दोषयुक्त पुरुष को यदि अति तीक्ष्ण औषधि का प्रयोग करा दिया जाये तो वह दोषों को हरने के पश्चात् वमनौषधि से मुख द्वारा और विरेचनौषधि में गुदा द्वारा रक्त को मथने के पश्चात् जीवरक्त को निकालती हैं। इसमें तृषा, मूर्च्छा तथा मद के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

जीवादान में पित्त नाशक तथा अतियोग की पूर्वोक्त 'परिषेकावगाह' आदि चिकित्सा करनी चाहिए। गौ, भैंस, हिरण तथा बकरे का ताजा रक्त जीवनदाता होता है, क्योंकि यह तत्काल ही मनुष्य के लिये भी जीव रक्त बन जाता है। यदि मुख द्वारा रक्तपान न कर सकें तो इस रक्त में दर्भ-मूल को डाल कर मथलें और इसकी वस्ति दें। पिच्छा वस्ति भी लाभ करती है।

७-विभ्रंश—

जब औषधि दोषों को उत्क्लेशित कर बाहर न निकाल स्वयं बाहर निकल आती है तो प्रकुपित हुए दोष परिस्राववत् कण्डु आदि लक्षण उत्पन्न करते हैं। जो परिभाषिक विभ्रंश कहलाता है।

इसमें अयोग की चिकित्सावत् चिकित्सा करनी चाहिए।

८-स्तम्भ —

स्निग्ध पुरुष द्वारा स्नेहयुक्त पी गई औषधि मृदुता के कारण दोषावृत हो जाती है। और इसी कारण वह दोषों को बाहर नहीं निकालती अपितु अपने स्थान से च्युत हुए दोषों को रोकती है। इस से वातावरोध, गुदस्तम्भ और शूल के साथ थोड़ा थोड़ा क्षरण होता है।

इसमें लंघन और पाचन कराने के पश्चात तीक्ष्ण बस्ति या तीक्ष्ण विरेचन देने को कहा है।

९-उपद्रव—

रूक्ष तथा निर्बल पुरुष रूक्ष ही औषधि पीवे तो उसे वातज उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें स्नेह-स्वेद आदि वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

१०-क्लम-

स्निग्ध और मृदुकोष्ठ पुरुष में प्रयुक्त मृदु औषधि कफ और पित्त का उत्क्लेश कर वायु को रोक देती है। इससे तन्द्रा, गौरवयुक्त क्लम, दुर्बलता तथा देह की शिथिलता आदि लक्षण होते हैं।

इसमें शीघ्र ही शोधन कर लंघन पाचन कराना चाहिए।

इस प्रकार यह दस व्यापत्तियां चरक ने (वमन-विरेचन की) बताई हैं। इनमें आध्मान, परिस्राव, हृद्ग्रह, अंगग्रह, विभ्रंश, उपद्रव और क्लम अयोगोत्पन्न, तथा परिकर्तिका, जीवादान और स्तम्भ अतियोग से उत्पन्न होती हैं। इनका ज्ञान रखना तथा जिन कारणों से यह उत्पन्न होती हैं, उनका परित्याग विज्ञ चिकित्सक के लिये आवश्यक है।

विरेचन

आयुर्वेद में सदैव ही एक विशेष बात देखने को मिलती है कि जो कुछ भी कहा गया है उसके कहने का कारण अवश्य बताया है और यही कारण है कि आर्ष ग्रन्थों में प्रत्येक विषय का युक्तियुक्त वर्णन मिलता है। यहां पंचकर्म को ही लीजिए आरम्भ में वमन क्यों कराना चाहिए और वमन के पश्चात् विरेचन क्यों? इसे कितने वैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया है।

कहा है कि बिना वमन कराए ही यदि विरेचन करा दिया गया हो तो शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जायेंगे। शार्ङ्गधर में लिखा है--

"स्निग्ध स्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात्सम्यक् विरेचनम्।
अवांतस्यत्वधः स्रस्तो ग्रहणी धारयेत् कफः॥
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याद् जनयेद्वा प्रवाहिका।"

अतः आवश्यक हो जाता है कि इन विकारों से बचने के लिए वमन के पश्चात ही विरेचन कराए। और भी—

"स्निग्ध स्विन्नाय वान्ताय दातव्यं तु विरेचनं।
अन्यथा योजित ह्येतद् ग्रहणीगद् कृन्मतम्॥

विरेचन को वमन के पश्चात् प्रयोग न करने से ग्रहणी आदि उपद्रव होते हैं। आइए अब इनको शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से देखें।

आमाशय कफ का स्थान है। जिस रोगी को वमन नहीं कराया है उस रोगी के आमाशय में कफ सञ्चित होगा। अब जो विरेचन कल्प दिया जायगा वह आमाशय में पहुँच कर ही आगे जा सकेगा। आमाशय में वह कफ इस कल्प को आगे जाने से रोकेगा इसका विरोध करेगा। यदि कफ शक्तिशाली रहा और विरेचन कल्प हलका हुआ तो वह औषधि कफ के साथ मिल वमन के द्वारा बाहर निकल जायेगी अथवा दूसरे यह हो सकता है कि वह कल्प वमित भी न हो और विरेचन भी न कर सके। इस अवस्था में पेट में उथल पुथल मच जाएगी और वह मनुष्य मछली की तरह तड़फेगा। तीसरे यदि वह विरेचनीय कल्प तीक्ष्ण हुआ तो स्वयं आगे जाता हुआ आमाशय स्थित कफ को भी साथ ले जाएगा। अब वह कफ लध्वान्त्र में जाते समय ग्रहणी को आच्छादित करता है और ऊपर शार्ङ्गधरोक्त मन्दाग्नि, गुरुता, प्रवाहिका आदि लक्षण उत्पन्न कर ऐंठन से विरेचन द्वारा निकलता हुआ उदरशूल उत्पन्न करेगा। इन सभी विकारों से बचने के लिये आयुर्वेद वमन के पश्चात् ही विरेचनाज्ञा देता है।

आजकल विरेचन का कुछ अधिक बोल बाला है, कब्ज रहता है अतः दस्तावर दवा ले ली। इस तरह बिना इसके रहस्य को समझे विरेचन लेकर बहुत से मनुष्य मन्दाग्नि आदि लक्षणों से पीडित मिलेंगे। कहा यह जाता है कि यह बदपरहेजी से हुआ है परन्तु वास्तविकता यह है कि वह ऊपर कहे अनुसार विरेचन से पूर्व कफ को हटाने का प्रबन्ध नहीं करते। यूनानी में पहले मुंजिस देते हैं। परन्तु वह इतनी स्वास्थ्यप्रद विधि नहीं, हां फिर भी अनायास

विरेचन लेने से पूर्व मुंजिस लेना भी अच्छा है, तो भी आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त के अनुसार वमन के पश्चात् ही विरेचन फलप्रद कहा जाएगा।

विरेचन से अभिप्राय–

जैसा कि वमन प्रकरण में लिख आये हैं कि उर्ध्व मार्ग से दोष निर्हरण वमन और अधोमार्ग से दोष निर्हरण विरेचन कहलाता है, यहां अधःमार्ग का अर्थ गुदा से ही है।

विरेचन से पूर्व—

विरेचन कराने के लिए भी गृह निर्माण करना होगा और वह ठीक उसी प्रकार होगा जैसा कि वमन के प्रकरण में बता आए हैं। उपकरण भी उसी तरह होंगे। चरक सू० अ० १५ में इसका सुन्दर विवेचन किया है।

जिस पुरुष को विरेचन कराना हो उसे पूर्व वमन कराया जा चुका हो–ऐसा अभी २ पीछे लिख आए हैं। इस वमन कराए गए पुरुष को संसर्जन क्रम के पश्चात् स्वेदन कराया जाए और फिर विरेचन कल्प का प्रयोग कराएं। लिखा है –

विलेपीः क्रमागतंचैवं, स्नेह स्वेदाम्यमुपद्य विरेचयेत्।

अर्थात्–वमन के पश्चात् विलेपी आदि का क्रमशः प्रयोग करने के बाद पुनः स्नेह स्वेद करावें और तब विरेचन देवें।

अतः विरेचन से पूर्व वमनोक्त गृहनिमार्ण एवं उपकरण सेवक आदि का पूर्व प्रबन्ध करना होगा तथा स्नेहन–स्वेदन कराने के पश्चात् विरेचन कराना होगा।

अविरेच्य—

कुछ अवस्थाओं में विरेचन नहीं कराना चाहिए क्योंकि उन अवस्थाओं में कराया गया विरेचन लाभ पहुंचाने के स्थान पर शरीर में विकृति उत्पन्न करने वाला ही होता है। इनमें दिया गया विरेचन दुष्परिणाम उत्पन्न करता है। नीचे वे अविरेच्य अवस्थाएें तथा प्रत्येक के साथ, तद् अवस्था में विरेचन कराने से उत्पन्न दुष्परिणाम लिखने जा रहे हैं।

चरक सिद्धि स्थान अ० २ में लिखा है कि—

(१) सुभग –जिनका लालन पालन बहुत सुख (*Luxory*) से हुआ हो, को विरेचन देने से हृदयाघात तथा रक्तप्रवृति आदि उपद्रव हो जाते हैं।

(२) क्षतगुद—में विरेचन से घाव में प्राणावरोधक तीव्र यन्त्रणा होने से।

(३) मुक्तनाल—बलियों की असमर्थता में तथा

(४) अधोग रक्तपित्त—में अति प्रवृति के कारण मृत्यु होने से।

(५) लंघन, निरूह पश्चात् एवं दुर्बल इन्द्रिय में औषधि के बल को न सह सकने से।

(६) काम, शोक, क्रोध आदि में व्यग्र को अयोग होने से।

(७) अजीर्ण में–आमदोषोत्पत्ति से जिससे विशूचिका अलसक आदि होने से।

(८) नव ज्वर में–आम प्रकोप (दोष), वायु प्रकोप होने से।

(९) मदात्यय में–वायु प्रकोप के कारण।

(१०) आध्मान–में तीव्रतर आनाह तथा मृत्यु होने से।

(११) कोष्ठ के शल्यार्दित तथा अभिहत होने में–वायु (क्षताश्रित) के प्रकोप होने से।

(१२) अतिस्निग्ध में–विरेचन से अगंग्रह होने से।

(१३) क्रूर कोष्ठ में–विरेचन से प्रवृद्ध दोषों से हृच्छूल, पर्वभेद, आनाह, अगंमर्द, मूर्च्छा एवं क्लम होने से।

(१४) क्षीण–अतिस्थूल, अतिकृश, वृद्ध, दुर्बल, बालक, श्रान्त, क्षुधित, तृषित में विरेचन योग को न सह सकने से बलनाश एवं मृत्यु होने से।

(१५) गर्भिणी–में गर्भपात हो जाने से विरेचन देने का विरोध किया है।

उपर्युक्त पन्द्रह मुख्य अवस्थाएें विरेचन के अयोग्य बताई है क्योंकि इनमें विरेचन से ऊपर लिखे दुष्परिणाम हो जाते हैं। इन दुष्परिणामों से बचने के लिए ही आचार्य ने ये अविरेच्य कही हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

वर्ष ३४ अङ्क ८ अगस्त १९६०

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराए गए हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है. कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १ – अस्थि-पञ्जर–इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया गया है। हाथ की, अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आसकती हैं। मूल्य ५.०० रु०

नं० २–रक्त परिभ्रमण—इस चित्र में शुद्ध अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई हैं। मूल्य ५.०० रु०

नं० ३–वातनाड़ी संस्थान—इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क के सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५.०० रु०

नं० ४–नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १–दक्षिण चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २–पटलों और कोष्ठों को देखने के लिये चक्षु का क्षितिजकाट ३–चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४–नेत्रचालिनी पेशियां ५–दृष्टिभेद (दर्शन-सामर्थ्य)। ६–साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५.०० रु०

नोट १– चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६.०० रु०

नोट २—सादा–बिना कपड़ा–लकड़ी लगे चित्र, शीशा में मढ़ने के लिए १ चित्र ४.०० रु०, चारों मंगाने पर १२.०० रु०

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक–वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
सम्पादक–वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc. दाऊदयाल गर्ग A.,M. B. S.

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषाङ्क

प्रसूति विज्ञानाङ्क—प्रसूति तन्त्र पर यह सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य है। सम्पादक श्री पं० रघुबीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S. हैं। इसमें ५०४ पृष्ठ तथा १२५ चित्र हैं। प्रसूता को होने वाली सम्पूर्ण व्याधियों के विषय में क्रमबद्ध सुन्दर सुविस्तृत विवरण दिया है। मूल्य ८.५० रु० (राजसंस्करण)

माधव निदानाङ्क—इसमें सम्पूर्ण माधवनिदान सरल हिन्दी टीका सहित है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्सम्बन्धित एलोपैथिक समन्वयात्मक विवेचन दिया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये विशेष वक्तव्य एवं चित्र दिये गए हैं। इस टीका की सभी विद्वानों ने प्रसंशा की है तथा विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बतलाया है। पृष्ठ ६४४ तथा चित्र १४५ हैं। मूल्य ८.५० रु०

गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क चतुर्थ भाग (राजसंस्करण)—इस विशेषांक ने आयुर्वेद जगत में बड़ी ख्याति प्राप्त की है तथा धन्वन्तरि की कीर्ति में चार चांद लगा दिये हैं। इसमें २५१ अनुभवी वैद्यों के १३०८ उत्तमोत्तम, सरल, पूर्ण परीक्षित प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह है। प्रयोगों की अन्य पुस्तकों तथा इस विशेषाङ्क में एक मौलिक अन्तर है—जहां पुस्तकें एक लेखक द्वारा ही इधर उधर के प्रयोगों को संग्रह कर तैयार की जाती हैं वहां इसमें भारत के प्रसिद्ध एवं सफल २५१ चिकित्सकों के हृदय में छिपे हुए प्रयोगरत्न बड़े आग्रह से प्राप्त कर उनके फोटो व परिचय सहित प्रकाशित किये गए हैं। मूल्य ८.५० रु०

गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण) मूल्य ६.०० रु०, द्वितीय भाग २.०० रु०, तृतीय भाग २.०० रु०

कायचिकित्सांक—आचार्य पं. रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी के सफल सम्पादकत्व में प्रकाशित यह अनमोल विशेषाङ्क है। ५४४ पृष्ठों में १२५ चित्रों सहित विभिन्न रोगों की सफल चिकित्सा विधि, उसके विषय में आयुर्वेद के सिद्धान्त एवं चिकित्सा सूत्र बड़ी सुन्दरता से वर्णित हैं। इस विशेषांक के निर्माण में भारत के चोटी के विद्वानों ने अपना सहयोग देकर इसे अति उत्तम बना दिया है। यह आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिए, आयुर्वेद के आचार्यों के लिए तथा आयुर्वेद विद्वानों के लिए अनेक उलझी गुत्थियों को सुलझाने में सहायक तथा उच्च कोटि का ग्रन्थ बन गया है। मूल्य ८.५० रु०

यकृत् प्लीहा रोगांक—यकृत् और प्लीहा मानव शरीर के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। इनमें विकृति होने से मनुष्य को भीषण कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसके विविध रोगों के यदि आप सफल चिकित्सक बनना चाहते हैं तो इस विशेषांक की एक प्रति अवश्य मंगा लेनी चाहिए। पृष्ठ १६४, अनेक चित्रों से सुसज्जित मूल्य २.८० रु०

मधुमेह अङ्क—इस अङ्क में मधुमेह रोग पर अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित किये गए हैं। मधुमेह पर आपको अनेक सफल सरल प्रयोग इस अङ्क में प्राप्त होंगे। मूल्य केवल १.०० रु०

श्वास अङ्क—श्वास मनुष्य को अत्यन्त कष्ट देने वाला रोग है। प्रायः इसको असाध्य ही माना जाता है। इस अङ्क में श्वास रोग की आयुर्वेद के माने हुए विद्वानों द्वारा चिकित्सा दी गई है। मूल्य केवल १.०० रु०

श्वास अङ्क (थीसिस)—आचार्य श्री शिवकुमार मिश्र द्वारा आयुर्वेदान्वेषण केन्द्र जामनगर में प्रशिक्षण प्राप्त करते समय लिखी गई श्वास रोग पर अनेक नवीन अन्वेषणों सहित थीसिस। चिकित्सा जगत के लिए यह एक अमूल्य ग्रंथ है। मूल्य केवल १.५० रु०

नोट—धन्वन्तरि के स्थायी ग्राहकों को उपर्युक्त मूल्य पर २५% कमीशन दिया जायगा। पोस्ट व्यय ग्राहकों को पृथक् देना होगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

विषय-सूची

धन्वन्तरि

★

सम्पादक—
देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc.
दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

वार्षिक मूल्य ५.५० रु०
भाग ३४ अङ्क ८

★ आयुर्वेद के प्रचार में धन्वन्तरि गत ३४ वर्षों से अनवरत संलग्न है।
★ आयुर्वेद का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वत्र सम्मानित सर्वोत्तम सचित्र मासिक पत्र है।
★ इसका प्रचार करना आयुर्वेद प्रचार में सहयोग प्रदान करना है।
★ समस्त चिकित्सक समुदाय इसे पढ़ता और मनन करता है, अतएव वैद्यों-हकीमों एवं डाक्टरों से सम्बन्धित व्यवसाइयों के लिए विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन है।

प्रकाशक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ — चरक सू० १-४०

भाग ३४ अङ्क ८ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | अगस्त १९६०

धन्वन्तरिर्जीव्यताम्

लोकानां नितरां हरन् रुग्भरं दैन्यं सुकष्टं परम् ।
नित्यं मानस तुष्टये विलसतां प्राणप्रदं सुखकरम् ॥
सन्तत्यैं क्रियनां नितांतमवनौ सौख्यं यशो निर्मलम् ।
कल्याणं प्रवदन् कलौऽघहो हरिः स्वयं धन्वन्तरिर्जीव्यताम् ॥

अर्थात्—रोग-भार से पीड़ित लोगों के दुःख, दीनता एवं परम् कष्ट को निःशेष करते हुए, तथा सबके मानसिक संतोषार्थ प्राणों को प्रफुल्लित एवं परम सुख प्रदान करते हुए, सदैव ही अपनी शोभा को छिटकाते हुए, और पृथ्वी पर नित्य ही सौख्य एवं निर्मल यश की धारा बहाते हुए, सबका परम कल्याण करते हुए, कली [कलियुग] के पापों को नष्ट करने वाले ऐसे धन्वन्तरि रूप स्वयं श्री हरि भगवान चिरायु हों।

—श्री रामस्वरूप शास्त्री "अमर"
तालबेहट (झांसी)

वेगोदीरणधारण जन्य व्याधियां तथा उनका प्रतिकार

श्री हरिशंकर राव निरखी

व्याधियों के दो प्रमुख कारण हैं—

१—अन्तरंगहेतु २—बहिरंगहेतु, दोष दूष्य अंतरंग हेतु हैं। बहिरंगहेतु—द्विविध आहार और विहार हैं। (द्रव्य प्रधानो आहारः क्रिया प्रधानो विहारः इति आहार विहारयोः भेद।) विहार दो प्रकार का होता है एक नियत कालिक और दूसरा अनियत कालिक। नियत कालिक का पहला प्रकार दैनन्दिन जिसे दिनचर्या तथा दूसरा प्रकार आर्तव जिसे ऋतुचर्या कहते हैं। अनियत कालिक विहार पंचविध है—(१) वेगधारण (२) वेगोदीरण (३) शोधन (४) बृंहण और (५) भूताद्यस्पर्शन। अब हमें अनियत कालिक के प्रथम एवं द्वितीय प्रकार वेगधारण वेगोदीरण के विषय में विचार करना है।

व्याधीनां कारणम्

अंतरंगहेतुः — बहिरंग हेतुः

दोष दूष्य

विहारः — आहारः

नियत कालिक — कालिक

दैनन्दिन — आर्तव

वेगधारण वेगोदीरण शोधन बृंहण भूताद्यस्पर्शन

टीकाकार "प्रवृत्युन्मुखत्वं वेगः" ऐसी वेग शब्द की व्याख्या करते हैं। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है एक शारीरिक तथा दूसरी मानसिक। अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक प्रवृत्तियों का उन्मुख होजाना ही वेग कहलाता है। यह प्रवृत्तियां एक तो स्वभावतः प्रवृत्त होती हैं या उन्हें बलात् प्रवृत्त किया जाता है। इनमें स्वभावतः प्रवृत्त होने वाली प्रवृत्ति को रोकना वेगधारण और प्रवृत्तियां बलात् प्रवृत्त करना वेगोदीरण कहा जाता है। यह दोनों ही व्याधि-जनक हैं।

> वेगान्नीरयेद्बलात्। नवेगतोऽन्यकार्यः स्यात्।

यह कह कर आचार्य वेगोदीरण-धारण का निषेध करते हैं। वेगोदीरण-धारण व्याधियों का बहिरंग हेतु है यह तो इसके पूर्व चार्ट में देख ही चुके हैं। आचार्य कुछ वेगों का धारण करो बोलते हैं और कुछ वेग मत धारण करो ऐसा कहते हैं।

> धारयेत्तु सदावेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च।
> लोभेर्ष्या द्वेषमात्सर्य रागादीनां जितेन्द्रियः॥

अर्थात् लोभेर्ष्यादि मानस वेगधारण अवश्य करें ऐसा उनका अभिप्राय है। तथापि वातादि शारीरिक वेगोदीरण धारण उन्होंने निषिद्ध माना है। अब हम वेगधारणजन्य व्याधि, अधारणीय वेग तथा उनकी चिकित्सा देखेंगे।

अधारणीय वेग—

> वेगान्न धारयेद्वात विण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम्।
> निद्राकास कफ श्वास जृंभामूर्च्छाश्रिरेतसाम्॥
>
> —अ० हृ०

वात (अपान-उद्गार) मल-मूत्र, छींक, प्यास, भूख, कास, जम्भाई, वमन, अश्रु (आनन्दज वा शोकज)—रेतस निद्रा और श्रम श्वास। इन तेरह वेगों को रोकना नहीं चाहिए।

१—अधोवातरोध जन्य व्याधियां—

अधोवात को रोकने से आध्मान, शूल, सिर दुःखना, गुल्म, उदावर्त, क्लोम, मलमूत्रावरोध, दृष्टिमांद्य, अग्निमांद्य, हृद्रोग, श्वास, हिक्का, कास, जुकाम, गलग्रह, मुख से पुरीषवमन इत्यादि विकारों का प्रादुर्भाव होता है।

चिकित्सा-इन विकारों का प्रादुर्भाव होने पर आतुर का प्रथम स्नेहन स्वेदन करें। वस्ति, फलवर्ति (*Suppositories*) तथा वातानुलोमक औषधि लाभप्रद हैं।

ऊर्ध्व वायु निग्रह जन्य व्याधियां—उद्गार को रोकने से हिक्का (हिचकी), श्वास, अरुचि, कम्प, हृदय तथा छाती का बन्द या भारी हुआ सा मालूम होना प्रभृति लक्षण पैदा होजाते हैं। उनकी चिकित्सा हिक्का रोग के समान ही जाननी चाहिए।

२-मलावरोध जन्य व्याधियां-

पुरीष अर्थात् मलवात के वेग को रोकने से पक्वाशय में शूल, शिरोवेदना, मलवात का बाहर न निकलना, पाखाना न आना, जंघा की पिंडलियों में खिचाव सा मालूम होना, आध्मान, मुख से मल-प्रवृत्ति ये विकार होते हैं।

चिकित्सा-मलावरोधजन्य विकारों में स्नेहन, स्वेदन, बस्ति, वर्ति प्रयोग, अनुलोमक (आंतों की तरङ्गगति को ठीक प्रकार चलाने में सहायक) अन्नपान तथा औषधि हितप्रद हैं।

३-मूत्रावरोध जन्य व्याधियां —

वस्ति (मूत्राशय) तथा मूत्रेन्द्रिय में शूल, मूत्रकृच्छ्र, सिरदर्द, विनाम, वंक्षणदेशा कामानाह प्रभृति विकार मूत्रनिग्रहजन्य हैं।

चिकित्सा-मूत्रनिग्रहजन्य विकार होने पर फलवर्ति, स्वेदन, अवगाहन, घृत का अवपीडक रूप से प्रयोग तथा आस्थापन, अनुवासन, उत्तर वस्ति ये त्रिविध वस्ति कर्म कराने चाहिए। मूत्ररोधजन्य विकारों पर भोजन के पूर्व और भोजन जीर्ण होने के पश्चात् जितना पचे उतना ही घृतपान करें। इन दोनों प्रकार के घृतपान को 'अवपीडक' यह संज्ञा दी जाती है। 'पक्वाशयस्थाने कथा प्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति' इस सिद्धांतानुसार मूत्रावरोध से वात प्रकोप होता ही है। वात नाश करने में परमश्रेष्ठ औषधि है 'शरीर-जानां दोषाणां क्रमेण परमौषधं। वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु॥' (अ.हृ.) ऐसा कह कर भी आचार्य मूत्रनिग्रहजन्य विकारों में अवपीडक स्वरूप में घृतपान करने का आदेश क्यों देते हैं? उन्होंने तो अवपीडक स्वरूप में तैल पान करने का ही आदेश देना था। इसका उत्तर अ० हृ० के टीकाकार अरुणदत्त इस प्रकार देते हैं—तेल स्वभावतः वात-नाशक होकर भी मलावरोधक व मूत्रावरोधक ही होता है।

> तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायिच।
> बद्धविट्-कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्व दोषजित्॥
> उष्णत्वच्च हिमस्पर्शः केश्यो बल्यस्तिलोगुरुः।
> अल्पमूत्र कटुः पाके मेदाग्नि कफ पित्तकृत्॥

यहां तो मूत्रनिग्रह से मलावरोध मूत्राल्पता निर्माण होती है। इस अवस्था में तेल का उपयोग किया जाय तो मलावरोध और मूत्रावरोध अधिक बढ़कर व्याधि प्रतिकार नहीं होगा इसलिए मूत्ररोधोत्थ विकारों में आचार्य तेल का उपयोग न कह कर अवपीडकस्वरूप में सर्पिपान (घृत) का निर्देश करते हैं। अर्थात् यहां तेल का उपयोग सर्पिसदृश युक्त नहीं है।

४-क्षवथुनिग्रह जन्य व्याधियां--

छींक के वेग को रोकने से मन्यास्तम्भ, शिरोवेदना, इन्द्रियदौर्बल्य, अर्दित, अर्धावभेदक प्रभृति विकार उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा-इन विकारों पर क्षवप्रवृत्ति के लिए तीक्ष्ण धूम्रपान, अंजन, नस्य, जत्रुसन्धि के ऊपर के प्रदेश में अभ्यङ्ग, वातहर अन्न का सेवन तथा भोजनोत्तर घृतपान हितकर हैं।

५-तृषा निग्रह जन्य व्याधियां—

कण्ठ मुख शोष, बहरापन, थकावट, शिथिलता, मूर्च्छा, भ्रम, हृद्रोग यह विकार तृषा निग्रह जन्य हैं। इनके निवारण के लिये शीत एवं तृप्तिकर पानकादि का उपयोग करना चाहिए। सुश्रुत में भी-

> कण्ठास्य शोषश्रवणावरोधस्तृष्णा विघाताद् हृदये व्यथा च।
> तृष्णाघाते पिन्वेमन्थं यवागू वापिशीतलाम्।

६-क्षुधा निग्रह जन्य व्याधियां--

भूख के वेग को रोकने से कार्श्य, दुर्बलता,

विवर्णता, अङ्गों में पीडा, अरुचि भ्रम प्रभृति लक्षण उत्पन्न होते हैं। सुश्रुत ने भी 'तन्द्राङ्ग मर्दाव-रुचि भ्रमश्च क्षुधो विघातात् कृशताच दृष्टेः।' ऐसा कहा है।

चिकित्सा–इसकी चिकित्सा के लिये रोगी को स्निग्ध उष्ण, और हलका (लघु) भोजन करायें।

७–निद्रा निग्रह जन्य व्याधियां—

मोह मूर्च्छादिगौरव (सिर-नेत्र गौरव) आलस्य, जम्भाई, अंगो में पीडा इत्यादि लक्षण पैदा होते हैं।

चिकित्सा–इनके निवारण के लिये स्वप्न (शयन-सोना) तथा संवाहन अर्थात् टांग, हाथ अथवा शिर आदि को दबवाना (सुखस्पर्शमर्दन) आदि हितकर हैं।

निद्राघाते पिवेत्क्षीरं सुप्याच्चेष्ट कथारतः।

८–कास निग्रह जन्य व्याधियां—

कासवृद्धि (आधिक्य), श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोष, राजयक्ष्मा इत्यादि पैदा होते हैं। इनकी चिकित्सा कासरोग के जैसा करो ऐसा आचार्य कहते हैं—कार्योऽत्र कासहासुतरां विधि।

९–श्रम श्वास निग्रह जन्य व्याधियां—

गुल्म, हृद्रोग संमोह ये श्रमश्वास निग्रह से पैदा होते हैं। इनकी चिकित्सा-पूर्ण विश्राम तथा वात नाशक क्रिया करनी चाहिए।

'हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्चक्रियाक्रमः। अ. हृ.

१०–जृम्भा निग्रह जन्य व्याधियां—

जृंभा, रोकने से होने वाले रोग शिरोवेदना, इन्द्रियदौर्बल्य (स्वविषय ग्रहणासमर्थता), मन्या-स्तम्भ, अर्दित, तथा विनाम (शरीर का नमना), आक्षेप(*Convulsions*), संकोच,सुप्तिवात(स्पर्शज्ञान न होना), कंपवात प्रभृति हैं। इसलिए इनमें वात-नाशक आहार विहार तथा औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

११–अश्रु निग्रह जन्य व्याधियां—

अक्षिरोग, शिरो रोग, हृद्रोग, मन्यास्तम्भ, अरुचि, भ्रम, गुल्म यह रोग उत्पन्न होते हैं। इनकी चिकित्सा के लिए शयन, मद्य, प्रिय कथा आदि हितावह हैं।

१२–वमन निग्रह जन्य व्याधियां–

विसर्प (*Erysipelas*), कोठ प्रादुर्भाव (शरीर पर चकत्ते उठना), कुष्ठ (*Skin diseases*), अक्षिरोग, कण्डू, पांडु रोग (*Anaemias*), ज्वर, कास, श्वास, हृल्लास (जी मचलना), व्यङ्ग, शोथ ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—इसमें भोजन कराकर तत्क्षण वमन कराना, धूम्रपान, लंघन, रक्तमोक्षण, विरेचन, गण्डूष, क्षार लवण युक्त तैलाभ्यंग, रूक्ष खान पान तथा व्यायाम हितकर हैं।

१३–शुक्रवेगधारण जन्य व्याधियां--

शुक्र स्रावण, मूत्रेन्द्रिय तथा वृषण में शूल, अंगो में पीडा, श्वयथु, ज्वर, हृदय व्यथा, मूत्ररोध, अश्मरी, और षण्ढता निर्माण होती है। इसलिये इस अवस्था में कुक्कुट, सुरा, रक्तशालि, अवगाहन, त्रिविध वस्ति, वस्ति शुद्ध कर द्रव्यों से सिद्ध क्षीर तथा प्रिय स्त्रियों का सेवन करें।

अब तक हम वेगसंधारणजन्य व्याधियां तथा उनकी संक्षेप में चिकित्सा देख आये हैं। यहां एक यह शंका उपस्थित हो सकती है कि आचार्यों ने सब वेगसंधारण जन्य व्याधियों का वर्णन किया है। क्या वेगोदीरण से व्याधियां पैदा ही नहीं होतीं? इसका उत्तर आचार्य 'रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगो-दीरण धारणैः।' ऐसा देते हैं। अर्थात् वेगोदीरण-धारण से सभी रोग पैदा होते हैं। सारांश 'वेगोदी-रण धारण' अनेक व्याधियों का हेतु है इसलिये हर व्यक्ति इनसे दूर रहे।

—श्री हरीशंकर राव निरखी
मोरंडी पो. पुराना जालना (औरंगाबाद)

स्वर विज्ञान

श्री वैद्य जानकीप्रसाद अग्रवाल

प्रकृति द्वारा आयोजित वायु प्राण और शरीर ये तीन ही प्राणीमात्र के आधार स्तम्भ हैं। जिसके बस में यह सारा जगत है वह प्राणी पृथ्वी पर है अन्तरिक्ष में है, भूलोक में है। प्राण पृथ्वी पर आने के पश्चात् वायु तत्व से मिल कर शरीर धारण किये रहता है। इस प्रकार स्वर ही सब प्राणियों की जीवनशक्ति है। अनेक महायोगी स्वर क्रिया का निबन्धन कर मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। स्वर शरीरस्थ एक अत्यन्त आवश्यक क्रिया है। पंच महा भूतात्माओं के सहयोग से ही मनुष्य शरीर संचालित होता है। मृत्यु का निश्चय करने के लिये भी वायु की गति का ही निरीक्षण किया जाता है। इसकी गति पर ही मनुष्य की साध्यता असाध्यता का अनुमान होता है। हमारे पूर्वकालीन महर्षियों ने लोक कल्याण के निमित्त जो जो विज्ञान की खोज की है उनमें स्वर विज्ञान भी चमत्कारपूर्ण है। स्वर विज्ञान प्रायः लुप्त हो चुका है। अकथ परिश्रम से ही कहीं इसके कलाकारों के दर्शन हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह जो कुछ सूक्ष्म संकलन है इससे अनुकूल लाभ प्राप्त किया जा सकता है। स्वर विज्ञान का आधार मनुष्य के नस कोरे से चलते श्वास की गति है। मनुष्य जीवन की प्रत्येक क्रिया सुख दुःख शारीरिक मानसिक रोगादि व्याधि स्वर गति से ही प्रभावित हैं। शरीर रूपी रथ के संचालन के निमित्त स्वर गति ही सूत्राधार है। साधारणतया मनुष्य प्रति मिनट १३ से १५ श्वास प्रश्वास निस्सारण करता है। इस प्रकार २४ घन्टे में यह संख्या करीब २१६०० तक पहुंच जाती है। श्वास प्रश्वास की संख्या जिस मनुष्य की प्रति मिनट कम होगी उसकी आयु अपेक्षाकृत उतनी ही अधिक मानी गई है। श्वास प्रश्वास पर नियन्त्रण रखने से मनुष्य की आयु कुछ काल अधिक बढ़ाई जा सकती है।

स्वरोदय तथा काल—मनुष्य शरीर में अवाध गति से चलने वाला श्वास प्रश्वास क्रमशः समयानुसार पृथक २ नसकोरों से निस्सारण होते हैं। एक रन्ध्र का निश्चित समय पूर्ण हो जाने पर स्वयं दूसरे रन्ध्र से निकलने लगता है। इस गति का नाम ही स्वर है। इस गति का एक नासिका रन्ध्र से दूसरे रन्ध्र में जाना ही स्वरोदय कहा गया है। प्रत्येक नासिका रन्ध्र में स्वर उदय होने के पश्चात् वह एक घन्टे तक विद्यमान रहता है पश्चात् बदलकर दूसरे रन्ध्र से निकलने लगता है। इस प्रकार स्वर की गति अवाध रूप से चलती रहती है। किस काल में किस छिद्र से श्वांस चल रही है इसका निरीक्षण करने के लिये किसी एक रन्ध्र को बन्द करके दूसरे से कुछ जोर से श्वासोच्छ्वास करना चाहिये। जिस नसकोरे की गति में कुछ अवरोध प्रतीत हो उसे बन्द तथा दूसरे को खुला हुआ समझना चाहिये।

पंचमहाभूत तत्व—स्वरोदय के निश्चित काल में पंचतत्वों का भी उदय होता है एवं तत्व अपने निश्चितकाल तक रहकर अस्त हो जाता है। पंच तत्व एक स्वर में उदय होने के पश्चात् निम्नलिखित अवधि तक विद्यमान रहते हैं—

पृथ्वी तत्व २० मिनट, जल तत्व १६ मिनट, अग्नि १२ मिनट, वायु ८ मिनट, आकाश ४ मिनट; इस प्रकार स्वरोदय के एक घण्टे के काल में पांचों तत्व उदय एवं अस्त हो जाते हैं। स्वर विज्ञान के पश्चात् पंचतत्वों की गति, आकार, स्थान, रंग भिन्न प्रकार के माने गये हैं।

स्वर के तत्व की उपस्थिति का ज्ञान रंग भेद के अनुसार दोनों हाथों के अंगूठों से, दोनों कर्णों के छिद्र, मध्यमा अंगुली से, दोनों नासिका रन्ध्र, दोनों अनामिकाओं से, दोनों नेत्र तथा दोनों तर्जनी एवं कनिष्ठाओं से मुख बन्द करने पर यदि पीले रंग

का दर्शन हो तो पृथ्वी तत्व, श्वेत जल तत्व, लाल रंग अग्नि तत्व, हरा आसमानी काला रंग वायु तत्व तथा विभिन्न रंग का अवलोकन होने पर आकाश तत्व का उदय समझना चाहिये। हमारे दोनों स्वर मुख्यतः बांयें तथा दक्षिण नासिका में चला करते हैं, पर कभी कभी वह सुषुम्ना से भी परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार हमारे सम्पूर्ण कार्य तीन वर्ग में विभक्त किये गये हैं। किसी विशेष कार्य के लिए जहां अमुक स्वर की आवश्यकता है, उसी स्वर के साथ एक निश्चित तत्व भी आवश्यक है अन्यथा सफलता संदिग्ध रहती है।

कार्य सिद्धिकरण —

सन्तानोत्पत्ति--जब दक्षिण स्वर के साथ अग्नि तत्व का उदय हो रहा हो ऐसे काल में गर्भाधान करने से सन्तानोत्पत्ति होती है।

भाग्योदय—ब्रह्म मुहूर्त में प्रातःकाल शैया त्यागने के पूर्व आंख खुलते ही जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी तरफ का हाथ मुख पर फेर कर बैठ जाएं एवं चारपाई से उतरते हुए उसी तरफ का पैर पृथ्वी पर रखकर शैया त्याग दें। इस क्रिया को नित्य प्रति करना चाहिए।

रोगोपचार —

ज्वर—जब शरीर में ज्वर प्रतीत हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उस चलने वाले स्वर को बन्द करके दूसरे नासिका रन्ध्र से स्वर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। इस क्रिया को आरोग्य लाभ प्राप्त होने तक चालू रखें।

आधा सीसी—रोग की दशा में जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी तरफ के हाथ की कोहनी को रस्सी से बन्धन करना चाहिए। कुछ देर पश्चात् वेदना शान्त हो जाती है।

अग्निमान्द्य—जो मनुष्य अजीर्ण रोग से ग्रसित हैं उन्हें सर्वदा दक्षिण स्वर की उपस्थिति में भोजन ग्रहण करने से कुछ दिनों में पाचन शक्ति प्रबल हो जाती है।

दन्तक्षय—शौच तथा पेशाब के समय दांतों को दबाये रखने से दन्त सम्बन्धी रोगों का निराकरण होता है।

शूल-शमनार्थ—शरीरस्थ कहीं भी दर्द हो जाने पर उस काल में जो स्वर चल रहा हो उसे पूर्ण रूप में बन्द कर देने से कैसा भी दर्द हो शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

दमा—जब श्वास का वेग प्रबल हो रहा हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उसे बन्द कर दूसरे नासिका रन्ध्र से स्वर निकालना चाहिये। इस क्रिया से दस-पन्द्रह मिनट में आराम होने का अनुमान लगाया जाता है। स्थायी लाभ के लिये नित्य प्रति स्वर बदलने का अभ्यास करने से शीघ्र लाभ दृष्टिगोचर होता है।

स्वप्नदोष—नित्य प्रति सिद्धासन से बैठकर आध घण्टे तक नाभि पर दृष्टि जमाने से कुछ दिनों में रोग दूर होता है।

मृत्यु का ज्ञान—

(१) यदि पांच घड़ी तक सुष्णाम चलकर न बदले तो उसी समय मृत्यु हो जाती है।

(२) जिस व्यक्ति को अपनी नासिका का अग्रभाग दिखाई न दे उसकी तीन दिन में मृत्यु हो जाती है।

(३) स्नान के पश्चात् जिसके हाथ पैर मस्तिष्क हृदय तुरन्त सूख जायें उसकी तीन माह की आयु मानी गई है।

(४) दक्षिण हाथ की मुट्ठी बांधकर नासिका की सीध में माथे पर लगाने से यदि हाथ की कोहनी मुट्ठी से बिलकुल पृथक् प्रतीत होने लगे तो उस मनुष्य की आयु ६ माह शेष रह जाती है।

(५) २० दिन रात तक यदि दक्षिण स्वर चलता रहे तो क्रमशः अग्नि तत्व सूक्ष्म होकर तीन माह में मृत्यु हो जाती है।

—वैद्य श्री जानकीप्रसाद अग्रवाल,
दादुल कार्यालय, झांसी।

रोगी परीक्षा प्रणाली

श्री पं० घनेन्द्र हर्पुल मिश्र

वागभट्ट जी कहते हैं—

दर्शनस्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेतार्थं रोगिणाम् ।
रोग निदान प्राग्रूप लक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

वैद्य देखने, छूने और पूंछने से रोगियों की परीक्षा करे तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति से रोगों की परीक्षा करे।

हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि ज्वर में शरीर तपने लगता है, मगर जब तक हम शरीर को अपने हाथों से स्पर्श न करें हमें शरीर के गर्म होने का ज्ञान कैसे हो सकता है। पीलिया में रोगी के नेत्र, नखादि पीले पड़ जाते हैं, किन्तु बिना नेत्रों से देखे हम पूर्ण निर्णय नहीं दे सकते। यद्यपि हम जानने हैं कि अमुक रोग में आंते गूंजती हैं, लेकिन बिना कानों के सुने हमें दृढ़ निश्चय कैसे हो सकता है? चेचक अथवा मौक्तिक ज्वर में रोगी के शरीर में एक विचित्र प्रकार की बदबू आया करती है। लेकिन बिना नासिका से सूंघे हमें इस बात का पक्का विश्वास कैसे हो सकता है? रोगी का रक्त दूषित हुआ है या नहीं इसका ज्ञान हमें तभी होगा जब हम जीभ से चखकर देखें। वैद्य ऐसा कर नहीं सकते। अतएव सन्देह होने पर रोगी का रक्त कुत्तों या कौवों के आगे डाल दें। यदि वे उस रक्त को चाट जाते हैं तो समझना चाहिए कि रक्त शुद्ध है, यदि नहीं तो अशुद्ध रक्त समझना चाहिए। यहां हमें अपनी न सही तो भी कुत्ते या कौवों की जीभ का सहारा लेना पड़ा। इस तरह हम कह सकते हैं कि रोगों के जानने के छः उपाय हैं। कान, नाक, जीभ, आंख और त्वचा (चमड़ा) इन पांच इन्द्रियों तथा पूंछने से रोगी के रोग का ज्ञान होता है। अब रहा पूंछना। अमुक रोगी के मुख का स्वाद कैसा है? उसे भूख लगती है या नहीं? बिना पूंछताछ के यह कैसे ,जाना जा सकता है? अभिप्राय यह है कि रोगी के रोग का प्रत्यक्ष (Objective) लक्षण प्राप्त करने के लिये हमें पांचों इन्द्रियों से काम लेना होता है। और जिस विषय का ज्ञान हमें हमारी पांचों इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उसका ज्ञान हमें पूंछने या प्रश्न करने से होता है जिसे प्रश्नगत (Subjective) लक्षण कहते हैं।

उपरोक्त कथन यद्यपि हमें उचित प्रतीत होता है और उचित है भी क्योंकि इससे हमें काफी सहायता प्राप्त होती है। बशर्ते हम इन तमाम बातों को स्मरण रखें। फिर भी हमें अभी इतने से सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि हमें अपने विषय की गहराई को परखना है और चूंकि हम एक 'वैद्य' हैं, इसलिए एक चिकित्सक का अपने रोगी के प्रति क्या कर्त्तव्य है? उसे रोगी के रोग की परीक्षा कैसे करनी चाहिये इत्यादि बातों को ध्यान में रखते हुए हम निम्नलिखित पंक्तियों पर गौर करेंगे—

(१) यद्यपि मैंने उपरोक्त कथन में 'नाड़ी-परीक्षा' का जिक्र नहीं किया है क्योंकि प्राचीन काल में ऋषि मुनियों को उसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती थी और इसलिये चरक, सुश्रुत, वागभट्ट और हारीत संहिता प्रभृति ऋषि मुनि प्रणीत ग्रन्थों में कहीं भी 'नाड़ी-परीक्षा' का जिक्र नहीं है तो भी आजकल इसका इतना प्रभाव जम गया है कि जिस रोगी को देखिये वही वैद्य के सामने पहले अपना हाथ कर देता है। यदि विचारा वैद्य नाड़ी-ज्ञान में प्रवीण है तो अवश्य ही रोगी के रोग का हाल नाड़ी देखकर बता देगा और उस रोगी की श्रद्धा वैद्य महाशय पर हो जायगी और यदि वह नाड़ी छूकर चुप रहा तो परिस्थिति बिगड़ जाती है तथा रोगी वैद्य को वैद्य नहीं समझता। इसलिये आजकल की हवा को देखते हुए प्रत्येक वैद्य को कुछ न कुछ नाड़ी-परीक्षा अवश्य ही सीखनी चाहिये।

(२) सर्व प्रथम वैद्य को मधुर भाषी होना चाहिए। जिस गांव में या शहर में वह रहता है उसे अपने आसपास के वातावरण को गांव के लोगों से जहां तक बन सके अपने सुन्दर व्यवहार से, अपनी सेवाओं से प्रसन्न बनाये रखना चाहिये। इससे वैद्य की प्रतिष्ठा बढ़ती है और वह लोक प्रिय वैद्य बन जाता है।

(३) व्यक्ति चाहे बड़ा आदमी हो या छोटा आदमी परन्तु जब तक बुलावा न आवे चिकित्सक को रोगी के घर में स्वयं ही कभी नहीं जाना चाहिए। यदि बुलावा आता है तो वैद्य को रोगी के घर में प्रवेश होने के पूर्व अपने आगमन की सूचना उसके घर वालों को देनी चाहिए।

(४) पवित्र भावना से रोगी को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य लेकर रोगी के समीप जाकर सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में बात करनी चाहिए तथा रोगी से उसकी अवस्था के विषय में प्रश्न करना चाहिए। अगर रोगी कुछ बताने में असमर्थ है तो उसके पास जो आदमी हमेशा रहता है उससे प्रश्न करिये। जब वे लोग रोगी का सब हाल बतालें तब उसे स्वयं रोगी की अच्छी तरह से परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि इसी के ऊपर उसकी चिकित्सा की सफलता निर्भर है। प्रधानतः लक्षण दो प्रकार के होते हैं। जो लक्षण सिर्फ रोगी ही अनुभव कर सकता है, किन्तु चिकित्सक नहीं और देख भी नहीं सकता है, उस लक्षण को प्रश्नगत (Subjective) लक्षण कहते हैं। यथा—दर्द, जी मचलाना, मानसिक अवस्था आदि। जो लक्षण वैद्य स्वयं परीक्षण करके मालूम कर सकता है उस लक्षण को प्रत्यक्ष (Objective) लक्षण कहते हैं।

(५) जहां तक सम्भव हो सके अच्छी तरह से रोग का कारण और उसके हाल की जांच करनी चाहिए और बड़ी सावधानीपूर्वक औषधि, पथ्य और आहार विहार की व्यवस्था करनी चाहिए।

(६) रोगी के मन की हालत, शारीरिक धर्म, स्वभाव, उम्र इत्यादि पर ध्यान रखना चाहिए। रोगी पुरुष अथवा स्त्री है इस विषय में भी जांच करनी चाहिए।

(७) स्त्रियों की परीक्षा एकांत में कभी नहीं करनी चाहिये। उनके घर वालों या पति के समक्ष शुद्ध भावना से रोग परीक्षा करनी चाहिये। यदि गुप्तांगों के परीक्षण की आवश्यकता महसूस हो तो किसी योग्य वैद्य की सहायता और सलाह लेनी चाहिये। वैद्य को कभी भी स्त्रियों द्वारा दिया हुआ कोई भी उपहार या फीस अकेले में नहीं लेना चाहिये।

(८) दर्द, पाखाना, ज्वर, पेशाब इत्यादि का स्वभाव और मल, वमन इत्यादि का रंग, गन्ध आदि और इन सब के निकलने का तरीका भी जानना अनिवार्य है।

(९) पीड़ा अथवा कोई तकलीफ रोगी की दाहिनी या बायीं तरफ है इस पर ध्यान रखना जरूरी है। तथा शिर दर्द, पेट दर्द, वगैरह किस तरह से बढ़ता और कम होता है इस पर भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। रोगी किस हालत में सोता या जागता है यह सब देखना चाहिये।

(१०) कभी कभी ऐसे भी अवसर आते हैं कि वैद्य यद्यपि रोगी को पूर्ण परीक्षा करता है किन्तु रोग का पता नहीं लगा पाता। ऐसी स्थिति में उसे निःसंकोच रोगी को अपने से बड़े चिकित्सक के पास जाने की उचित सलाह देनी चाहिये। ऐसा करने से वैद्य की प्रतिष्ठा बनी रहती है।

(११) वैद्य को सहनशील, विवेकशील और धैर्यवान होना अनिवार्य है। उसे गंभीर रोगों में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। तथा रोगी के समक्ष अपनी घबराहट प्रकट नहीं करनी चाहिये। इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि असाध्य रोगियों को चिकित्सक हाथ में न ले।

(१२) बिना पहिचाने ही चिकित्सा आरम्भ कर देने वाला वैद्य चाहे सम्पूर्ण औषधियों के प्रयोग को क्यों न जानता हो लेकिन उसे चिकित्सा में सिद्धि होना

—शेषांश पृष्ठ ८५५ पर।

मत्स्यपुराण में सगर्भा स्त्री के कर्त्तव्याकर्त्तव्य

श्री गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

पुराण-ग्रन्थ रत्नाकर समुद्र हैं। इनके मंथन से हमें चौदह रत्न ही नहीं, प्रत्युत असंख्य रत्नराशि की उपलब्धि हो सकती है। ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके सम्बन्ध में इन ग्रन्थों में कुछ न मिले। विश्व की प्रत्येक समस्या का हल इनमें प्राप्य है। संसार के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर इनसे प्राप्त किया जा सकता है। उलझी गुत्थियों को इनके द्वारा सुलझाया जा सकता है। ऐहिक ही नहीं बल्कि पारलौकिक तत्वों को भी इनके द्वारा समझा बूझा जा सकता है। पुराणों में सब कुछ है, यदि अध्यवसाय पूर्वक स्वाध्याय, मनन, और अनुशीलन द्वारा खोज की जाय। सगर्भा स्त्री के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में वर्णित बातें यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं। अदिति से कश्यप ने कहा था—

सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्यावर वर्णिनि।
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्ष मूलेषु सर्वदा।
नोपस्करेषूपविशेन मूसलोलूखलादिषु ॥३८॥
जलेच नावगाहेत शून्यागारञ्च वर्जयेत्।
वल्मीकायां न तिष्ठेत नचोद्विग्नामना भवेत् ॥३९॥
विलिखेन्न नखैर्भूमिन्नाङ्गारेणच भस्मना।
नशयालुः सदातिष्ठेत् व्यायामञ्चविवर्जयेत् ॥४०॥
नतुषाङ्गारभस्मास्थि कंपालिषु समाविशेत्।
वर्जयेत् कलहं लोकैर्गात्र भङ्गं तथैवच ॥४१॥
न मुक्तकेश तिष्ठेत नाशुचिः स्यात् कदाचनः।
न शयीतोत्तरशिरा नचापर शिरोः क्वचित् ॥४२॥
न वस्त्रहीना नोद्विग्नानचार्द्रा वरणासती।
नामङ्गल्यां वदेदवाचं न च हास्याधिकाभवेत् ॥४३॥
कुर्यात्तु गुरु सुश्रूषां नित्यंमाङ्गल्यतत्परा।
सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणास्नानमाचरेत् ॥४४॥
यस्तुतस्या भवेत् पुत्रः शीलायु बृद्धि संयुतः।
अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ॥४६॥

अर्थात्—अदिति! तू गर्भिणी होकर सन्ध्या-काल में भोजन मत करना। वृक्षों की जड़ों में, बुहारी, सूप ऊखल मूसल के समीप नहीं बैठना। जल में गोता न लगाना। सूने घरों में तथा बांबी के पास न जाना और कभी अनमनी न रहना। अपने नाखूनों से भूमि न कुरेदना और कोयले तथा राख से जमीन पर लकीरें न बनाना। अधिक न सोना। अधिक श्रम न करना। तुष अंगार, भस्म, हड्डी, और कपाल पर पांव न रखना। कलह कभी न करना। अंगड़ाई न तोड़ना। सिर के बालों को खुले न रहने देना। अपवित्र न रहना। उत्तर दिशा की ओर सिर करके कभी न सोना। चारपाई के पैताने की ओर सिर करके न सोना। नग्न न रहना। गीले वस्त्र धारण नहीं करना। शोकाकुल न होना। अशुभ, अभद्र तथा कटु बचन कभी न बोलना। खूब कहकहा मार कर अट्टहास न करना। गुरुजनों तथा अपने पति की सेवा में मन लगाना। सदैव मङ्गल कार्यों एवं शुभ कृत्यों में तत्पर रहना। औषधि से सिद्ध किए जल से स्नान करना। इन नियमों के अनुसार आचरण करने वाली स्त्री के गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा। वह उत्तम आयु और अबाधवृद्धि को प्राप्त करेगा। इन बातों के विपरीताचरण में या तो गर्भपात होगा अथवा सन्तान दीर्घजीवी नहीं होगी।

ये सब बातें बड़े अनुभवों के बाद कही गई हैं। गर्भ में बालक पर उसकी जननी के छोटे कार्यों का गहरा प्रभाव होता है। अतएव सगर्भा स्त्री का दायित्व अत्यधिक होता है। उसे मन, वचन और कर्मों की पवित्रता तथा नियमितता पर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए। उठना, बैठना, चलना, फिरना, खाना, पीना, वेषभूषा, शृङ्गार, बातचीत तथा विचारों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। गर्भस्थ सन्तान पर

—शेषांश पृष्ठ ८५५ पर।

पोथकी (Trachoma) रोग और उसकी चिकित्सा

श्री जगदीशचन्द्र भारद्वाज

पर्यायवाची नाम—संसार में यह रोग भिन्न भिन्न नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु प्रायः करके लोग इन्हें रोहे कहते हैं। पंजाबी में कुकरे और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पोथकी तथा पाश्चात्य विद्वान ग्रेनुलर कंजक्टिवाइटिस अथवा ट्रोकामा भी कहते हैं।

संक्षिप्त इतिहास—भारत में यह रोग पहले इतना अधिक नहीं था। कहते हैं कि १८०३ से १८१५ में नैपोलियन बोनापार्ट नामक योधा से एक बड़ा भारी युद्ध हुआ था। इस युद्ध में प्रायः करके मिश्र से लेकर योरुप तक के जवान भर्ती हुए थे जैसे–एशिया, पौलैंड, हङ्गरी, जापान, चायना, आयरलैंड, अरब और मिश्र देश आदि। जब सिपाही अपने घर गये तो उनके नेत्रों में इस रोग का विशेष प्रभाव था। इसी प्रकार मिश्र के सिपाही जब भारत में आये तभी से यह रोग विशेष रूप से फैला तथा इसी कारण इसे मिश्री रोग तथा पाश्चात्य भाषा में ईजिप्ट ओफथलमिया कहते हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों ने पोथकी संज्ञा दी है तथा जनता में विश्व विख्यात कुकरे, रोहें के नाम से पुकारी जाती है। इससे पूर्व भारत में इसका प्रसरण इतना नहीं था। यह व्याधि मिश्र वालों की देन होने से इसे मिश्री बीमारी भी कहते हैं और प्रायः करके तङ्ग बस्तियों में इसका अधिक प्रकोप होता है।

प्रसरण प्रकार—यह निर्विरोध सिद्ध है कि आधुनिक चिकित्सक भी प्राच्य चिकित्सकों की भांति प्रसरणशील संक्रामक (फैलने वाली) बीमारी मानते हैं। इसके कारण अनेकों हैं इसका फैलाव एक दूसरे के संसर्ग द्वारा होता है। इस रोग से पीड़ित मनुष्य के नेत्र का जल स्राव दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के नेत्र से सम्पर्क करता है तो उसके भी रोग उत्पन्न कर देता है। यह एक प्रकार से नहीं, भिन्न प्रकार से एक दूसरे पर लगता है, जैसे रोगी वस्त्र से अपनी आंखें पोंछता है और वही वस्त्र अन्य व्यक्ति प्रयोग करेंगे तो उन्हें भी यह रोग लग जाने का पूरा अन्देशा रहता है। यह रोग प्रायः कल कारखानों में काम करने वाले, अति गन्दगी युक्त तङ्ग बस्तियों वाले, मित्र मण्डली में ध्यान न करने वाले एक दूसरे कारू माल, तौलिया साबुन आदि का प्रयोग करने एवं अति प्रेम दिखाने वाली माता जो कि अपने बच्चों को नित्य प्रति काजल का प्रयोग करती हैं उन्हीं में किसी बच्चे को इस रोग का प्रकोप है और माता अज्ञानवस उसी अंगुली द्वारा अन्य बच्चों के भी काजल लगाती हैं तो उन्हें भी इस रोग का शिकार होना पड़ता हैं। इसी प्रकार आजकल प्रायः करके कालेज या बोर्डिङ्ग में पढ़ने वाले शिक्षार्थीगण का एक दूसरे के ऊपर हाथ धोना तथा उसी तौलिये द्वारा मुख साफ करना तथा आपस में एक दूसरे की एनक (गौगल) का प्रयोग करता या उसी पात्र के जल से हाथ धोता है तो उस पात्र में रोग का विष लग जाता है तथा इससे एक दूसरे पर फैलने में सरलता हो जाती है। अतः यह सभी बातें असावधानता के कारण करने से स्वस्थ व्यक्ति भी रोगग्रस्त हो जाता है और सावधानता रखने से काफी बचत हो जाती है। इसलिये स्वच्छता रखना अति लाभप्रद है।

रोग उत्पादक हेतु—धूम, अग्नि अथवा अति परिश्रम से अभितप्त होकर स्वेद से तरवतर व्यक्ति का शीतल जल में अचानक प्रवेश करना, दूर की वस्तु निरन्तर देखना, असमय सोना, नेत्रों में धूप, धूआं, विकृत वमन का रोकना, अधिक वमन से, रात्रि में द्रव पदार्थ सेवन करना, मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, क्रोध शोकादि करने, अचानक आघात से ऋतु के विपरीत परिवर्तन से, अति मद्यपान, सूक्ष्म वस्तु अति देर तक देखने से कुपित वातादि

दोष नेत्रों में जाकर स्थान भेदानुसार अन्यान्य रोग उत्पन्न कर देते हैं। इन्हीं में यह पोथकी एक प्रसिद्ध रोग है।

सम्प्राप्ति—अपने अपने कारणों से कुपित वातादि दोष शिर में स्थित हो ऊर्ध्वभाग में जाकर नेत्र के किसी भाग में स्थित हो दोषानुसार अवस्थानुसार, स्थानानुसार, नेत्रों में जाकर अत्यन्त भयङ्कर रोग उत्पन्न कर देते हैं।

लक्षण-

स्राविण्यः कण्डरा गुर्व्यो रक्त सर्षपसन्निभाः।
रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः॥

अर्थात् नेत्र के पलक (वरोनी) स्राव युक्त, खुजली, लालिमा, भारीपन से युक्त वेदना करने फुंसियां सरसों के दानों के समान निकलती हैं। इन्हें पोथकी रोहे, ट्रोकोमा कहा जाता है। इनसे कुछ अधिक महर्षि वाग्भट्ट जी ने कहा है—

पोथक्या पिडकाः श्वेता सर्षपभा घना कफात्।
शोफोपदेह रुक्कण्डू पिच्छिलाश्रु समन्विता॥

अर्थात् कफ के कारण श्वेत सरसों के आकार वाली घनी शोथ युक्त मैल पीड़ा कण्डू पिच्छल (चिपचिपापन) तथा अश्रुयुक्त पिडिकाऐं हो जाती हैं उन्हें पोथकी कहते हैं। प्राचीन शालाक्य की दृष्टि से यह वर्त्मगत रोग है किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने ग्रेनुलर कंजक्टिवाइटिस कहा है। अर्थात् वर्त्मगत कंजक्टइवा का ऐसा शोथ जिसमें उपरोक्त लक्षण- हो गये हों उसे ट्रोकोमा कहते हैं विशेष अन्तर नहीं होता। यह रोग बड़ा हठीला चिर समय तक रहने वाला है। इसके दो भेद हैं। एक आशुकारी, दूसरा चिरकारी। यानी एक तो अचानक हो जाता है नेत्रादि लाल होकर शोथ युक्त हो जाते हैं और ऊपर कहे सभी लक्षण मिलते हैं। दूसरा चिरकारी है जिसके होते हुए भी उसे ज्ञात नहीं होता, शनैः शनैः बढ़ता जाता है और आखिर में ज्योतिहीनता, कण्डू, अश्रुस्रावादि होने पर ज्ञात होता है कि नेत्रों में कोई व्याधि है। पाश्चात्य वैद्य या डाक्टर देखते ही कहते हैं कि यह रोग पुराना है। प्रथमावस्था की उचित चिकित्सा न कराने से याप्य होजाता है अर्थात् जितने समय चिकित्सा उपचार होता रहे उतने समय ठीक रहता है। चिकित्सा समाप्ति पर पुनः लक्षण पैदा हो जाते हैं जैसे कि पूर्व थे। इससे नेत्र वर्त्मगत श्लेष्मकला में दाने पड़ जाते हैं। नेत्रों में जल स्राव होना, प्रकाशासह्यता, पीड़ा, चकाचौंधादि लक्षण हो जाते हैं। दोष तथा अवस्थानुसार कभी अधिक कभी कम। इसके अतिरिक्त पलकों का फूलना, मोटा होना, पलकों का बन्द रहना आदि लक्षण भी होते हैं।

उपरोक्त जो दो प्रकार कहे गए हैं उनमें एक में शोथ नेत्र की श्लेष्म त्वचा में ललाई आदि लक्षण उपरोक्त लक्षण होते हैं।

द्वितीय साधारण—शोथहीन जिसमें उपरोक्त लक्षण बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं होते यहां तक कि रोगी को बीमारी की उपस्थिति का ज्ञान नहीं होता। रोग के अधिक बढ़ जाने पर ही ज्ञान होता है। अभी तक वैज्ञानिकों में पोथकी रोगोत्पादक कीटाणुओं के विषय में मतैक्य नहीं है। जापानी वैज्ञानिक नोगुची ने एक प्रकार के कीटाणुओं को रोगोत्पादन में उत्तरदायी ठहराया है। इसी प्रकार एक जर्मनी वैज्ञानिक प्रोवाझेक ने रोहों के दानों की अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा कर यह ज्ञान किया कि यह कीटाणु एक विशेष प्रकार के पिण्ड (प्रोवाझेक्स इन्क्यूजन बौडिज) को रोगोत्पादक ठहराया है, परन्तु अभी तक निश्चित नहीं किया गया।

रोग ज्ञानोपाय चिन्ह—

(१) नेत्रों से स्राव लगातार होना जो कि विशेषकर वायु धूप धूआं की वजह से या नेत्रों पर जोर पड़ने वाले कारणों से होता है।

(२) प्रकाशासह्यता—कभी कभी इतनी अधिक पीड़ा होती है कि रोगी अंधेरे में सिर को नीचा किये पड़ा रहता है। यदि कुछ कम हुआ तो चश्मा लगाकर बाहर निकल सकता है अन्यथा नहीं।

(३) वेदना—पीड़ा सदैव बनी रहती है। प्रायः प्रातःकाल उठने पर नेत्र रगड़ते अनुभव होते हैं मानो नेत्रों में रजःकण पड़े हैं।

(४) नेत्र खोलने में असमर्थता–रोग आंखों की पलकों के भीतर होने से नेत्र लालिमा युक्त होकर अश्रु बहने लगते हैं जिससे कीचड़ उत्पन्न होकर नेत्र चिपक जाते हैं। रोगी पूर्णतया खोलने में असमर्थ होता है।

(५) दर्शन परीक्षा—नेत्रों की पलकों को उलट कर देखने से ज्ञात होगा कि पलकों पर लालिमायुक्त खुरदरे से बहुसंख्यक सरसों के समान उभड़ते हुए दाने दृष्टिगोचर होते हैं। यह दाने छोटे बड़े कई प्रकार के हो सकते हैं। विशेषतः साबूदाने या सरसों के समान खुरदरापन लिए होते हैं। यह दाने अपेक्षाकृत ऊपर वाली पलक में अधिक पाये जाते हैं। अधिक समय व्यतीत होने पर कतारनुमा होकर मोटे हो मांस की तरह झिल्लीनुमा बन जाते हैं, चिरकाल तक चिकित्सा कराने से ठीक होते हैं। इतने विस्तार से वर्णन किया गया है फिर भी अनेकों बार निर्णय में शङ्का रह जाती है।

(६) चिरकालीन होने पर तीन अवस्थाएं—

१–नेत्रों में शोथ होकर मांस की सतह सी बन जाती है और कभी घिस कर पीड़ा शांत हो जाती है।

२–कुछ समय पर्यन्त फिर उत्पन्न हो जाते हैं।

३–यह रोग दीर्घकाली बनकर सदैव जीवन भर दुःख ही देता रहता है। रोगी की दृष्टि क्षीण होती जाती है।

उपरोक्त व्याधि में चिकित्सा न कराने से नेत्र व्रण, परवाल, फूला, क्षत, श्लेष्मावरण की शुष्कता, असह्य वेदना, दृष्टिमान्द्य आदि रोग हो जाते हैं।

चिकित्सा विधि—

प्रायः करके चिकित्सा के दो भेद हैं। एक रोग की रोध का, दूसरी रोग शामक चिकित्सा होती है।

सर्व प्रथम इसका उपचार करने वाले डाक्टर अथवा वैद्य को भी स्वच्छता की ओर ध्यान रखना चाहिये। नेत्रादि को धोने के बाद अपने हाथ भी तुरन्त साबुन द्वारा स्वच्छ कर लेने चाहिए। यदि संक्रमण की शंका हो तो आर्जिरोल या सिल्वर नाईट्रेट की एक एक बूंद नेत्रों में अवश्य डालें।

चिकित्सक रोग परीक्षा के बाद रोगी को टेबल पर लिटाकर बोरिक एसिड के जल द्वारा फोमेन्टेशन करे। तत्पश्चात् अर्जिरोल डाल कर मरहम लगादें। दूसरे अगर रोग बढ़ा हुआ हो तो पहले आयोड़ाइड लोशन की १-२ बूंद नेत्रों में डालें। औषधि लगेगी रोगी को आदेश दें कि नेत्र खोले बन्द करे। एसा करने से जल स्राव होगा नेत्र लाल हो जांयगे। पश्चात् उपरोक्त विधि से बोरिक के उष्णोदक से धावन करे। बाद में उसी प्रकार आर्जिरोल, सल्फासिटेमाइड का घोल (प्रसिद्ध औषधि लोक्यूला) डाले। या मरक्यूरोक्रोम या पोटाशल लोशन इनमें कोई एक डालकर पश्चात् वैसलीन, या टैरामाईसीन, पैनसलीन, एरोम.ईसीन या सल्फा मरहम कोई एक को जरा जरा दोनों आंखों में डाल हलके हाथ से लगादें। यह उपचार सर्वश्रेष्ठ है। बाकी चिकित्सा दोष अवस्था भेद से की जाती है। हर स्थान पर हर औषधि कार्य नहीं करती किन्तु फिर भी हम कुछ निजी प्रयोग लिख रहे हैं। पाठक गण लाभ उठावें—

सर्व प्रथम हर एक व्यक्ति आयोडाईड घोल नहीं बना सकता सो इसकी विधि यह है। (१) सिल्वर नाइट्रेट क्रिस्टल १ ड्राम विशुद्ध जल १ औंस को काली शीशी में हल करलें। उसे सूर्य प्रकाश से बचा कर रक्खें। (२) दूसरी शीशी में इसी प्रकार पोटास आयोडाइड २ ड्राम, जल २ औंस, ग्लसरीन ४ औंस का घोल बनालें। इन दोनों के मिश्रण से सिल्वर आयोडाइड बनता है। अब जब भी दवा तैयार करनी हो नं० १ की शीशी से ४ बूंद और नं० २ की शीशी से ८ बूंद दवा लें। दोनों को ड्रापर द्वारा

मिश्रित करलें। यह पीतिमायुक्त दूधिया रङ्ग की औषधि बनेगी। डालने के समय भी मिक्स करके डालना चाहिए। प्रयोग विधि ऊपर चिकित्सा में वर्णन कर चुके हैं।

अन्य उपयोगी औषधियां--

१-आर्जिरोल घोल १ % का सर्वोत्तम होता है।

२-इसी प्रकार पोटारगल भी १ % का बहने के लिए उत्तम है।

३-कोपर ग्लसरीन भी उत्तम दवा है जिसकी विधि यह है कि तवे पर फुलाकर शुद्ध तुत्थ ½ रत्ती, विशुद्ध जल २ ड्राम ग्लसरीन २ ड्राम मिलालें। पानी के रूप में औषधि तैयार है। १-१ बूंद डालें। औषधि कुछ लगेगी। पश्चात् कोई एक मरहम लगाना चाहिए।

४-आईटो आंखों की महान दवा-गुण तथा रंग में नैनोल के समान है। रसौत २ तोले, तुत्थ १ माशा, स्फटिका ३ माशा, जिंकसल्फेट १० ग्रेन, बोरिक २ ड्राम, एक्रीफ्लेविन ४ रत्ती, कैम्फर (कपूर) १ माशा, जल १ सेर। विधि यह है कि एक सेर जल जब खूब खौलने लगे तब क्रम से सभी औषधियां उसमें डाल दें। तीन पाव रहने पर उतार लें। शीतल होने पर नितार कर शीशी में भर दें। पश्चात् २ ग्रेन मैथलीन ब्ल्यू डाल दें। अति सुन्दर हरा रङ्ग हो जायेगा। प्रातः सायं डालें। सभी अवस्था में लाभप्रद है। बनी आंखों के बाद भी डाली जासकती है।

५-आयुर्वेदिक चन्द्रोदयवर्ती भी इसकी अच्छी औषधि है।

६-निम्न मरहमों को भी प्रयोग कर सकते हैं-पैनसलीन, टेरामाइसीन, एरोमाइसीन, लोक्यूला मरहम आदि आदि अथवा ५ गोली सल्फोनामाईड पीस कर वैसलीन १ औंस में मिलालें। यह मरहम भी अच्छा कार्य करती है।

७-शुद्ध गंगाजल १ बोतल, स्फटिका १।। माशा, तुत्थ २ रत्ती डाल दें। १५ दिवस बाद उत्तम औषधि तैयार है।

—कवि० श्री जगदीश चन्द्र भारद्वाज *B.A.M.S.*
राजकीय औषधालय, जोधका (हिसार)

:: पृष्ठ ८५१ का शेषांश ::

किसी अशुभ तथा अपवित्र बातों का संस्कार नहीं होने देना चाहिए। सदैव यह भावना रहनी चाहिये कि गर्भस्थ शिशु संसार का महान व्यक्ति होगा। इसी उद्देश्य से जननी को अपना आचार विचार और आहार विहार उत्तम रखना चाहिए। उत्तम सन्तान के माता पिता जगत में यश कीर्ति पाते हैं। लोग सुसन्तान के जनक जननी की प्रशंसा करते हैं और उन्हें धन्यवाद तथा साधुवाद देते हैं। जननी को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे उत्तम सन्तान उत्पन्न करनी है। सुसन्तान के अभाव में जननी को बांझ रहना ही श्रेयस्कर है, यह सार्वभौमिक मान्यता है। मत्स्य पुराणवर्णित उक्त बातें सगर्भा के लिये सुन्दर सङ्केत हैं। सगर्भाओं को इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

-विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
आगर (म० प्र०)

\+ \+ \+

:: पृष्ठ ८५० का शेषांश ::

अनिश्चित है। परन्तु जो वैद्य रोगों को समझता है तथा सम्पूर्ण औषधियों के प्रयोग को जानता है और साध्यासाध्य विवेक (*Prognosis*) अच्छी तरह कर सकता है, उसके समक्ष सिद्धि हमेशा हाथ जोड़े खड़ी रहती है।

—डा० पं० घनेन्द्र हर्षुल मिश्र
भिलाई स्पात योजना,
भिलाई (दुर्ग) म० प्र०

सांप का स्वभाव

[ऑल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली से ३०-४-६० को प्रसारित वार्ता]

वार्ताकार श्री रामेश वेदी

जुलाई १९६० की बात है कि मेरे घर में एक ही पिंजरे में दो सांप रह रहे थे। एक था धामन और दूसरा था दुमदराज हफ़ई। उनके भोजन के लिये मैंने छोटे-छोटे मेंढ़क पिंजरे में डाले। धामन एक मेंढक पर झपटा। मेंढक की बजाय दुमदराज हफ़ई का मुख धामन के खुले जबड़ों में आगया। धामन ने उसी को निगलना शुरु कर दिया। सांपों में एक दूसरे को हड़प जाने की ऐसी घटनाऐं अनेक बार देखने में आ जाती हैं। वैसे, बन्दी जीवन में बहुत से सांप खाना पीना छोड़ देते हैं। मेरे एक अजगर ने चार मास तक कुछ नहीं खाया था। मेंढक, चूहे, छुछुन्दर, खरगोश, पिल्ले अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उसके पिंजरे में चहल पहल मचाये रखते, परन्तु वह शान्त पड़ा रहता। हमारे देश में जनसाधारण का यह विश्वास है कि सांपिन अपने सौ अण्डों में से केवल एक छोड़ती है और निन्यांनबे को खा जाती है।

बातचीत में यदि सांप का प्रसंग आ जाये तो इसके रहस्यमय स्वभाव के किस्से कहानियों का और रोमांचकारी घटनाओं के क्रम का कहीं अंत ही नहीं होता।

जीवों का ऐसा समूह सांप ही है जो किसी भी दृश्य साधन के बिना और प्रकट रूप में बिना किसी कठिनाई के इतनी सुगमता से और तेजी से दौड़ लेता है। सांप कैसे चलता है यह जानने के लिये हमें उसकी अन्तः रचना को समझना चाहिये। सांप की रीढ़ की हड्डी में तीन से चार सौ तक कशेरुका होते हैं। पहले दो या तीन कशेरुकाओं को छोड़ कर प्रत्येक के साथ पसलियों का एक जोड़ा लगा रहता है। पसलियों का केवल एक सिरा कशेरुकाओं से जुड़ा होता है और दूसरा सिरा स्वतन्त्र रहता है। ये लम्बी मुड़ी हुई लचकीली और प्रायः खोखली होती हैं। ये सुगमता से आगे तथा पीछे गति कर सकती हैं। सांप के चलने को पसलियों की अन्तः गति का बाह्य निरूपण समझना चाहिये। पसलियों के स्वतन्त्र सिरे साथ-साथ रेंगते हैं। सर्पण में सांप वास्तव में अपनी पसलियों के सिरों पर चलता है जिसमें उसकी त्वचा के छिलके भी सहायता करते हैं। रेंगने की प्रक्रिया सदा पेट के बाहरी भागों से सम्पादित होती हैं। जब सांप रेंगता है तो शरीर के एक पार्श्व की पसलियां आगे जाती हैं और तब छिलकों के किनारे धरती को पकड़ लेते हैं। तब, दूसरी ओर की पसलियां अपने स्थान से उठकर उनके सामने चली जाती हैं। इस क्रिया से शरीर का पिछला भाग आगे खींचा जाता है तथा अगला भाग आगे धकेल दिया जाता है।

इस प्रक्रिया में त्वचा के छिलके कितना महत्वपूर्ण भाग लेते हैं यह इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि सांप को शीशे की चपटी चादर पर रख दें तो वह जरा भी रेंग नहीं पाता क्योंकि वहां पर उसे अपने छिलकों को अटकाने का अवसर नहीं मिलता। चिकनी धरती पर या शीशे की चादर के ऊपर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खूटियां गाड़ दी जांय तो सांप उनके साथ अपने छिलके अटका कर चलने लगता है। सांप की ऊपर की खाल जब पुरानी पड़ जाती है तो त्वचा के नीचे एक तैलीय पदार्थ आ जाने से उसका संबंध नीचे से टूट जाता है। तब यह पुरानी खाल एक लम्बे चोले की तरह पूर्णतया उतर जाती है इसी को कैंचुली कहते हैं। कैंचुली उतरने के बाद सांप चुस्त, सावधान, सजीव और चमकीला दीखता है।

प्रत्येक सांप की जीभ आगे से दो भागों में चिरी हुई होती है। जीभ के आधार पर एक थैली होती है जिसमें उसे समेटा जा सकता है। मुख के अन्दर

जाते ही जीभ इस थैली में चली जाती है। इस लिये सांप का मुख खोलकर देखने से इसका पता ही नहीं चलता। अपनी इच्छानुसार सांप जीभ को बाहर निकाल सकता है और थैली के अन्दर ले जा सकता है। सांप की ऊपर की थूथनी के नीचे बीच के छिलके में एक गढ़ा होता है। मुख बन्द कर लेने पर भी जीभ इसमें से बाहर निकल सकती है। समुद्रीय सांपों में इस गढ़े के दो भाग बन गये होते हैं और जीभ का केवल चिरा हुआ भाग ही बाहर आ सकता है।

जीभ लपलपाने के अनेक प्रयोजन हैं। जब सांप चलता फिरता है तो जीभ खोज करने के अङ्ग या स्पर्शेन्द्रिय के समान कार्य करती है। इसके द्वारा यह मार्ग को टटोलता हुआ आगे बढ़ता है। वस्तुओं को स्पर्श करके उनके विषय में यह ज्ञान प्राप्त करती है। इसके द्वारा यह बहुत सी सूक्ष्म चीजों का भी अनुभव कर लेता है। केंचुली के आवृत हो जाने पर आंखों का छिलका जब अपारदर्शक सा हो जाता है और सांप कुछ समय के लिये आंखों से स्पष्ट देखने में असमर्थ हो जाता है तब यह जीभ से अनुभव करके अपना कार्य सम्पादन करता है। अन्धे की लाठी की तरह यहां सांप की जीभ सहायता करती है।

बहुधा लोग जीभ को डंक मारने का अङ्ग समझते हैं। इसलिये वे सांप को जीभ लपलपाते देखकर बहुत भयभीत हो जाते हैं। सचाई यह है कि जीभ का सांप के विष यंत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ सांप जीभ को वास्तव में डराने के काम में लाते हैं। जीभ के दोनों सिरों को फैलाकर ये हवा में धीरे धीरे तैराते हैं या इसे बाहर निकाल कर एक ही स्थान पर लम्बे डंक की तरह गति शून्य रखते हैं। इस मुद्रा में सांप डरावने भी दीखते हैं। भय से तब जीभ को डंक भी समझ लिया जाता है। जीभ विचारी तो कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती है। यह इतनी मुलायम तथा लचकीली रचना है कि एक पतले झिल्लीदार कागज में भी छेद नहीं कर सकती।

दो भागों में फटी हुई जीभ संभवतः दो नथुनों को गंध पहुँचाने का काम भी करती है। अण्डे खाने वाले सांप को जब कोई अण्डा मिलता है तो वह अपनी जीभ से उसको चारों ओर से टटोल कर निश्चित करता है कि वह खाने के योग्य है या नहीं। ताजा और अच्छा हुआ तो वह उसे झट निगल जायेगा। उसमें कुछ खराबी हुई तो वह उसे वहीं छोड़ देगा। इस बात से ज्ञात होता है कि जीभ द्वारा सांप उसकी अच्छाई और बुराई को जान जाता है।

सरदी के मुकाबिले में सांप धूल और गरमी को अधिक पसन्द करते हैं। सरदी को ये सहन नहीं कर सकते इसलिए इन दिनों ये बाहर नहीं निकलते, पूर्ण विश्राम लेते हैं। यहां तक कि सरदियों के चार महिने ये खाना तक छोड़ देते हैं। यह एक प्रकार की सुषुप्ति की सी अवस्था होती है इसलिए इसे शीत स्वाप कहते हैं। शीत स्वाप में पड़ा हुआ सांप सम्भवतः उस चरबी पर जीवित रहता है जो उसकी खाल के नीचे गरमियों में जमा हो गई थी।

इस समय ये जीवन की प्रायः सब क्रियाओं को स्थगित कर देते हैं। इनके शरीर में रुधिर का संचार भी मन्द पड़ जाता है। सांस इतना मद्यम हो जाता है कि सांप का शरीर हिलता डुलता हुआ नहीं दीखता। फेफड़े निश्चेष्ट से जान पड़ते हैं। शीत स्वाप में फनियर जैसे घातक सांप को छेड़ा जायगा तो वह भी काटने की चेष्टा तक नहीं करता। वायु मण्डल में अनुकूल अवस्थाऐं आ जाने पर सांप अपने स्थगित जीवन को पुनः सक्रिय कर लेते हैं।

सांप अंधेरे में रहना पसन्द करते हैं और इसलिए भूमि के अन्दर बिलों को अपने निवास के लिए चुनते हैं। खोदने के साधन न होने से ये स्वयं तो बिल खोद नहीं सकते, चूहे, दीमक तथा छोटे प्राणियों के द्वारा बनाये हुए बिलों पर अधिकार कर लेते हैं। दुमुही जैसे सांप अपनी

थूथनी द्वारा नरम मिट्टी में गड़ जाते हैं। तरु-मण्डल और ड्रायोफिस सांप वृक्षों पर रहते हैं और हरे पत्तों में खूब बिचरते हैं। शेषनाग बड़े वृक्षों वाले जङ्गलों को पसन्द करता है। दबोइया ताड़ जैसे किसी ऊंचे वृक्ष पर पक्षियों के घोंसलों की खोज में चढ़ जाता है और मछलियों को पकड़ने के लिए पानी में गोता भी लगा लेता है। फनियर और कौड़िया सांप पहाड़ों पर चट्टानों की दरारों में, ईंट के पुराने भट्टों में और मानवीय निवासों में रहते हैं। कामन वुल्फ स्नेक प्रायः कर घरों में ही मिलता है। अजगर पहाड़ों पर और तराई के जङ्गलों में रहता है। जलीय सांप समुद्र तट पर या नदी के किनारों पर पानी के नीचे छिद्रों में रहते हैं। गिण्डोले जैसे छोटे चमकीले सांप नमीदार स्थानों में सड़े गले लट्ठों और कूड़े करकट में रहते हैं।

प्रायः सभी सांप डरपोक होते हैं। छेड़ने पर भाग निकलने या किसी स्थान पर छिप जाने का प्रयत्न करते हैं। ये तभी काटते हैं जब पैर के नीचे दब जांय और बचकर निकल न सकते हों। शिकार का पीछा करते हुए किसी से डरते नहीं, आदमी के पास भी पहुँच जाते हैं।

सांप क्यों काटता है? इसका उत्तर आचार्य वाग्भट् ने यह दिया है—भोजन के लिए, भय से, पांव का स्पर्श हो जाने से, ग्रन्थियों में विष अधिक भर जाने से, क्रुद्ध होने से, दुष्ट स्वभाव होने से, बैर के कारण देव, ऋषि तथा यम की प्रेरणा से। भविष्य पुराणकार इन कारणों में निम्नलिखित कारणों को और शामिल करते हैं। मस्ती में, अपने अण्डे बच्चे की रक्षा के लिए या उसे मारने पर।

अजगर जैसे भारी भरकम और फनियर जैसे अत्यन्त घातक सांपों को पाल के मैंने कुछ परीक्षण किये हैं। मेरा अनुभव है कि यदि कोमलता से उन्हें पकड़ा जाय और उनकी उचित देख-रेख की जाय तो वे काटने की आदत को प्रायः छोड़ देते हैं। १९५७ में एक युवा अजगर मेरे पास कोई साल भर रहा। वह मेरी बैठक के किसी कोने में या अलमारी में पुस्तकों के पीछे कुण्डली मारकर आराम से पड़ा रहता। छोटे बच्चों से भी खूब परिचित हो गया था। लोक विश्वास के विपरीत मैंने आस्तीन के सांप को भी बड़ा भद्र पाया। हां, यह ठीक है कि यदि पालक से कभी उसे आवश्यक उत्तेजना मिल जाय तो वह उसके बदले में तुरन्त घातक यन्त्रों को क्रियाशील करने में चूकेगा नहीं जिसका परिणाम पालक के लिए खतरनाक हो सकता है।

[आकाश वाणी, नई दिल्ली के सौजन्य से]

—श्री रामेशवेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सर्वाङ्ग शोथ पर अनुभव

श्री देवराज शर्मा

रोगी का नाम-बाबूलाल,व्यवसाय-बीड़ी का रोजगार
आयु-३२ वर्ष रोग-सर्वांग शोथ
निवास स्थान-नई वस्ती झांसी
प्रवेशतिथि-२५-४-५८ निर्गमतिथि-११-७-५८

आयुर्वेद शास्त्र में शोथ शोफ श्वयथु इन तीनों का पर्याय रूप में व्यवहार होता है। यह उस अवस्था का नाम है जिसमें दोष त्वचा और मांस के बीच स्थित हो कर उभार उत्पन्न करते हैं। इस उभार में पाक की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसीको प्रचलित भाषा में सूजन तथा आंग्ल भाषा में (*Oedema or Anasarca*) कहते हैं।

परन्तु कटने, जलने, आघात लगने, विद्रधि (फोड़ा आदि) आदि कारणों से जो एक देशीय उभार होता है, उसमें दोष त्वचा, मांस, रक्त, आदि आठ व्रण वस्तुओं को दूषित करते हैं। तथा इसमें पाक की भी प्रवृत्ति होती हैं। इसको आयुर्वेद शास्त्र में व्रण शोथ की संज्ञा दी गई है। आधुनिक विद्वान इसे (*inflammation*) के नाम से पुकारते हैं। उपरोक्त बाबूलाल रोगी सर्वांग शोथ से ग्रस्त था तथा जिस दिन मेरे पास आया निम्न लक्षण विद्यमान थे। सिर से लेकर पैर के नाखुन तक कोई भी ऐसा अंग प्रत्यंग नहीं था जो कि फूला हुआ न हो। यहां तक कि शिश्नेन्द्रिय, अण्डकोष भी फूले हुए थे। उदर परीक्षा करने पर क्षुद्रान्त्र तथा वृहदन्त्र भी शोथ युक्त थे, रक्त की न्यूनता के कारण पाण्डु वर्ण, कोष्ठबद्धता, मूत्र बूंद २ तथा दिन भर में केवल १ या २ बार होता था। क्षुधा नाश, इसके साथ ही साथ तमक श्वास (*Asthma*) उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला हुआ था, जिसके कारण उसे रात्रि में भी निद्रा नहीं आती थी। रोग किस प्रकार और कैसे २ आरम्भ हुआ, यह पूछने पर उसने निम्न कथा सुनाई—

१-२-५८ की तमक श्वास के कारण खांसी अधिक हुई जिसके परिणाम स्वरूप नींद भी न आई तथा प्रातः पेट पर कुछ २ सूजन दिखाई दी जो कि धीरे २ बढ़ती और फैलती गई। चार छै दिन तो मैंने कोई परवाह न की परन्तु जब सूजन अधिक बढ़ने लगी तो मैं घबड़ा कर एक प्रतिष्ठित डाक्टर महोदय के पास गया। उन्होंने मुझे एक सूई लगादी तथा चार खुराक मिक्सचर दे दी और दूसरे दिन मूत्र भी साथ लाने को कहा। मैं भी उस डाक्टर महोदय के आदेशानुसार दूसरे दिन अपना मूत्र लेकर पहुँच गया। पुनः पूर्व दिनवत् सूई तथा मिक्सचर मिला, ऐसी व्यवस्था एक सप्ताह तक चली तथा मैं भी अपने आप को स्वस्थ प्रतीत करने लगा।

एक सप्ताह के बाद पुनः सूजन होनी आरम्भ हुई तथा पूर्ववत् चिकित्सा करने पर शान्त हो गई।

कुछ दिन के बाद फिर सूजन आरम्भ हुई। तब तो मैं चिकित्सा से भी तंग आ गया था तथा जिस सूई से मुझे तत्काल लाभ होता था उस का नाम नैप्टाल (*Neptol*) था। फिर वही सूईयां कुछ और भी लीं परन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होने लगी और मैं फिर फूल कर कुप्पा हो गया तथा स्थानीय सिविल अस्पताल में भरती होने के निमित्त चल [illegible]या। वहां पर एक सप्ताह भरती रहने से भी मुझे कुछ लाभ न हुआ तथा मुझे मेरी इच्छा न होते हुए भी छुट्टी दे दी गई तथा मैं अपने घर चला आया। कल कुछ सज्जनों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा की राय दी अतः आज मैं आप की शरण में आया हूं।

उसकी यह कथा सुन कर तथा दशा को देख बिपत्ति में पड़ गया कि इसको अन्तरंग विभाग में लूं या नहीं। मेरे कर्मचारी भी चुपके चुपके यह कह रहे थे कि यह दो चार दिन का महमान है इसको भरती करने से क्या लाभ, परन्तु उस का शोथ जो कि पेट से हुआ था वह मुझे कुछ ढ़ाढस बंधा रहा था कि स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुआ शोथ यदि मनुष्य को पैरों से आरंभ हो और स्त्री को मुख से आरंभ

हो तथा स्त्री और पुरुष दोनों को ही यदि गुप्त स्थान से आरंभ हो तो असाध्य होता है अर्थात् रोगी नहीं बचता अवश्य ही मर जाता है ऐसा शास्त्र का आदेश है।

अस्तु मैंने भगवान का नाम लेकर तथा अपने आयुर्वेद शास्त्र पर भरोसा रख कर उसे अन्तरंग विभाग में भरती कर लिया तथा औषधि की व्यवस्था शाम को होगी ऐसा कह कर मैं चला गया शाम को चार बजे लौटने पर मैंने अपने बहिरंग विभाग के काय चिकित्सा के प्रधान चिकित्सक आदरणीय श्री लालचन्द्र जी वैद्य से भी उस रोगी को दिखा कर सम्मति ली। उसकी निम्न प्रकार चिकित्सा व्यवस्था की गई—

पुनर्नवाष्टक क्वाथ के आठों द्रव्य एक २ पाव लेकर मोटा चूर्ण करके आठ सेर पानी डाल कर उबालने को रख दिया। आधा जल शेष रहने पर छान करके एक बड़ी बोतल में भर कर रोगी के पास रखी हुई जाली में रख दिया तथा नर्स को आदेश दे दिया कि हर दो घंटे के अन्तर से एक २ कप बराबर पिलायें।

२६-४-५८ को प्रातः रोगी की दशा पूर्ववत् ही थी परन्तु रात में तीन दस्त हो गये थे। यही चिकित्सा क्रम एक सप्ताह तक निरन्तर किया गया।

इससे रोगी को दिन भर में ३/४ दस्त तथा ६/७ बार अधिक मात्रा में मूत्र भी हो जाता था। तथा शोथ भी चौथे दिन से कुछ कम होना आरम्भ होगया। उपरोक्त क्वाथ पूर्ववत् ३०-५-५८ तक निरन्तर दिया गया। तब तक रोगी का शोथ समाप्त प्रायः हो चुका था।

पथ्य—में केवल दूध तथा पका हुआ पपीता ही दिया जाता था। नमक तथा जल भी बन्द था। (वर्जयेत् लवणं जलम्) अब रोगी भी कड़ुवा काढ़ा पी कर तंग आ चुका था तथा उसका रोग भी दूर हो चुका था। अतः उसने किसी रूप में भी काढ़ा पीने से इनकार कर दिया अतः निम्न व्यवस्था की गई—

(१) प्रातः तथा सांय १-१ कप पुनर्नवाष्टक क्वाथ।

(२) पुनर्नवा मंडूर १ माशा श्वेत पर्पटी आधी आधी प्रातः सायं मधु से दी गई।

पथ्य—दलिया दूध फल पुनर्नवा तथा मकोय का शाक (बिना नमक) भुने हुए चने कभी कभी उबाल कर ठंडा किया हुआ जल भी पीने को दिया जाता था। गेहूं तथा चने की रोटी दूध के साथ।

१०-७-५८ तक यही चिकित्सा क्रम चला। अब रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ था। परन्तु तमक श्वास का दौरा कभी-कभी हो जाया करता था। उसको याप्य रोग समझते हुए मैंने भी अधिक ध्यान न दिया।

नोट—पुनर्नवाष्टक क्वाथ के द्रव्यों को तीन बार उबालने के बाद फेंक दिया जाता था।

—श्री देवीराम शर्मा,
आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झांसी।

भार उठाने एवं चलने से थका हुआ, उपवास में ... अध्ययन, व्यायाम तथा चिन्ता में निरत ... रूक्ष देह को वमन कराने से वात प्रकोप, ... कृति तथा क्षत हो सकते हैं।

गर्भिणी को गर्भपात, सुकुमार को वमन से ... पात हो उर्ध्व अथवा अधः रक्त प्रवृत्ति, दुश्छ- ... से दोष उत्क्लेशित हो कर शरीर से बाहर ... निकल सकने से विसर्प, स्तम्भ, जड़ता, वैचित्य ... मृत्यु कर देगा। उर्ध्वरक्तपित्त में अधिक रक्त ... वृत्ति होगी।

उर्ध्ववात, आस्थापित, अनुवासित को वमन से ... वायु की ऊपर को अधिक प्रवृति, हृदय रोग में ... गति अवरोध (*Heart failure*) उदावर्त में ... वृद्धि, मूत्राघात, प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदर, ... ष्ठीला एवं स्वरभेद से वमन में अधिक तीव्र शूल, ... तिमिर में रोगवृद्धि, शिरःशूल, पार्श्वशूल, कर्णशूल, ... शूल में वमन तीव्रतरशूल करेगा।

अतः उपर्युक्त अवस्थाऐं अवम्य हैं। क्यों का ... र इन अवस्थाओं में वमन कराने से उत्पन्न ... परिणाम स्वयं बता रहे हैं। हां इतना अवश्य ... कि-"इन सब रोगियों में भी यदि विरुद्ध भोजन, ... अजीर्ण पर भोजन, आम दोष आदि से विष ... उत्पन्न हो गया हो तो अवश्य वमन करा देना ... चाहिए-कारण कि विषाक्तता शीघ्र प्राणघातक हो ... सकती है।"

डाक्टर घोष के अनुसार-

"The emetics are contra-indica-ted in hernia, aneurism, severe heart diseases, prolapse of the rectum and uterus, peritoneal and intestinal in-flammation and in cases of threatened abortion or where there is tendency to haemorrhage or atheroma of the vessels and in debiliated conditions for fear of collapse।"

वमन योग्य-

"शेषास्तु वाम्याः" कह कर उपर्युक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त अवस्थाओं में आचार्य ने वमन कराने को कहा है। महारोगाध्याय च० सू० अ० २० में "वमनं तु सर्वेषक्रमेभ्यःश्लेष्मणि प्रधानतं मन्यन्ते भिषजः।" लिख कर वमन को श्लेष्माप्रधान अवस्थाओं के लिए आवश्यक बताया है। कफ के रोगों में वमन ही श्रेष्ठ उपक्रम समझना चाहिए। ऐसी मुख्य मुख्य वमन योग्य अवस्थाऐं बताते हुए सिद्धिस्थान के अध्याय २ में चरक ने लिखा है-"प्रतिश्याय, कुष्ठ, नवज्वर, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, प्रमेह, मन्दाग्नि, विरुद्ध भोजन, अजीर्ण में भोजन, विशूचिका, अलसक, विषपीत, गरपीत, सर्पदष्ट, दग्धविद्ध, अधोगरक्तपित्त, प्रसेक, जी मिचलाना, अरुचि, अपचन, अपची, अपस्मार, उन्माद, अतिसार, शोष, पाण्डु, मुखपाक और दुष्ट स्तन्य अवस्थाओं में वमन कराना चाहिए।

इन सभी अवस्थाओं में दो चीजें ही मुख्यतः स्पष्ट हो रही हैं-(१) कफाधिक्य (२) विषाक्तता। अतः पूर्वकथित कफजन्य अवस्थाओं में तथा विषाक्तता में वमन प्रयोजनीय है ऐसा समझना चाहिए।

वमन के समय-

जिसे वामक कल्प पिला दिया हो उसको वमन के समय विशेष अवस्था (*Position*) में बैठना बताया है। कहा है कि—

"वमन के समय स्वल्प परिश्रम से ही बहिर्मुख होते वेगों को प्रेरित करते हुए गर्दन तथा शरीर के ऊपर के भाग को झुका कर वेग के साथ वमन करनी चाहिए। उस मनुष्य को वमन करते हुए न बहुत झुक कर, न बहुत ऊंचा और न ही गर्दन को एक पार्श्व की ओर ही घुमाना चाहिए। बहुत ही ऊंचा अर्थात् सीधा बैठ कर वमन करने से पीठ व हृदय में पीड़ा होती है, अधिक झुक कर वमन करने से शिर और कोष्ठ में पीड़ा होती है, पार्श्व पर गर्दन झुका कर बैठने से पार्श्व, कोष्ठ, हृदय तथा जत्रु-

सन्धियों से ऊपर के भाग में पीड़ा होती है। अतः सुखकर अवस्था में बैठ कर ही वमन करें। यदि वेगों के आने में कुछ रुकावट अनुभव हो तो कमल नाल अथवा नखादि रहित साफ तर्जनी व मध्यमा उंगली को कंठ में स्पर्श कर वमन करना चाहिए।"

वमन के वेग और निसृत दोष—

इस प्रकार वमन करते रोगी को विज्ञ वैद्य देखता रहे और वमन के वेगों का ज्ञान करे। चरक सिद्धिस्थान अ० में-"जघन्य मध्य प्रवरेतु, वेगाश्चत्वार अष्टा वमने षड्ष्ठौ। कहकर अवर वमन के चार वेग, मध्यम के छः और प्रवर के आठ वेग बताए हैं।

इन वेगों के साथ ही साथ निकले दोष के प्रमाण को भी देखें। सुश्रुतानुसार हीन अथवा अवर वमन का प्रमाण आधा प्रस्थ, मध्यम का एक प्रस्थ, तथा प्रवर का दो प्रस्थ होगा।

"तथाविधे च वमने क्रमात्तदर्धम"

कह कर वमन का प्रमाण विरेचन से आधा बताया है। इन प्रमाणों के लिए हमें १३॥ पल का एक प्रस्थ मानना होगा जैसा कि लिखा भी है—

'वमनं च विरेके च तथा शोणित मोक्षणे।
सार्धत्रियोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

यह सभी वेग और निसृत दोष के प्रमाण सम्यक् योग में होंगे। इन सब का ज्ञान करते हुए चिकित्सक वेगों को तथा दोष प्रमाण को देखें।

वमन द्वारा दोष निर्हरण—

वमन द्वारा अपक्व दोष का ही निर्हरण होता है। वामक कल्प लेते ही तत्काल वमन हो जाने का यही कारण है कि वह कल्प जाते ही दोषों को बिना परिवर्तन करे अपकावस्था में ही निकाल देता है। इसी से यदि कल्प देने के कुछ देर पश्चात वमन न हो तो पुनः और कल्प पिला देना चाहिये। इस दोष निर्हरण को चरक ने कल्प स्थान अ० १२ में इस प्रकार लिखा है—

"अपक्वं वमनं दोषं पच्यमानं विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनस्यातः पांक न प्रतिपालयेत"॥

अर्थात्—वमन औषधि अपक्व ही दोष निकालती है और विरेचन पच्यमानावस्था अतः वमनौषधि के पाक की प्रतीक्षा न यदि थोड़े समय बाद तक वमन न आवे तो ही पुनः औषधि पिलावें।

वमन का सम्यक योग—

वमनौषधि कब बन्द कर दी जाए या यों कृत वमन के क्या लक्षण होते हैं इसके लिए सूत्र० अ० १५ में बताया है कि—"वेगों की होना, अत्यधिक कष्ट न होना, शोधन, स्वयं ही वेगों का रुक जाना तथा दोषों का से निकलना—सम्यक् योग में होता है।"

दोषों के क्रम के विषय में सिद्धिस्थान के अ० में चरक ने लिखा है—

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
पस्यैति सम्यक् वामितः स इष्टः।

कह कर सम्यक् योग में क्रमशः कफ, पित्त वायु का निकलना बताया है। इसे हम पित्तान्त ही कहेंगें क्योंकि पित्त के निकल जाने के बाद ही उर्ध्व मार्ग में आवेगी। इसी से वमन के अन्त वायु आना लिखा है।

चरक सिद्धिस्थान में हृदय, पार्श्व, मस्तिष्क और इन्द्रियों के मार्गों की शुद्धि तथा देह की लघु पूर्व वर्णित लक्षणों के अतिरिक्त सम्यक् योगों बताए हैं। सम्यक् योग ही वास्तव में फलदा वमन का स्वरूप है।

वमन का अयोग और अतियोग-

"सर्वथा वमन का न होना अथवा अल्प में होना, वमनार्थ पिलाई गई औषधि मात्रा वमन द्वारा निकलना तथा वेगों का रुक रुक प्रवृत होना, अयोग, तथा झागयुक्त-चन्द्रिकाओं रक्त का वमन में आना जो मयूरपुच्छवत् हों योग होता है।

इसमें शीघ्र ही शोधन कर लंघन पाचन कराना चाहिए।

इस प्रकार यह दस व्यापत्तियां चरक ने (वमन-विरेचन की) बताई हैं। इनमें आध्मान, परिस्राव, हृद्ग्रह, अंगग्रह, विभ्रंश, उपद्रव और क्लम अयोगोत्पन्न, तथा परिकर्तिका, जीवादान और स्तम्भ अतियोग से उत्पन्न होती हैं। इनका ज्ञान रखना तथा जिन कारणों से यह उत्पन्न होती हैं, उनका परित्याग विज्ञ चिकित्सक के लिये आवश्यक है।

विरेचन

आयुर्वेद में सदैव ही एक विशेष बात देखने को मिलती है कि जो कुछ भी कहा गया है उसके कहने का कारण अवश्य बताया है और यही कारण है कि आर्ष ग्रन्थों में प्रत्येक विषय का युक्तियुक्त वर्णन मिलता है। यहां पंचकर्म को ही लीजिए आरम्भ में वमन क्यों कराना चाहिए और वमन के पश्चात् विरेचन क्यों? इसे कितने वैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया है।

कहा है कि बिना वमन कराए ही यदि विरेचन करा दिया गया हो तो शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जायेंगे। शाङ्गधर में लिखा है—

'स्निग्ध स्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात्सम्यक् विरेचनम्।
अवांतस्यत्वधः स्रस्तो ग्रहणी धारयेत् कफः॥
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याद् जनयेद्वा प्रवाहिका।"

अतः आवश्यक हो जाता है कि इन विकारों से बचने के लिए वमन के पश्चात ही विरेचन कराए। और भी—

'स्निग्ध स्विन्नाय वान्ताय दातव्यं तु विरेचनं।
अन्यथा योजित ह्येतद् ग्रहणीगद कृन्मतम्॥

विरेचन को वमन के पश्चात् प्रयोग न करने से ग्रहणी आदि उपद्रव होते हैं। आइए अब इनको शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से देखें।

आमाशय कफ का स्थान है। जिस रोगी को वमन नहीं कराया है उस रोगी के आमाशय में कफ संचित होगा। अब जो विरेचन कल्प दिया जायगा वह आमाशय में पहुँच कर ही आगे जा सकेगा। आमाशय में वह कफ इस कल्प को आगे जाने से रोकेगा इसका विरोध करेगा। यदि कफ शक्तिशाली रहा और विरेचन कल्प हलका हुआ तो वह औषधि कफ के साथ मिल वमन के द्वारा बाहर निकल जायेगी अथवा दूसरे यह हो सकता है कि वह कल्प वमित भी न हो और विरेचन भी न कर सके। इस अवस्था में पेट में उथल पुथल मच जाएगी और वह मनुष्य मछली की तरह तड़फेगा। तीसरे यदि वह विरेचनीय कल्प तीक्ष्ण हुआ तो स्वयं आगे जाता हुआ आमाशय स्थित कफ को भी साथ ले जाएगा। अब वह कफ लघ्वान्त्र में जाते समय ग्रहणी को आच्छादित करता है और ऊपर शाङ्गधरोक्त मन्दाग्नि, गुरुता, प्रवाहिका आदि लक्षण उत्पन्न कर ऐंठन से विरेचन द्वारा निकलता हुआ उदरशूल उत्पन्न करेगा। इन सभी विकारों से बचने के लिये आयुर्वेद वमन के पश्चात् ही विरेचनाज्ञा देता है।

आजकल विरेचन का कुछ अधिक बोल बाला है, कब्ज रहता है अतः दस्तावर दवा ले ली। इस तरह बिना इसके रहस्य को समझे विरेचन लेकर बहुत से मनुष्य मन्दाग्नि आदि लक्षणों से पीडित मिलेंगे। कहा यह जाता है कि यह बदपरहेजी से हुआ है परन्तु वास्तविकता यह है कि वह ऊपर कहे अनुसार विरेचन से पूर्व कफ को हटाने का प्रबन्ध नहीं करते। यूनानी में पहले मुंजिस देते हैं। परन्तु वह इतनी स्वास्थ्यप्रद विधि नहीं, हां फिर भी अनायास

विरेचन लेने से पूर्व मुंजिस लेना भी अच्छा है, तो भी आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त के अनुसार वमन के पश्चात् ही विरेचन फलप्रद कहा जाएगा।

विरेचन से अभिप्राय—

जैसा कि वमन प्रकरण में लिख आये हैं कि उर्ध्व मार्ग से दोष निर्हरण वमन और अधोमार्ग से दोष निर्हरण विरेचन कहलाता है, यहां अधःमार्ग का अर्थ गुदा से ही है।

विरेचन से पूर्व—

विरेचन कराने के लिए भी गृह निर्माण करना होगा और वह ठीक उसी प्रकार होगा जैसा कि वमन के प्रकरण में बता आए हैं। उपकरण भी उसी तरह होंगे। चरक सू० अ० १५ में इसका सुन्दर विवेचन किया है।

जिस पुरुष को विरेचन कराना हो उसे पूर्व वमन कराया जा चुका हो—ऐसा अभी २ पीछे लिख आए हैं। इस वमन कराए गए पुरुष को संसर्जन क्रम के पश्चात् स्वेदन कराया जाए और फिर विरेचन कल्प का प्रयोग कराएं। लिखा है —

विलेपीः क्रमागतंचैवं, स्नेह स्वेदाम्यमुपद्य विरेचयेत्।

अर्थात्—वमन के पश्चात् विलेपी आदि का क्रमशः प्रयोग करने के बाद पुनः स्नेह स्वेद करावें और तब विरेचन देवें।

अतः विरेचन से पूर्व वमनोक्त गृहनिमार्ण एवं उपकरण सेवक आदि का पूर्व प्रबन्ध करना होगा तथा स्नेहन—स्वेदन कराने के पश्चात् विरेचन कराना होगा।

अविरेच्य—

कुछ अवस्थाओं में विरेचन नहीं कराना चाहिए क्योंकि उन अवस्थाओं में कराया गया विरेचन लाभ पहुंचाने के स्थान पर शरीर में विकृति उत्पन्न करने वाला ही होता है। इनमें दिया गया विरेचन दुष्परिणाम उत्पन्न करता है। नीचे वे अविरेच्य अवस्थाएं तथा प्रत्येक के साथ, तद् अवस्था में विरेचन कराने से उत्पन्न दुष्परिणाम लिखने जा रहे हैं।

चरक सिद्धि स्थान अ० २ में लिखा है कि—

(१) सुभग – जिनका लालन पालन बहुत सुख (*Luxory*) से हुआ हो, को विरेचन देने से हृदयाघात तथा रक्तप्रवृति आदि उपद्रव हो जाते हैं।

(२) क्षतगुद—में विरेचन से घाव में प्राणावरोधक तीव्र यन्त्रणा होने से।

(३) मुक्तनाल—बलियों की असमर्थता में तथा

(४) अधोग रक्तपित्त—में अति प्रवृति के कारण मृत्यु होने से।

(५) लंघन, निरूह पश्चात् एवं दुर्बल इन्द्रिय में औषधि के बल को न सह सकने से।

(६) काम, शोक, क्रोध आदि में व्यग्र को अयोग होने से।

(७) अजीर्ण में—आमदोषोत्पत्ति से जिससे विशूचिका अलसक आदि होने से।

(८) नव ज्वर में—आम प्रकोप (दोष), वायु प्रकोप होने से।

(९) मदात्यय में—वायु प्रकोप के कारण।

(१०) आध्मान—में तीव्रतर आनाह तथा मृत्यु होने से।

(११) कोष्ठ के शल्यार्दित तथा अभिहत होने में—वायु (क्षताश्रित) के प्रकोप होने से।

(१२) अतिस्निग्ध में—विरेचन से अगंग्रह होने से।

(१३) क्रूर कोष्ठ में—विरेचन से प्रवृद्ध दोषों से हृच्छूल, पर्वभेद, आनाह, अगंमर्द, मूर्च्छा एवं क्लम होने से।

(१४) क्षीण—अतिस्थूल, अतिकृश, वृद्ध, दुर्बल, बालक, श्रान्त, क्षुधित, तृषित में विरेचन योग को न सह सकने से बलनाश एवं मृत्यु होने से।

(१५) गर्भिणी—में गर्भपात हो जाने से विरेचन देने का विरोध किया है।

उपर्युक्त पन्द्रह मुख्य अवस्थाएं विरेचन के अयोग्य बताई है क्योंकि इनमें विरेचन से ऊपर लिखे दुष्परिणाम हो जाते हैं। इन दुष्परिणामों से बचने के लिए ही आचार्य ने ये अविरेच्य कही हैं।

बिजली की मशीन (Medico-Electric machine)

※ नवीन प्रकार की टिकाऊ व प्रभावशाली ※

अभी तक जो बिजली की मशीन हम ग्राहकों को सप्लाई कर रहे थे वे दिल्ली से तैयार कराकर मंगावे थे। उनमें यह कमी थी कि थोड़ा सा झटका लग जाने से कनैक्शन अस्त-व्यस्त हो जाते थे तथा जल्दी ही बेकार हो जाती थीं। अब हमने स्वयं अपने यहां नवीन ढङ्ग से मशीन तैयार करना प्रारम्भ कर दिया है। इस मशीन की विशेषताऐं—

१—इसके मुख्य पुर्जे बिजली फैक्टरी कलकत्ता से निर्माण कराकर मंगाए जाते हैं, अतएव—

२—यह मशीन अधिक टिकाऊ तथा पूर्ण विश्वस्त है।

३—इसमें चार सैल (टार्च में पड़ने वाले) डाले जाते हैं, अतएव यह मशीन अधिक ताकत की है।

४—यह मशीन २ सैल से भी काम में ली जा सकती है, ४ सैल की ताकत यदि रोगी सहन न कर सके तो २ सैल लगाकर व्यवहार कर सकते हैं।

५—यह मशीन सुन्दर आकर्षक तथा अनेक कष्टसाध्य रोगों में चमत्कारिक लाभ करने वाली है, अतएव—

६—यह मशीन निःसंदेह बहुत समय तक काम देने वाली है।

७—आपकी डिस्पेंसरी की शोभा एवं रोगियों के लिये आकर्षक वस्तु है।

इस मशीन को मंगाकर आपको पूर्ण सन्तोष लाभ होगा, यह हम गारन्टी करते हैं। व्यवहार विधि पुस्तक मशीन के साथ फ्री भेजी जायगी।

इसका मूल्य—

बिना सैल की इस मशीन का मूल्य ३५.०० है। सैल आप बाजार से लेकर स्वयं डाल लीजियेगा। ४ सैल रखने से बजन बढ़ता है। यदि सैल साथ मंगाना चाहें तो १.५६ पृथक् देना होगा। पोस्ट पैकिङ्ग आदि व्यय पृथक् देने होंगे। आर्डर के साथ ५.०० एडवांस मनियार्डर से अवश्य भेजें।

—किसी प्रकार का संदेह न करते हुए मशीन शीघ्र मंगावें —

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥
S.K.B.
आविर्बभूव कलशं दधदर्णवाद्यः,
पीयूषपूर्णममरत्वकृते सुराणाम् ।
रुग्जालजीर्णजनताजानित प्रशंसो,
धन्वन्तरिः स भगवान् भविकायभूयात् ॥
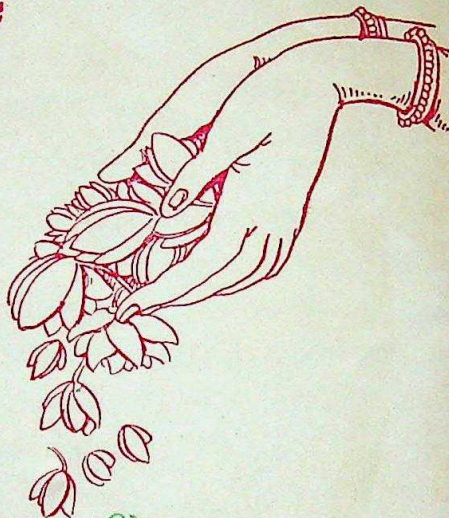
राष्ट्रजातिके
मूलाधारभूत भारतवर्षके
सात लाख गांवोंमें निवास
करनेवाली जनताकी वास्तविक
सेवाओंके हेतु कार्यालयके हितैषी सोल
एजेण्ट, स्टाकिस्ट, एजेण्ट, ग्राहक तथा
अनुग्राहक एवं उच्चकोटिकी आयुर्वेदिक तथा
पेटेंट दवा एवं शृङ्गार सामग्रियोंका समर्थन
करनेवाली गुणग्राही जनताके कर कमलोंमें यह
डाबर हीरक जयन्ती प्रकाशन हम सादर समर्पित करते हैं।

विनीत—
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०, कलकत्ता
के संचालक।

कार्यालय के स्वनामधन्य प्रतिष्ठाता

डाक्टर एस. के. बर्म्मन
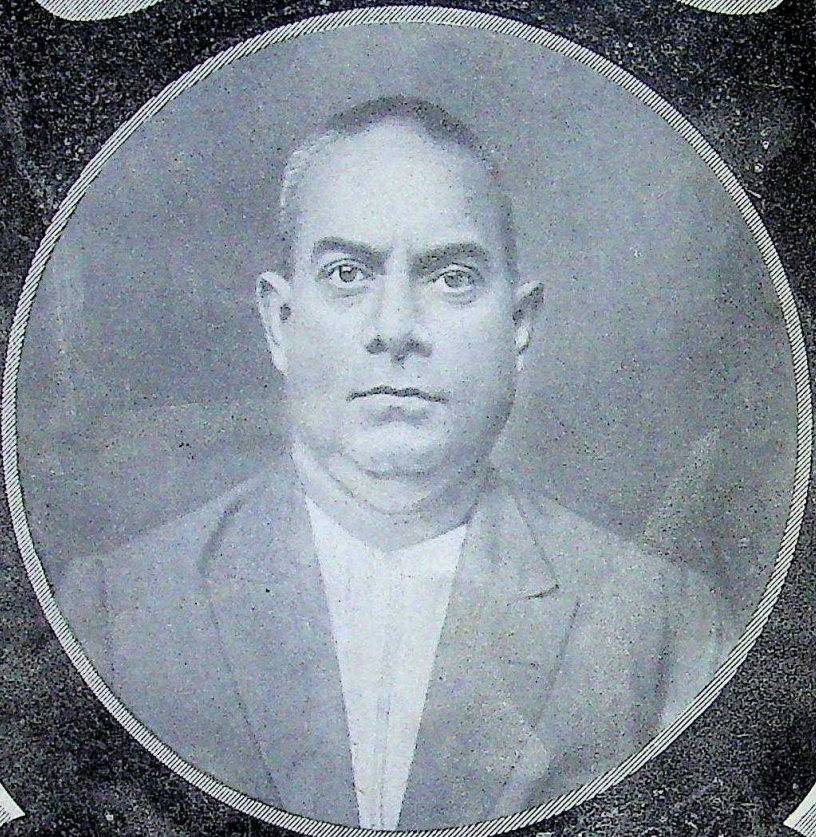
प्रथम आदर्श मैनेजिंग डाइरेक्टर
श्रीयुत् चुन्नीलालजी बर्म्मन

हमारी सेवायें

हीरक जयन्ती प्रकाशन

परमात्माके अनुग्रह और अपने हितैषियोंके सौहार्द्र और शुभाशीर्वादके फलस्वरूप कार्यालय अपने जीवनके साठ वर्ष पूर्ण करनेमें समर्थ हुआ है और इस उपलक्षमें गुणग्राही जनताके समक्ष सेवाञ्जलिके रूपमें प्रस्तुत 'हीरक जयन्ती प्रकाशन' समर्पण कर रहा है। इस स्मरणीय अवसर पर हमारी इच्छा आयुर्वेद, विज्ञान, चिकित्सा, वनस्पति तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकोपकारी साहित्य सामग्रीके साथ एक वृहत् प्रकाशन जनताके सम्मुख उपस्थित करनेकी थी; किन्तु वर्त्तमान् नर-संहारक भीषण युद्ध-जनित कठिनाइयोंने हमें इस जनहितकर भावनाको कार्यरूपमें परिणत करने न दिया। फिर भी उक्त प्रकाशन प्रस्तुत रूपमें ही हम आपकी सेवामें भेंट कर रहे हैं। आशा है, त्रुटियोंको सुधारते हुए आप इसे स्वीकार करेंगे और हमें प्रोत्साहन देंगे, जिससे हम पूर्वापेक्षा अधिक कर्तव्य-परायणताके साथ राष्ट्रकी सेवा करनेमें समर्थ हो सकें।

ले०—श्री पूर्णचन्द्र वर्म्मन

औषधि निर्माण कार्यका महत्त्व—

यों तो भारतवर्षमें औषधि-निर्माण करनेवाले अनेकों कार्यालय हैं किन्तु ऐसे प्रतिष्ठान इने-गिने ही होंगे जो जनता जनार्दनकी सेवा भावनाको लेकर औषधि व्यापारमें संलग्न हों। आपको अच्छी तरह मालूम है कि दूसरे व्यापारोंकी तरह औषधियोंका व्यापार केवल धनोपार्जन करनेके लिये नहीं है। आप समझ सकते हैं कि औषधि-निर्माणकर्त्ताके ऊपर प्राणियोंके जीवन-मरणका उत्तरदायित्व है। अतः यह आसानीसे समझा जा सकता है कि औषधि निर्माणकार्य कुछ आसान नहीं है। आयुर्वेद शास्त्रका मूल सिद्धान्त भी यही है कि चिकित्सकके अन्तःकरणमें रोगीका इलाज करते समय परोपकारकी भावना विद्यमान हो और वह यह समझे कि यह चिकित्सा हम स्वधर्म पालनके उद्देश्यसे कर रहे हैं। कारण, आयुर्वेद शास्त्र जिसे स्वयमेव भगवान्ने धन्वन्तरि रूपमें प्रकट होकर प्रचारित किया है, वह मानव कल्याणके लिये है। भगवान् चरकने भी आयुर्वेद की संक्षिप्त परिभाषा बतलाते हुए बहुत सुन्दर शब्दोंमें यह ठीक ही कहा है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।

इस कथनसे यह स्पष्ट है कि प्राणियोंकी आयुकामनाके हित ही आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। इतना ही नहीं, एक विद्वानने तो

यहां तक कह दिया है कि जो चिकित्सक उचितरूपसे चिकित्सा नहीं करता उसे समझना चाहिये कि सृष्टिकर्त्ताने प्रजाके संहारके लिये यमदूत-रूपमें उसे भेजा है। इन सब सिद्धांतोंसे यह स्पष्ट है कि औषधि-निर्माणकर्ताका राष्ट्रके समक्ष कितना बड़ा उत्तर-दायित्व है।

स्वनामधन्य संस्थापक एवं उनके उत्तराधिकारी—

उपर्युक्त बातें जब हमारे सामने आती हैं तो हम अपना यह गौरव समझते हैं कि कार्यालयके स्वनामधन्य प्रतिष्ठाता डा० एस० के० बर्म्मन (स्वर्गीय श्रीकृष्ण बर्म्मन) ने अत्यन्त शुभ मुहूर्तमें **'वह जीवन ही क्या जो दूसरेकी जान को आराम न दे सके'** इस आदर्श सिद्धान्तके अनुसार इस कार्यालयकी संस्थापना कर यथा-शक्ति पीड़ित मानव समाज की उपयुक्त सेवायें करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन समाप्त किया और तदनुसार अपने उत्तराधिकारियोंके समक्ष भी जनता-जनार्दन की उपयुक्त सेवाओंका आदर्श रखा। संस्थापक महोदयके सदुद्देश्यों की रक्षा करते हुए उनके उत्तराधिकारी स्वर्गीय श्रीमान् हीरालालजी बर्म्मन एवं श्रीमान् चुन्नीलालजी बर्म्मनने भी संस्थापक महोदयके हाथोंसे बोये हुए पौधेको अत्यन्त कार्य कुशलता, दक्षता और लगन एवं परिश्रमके साथ सींच कर एक वृहत् वृक्षके रूपमें पहुंचा दिया। कार्यालयके इतिहासको देखनेसे आप जान सकेंगे कि श्रीमान् चुन्नीलालजी बर्म्मनके समयमें ही कार्यालय को लिमिटेड रूप प्राप्त हुआ और इसमें अन्वेषण विभाग, आयुर्वेदिक विभाग एवं Bonded Laboratory (स्पिरिट रसायन शाला) की संस्थापना हुई। इन कार्योंके अतिरिक्त उक्त उत्तराधिकारी महोदयने भी संस्थापक महोदयके आदर्श सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए लोक सेवा, चिकित्सा, शिक्षा तथा साहित्य एवं दीन दुःखियोंकी सेवा सम्बन्धी अनेकों प्रशंसनीय कार्य किये। यही कारण है कि ईश्वरकी कृपाके साथ ही साथ जनता जनार्दनका पूर्ण सहयोग कार्यालयको प्राप्त हुआ और यह क्रमशः विकसित होता हुआ अपने जीवनके ६० वर्षोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हुआ है।

उपर्युक्त कर्मनिष्ठ उत्तराधिकारियोंके बाद हमारे ऊपर इस वृहद् प्रतिष्ठानके कार्य संचालनका गुरुतर भार पड़ा है। इसका निर्वाह करनेमें हम कहांतक सफल हो रहे हैं इसका निर्णय तो आपही कर सकते हैं; किन्तु हम इतना विश्वास दिलाते हैं कि स्वनामधन्य संस्थापक एवं उनके सुयोग्य उत्तराधिकारियोंके पथ-प्रदर्शनके अनुसार ही हम यथासाध्य प्रतिष्ठानके कार्योंको अग्रसर करनेकी सतत चेष्टा कर रहे हैं।

कार्यालयकी वस्तुओंका स्टैण्डर्ड—

कार्यालय आरम्भसे अपनी वस्तुओंके स्टैण्डर्डकी रक्षा करता चला आया है और अबतक इस सिद्धान्तके अनुसार ही औषधि एवं शृंगार सामग्रियोंका निर्माण कर रहा है। यहां तक कि वर्त्तमान भयंकर युद्धजनित कठिनाइयोंके बावजूद कार्यालयने अपनी वस्तुओंके स्टैण्डर्डकी रक्षा करनेकी चेष्टा की है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करनेमें कार्यालयको कभी-कभी अपनी कुछ वस्तुओंको ठीक समय पर उपस्थित न करनेके कारण जनता को निराश करना पड़ा है, किन्तु इस स्थितिके लिये यह क्षम्य है। इसका कारण आपसे छिपा नहीं है। आपको भलीभांति ज्ञात है कि औषधि निर्माणमें लगनेवाले मूल द्रव्यों का मिलना कितना मुश्किल हुआ है। ऐसी स्थितिमें यदि कार्यालय अपने स्टैंडर्डकी रक्षाके ख्यालसे कुछ वस्तुओंका निर्माण बीच-बीचमें स्थगित कर देनेकी नीतिका अनुसरण करता रहा है तो यह कहां तक अनुचित हुआ है, इसे आप स्वयं विचार कर सकते हैं।

उच्चकोटिके मूलद्रव्योंके अभावमें निम्नश्रेणीके मूलद्रव्य देकर वस्तुओंका निर्माण करना कार्यालयका सिद्धान्त कभी नहीं रहा। वरन् वस्तुओंका निर्माण तबतक स्थगित रखा जाता है जबतक ठीक व असली मूलद्रव्य नहीं मिलने लगते। अतः हम उच्चकोटिकी औषधि एवं शृंगार सामग्रियोंके समर्थकोंसे प्रार्थना करेंगे कि वे हमें इस नीतिसे कार्य संचालन करनेमें सहयोग प्रदान करें; जिससे हम कार्यालयके संस्थापक और उनके उत्तराधिकारियोंके समान ही प्रतिष्ठानको क्रमशः उन्नतिकी ओर ले जा सकें।

कार्यालय और आयुर्वेदविज्ञान—

कार्यालय में पेटेंट दवा और शृंगार सामग्रियोंके अतिरिक्त

शास्त्रोक्त आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणका कार्य भी द्रुतगतिसे बढ़ रहा है। आयुर्वेदिक विभागको जन्म देनेका श्रेय कार्यालयके प्रथम आदर्श मैनेजिंग डाइरेक्टर श्रीमान् चुन्नीलालजी वर्म्मनको ही है—यह आप जानते हैं। यह प्रसन्नताका विषय है कि गत कुछ वर्षोंसे निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन तथा कतिपय आयुर्वेद मर्मज्ञों द्वारा आयुर्वेदोत्थानके लिये कुछ प्रशंसनीय कार्य हुए हैं तथा राष्ट्रकी स्वदेशी वस्तुओंके व्यवहारकी बढ़ती हुई सुरुचिके फलस्वरूप देशमें आयुर्वेद विज्ञानके प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हो रही है, अतः कार्यालयने भी राष्ट्रकी मांगको ध्यानमें रखते हुए अपने मूलसिद्धान्तानुसार आयुर्वेदकी यथाशक्य सेवाओंके लिए विविध योजनायें बनाना अपना कर्तव्य समझा। इसके अनुसार कार्यालयने आधुनिक वैज्ञानिकोंके समक्ष इस बातको सिद्ध करनेके अभिप्रायसे कि, आयुर्वेद वैज्ञानिक भित्ति पर स्थित है, अन्वेषण तथा विश्लेषणपूर्वक आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणका कार्य आरंभ किया है। इस कार्यके लिये समय-समय पर आयुर्वेदविज्ञान मर्मज्ञोंसे पथ-प्रदर्शन मिलता रहता है जिसके लिये कार्यालय उनका आभारी है। यद्यपि वर्तमान युद्ध परिस्थितिके कारण इस-कार्यको अग्रसर करनेमें काफी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है; किन्तु विश्वास है कि स्थिति अनुकूल होते ही निर्धारित योजनानुसार उक्त विभागका कार्य निर्बाध रूपसे चलेगा।

इस क्रमसे कार्य करनेके लिये हमें सुव्यवस्थित रूपसे कार्यको आगे बढ़ानेकी आवश्यकता है। अतः हमने पूर्व स्थापित विभागोंके अतिरिक्त आयुर्वेदकी यथाशक्ति सेवाके हेतु निम्नलिखित कतिपय विभागोंको सञ्चालित करनेका समुचित प्रबन्ध किया है।

(१) मूलद्रव्य विभाग।
(२) मूलद्रव्य अन्वेषण विभाग।
(३) अन्वेषण तथा विश्लेषण रसायनशाला।
(४) वृहत् रसायनशाला।

इन विभागोंका विस्तृत विवरण कार्यालयके विभिन्न प्रकाशनोंसे आप जान सकेंगे। यहाँ पर हम संक्षेपमें औषधि निर्माताओंके कर्तव्यका विवेचन करते हुए कार्यालयकी कार्य पद्धतिकी रूप-रेखा आप महानुभावोंकी जानकारीके लिये उपस्थित करना आवश्यक समझते हैं।

आयुर्वेदके महत्वकी अवहेलना—

सर्वप्रथम एक औषधि निर्माताके लिये, जिसे अपने उत्तरदायित्वका ध्यान है, ग्रन्थ प्रमाणके अनुसार मूलद्रव्य और उसके बाद आधार ग्रंथमें वर्णित नुस्खे (फारमूला) के अनुसार प्रत्येक योगके निर्माणकी व्यवस्था आवश्यक होती है। खेदका विषय है कि अधिकांश भारतीय औषधिनिर्माण कर्त्ता मूलद्रव्यादिके विषयमें उचित विचार न कर सन्देहात्मक रूपसे योगोंका निर्माण कर डालते हैं। बहुतसे कार्यालय तो केवल व्यापारबुद्धिका अनुसरण कर अत्यन्त ही अनियन्त्रित रूपसे योगोंका निर्माण करनेमें बिलकुल भयभीत नहीं होते। परिणाम यह होता है कि शास्त्रोक्त गुण न होनेके कारण औषधि असफल ठहरती है और जनता आयुर्वेदिक औषधियों पर सहसा अविश्वास करने लग जाती है। इतना ही नहीं, कितने क्लेशका विषय है कि इसका परिणाम इतना दुःखद होता है कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धतिके समर्थकोंको भी आयुर्वेद विज्ञानकी न्यूनता बतलानेका मौका मिल जाता है। हम बिना कहे नहीं रह सकते कि इस प्रकार औषधि निर्माण करनेवाले कार्यालय केवल जनता और राष्ट्रके समक्ष ही दोषी नहीं हैं किन्तु उन्हें परमात्माके यहां भी दंडनीय ठहरना पड़ेगा। इन सब स्थितियोंके कारण हमें कार्यालयके ६० वर्षोंकी प्रतिष्ठाको ध्यानमें रखते हुए अत्यन्त सावधानीके साथ आयुर्वेदिक औषधि निर्माण क्षेत्रमें पदार्पण करना पड़ रहा है। इस असमंजसका कारण क्या है, हम उसे भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। साधारण ग्राहक किसी औषधिका विज्ञापन देखता है और दवाके दूकानदारके यहां पहुंच जाता है। वह किसी खास प्रतिष्ठानकी दवा मांगता है, लेकिन दूकानदारको उस दवामें कमीशन इत्यादिका पूरा फायदा न रहनेके कारण वह उसमें दिलचस्पी नहीं लेता और दूसरे कार्यालयकी सस्ती दवा, जिसमें उसे पूरा फायदा है, ग्राहकके सामने उपस्थित कर उसकी तारीफ करता है। एक मध्यम श्रेणीका ग्रामीण इस कनवासिंगको नहीं समझता और सस्तेपनकी ओर झुक जाता है। हम इस तरहकी भावनाको

प्रोत्साहन देनेके पक्षपाती नहीं हैं। हम नहीं चाहते कि औषधि निर्माणकर्ता सस्तेपनके ख्यालसे निम्न श्रेणीके सूल-द्रव्योंके योगसे औषधियोंका निर्माण कर "स्वकार्यम् साधयेत् धीमान्" वाली नीति चरितार्थ करें। एक श्रेणीके औषधि निर्माणकर्त्ता तो ये हैं। अब दूसरी श्रेणीके औषधि निर्माण-कर्त्ताओं पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। इस श्रेणीमें वे औषधि निर्माणकर्त्ता आ जाते हैं जिनका उद्देश्य अच्छी औषधि निर्माण करना तो अवश्य है; किन्तु वे सर्वसाधारण जनताका ध्यान न रख औषधियोंका मूल्य इतना ऊँचा रख देते हैं कि एक साधारण गृहस्थ उन दवाओंसे लाभ ही नहीं उठा सकता। हम इस प्रकारके अधिक लाभकी नीतिको भी अनुचित समझते हैं; क्योंकि हमारा ६० वर्षों का अनुभव यह बतलाता है कि पेटेंट औषधियोंका जितना व्यवहार साधारण गृहस्थ करते हैं उतना सम्पन्न श्रेणीके लोग नहीं करते। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि सर्वसाधारणके लाभका ध्यान रखते हुए औषधियोंका उचित सूल्य ही निर्धारित होना चाहिये। अब कठिनता यह होती है एक उचकोटिकी औषधि निर्माण करनेकी भावना रखनेवाले प्रतिष्ठानके सामने प्रतिद्वन्दिता (Competition) का भूत उपस्थित हो जाता है। किन्तु हम इसे महत्व क्यों दें? हमारा तो यह ध्यान रहता है कि सिद्धान्तानुसार अच्छे उपादानोंके योगसे प्रामाणिक औषधियां निर्माणकी जायँ तथा उचित मूल्य रखा जाय और साथ ही साथ जनताको इतना व्युत्पन्न बना दिया जाय कि वह परख सके कि किस कार्यालयकी औषधि ठीक-ठीक निर्माणकी गयी है। इस प्रकार हम औषधि क्षेत्रमें रहते हुए जनताकी सेवा करनेके अभिलाषी हैं।

ऊपर लिखी परिपाटीको कार्यान्वित करनेके ही अभिप्रायसे कार्यालयने मूलद्रव्य, अन्वेषण तथा विश्लेषण विभागोंकी पृथक-पृथक संस्थापनाका प्रबन्ध किया है।

आयुर्वेदिक फार्माकोपियाकी आवश्यकता—

अब इन विभागोंका कार्य तभी साङ्गोपाङ्ग रूपसे चल सकता है जब हमें आयुर्वेद विज्ञान मर्मज्ञोंका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। कारण मूलद्रव्य, वनस्पति और धातु इत्यादिके रूपको ठीक-ठीक स्थिर कर लेनेके बाद ही उन्हें व्यवहारमें लाया जा सकता है। हमें जब इस दिशामें कठिनाइयां होने लगीं तो हमने विचार कर निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलनके समक्ष आयुर्वेदिक फार्माकोपिया निर्माणके हेतु अपना सुझाव उपस्थित किया। सन्तोषका विषय है कि उक्त संस्थाने इस सुझावकी महत्ताको समझा और गत निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलनके ३३ वें अधिवेशन, बेजवाडामें आयुर्वेदिक फार्माकोपियाके निर्माणके हेतु निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया—

"आयुर्वेदीय मान्य चिकित्सा ग्रन्थोंमें योगोंके अनेक पाठ उपलब्ध होनेके कारण वैद्य समाजमें भी तत्तत् ग्रंथीय भिन्न पाठोंका उपयोग प्रचलित है। यद्यपि प्रत्येक ग्रन्थके समस्त प्रयोग लाभदायक एवं उपादेय हैं तथापि वैद्योंके पारस्परिक विचार विनिमयमें सुगमता तथा सर्वत्र औषधि प्राप्तिमें सुलभता की दृष्टिसे यह सम्मेलन अनुभव करता है कि प्रचलित ग्रन्थ पाठोंके अधिकाधिक लाभदायक एवं वैद्य समाज द्वारा अनुभूत योगोंका संग्रह कर एक सर्वमान्यआयुर्वेद योग संग्रह ग्रंथ निर्माण किया जावे, अतएव इस कार्यके सम्पादनके हेतु निम्न लिखित महानुभावोंकी एक उपसमिति निर्मित कर आदेश देता है कि यह समिति आयुर्वेदीययोग संग्रहकी पांडुलिपि तैयार कर आगामी सम्मेलनाधिवेशनमें उपस्थित करे। उपसमितिके सदस्य सर्व श्री पं० शिव शर्माजी (लाहौर), कविराज ज्योतिष चंद्रजी सरस्वती (दिल्ली), कविराज एम० के० मुकर्जी (कलकत्ता), आचार्य यादवजी त्रिकमजी (बम्बई), पूर्णचन्द्रजी बर्म्मन, डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० (कलकत्ता)।"

यदि यह कार्य निर्णयानुसार पूरा हो गया तो आयुर्वेदिक औषधि निर्माण कर्त्ताओंके सामने आनेवाली अड़चनें दूर हो जायँगी। फिलहाल हम अपने उद्देश्यानुसार औषधियोंके स्टैंडर्डकी रक्षाका ध्यान रखते हुए मान्य आयुर्वेदिक ग्रन्थ प्रमाणानुसार आयुर्वेदिक औषधियां निर्माण कर रहे हैं। औषधियोंमें पड़नेवाले मूलद्रव्य जहां तक संभव होता है ताजे, शुद्ध, देश-काल और भूमिका विचार करते हुए ही व्यवहारमें लाये जाते हैं। एतदर्थ ही मूलद्रव्य विभाग एवं मूलद्रव्य अन्वेषण विभागोंकी अलग-अलग व्यवस्था की गयी है।

औषधियोंका अन्वेषण और विश्लेषण—

औषधि निर्माणके बाद उनकी जांच कर लेना भी परमावश्यक होता है। हम बराबर इस बातकी चेष्टा करते हैं कि कार्यालयकी रसायनशालासे जो भी प्रयोग निकलें वे पूर्ण हों। उदाहरणार्थ यदि शतपुटी भस्मकी आवश्यकता हो तो चिकित्सकको शतपुटी ही मिले। यदि उसे सहस्रपुटीकी आवश्यकता है तो उसे सहस्रपुटी ही दी जाय। हम यह नहीं चाहते कि शतपुटी भस्मको सहस्रपुटीके नामसे चला दिया जाय। इसी प्रकार आसव-अरिष्ट, अवलेह, चूर्ण, रस इत्यादिके सम्बन्धमें भी हमारी यही नीति रहती है। निर्माणके बाद महत्वपूर्ण प्रश्न ग्रन्थ प्रमाणका उपस्थित होता है। कार्यालयकी औषधियोंका व्यवहार करनेवाले महानुभावोंको पता ही होगा कि हमारे यहां निर्माण होनेवाली औषधियोंके लेबुल और सेवनविधि पत्र पर सर्वसाधारण एवं विशेषतया वैद्य समाजकी जानकारीके लिये ग्रन्थोंके नाम भी छाप दिये जाते हैं।

इस सम्बन्धमें हमारा अभिप्राय यह है कि यदि एक ही योग कई एक ग्रन्थ प्रमाणानुसार एवं कई एक पद्धतिसे बनता है तो उतनेही प्रकारोंसे उस औषधिको बना कर उन्हें वैद्योंके व्यवहारके लिये विवरणके साथ छाप दिया जाय ताकि चिकित्सक अपने निर्णयानुसार औषधिको चुन सके। उदाहरणार्थ—कार्यालयमें रस तरङ्गिणी ग्रन्थके प्रमाणसे तीन प्रकारका लौह भस्म तैयार होता है–

(१) वनस्पतियोग
(२) मनःशिलायोग
(३) हिंगुलयोग

हमने तीनोंही प्रकारसे लौह भस्म तैयार कर उपयोगके लिये जनता एवं वैद्य समाजके सम्मुख रख दिया है। अब व्यवहार करने वाला आसानीसे इनमेंसे अपनी आवश्यकतानुसार किसीको भी चुन सकता है। इसी प्रकार हम चाहते हैं कि प्रत्येक योग प्रमाण सहित व्यवहार करनेवालोंके समक्ष रख दिये जायँ। हम एक निर्माणकर्त्ता हैं, चिकित्सक नहीं। हम चिकित्सकके सहयोगी हैं। अतः चिकित्सककी सहूलियतके लिये हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम योगोंको सप्रमाण उपस्थित कर दें। एक उच्चकोटिके औषधि निर्माणकर्त्ताका कर्त्तव्य यही है। पाश्चात्य औषधि-निर्माण-कर्त्ता इसी क्रमसे फारमूलाके साथ औषधियाँ चिकित्सकोंके समक्ष रख देते हैं। चिकित्सक बिना हिचकिचाहट उन्हें व्यवहारमें लाता है। यदि इस क्रमसे औषधि निर्माणका कार्य किया जाय तो चिकित्सक समाजको पर्याप्त सहायता मिल सकती है और वे चिकित्साका कार्य बड़ी सहूलियतके साथ कर सकते हैं।

इन सब प्रश्नोंके बाद महत्वपूर्ण प्रश्न औषधियोंके Test (विश्लेषण)का आता है। पाश्चात्य औषधि विज्ञान-वेत्ता इस दिशामें अपनेको बहुत आगे बढ़ा हुआ मानते हैं। कारण वे अपनी प्रत्येक वस्तुको विश्लेषण रिपोर्टके साथ जनता-विशेषतया चिकित्सकके—सामने उपस्थित कर देते हैं। इसका फल यह होता है कि प्रस्तुत औषधिमें पड़नेवाले प्रत्येक मूलद्रव्यके विषयमें चिकित्सकको पूरी जानकारी मिल जाती है और वह औषधिके प्रयोगके बाद उसका फल देख कर मूलद्रव्योंके गुण और परिमाणको अच्छी तरह समझनेमें समर्थ होता है। इसमें सन्देह नहीं कि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको औषधियांका विश्लेषण करनेमें आधुनिक यन्त्रोंसे पूर्ण सहायता मिलती है; किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आयुर्वेद विज्ञानमें योगोंमें पड़नेवाले मूलद्रव्योंका परिमाण अन्दाजसे निर्धारित कर दिया गया है अथवा उन मूलद्रव्योका गुण वैज्ञानिक रीतिसे निर्धारित नहीं है। यह सर्वविदित है कि पूर्वाचार्य्योंने केवल अनुभवके आधार पर नहीं; बल्कि आध्यात्मिक बलकी भित्ति पर आयुर्वेद शास्त्रका संकलन कर उसे मानव कल्याणके हेतु विश्वके समक्ष उपस्थित किया है। यह हमारा अभाग्य है कि हम इस अपूर्व विज्ञानकी गहनता तक पहुंचनेकी चेष्टा नहीं कर रहे हैं। यदि इस दिशामें थोड़ी भी चेष्टा की जाय तो हम वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार आयुर्वेदके प्रत्येक योगोंको आधुनिक वैज्ञानिकोंके समक्ष उपस्थित कर सकते हैं। इसके लिये हमने अपने अन्वेषण तथा विश्लेषण विभागमें प्रयोग में लानेके पूर्व मूलद्रव्योंकी जाँच कर लेनेकी व्यवस्था की है। इस जाँचमें हम धातु विशेष या जड़ी-बूटीका विश्लेषण कर इस बातको जाननेकी चेष्टा करते हैं कि अमुक धातु या जड़ी-बूटीमें अमुक परिमाणमें विजातीय द्रव्य समाविष्ट है। इस रिकार्ड (Record) की इसलिये आवश्यकता होती है कि यदि कोई मूलद्रव्य जिस रूपमें एकबार व्यवहृत हो तो दूसरी बार भी उसे उसी रूपमें योगमें व्यवहृत किया जाय। उदाहरणार्थ यदि
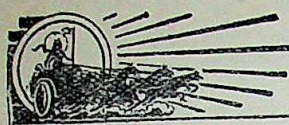
स्वर्णमाक्षिकमें ताम्र (Copper Sulphide) तीस प्रतिशतके परिमाणमें है और लौह (Iron Sulphide) २० प्रतिशतके परिमाणमें है तो दूसरी बार जब स्वर्णमाक्षिक प्रयोगमें लाया जाय तो पूर्ववत् ही उसमें उपर्युक्त द्रव्य वर्तमान रहें। यह विश्लेषणका प्रारम्भिक रूप है। इसके बाद यह परमावश्यक होता है कि जिस प्रकार हमने किसी योगमें पड़नेवाले मूल-द्रव्योंकी जांच की है उसी प्रकार प्रयोग सिद्ध हो जाने पर भी उसे विश्लेषणके साथ चिकित्सकके सामने उपस्थित कर दिया जाय जिससे वह आसानीसे समझ सके कि प्रस्तुत योगोंमें कौन-कौनसे द्रव्य किस-किस परिमाण और किस-किस अवस्थामें उपस्थित हैं। इस क्रमसे आयुर्वेदिक औषधियोंका निर्माण करने पर ही हम पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके समक्ष इस विषयको जोरके साथ रख सकते हैं कि आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार निर्मित औषधियां पूर्ण वैज्ञानिक हैं। उदाहरणार्थ—T. B. अर्थात् यक्ष्मामें Gold और Calcium की उपयोगिता अब मानी जाने लगी है। किन्तु हमारे आयुर्वेदके एक मुख्य प्रयोग मृगाङ्कमें स्वर्ण तथा कैलसियम (मुक्ता) वर्त्तमान हैं। अतः उपर्युक्त दोनों विभागों द्वारा (अन्वेषण तथा विश्लेषण) परीक्षित होने पर हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि कार्यालयकी रसायनशालामें निर्मित मृगांकमें ये उपादान किन अवस्थाओंमें तथा किस-किस परिमाणमें वर्त्तमान हैं। यह पता लग जाने पर हम आधुनिक वैज्ञानिकोंके समक्ष यह सिद्धान्त रख सकते हैं कि मृगांक यक्ष्माके लिये पूर्वाचार्यों द्वारा पहले ही से सिद्ध कर एक अनुभूत प्रयोग बतलाया जा चुका है। ऐसा होने पर ही आधुनिक वैज्ञानिक आयुर्वेदकी महत्ता समझ सकते है और वे इन्हें व्यवहार में ला सकेंगे। यह भावना हमारे हृदयमें बहुत जोरोंसे उठी है और हमने कई एक प्रयोगों को इसी क्रमसे निर्माण करनेकी चेष्टा की है। इनमेंसे एक उदाहरण हम यहां उपस्थित कर रहे हैं।

(१) वस्तु नाम—**डाबर बङ्ग भस्म**

ग्रन्थ प्रमाण—**आयुर्वेद प्रकाश**

विशेषविधि—**सोरकयोगेन**

वर्णित प्रणाली—

वह्नौ संस्थाप्य हण्ड्यांतु रजनी रजसा शुभम्।
वङ्गभस्म विधायाथ सोरकं तत्र मेलयेत्॥
वङ्ग तुर्यांशकं पश्चाच्छरावेणापिधापयेत्।
मन्दमग्निं घटीमेकां दत्वाऽथस्वाङ्ग शीतलम्॥
कुन्देन्दुधवलं वङ्ग भस्म ग्राह्यं स्वकार्यकृत्॥

अन्वेषण तथा विश्लेषण द्वारा प्राप्त प्रधान रसायनिक पदार्थ—

Tin Stannic Oxide टिन-स्टैनिक अक्साइड 9?·5 to 99·5%
Moisture (आर्द्रत्व) .... 1 to 1·5%
Reaction—Alkaline to Litmus एल्क लाइन से लिटमस
Lead (सीसा) Copper (तांबा) Arsenic (संखिया) ... .Trace (वर्त्तमान)

हमारी इच्छा है कि आयुर्वेदका प्रत्येक प्रयोग इसी प्रणालीसे जनता, वद्य समाज एवं आधुनिक वैज्ञानिकोंके समक्ष उपस्थित किया जाय। यदि निखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन, आयुर्वेद मर्मज्ञ और गुणग्राही जनताका सहयोग प्राप्त हुआ तो हम इस दिशामें कुछ कार्य करनेमें सफल हो सकेंगे, ऐसी आशा है। आपके समक्ष कार्यालयकी कार्यप्रणाली उपस्थित है अब आप स्वतः ही निर्णय करेंगे कि कार्यालय जनताकी सेवा करनेमें किस हद तक समर्थ हो रहा है।

आयुर्वेदिक तथा पेटेंट दवा और श्रृङ्गार सामग्रियोंके अतिरिक्त कार्यालयने फार्मास्युटिकल वस्तुओंके निर्माणका कार्य भी आरंभ किया है; किन्तु वर्त्तमान युद्धजनित अनेक असुविधाओंके कारण उसे द्रुतगतिसे बढ़ा नहीं सका है। परिस्थिति अनुकूल होते ही इसे आगे बढ़ा कर हम जनताकी और भी अधिक सेवा कर सकेंगे ऐसी आशा है।

कृतज्ञता प्रकाशन—

अब हम अपने इस निवेदनको समाप्त करनेके पूर्व उन आदरणीय राष्ट्रकर्णधार, आयुर्वेद विज्ञान मर्मज्ञ, धर्माचार्य एवं सुविद्वान, देश, समाज एवं जातिसेवक, राजनीति, साहित्य, कला तथा विज्ञान विशारद, व्यापारी एवं अन्य सभी महानुभावोंके

प्रति अभ्यर्थनापूर्वक कृतज्ञता प्रकट करना अपना पावन कर्त्तव्य समझते हैं जिन्होंने हमें अपने शुभाशीर्वाद, सहयोग, बहुमूल्य मन्तव्य और पथप्रदर्शन द्वारा कर्त्तव्य पथकी ओर अग्रसर होनेके हेतु प्रोत्साहन तथा बल प्रदान किया है।

हम विशेषतया महामाना मालवीयजीके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं जिन्होंने कार्यालयको हीरक जयन्तीके उपलक्षमें अपना मंगल कामनायुक्त शुभाशीर्वाद प्रदान कर बलशाली बनाया है। इनके अतिरिक्त जिन-जिन महानुभावोंने हीरक जयन्तीके उपलक्षमें अपनी शुभकामनायें भेज कर हमें प्रोत्साहन दिया है उनके प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

विनीत—
पूर्णचन्द्र बर्म्मन
मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०

—: कार्यालय के ६० वर्ष :—

जगन्नियन्ता जगदीश्वरकी असीम अनुकम्पा तथा राष्ट्रके विभिन्न क्षेत्रोंके अग्रगण्य महानुभाव, देशनायक, कलाकार, वैज्ञानिक, आयुर्वेद मर्मज्ञ, साहित्यिक, पत्रकार एवं पत्र संचालक, हितैषी ग्राहक तथा अनुग्राहक एवं सहयोगी एजेंटोंके उत्साहवर्द्धक पथ-प्रदर्शन, शुभकामना, बहुमूल्य सन्देश, सराहनीय सहयोग तथा पीड़ित मानव समुदायका शुभाशीर्वाद प्राप्तकर आज लोकप्रिय भारतीय औषधि प्रतिष्ठान **डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड, कलकत्ता** को अपनी **"हीरक जयन्ती"** मनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

कार्यालयका हीरक जयन्ती वर्ष ऐसे समयमें आ पड़ा है जब देश वर्तमान नर संहारक युद्धके कारण उत्पन्न विषम परिस्थितियोंके बीच होकर गुजर रहा है। यद्यपि ऐसी विपरीत परिस्थितिमें कार्यालयके लिये हीरक जयन्तीका आयोजन करना आसान नहीं है; फिरभी कार्यालयने हीरक जयन्ती मनाना निश्चित किया है—और यह भी इसलिये कि कार्यालयकी उत्कट अभिलाषा है, कि हीरक जयन्तीके शुभ अवसर पर आप महानुभावोंके शुभाशीर्वाद, सहयोग और पथ-प्रदर्शन द्वारा इसे इतना बल प्राप्त हो सके कि वर्त्तमान विषम परिस्थितियोंके बावजूद यह अपने स्वनामधन्य संस्थापकके आदर्शानुसार उच्चकोटिके औषधि निर्माण कार्यको अक्षुण्ण रखते हुए पीड़ित मानवजातिकी सत्य सेवा करनेमें पूर्वापेक्षा अधिक समर्थ हो सके।

संस्थापक का परिचय—

कार्यालयके संस्थापक डाक्टर एस० के० बर्म्मन (श्रीकृष्ण बर्म्मन) का जन्म क्षत्रिय (खत्री) —बर्म्मन—वंशमें ता० ३ अक्टूबर सन् १८५६ ईस्वीको बंगालके मेदिनीपुर जिलान्तर्गत क्षीरपाई ग्राममें हुआ था। इनके पूर्वज पंजाबके आदि निवासी थे जो कालान्तरमें क्रमशः युक्तप्रांतमें बस गये।

कार्यालय की संस्थापना और उद्देश्य—

मेडिकल कालेजमें अध्ययन करते समय ही डाक्टर श्रीकृष्ण बर्म्मन का दयार्द्र हृदय अनेकों रोगग्रस्त पीड़ितोंके मर्मस्पर्शी करुण क्रन्दनसे व्यथित हो उठता था और वे हमेशा इसी चिन्ता में रहते थे कि किस प्रकार इन पीड़ितोंकी यन्त्रणा दूर करनेका सुगम उपाय निकाला जाय।

इस भावनाने उनके हृदयमें एक ध्वनि उत्पन्नकी और वह

थी—**"वह जीवन ही क्या जो दूसरे की जान को आराम न दे सके।"** इस ध्वनिने एक मूलमन्त्रका काम किया और इसीके आधार पर इन्होंने ता० २१ सितम्बर सन् १८८४ ईस्वीको कलकत्ता बड़ाबाजारके काटन स्ट्रीट (तुलापट्टी) में उचित चिकित्साके अभावसे अकाल मृत्युके मुंहमें जानेवाले असंख्य देशवासियोंकी सेवाके हेतु बहुत ही छोटे रूपमें एक औषधालयकी संस्थापना की।

यद्यपि डाक्टर एस० के० बर्म्मन निःस्वार्थ भावसे स्थानीय रोगियों की चिकित्सा और सेवा सुश्रूषा करते थे, किन्तु देशके विभिन्न भागोंमें निवास करनेवाले रोगियों की—विशेषतया ग्रामीण गृहस्थ और किसानों की—सेवाके लिये इन्होंने अपनी कई एक परीक्षित दवाओं को पेटेंट रूप देकर उनका प्रचार प्रारंभ किया।

यह कार्य सर्वप्रथम—हैजेकी सुप्रसिद्ध दवा अर्ककपूर—वर्त्तमान नाम "काफ़ू" के आविष्कारसे आरंभ हुआ। इसके बाद क्रमशः मैलेरिया जूड़ी बुखार व ताप तिल्लीकी दवा—वर्त्तमान नाम "जूड़ी-ताप", अर्कपुदीना—वर्त्तमान नाम "पुदीन-हरा" आदि पेटेंट दवाओंका निर्माण हुआ जो उचित मूल्य और अचूक गुणोंके कारण बहुत शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयीं।

उन्नति की ओर—

अपने आदर्श सिद्धान्तके अनुसार कार्य करता हुआ यह छोटा कार्यालय उत्तरोत्तर उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ। इसे सन् १८९० ईस्वीमें नं० ५, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता में स्थानान्तरित किया गया और सन् १८९४ ईस्वीमें नं० ६ ताराचन्द दत्त स्ट्रीटका भी भवन कार्यालयको सुचारु रूपसे चलानेके लिये इसमें मिला लिया गया। तदनन्तर पेटेंट औषधियोंके निर्माणका कार्य विशद् रूपसे होने लगा और यह कार्यालय जनताका विशेष प्रियपात्र बन गया।

लोक सेवा—

उपर्युक्त परिचयसे यह स्पष्ट है कि डाक्टर एस० के० बर्म्मनने जनसमुदाय की सेवा भावनासे ही प्रेरित होकर उच्चकोटि की औषधि निर्माणका कार्य प्रारंभ किया था, अतः इस प्रयत्नमें जो आर्थिक लाभ हुआ उसका अधिकांश लोक सेवा और जनसाधारणके कल्याणार्थ इन्होंने व्यय किया।

इस आदर्श भावनासे की गई अनेकों प्रशंसनीय सेवाओंमें कुछ विशेष सेवाओं का उल्लेख निम्न प्रकार है—

आदर्श लोकसेवा—

सन् १८९८ ई० में कलकत्ता महानगरीमें प्लेगका भीषण प्रकोप हुआ था। इस महामारीके आक्रमणसे जनतामें त्राहि-त्राहि मच गयी थी। परोपकारी डाक्टर एस० के० बर्म्मनके जन्मगत दयालु और उदार हृदयमें इस भीषण रोगसे आक्रान्त प्राणियोंकी स्वयं सेवा करनेकी बलवती भावना जाग्रत हुई; आपने निःस्वार्थ भावसे सेवा-सुश्रूषा और चिकित्साके लिये अलग कैम्प खोला और स्वयमेव रोगियोंकी देख-भाल तथा चिकित्सा इत्यादि करना प्रारंभ कर दिया। इसी समय इन्होंने अपने अक्लान्त परिश्रमसे प्लेगकी दवा वर्त्तमान नाम "प्लेगिन" का आविष्कार किया था। उस समय को इन निःस्वार्थ सेवाओंने इन्हें सर्वसाधारण जनताका विशेष प्रियपात्र बना दिया और चारों ओर इनकी दयालुता, उदारता, दानशीलता और कर्त्तव्यपरायणता आदि गुणोंकी भूरी-भूरी प्रशंसा होने लगी। यहां तक कि इनके अपूर्व गुणोंने बृटिश सरकारके उच्चतम प्रतिनिधियों तकको आकर्षित कर लिया।

सम्मानपत्र—

इस सराहनीय सेवाके परिणामस्वरूप महामान्य सम्राट्की ओर से सपरिषद्महामान्यवर श्रीमान् वायसराय व गवर्नर जनरल हिन्द महोदयकी आज्ञानुसार लेफटिनेंट गवर्नर बंगाल बहादुरने १ जनवरी सन् १९०३ ईस्वीको इन्हें सम्मानपत्र (*Certificate of Honour* देकर सम्मानित किया।

अन्य प्रशंसनीय सेवायें—

(क) **चिकित्सा सम्बन्धी**—अपने आदर्श सिद्धान्तके अनुसार डाक्टर एस० के बर्म्मन पीड़ितोंकी सेवा करनेमें सदैव तत्पर रहते थे। इन्होंने चिकित्सा विज्ञानके प्रसार के हेतु तथा असहायोंकी समुचित चिकित्साके लिये कलकत्ताके सुप्रसिद्ध कालेज आफ फिजिसियंस एंड सरजन्स वर्त्तमान नाम कारमाइकल मेडिकल कालेजको दानस्वरूप

१००००) दश हजार रु० प्रदान किया और साथही मुफ्त सीटोंका प्रबन्ध किया।

(ख) **शिक्षा सम्बन्धी**—इनके समयमें हिन्दीभाषा-भाषी छात्रोंकी शिक्षाका कलकत्तामें संतोषजनक प्रबन्ध न था। इस अभावसे डाक्टर एस० के० बर्म्मनके हृदय पर ठेस लगी और इन्होंने सन् १९०३ ईस्वीमें श्री सारस्वत क्षत्रिय विद्यालयकी स्थापना की। इस विद्यालयके कार्य संचालनार्थ इन्होंने विद्यालयके स्थायी कोषमें लगभग २६०००) छब्बीस हजार रु० नगद दान दिया तथा लगभग १६०००) सोलह हजार रु० लागतका एक निजी भवन विद्यालयको अर्पित किया। साथही विद्यालयके उद्देश्योंकी सफलताके हेतु स्वयं अपनी सेवायें भी समर्पित कीं। उस समयसे यह विद्यालय कलकत्ताके हजारों हिन्दी भाषा-भाषी छात्रोंको शिक्षा दान कर चुका है और प्रति वर्ष सैकड़ोंकी संख्यामें हिन्दी भाषा-भाषी छात्र इस विद्यालयसे लाभ उठाते आ रहे हैं। यह विद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालयसे सम्बन्धित है।

(ग) **दीन-दुःखियोंकी सेवायें**—ऊपर लिखी सेवाओंके अतिरिक्त डा० एस० के० बर्म्मन बराबर असमर्थ एवं निःसहायोंकी बिना मूल्य चिकित्सा करते थे तथा समय-समय पर बाढ़ तथा अकाल पीड़ित देशवासियोंकी सेवाओंके हेतु तत्पर रहते थे। इतने गुणोंके रहने पर भी इन्हें कभी भी आत्म-प्रशंसा करते नहीं देखा गया।

(घ) **साहित्य-प्रेम**—डाक्टर एस० के० बर्म्मनका साहित्य-प्रेम भी अनुकरणीय रहा। बंगला साहित्यकी तुलनामें हिन्दी साहित्यकी शिथिल स्थिति इन्हें बराबर खटका करती थी। इस दिशामें भी इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनके समयमें सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यसेवी पं० सदानन्द मिश्र, पं० गोविन्द नारायण मिश्र और पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र इत्यादि हिन्दी क्षेत्रकी उन्नतिके हेतु कार्य कर रहे थे। इसी समय कलकत्ताके सुप्रसिद्ध समाचार पत्र "भारतमित्र" का जन्म हुआ।

कुछ दिनोंके संचालनके बाद भारतमित्रका प्रबन्ध एक संचालन कमिटीको सौंपा गया, जिसके डाक्टर एस० के० बर्म्मन एक प्रमुख सदस्य थे।

हिन्दी विज्ञापन शैलीका परिमार्जितरूप देनेका सर्व-प्रथम श्रेय भी डाक्टर एस० के० बर्म्मनको है। इनके द्वारा प्रकाशित होनेवाले "पञ्चाङ्ग" का विज्ञापन क्षेत्रमें एक मौलिक स्थान है।

डाक्टर एस० के० बर्म्मनके निजी पुस्तकालयमें भी साहित्य ग्रन्थोंका सुन्दर संकलन था।

उत्तराधिकारी—

सन् १९०७ ईस्वीमें डाक्टर एस० के० बर्म्मनके देहावसान के बाद बाबू हीरालालजी बर्म्मन व बाबू चुन्नीलालजी बर्म्मन कार्यभार ग्रहणकर आदर्श संस्थापकके सिद्धान्तानुसार कार्यालय के कार्योंको अग्रसर कर ही रहे थे कि इसी बीच बाबू हीरालालजी बर्म्मन स्वर्गवासी हो गये और कार्यालयका सम्पूर्ण भार केवल बाबू चुन्नीलालजी बर्म्मनके कन्धों पर आपड़ा, जिसे इन्होंने बड़ी कुशलतासे संभाला और क्रमशः कार्यालयको उन्नत अवस्थामें पहुंचाया। इन्हींके समयमें अन्वेषण विभाग (*Research Laboratory*) की संस्थापना हुई और आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणका कार्य प्रारंभ किया गया।

अनुकरणीय सेवायें—

श्रीयुत् बाबू चुन्नीलालजी बर्म्मनने भी अपने यशस्वी पिताके समान लोकसेवा, विद्यादान, दीन-दुखियोंकी सेवायें कर संस्थापक के सुयश और सम्मानकी वृद्धि की। इनकी उदारता और दानशीलताने इन्हें सर्वसाधारणका प्रियपात्र बना दिया था।

इन्होंने बिहारके सन् १९३४ ई०के भीषण भूकम्पके अवसर पर २५०००) पचीस हजार रु० की औषधियाँ पीड़ित जनतामें बिना मूल्य वितरणकर जो श्लाघनीय सेवा की थी वह चिरस्मरणीय रहेगी। इसके अतिरिक्त आपने एक मुश्त काफी रकम—

(१) कारमाइकल मेडिकल कालेज अस्पतालमें दो मुफ्त सीटों के लिये और

(२) देशबन्धु दासके स्मारक चित्तरञ्जन सेवासदनको दानस्वरूप देकर पीड़ित मानवजातिकी सेवाभावनाका परिचय दिया।

इनके अतिरिक्त इन्होंने निम्नलिखित लोकोपकारी कार्यों द्वारा सर्वसाधारणमें परम सम्माननीय स्थान प्राप्त किया।

(१) असहाय रोगियोंकी चिकित्साके हेतु नं० ४, ताराचन्ददत्त स्ट्रीटमें दातव्य औषधालयकी स्थापना।

(२) संस्कृत शिक्षार्थियोंके लिये श्रीशिवकुमार भवन की स्थापनामें सहायता।

(३) श्री सारस्वत क्षत्रिय विद्यालयकी उन्नतिके हेतु समय समय पर दान।

श्रीकृष्ण सन्देश—

बाबू चुन्नीलालजी बर्म्मनको भी साहित्य और दर्शन शास्त्र से विशेष प्रेम था। इन्हें गीताके अध्ययन और मननमें विशेष रुचि थी। अतः इन्होंने साहित्य-सेवा और लोक कल्याण भावनासे प्रेरित होकर भगवान् श्रीकृष्णके संदेशोंका प्रचार करनेके अभिप्रायसे अपने पिताकी स्मृतिमें सन् १९२५ ई०में श्रीकृष्ण-संदेश नामक सचित्र साप्ताहिक हिन्दी पत्रका प्रकाशन प्रारंभ किया।

इस पत्रका सम्पादन 'भारतमित्र' के यशस्वी सम्पादक पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे द्वारा होता था। अपने समयमें यह उच्चकोटिका हिन्दी साप्ताहिक था। यद्यपि विषम परिस्थितियोंके कारण उक्त पत्रका प्रकाशन स्थगित करना पड़ा था; किन्तु अल्पकालमें ही इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी थी कि आज भी इसके प्रकाशनकी मांग हिन्दी-प्रेमी किया करते हैं।

कार्यालयका विस्तार—

गुणग्राही जनताकी मांगके अनुसार संचालकोंने औषधि निर्माण एवं प्रचार सम्बन्धी कार्योंको वृहत्‌रूप देनेके हेतु सन् १९३१ ई०में कार्यालयको लिमिटेड कम्पनी बनाकर भारत सरकारसे रजिष्ट्री करा लिया और कार्यालयको अपने नये विशाल भवन 'डाबर हाउस' नं० १४२, रास बिहारी एवेन्यूमें स्थानान्तरित करनेका निश्चय किया। यहां अन्वेषण विभाग, आयुर्वेदिक विभाग एवं स्पिरिट तथा वाष्पयंत्रसे निर्माण होनेवाली चीजोंके लिये पृथक-पृथक विभाग खोलनेका आयोजन हुआ।

श्रीयुत् चुन्नीलालजी बर्म्मनका स्वर्गारोहण—

नये विशाल भवन और नये विभागोंके कार्योंकी सुव्यवस्था अभी हो ही रही थी कि इसी बीच ता० १४ जून सन् १९३४ ईस्वीको कार्यालयके आदर्श मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर श्रीयुत चुन्नीलालजी बर्म्मनका अकस्मात् देहावसान हो गया।

नये डाइरेक्टर्स -

श्रीयुत् चुन्नीलालजी बर्म्मनके शरीरावसानके बाद वर्तमान

डाइरेक्टर श्रीयुत् पूर्णचन्द्रजी एवं श्रीयुत् रतनचन्द्रजी वर्म्मनने कार्यभार ग्रहण किया।

श्रीयुत् पूर्णचन्द्रजी वर्म्मन ने भूतपूर्व मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर द्वारा निर्धारित स्कीमोंके अनुसार कार्यालयको नये विशाल भवन "डाबर हाउस" में स्थानान्तरित किया। यहां पौने पांच बीघा भूमिपर कार्यालयके विभिन्न विभागोंका कार्य संचालन आरम्भ हुआ।

कुछ समय बाद ही इतनी बड़ी जगह भी पर्याप्त सिद्ध न हुई, अतः "डाबर हाउस" का विस्तार कर लगभग ८ बीघा जमीनपर कार्यालयके निम्नलिखित कई एक आवश्यक विभागोंको निर्बाध रूपसे चलानेके हेतु समुचित व्यवस्था की गयी।

(क) मूलद्रव्य विभाग।
(ख) मूलद्रव्य अन्वेषण विभाग।
(ग) वृहद् रसायनशाला।
(घ) अन्वेषण तथा विश्लेषण विभाग।
(च) स्पिरिट रसायनशाला।
(छ) फार्मास्युटिकल विभाग।

तथा इन विभागोंका संचालन कईएक सुविद्वान एवं अनुभवी वैज्ञानिक, वैद्य, डाक्टर, केमिष्ट और रसायनिकोंके तत्वावधानमें आरंभ हुआ, तबसे कार्यालय उच्चकाटिकी शास्त्रोक्त एवं प्रामाणिक सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ एवं पेटेण्ट दवा तथा शृङ्गार सामग्रियोंका निर्माण कर रहा है जिनका पूर्ण विवरण कार्यालयके अन्य प्रकाशनोंमें विस्तृत रूपसे प्रकाशित होता रहता है।

कार्यालय और आयुर्वेद विज्ञान—

अभाग्यसे या कालचक्रके क्रान्तिकारी परिवर्त्तनसे अथवा भारतकी राजनीतिक एवं शासन सूत्रोंकी शोचनीय उथल-पुथलके कारण, भारतीय जनता त्रिकालदर्शी महार्षियों द्वारा आविष्कृत और प्रचारित आयुर्वेद विज्ञानकी महत्ता प्रायः भूल सी गयी थी; किन्तु हर्षका विषय है कि इस समय देशने आयुर्वेदके प्रचारके लिये समुचित चेष्टायें प्रारम्भ कर दी हैं।

निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन तथा कई एक आयुर्वेद मर्मज्ञों द्वारा आयुर्वेदोत्थानके लिये जो कार्य हो रहे हैं वे आयुर्वेदके भविष्यको उज्ज्वल बनानेमें पूर्ण सहायक सिद्ध होंगे—ऐसी आशा की जाती है।

कार्यालयने भी पाश्चात्य एवं भारतीय वैज्ञानिकोंके समक्ष इस बातको सिद्ध करनेके अभिप्रायसे कि, आयुर्वेद, वैज्ञानिक भित्तिपर स्थित है, अन्वेषण तथा विश्लेषण पूर्वक आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणका कार्य आरम्भ किया है। इस कार्यके लिये समय-समय पर आयुर्वेद-विज्ञान-मर्मज्ञोंसे आवश्यक पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता रहता है जिसके लिये कार्यालय उनका आभारी है।

यद्यपि वर्त्तमान युद्ध-परिस्थितिके कारण इस कार्यको अग्रसर करनेमें कार्यालयको बाधाओं तथा कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है; फिर भी भविष्यमें स्थिति अनुकूल होते ही इस परमोपयोगी कार्यकेसंचालनार्थ कार्यालय समुचित व्यवस्था करनेमें समर्थ हो सकेगा, ऐसी आशा की जाती है। कार्यालयके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर महोदयने निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन, राजकोटके अवसरपर सर्वमान्यआयुर्वेदयोगसंग्रह (*Ayurvedic Pharmacopœia*) निर्माणके हेतु भी प्रस्ताव उपस्थित किया है।

संसारव्यापी युद्ध और कार्यालय—

सन् १९३८ ईस्वीसे कार्यालय विस्तृत नवीन योजनाओंके साथ आगे बढ़ रहा था कि इसी बीच वर्त्तमान युद्धने भारतीय स्थितिमें विचित्र उथल-पुथल मचा दी जिसका प्रभाव कलकत्ता

पर भी विशेषरूपसे पड़ा। परिस्थिति अनुसार कार्यालयके अधिकारियोंने औषधि-निर्माणके कामोंको अबाध गतिसे चलाते रहनेके उद्देश्यसे हाथरस (यू० पी०), देवघर (विहार) और नागपुर (सी० पी०) में भी पूर्वयोजनानुसार विभिन्न विभागोंको स्थानान्तरित कर दिया। नवीन विस्तृत योजनानुसार, जिनमें आयुर्वेदिक विभागके कार्यको विशेषरूपसे बढ़ानेकी आवश्यकता थी, कार्यालयके अधिकारियोंके सामने कई एक बीघा भूमिके प्रबन्धका प्रश्न था। क्योंकि इस समय कलकत्ताकी परिस्थिति प्रतिकूल थी अतः देवघरमें ही उक्त विभागको वृहत्-रूप देनेके अभिप्रायसे विहार सरकारके उच्चाधिकारियोंके समक्ष आवेदनपत्र उपस्थित किया गया। सन्तोषका विषय है कि माननीय अधिकारियोंने औषधि निर्माणके कामोंकी महत्ता महसूसकी और संथालपरगनाके डिप्टी कमिश्नर महोदयने जसीडीह और देवघरके बीच लगभग १३ बीघा भूमि लेनेकी स्वीकृति दे दी। इस भूमि पर निर्माण कार्य आरम्भ हो चुका है।

युद्धकी परिस्थितिने यदि देशमें कोई आकस्मिक घटना उपस्थित न की तो कार्यालयके डाइरेक्टरोंकी अभिलाषा है कि इस स्थान पर निम्नलिखित विभागोंका कार्य संचालन किया जाय और इस स्थानका नाम **'डाबर ग्राम'** रखा जाय।

१—वृहत् आयुर्वेदिक रसायन शाला (*Ayurvedic Laboratory*)

२—अन्वेषण तथा विश्लेषण विभाग (*Research Laboratory*)

३—स्पिरिट रसायनशाला (*Bonded Laboratory*)

४—दातव्य औषधालय (*Charittable Dispensary*)

५—एलोपैथिक लेबोरेटरी (*Allopathic Laboratory*)

६—नर्सरी।

७—पुस्तकालय।

८—आयुर्वेद विद्यालय।

विनीत निवेदन—

आपकी सेवामें डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड, कलकत्ताके गत ६० वर्षोंका संक्षिप्त कार्यविवरण उपस्थित है। इससे आप सहजही में कार्यालयके सदुद्देश्य, कार्यपद्धति और सेवा योजनाओंका परिचय प्राप्त कर सकेंगे। हमारा विश्वास है कि भगवानकी कृपा और आपके शुभाशीर्वाद और प्रोत्साहनसे ही कार्यालय अपने स्वनामधन्य संस्थापकके मूल सिद्धान्तोंके अनुसार मानव-समाज विशेषतया पीड़ित जनसमुदायकी अब तक सेवा करनेमें समर्थ हो सका है और आज इसे **हीरक जयन्ती** मनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपसे हमारा विनीत निवेदन है कि यदि इसी प्रकार आप महानुभाव हमें सहयोग और प्रोत्साहन देते रहेंगे तो कार्यालय अपने कार्यों को सुचारु रूपसे अग्रसर करता हुआ और भी अधिक लगन और उत्साहके साथ जनताजनार्दनकी सेवा करनेमें समर्थ हो सकेगा।

आपके शुभाशीर्वादाभिलाषी—

पूर्णचन्द्र बर्म्मन, मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

रतनचन्द्र बर्म्मन डाइरेक्टर तथा सेक्रेटरी

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड, कलकत्ता।

शुभकामनायें
SKB

भारतीय संस्कृति के मूर्त्तिमान प्रतीक

महामना पं० मदनमोहन जी मालवीयका मंगल शुभाशीर्वाद।
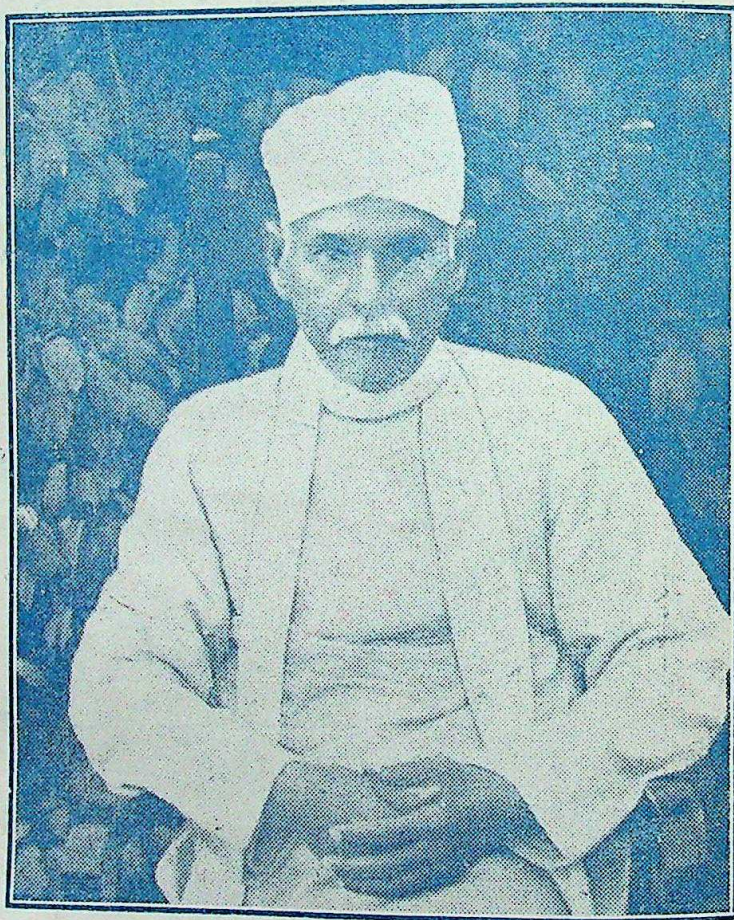
हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
तिथि फाल्गुन शुक्ल ९ सं० २००१

डाबर लिमिटेड, कलकत्ता

आपका मङ्गल हो।

मदन मोहन मालवीय

डाबर हीरक जयन्ती के उपलक्ष में प्राप्त—माननीय कर्नल महामान्य महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंहजी बहादुर, के० सी० आई० ई०, एल० एल० डी०, डी० लिट० दरभंगा नरेश की शुभकामना—

Private Secretary's Office
Raj Darbhanga.

Darbhanga,
The 18th. May, 1945.

Messrs. Dabur Limited.,
Deoghar.

Dear Sir,

In reply to your letter No. Diam : Jub : R1 dated the 11th. April 1945, I beg to say that the Maharajadhiraja is very glad to know that you are going to celebrate your Diamond Jubilee. On this occasion he has directed me to convey his best wishes to you.

Yours truly,
....
Private Secretary.

बिहार सरकार के भूतपूर्व अर्थसचिव सुप्रसिद्ध राष्ट्रसेवक श्रीयुक्त अनुग्रहनारायणजी सिंह, एम० एल० ए० की शुभकामना तथा संदेश—

डाक्टर एस० के० बर्म्मन का नाम बिहारके ग्राम-ग्राममें विख्यात रहा है। उन दिनोंमें जबकि डाक्टरों का अभाव-सा था; डाक्टर बर्म्मन की दवाइयां प्रान्त के सुदूर स्थित गांवोंमें पहुंचती रही हैं और पीड़ित जनता को सहायता पहुंचाई हैं।

डाक्टर एस० के० बर्म्मन लिमिटेड कार्यालयने गत वर्ष मलेरिया और विशूचिका पीड़ित क्षेत्रों में बिना मूल्य औषधि वितरण कर जन-सेवा का आदर्श पेश किया था। उत्तर बिहार सहायक समिति की स्थापना जब हुई तो इस कम्पनी की ओर से सहायता मिलने का वचन मिला और उपयुक्त मात्रा में दवाइयां भी मिलती रहीं। कई जिलों में इस कम्पनी की ओर से समिति की स्थापना के पहले भी दवाइयां दी गई थीं। समिति इसके सराहनीय कार्य पर अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है और आशा करती है कि इस तरह का सेवा-कार्य भविष्य में भी कम्पनी द्वारा होता रहेगा और अन्य संस्थाओं को इसके उदाहरण से उत्साह मिलेगा और इसके अनुवर्ती बनेंगी। कम्पनी की ओर से वार्षिक पञ्चाङ्ग प्रकाशित होता आया है अपने ढंगका एक असूल्य हो रहा है। इसके द्वारा भी कम्पनी ने जन-सेवा करने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हमारे सामने रखा है इस पर इनको बधाई देना अत्युक्ति न होगी।

अनुग्रहनारायण सिंह
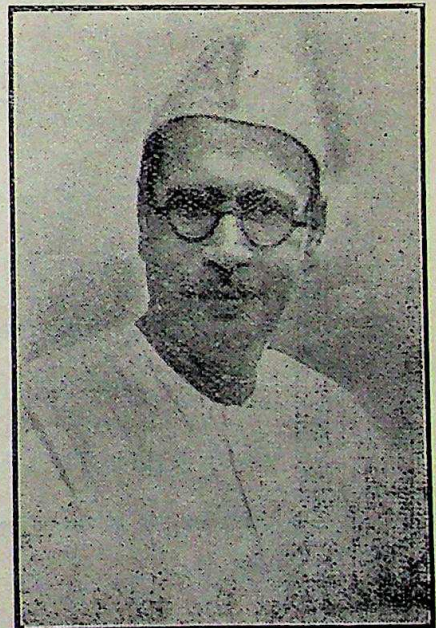
बिहार के लोकप्रिय हिन्दी साप्ताहिक पत्र "योगी" की शुभकामना—

"हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० के वर्तमान संचालक इस वर्ष इसकी हीरक जयन्ती मनानेकी तैयारी कर रहे हैं। भारतकी दयनीय स्थितिमें, जबकि किसी भी व्यवसायिक प्रतिष्ठानको अपने अस्तित्व कायम रखनेके लिये कठोर संघर्ष करना पड़ता है, इस कम्पनीके लिये हीरक जयन्ती मनानेका यह अवसर सचमुच बड़ा ही गौरवपूर्ण है। आज इस कम्पनीका नाम देशमें काफी ख्याति प्राप्त कर चुका है। इसकी औषधियोंसे देशकी गरीब जनताको बड़ी सहायता पहुंची है। देहातमें जहां कोई अस्पताल और औषधालय नहीं, वहां डाक्टर बर्म्मनकी बनी पेटेण्ट औषधियां डाक्टर-वैद्य का काम करती हैं। यही नहीं, इस कम्पनीकी सफलतासे अनुप्राणित होकर देशमें आयुर्वेदिक और पेटेण्ट औषधियोंके बनानेके कारखाने खुले और वे भी मजेमें चल रहे हैं। हमारी शुभकामना है कि इस कम्पनीकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो जिसमें यह अधिकसे अधिक जनताकी सेवा कर सके।"

राजेन्द्र शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक योगी, पटना।

कार्यालय के हितचिन्तकों के प्रति

कृतज्ञता ज्ञापन

हीरक जयन्ती के उपलक्ष में देश के विभिन्न भागों से कार्यालय के अनेकों हितचिन्तकों ने अपनी अपनी शुभकामनायें और सन्देश भेज कर हमें प्रोत्साहन दिया है जिन्हें स्थानाभाव से इस प्रकाशन में प्रकाशित करना संभव नहीं है; किन्तु इन हितैषियों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिसे आशा है, वे स्वीकार कर इसी तरह बराबर कार्यालय के प्रति कृपा बनाये रखेंगे।

संचालक—

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
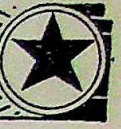
निखिल भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलनके भूतपूर्व अध्यक्ष सम्पादकाचार्य पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयीजी की शुभकामना—

"....डा० श्री कृष्ण बर्म्मनने ६० वर्ष पहले जो बीज बोया था, आज वह विशालकाय वृक्षके रूपमें ही परिणत नहीं है, परन्तु प्रफुल्लित और पल्लवित भी यथेष्ट मात्रामें है। डा० बर्म्मनकी देशभक्ति, परोपकारवृत्ति और हिन्दी हितैषिताका ही यह शुभ फल है। आशा है उनके पौत्र-डाबर लिमिटेडके संचालक उन्हींके चरणाचिह्नोंपर चलकर इसे और भी उन्नत करेंगे। इस हीरक जुबिलीके अवसर पर हम अपनी शुभकामना भेज रहे हैं।...."

ह० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी।

भारतमित्र और श्रीकृष्ण-सन्देशके यशस्वी सम्पादक, साहित्य महारथी पं० लक्ष्मण नारायणजी गर्देकी शुभकामना एवं सन्देश—

"....जिस यशस्विनी संस्थाने अपना विस्तार करते हुए साठ वर्षसे सतत लोकोपकार किया है और जिसकी इस प्रकार सतत समृद्धि हो रही है उसकी साठवीं वर्ष गाँठ हीरक जयन्तीके रूपसे मनायी जाय यह बड़ा ही मंगलमय अवसर है। इस शुभ अवसर पर उन मंगलमय भगवान्से यह प्रार्थना है कि इसी प्रकार इस उज्ज्वल वंशकी समृद्धि और डाबर लिमिटेडके यशोविस्तारका क्रम बना रहे, दिन दूनी रात चौगुनी इनकी उन्नति हो और उससे देश और जगत्का मंगल हो।...."

डा० एस० के० बर्म्मन और उनका अर्ककपूर—ये दो नाम मैंने बचपनमें ही सुन रखे थे। उनकी बड़ी ख्याति थी। मुझे यह पता नहीं था कि डा० एस० के० बर्म्मन कौन हैं, कहां रहते हैं। पर उनके **अर्ककपूरका** कपूरगौर उज्ज्वल नाम भारतवर्षमें सर्वत्र विख्यात हो चुका था—यह विश्वास स्थापित हो चुका था कि अर्ककपूरसे बढ़ कर हैजेकी कोई दवा नहीं है, हैजेकी यही रामबाण औषधि है। मुझे उस समय यह नहीं मालूम था कि डा० एस० के० बर्म्मन नाममें "श्रीकृष्ण" नाम छिपा हुआ है और उस नामकी शक्ति किसी दिन मुझे भी खींच कर उनके निरंतर बढ़नेवाले कार्यके किसी विभागमें बैठा देगी।

पहले पहल सन् १९०९ में मैंने कलकत्ता नगरीके दर्शन किये। तबसे डा० एस० के० बर्म्मनका अधिकाधिक परिचय प्राप्त होने लगा। मैंने जो कुछ उनके बारेमें सुना उससे यही मालूम हुआ कि डा० एस० के० बर्म्मन एक आदर्श व्यक्ति थे, उनका जीवन अत्यन्त निर्मल था, बड़े सत्यप्रिय और परोपकारी
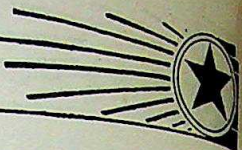
थे। खत्री सारस्वत क्षत्रिय विद्यालय उन्हींकी कीर्त्ति है। जिन-जिन संस्थाओंको अपने परिश्रमसे उपार्जित धनके द्वारा उन्होंने आर्थिक सहायता पहुंचायी है, उन संस्थाओंके इतिहास उनकी मुक्त दानशीलताके साक्षी हैं पर उनके दानी हाथसे कितने दीन-दुखियोंका शारीरिक और आर्थिक संकटोंसे उद्धार हुआ उसकी कोई गणना नहीं है। पर डा० एस० के० बर्म्मन से मेरा कभी साक्षात् नहीं हुआ, क्योंकि सन् १९०७ में वे स्वर्ग सिधार चुके थे। उनकी कीर्त्तिके रूपमें उनके दर्शन अवश्य हुए।

सन् १९२२ में कलकत्तेसे काशी लौट आनेके पश्चात् सन् १९१९ तक मेरा कलकत्ते जाना नहीं हुआ। इस बीच डा० एस० के० बर्म्मनके सुपुत्र श्री चुन्नीलालजी बर्म्मन पिताके समान ही उदारता आदि गुणोंमें विशेष ख्याति लाभ कर चुके थे। पर उनसे सन् १९२५ तक मेरी कोई भेंट-मुलाकात नहीं हुई थी। सन् १९२५ में जब भारतमित्र लिमिटेडके डाइरेक्टर सनातन धर्म मण्डलके अधिकारी लोग हो गये तब अपने इन नये मित्रों और हितचिन्तकोंके साथ नीतिके विषयमें अपना बड़ा मतभेद देख कर मैं भारतमित्रके सम्पादक-पदसे अलग हुआ। इसी समय श्री चुन्नीलालजी बर्म्मन एक साप्ताहिक पत्र निकालने की योजना बना रहे थे। मैं भी अपने कुछ धनी मित्रोंका सहारा पाकर एक दैनिक पत्रकी योजनामें व्यस्त था। पर जब मैंने सुना कि चुन्नीलालजी बर्म्मनकी यह इच्छा है कि उनके साप्ताहिक पत्रका सम्पादन में करूँ तब ऐसे सत्पुरुषका सहयोग प्राप्त होनेसे मैंने अपना स्वतंत्र दैनिक पत्र निकालनेका विचार त्याग दिया। इस तरह "श्रीकृष्ण-संदेश" का जन्म हुआ। श्री चुन्नीलालजी बर्म्मन थे तो मेरे समान ही सनातन धर्मके ही मानने वाले, पर सनातन धर्मके नामसे जिस सनातन तत्त्व और जिन सनातन गुणोंका बोध होता है उन्हीं गुणोंके हम दोनों ही कायल थे, उन दोषोंके नहीं जिनका सनातनसे शास्त्रतः कोई सम्बन्ध नहीं है। चुन्नीलालजी बर्म्मनके साथ मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे मालूम हुआ कि मेरे और उनके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं है, बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि जिन उदार धनिकोंका आश्रय लेकर मैं अपना स्वतंत्र दैनिक पत्र निकालना चाहता था उनकी अपेक्षा चुन्नी बाबूके मतोंसे मेरे मत बहुत अधिक मिलते-जुलते थे और इसीलिये वह स्वतंत्र दैनिक निकालनेका विचार त्याग कर मैं श्री चुन्नीलालजी बर्म्मन की योजनामें सम्मिलित हुआ। श्रीकृष्ण-सन्देशके सिद्धान्त, नीति और विचार जितने उनके थे उतने ही मेरे या यों कहिये कि जितने मेरे थे उतने ही उनके थे।

इस समय न चुन्नीलालजी बर्म्मन इस लोकमें हैं न "श्रीकृष्ण-सन्देश" नामका वह साप्ताहिक पत्र। पर कोई भी इस बातको अस्वीकार न करेगा कि चुन्नीलालजी बर्म्मनकी यशः काया अमर है और "श्रीकृष्ण-सन्देश" के अन्तर्हित होने पर भी उसमें पुनः प्रकट होनेकी शक्ति है। जब चुन्नीलालजी बर्म्मन जीवित थे तब उनके सामने इस पत्रका प्रकाशन एक बार बन्द हो चुका था, पर फिर प्रकाशन आरम्भ हुआ। दूसरी बार फिर प्रकाशन बन्द हुआ है। कोई तात्त्विक कारण नहीं है जो तीसरी बार प्रकाशन फिर न आरम्भ हो। यह जो कुछ हो, पर दोनों बार मिलाकर "श्रीकृष्ण सन्देश" का जितने समय तक प्रकाशन हुआ है, वह उसकी फाइलोंमें मौजूद है और हिन्दी संसारके लिये आज भी वह एक दर्शनीय वस्तु है। वह कीर्ति है श्री चुन्नीलालजी बर्म्मन की ही।

हिन्दीमें इस ढंगका कोई साप्ताहिक पत्र इससे पहले नहीं था। यह आकार-प्रकार चुन्नी बाबूके उदार प्रेमी हृदयकी कला और उपजाऊ मस्तिष्कके विचारका चमत्कार था। हिन्दी साप्ताहिकोंके लिये चुन्नी बाबूने एक नया मार्ग दिखलाया है। उसके गम्भीर विचार पूर्ण लेखोंका संग्रह, विविध कलाओंके नमूनोंका संकलन, उसकी सजावट, सामयिक चित्र, छपाई और सफाई इत्यादि बातोंमें आजतक भी कोई पत्र उसकी बराबरी नहीं कर सका है। चुन्नीलालजी बर्म्मनके अन्य कार्य रिसर्च लेबोरेटरी, आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणका विभाग आदि जैसे सबके लिये प्रेक्षणीय हैं वैसे ही साहित्यिकोंके लिये "श्रीकृष्ण सन्देश" की फाइलें भी।

सन् १९२५ से श्री चुन्नीलालजी बर्म्मनका जो परिचय मुझे प्राप्त होता गया उससे उनके प्रति मेरा आदर बराबर बढ़ता ही गया। डा० एस० के० बर्म्मनके जिन गुणोंकी कीर्त्ति मैंने सुन रखी थी उन गुणोंको चुन्नीलालजी बर्म्मनमें मैंने मूर्त्तिमान

देखा। वे वैसे ही निर्मल हृदय, परोपकारी, सत्यप्रिय और दानी थे। स्वर्गीय लक्ष्मणशास्त्री द्राविड़ कहा करते थे कि वे "अजात शत्रु" हैं। संसारमें किसीसे भी उनका बैर नहीं था और कोई भी उनके निर्मल सदय हृदयके सामने उनसे बैर नहीं कर सकता था। किसीको उन्होंने कभी बुरा नहीं कहा और उनकी भी किसी प्रकार कोई बुराई कभी नहीं सुनी गयी। दीनों पर दया उनका स्वभाव था और दान देते उनका हाथ कभी पीछे नहीं रहता था। दान देनेका उन्हें शौक था। दिल खोलकर खूब दान देते थे। असंख्य विपद्ग्रस्तोंका उन्होंने अपने जीवनमें विपद्से उद्धार किया है। उनके विचार बहुत गम्भीर थे, कभी कभी अपने शरीरको उन विचारोंके अनुकूल न पाकर विवशता भी अनुभव करते थे। उनकी भाव प्रवणता असाधारण थी। वे प्रायः मौन रहते थे, बहुत कम बोलते थे। उनका मौन उनके रसमय सदय हृदयका चिरंतन काव्य था। कटुवचन या अशुभचिन्तन इनके स्वभावमें था ही नहीं। वे प्रेमी थे, उदार थे, सबको सुखी देखना चाहते थे, किसीका दुःख बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और अपनी बातके धनी थे, जो वचन मुखसे निकल जाता वह कभी टल नहीं सकता था। संसारमें ऐसे पुरुष बिरले होते हैं। सत्संग उन्हें बहुत प्रिय था। किसी महात्माके आने या कहीं पास होनेकी खबर पाकर उनका हृदय उत्साहसे भर जाता था। सच्चिन्तन ही उनका स्वभाव था। वे स्वयं सत्पुरुष थे, सत्के ही स्वप्न देखते थे, सत् की ही बातें सुनते और कहते थे। डाबर लिमिटेडके कार्योंको इतनी कुशलताके साथ करते हुए उनका ध्यान प्रायः जीवनके परम लक्ष्यकी ओर रहता था और अलक्षित रीतिसे वे उसी सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलते थे। सन् १९३४ ई० में उनका देहावसान हुआ और पितृभक्त, परम पितृभक्त (भगवद्भक्त), कर्मयोगी "श्रीकृष्ण सन्देश" के प्रवर्त्तक चुन्नीलालजी बर्म्मन श्रीकृष्णधामकी ओर पधार गये।

डा० श्रीकृष्ण बर्म्मनकी यह पुण्य परम्परा है। इसी पुण्य के प्रतापसे डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेडका यह उत्तरोत्तर अधिकाधिक विस्तार है। यह पुण्य परम्परा, मुझे यह देखते सुख होता है कि आज भी उस वंशमें विद्यमान है। चुन्नीलालजी बर्म्मनके सुपुत्र श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी बर्म्मन और श्रीमान् रतनचन्द्रजी बर्म्मन डाबर लिमिटेडके वर्त्तमान डाइरेक्टर हैं। इन दोनों भाइयोंने जिस कुशलता और यशस्विताके साथ सारा कारबार सम्हाला है और उसका विस्तार किया है उसे देख कर कोई भी मुक्त कण्ठसे उनकी प्रशंसा किये बिना न रहेगा। स्व० चुन्नीलालजी बर्म्मन कलकत्तेके रासबिहारी एवेन्यू पर डाबर लिमिटेडका नया भवन निर्माण करानेका काम छोड़ गये थे उसकी पूर्णता इन्हींके हाथों हुई है और अब वह नवीन भव्य भवन उस प्रशस्त राजमार्गकी शोभा बढ़ा रहा है। आयुर्वेदिक औषधियाँ प्रस्तुत करनेका काम भी स्व० चुन्नीलालजी आरम्भ कर गये थे और अब आयुर्वेद विभागका बहुत अधिक विस्तार हुआ है और देवघर (बिहार) में नयी भूमि खरीद कर वनस्पतिशाला, आयुर्वेदिक रसायनशाला, अन्वेषणशाला, आयुर्वेद विद्यालय, आयुर्वेद पुस्तकालय, दातव्य औषधालय आदि स्थापित करनेकी जो नयी योजना सोची गयी है उससे न केवल डाबर लिमिटेडके यशका विस्तार होगा बल्कि आयुर्वेदके जीर्णोद्धारका वह महत्कार्य सिद्ध होगा जो अबतक कहीं नहीं हो रहा है। इस तरह पहलेकी सब संस्थाओंको चलाते हुए जो नये-नये कार्य यशस्विताके साथ किये जा रहे हैं और उनसे जनता का जो उपकार हो रहा है वह भगवानके वरद हस्तका ही प्रसाद है।

डाबर लिमिटेडके औषधियाँ प्रस्तुत करने और गरीबोंको बिना मूल्य औषधि बाँटने आदि जितने भी काम होते हैं उनमें सदा इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि कोई भी द्रव्य अशुद्ध न हो। औषधि प्रस्तुत करनेमें यदि किसीकी भूलसे जरा सा भी कोई अशुद्ध द्रव्य पड़ जाय तो चाहे हजारोंका माल तैयार हो चुका हो, वह फेंक दिया जाता है, यही मैं बराबर सुनता आ रहा हूँ। यही कारण है कि डा० बर्म्मनकी सभी औषधियों पर लोगोंका पूर्ण विश्वास है। आजतक डा० बर्म्मन की किसी औषधिकी अमोघता पर किसीको सन्देह करते न देखा न सुना। डा० एस० के० बर्म्मनका पेटेंट दवाइयोंके निकालनेमें मूल उद्देश्य जो सच्चे परोपकार का था वह अभीतक ज्योंका त्यों चला आया है। श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी बर्म्मनका जो संग-साथ अब तक मुझे प्राप्त हुआ है, जैसा उदार व्यवहार उनका देखा है उससे मैं यही जानता हूं कि जो निर्मल हृदय, परोपकार, सत्यप्रियता आदि गुण डा० एस० के० बर्म्मन अथवा

श्री चुन्नीलालजी बर्म्मनमें थे उनसे पूर्णचन्द्रजीभी विभूषित हैं और यद्यपि श्रीमान् रतनचन्द्रजीका प्रत्यक्ष परिचय विशेष रूपसे प्राप्त करनेका कोई वैसा अवसर मुझे नहीं मिला है तथापि उन्हें में वैसा हो जानता हूँ जैसा श्रीपूर्णचन्द्रजीको समझता हूँ। दोनों डा० एस० के० बर्म्मन और चुन्नीलालजी बर्म्मनके गुणोंका यशोविस्तार करने वाले हैं। जो भव्य विस्तार उन्होंने डाबर लिमिटेडका किया है उनकी पूर्व परम्परा और उनके अपने सद्‌गुणोंका ही विकास है।

जिस यशस्विनी संस्थाने अपना विस्तार करते हुए साठ वर्षसे सतत लोकोपकार किया है और जिसकी इस प्रकार सतत समृद्धि हो रही है उसकी साठवीं वर्ष गाँठ **हीरक जयन्ती**के रूपसे मनायी जाय यह बड़ा ही मंगलमय अवसर है। इस शुभ अवसर पर उन मंगलमय भगवानसे यही प्रार्थना है कि इसी प्रकार इस उज्ज्वल वंशकी समृद्धि और डाबर लिमिटेडके यशोविस्तारका क्रम बना रहे, दिन दूनी रात चौगुनी इनकी उन्नति हो और उससे देश और जगत्‌का मंगल हो।

लक्ष्मण नारायण गर्दे

सुप्रसिद्ध पत्रकार बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवाल संचालक विश्वमित्र की शुभकामना एवं सन्देश—
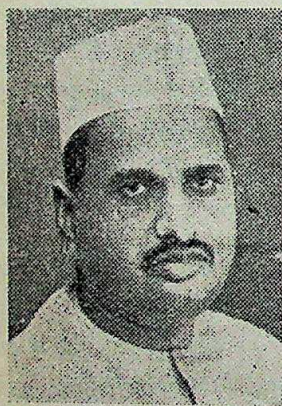
"....औषधि निर्माण और औषधि विक्रयका पवित्र कार्य व्यवसाय और सेवाका सम्मिश्रण रखता है। जो कार्यालय इस पवित्र आदर्शका निर्वाह कर दिखाये वह वास्तवमें उल्लेखनीय है। डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) कार्यालय इस श्रेणीमें सहजमें आ जाता है।

डाबर लिमिटेड को इसकी हीरक जयन्तीके सुअवसर पर बधाई है और देशवासियोंको हार्दिक शुभकामना उसके लिये है।...."

औषधि-निर्माण और औषधि विक्रयका पवित्र कार्य व्यवसाय और सेवाका सम्मिश्रण रखता है। जो कार्यालय इस पवित्र आदर्शका निर्वाह कर दिखाये, वह वास्तवमें उल्लेखनीय है। डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) कार्यालय इस श्रेणीमें सहजमें आ जाता है। इसके कार्य संचालनको मैंने एक पत्रकारकी दृष्टि से गम्भीर दृष्टिसे देखा और सदा उसे प्रशंसनीय ही पाया। यदि सञ्चालकोंने अपने आदर्शकी रक्षा की, तो धन, यश दोनों की समान वृद्धि सूर्यके प्रकाशके समान निश्चित है।

बाबूजी, मुझे एक दाग दवा दीजिये—करुण क्रन्दन करती हुई सत्तर वर्षीय वृद्धा नौकरानीने मुझसे कराहते हुए कहा। मैं समझ गया कि इसे शीतज्वर है और यह डाबर कार्यालय की **जूड़ीताप** की एक खुराक मांग रही है; देते ही उस पर जादूका असर हुआ। कई नौकरोंको चमत्कारी लाभ पहुँचा, इसलिये दवाकी शीशी घरमें रखनी ही पड़ती है। बहुत-सी विदेशी दवाइयां इस देशमें चल रही हैं, परन्तु उनका प्रचार शहरों तक ही सीमित है। डाबर हाउसकी दवाइयां हजारों गावोंमें जा पहुँची और लोकप्रिय बन गयीं।

मैं आठ-नौ वर्षका ग्रामीण बालक ही था—मुझे आज भी वे दिन अच्छी तरह याद हैं। गांवके उर्दूदां मुन्शीजी डाक्टर एस० के० बर्म्मनकी दवाओंके एजेण्ट थे। महीनेमें पांच-सात

डाबर हीरक जयन्ती

रुपये कमाया करते थे। उनकी उस बड़ी आमदनीको देखकर मैं ईर्ष्या किया करता था और वे आस-पासके गांवोंमें काफी प्रसिद्धि रखते थे, क्योंकि औषधि बेच कर गांववालोंको लाभ पहुंचाते थे। इस प्रकार अगणित एजेंण्ट काफी प्रसिद्ध बन गये। कालेजमें पढ़ते हुए और जीवन-संग्राममें प्रविष्ट होनेपर मैंने देखा कि डाबर कार्यालय वास्तवमें देशकी सम्माननीय संस्था है और उस पर मेरी यथेष्ट श्रद्धा है। एक खुफियाके भांति मैंने पता लगाया, तो मालूम हुआ कि औषधि-निर्माणमें लाभके साथ इस बातका भी पूरा ध्यान रखा जाता है कि देशवासी ठगे न जायें। इस मूलमन्त्रमें ही कार्यालयकी उन्नतिका बीज है और जबतक सञ्चालक इस ध्येयको गीता-गायत्रीके समान याद रखेंगे, कार्यालय बराबर फूलता-फलता जायेगा। यह दूसरी बात है कि उसे कठिनसे कठिन प्रतियोगिताका सामना करना पड़े।

स्वर्गीय डाक्टर श्रीकृष्ण बर्म्मन (एस० के० बर्म्मन) में यदि सेवाकी पवित्र भावना व्यापारकुशलताके साथ न होती, तो कार्यालय इस महान् स्वरूपको प्राप्त न कर पाता। उनके सुपुत्र स्वर्गीय चुन्नीलालजी बर्म्मनने भी इस दिशामें अपने सुयोग्य पिताका अनुसरण किया और आज उनके पौत्र भी कर रहे हैं।

लोक-सेवक प्रतिष्ठानोंके सञ्चालकोंपर महान् नैतिक और आर्थिक जिम्मेदारियां हुआ करती हैं। उनकी धनराशि भोग विलासके लिये नहीं, वल्कि कार्यविस्तारके लिये हुआ करती है। सञ्चालकोंका जीवन सरल और बिचार महान् होने चाहिये। सुयोग्य व्यक्तियोंको चुनकर कार्यमें लगाना आवश्यक होता है और सुयोग्य व्यक्तियोंकी आर्थिक आवश्यकताएं पूर्ण कर उन्हें अपने यहां स्थायी प्रश्रय देना पड़ता है। अधिकाधिक कार्य विस्तारको ध्यानमें रखकर सञ्चालक बैङ्क बैलेन्स नहीं बढ़ा सकते, उन्हें अपना कार्यक्षेत्र ही विस्तृत करना चाहिये। औषधि व्यापारमें विज्ञापन सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, इसलिये विज्ञापनके नये-नये साधन सोचकर काममें लाना चाहिये। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि विज्ञापनमें व्यय किया हुआ धन कितने परिमाणमें वापस आ रहा है। बाल काला करनेवाले दो रुपये तेलकी शीशीके लिये एक बार एक मासमें दस हजार रुपये विज्ञापनमें व्यय कर दिये गये और तेलके आर्डर चार पांच सौ रुपयेके ही आये। जहां दो इञ्चका विज्ञापन पर्याप्त था, वहां चौथाई पेजके विज्ञापन मुख पृष्ठपर कर डाले गये। व्यवसायमें विवेक अपना खास स्थान रखता है और धैर्यसे कार्य करना सबसे बड़ी साधना है। एक दिनमें सब कुछ कर डालनेकी धुन बड़ी खतरनाक है और बराबर सोचते रहना और कुछ न करनेकी आदत भी नाशकारी है। दोनों आदतोंके बीच यथेष्ट सामंजस्य होना चाहिये। हमारे देशमें औषधिनिर्माण और औषधि प्रचारका कार्य रुपयेमें एक आना भी नहीं मालूम होता, जब हम विदेशी औषधियोंकी ओर दृष्टिपात करते हैं। तब भी डाबर हाउसके जन्मदाताने विज्ञापनकलाके महत्त्वको सर्वप्रथम अनुभव कर नया आदर्श सामने रखा :

विज्ञापनकला वह भूत सदृश है जो सदा सामने दिखायी देती रहती है और जो कभी नष्ट नहीं हो सकती यदि किसी प्रतिष्ठानकी सारी आमदनी विज्ञापनबाजीमें लगा दी जाये, तब भी वह बहुत बड़ी पूंजी मानी जायगी। विज्ञापनबाजीमें सत्य कूट-कूटकर भरा रहना चाहिये। एक भी बात अतिरंजित न होनी चाहिये और विज्ञापनदाताकी प्रत्येक बात विश्वसनीय बन जानी चाहिये। आशा है, देशके औषधि प्रतिष्ठान इन आवश्यक बातोंकी ओर ध्यान देंगे।

डाबर लिमिटेडको इस हीरक जयन्तीके शुभावसर पर बधाई है और देशवासियोंकी हार्दिक शुभकामना उसके लिये है।

मूलचन्द्र अग्रवाल

"विश्वबन्धु" कलकत्ता के कुशल संचालक श्रीयुत् गोपाल प्रसाद सिंहजी की शुभकामना एवं सन्देश—

"...डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लिमिटेडकी हीरक जयन्ती मनायी जा रही है। इस शुभ अवसर पर हम उसके संचालकोंको हार्दिक बधाई देते हैं। साथ ही यह हार्दिक शुभकामना है कि डाबर लिमिटेड दिन दूनी उन्नति करते हुए मानवताकी सेवा करता रहे...।"

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लिमिटेडकी हीरक जयन्ती मनायी जा रही है। इस शुभ अवसर पर हम उसके संचालकोंको हार्दिक बधाई देते हैं। आज डाबर अर्थात् डा० एस० के० बर्म्मनका नाम न सिर्फ देश, प्रत्युत् विदेशोंमें भी काफी ख्याति पा चुका है। हर व्यक्तिके हृदयमें इस लोकोपकारी संस्थाके प्रति अपार श्रद्धा है, जो उसकी सफलता और लोकप्रियताका ज्वलन्त प्रमाण है। आज डा० बर्म्मनका नाम न सिर्फ बड़े-बड़े शहरोंमें ही, बल्कि दूर देहातोंमें भी भलीभांति परिचित है। निस्सन्देह, कम्पनीके संचालकोंके लिए यह गर्व और गौरवकी बात है।

मानवताकी निःस्वार्थ सेवाकी पवित्र भावनाको लेकर, स्वनामधन्य डाक्टर एस० के० बर्म्मनने इस संस्थाकी स्थापना की और अपनी सेवा-भावनाकी सचाईसे अल्पकालमें ही इस संस्थाको काफी विख्यात बना दिया। सन १८९८ ई० में जब कलकत्तेमें प्लेगका भीषण प्रकोप हुआ था, उस समय डा० बर्म्मनने अपनी सहृदयता, दयालुता और उदारताका प्रशंसनीय परिचय दिया था। जनता जनार्दनकी सेवाकर उन्होंने वह यश प्राप्त किया, जो दूसरे प्रख्यात डाक्टरोंके लिए प्रतिस्पर्धाकी बात हो गयी।

डा० बर्म्मनमें एक विशेषता यह थी कि वे गरीबों और निस्सहायोंकी बिना मूल्य चिकित्सा किया करते थे। एक सच्चे डाक्टरमें जो गुण होने चाहिये, वे प्रायः सभी उनमें विद्यमान थे। ऐसे उदारहृदय और परोपकारी डाक्टर और उसके औषधालयकी लोकप्रियता सर्वथा स्वाभाविक ही है और हुआ भी ऐसा ही।

डाक्टर बर्म्मनकी अनेक पेटेण्ट दवाइयां लाखों प्राणियोंकी रक्षा कर चुकीं और कर रही हैं, जिसके लिए डाबर लिमिटेडका नाम सदाके लिए अमर रहेगा। आज इस कम्पनीने अपने सुयोग्य डाइरेक्टरोंकी देख-रेखमें काफी तरक्की कर ली है। अपने विशाल **'डाबर हाउस'** (रासबिहारी एवेन्यू, कलकत्ता) में इसने अपने कार्योंका बहुत ज्यादा विस्तार कर लिया है, जो उसके निम्नलिखित विभागोंसे स्वतः स्पष्ट हो जाता है। **मूलद्रव्य विभाग, मूलद्रव्य अन्वेषण विभाग, वृहद् रसायनशाला, अन्वेषण तथा विश्लेषण विभाग, स्पिरिट रसायनशाला और फार्मास्युटिकल विभाग।** इन विभागोंका संचालन कई विद्वान और अनुभवी वैज्ञानिकों, डाक्टरों, केमिस्टों और वैद्योंके तत्त्वावधानमें होता है। इस तरह उच्चकोटिकी शास्त्रोक्त सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियां और पेटेन्ट दवाइयां तैयार की जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि चिकित्साके क्षेत्रमें डाबर लिमिटेड इस समय सराहनीय सेवा कर रहा है।

लेकिन इस स्थलपर और हीरक जयन्तीके इस शुभ अवसर पर, मैं कम्पनीके वर्त्तमान डाइरेक्टर बाबू पूर्णचन्द्र जी बर्म्मन और रतनचन्द्र जी बर्म्मनका ध्यान एक खास अभावकी ओर आकृष्ट करना आवश्यक समझता हूं। डाबर लिमिटेड अपनी इस हीरक जयन्तीके अवसर पर यदि एक आयुर्वेदिक कालेज खोलनेकी घोषणा कर दे, तो निस्सन्देह वह अपनी सेवाओं और सफलताओंमें चार चांद लगा देगा। यह आयुर्वेदिक कालेज किस तरहका हो और उसके जरिये किन अभावोंकी पूर्ति की जाय, इसका विस्तृत विचार तो सम्बन्धित व्यक्ति ही करेंगे।

लेकिन इतना मैं अवश्य कहूंगा कि आधुनिक ढंगके आयुर्वेदिक कालेजोंका अभी सर्वथा अभाव है; अतः यदि एक ऐसा कालेज खोला जाय जहां गरीबसे गरीब छात्र भी सब तरहकी सुविधायें पावें, तो हमारा विश्वास है कि इससे चिकित्साके क्षेत्रमें अच्छी प्रगति होगी।

आज आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति एलोपैथिक पद्धतिके सामने बिलकुल उपेक्षित बन गयी है और इसका प्रधान कारण है, केवल सरकारकी उदासीनता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आयुर्वेदिक पद्धति किसी भी तरह अपूर्ण है। दरअसल हमारी प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति वर्त्तमान सभी चिकित्सा पद्धतियों-में श्रेष्ठ है। अतएव यदि आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारोंकी सहायतासे उसका पुनर्विकास किया जाय, तो वह हमारे लिये बड़ा ही उपादेय सिद्ध होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। मतलब यह कि यदि आयुर्वेदिक कालेज खोला जाय और उसमें सर्जरी (चीर-फाड़) आदिकी भी शिक्षा आधुनिक ढंगसे देने और उसकी प्रयोगशालामें नये-नये प्रयोग करनेकी व्यवस्था हो तो इस दिशामें उल्लेखनीय प्रगति हो सकती है।

अतएव हमें पूरा विश्वास है कि जिस तरह स्वर्गीय बाबू हीरालालजी बर्म्मन और स्वर्गीय बाबू चुन्नीलालजी बर्म्मन ने अपने कार्यकालमें डाबर लिमिटेड की प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ायी, उसी तरह वर्तमान डाइरेक्टर बाबू पूर्णचन्द्रजी और बाबू रतन-चन्द्रजी इस आयुर्वेदिक कालेजकी योजना बना और उसे कार्या-न्वित कर देशके सामने एक उच्चादर्श रखेंगे।

अन्तमें मैं अपनी यह हार्दिक शुभकामना प्रकट करता हूं कि डाबर लिमिटेड दिन दूनी उन्नति करते हुए मानवताकी सेवा करता रहे।

गोपाल प्रसाद सिंह

आयुर्वेद भारतके यशस्वी नेता भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति पं० शिवशर्माजी, आयुर्वेदाचार्यकी शुभकामना—
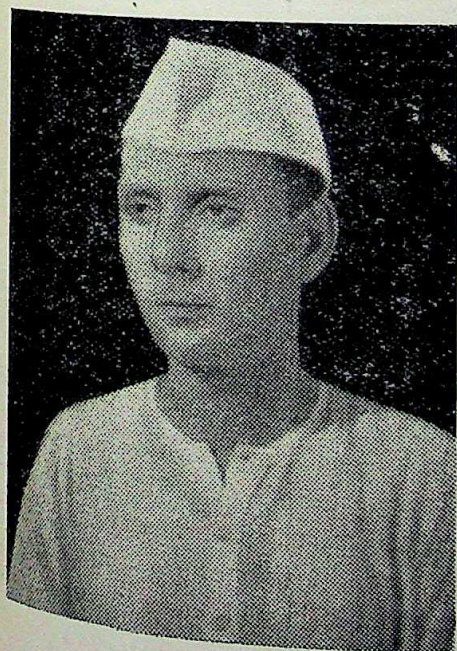
"...यह जानकर प्रसन्नता हुई कि डाबर लि० कार्यालय हीरक जयन्ती मना रहा है। यह कार्यालय ६० वर्षोंसे आयुर्वेदकी सेवा और प्रचार बड़ी योग्यतासे करता चला आ रहा है और आयुर्वे-दिक औषधनिर्माणकलाको पाश्चात्य आदर्शके समान बनानेमें सफल हुआ है। इसके लिए यह विशेष लोक-प्रियता और प्रोत्साहनका पात्र है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह कार्यालय सदैव इसी प्रकार उन्नत हो और आयुर्वेदकी सेवा और प्रचार करता रहे...।"

ह० शिव शर्म्मा

आयुर्वेद राष्ट्रपति, राजवैद्य, प्राणाचार्य कविराज मणीन्द्रकुमार मुखोपाध्याय बी० ए०, आयुर्वेद-शास्त्री वैद्यवाचस्पतिकी शुभकामना एवं सन्देश—
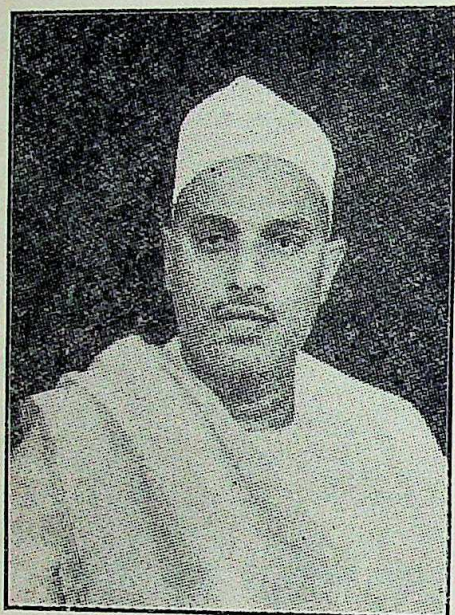
"All well-wishers of Ayurved should offer felicitations to Messrs. Dabur (Dr. S. K. Burman) Ltd. on their Diamond Jubilee occasion. Pharmaceutical aspects on a mass scale constitute a new tradition in the annals of Ayurved. To meet the requirements of the changed conditions of Ayurved in the country, many a novel thing is becoming indispensable. Care should be taken that Ayurved is not commercialised in the name of regeneration and modernisation. If pharmaceutical enterprises are related to the needs of research of Ayurved on its own scientific lines and are not divorced from the sound theories and age-old traditions of the science, they should receive the support and encouragement of all right thinking men. Specially when an Ayurvedic manufacturing concern is ready to employ its profits in liberal investments for the cause of the Ayurvedic culture, and the progress of the Ayurved community, it deservs the encomium and blessings of all lovers of Ayurved. From personal experience I have come to know Messrs. Dabur (Dr. S. K. Burman) Ltd. as such a one, and all my good wishes go to the famous firm on this occasion as to all such concerns not absolutely devoted to mere Mammon-worship."

In these days of Ayurvedic Renaissance, various problems of importance are cropping up. Efforts, also, are, more or less, afoot to deal with them for the betterment of the prevailing conditions of the Ayurvedic field in the country. It will be Himalayan folly to lose sight of the grim realities surrounding us, and fail to make provisions in the light thereof, nor will it be any wisdom to capitulate to the trend of the times and acquiesce in the headlong craze for embracing all that is of the day, and glamerous, too Revival and regeneration should always follow the routes of level—headed perception of the environs and possibilities, and be broad—based on non-disturbance of the sound fundamentals of the science and culture that is ours. It is not unnatural in the midst of all aggressive, modern surroundings to have lukewarm faith in the possibility of assertiveness for our own thing. But one consideration that the western science is proving to demonstration many of our pet and age-old theories and practices as infallible, as it is progressing with its experiments and experiences, should be a sufficiently encouraging factor to maintain an unwavering confidence in our principles and methods, though their sharpness and brilliance may not be revealed by us, all at once to the reckless poohpoohers and the doubting Thomases. To achieve the

apparently impossible, the modern world is hatching long-term schemes. Ayurved can similarly thrive and be reinstated in its pristine position of glory and greatness, provided requisite backings and resources be made available for it from all quarters concerned, along with the progressive belief that it is a perfect and preferable source of relief and welfare. Certainly, the nascent awakening of the Ayurvedic fraternity has opened its eyes all at once to a wilderness of problems, bewildering it for the time-being, and impatient hankerings are in evidence all around But with a round- headed survey, and wise selection of issues, the right begining leading to the mighty results desired, might be made, and if strictly Ayurvedic foundations are maintained, it will not, at all, be impossible to acquire a position at the end of a period,—a position in which all medical requirements of the present-day society can be met by Ayurveda.

The necessity of a Pharmacopia of Ayurveda must, in the first instance, suggest itself to be of paramount importance. This issue concerns a delicate aspect of Ayurvedic regeneration, namely, the question of standardised products of Ayurveda Ayurveda came into vogue in the days of pastoral simplicity, when people lived in the refreshing ways of Dame Nature, who, like the loving mother, provided fresh, potent and luxuriant herbs and drugs for relieving the pains of her children. Life has come to be artificialised under the impact of the modern civilisation from the occident, and the inescapable problem is there of standardising the ingredients, recipes and products of Ayurveda, which can not be otherwise harnessed to safe and efficient service of ailing humanity as in the good, olden days. Proper investigation from the Ayurvedic Stand-point, and salutary State control in this direction, are wanting, and may be long in coming. Till then, our own efforts may make some progress, and our pharmaceutical people will do well to take advantage of expert counsels and necessary supervision of the reliable, organised Ayurvedic bodies, in such matters. This will secure for them the necessary popular confidence for their preparations presented to the market. In sooth, the proper lines to be defintely pursued in standardisation require to be determined first, and constitue an essential item in the seheme of Ayurvedic research of to-day.

The necessity of close co-operation between the professionals and pharmaceutical people, can not also be too strongly emphasised. Any antagonism between these two groups is deeply fraught with possibilities for retarding the progress in the path of regeneration of our beloved science and culture. It must not be forgotten by our business lords that scholars and professionals are the real propagandists of Ayurveda, on the commercial possibilities of which the former are banking. Furthermore, by winning the confidence and good will of the profession, they can secure safer markets for their products, and such co-operation and friendly relations between both are also for mutual benefit in more ways than one.

They can also draw the professionals and Ayurvedic Pandits nearer by initiating departments of research, and providing facilities for them there. It is unfortunate that, till now, these magnates of our field, some of whom have become even Croesusses of wealth, have not

employed even an infinitesinal part of their gains, hoards and resources for this high purpose. It is a paying proposition for them. They can, in the following manner, economise expenses, and engage gifted research scholars in the Ayurvedic Laboratory and investigation department of their own. If the phramacies combine even on the provincial basis, and carry on dignified publicity of Ayurveda and its pharmaceutical enterprise just like the Indian Tea Market Expansion Board, far better results of advertisement may be obtained with far less expense. The sooner this idea captures the imagination of the pharmaceutical enterprisers of Ayurveda the better path for the progress end advancement of their ventures may be opened. They have long gone on in the common place stereotyped way of advertisement, and further prosperity thereby can not be expected

In carrying out all the above suggestions, so essential, into execution, there must be the precaution, that no deviation is made from the sound and perfect principles of Ayurveda which has to be studied, cultivated and advanced on its own scientific lines.

आयुर्वेद मर्मज्ञ भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति पं० गोवर्धन शर्मा छांगांणी, भिषगकेशरी, नागपुरकी शुभकामना—

"...मैं हृदयसे इस संस्थाकी मंगल कामना करता हूँ। साठ वर्ष पूरे हो चुके हैं, इसलिये बहुत जल्दी ही हीरक जयन्ती मनानेका शुभ आयोजन हो रहा है। आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि उक्त हीरक जयन्ती भी अभूतपूर्वरूपेण बड़े ठाट-बाटके साथ मनायी जायगी...।"

डाबर लिमिटेडका शुभनाम दीर्घकाल तक डा० एस० के० बर्म्मन, कलकत्ता रहा है। मैं अपनी युवावस्थासे ही इस फर्म, कम्पनी या फार्मेसी (औषधि निर्माणशाला) की सत्यता पर मुग्ध हूं। इस औषधि निर्माणशालाने बड़ी भारी छान-बीन एवं संशोधन (रिसर्च) के साथ प्रायः सभी आयुर्वेदीय मौलिक प्रयोगोंका निर्माण ऐसी धरती पर किया है कि वे प्रयोग आज शतप्रतिशत आयुर्वेदोक्त फलको दिखा रहे हैं। कार्यालयकी सत्यतापूर्ण कार्य कुशलताके कारण ही इसकी शाखाएं जालकी तरह भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें पसरती जाती, फूलती और फलती हैं। स्वर्गीय डा० श्रीकृष्ण बर्म्मनकी आत्माको अपनी संस्थापित संस्थाके कारण बड़ा आनन्द होता होगा, इसलिए कि उनके पश्चात् भी इसके सत्त्वाधिकारी उनकी इच्छानुकूल ही इसका सफल सञ्चालन कर रहे हैं। अन्य फार्मेसियोंकी तरह स्वर्गीय डा० बर्म्मनकी यह औषधिनिर्माण-शाला व्यापारियोंकी तरह धन कमानेको ही अपना ध्येय नहीं समझती। हजारों रुपये समय-समय पर देशोपकारक सत्कार्योंमें इस संस्था द्वारा दान दिया गया, दिया जा रहा है तथा भविष्यमें भी दिया जायगा, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। परमात्मा ऐसी संस्थाओंको अधिकाधिक तथा उत्तरोत्तर जन्म दे ताकि देशोद्धारके सत्कार्यमें मदद मिलती रहे मैं, हृदयसे इस संस्थाकी मङ्गल-कामना करता हूं। साठ वर्ष पूरे हो चुके इसलिए बहुत जल्दी ही हीरक जयन्ती मनानेका शुभ आयोजन हो रहा है। आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि उक्त हीरक जयन्ती भी अभूतपूर्वरूपेण बड़े ठाट-बाट के साथ मनायी जायगी।
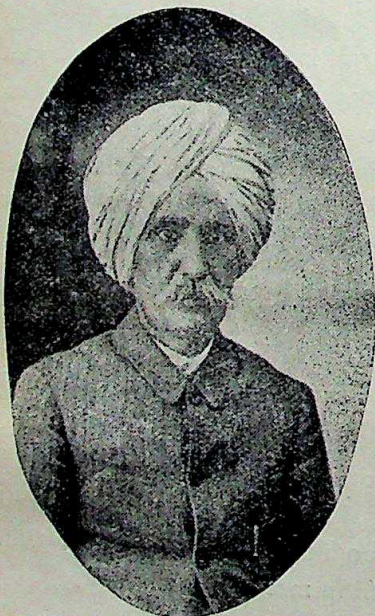
ह० श्रीगोवर्धन शर्मा छाङ्गाणी

आयुर्वेद महा० म० रसायनशास्त्री अ० भा० संदिग्ध-वनौषधि-निर्णायक-परिषद्के सभापति पं० भागीरथ स्वामी, आयुर्वेदाचार्यकी शुभकामना—

"...नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ और वैद्य समाजके प्रति यह कारखाना अत्यन्त लाभ पहुंचानेके कारण सर्वप्रिय कहलाने योग्य है। मैं भी इस कारखानेके मालिक बाबू पूर्णचन्द्रजी बर्म्मन तथा बाबू रतनचन्द्रजी वर्म्मनको आशीर्वाद प्रदान करता हूं। ये इसी प्रकार सर्वदा इस कार्य्यालयकी उन्नति करते रहें...।"

वंशोविस्तरतांयातु कीर्तिर्यातु दिगन्तरम्
आयुर्विपुलतांयातु पूर्णचन्द्रस्यबर्म्मणः

ह० भागीरथ स्वामी

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनाध्यक्ष और सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, लाहौरके प्रधान मन्त्री, त्यागमूर्त्ति गोस्वामी गणेशदत्तजी महाराजकी शुभकामना—

"...स्वर्गीय डा० एस० के० वर्म्मन का डाबर लिमिटेड कार्यालय अपनी प्रामाणिक औषधियों और समय-समय पर की हुई जन-सेवाओंके कारण काफी प्रसिद्ध हो चुका है। मैं उसके हीरक जयन्ती समारोहकी सफलता चाहता हूँ और यह आशा करता हूँ कि वह भविष्यमें और भी उन्नति प्राप्त करेगा...।"

भारतके सुप्रसिद्ध डालमिया सीमेंट लिमिटेड की शुभकामना।

I am pleased to learn that the Dabur (Dr. S. K. Burman) Limited. Pharmacy is celebrating its Diamond Jubilee. I wish the celebration a success and the Pharmacy further prosperity.

नागपुरके सुप्रसिद्ध राष्ट्रसेवी श्रीयुत् छगनलालजी भारुका, बी० ए०, एम० एल० ए० की शुभकामना—

"...मैं आपकी हीरक जयन्तीकी सफलता चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आप जनता-जनार्दनकी सेवाओंके हेतु सस्ती और लाभप्रद दवाइयाँ गरीब जनताके घरोंतक पहुँचानेमें अधिक समर्थ बनें। आपका कार्य देशव्यापी और जनताको फायदा पहुँचाने वाला हो...।"

ह० छगनलालजी भारुका

हिन्दी जगत्के सुप्रसिद्ध राष्ट्रिय दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र "आज" काशीकी शुभकामना—

"...डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेडने स्वदेशी दवाओंका प्रचार बढ़ाकर जो स्वदेश-सेवा की है, उसके लिए उसे बधाई मिलनी चाहिये। विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका आन्दोलन तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक उनकी जगह स्वदेशी वस्तु अधिक मात्रामें बनने न लगे। मुझे आशा है कि यह कम्पनी देशकी गरीबी और उसकी आवश्यकताओंका ध्यान रक्खेगी...।"

विद्या भास्कर

युक्तप्रांतके सुप्रसिद्ध पत्र "वर्त्तमान" की शुभकामना—

"...हमारी हार्दिक मनोकामना है कि, नवीन डाइरेक्टरोंके द्वारा, डाबरकी उतनी ही अधिक उन्नति हो, जितनी कि, अमेरिकन तथा ब्रिटिश औषधि-निर्माताओंकी उन्नति देखनेमें आती है...।"

विहारके सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्र "नवशक्ति" पटनाकी शुभकामना—

"...डाबर लिमिटेड कम्पनी द्वारा जो सेवा कार्य हुए हैं, उसके लिये सारे देशको कृतज्ञ होना चाहिये। इस कार्यालयके प्रयत्न सराहनीय और अनुकरणीय हैं। ईश्वर करें इस कम्पनीकी दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति हो...।"

ह० देवव्रत

—डाबर हीरक जयन्ती—

लोकप्रिय डाक्टर एस० के० बर्म्मन को दानशीलताके प्रमाणमें प्राप्त—

सम्मान-पत्र

Certificate of Honour.

Has been presented to Dr. S. K. Burman in recognition of his liberality by His Honour the Lieutena Governor of Bengal in the name of His Majesty the Emperor of India by command of His Excellency t Viceroy and Governor-General of India in Council on 1st. January, 1903.

भारतवर्ष के सम्राट श्रीमान् सप्तम एडवर्ड की ओर से महामान्यवर श्रीमान् वाइसराय व गवर्नर जेनरल हिन्द महोद की आज्ञानुसार श्रीमान् लेफटिनेण्ट गवर्नर बङ्गाल बहादुर ने उक्त डाक्तर बर्म्मन की दानशीलता के लिये उनको सम्मा पत्र (*Certificate of Honour*) देकर सम्मानित किया है।

लोकप्रिय डाबर कार्यालयकी वस्तुओंकी श्रेष्ठताके प्रमाणमें प्राप्त—

नियुक्ति-पत्र

महामाननीय श्रीमान् हिज़ हाइनेस महाराजाधिरा श्री रामेश्वर सिंहजी बहादुर जी० सी० आई० ई० के बी० ई० डी० लिट्, एफ० आर० एस० ए० दरभंगा नरे की ओर से केमिष्ट ड्रगिष्ट नियुक्तिपत्र—

Rajnagar

Raj Darbhanga. Dated, 15th. April, 19

Dr. S. K. Burman of Calcutta is hereby appointed Chemi and Druggist by appointment to His Highness the Hon'b Maharajadhiraja Sir Rameshwar Singh, G. C. I. E., K. B. D. Litt., F. R. S. A. of Darbhanga.

By Order

Dr Raha

Private Secretary

ब्रिटिश इम्पायर प्रदर्शनी, वेम्बली (१९२४) द्वारा प्राप्त प्रमाण-पत्र एवं स्वर्णपदक।

British Empire Exhibition 1924

Patron:
H.M. THE KING.
President:
H.R.H. THE PRINCE OF WALES
Chairman of The Executive Council
HIS GRACE THE DUKE OF DEVONSHIRE

This Certificate of Honour is issued with a Medal to

Dr. S.K. Burman,

in recognition of having participated in The British Empire Exhibition. at Wembley: 1924.

MEMBERS OF THE BOARD

Chairman

Chief Administrator

Secretary.

—डाबर हीरक जयन्ती—

लोकप्रिय डाबर कार्यालयकी वस्तुओंकी श्रेष्ठताके प्रमाणमें प्राप्त—

नियुक्ति-पत्र

Azimganj Raj Estate.

Azimganj

Dated 24th. January, 1924.

Dr. S. K. Burman of Calcutta is hereby appointed Druggist to Raja B. S. Dudhoria of Ajimganj.

By Order

Sd.- P. B. Roy,

Private Secretary.

प्रमाण-पत्र

I have great pleasure to Certify that the Toilet preparations of Dr. S. K. Burman are excellent. I have used his "Keshraj Hair Oil" and can recommend it without hesitation as a delightful companion for the bath and a good tonic for the growth of hair.

"Heal-Ek" is a beautiful preparation with marvellous healing effects on cuts, bruises, burns, scratches, eczema, piles and kindred troubles.

Dr. Burman's Patent medicines simply stand on their own merits—this is all I can say about them

Sd.-Daljit Singh.

(Rajah Sir Daljit Singh, K.B.E., C.S.I. of Kapurthalla)

हिज हाइनेस महाराजाधिराज बड़ौदा-नरेशके भ्राता श्रीमान् सम्पतरावजी गायकवाड़ महोदयकी बहुमूल्य सम्मति :—

I had the pleasure to use Dr. S. K. Burman's 'Keshraj Hair Oil' and I am now led to take it as my constant companion for bath. It has cooling effect on the brain and its scent is so lasting and refreshing that once used it is always used.

The Patent medicines of the renowned Doctor are well known all over the country for their marvellous results and such have found their place in almost every household.

I have found in his "Kola Tonic" a small phial of great potency in all sorts of dullness after strain and exhuustion.

12 - 12 - 27.

Sd.- Sampatrao Gaikwad,

BARODA.

अखिल भारत प्रदर्शनी, मद्रास (१९२७-२८) द्वारा प्राप्त प्रशंसापत्र तथा स्वर्णपदक ।

ALL INDIA EXHIBITION.

MADRAS 1927-1928

This is to Certify that Mr. S. K. Burman Calcutta has been awarded a gold medal for excellence in Keshraj hair oil
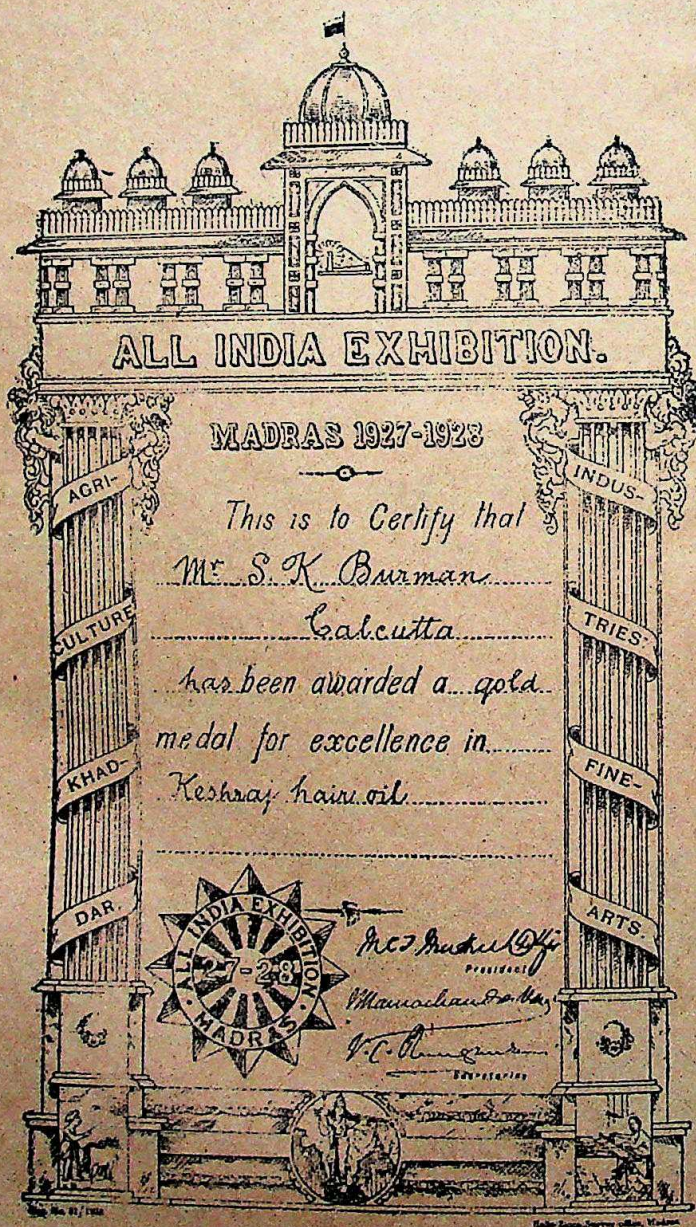
—डाबर हीरक जयन्ती—

लोकप्रिय डाबर कार्यालयकी वस्तुओंकी श्रेष्ठताके प्रमाणमें प्राप्त—

प्रमाण-पत्र

(Nora) Near Sardar Market,
Gulab Sager, Jodhpur.

I have great pleasure to certify that the Toilet preparations of Dr. S. K. Burman are excellent. I have used his "Keshraj Hair Oil" and can recommend it without hesitation as a delightful companion for bath and a good tonic for the growth of hair

"Heal-Ek" is a beautiful preparation with marvellous healing effects on cuts, bruises, burns, scratches, eczema, piles and kindred troubles.

I have found in his "Kola Tonic" a small phial of great potency in all sorts of dullness after strain and exhaustion.

Dr. Burman's Patent medicines simply stand on their own merits—this is all I can say about them.

Sd. **Bijai Singh.**

28 - 1 - 27. (Srijut Rajah Bijai Singh Bahadur of Jodhpur)

भू० पू० राष्ट्रपति स्व० पं० मोतीलालजी नेहरूकी बहुमूल्य सम्मति—

"मुझे केशराज तेल और हील-एक व्यवहार कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यह केश तेल अत्यन्त ही मधुर और बाजारमें मिलनेवाले केश तेलोंमें से एक श्रेष्ठ तेल है इस तरहकी विशुद्ध भारतीय निर्म्माण को सब ओर से समर्थन मिलना चाहिये और राष्ट्रिय भावनायुक्त जनता का इस ओर आकर्षण होना वांछनीय है। मैं इस कार्यालय की उन्नति कामना करता हूँ।

ह० मोतीलाल नेहरू

भू० पू० राष्ट्रपति पंजाब केसरी स्व० लाला लाजपत रायकी सुसम्मति—

"मैंने डा० बर्म्मन का केशराज तेल और पुदीना (पीपरमेंटका तेल) व्यवहार किया और इन्हें विदेशी प्रयोगोंकी तुलनामें श्रेष्ठ पाया।

ह० लाजपत राय

अखिल भारत प्रदर्शनी, कलकत्ता (१९२२-२३) द्वारा प्राप्त
प्रशंसापत्र तथा स्वर्णपदक !

"Salvation of India entirely depends upon the Industrial and Agricultural developments of this Country"

ALL INDIA EXHIBITION

of

Indian Arts, Industries & Indigenous Products

Calcutta 1922-23.

Gold Medal

Awarded to Dr. S. K. Burman

for Keshraj Hair Oil, Monhar Scent.

"Health"

Secretary
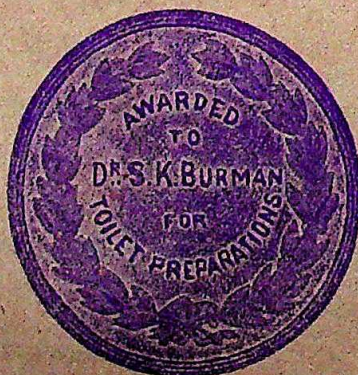
—डाबर हीरक जयन्ती—

श्री श्रीनिवास आयंगर प्रेसिडेण्ट इण्डियन नेशनल कांग्रेस १९२६ की सम्मति—

डाक्टर एस० के० बर्म्मन कार्यालयके निरीक्षणसे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अन्य स्थानोंके अनुभवसे मैं स्पष्टतया प्र

करता हूं कि यह कार्यालय अत्यन्त ही उपयोगी और सराहनीय कार्य्य कर रहा है मैं डाक्टर एस० के० बर्म्मनके उद्योग, उदारता और राष्ट्रिय भावनाकी प्रशंसा क हूं। मेरी ही नहीं संसारके प्रत्येक मनुष्यकी इस फर्मसे सहानुभूति होगी। इस प्रक के प्रतिष्ठानोंके रहते हुए हमलोग पेटेण्ट दवाओंके लिए विदेशोंका मुंह क्यों देखें

मुझे इनकी दवाइयोंकी बिक्रीकी अधिकता, श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वारा गई दवाइयोंकी प्रशंसा तथा औषधि प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों द्वारा निर्माण-प्रणाली देखते हुए मुझे विश्वास है कि इनकी दवायें गुणकारी और बहुमूल्य हैं।

मेरी कामना है कि इस कार्यालयकी उत्तरोत्तर उन्नति और अभिवृद्धि हो।

ह० श्रीनिवास आयंगर

देशगौरव डाक्टर सुभाषचन्द्र बोस की सुसम्मति--

डाक्टर एस० के० बर्म्मन के कार्यालय को निरीक्षण कर मुझे प्रसन्नता हुई। कार्यालय बहुत अच्छे रूप में कार्य्य कर रहा है और उपयोगी भारतीय प्रतिष्ठान होने के नाते प्रोत्साहन प्राप्त करने का अधिकारी है। मैंने इस कार्यालय द्वारा निर्मित कतिपय श्रृङ्गार द्रव्य देखे और उन्हें व्यवहार किया जो अत्यन्त ही श्रेष्ठ हैं। मैं कार्यालय की भविष्य में उत्तरोत्तर उन्नतिकी कामना करता हूं।

ह० श्रीसुभाषचन्द्र बोस

देशप्रिय श्रीयुक्त जे० एम० सेनगुप्त महोदय की बहुमूल्य सम्मति

मुझे यह प्रकट करते अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि डा० एस० के० बर्म्म द्वारा निर्मित श्रृङ्गार सामग्रियां बाजारमें मिलने वाली अनेकों विदेशी श्रृङ्गार सामग्रि का अच्छा प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। मैंने स्वयमेव इनका 'केशराज तैल' व्यवह किया है जो दिमागके लिए शीतल है, स्नानमें आनन्दप्रद और केशोंके लि टॉनिक है।

डा० एस० के० बर्म्मन की पेटेण्ट दवायें भी पूर्ण गुणकारी हैं।

ह० श्री जे० एम० सेनगुप्त

रहुत इन्डस्ट्रियल एन्ड एग्रिकल्चरल प्रदर्शनी, दरभंगा (१९२३) द्वारा प्राप्त प्रशंसापत्र तथा पदक।

No.

THE TIRHUT INDUSTRIAL AND AGRICULTURAL EXHIBITION

DARBHANGA, 1923.

1st CLASS CERTIFICATE.

This certificate is granted by the Exhibition Committee to Dr. S. K. Burman & Co. of Calcutta for exhibiting Medicine

Laheriasarai,
The , March, 1923.

Secretary.

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीकृष्णजन्मभूमि-जीर्णोद्धारसमिति

पत्र-संख्या ×

मथुरा (यू० पी०)

ता० ३१ जनवरी, सन् १[illegible]

स्वर्गीय डाक्टर एस-के- बर्मन द्वारा संस्थापित 'डाबर लिमिटेड-कार्यालय' अपने ६० वर्षों के कार्य-काल सानन्द सम्पन्न करके 'हीरक-जयन्ती' मना रहा है — जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस कार्यालयने अपनी व्यावसायिक उन्नतिके साथ-साथ जनता-जनार्दनकी सेवाएँ की हैं, वे सर्वथा प्रशंसनीय और प्रत्येक संस्थाके लिये अनुकरणीय हैं। कार्यालयके इस मङ्गल अवसरपर हम उनका सादर अभिनन्दन करते हैं। हमें आशा है कि वह भविष्यमें अधिकाधिक सफलता प्राप्त करके अपनी 'शताब्दि-जयन्ती' मनानेका भी सौभाग्य प्राप्त करेगा।

— देवधर शर्मा

(सहायक मन्त्री)

वैद्यशिरोमणि पं० एस० एस० शास्त्री द्विवेदी, एल० एम० एस०, ज्योतिर्भूषण, ज्योतिषाचार्य Haleangadi S. K. की शुभकामना।

"...भवदीय डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कलकत्ता नामक संस्थायाः हीरकजयन्तीमहोत्सवे गत ६० वर्षीय भवद्दीय लोकसेवामभिनन्दितुमिच्छामि। अग्रेच भगवान् सर्वमङ्गलाजानिः सपरिवाराय भवते उपरिनिर्दिष्ट भवदीय संस्थायैच कल्याणपरम्पराविदध्यात्। इति प्रार्थये ...।"

S. S. Shastry

श्रीकृष्ण ज्ञानोदय सुगर लिमिटेड, मीरगंज (सारन) के यशस्वी चिकित्सक, आयुर्वेदाचार्य, कविराज धनुर्धरजी उपाध्याय, वैद्यवाचस्पति, वैद्यरत्न, वैद्यशास्त्री की शुभकामना—

"...डाबर लिमिटेड कार्यालयको भारतवर्षका न केवल वैद्य-समाज, बल्कि बच्चा-बच्चा जानता है! उसकी औषधियाँ रामबाणकी भाँति अचूक होती हैं—ऐसा मेरा अनुभव है। आज वह अपनी हीरक-जयन्ती मनाने जा रहा है, यह बड़े आनन्दका विषय है। आशा है, उसकी यह आयोजना सफल होगी और उसका भविष्य भूतकालकी अपेक्षा और भी उज्ज्वल होगा...।"

—धनुर्धर उपाध्याय

आयुर्वेदाचार्य पं० वासुदेव शर्म्मा, भिषग्रत्न, प्राणाचार्य, अध्यक्ष, श्रीअवंतिका आयुर्वेद विद्यालय, उज्जैन (ग्वालियर स्टेट) की शुभकामना—

"...मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि सुप्रसिद्ध संस्था डाबर लि० अपने ६० वर्षके दीर्घ जीवन को व्यतीत कर अपनी हीरक जयन्ती मना रहा है। मैं तो यह मानता हूं कि इस संस्था के भारत-व्यापी प्रसिद्धि एवं कार्योत्कर्ष के कारण देशमें अनेक संस्थाओंने जन्म लिया है। यह इसके लिये गौरवास्पद है। मैं संस्थाकी हीरक जयन्तीके लिये अपनी ओरसे तथा संस्थाकी ओरसे शुभकामना भेजता हूं और संस्थाकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूं। कार्यालयके शुभ एवं महोद्योगको परमात्मा यशस्विता देवें...।"

वासुदेव शर्म्मा
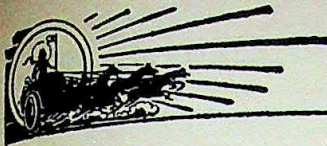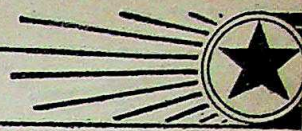
कार्यालयके हितैषी व्यापारियोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन—

हीरक जयन्ती के उपलक्ष में कार्यालय के हजारों हितैषी व्यापारियों ने अपनी-अपनी शुभकामनायें भेजी हैं जिन्हें स्थानाभाव से हम प्रकाशित करने में असमर्थ हैं; किन्तु इस प्रोत्साहन प्रदान के लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०,
के संचालक।

कलकत्ता प्रदर्शनी (१९२३) द्वारा प्राप्त प्रशंसापत्र तथा पदक ।

1923

CALCUTTA EXHIBITION

CERTIFICATE OF MERIT
OF THE SECOND CLASS
WITH SILVER MEDAL
AWARDED TO

Dr. S. K. Burman,
Calcutta

FOR

Toilet Preparations Special
Face Cream Niharini

Nawab ... C.I.E.
PRESIDENT

T. ... C.I.E., I.C.S.
GENERAL SECRETARY

No. ...

CALCUTTA, 1st MAY, 1924

POTTERY

AGRICULTURE

SPINNING

MACHINERY

MUSIC

WEAVING

HYGIENE

METAL WORK

राष्ट्रीय महान विभूतियोंकी अमूल्य सम्मतियां—

श्रीमती सरोजिनी नायडू, भूतपूर्व राष्ट्रनेत्री की अमूल्य सम्मति—

"......मैंने डा० एस० के० बर्म्मन के कार्यालय द्वारा प्रस्तुत "केशराज तैल", "पुदीन-हरा", "काफू" तथा "हील-एक" मरहम व्यवहार किया। इन सबकी प्रशंसा करते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। आशा है देशवासियों द्वारा इस कार्यालयको पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा......।"

—ह० सरोजिनी नायडू।

देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, भूतपूर्व राष्ट्रपतिका बहुमूल्य मन्तव्य—

"मुझे डाक्टर एस० के० बर्म्मन कम्पनीके कारखानेको [illegible] सुअवसर मिला। यों तो बहुत दिनोंसे उनकी दवाओंको [illegible] और गांवोंमें जाते देखा था और बहुत दिनोंसे कुछ परिचय [illegible] पर अच्छी तरहसे सब कुछ देखनेका यही पहला मौका है। [illegible] कर बहुत प्रसन्नता हुई। गरीबोंकी चिकित्सा बहुत अंशमें [illegible]की सहायताके इन दवाओंसे हो जाती है और साथ ही [illegible] गरीबोंको और किसी आकस्मिक विपत्तिके समयमें मुफ्त [illegible] बहुत बाँटते हैं। आशा है यह कम्पनी अपना काम दिनों-[illegible] जायगी और व्यवसायके साथ-साथ परोपकार भी करती [illegible]। मैं इसकी सफलता चाहता हूं......।"

—ह० राजेन्द्र प्रसाद

लहौर कांग्रेस प्रदर्शनी द्वारा प्राप्त उच्चकोटि का प्रशंसापत्र तथा स्वर्णपदक—

44th INDIAN NATIONAL CONGRESS

SWADESHI IS THE FOUNDATION OF SWARAJ

LAHORE
CONGRESS EXHIBITION
1929

Honourable mention and Gold Medal.

MERIT CERTIFICATE

NAME OF CONCERN Dr. S. K. Burman

COMMODITIES Chemicals

PLACE Calcutta

PRESIDENT — PRESIDENT RECEPTION COMMITTEE — GENERAL SECRETARY — EXHIBITION SECRETARY
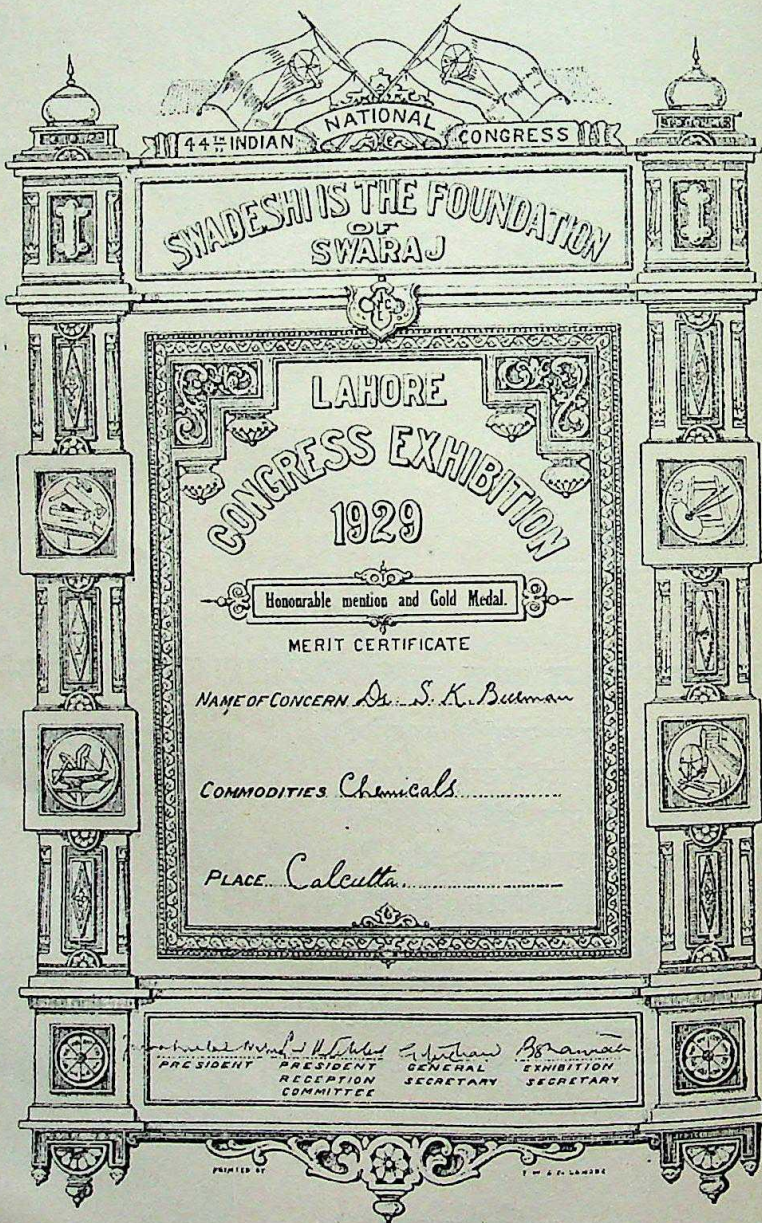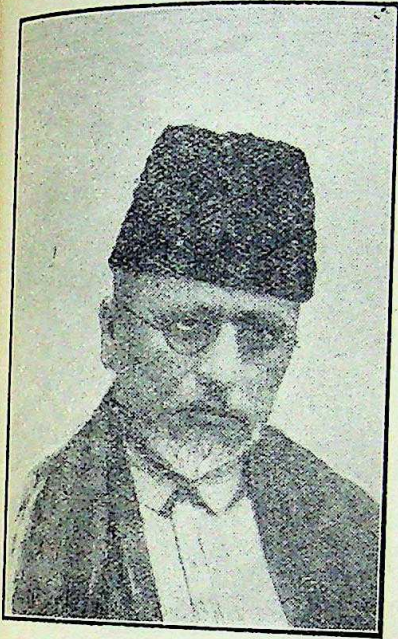
मौ० अबुलकलाम आजाद, भूतपूर्व राष्ट्रपति —

"......मैंने डाक्टर एस० के० बर्म्मनके कार्यालय द्वारा प्रस्तुत कुछ औषधियोंको अपने रिश्तेदारोंको व्यवहार करनेके लिये दिया जिन्होंने 'काफू', 'पुदीन-हरा' एवं 'केशराज तेल' की बड़ी प्रशंसा की। इनके यहांकी अन्य वस्तुयें भी इसी प्रकार गुणकारी एवं श्रेष्ठ होंगी .....।"

ह० अबुलकलाम आजाद

पं० जवाहरलाल नेहरू, भूतपूर्व राष्ट्रपति—

"......जिन्हें औषधियों एवं केश तेलोंकी आवश्यकता पड़ती हो मैं आशा करता हूं कि वे डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) कार्यालय द्वारा प्रस्तुत उत्कृष्ट वस्तुओंका व्यवहार कर लाभ लेंगे.....।"

—ह० जवाहरलाल नेहरू
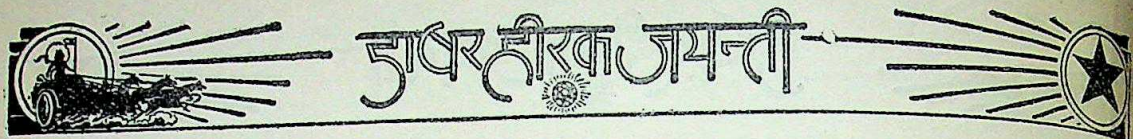
अखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन प्रदर्शनी, जोधपुर द्वारा प्राप्त प्रथम श्रेणी का प्रशंसापत्र तथा पदक।

॥ प्रशंसा-पत्रम् ॥

(डाबर) डा. एस. के. बर्मन लिमिटेड, कलकत्ता
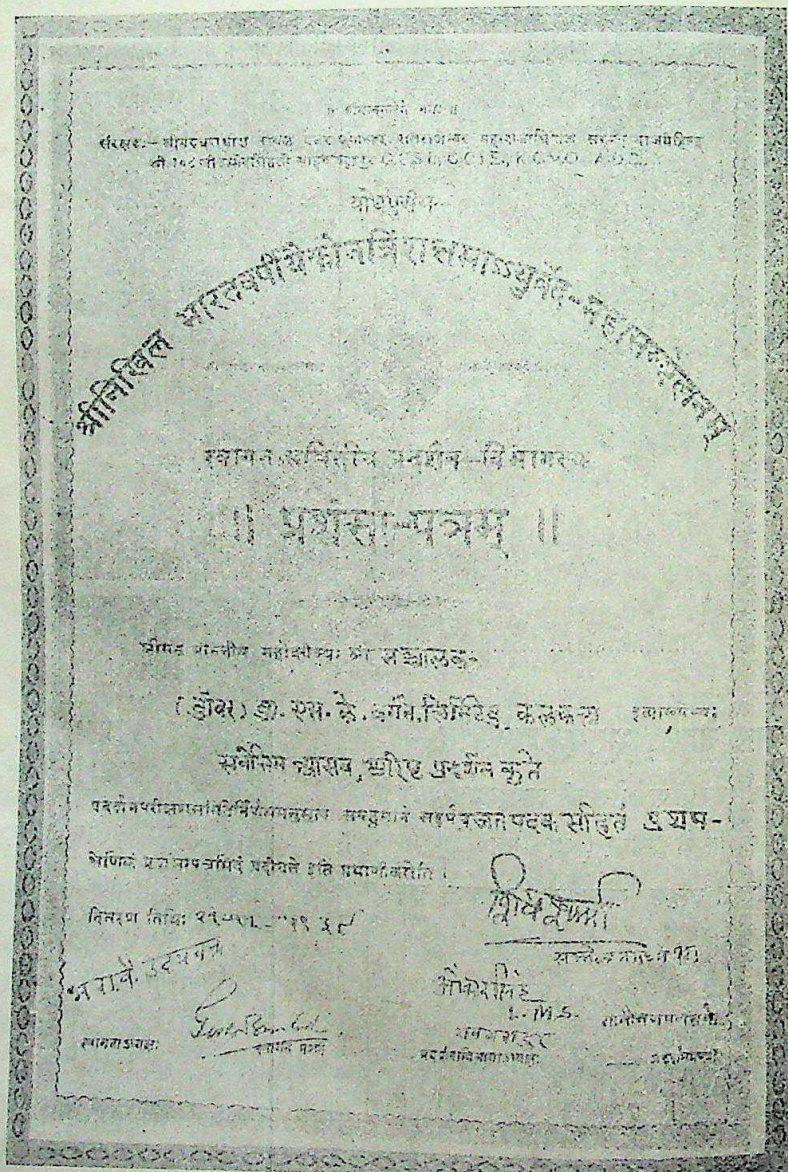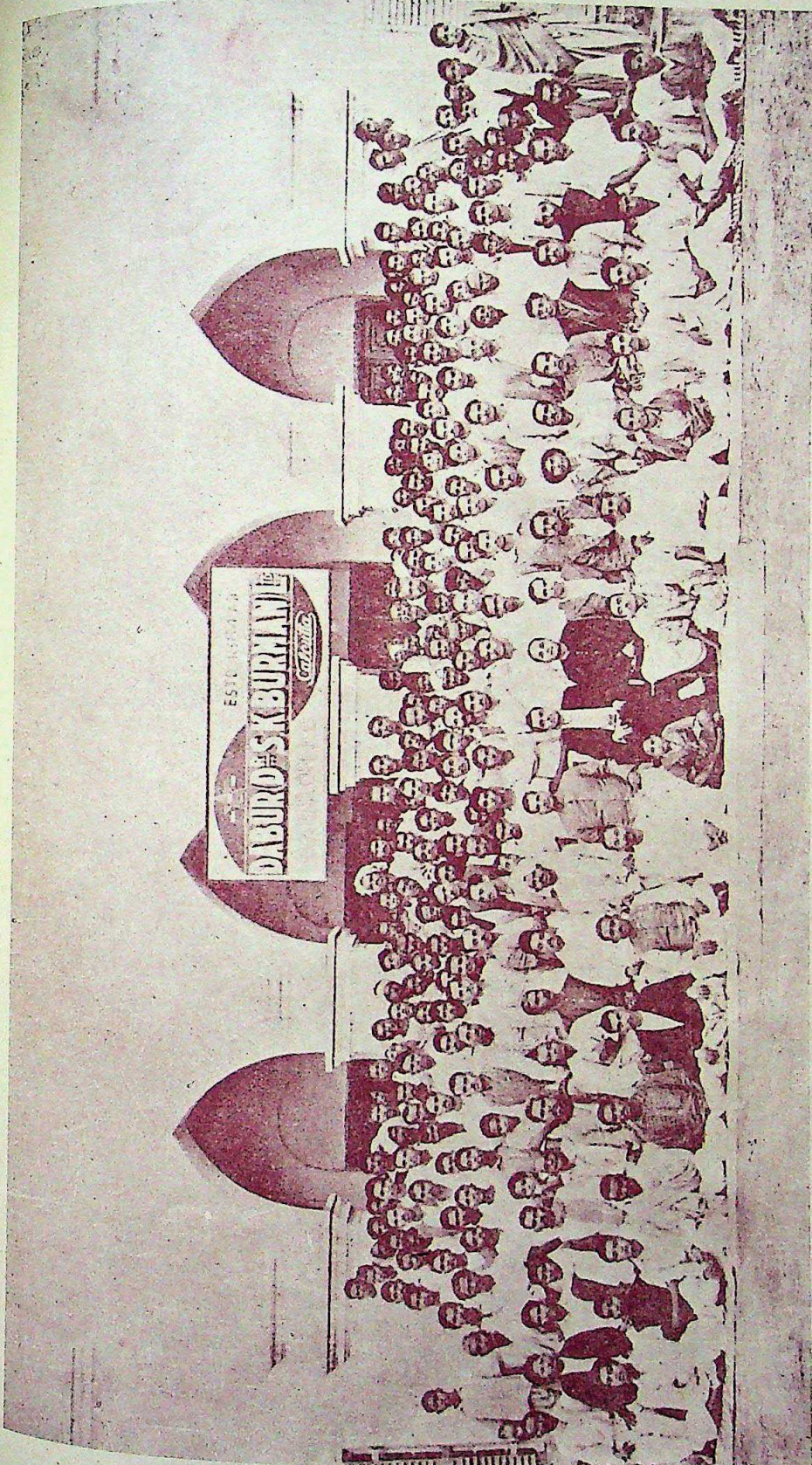
युद्धकालीन प्रधान कार्यालय, देवघर (एस० पी०) के कार्यकर्त्ताओंके साथ डाइरेक्टर तथा सेक्रेटरी।

बिहार के सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान हरिहर क्षेत्र (सोनपुर) में ता० ३०-१०-४४ को तिरहुत डिवीजन के कमिश्नर महोदय एन० सेनापति, आई० सी० एस० के करकमलों द्वारा डाबर (हीरक जयन्ती) गेट के उद्घाटन के समय लिया गया चित्र। बीचमें माननीय कमिश्नर महोदय और उनके दाहिनी ओर सारन जिलेके कलक्टर *Major A. R. Odair* महोदय एवं बांयीं ओर समारोह के सभापति सारन जिले के सुप्रसिद्ध राष्ट्र सेवी श्रीयुत प्रभुनाथ सिंहजी (एम० एल० ए०) बैठे हैं।

भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति, वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजी, राजवैद्य, पटियालाका बहुमूल्य शुभाशीर्वाद—

"……मैंने डाबर कम्पनीके आयुर्वेद प्रचार और ध्वजा उद्घाटन आतिथ्य आदिमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये जो प्रयत्न देखा है उसके लिये मैं इस कम्पनीके कार्योंकी प्रशंसा करता हूँ और इसकी उन्नतिके लिये आशीर्वाद देता हूं……।"
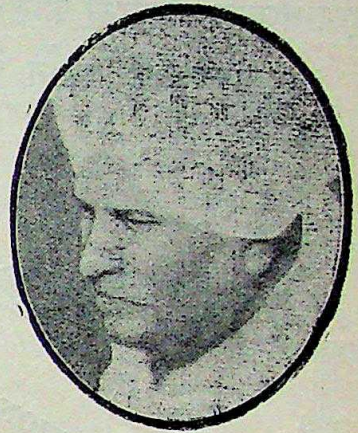
ह० रामप्रसाद वैद्यरत्न, राजवैद्य, पटियाला

भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति पं० शिवशर्म्माजी, आयुर्वेदाचार्य महोदयकी बहुमूल्य सम्मति एवं शुभाशीर्वाद—

"……भारतीय औषधि एवं श्रृङ्गार सामग्री सम्बन्धी श्रेष्ठ कार्यालय डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०के विभिन्न विभागोंका निरीक्षणकर प्रसन्नता लाभ करनेके साथ ही साथ मुझे विशेष जानकारी भी प्राप्त हुई। पाश्चात्य सुविधाओंके साथ भारतीय प्रणालीके अनुसार आयुर्वेदिक औषधियोंकी निर्माण पद्धतिकी विवेकपूर्ण योजना देखकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हुआ। यहां पर यथार्थरूप और पूर्णताकी रक्षाका यथासंभव ध्यान रखा जाता है। इस कार्यालयने आयुर्वेदिक औषधियोंको भारत तथा विदेशोंमें भी जनप्रिय बनाकर आयुर्वेदकी बहुत बड़ी सेवा की है। मैं इस कार्यालयको इतनी बड़ी सफलता प्राप्तिके लिये बधाई देता हूं……।"

ह० शिव शर्म्मा (आयुर्वेदाचार्य)

भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति पं० जीवराम कालीदास शास्त्रीका शुभाशीर्वादयुक्त बहुमूल्य मन्तव्य—

"…… डाबर कम्पनीने राजकोटमें बड़े समारोहसे प्रदर्शनीमें 'अपना स्थान रखा था। दूसरी फार्मेसियोंकी तुलनामें इनका प्रयत्न सराहनीय है। इस कम्पनीकी दवाइयाँ आयुर्वेदकी प्रगतिमें सहायक हों यह हमारी कामना और भावना है। हमारा आशीर्वाद है कि यह कम्पनी आयुर्वेद क्षेत्रमें आगे बढ़नेवाले विद्वानोंको प्रोत्साहित करे और अपने उठाये हुए कामोंमें सफलता प्राप्त करे ……।"

ह० राजवैद्य जीवराम कालीदास शास्त्री

इन्टरनैशनल सोसाइटी फौर दी इनकरेजमेंट आफ आर्ट्स, कामर्स और इन्डस्ट्रीज, न्यूयार्क, लन्दन, टोकियो, बर्लिन, पैरिस तथा अहमदाबाद द्वारा डिप्लोमा आफ मेरिट (योग्यता)।

INDUSTRY — SCIENCE — ARTS — LITERATURE — COMMERCE — PROSPERITY — AMBITION

INTERNATIONAL SOCIETY FOR THE ENCOURAGEMENT
OF
ARTS, COMMERCE & INDUSTRIES.
NEW-YORK, LONDON, TOKIO, BERLIN, PARIS, AHMEDABAD.

Diploma of Merit.

Awarded to Dr. S. K. Burman of Calcutta for the excellence and skill in the manufacture of medicines, toilet preparations & perfumes.

Given under the hand of the Director and seal of the society this fourth day of November in the year 1924

[signature]
Director. M. A., B. COM. &c

स्वर्गीय एस० सत्यमूर्त्ति, एम० एल० सी०, मद्रासकी सम्मति—

I have used with profit and pleasure the bottles of "Keshraj Hair oil" and "Healek."
The Hair oil is a very delicious one, and is one of the best Hair oils produced in the market.
A genuine Indian Production like this reguires wide spread support and ought to appeal to the patriotic feelings of all.
I wish the firm great success.

(Sd.) **S. Satyamurti** (*M. L. C.*)

भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति, वैद्यरत्न प्राणाचार्य कविराज प्रतापसिंहजी रसायनाचार्यकी शुभकामना—

"...आपने आयुर्वेद विभाग पर जो विशेष ध्यान दिया है, ईश्वरसे प्रार्थना है कि आपके यशस्वी हाथोंसे इसकी पूर्ण अभिवृद्धि हो ...।"

ह० कविराज प्रतापसिंह।

आयुर्वेद राष्ट्रपति राजवैद्यप्राणाचार्य कविराज मणीन्द्रकुमार मुखोपाध्याय, बी० ए०, आयुर्वेद शास्त्री, वैद्यवाचस्पतिका बहुमूल्य मन्तव्य—

"...डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कार्यालय गत ६० वर्षोंसे औषधि निर्माणका कार्य कर रहा है। अपने जीवनके गत कई वर्षोंसे यह कार्य्यालय विविध आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माण कार्यमें भी संलग्न है। साथ ही साथ अनुचित व्यापारिक लाभके लोभसे दूर रहते हुए यह कार्य्यालय शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार उच्चकोटिकी औषधियोंका निर्माण करता हुआ स्टैण्डर्ड की रक्षामें दत्तचित्त है। हर्षका विषय है कि इन्होंने पूर्ण शास्त्रीय प्रमाणानुसार विविध आयुर्वेदिक योगोंके निर्माणके हेतु पृथक-पृथक विभागोंकी संस्थापना की है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि यह कार्य्यालय विशुद्ध और प्रभावयुक्त औषधि एवं उपादानोंके लिए धन व्यय करनेमें पश्चात्पद नहीं रहता। आयुर्वेदिक सर्वमान्य योग संग्रह (फार्माकोपिया) का निर्माण इस कार्य्यालयके मैनेजिंग डाइरेक्टर श्रीयुक्त पूर्णचन्द्र जी बर्म्मनकी अहर्निश कल्पना है। इस प्रतिष्ठानकी निधि सञ्चय और लाभके लिए ही नहीं है किन्तु इसे उदारतापूर्वक परोपकार तथा आयुर्वेदके अभ्युत्थानके हेतु भी कई एक रूपमें विभाजित किया जाता है। "सत्य सिद्धान्त ही उन्नतिकी नींव है" यह एक गम्भीर उक्ति है और जिन्होंने आयुर्वेदके द्वारा समृद्धि प्राप्ति की है उनके लिए डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड के प्रतिष्ठानका उदाहरण अनुकरणीय है...।"

ह० (कविराज) मणीन्द्र कुमार मुखोपाध्याय

आयुर्वेद विद्यापीठाध्यक्ष कविराज ज्योतिषचन्द्रजी सरस्वती, भिषगाचार्य, सांख्याचार्यका बहुमूल्य शुभाशीर्वाद—

"...दृष्टामया डाबराख्य संस्थाया आयुर्वेद प्रचारचेष्टा सा च परं संतोषावहा इति मे सम्मति वर्तते। आशास्महे च पुनरेष्टा यथा सम्यक् फलवति सूयादिति...।"

ह० श्री ज्योतिषचन्द्र सरस्वती

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, लखनऊ द्वारा प्रदत्त सम्मानपत्र।

卐 आयुर्वेदाधिपो विजयतेतराम् 卐

30TH SESSION

All India Ayurvedic Congress

LUCKNOW, U. P.

श्री निखिल भारतवर्षीया ऽऽयुर्वेद महा सम्मेलनस्य

लक्ष्मणपुरीये त्रिंशत्तमाधिवेशने

समुपायनीकृतं

प्रतिष्ठा-पत्रम्

धन्वन्तरिर्विजयते मुदिराभमूर्त्तिः स्फूर्त्तिर्जगद्‌गद-विजित्वर-पौरुषाणाम् ।
यद्दन्तकान्तितटिनीस्नपितोरुशर्णां वाग्देवता किरति नःपथि सत्प्रकाशम् ॥

श्रीमन्तः स्वागत समिति सदस्याः पूर्णचन्द्र धर्मीन महाभागाः
सार्वजनीन कार्यदक्षाः आयुर्वेद हिताचिन्तकाः Calcutta

संयुक्तप्रान्तराजधानीत्वगौरवशालिते श्रीलक्ष्मणपुरेऽद्दशेपमसमारम्भेण सम्पन्नस्य ३० तम-निखिल-भारतवर्षीयायुर्वेदमहासम्मेलनस्य साफल्ये यदाचारि चारु साहायकं गुणगणगरिष्ठैरभिर्महानुभावैस्त-त्समाजिता स्वागतकारिणी समितिर्धन्यवादराशि सनाथमिदं प्रतिष्ठापत्रं सप्रश्रयमुपहरतितराम् ।

— अधिकारिवर्गः —

श्रीमान् राजा जगन्नाथबख्शसिंह एम० एल० ए०, रहवाँ, Ex-Minister for Education (and Medicine) U. P.
नि० भा० निखिलायुर्वेद महा सम्मेलनोद्घाटनाध्यक्षः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री ब्रजविहारि चतुर्वेदी वैद्यरत्नम्, पटना
नि० भा० निखिलायुर्वेद महा सम्मेलन सभापतिः

आयुर्वेदाचार्य श्रीशिवराम द्विवेदी वैद्यः, एम० एल० ए०, लखनऊ
नि० भा० निखिलायुर्वेद महा सम्मेलन स्वागताध्यक्षः (अध्यक्ष स्वागत कारिणी समिति)

वैद्यशास्त्री [signature] लखनऊ
स्वागताध्यक्ष स्वागताध्यक्ष

राजवैद्य [signature: श्रीकान्त शास्त्री] आयुर्वेदरत्नं, लखनऊ
नि० भा० निखिलायुर्वेद महा सम्मेलन स्वागत प्रधान मंत्री

ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS 30TH (LUCKNOW) U.P.

वैद्यरत्न, आयुर्वेद मार्तण्ड, भिषगशिरोमणि, वैद्य श्रीचुन्नीलाल रेवाशंकर, राजवैद्य, बड़ौदाकी सुसम्मति—

"...डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कम्पनीकी प्रत्येक औषध और पैकिंग आदि योग्य, शुद्ध और सन्तोषकारक है। यहां सभी द्रव्य प्रामाणिक ग्रन्थोंके अनुसार विद्वान वैद्यों द्वारा तैयार किये जाते हैं। हमारी अभिलाषा है कि भारतीय वैद्यसमाज, म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट तथा लोकल बोर्ड, धर्मार्थ एवं सरकार-नियुक्त औषधालय, विदेशी औषधियोंके स्थानमें इस कार्यालयके औषधियोंको उपयोगमें लावें... ।"

ह० वैद्य श्रीचुनीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा।

राजवैद्य पं० अमरनाथ जोशी, आयुर्वेदाचार्य, धौलपुर स्टेटका शुभाशीर्वाद—

" ...डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कम्पनीका प्रचुर प्रचार, विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधि निर्माणकार्यको देखकर अत्यन्त मुग्ध हुआ। अतः ईश्वर अपनी पूर्ण कृपासे इन्हें कृतकार्य करें......।"

ह० अमरनाथ जोशी, राजवैद्य, धौलपुर स्टेट।

श्रीयुत् र० वि० धुलेकर, एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० एल० ए०, सभापति और संस्थापक राष्ट्र सेवा-मंडल तथा आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झांसीकी बहुमूल्य सम्मति—

"......इस कार्यालय द्वारा प्रचारित औषधियों एवं अन्य द्रव्योंके निर्माणमें जो चेष्टा की जा रही है उसे देख मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। प्रयोग वैज्ञानिक तरीकोंसे विश्लेषण (Test) किये जाते हैं ताकि वे बराबर समान रूपमें निर्माण हो सकें। इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। मैं इस पुराने कार्यालयकी, जो समस्त देशमें विख्यात है, सफलता चाहता हूं......।

ह० र० वि० धुलेकर, एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० एल० ए०

आयुर्वेद महामहोपाध्याय, रसायन शास्त्री, अ० भा० संदिग्ध-वनौषधि-निर्णायक परिषद्के सभापति, पं० भागीरथ स्वामी, आयुर्वेदाचार्यकी बहुमूल्य सम्मति—

" ....डाबर कार्यालयमें आयुर्वेदीय औषधियोंको अत्युत्तम ढङ्गसे बने हुए देख मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। विशेष प्रसन्नताकी बात यह है कि यहां रिसर्च-विभाग भी खोल दिया गया है जिसमें भस्म, आसव, अरिष्ट, विष तथा वनस्पतियोंकी रिसर्चपूर्वक परीक्षा की जाती है। इस प्रकार दवाएं बनाकर जनताको स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले कार्यालय नहीं के बराबर हैं। भगवान् धन्वन्तरिसे प्रार्थना है कि वे नित्यप्रति इस कार्यालयकी उन्नति करें......।"

ह० आ० म० र० शा० भागीरथस्वामी, आयुर्वेदाचार्य

सरोज नलिनी दत्त मेमोरियल एसोसियेशन द्वारा अयोजित कलकत्ता प्रदर्शनी तथा कार्निवल (१९२८) द्वारा प्राप्त प्रशंसापत्र।

IN AID OF

Saroj Nalini Dutt Memorial Association

CALCUTTA EXHIBITION & CARNIVAL

OPENED AT PORABAZAR BY THE HON. LADY JACKSON ON THE 12th JANUARY 1928.

CERTIFICATE OF MERIT

FIRST CLASS

Awarded to Dr. S. K. Burman, Baranoshi Ghosh Street, for Medicines & Perfumes.

President, Exhibition Committee. — General Secretary. — Secretary, Exhibition Committee.

6, Beniatola Lane, CALCUTTA.

The .... 1928.
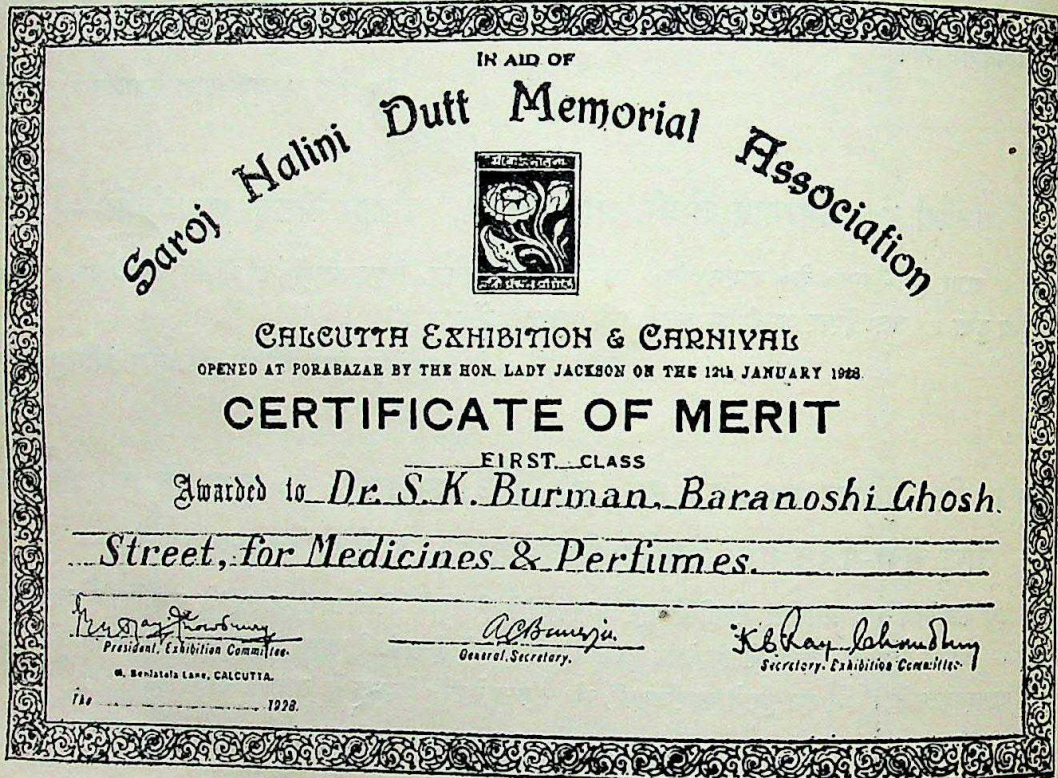
कार्यालयकी उच्चकोटिकी आयुर्वेदिक औषधियोंके समर्थक एवं शुभाशीर्वाद प्रदान करनेवाले कतिपय अन्य विशिष्ट आयुर्वेद मर्मज्ञ—

आयुर्वेदाचार्य वैद्य शिवशंकर बाबा भाई, राजकोट।

वैद्य चन्द्रशंकर रविशंकर, राजकोट।

पं० गणेशदत्त सारस्वत वैद्य, दिल्ली।

प्रोफेसर डा० रंगाचार्लू, प्रिन्सिपल, आयुर्वेदिक कालेज, गंटूर।

वैद्यगुरु आयुर्वेद महामहोपाध्याय डाक्टर एम० आर० भट्ट, पी० एच० डी०, मंगलोर।

कविराज आशुतोष मजुमदार, भिषगाचार्य धन्वन्तरि, एम० आर० ए०, नई दिल्ली।

कविराज नित्यानन्द शर्मा, वैद्यवाचस्पति, लाहौर।

कविराज विप्रबन्धु, एम० ए०, लाहौर।

कविराज श्रीशिवराम वैद्य, एम० एल० ए०, सभापति, यू० पी० वैद्य सम्मेलन, लखनऊ।

राजवैद्य मलभाई लक्ष्मीशंकर, भावनगर स्टेट, पेन्शनर।

राजवैद्य भास्कर भाई मलभाई, ध्रांगध्रा स्टेट, पेन्शनर।

श्रीमती शान्तादेवी वैद्या, सम्पादिका, आयुर्वेद केसरी, लखनऊ।

वैद्य सुन्दरलाल एन० जोशी, प्रिन्सिपल, एम० जी० आयुर्वेदिक कालेज, नदियाद।

वैद्य दामोदर अनन्त हलसीकर, धारवाड़।

कविराज पं० सौमित्रिशर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालेज तथा आयुर्वेदिक इनजेक्शन शिक्षासमिति, झांसी।

वैद्य रतिलाल शिवशंकर त्रिवेदी, राजकोट।

वैद्य भाणजी मूलजी, राजकोट।

कविराज अरुणा देवी, रामनगर।

कविराज पुष्पा कपूर, लहौर, प्रभृति।

कार्यालयको शुभाशीर्वाद प्रदान करनेवाले उच्चकोटिके कतिपय विद्वान एवं धर्माचार्योंकी तालिका—

(१) श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण।

(२) श्रीलक्ष्मण शास्त्री द्राविड़।

(३) स्वामी विश्वानन्द।

(४) श्री ए० रंगास्वामी आयंगर, सम्पादक, स्वदेशमित्रन, प्रभृति।

प्रशंसापत्र प्रदान करनेवाले कतिपय कर्मठ, जाति-सेवक एवं सार्वजनिक संस्थाएं—

(१) श्रीजमनादास मेहता, एम० एल० ए०।

(२) भाई परमानन्द एम० एल० ए०।

(३) पं० नेकीराम शर्मा।

(४) राय बहादुर एम० सी० राजा, एम० एल० ए०, एफ० एम० यू०।

(५) श्रीदेवरत्न शर्मा।

(६) श्री लाला दुनीचन्द।

(७) श्री ए० एच० गजनवी, एम० एल० ए०।

(८) हिन्दू मिशन, कलकत्ता।

(९) बंगाल रिलीफ सोसाइटी।

(१०) बिहार रिलीफ कमेटी।

(११) प्रजाहितकारिणी मण्डल, ग्वालियर, प्रभृति।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, राजकोट द्वारा प्राप्त प्रथम श्रेणीका प्रशंसापत्र तथा स्वर्णपदक।

(The Reception Committee office)

32nd ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS
RAJKOT, KATHIAWAR.

Chairman—

His Highness Maharaja Shri Pradyumna Sinhaji Bahadur, Rajkot State.

Vice-Chairman—

Rajvaidya Jivaram Kali Das Shastri & other Vaidyas.

Chief Secretary—

Vaidya Chandra Shankar Ravishankar.

Rajkot, Dated 31. 12. 43.

मेसर्स डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०, कलकत्ता।

मान्यवर महाशय,

मुझे अपनी प्रदर्शनी समिति द्वारा नियुक्त औषध परीक्षक और पारितोषिक निर्णायक समितिकी ओरसे प्रदर्शनीमें रखे हुए सिद्ध औषध और शुद्ध खनिज द्रव्यों के लिए निम्नलिखित रिपोर्ट भेजनेमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

उपर्युक्त समितिने सर्वसम्मतिसे यह निर्णय किया है।

"कलकत्ताके मेसर्स डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०, की सिद्धौषधियां और खनिज द्रव्योंकी परीक्षाकर हमको पूर्ण सन्तोष हुआ है। ये सिद्धौषधियां और खनिजद्रव्य उत्तम श्रेणीके हैं, और इनके लिए इस कम्पनीको प्रथम श्रेणीका प्रमाण पत्र और स्वर्ण पदक प्रदान किया जाय।"

आपका शुभचिन्तक—

ह० वैद्य रतिलाल शिवशंकर त्रिवेदी,

प्रधान सेक्रेटरी, प्रदर्शनी समिति।

डायमण्ड जुबिली (हीरक जयन्ती)

बहुमूल्य मन्तव्य प्रदान करनेवाले कुछ विख्यात साहित्यमहारथी एवं कलाकार—

(१) सम्पादकाचार्य पं० अम्बिका प्रसादजी वाजपेयी, सम्पादक—स्वतन्त्र, कलकत्ता।
(२) पं० लक्ष्मण नारायणजी गर्दे, सम्पादक—श्रीकृष्ण सन्देश, कलकत्ता।
(३) बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवाल, सम्पादक—विश्वमित्र, कलकत्ता।
(४) सम्पादक—वंगबासी, कलकत्ता।
(५) सम्पादक—अंग्रेजी लिबर्टी, कलकत्ता।
(६) सम्पादक—वंगला नवशक्ति, कलकत्ता
(७) सम्पादक—योगी, पटना।
(८) सम्पादक—मतवाला, कलकत्ता।
(९) सम्पादक—वर्तमान, कानपुर।
(१०) सम्पादक—लोकमान्य, कलकत्ता।
(११) सम्पादक—भारतमित्र, कलकत्ता।
(१२) सम्पादक—लोकमत, नागपुर।
(१३) सम्पादक—नवशक्ति, पटना।
(१४) सम्पादक—शुभचिंतक, जबलपुर।
(१५) सम्पादक—आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, दिल्ली।
(१६) सम्पादक—भारत, इलाहाबाद।
(१७) सम्पादक—वीर अर्जुन, दिल्ली।
(१८) श्री लक्ष्मीनारायण फूकन—सम्पादक, टाइम्स आफ आसाम।
(१९) श्री विष्णु दिगम्बर पुलत्सकर।
(२०) श्री उदयशङ्कर।
(२१) मास्टर मोहन।
(२२) पं० ईश्वरी प्रसाद वर्मा।
(२३) पं० शैदा।
(२४) श्रीमती ताराबाई प्रभृति।

शुभकामना प्रदान करनेवाले कतिपय विशिष्ट उच्चाधिकारी, सुप्रसिद्ध व्यापारी एवं सम्भ्रान्त नागरिक—

(१) राय द्वारकानाथ चक्रवर्ती बहादुर, भू० जज कलकत्ता हाईकोर्ट।
(२) दीवान बहादुर सी० वी० विश्वनाथ शास्त्री, रि० भू० पू० डिस्ट्रिक्ट जज, मद्रास।
(३) श्री० एम० चक्रवर्ती रायबहादुर, दिल्ली।
(४) आनरेबल जस्टिस श्रीमन्मथनाथ मुखर्जी, हाईकोर्ट, कलकत्ता।
(५) श्री० बी० के० बसु, भू० पू० मेयर, कलकत्ता।
(६) श्री० जगजीवन उजांशी, फोर्ट बम्बई।
(७) श्री० भूलाभाई मोहनलाल, बम्बई।
(८) श्री० फ्रैंक जुडसन (अमेरिका)
(९) श्री० त्रिकमदास द्वारकादास, सोलिसीटर।
(१०) श्री० सम्पतराय गायकवाड़, बड़ोदा।
(११) श्री० मोहम्मद शफी दाउदी, दाऊदनगर।
(१२) श्री० गोविन्द मालवीय।
(१३) श्री० गोपाल मेनन।
(१४) श्री० एस० एस० अणे प्रभृति।

इनके अतिरिक्त—

अकाल, बाढ़ और भूकम्पके परिणामस्वरूप होनेवाली महामारी और विभिन्न रोगोंसे आक्रांत होने पर कार्यालयकी प्रमाणिक और शीघ्र गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेंट दवाओंके सेवनसे त्राण पानेवाले असंख्य सरल प्रकृति गृहस्थ, किसान और ग्रामीण भाइयोंका—

मूक शुभाशीर्वाद और सौहार्द्र

कार्यालय को प्राप्त है। इस संक्षिप्त विवरणसे ही कार्यालयकी लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है।

उच्चकोटिकी पेटेंट दवा तथा शृङ्गार सामग्रियों की श्रेष्ठताके प्रमाणमें कार्यालयको प्राप्त कतिपय पदक।

CALCUTTA EXHIBITION
1923

AWARDED TO DR. S. K. BURMAN FOR TOILET PREPARATIONS

CALCUTTA EXHIBITION & KING CARNIVAL IN AID OF SAROJ NALINI DUTT MEMORIAL ASSOCIATION 1928

AWARDED TO DR. S. K. BURMAN FOR THE EXCELLENCE OF HIS PATENT MEDICINES AND TOILET REQUISITES

ALL INDIA EXHIBITION
1927 & 1928
MADRAS
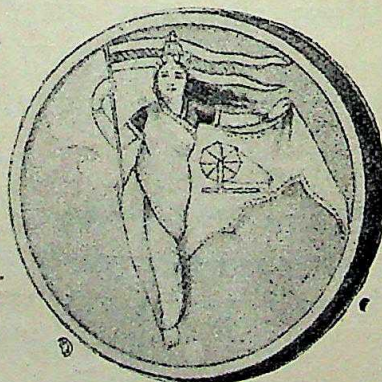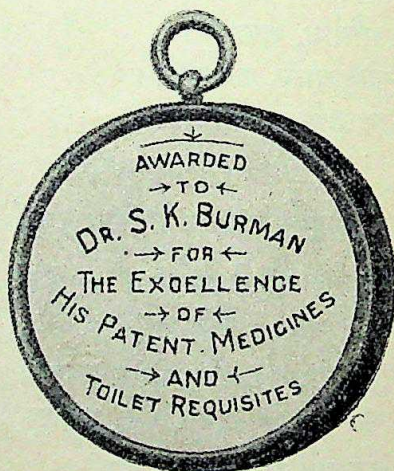
भूतपूर्व आयुर्वेद राष्ट्रपति राजवैद्य श्रीमान् जीवराम कालीदासजी शास्त्री द्वारा बत्तीसवें निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन राजकोट (काठियावाड़) के अवसर पर डाबर आयुर्वेद प्रचार कैम्पका उद्घाटन ।

बत्तीसवें निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन, राजकोट (काठियावाड़) के अवसर पर डाबर आयुर्वेद-प्रचार कैम्प में
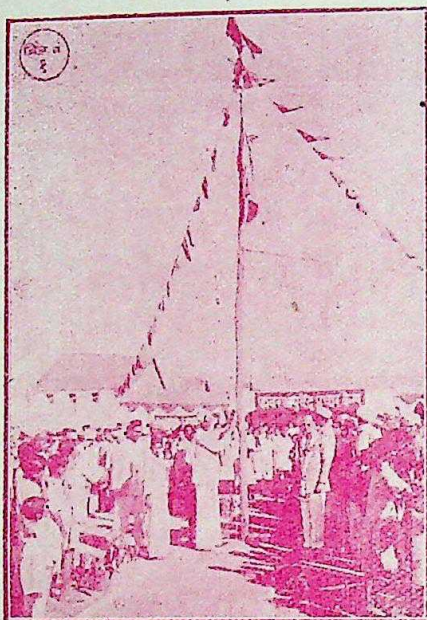
भू० पू० आयुर्वेद राष्ट्रपति पं० शिवशर्माजी आयुर्वेदाचार्य्य द्वारा धन्वन्तरि पताका उत्तोलन।
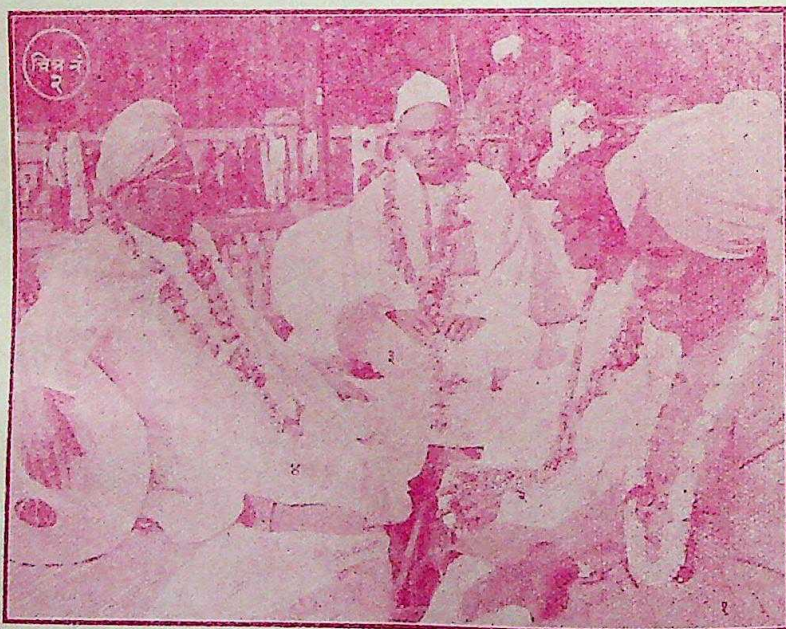
डाबर आयुर्वेदिक प्रयोगों के प्रशंसक आयुर्वेद जगत् के चार महारथी—

(१) भू० पू० आ० रा० राजवैद्य प० रामप्रसादजी, पटियाला।
(२) आयुर्वेद विद्यापीठाध्यक्ष श्रीज्योतिषचन्द्रजी सरस्वती, दिल्ली।
(३) आयुर्वेद राष्ट्रपति श्रीमणीन्द्रकुमार मुखोपाध्याय, कलकत्ता।
(४) भू० पू० आ० रा० राजवैद्य श्रीमान् जीवराम कालीदास शास्त्री, गोंडल।

सर्वप्रिय प्रतिष्ठान

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड

कलकत्ता

द्वारा

निर्माण होनेवाली उच्चकोटि की, प्रामाणिक और शीघ्र गुणकारी
आयुर्वेदिक तथा पेटेंट दवा, श्रृंगार सामग्री
एवं फार्मास्युटिकल औषधियों का

विवरण

प्रधान कार्यालय एवं प्रयोगशाला—**डाबर हाउस,**
१४२, रासबिहारी एवेन्यू, कलकत्ता।

डाक का पता—पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

तारका पता—डाबर, कलकत्ता।

टेलीफोन—साउथ ५०२

कलकत्ता सिटी आफिस—४, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता।

बिहार ब्राञ्च—वैद्यनाथ-देवघर (एस० पी०)

यू० पी० ब्राञ्च—हाथरस (यू० पी०)

सी० पी० ब्राञ्च—नागपुर (सी० पी०)

पटना सेलडिपो—चौहट्टा, बांकीपुर (पटना)

नोट—मूल्य सूचीमें दी हुई पृष्ठ संख्या यहीं से आरम्भ होती है।
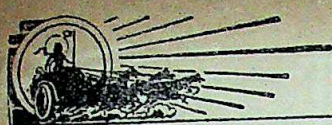
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड

कलकत्ता के

वर्त्तमान मैनेजिंग डाइरेक्टर
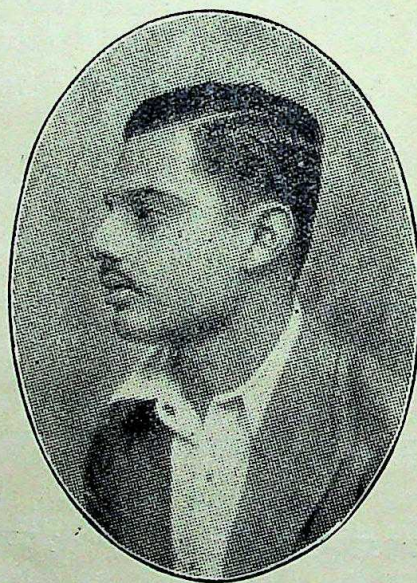
श्रीयुत् पूर्णचन्द्रजी बर्म्मन

आपको अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, लखनऊ ने आयुर्वेद की प्रशंसनीय सेवाओं के हेतु प्रतिष्ठापत्र प्रदान कर सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त आप उक्त संस्थाके कोषाध्यक्ष और निधि-समिति के सदस्य भी निर्वाचित हुए हैं। आप निखिल भारत आ० सम्मेलन के संरक्षक सदस्य हैं।

डाबर लिमिटेड द्वारा निर्मित

उच्चकोटि की और प्रामाणिक आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट औषधियों का विवरण

आसव तथा अरिष्ट

औषधियों को पकाकर, भिगोकर या रस निचोड़कर उस द्रव या क्वाथ (काढ़े) में गुड़, शहद शक्कर या चीनी इत्यादि मिष्ट पदार्थ मिलाकर कुछ दिनों के लिए सुरक्षित रख दिया जाता है। इस सुरक्षित अवस्थामें पड़े रहने पर उस द्रव में सन्धान होता है और इस क्रिया से उस द्रव्य में परिवर्त्तन होकर उस तरल औषधि का जो रूप स्थिर होता है उसे ही आसव और अरिष्ट कहते हैं। उत्तम आसव पारदर्शी (*Transparent*) होते हैं। पुराने आसव विशेष गुणदायक होते हैं।

यह कार्यालय आसव और अरिष्टोंके निर्माण में विशेषताएं रखता है। यहां पर आसव और अरिष्टोंके विशेषज्ञों द्वारा इन औषधियों का निर्माण होता है। इन विशेषताओंके प्रमाण स्वरूप कार्यालय को निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन से प्रथमश्रेणी का प्रशंसा पत्र और पदक भी प्राप्त हुआ है।

वस्तु नं० ९० व ९० (क) — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अश्वगन्धारिष्ट

(हिष्टीरिया, वातव्याधि और मूर्च्छा की दवा)

'डाबर अश्वगन्धारिष्ट' शरीर, दिमाग और नसों की कमजोरी को हटाकर शरीर में नवीन बल उत्पन्न करने में अद्वितीय है। इसके सेवन से हिष्टीरिया, मूर्च्छा, बेहोशी, हृदय की कमजोरी, भ्रम, पागलपन, आदि विकार नष्ट होते हैं। जिन लोगों को दिमागी काम अधिक करने के परिणाम स्वरूप मन्दाग्नि, अरुचि, स्मरणशक्ति की कमी, कब्जियत, बवासीर, शिरदर्द, दिल की धड़कन, बहुमूत्र आदि रोगों का शिकार बनना पड़ता है उनके लिए 'डाबर अश्वगन्धारिष्ट' विशेष उपकारी है। स्त्रियों के हिष्टीरिया रोग में इस दवा से अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन से धातु पुष्ट होता है।

वस्तु नं० ६१८ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अभयारिष्ट

(बवासीर तथा पेटकी बीमारियों की उपयोगी दवा)

'डाबर अभयारिष्ट' के सेवन से कब्जियत, खूनी और बादी बवासीर, वायुगोला इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। मन्दाग्नि को नाशकर भूख बढ़ाने में भी यह अरिष्ट अच्छा काम करता है। इसके सेवन से दस्त साफ होता है।

वस्तु नं० ५०० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यरिष्ट)

(हृदय और फेफड़े के रोगों की प्रधान दवा)

'डाबर अर्जुनारिष्ट के सेवन से हृदय की कमजोरी, दिलकी धड़कन, दिमागी शिथिलता, फेफड़ों की दुर्बलता इत्यादि रोग
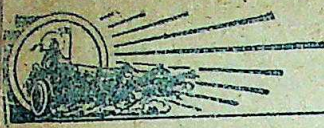
नष्ट होते हैं। एकाएक भय से हृदय पर आघात पहुंचने पर इस दवा के सेवन से विशेष लाभ होता है।

वस्तु नं० ५०५ भैषज्य-रत्नावली

डाबर अमृतारिष्ट

(पुराने बुखार की अचूक दवा)

'डाबर अमृतारिष्ट' के सेवन से विषमज्वर, शीतज्वर तथा लीवर और तिल्ली के दोषों से उत्पन्न होनेवाले ज्वर में लाभ होता है।

वस्तु नं० ४९२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर उशीरासव

(रक्तपित्त विकार में उपयोगी)

'डाबर उशीरासव' के सेवन से रक्तपित्त सम्बन्धी रोग जैसे—हाथ, पैर और आंखों की जलन, नाक मुंह से तथा दस्त और पेशाब के साथ खूनका गिरना इत्यादि व्याधियां नष्ट होती हैं।

वस्तु नं० ५०६, ५०६ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर कुटजारिष्ट

(पेचिश के दस्तों में उपयोगी)

'डाबर कुटजारिष्ट' के सेवन से बार-बार पतले दस्त होना, दस्त के साथ खून या आंव जाना, पेट में मरोड़ होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट खूनी बवासीर, संग्रहणी और मन्दाग्नि में भी गुणकारी है।

वस्तु नं० ४९३ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर कुमार्यासव

(सब प्रकारके उदर रोग, लीवर और वायुगोलेमें उपयोगी)

'डाबर कुमार्यासव' खास कर बढ़ी हुई तिल्ली और लीवर में लाभदायक है। इसके सेवन से कब्जियत, पेटमें मीठा-मीठा दर्द होना तथा वायुगोला इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। बच्चों के बढ़े हुए लीवर और तिल्ली को ठीक करने में भी यह आसव अच्छा काम करता है।

वस्तु नं० ४९४, ४९४ (क) भैषज्य-रत्नावली

डाबर चन्दनासव

(पुराने सुजाक और मूत्ररोगोंमें उपयोगी)

'डाबर चन्दनासव' कार्यालय की एक खास चीज है। यह आसव सुजाक, पेशाब के साथ खून या मवाद जाना, पेशाब में जलन या कड़क का होना, रुक-रुक कर कष्ट से पेशाब होना, पेशाब के साथ-साथ धातु जाना, स्वप्नदोष, पेशाब बन्द हो जाना, पथरी आदि अत्यन्त कष्टदायक रोगों में आश्चर्यजनक गुण दिखलाता है। 'डाबर चन्दनासव' पित्तको शान्त करता है।

वस्तु नं० १०४, १०४ (क) भैषज्य-रत्नावली

डाबर दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त)

(प्रसूतिरोग नाशक और पुष्टिकारक)

'डाबर दशमूलारिष्ट' प्रसूति रोग की खास दवा है। इसमें कस्तूरी पूरी मात्रा में मिली हुई है। प्रसव के बाद स्त्रियों की वायु बिगड़ जाती है और मन्दाग्नि, ज्वर, अरुचि, खांसी, पेटदर्द शिरका भारी रहना, भूख की कमी, खूनकी कमी, हाथ पैरों की जलन इत्यादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में 'डाबर दशमूलारिष्ट' विशेष गुण दिखलाता है। जाड़े के दिनों में इसका सेवन विशेष लाभप्रद है।

वस्तु नं० ८९, ८९ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर द्राक्षारिष्ट

(स्फूर्तिदायक, क्षीणतानाशक और क्षुधा-वर्द्धक)

'डाबर द्राक्षारिष्ट' के सेवन से खांसी, क्षय तथा रोग के बाद की कमजोरी दूर होती है। यह अरिष्ट पाचनक्रिया की कमजोरी को दूर कर भूख बढ़ाता है, दस्त साफ लाता है और क्रमशः शरीर को पुष्ट करता है। इसके नियमित सेवन से हृदय और मस्तिष्क में बल प्राप्त होता है, स्मरणशक्ति बढ़ती है और शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। यह पीने में रुचिकर और स्वादिष्ट है। बाजारू द्राक्षारिष्टों से कई गुना अधिक लाभकारी है।
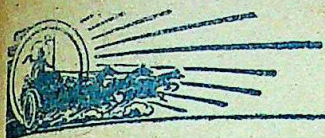
वस्तु नं० ५०२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर पुनर्नवारिष्ट

(सूजन और पाण्डुरोग में उपयोगी)

'डाबर पुनर्नवारिष्ट' के सेवन से हरएक तरह की सूजन, खूनकी कमी, पीलिया, जलोदर इत्यादि रोगोंमें अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ५०३, ५०३ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर महामञ्जिष्ठाद्यरिष्ट

(दूषित खून को शुद्ध करने की उपयोगी दवा)

इस अरिष्ट के सेवन से दूषित खून शुद्ध होता है और तरह तरह के चर्मरोग नष्ट होते हैं। गर्मी (उपदंश) के कारण खून बिगड़कर जोड़ों में दर्द होने लगता है, शरीर में चकत्ते पड़ जाते हैं, फोड़ा फुंसी निकलने लगते हैं और शरीर में जलन होने लगती है ऐसी अवस्थामें यह दवा अच्छा फायदा करती है।

वस्तु नं० ५०१, ५०१ (क) कार्यालय का योग

डाबर रक्तोत्पलारिष्ट

(कष्ट से होनेवाले मासिकधर्म में उपकारी)

'डाबर रक्तोत्पलारिष्ट' कार्यालय का एक अनुभूत योग है। इसके सेवन से स्त्रियों के मासिकधर्म के समय होनेवाली पीड़ा दूर होती है। ठीक समय पर महीना न होना या बिलकुल न होना, कम होना, कमर जांघ तथा पेटके नीचे भाग में दर्द होना एवं गर्भाशय सम्बन्धी विकार दूर होकर स्त्रियों को सुन्दर स्वास्थ्य और शारीरिक बल प्रदान करनेमें यह अरिष्ट अद्वितीय है।

वस्तु नं० ४९६ चरक संहिता

डाबर लोध्रासव (मध्वासव)

(प्रमेह और मूत्ररोगों की दवा)

यह आसव मूत्र-सम्बन्धी विकारों को दूर करने में अपूर्व है। इसके सेवन से बार-बार और थोड़ा-थोड़ा पेशाब होना, पेशाब में जलन या कड़क होना, बहुमूत्र, धातु गिरना, स्त्रियोंके मासिक धर्म के समय की पीड़ा तथा गर्भाशय के विकार दूर होते हैं। यह स्त्री और पुरुष दोनों के लिये उपयुक्त है।

वस्तु नं० ४९७, ४९७ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर लौहासव

(खूनको बढ़ानेकी अपूर्व दवा)

'डाबर लौहासव' के सेवनसे खून की कमी, चेहरे का पीला पड़ जाना, शारीरिक दुर्बलता इत्यादि विकार नष्ट होते हैं। यह हाजमा शक्ति को बढ़ाता है और शरीर में काफी मात्रा में शुद्ध खून पैदा करता है।

वस्तु नं० ४९९ कार्यालयका योग

डाबर वासकासव

(खांसी की गुणकारी दवा)

'डाबर वासकासव' खांसी तथा श्वास में अच्छा गुण दिखलाता है। यह कार्यालय की विशेष प्रक्रिया से बनाया गया है इसके सेवनसे छाती तथा फेफड़ों के घाव, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त विकार ठीक होते हैं।

वस्तु नं० ६१०, ६१० (क) कार्यालय का योग

डाबर सारिवाद्यरिष्ट

(कुष्ठ तथा दूषित रक्त की दवा)

'डाबर सारिवाद्यरिष्ट' ऊंचे दर्जे की वनस्पतियों के योग से निर्माण किया गया है। इसके सेवनसे कुष्ठ, चर्मरोग, वातरक्त इत्यादि विकार नष्ट होते हैं। बिगड़े हुए खूनको शुद्ध करने की यह आजमूदा दवा है।

वस्तु नं० १०६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर सारस्वतारिष्ट (स्वर्णयुक्त)

(स्मरणशक्ति, बुद्धि और कान्ति बढ़ानेवाला अपूर्वयोग)

'डाबर सारस्वतारिष्ट' में स्वर्ण मिला हुआ है। इसके सेवन से स्मरणशक्ति, बुद्धि, मानसिकशक्ति बढ़ती है। इसके नियमपूर्वक सेवनसे उन्माद (पागलपन), निद्रानाश, तुतलापन, स्वरभंग आदि रोग नष्ट होते हैं। यह दिमागको तर रखनेमें अद्वितीय है।
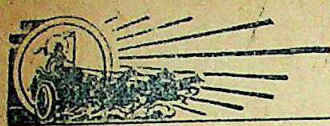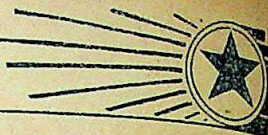
वस्तु नं० ६१९, ६१९ (क) भैषज्य-रत्नावली

डाबर अरविन्दासव

बच्चोंके सुखण्डी रोगको नाशकर नीरोग तथा हृष्ट-पुष्ट बनाने में उपयोगी है ।

वस्तु नं० ४९८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कनकासव

इसके नियमित सेवन से पुरानी खांसी, श्वास तथा जीर्ण ज्वर ठीक होते हैं।

वस्तु नं० ६२० भैषज्य-रत्नावली

डाबर खदिरारिष्ट

कुष्ठ रोगोंमें तथा रक्त दूषित हो जाने पर इस अरिष्ट के सेवनसे अच्छा लाभ होता है ।

वस्तु नं० ६२१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर जीरकाद्यरिष्ट

प्रसूति के हाथ पैरों की जलन, मुंह के छाले, भूख की कमी में परम लाभप्रद है ।

वस्तु नं० ६२२ गदनिग्रह

डाबर धात्र्यरिष्ट

पाण्डु, (पीलिया), खूनकी कमी, वातरक्त, भूखकी कमी अरुचि तथा हृदय की कमजोरी आदि में काफी गुण दिखलाता है। पाण्डुरोग में विशेष गुणकारक है ।

वस्तु नं० ६२३ भैषज्य-रत्नावली

डाबर पत्राङ्गासव

यह आसव प्रदर, मन्दाग्नि, अरुचि, शोथज्वर में उपयोगी है ।

वस्तु नं० ६२४ भैषज्य-रत्नावली

डाबर बलारिष्ट

अग्निवर्द्धक और बल को बढ़ानेवाला अरिष्ट है । इसके सेवन से प्रबल वायु सम्बन्धी विकार नष्ट होते हैं ।

वस्तु नं० ६२५ भैषज्य-रत्नावली

डाबर बब्बूलारिष्ट

अतिसार, क्षय, खांसी, श्वास आदिमें अच्छा फायदा दिखलाता है।

वस्तु नं० ६२६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मुस्तकारिष्ट

अग्निमान्द्य तथा संग्रहणी में विशेष उपकारी है। हैजा में इसका सेवन लाभप्रद है ।

वस्तु नं० ५०४ भैषज्य-रत्नावली

डाबर रोहितकारिष्ट

यह अरिष्ट शूल, लीवर, तिल्ली इत्यादि पेट की बीमारियों में लाभकारी है । इसके सेवन से पाण्डु और पुराने बुखार में भी फायदा होता है ।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड कार्यालय को
निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा सर्वोत्तम आसव तथा अरिष्ट निर्माण करने के कारण—
प्रथम श्रेणीका प्रशंसापत्र और पदक प्राप्त हुआ है ।
उच्च श्रेणी के आसव तथा अरिष्टों के लिये इससे बढ़कर गुणग्राही जनता के लिये और क्या श्रेष्ठ प्रमाण हो सकता है ।

जूड़ी-ताप। (Regd.)

(जूड़ी, बुखार व ताप तिल्लीकी बेजोड़ दवा)
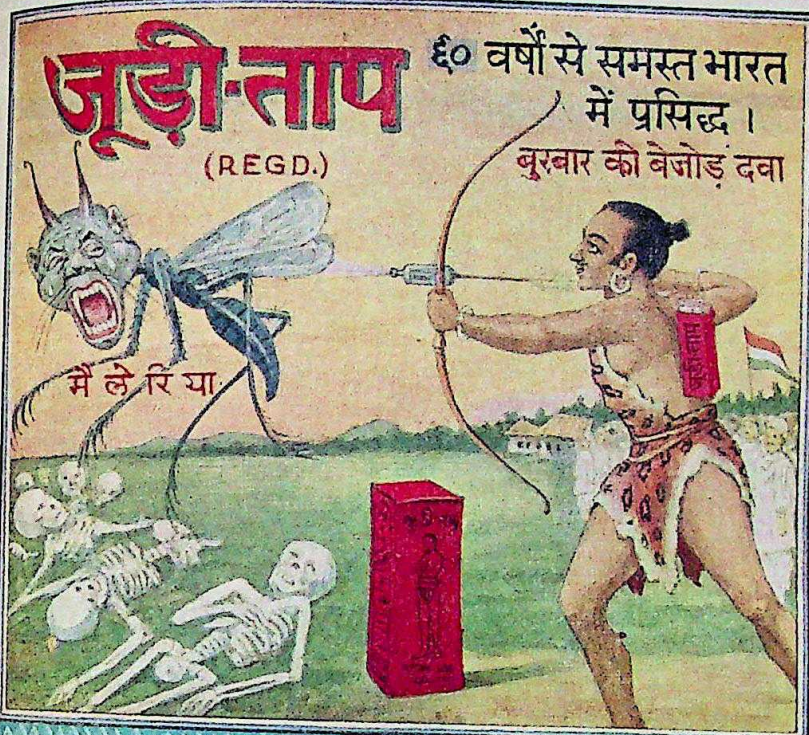
गुण—

मैलेरिया या जूड़ी बुखार, इकतरा, तिजारी, चौथिया, बरबट, तिल्ली (पिलही) इत्यादि ज्वरोंको नाश करनेमें **जूड़ी-ताप** अपना सानी नहीं रखता।

रोगके कारण—

विषम भोजन, ज्वर उतरनेके बाद मिथ्या आहार-बिहार, नमी (तर) और दूषित स्थानमें रहना तथा मैलेरियाके मच्छड़ोंके काटने आदिसे यह मैलेरिया ज्वर, जिसे विषम ज्वर भी कहते हैं, होता है।

रोगीके लक्षण—

प्रथम अवस्थामें— सिर दर्द, अंगोंका टूटना, शरीरका काँपना और अन्तमें जाड़ा या कप-कंपीके साथ रोगी बुखारसे आक्रान्त होता है।

द्वितीय अवस्थामें—ज्वर १०४ से १०६ डिग्री तक हो जाता है। रोगीका चेहरा लाल हो जाता है तथा उसे प्यास, बेचैनी व गर्मी मालूम होती है।

तृतीय अवस्थामें— रोगीको पसीना आकर ज्वर उतर जाता है और दुर्बलता मालूम होती है।

दुःखद परिणाम—इस तरह लागातार या बीच-बीचमें ज्वरका दौरा होने पर बुखार पुराना हो जाता है और हड्डीमें समाकर खूनको पानी कर देता है। पिलही व लीवर बढ़ जाता है। रोगीका पेट निकल आता है और अन्तमें उसका शरीर सूख कर सिर्फ हड्डीके पिंजरके रूपमें बदल जाता है।

विशेषता—

(१) मैलेरिया बुखार केवल कुनैनसे ही अच्छा नहीं होता; किन्तु इसके साथ इस रोगको समूल नष्ट करनेके लिये कईएक अन्य गुणकारी उपादानोंके समिश्रणकी भी जरूरत पड़ती है जो **जूड़ी-ताप** में मौजूद है। (२) बहुत सी अपक्व बुखारकी दवाओंके सेवनसे रोगी अपनी आँखोंकी रोशनी, कानोंसे सुननेकी ताकत और हृदयका बल खो बैठते हैं। लेकिन **जूड़ी-ताप** से हृदय, आंख और कान पर बुरा असर नहीं पड़ता। इसलिये रोगी बेखटके **जूड़ी-ताप** का सेवन करते हैं। (३) **जूड़ी-ताप** शक्ति (Strength) में बहुत तेज है और गाढ़े (Concentrated) होनेके कारण चौगुना पानी मिलाकर पिया जाता है। यही कारण है कि इसकी ४ औंसकी शीशीमें सोलह मात्राएं, २ औंसकी शीशीमें ८ मात्राएं और १ औंसकी शीशीमें ४ मात्राएं रहती हैं। (४) **जूड़ी-ताप** से बुखारके साथ ही साथ तिल्ली (पिलही) में भी पूरा फायदा होता है। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

डाबर अशोकारिष्ट ।

(प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी बहुपरीक्षित दवा)

आयुर्वेद विज्ञानमें **अशोक** के नामानुसार ही गुण वर्णित हैं, इसे शोकनाश, विचित्र, रामा, अंगनाप्रिय, कान्ताचरण दोहद, शोकहर्त्ता इत्यादि नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

अशोक शीतल, मलरोधक, वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, तृषा, दाह और रक्त दोषको दूर करनेमें अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त क्योंकि इसे स्त्रियोंके शोकको दूर करनेका श्रेय प्राप्त है इसलिये यह अशोक कहलाता है। इसी अशोक वृक्षकी छालसे अशोकारिष्ट निर्माण करनेकी पद्धति त्रिकालदर्शी ऋषियोंने आयुर्वेद शास्त्रमें वर्णन कर नारी जगतका विशेष कल्याण किया है।

डाबर अशोकारिष्ट ठीक उसी आयुर्वेद पद्धतिके अनुसार उच्चकोटिके उपादानोंसे तैयार होता है।

गुण---

डाबर अशोकारिष्ट के सेवनसे—

(१) प्रदर विकार (लाल व सफेद पानी जाना) नष्ट होते हैं।
(२) ऋतु विकार या मासिक धर्मकी खराबियां दूर होती हैं।
(३) दुर्बल या दूषित गर्भाशय पुष्ट व शुद्ध होता है।
(४) स्त्रियोंका शरीर सबल और चेहरा कान्तिमय हो जाता है।
(५) उदर रोग, शूल, पित्त, दाह और श्रम दूर होता है।

रोगके कारण---

पेटकी खराबी, गर्म वस्तुओंके अत्यधिक सेवन, पुरुष सहवासकी अधिकता, गर्भाशयकी विकृति, प्रसूतावस्थामें लापरवाही, मासिक धर्मके समय नियम विरुद्ध भोजन, गर्भावस्थामें अत्यधिक परिश्रम इत्यादि दोषोंके फलस्वरूप स्त्रियोंको प्रदर, ऋतु तथा गर्भ विकार सम्बन्धी रोग होते हैं।

रोगीके लक्षण—

(१) लाल, काला या सफेद पानीसा जाना।
(२) चिकना या दुर्गन्धयुक्त श्राव।
(३) ठीक समय पर मासिक धर्मका न होना। (४) सिर, कमर, पेड़ू तथा जंघा आदिमें दर्द होना। (५) अरुचि तथा जी मिचलाना। (६) मन्दाग्नि एवं भूखकी कमी। (७) हाथ तथा पैरोंके तलुओं और आँखोंमें जलन। (८) शरीरकी शिथिलता। (९) ऋतु दोषसे होनेवाला ज्वर। (१०) दूषित या दुर्बल गर्भाशयके कारण गर्भश्राव, इत्यादि।

विशेषता—

(१) **डाबर अशोकारिष्ट** उत्तम श्रेणीकी अशोक छालसे तैयार किया जाता है। (२) **डाबर अशोकारिष्ट** में श्रेष्ठ उपादान पड़ते हैं। (३) **डाबर अशोकारिष्ट** अनुभवी आयुर्वेद मर्मज्ञोंकी कड़ी देख-रेखमें पूर्ण शास्त्रीय पद्धतिसे तैयार होता है।

उच्चकोटि के अवलेह, मोदक, पाक इत्यादि

चीनी या गुड़ की चाशनी अथवा मधु और स्वरस (वनस्पतियों का रस) आदि द्रव पदार्थों में औषधियों का चूर्ण मिलाकर अथवा क्वाथ (काढ़े) आदि को फिर पकाकर जो चटनी तैयार की जाती है उसे अवलेह कहते हैं। इसी का कड़ा रूप मोदक या पाक कहलाता है।

वस्तु नं० ११३ — शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर कुटजावलेह

(सब प्रकार के दस्त बन्द करने की दवा)

इसके सेवन से पुराने दस्त, खून अथवा आंव के दस्त, पेचिश व खून की वमन (उल्टी) इत्यादि व्याधियां नष्ट होती हैं। यह ग्रहणी, खूनी बवासीर तथा मन्दाग्नि में भी उपयोगी तथा शक्तिवर्द्धक है।

वस्तु नं० ५११ — शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर कण्टकारी अवलेह

(खांसी में उपयोगी)

इस अवलेह के सेवन से पुरानी तथा नयी खांसी, श्वास फूलना, फेफड़े की कमजोरी तथा हृदय रोग में अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ५०८ — कार्यालय का योग

डाबर दाड़िमाद्यवलेह

(रुचि तथा क्षुधावर्द्धक)

डाबर दाड़िमाद्यवलेह कार्यालय के एक अनुभूत योग के आधार पर निर्माण किया गया है। इसके सेवन से रुचि बढ़ती है तथा भूख अच्छी लगती है। जलन तथा प्यास कम होती है। पित्त शान्त होता है।

वस्तु नं० ५०७ — भाव प्रकाश

डाबर मृगमदाद्यवलेह

(अद्वितीय वाजीकरण रसायन)

यह अवलेह केशर, कस्तूरी इत्यादि बहुमूल्य द्रव्योंके योगसे निर्माण किया गया है। इसके सेवन से धातु की कमजोरी, पेशाबके साथ धातु गिरना, शीघ्र-पतन तथा नसों की कमजोरी इत्यादि दोष दूर होते हैं। यह उच्चकोटिका वीर्यवर्द्धक स्तम्भक रसायन है।

वस्तु नं० ११४ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर वासावलेह

(क्षय तथा खांसी की अनुभूत दवा)

इस अवलेह के सेवन से सूखी, नयी, पुरानी या दमेवाली खांसी, दम फूलना, रक्तपित्त, कफके साथ खून निकलना, साधारण ज्वर के साथ खांसी होना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। क्षय तथा फेफड़े के रोगों में इसका उपयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

वस्तु नं० ५०९ — चरक संहिता

डाबर ब्राह्म रसायन

(बुद्धि और शक्तिवर्द्धक महारसायन)

डाबर ब्राह्म रसायन ऊँचे दर्जे का आयुर्वेदिक रसायन है। इसके सेवनसे शारीरिक दुर्बलता और शिथिलता दूर होकर वीर्य, कान्ति आयु, स्मरणशक्ति और बुद्धि बढ़ती है। वृद्धों तथा दिमागी काम करनेवालों के लिये तो यह अमृत है। इसके नियमित सेवन से खांसी, श्वांस इत्यादि रोग भी नष्ट होते हैं। यह दस्त साफ लाकर ताकत बनाये रखता है।

वस्तु नं० ५५५ — योगचिन्तामणि

डाबर अभयादि मोदक

(कब्जियत तथा बवासीर में उपयोगी)

इस मोदक के सेवनसे कब्जियत, अपच, खूनकी कमीसे होनेवाली सूजन, भगन्दर, बवासीर इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन से नजले के विकारों में भी फायदा होता है। यह हल्का जुलाब है।
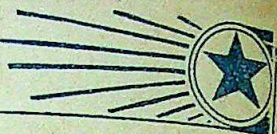
वस्तु नं० १४७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मदनानन्द मोदक

(ध्वजभंग, नपुंसकता में उपयोगी)

यह मोदक उत्कृष्ट मकरध्वज, अभ्रक, लौह भस्म, भीमसेनी कपूर तथा केशर इत्यादि के संयोग से निर्माण किया गया है। इसके सेवनसे नष्ट हुई कामशक्ति लौटती है तथा बल और वीर्य बढ़ता है। यह शीघ्रपतनदोष को दूर कर स्तम्भन शक्ति प्रदान करता है। शीत ऋतु में इसका निरन्तर सेवन करने से अच्छा लाभ होता है और भूख अच्छी लगती है।

वस्तु नं० ५१२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर सौभाग्य शुण्ठीपाक

(प्रसूति के लिए पौष्टिक रसायन)

इसके सेवन से प्रसूत सम्बन्धी विविध रोग नष्ट होते हैं। प्रसूति की भूखकी कमी, अनपच, अरुचि, पेटमें वायुका गुम हो जाना, पतले दस्त, कमर तथा जंघाओं में दर्द होना, साधारण ज्वर इत्यादि दोष नष्ट होते हैं। इसके नियमित सेवन से जच्चा को शारीरिक बल की प्राप्ति होती है और रज शुद्ध होता है।

वस्तु नं० ६२७, ६२७ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर अगस्त्य हरीतकी

श्वास, खांसी तथा फेफड़ों की कमजोरी में उपयोगी है।

वस्तु नं० ६२८, ६२८ (क) योगचिन्तामणि

डाबर मुशलीपाक

यह सुप्रसिद्ध पौष्टिक पाक है। इसके सेवन से वीर्य बढ़ता है और शरीर पुष्ट होता है।

वस्तु नं० ६२९, ६२९ (क) योगचिन्तामणि

डाबर सुपारी पाक

स्त्रियों के शिथिल निर्बल गुप्त भाग को पुष्ट करने में यह पाक अद्वितीय है। प्रसवके बाद इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है।

वस्तु नं० ६३०, ६३० (क) योगचिन्तामणि

डाबर एरण्ड पाक

यह गठिया और बात की अपूर्व दवा है।

वस्तु नं० ६३१ रसयोगसागर

डाबर कामेश्वर मोदक (प्रथम)

स्तम्भन के लिए यह मोदक परम उपयोगी है।

गुग्गुल

वस्तु नं० ५५३ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर काञ्चनार गुग्गुल

(कण्ठमाला में उपयोगी)

यह गुग्गुल कण्ठमाला या गण्डमालाकी मुख्य औषधि है। इसके सेवन से नासूर, भगंदर, गांठ, घाव और रक्तपित्त में भी विशेष लाभ होता है।

वस्तु नं० ५५४ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर महायोगराज गुग्गुल

(वातव्याधि की प्रधान दवा)

डाबर महायोगराज गुग्गुल सर्वोत्तम रससिन्दूर, रौप्य भस्म, नाग भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म, लौह भस्म और बङ्ग भस्म, इन सात भस्मों के योगसे बना हुआ है। इस अद्वितीय औषधि के सेवन से वात सम्बन्धी विकार जैसे शरीर में दर्द, हाथ पैर तथा जोड़ों में दर्द और कम्पन, गठिया, लकवा, वात-रक्त, शरीर का कांपना इत्यादि रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

वस्तु नं० ४४१ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर योगराज गुग्गुल

(वातव्याधि की उपयोगी दवा)

इसके सेवन से वायु सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। डाबर महायोगराज गुग्गुल की तरह यह दवा भी गठिया, आमवात शरीर तथा जोड़ों के दर्द या कंप-कंपी इत्यादि दोषोंको मिटाती है।
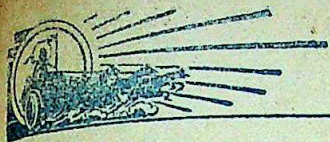
चूर्ण

हमारे यहां ताजी जड़ी बूटियों को साफ करने के बाद उन्हें अच्छी तरह सुखाकर चूर्ण बनाये जाते हैं। अन्य कई औषधि विक्रेताओं की तरह सब दवाओं को एकसाथ मिलाकर और उन्हें कूट कर चूर्ण बनाने की नीति काम में नहीं ली जाती ; क्योंकि इस प्रकार करने से छानने पर किसी दवा का मोटा भाग अधिक और किसीका कम निकलता है। इससे शास्त्रोक्त परिमाण एवं गुण में भी अन्तर पड़ जाता है। हमारे कार्यालय में प्रत्येक औषधि का पृथक चूर्ण कर शास्त्रोक्त परिमाण के अनुसार उन्हें मिलाकर चूर्ण तैयार किये जाते हैं। अग्नि को दीपन करनेवाले तथा पाचनशक्तिको बढ़ानेवाले स्वादिष्ट चूर्ण हमेशा भोजन के बाद सेवन करने चाहियें। यदि दस्त साफ करने के लिये विरेचन चूर्ण का प्रयोग करना है तो रातको सोते समय गरम पानी से सेवन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य चूर्णों को सुबह-शाम सेवन करना चाहिये।

वस्तु नं० ५२८ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अग्निमुख चूर्ण

इस चूर्ण के सेवन से अग्निमांद्य, अरुचि, क्षुधानाश इत्यादि विकार नष्ट होते हैं। यह पाचनशक्ति और क्षुधा को बढ़ाता है। यह गुणकारी होते हुये भी खाने में बहुत स्वादिष्ट और रुचिवर्द्धक है। भोजन के बाद खाने से भोजन शीघ्र हजम हो जाता है।

वस्तु नं० ५२९ — चरक संहिता

डाबर अष्टाङ्ग लवणचूर्ण

यह चूर्ण दीपक तथा पाचक है। इसके सेवन से मुखमें पानी आना, कफज मदात्यय तथा अग्निमांद्यमें अच्छा लाभ होता है।

वस्तु नं० ५३० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अविपत्तिकर चूर्ण

इस चूर्ण के सेवनसे कंठ तथा छाती की जलन, खट्टी डकार आना आदि अम्लपित्त के उपद्रव शांत होते हैं।

वस्तु नं० ५३१ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अभयालवण चूर्ण

विशेषकर लीवर और तिल्लीके दोषोंसे उत्पन्न पेट सम्बन्धी बीमारियोंमें तथा ज्वर आदिमें यह चूर्ण शीघ्र फलदायक है।

वस्तु नं० ६३२, ६३२ (क) — शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर अश्वगन्धादि चूर्ण

इसके सेवनसे मस्तिष्क पुष्ट होता है और वीर्य बढ़ता है।

वस्तु नं० ५३२ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर एलादि चूर्ण

इस चूर्णके सेवनसे वमन (उल्टी) और हिचकीमें विशेष लाभ होता है।

वस्तु नं० १४६ — यो० त०

डाबर कामदेव चूर्ण

(दूषित व पतली धातुको शुद्ध व गाढ़ा करनेकी दवा)

यह चूर्ण आयुर्वेद की प्रसिद्ध वीर्यवर्द्धक औषधियाँ, श्वेत, मुशली अश्वगंधा इत्यादिके योगसे निर्माण किया गया है। इसके सेवनसे वीर्यका पतला होना, पेशाबके साथ वीर्यका जाना, स्वप्नदोष इत्यादि विकार नष्ट होकर वीर्य शुद्ध और पुष्ट होता है। यह चूर्ण शीत ऋतुमें सेवन करना विशेष लाभकारी है।

वस्तु नं० ५२३ — शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर गङ्गाधर चूर्ण

यह चूर्ण विशेष कर पुराने दस्तोंमें लाभदायक है। इसके सेवनसे

पतला दस्त बन्द होता है; आंतें मजबूत होती हैं और पाचन शक्ति ठीक होती है।

वस्तु नं० ६३६, ६३६ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर तालिसादि चूर्ण

खांसीमें अच्छा फायदा करता है।

वस्तु नं० ११२ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर त्रिफला चूर्ण

(पेटको नियमित रखने की दवा)

इस सुप्रसिद्ध चूर्णके सेवनसे सदा की कब्जियत, भूख की कमी रक्तविकार इत्यादि रोगोंमें फायदा होता है। आंखके साधारण रोग (जैसे आंख का दुःखना—आना) तथा घाव इस चूर्णके जलसे धोनेसे अच्छे होते हैं। मुंहके छालोंमें भी इस चूर्णके जलसे कुल्ला करना लाभदायक है।

वस्तु नं० ५३४ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर दाड़िमाष्टक चूर्ण

इस चूर्णके सेवनसे पित्तके बिगड़ जानेसे उत्पन्न बदहजमी, मुख का स्वाद बिगड़ जाना, अरुचि इत्यादि दोष नष्ट होते हैं तथा गला साफ होता है।

वस्तु नं० ५३५ कार्यालय का योग

डाबर धन्वन्तरि लवण

यह लवण रुचिकारक और मन्दाग्नि नाशक है। भोजन पदार्थ के साथ सेवन करने से भोजन स्वादिष्ट हो जाता है।

वस्तु नं० ६१४, ६१४ (क) कार्यालय का योग

डाबर नमक सुलेमानी

'डाबर नमक सुलेमानी' कार्यालय की एक खास वस्तु है। इसके सेवनसे मुंह का स्वाद अच्छा होता है, भूख बढ़ती है एवं अन्न हजम होता है। यह पेट दर्द और वायु विकार को नष्ट करने में अद्वितीय है। गुण और स्वाद दोनों ठीक होनेसे जनता इसे अधिक चाहती है।

वस्तु नं० ६३३, ६३३ (क) भैषज्य-रत्नावली

डाबर नारसिंह चूर्ण

स्तम्भक और बल वीर्य वर्द्धक तथा पुष्टिकर है।

वस्तु नं० ५२७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर पुष्यानुग चूर्ण

(प्रदर की अनुभूत दवा)

डाबर पुष्यानुग चूर्ण स्त्रियोंके सफेद और रक्त प्रदरमें विशेष लाभदायक है। प्रदरसे उत्पन्न निर्बलता और बेचैनीको दूर करनेके लिये स्त्रियोंको यह चूर्ण अवश्य सेवन करना चाहिये।

वस्तु नं० ८८ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर भास्करलवण चूर्ण

(वायुनाशक, पाचक तथा क्षुधावर्द्धक)

इस चूर्णके सेवनसे अजीर्ण, अरुचि, कब्ज, पेट फूलना, मन्दाग्नि इत्यादि विकार नष्ट होते हैं। यह आमाशयको शुद्ध करता है और खानेमें स्वादिष्ट है। हरएक गृहस्थको इस उपकारी औषधिको बराबर अपने पास रखना चाहिये; कारण नियम विरुद्ध भोजनसे मेदा खराब होने पर यह अच्छा काम करता है।

वस्तु नं० ६३७, ६३७ (क) शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर यवानीखाण्डव चूर्ण

यह रुचिवर्द्धक और स्वादिष्ट चूर्ण है।

वस्तु नं० ५२५ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर लवङ्गादि चूर्ण

अरुचि, वमन, अतिसार, पेट का गर्म होना, वायुवृद्धि, हिचकी इत्यादि विकारोंको नष्ट करनेमें यह चूर्ण उपयोगी है।

वस्तु नं० ६३४, ६३४ (क) कार्यालय का योग

डाबर बज्रक्षार चूर्ण

इसके सेवनसे पेशाब साफ होता है तथा ज्वरका वेग कम होता है।

डाबर
आँवला केश तैल
मनोहर
गंधयुक्त
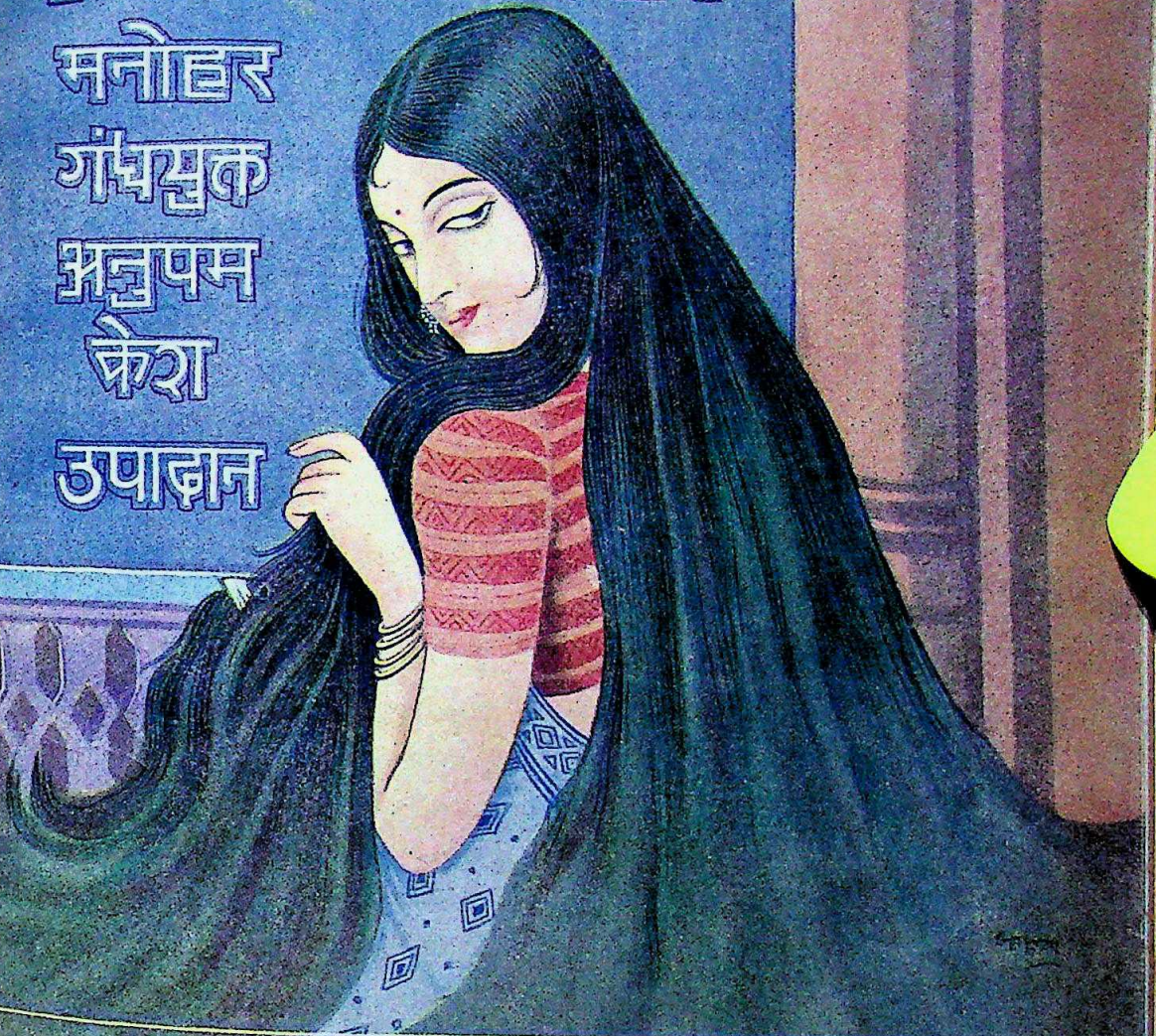
वस्तु नं० ५३६ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर भृंग्यादि चूर्ण

बच्चोंकी खांसी, सर्दी, दम फूलना, दांत निकलने के समयके कष्ट, हिचकी व डब्बा इत्यादि रोगोंमें यह चूर्ण फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६३५, ६३५ (क) — भाव प्रकाश

डाबर सारस्वत चूर्ण (बृहत्)

दिमागी काम करनेवालोंके लिये उपयोगी है।

वस्तु नं ५२६ — शार्ङ्गधर संहिता

डाबर सितोपलादि चूर्ण

यह चूर्ण सर्दी, खांसी, क्षय, रक्तपित्त, हाथ और पैरोंकी जलन, मुंहसे रक्तका गिरना इत्यादि रोगोंमें विशेष उपकारी है।

वस्तु नं० ५२४ — शार्ङ्गधर संहिता

डाबर सुदर्शन चूर्ण

(जीर्ण, विषम तथा सर्वज्वर में उपयोगी)

यह चूर्ण पुराना ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, मुखके छाले इत्यादि दोषों को नाश करनेमें अद्वितीय है। इसके सेवनसे लीवर और तिल्ली के विकार दूर होते हैं तथा दस्त साफ होता है। ज्वरके बाद की कमजोरीको भी यह दूर करता है।

वस्तु नं० ११० — आयुर्वेद संग्रह

डाबर सैन्धवादि चूर्ण

अग्निमांद्य, अजीर्ण, वायु गोला इत्यादिमें यह चूर्ण उपकारी है।

वस्तु नं० ६३८, ६३८ (क) — सिद्ध भैषज्य मणिमाला

डाबर सौंफादि (पञ्च सकार) चूर्ण

पेटको साफ रखनेकी उत्तम दवा है।

वस्तु नं० १११ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर हिंग्वष्टक चूर्ण

यह चूर्ण अग्निवर्द्धक और वायुनाशक है। इसके सेवनसे अरुचि, अजीर्ण, पेट फूलना, पेटका दर्द, वायुका अवरोध, शूल तथा अपचके दस्तोंमें अच्छा फायदा होता है।

बटीवर्ग

वस्तु नं० ४८२ — योग चिन्तामणि

डाबर अमर सुन्दरी बटी

इस बटीके सेवनसे तरह २ के वायुरोग, सर्दी, खांसी तथा श्वास में फायदा होता है।

वस्तु नं० ४८३ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अग्नितुण्डी बटी

यह गोली पाचन क्रियाको बढ़ाने में अद्वितीय है। इसके सेवनसे पेटका मीठा२ दर्द अच्छा होता है और आँतें मजबूत होती हैं।

वस्तु नं० ५५६ — रस चंडांशु

डाबर आरोग्य वर्द्धिनी बटी

इसके सेवनसे रक्तविकार नष्ट होते हैं और कुष्ठ, खुजली इत्यादि चर्म रोगोंमें फायदा होता है। यह दीपक तथा पाचक है।

वस्तु नं० ४८० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर एलादि बटी

पित्तके बिगड़ जानेसे उत्पन्न विविध व्याधियोंमें यह बटी अच्छा काम करती है। रक्तपित्त, श्वास, खांसी, वमन (उल्टी), तथा कफके साथ खून जाने पर इस बटी का सेवन परम गुणदायक है।

वस्तु नं० ४८४ — वैद्यजीवन

डाबर कास लवङ्गादि बटी

यह खांसीमें चूसनेकी उपकारी बटी है।

वस्तु नं० ४८५ — योग रत्नाकर

डाबर खदिर बटी

मुख के छाले तथा अन्य मुखरोग और खांसी में यह बटी गुणदायक है।

वस्तु नं० १२०० भैषज्य-रत्नावली

डाबर चन्द्रप्रभा बटी

(मूत्र सम्बन्धी रोगों में उपयोगी)

इस बटीमें ऊंचे दर्जेका लौह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म और शिलाजीत मिला हुआ है। इसके सेवनसे पेशाबके साथ धातु तथा एल्ब्यूमेन जाना, पेशाब की खुजली, जलन, पथरी, सुजाक इत्यादि रोगोंमें अच्छा लाभ होता है। यह बटी साफ पेशाब लानेमें अच्छा गुण करती है।

वस्तु नं० ४८६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर चित्रकादि बटी

इस बटीके सेवनसे अजीर्ण, पतले दस्त, आंव का गिरना, पेट फूलना इत्यादि पेटकी बीमारियोंमें अच्छा लाभ होता है। यह आंवको पचानेमें अच्छा काम करती है।

वस्तु नं० ४८७ रसयोग सागर

डाबर ब्राह्मी बटी

वायु सम्बन्धी रोग तथा चेचक (माता-शीतला) की यह प्रधान दवा है। इसके सेवनसे चेचकमें किसी प्रकारके उपद्रव होनेका भय नहीं रहता।

वस्तु नं० ६५३ भैषज्य-रत्नावली

डाबर भुवनेश्वर बटी

इसके सेवनसे उदर रोग ठीक होते, आंवका पाचन होता, पेटकी वायु कम होती और टट्टी साफ होकर भूख अच्छी लगती है।

वस्तु नं० ६४१ कार्यालय का योग

डाबर मकरध्वज बटी

यह अत्यन्त वाजीकरण वीर्यस्तम्भक महौषधि है, शीघ्र पतनके दोषको मिटाकर बल और वीर्यको बढ़ाना इस बटी का खास गुण है। हर प्रकारकी धातुक्षीणता और वीर्य विकारों की सतशोधभूत दवा है।

वस्तु नं० ४८९ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर मरिचादि बटी

यह बटी खांसीमें गुणकारी है। इसके सेवनसे कफकी नली साफ होती है।

वस्तु नं० ४८८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर महाशङ्ख बटी

अजीर्ण या मन्दाग्नि से उत्पन्न उदर शूलमें यह बटी परम उपयोगी है।

वस्तु नं० ५५८ चरक

डाबर मण्डूर बटक

इस उपयोगी औषधिके सेवनसे लीवर और तिल्लीके दोषोंसे उत्पन्न खूनकी कमी, पीलिया और सूजनमें अच्छा लाभ होता है।

वस्तु नं० ४८९ कार्यालय का योग

डाबर रजः प्रवर्त्तिनी बटी

इस बटीके सेवनसे बन्द हुआ मासिक धर्म खुलासा और बिना कष्टके हो जाता है।

वस्तु नं० ४९० वैद्यजीवन

डाबर रसोनबटी

अजीर्ण और पेटकी वायुको शान्त करनेकी यह अनुभूत औषधि है।

वस्तु नं० ६३९ योग चिन्तामणि

डाबर राज (गन्धक) बटी

अग्निमांद्य और अजीर्णमें यह बटी उपयोग में लाई जाती है।

वस्तु नं० ४९१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर लवङ्गादि बटी

पतले और आंवके दस्तोंमें यह बटी परम गुणदायक है।

वस्तु नं० ६४० रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर सौभाग्य बटी

सन्निपातज्वरमें यह बटी अच्छा गुण दिखलाती है।

वस्तु नं० ४७९ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर संजीवनी बटी

यह अजीर्ण, हैजा और ज्वरकी प्रसिद्ध दवा है।

वस्तु नं० ६४२ कार्यालय का योग

डाबर क्षुधावर्द्धक बटी

इस बटीके नाम के अनुसार ही इसका गुण समझना चाहिये। यह स्वादिष्ट और भूख बढ़ानेमें अद्वितीय है।

तैलादि

तैल के पाठ में जिस द्रव्य का तैल लिखा हुआ है उसी के अनुसार ही तैल व्यवहार में लाया जाता है। कार्यालय में ठण्डे काठ के कोल्हू से निकाला हुआ और विशुद्ध तैल ही काम में आता है। औषधियों के गुणों की रक्षा के लिये तैलों को धीमी आंच पर पकाने की सावधानी रखी जाती है। कार्यालय के तैल पक जाने पर औषधियों के पूरे गुणों को ग्रहण कर लेते हैं। सिद्ध तैल रोग नाश करके शरीर को पुष्ट तथा मुलायम बनाते हैं और शुद्ध रक्त का संचार होता है। तैल सुबह शाम या रात को मर्दन करना चाहिये।

वस्तु नं० ५१३ — शार्ङ्गधर संहिता

डाबर इरिमेदादि तैल

मुंहके छालों में और मसूढ़ोंके फूलने पर इस तैल को लगाने से अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ६४९ — शार्ङ्गधर संहिता

डाबर काशीसादि तैल

बवासीर के लिए

वस्तु नं० ५१४ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर कुब्जप्रसारिणी तैल

इस तैल की मालिश से कुब्जत्व (कुबड़ापन) और वात विकारों में काफी फायदा होता है।

वस्तु नं० ६४८ — भाव प्रकाश

डाबर गुडूची तैल

शरीर की जलन शान्ति के लिए।

वस्तु नं १४८ — योग चिन्तामणि

डाबर चन्दनादि तैल

इस तैल में केशर और कस्तूरी मिली हुई है। इसकी मालिश से शरीर की जलन, क्षय, रक्तपित्त, शरीर की दुर्गन्धि और खुजापन, शिर का भारीपन इत्यादि विकार दूर होते हैं तथा शरीर की सुन्दरता बढ़ती है। नाक से खून गिरने पर इस तैल को नाक में डालने से और माथे में मलने से अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ५२२ — कार्यालय का योग

डाबर तिला

यह तिला कस्तूरी, जुन्दबेदस्तर, वीर बहूटी इत्यादि अपूर्व गुणकारी औषधियों के योग से बनाई गई है। इसके व्यवहार से इन्द्रिय सम्बन्धी रोग जैसे—इन्द्रिय का टेढ़ापन, शिथिल हो जाना, पतला पड़ जाना इत्यादि विकार नष्ट होते हैं।

वस्तु नं० ६४४ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर दशमूल तैल (वृहत्)

शिर रोग में उपयोगी।

वस्तु नं० ५१५ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर निरगुण्डी तैल

इस तैल के व्यवहार से गण्डमाला में अच्छा उपकार होता है।

वस्तु नं० ५१६ — कार्यालय का योग

डाबर पञ्चामृत तैल

यह तैल दूषित घाव और फोड़े फुंसी में उपयोगी है।

वस्तु नं० ६५२ — कार्यालय का योग

डाबर ब्राह्मी तैल

मस्तक तथा दिमाग को ठण्डा रखनेवाली जड़ी बूटियों के योग से बना हुआ अतीव गुणकारी तैल है। दिमागी काम करनेवालों को इसे अवश्य व्यवहार करना चाहिये।

वस्तु नं० ५१७ योग चिन्तामणि

डाबर महाविषगर्भ तैल

इस तैल की मालिश से गठिया और सब तरह के वात विकारों में अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ५१८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर महामाष तैल

हड्डी का दर्द और वायु विकारों में यह तैल उपयोगी है। आधे अङ्ग में वायु बिगड़ जाने पर या शून्य हो जाने पर इस तैल की मालिश करनी चाहिये।

वस्तु नं० ५२१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मरिचादि तैल

यह तैल चर्मरोग, खुजली और फोड़ा-फुंसी को अच्छा करने की अपूर्व दवा है।

वस्तु नं० ११५ भैषज्य-रत्नावली

डाबर महानारायण तैल

इस तैल की मालिश से सब तरह की वात व्याधियें, कमर, जांघ, पसली इत्यादि का दर्द, लकवा और गला अकड़ना इत्यादि में पूरा फायदा होता है। यह आयुर्वेद का वात विनाशक सुप्रसिद्ध तैल है।

वस्तु नं ६४३ भाव प्रकाश

डाबर मध्यमनारायण तैल

वात व्याधि के लिये।

वस्तु नं० ६५० शार्ङ्गधर संहिता

डाबर महा भृङ्गराज तैल

केशों को काला करने और माथे को ठण्डा रखने में उपयोगी।

वस्तु नं० ६५१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर रसोन तैल

कानदर्द और कान बहने में उपयोगी।

वस्तु नं० ६५४ भैषज्य-रत्नावली

डाबर लक्ष्मीविलास तैल

यह केशर, कस्तूरी, कर्पूर और खट्टाशी आदि अनेक सुगन्धित बहुमूल्य द्रव्यों के योग से बना है। इसके व्यवहार से सम्पूर्ण वातविकार दूर होते हैं। पुष्टि, कान्ति, मेधा और स्मृति की वृद्धि होती है।

वस्तु नं० ११६ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर लाक्षादि तैल

दुर्बल शरीर को पुष्ट करने में यह तैल परमोपयोगी है। पुराने ज्वर, दमा, क्षय, क्षीणता इत्यादि में तथा कमजोर बच्चों की मालिश में यह तैल काम में लाया जाता है।

वस्तु नं० ६४६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर विष्णु तैल (वृहत्)

वात व्याधि में लाभदायक।

वस्तु नं० ५१९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर श्रीगोपाल तैल

(इन्द्रिय शिथिलता में मालिश करने का तैल)

यह तैल खट्टाशी, केशर, कस्तूरी इत्यादि बहुमूल्य औषधियों के योग से बनाया गया है। इसकी मालिशसे गुप्तेन्द्रियकी शिथिलता, नीली नसोंका उभर आना, उत्तेजना की कमी इत्यादि शिकायतें दूर होती हैं। इसका नित्य प्रयोग करनेवाले पुरुषोंको वायु रोगों का भय नहीं रहता।

वस्तु नं० ५२० भैषज्य-रत्नावली

डाबर षड़्बिन्दु तैल

सर्दी तथा वायु के कारण शिर दर्द में इस तैल की नस्य लेने से विशेष उपकार होता है।

वस्तु नं० ६१७ कार्यालय का योग

डाबर सर्वगुण तैल

चोट, जले, कटे, सूजन, घाव तथा नासूर में इस तैलके व्यवहार से विशेष लाभ होता है। सर्दी लग जाने पर या निमोनिया में

डाबर च्यवनप्राश अवलेह । (Regd.)

(वीर्यवर्द्धक, अमृततुल्य पौष्टिक रसायन)

च्यवनप्राश विश्वके लिये च्यवनऋषि का महादान है । यह प्रसिद्ध रसायन चुनी हुई अपूर्व औषधियोंके योगसे निर्माण किया जाता है । इसमें आँवला गोखुरू, ऋद्धि, जीवन्तिका, जीवक इत्यादि लगभग पचास अपूर्व गुण-कारी औषधियाँ पड़ती हैं । आँवला इसमें प्रधान है । जिसे आयुर्वेद शास्त्रमें **"जरा व्याधि विनाशनम्"** कहकर प्रशंसा की गई है । **डाबर च्यवनप्राश अवलेह** ठीक इसी प्रकार शास्त्रोक्त पद्धतिसे निर्माण किया जाता है ।
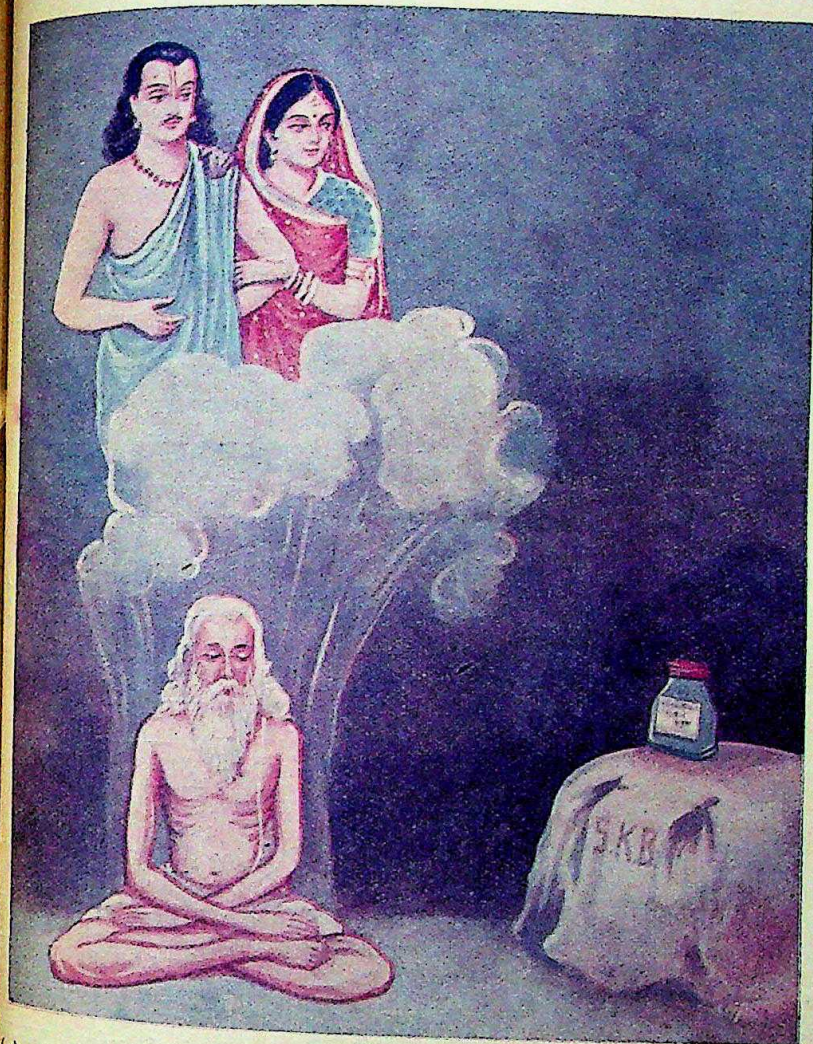
डाबर च्यवनप्राश अवलेह में अष्टवर्ग की औषधियाँ मिली हुई हैं इसलिये इसमें साधारण च्यवन-प्राशोंसे अधिक जीवनी शक्ति है । इसके सेवन से—

(१) नपुंसकों में पुरुषत्व आता है ।
(२) वीर्य बढ़ता है और संभोगकी इच्छा बलवती होती है ।
(३) बुद्धि, स्मरणशक्ति और मेधा बढ़ती है ।
(४) शरीर की कान्ति और वर्ण निखरता है ।
(५) हृदय और फेफड़ों की कमजोरी दूर होती हैं । (६) बुढ़ापे की निर्बलता और कब्जियत में काफी फायदा होता है । (७) खांसी, श्वास, स्वरभंग, वातपित्त, पिपासा आदि दूर होते हैं । (८) यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में अच्छा लाभ होता है । (९) मूत्र सम्बन्धी रोग नाश होते हैं । (१०) अरुचि और अजीर्ण मिटकर भूख बढ़ती है । (११) शरीर की जर्जरता (बुढ़ापा) दूर होकर अपूर्व स्फूर्ति आती है इसलिये वृद्धोंका यह परम सहायक है। शीत ऋतुमें इसका सेवन अवश्य करना चाहिये ।

विशेषता—

(१) **डाबर च्यवनप्राश अवलेह** में उच्चकोटिके और ताजे उपादान पड़ते हैं । (२) **डाबर च्यवनप्राश अवलेह** ग्रन्थ प्रमाणानुसार ही तैयार होता है और इसमें नुसखे के मुताबिक पूरी चीजें पड़ती हैं । (३) बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष और स्त्री सभी इसे बेखटके सेवन कर लाभ उठा सकते हैं ।

डावर मृतसंजीवनी (वाष्पयंत्र द्वारा) (Regd.)

(बल, वीर्यवर्द्धक)
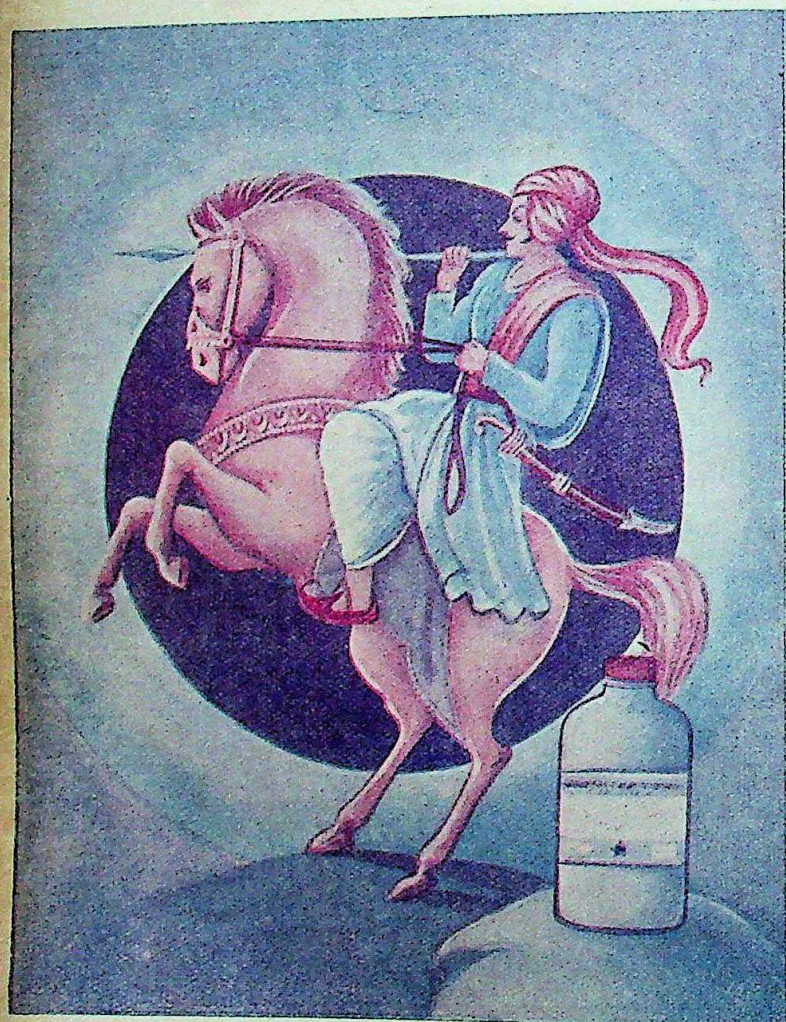
शास्त्र प्रमाणानुसार निर्मित मृतसंजीवनी नामानुकूल ही फलदायिनी होती है। डावर मृतसंजीवनी आयुर्वेदके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भैषज्य-रत्नावलीके वाजीकरणाधिकार प्रकरणमें वर्णित योगानुसार निर्मित है। अतः यह गुणोंमें अचूक है शास्त्रोंमें ऐसा कथन है कि देवासुर संग्रामके समय शुक्राचार्यजीने इस अपूर्व गुणकारी औषधका आविष्कार कर इसे मृतसंजीवनी नामसे घोषित किया। इसके सेवनसे—

(१) शरीरमें तुरंत ही पराक्रम और तेज बढ़ता है।

(२) नित्य पानसे जर्जर शरीरमें भी नवीन शक्तिका संचार होने लगता है।

(३) सन्निपात ज्वर, शीतांग, हैजा, संग्रहणी, अग्निमांद्य, क्षीण-नाड़ीमें भी अपूर्व लाभ होता है।

(४) निर्बलता और क्षुधानाश दूर होकर शरीर सबल, पुष्ट होता है तथा भूख बढ़ती है

(५) जीवनी शक्तिकी वृद्धि होती है और हृदयको बल मिलता है। (६) अपूर्व टानिकका काम होता है। (७) पुरुषत्व हीनतामें आश्चर्यजनक लाभ होता है अतः यह अपूर्व वाजीकरण है। (८) स्त्रियोंको प्रसव कालमें अत्यन्त लाभ पहुचता है।

विशेषता—

(१) डावर मृतसंजीवनी (वाष्पयंत्र द्वारा) कार्यालयकी निजी Bonded Laboratory में सरकारी आबकारी विभाग के उच्चाधिकारियोंकी देख-रेखमें तैयार होती है। (२) इसके सहारे मदिरा पानकी आदत छूट जाती है।
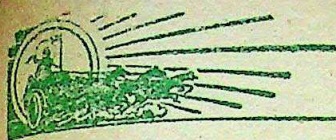
पीठ पसली और छातीमें इस तेल की मालिशसे अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ६४७ भाव प्रकाश

डाबर सैन्धवादि तैल (वृहत्)

आंव, वात और अण्डकोष वृद्धिमें उपकारी।

वस्तु नं० ११७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर हिमसागर तैल

दिमाग को ठण्डा रखने में यह तैल अद्वितीय है तथा शरीरकी जलन को शान्त करता है।

वस्तु नं० ६४५ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर क्षार तैल

कान दर्द में उपयोगी।

डाबर कार्यालय द्वारा निर्मित कतिपय अन्य गुणकारी तैलों की सूची।

वस्तु नं० १७

डाबर अजवायन का तेल

यह तेल अजीर्ण के दोषोंको मिटाकर भूख को बढ़ाता है। इसमें थाइमल ४० प्रतिशतके ऊपर मिलेगा। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में भी ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ६३

डाबर काजीपुट (इलायची) का तेल

यह तेल जी मिचली, हिचकी और दर्द पर मालिशके लिए उपयोगी है। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ६१६

डाबर काजीपुट इलायची का तेल (सिंगापुर)

यह तेल जी मिचली, हिचकी और दर्द पर मालिश के लिये गुणदायक है। यद्यपि यह बी० पी० स्टैण्डर्ड का नहीं है किन्तु बाजारू अन्य तेलों से बहुत अच्छा है।

वस्तु नं० ५६

डाबर चन्दन का तेल

यह तेल पेशाब की थैली की सूजन, वृद्धावस्था में पेशाब की थैली की कमजोरी तथा नये और पुराने सुजाक की बहुपरीक्षित दवा है। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ६५५

डाबर चालमुगरे का तेल

यह तेल चर्मरोगोंमें विशेष उपकारी है। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ५९

डाबर दालचीनी का तेल

यह तेल दवा व मसाले के लिये विख्यात है। दालचीनीके पूरे गुण इसमें मौजूद हैं। यह तेल पतला तथा स्वच्छ किया हुआ है। बाजारू तेल गहरे रंग के तथा गाढ़े रहते हैं।

वस्तु नं० ६१

डाबर नीबू का तेल

यह तेल रुचिवर्द्धक है। यह बी० पी० स्टैण्डर्डमें ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० १०

डाबर पीपरमेण्ट का तेल

यह तेल पेट में होनेवाले वायु के दर्द में उपकारी है। इसमें मैंथल कमसे कम ५० प्रतिशत मिलेगा। कुछ कम्पनियां मैंथल निकाला हुआ पीपरमेंट का तेल बेचती हैं, इसलिये ग्राहकगण सावधान रहें।

वस्तु नं० १

डाबर रेड़ी का तेल

यह तेल सफेद रंगका स्वच्छ और स्वादहीन है। यह मातदिल जुलाब का काम करता है। गर्भवती स्त्रियों और बच्चों के लिए भी यह निरापद है। बी० पी० स्टैण्डर्ड में भी यह तेल ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ६०

डाबर लौंग का तेल

यह तेल दांत दर्द के लिए उपकारी और वायुनाशक है। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ५७

डाबर सोंठ का तेल

यह तेल अग्निवर्द्धक और पाचक है।

वस्तु नं० ५८

डाबर सौंफ का तेल

यह तेल पेट को ठण्डा करता है और पाचनशक्ति को बढ़ाता है। यह बी० पी० स्टैण्डर्ड में भी ठीक उतरेगा।

वस्तु नं० ६२

डाबर सन्तरे का तेल

यह तेल भोजन के पदार्थों को सुगन्धित करता है। यह बी० पी० सी० स्टैण्डर्ड में ठीक उतरेगा।

घृत

ग्रन्थानुसार जहां जिस पशु के घृत का प्रयोग करना चाहिये कार्यालय के निर्मित घृतों में उन्हीं का प्रयोग किया गया है। विशुद्ध घृत से ही शास्त्रीय घृत निर्माण हो इसका विशेष ध्यान रखा जाता है।

वस्तु नं० ६५६ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अशोक घृत

यह घृत प्रदर रोगोंमें गुणदायक है।

वस्तु नं० ६५८ — वृहन्निघण्टु रत्नाकर

डाबर अश्वगंधा घृत

यह घृत पौष्टिक तथा धातुवर्द्धक है।

वस्तु नं० ६५७ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर पञ्चतिक्त घृत

यह घृत कुष्ठ तथा रक्तविकारमें उपयोगी है।

वस्तु नं० ५४५ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर फल कल्याण घृत

यह घृत सन्तान प्रदान करनेवाला है और वंध्या रोगोंको नाश करनेमें श्रेष्ठ है। इसके सेवनसे गर्भाशय पुष्ट होता है।

वस्तु नं० ५४३ — चरक संहिता

डाबर ब्राह्मी घृत

यह घृत उन्माद और मृगीको नाशकर मस्तिष्क को शीतल रखता है।

वस्तु नं० ५४४ — शार्ङ्गधर संहिता

डाबर महात्रिफला घृत

यह घृत नेत्रसम्बन्धी रोगोंमें फलदायक है।

वस्तु नं० ५४६ — कार्यालय का योग

डाबर श्लेष्मान्तक घृत

छातीमें कफ जम जानेपर इस घृतकी मालिशसे अच्छा फायदा होता है।

भस्म

यह जानकर आपको प्रसन्नता होगी कि आपके विश्वासी और लोकप्रिय डाबर कार्यालय ने हजारों रुपये खर्च करके भस्मों के निर्माण की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की है।

डाबर प्रयोगशाला में पहले मूल एवं खनिज द्रव्यों की परीक्षा की जाती है। परीक्षा में असली साबित होने पर शास्त्रीय विधि से उनका शोधन, मारण, अमृती करण संस्कार किया जाता है और शास्त्र विहित वस्तुओं की भावनाएं देकर भस्में तैयार की जाती हैं। तैयार हो जाने पर अनुभवी रसायनाचार्यों के द्वारा प्रयोगशाला में उनकी परीक्षा की जाती है। परीक्षा में श्रेष्ठ साबित होने पर ही वे बिक्री विभाग में दी जाती हैं।

वस्तु नं० १४३ — रसतरङ्गिणी

डाबर अभ्रक भस्म

इसके सेवन से श्वास, खांसी, क्षय, उरःक्षत, प्रमेह, प्रसूतिरोग और हर प्रकार की दुर्बलता दूर होती है। बल, वीर्य, बुद्धि और कान्ति वर्द्धक है।

वस्तु नं० १४४ — रसतरङ्गिणी

डाबर अभ्रक भस्म (शतपुटी)

एक सौ बार शक्तिवर्द्धक औषधियोंकी भावनाएं और पुट देकर यह भस्म बनायी गयी है, इसलिये यह साधारण से गुण में बहुत ही श्रेष्ठ है। बुढ़ापे की दुर्बलताको मिटाने और आयु को बढ़ाने के लिये यह उत्तम है।

वस्तु नं० १३१ — रसतरङ्गिणी

डाबर कांस्य भस्म

बढ़े हुए यकृत (लीवर) और प्लीहा (तिल्ली) की यह बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० १२५ — रसतरङ्गिणी

डाबर ताम्र भस्म

तिल्ली और लीवर का बढ़ना, पेट के रोग, परिणामशूल, श्वास, खांसी के लिये यह फायदेमन्द है।

वस्तु नं० १२९ — रसतरङ्गिणी

डाबर नाग भस्म

सब तरहके प्रमेह, कमजोरी, अधिक परिमाणमें और बार बार पेशाबका होना आदि मूत्र रोगोंके लिये विशेष फायदेमन्द है।

वस्तु नं० १३८ — रसराज सुन्दर

डाबर प्रवाल भस्म

हृदय और दिमागकी कमजोरी, रक्त-प्रदर, प्रमेह, ज्वर और रक्तपित्त के लिये यह बड़ी उत्तम औषध है।

वस्तु नं० १२६ — आरोग्य प्रकाश

डाबर वङ्ग भस्म (सोरक योगेन)

हर प्रकारके प्रमेह, धातु क्षीणता, स्वप्नदोष, पेशाबमें चीनी आना या जलन होना, रुक रुक कर पेशाबका होना या ज्यादा होना आदि मूत्र रोग तथा धातु सम्बन्धी रोगोंकी यह सुप्रसिद्ध दवा है।

वस्तु नं० ६५९ — रसतरङ्गिणी

डाबर वङ्ग भस्म (क्षार मारित)

धातुका पतलापन, शीघ्र पतन, स्वप्नदोष व पुराने सुजाकमें इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है। धातुको पुष्ट करने व बल-पौरुष बढ़ानेकी यह अच्छी दवा है।

वस्तु नं० १२८ आ० प्र०

डाबर वङ्ग भस्म (हरितालेन)

सभी तरहके प्रमेह और मूत्र रोगोंमें इससे बड़ा उपकार होता है। वीर्यको शुद्ध और पुष्ट करनेकी यह उत्तम औषध है।

वस्तु नं० १४० रसतरङ्गिणी

डाबर वराटक (कौड़ी) भस्म

मन्दाग्नि, परिणामशूल, पतली या आंव मिली हुई टट्टी होना आदि पेट सम्बन्धी रोगोंकी यह बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० १३५ रसतरङ्गिणी

डाबर मण्डूर भस्म

बढ़े हुए लीवर और तिल्लीके लिये यह आयुर्वेदकी प्रसिद्ध दवा है। इसके अलावा पीलिया, खूनकी कमी, बच्चोंके लीवरकी शिकायतमें यह बहुत अच्छा फायदा पहुंचाती है। हमारे यहां १०० वर्ष की पुरानी राजपूताने की मण्डूर प्रयोगमें लाई जाती है।

वस्तु नं० ५३७ कार्यालय पद्धति

डाबर मयूर पंख भस्म

हिचकी और श्वास की यह बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० १३६ रसतरङ्गिणी

डाबर मुक्ता (मोती) भस्म

दिल और दिमाग सम्बन्धी रोगोंके लिये यह बहुत ही अच्छी दवा है। इसके सेवनसे हृदय और दिमागकी कमजोरी दूर होती है। रक्त और बल बढ़ता है। श्वास, खांसी, क्षय, मन्दाग्नि और मोतीझरा बुखारमें यह विशेष फायदा पहुंचाती है।

वस्तु नं० १३७ रसतरङ्गिणी

डाबर मुक्ताशुक्ति (मोती सीप) भस्म

हृदय और मस्तिष्क सम्बन्धी तथा अन्य रोगोंमें यह मोती भस्म की तरह फायदा पहुंचाती है। जो लोग मोती भस्म नहीं खरीद सकते उनके लिये यह बड़ी उपयोगी है।

वस्तु नं० ५३८ कार्यालय पद्धति

डाबर मृगशृङ्ग भस्म

यह छाती और पसलीके दर्द की बड़ी मुफीद दवा है। निमोनिया में वैद्य लोग इसे बर्तते हैं और अच्छा फायदा होता है। इन्फ्लुएञ्जा, हृदय रोग, क्षय और कमजोरीके लिये भी फायदेमन्द है।

वस्तु नं० १३० रसतरङ्गिणी

डाबर यशद भस्म (हरिताल युक्त)

जीर्ण ज्वर, श्वास, खांसी आदि रोगोंमें फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६१२ रसतरङ्गिणी

डाबर यशद भस्म (पुष्पाञ्जन)

सुरमें की तरह इसे आंखोंमें लगाने से हर प्रकारके नेत्र रोग अच्छे होते हैं।

वस्तु नं० १२३ रसतरङ्गिणी

डाबर रौप्य (चांदी) भस्म

इसके सेवनसे ज्ञान तन्तु पुष्ट होते हैं और बल, वीर्य, कान्ति, शक्ति बढ़ती है। ब्लडप्रेसरकी बीमारीमें बहुत इससे अच्छा लाभ होता है।

वस्तु नं० १२४ रसतरङ्गिणी

डाबर रौप्य माक्षिक भस्म

रौप्य भस्मके अभावमें इसका प्रयोग होता है। रौप्य भस्मके सभी गुण इसमें पाये जाते हैं। कमजोरी मिटाने तथा स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी रोगोंकी यह उत्तम औषध है।

वस्तु नं० १३३ रसतरङ्गिणी

डाबर लौह भस्म (बनस्पति योग)

खून बढ़ानेकी यह प्रसिद्ध दवा है। इसके सेवनसे शरीरमें तेजी के साथ खून बढ़ता है। बल, वीर्य, आयु और चेहरेकी कान्ति बढ़ती है। यह बनस्पति योगसे बनी है, इसलिये कब्ज नहीं करती।

डाबर द्राक्षासव। (Regd.)

(रक्तवर्द्धक और स्फूर्तिदायक)

आयुर्वेद विज्ञानमें बल और वीर्य बढ़ानेवाली जितनी वस्तुएं हैं उनमें द्राक्षा (मुनक्का) का एक विशेष स्थान है। इसे अमृतरसा, शतवीर्य्या, दीर्घफला, फलोत्तमा आदि अपूर्व नामोंसे सम्बोधित किया गया है। यहांतक कि इसे यक्ष्माको नाश करनेके कारण "यक्ष्मघ्नी" भी कहा गया है। वीर्य, रक्त, ओज और बल बढ़ानेके साथ ही साथ श्वांस, खांसी, ज्वर, क्षय, मूर्च्छा, हृदय व्यथा आदि दोषोंको दूर करनेमें यह अतुलनीय है। इसीलिये द्राक्षासे ही द्राक्षासव या द्राक्षारिष्ट बनानेका विधान आयुर्वेद शास्त्रमें वर्णित है।

यों तो द्राक्षासे निर्मित कहे जानेवाले कईएक तरहके आसव मिलते हैं; किन्तु पूर्ण शास्त्रोक्त पद्धतिसे तैयार किया हुआ द्राक्षासव प्रायः नहीं मिलता; किन्तु

डाबर द्राक्षासव—अन्य द्राक्षासवोंकी अपेक्षा कई गुना अधिक अच्छी क्वालिटीके द्राक्षा (मुनक्का) से तैयार किये जानेके कारण-गुणोंमें अप्रतिद्वन्दी है।

गुण—

इसके सेवनसे—

(१) दिल, दिमाग व शरीरमें अपूर्व ताकत पैदा होती है, इसलिये यह पौष्टिक है। (२) कब्जियत दूर होती है (३) रुचि और भूख बढ़ती है। (४) नसें पुष्ट होती हैं। (५) रक्तकी वृद्धि होती है। (६) चित्त प्रफुल्लित होता है। (७) वीर्य बढ़ता है। (८) कान्ति और ओज बढ़ता है अर्थात् चेहरा चमकने लगता है। (९) थकावट, सुस्ती और शिथिलता मिटती है। (१०) स्फूर्ति, तेजी और उत्साहकी वृद्धि होती है। (११) खांसी जुकाम, क्षय, फेफड़ोंकी कमजोरी तथा हृदयकी शिथिलता दूर होती है, इत्यादि।

रोगके कारण—

(क) **कब्जियत**—अफीमका सेवन, यकृतकी खराबी, बराबर बैठ कर काम करना, मिथ्या आहार-विहार इत्यादिसे प्रायः कब्जियत होती है। (ख) **कमजोरी**—व्ययामका अभाव, गर्म वस्तुओंके अत्यधिक सेवन तथा स्त्री-प्रसंग एवं वीर्य-क्षय, मन्दाग्नि, ज्यादा दिमागी काम, अधिक चिन्ता, पौष्टिक भोजनके अभाव इत्यादिके कारण मनुष्य कमजोर हो जाता है (ग) **खांसी और यक्ष्मा**—(क) कान, स्वरयंत्र, कंठनाली, छाती, फुसफुस आदि अंगोंमें विकार होना सर्दी तथा जुकाम आदि खांसीके कारण है। (ख) पुष्टिकर आहार पर्याप्त मात्रामें न मिलना, शारीरिक व मानसिक कार्य शक्तिसे अधिक करना,

विषम आहार-विहार, अतिशय संभोग, अल्पायुमें वीर्य निकालनेकी आदत और [illegible] उपवास, अत्यधिक मादक द्रव्य एवं बीड़ी तथा सिगरेट पीने आदिसे यक्ष्माके आक्रमणका भय रहता है। ऊपर लिखे लक्षणोंसे आक्रान्त होने पर रोगी कमजोर, सुस्त तथा निस्तेज हो जाता है। इन अवस्थाओंमें—**डाबर द्राक्षासव** अपूर्व गुण दिखलाता है।

रोगीके लक्षण—

धड़कन, निद्राभंग, टट्टी साफ न होना, सिरमें प्रायः दर्द बना रहना, पेट फूला रहना, दिलमें धड़कन, काममें मन न लगना, मन्द ज्वर, सूखी खांसी, शरीरका भारी रहना, अंगोंका टूटना, थोड़े परिश्रमसे थकावट, प्रतिदिन शरीरका क्षीण होना, वजनमें कमी और कान्ति हीन इत्यादि लक्षण शिथिल, निस्तेज, रक्त और वीर्यहीन व्यक्तियोंमें पाये जाते हैं। इन अवस्थाओंमें **डाबर द्राक्षासव** गजबका काम करता है।

विशेषता—

डाबर द्राक्षासव पूर्ण शास्त्रोक्त पद्धतिसे विशुद्ध उपादानों द्वारा अनुभवी विशेषज्ञोंकी देख-रेखमें तैयार किया जाता है। कार्यालयमें **डाबर द्राक्षासव** वाष्पयंत्र द्वारा भी तैयार किया जाता है। विवरण आगे देखिये।

वस्तु नं० ५९८ व ५९८ (क) — योग चिन्तामणि

डाबर द्राक्षासव (वाष्पयंत्र द्वारा) (Regd.)

(बलकारक वाजीकरण रसायन)

ऊपर लिखे मुताबिक वाष्पयंत्र द्वारा निर्मित **डाबर द्राक्षासव** भी अपने गुणोंके लिये तुलनामें सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है।

विशेष गुण—

इसके सेवनसे—

(१) श्वांस, खांसी और क्षयमें आश्चर्यजनक लाभ होता है।
(२) प्रसवके बाद होनेवाले रोगोंमें यह अपूर्व काम करता है।
(३) कमजोरी, अनिद्रा और स्नायविक शिथिलता (नसोंकी कमजोरी) दूर होती है।
(४) भूखकी कमी और अरुचि मिटती है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।
(५) फेफड़ों तथा छातीको ताकत मिलती है।
(६) पुरुषत्व हीनतामें परम बलकी प्राप्ति होती है। इसलिये यह अनुपम वाजीकरण रसायन है।

विशेषता—

(१) भारतवर्षमें **डाबर द्राक्षासव** (वाष्पयंत्र द्वारा) अपनी कोटिकी पहली चीज है। हालां कि यह आयुर्वेदके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ योग-चिन्तामणिके आधार पर तैयार किया जाता है किन्तु सर्वसाधारणके लाभके लिये इस अपूर्व औषधिको निर्माण करनेका श्रेय डाबर कार्यालयको ही है। यह कार्यालयके निजी स्पिरिट रसायनशाला (Bonded Laboratory) बंगाल सरकारको ओरसे नियुक्त आबकारी विभागके आफिसरकी देख-रेखमें निर्माण किया जाता है।
(२) **डाबर द्राक्षासव**—केशर तथा कस्तूरी मिश्रित है।
(३) यह देखनेमें पारदर्शी (Transperent) है।

वस्तु नं० १३४ रसतरङ्गिणी

डाबर लौह भस्म (हिंगुल योग)

यह असली और उत्तम हिंगुल योगसे बनी है। खूनकी कमी, पाण्डु, कामला, उदर विकार, लीवर और तिल्ली का बढ़ना आदि रोग मिटते हैं। खून और बलवीर्य बढ़ानेमें श्रेष्ठ है।

वस्तु नं० ६११ रसतरङ्गिणी

डाबर लौह भस्म (मनः शिलायोग)

यह मंदाग्निको दूर कर भूख बढ़ाती है रक्तहीन शरीरमें नया रक्त पैदा कर उसे तगड़ा और तन्दुरुस्त बनाती है। नसों की कमजोरी को दूर कर स्तम्भन शक्ति बढ़ानेमें श्रेष्ठ है। वात व्याधि, पीलिया, सूजनमें भी इससे विशेष उपकार होता है।

वस्तु नं० १३९ रसतरङ्गिणी

डाबर शङ्ख भस्म

पेट सम्बन्धी रोगोंकी यह सुप्रसिद्ध दवा है। इससे पेटका दर्द, पेट फूलना या पेटमें भारीपन रहना, पतली या आंवकी टट्टी होना, संग्रहणी आदि बीमारियां अच्छी होती हैं।

वस्तु नं० १२१ रसतरङ्गिणी

डाबर स्वर्ण भस्म

दिमाग सम्बन्धी रोगोंमें निश्चितरूप से फायदा पहुंचानेके लिये आयुर्वेद की यह सबसे श्रेष्ठ और अच्छी दवा है। इसके सेवन से स्मरणशक्ति की कमी, अनिद्रा, दिमाग दोष से उत्पन्न भ्रम, इन्द्रियोंकी शिथिलता आदि शिकायतें मिटती हैं। राजयक्ष्मा, खांसी, प्रमेह, बुढ़ापेकी कमजोरीमें इससे बड़ा उपकार होता है।

वस्तु नं० १२२ रसतरङ्गिणी

डाबर स्वर्ण माक्षिक भस्म

यह शारीरिक दुर्बलता, प्रमेह, हृदयकी धड़कन, गर्भाशयके रोगों के लिये बड़ी अच्छी दवा है। इसमें स्वर्ण भस्मके भी गुण मौजूद हैं—जो लोग स्वर्ण भस्म न खरीद सकते हों उन्हें इससे लाभ उठाना चाहिये।

वस्तु नं० १२७ रसतरङ्गिणी

डाबर स्वर्ण वङ्ग

इसके सेवनसे पुराना सुजाक तथा मूत्र सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं। शरीरमें बल, वीर्य और कान्ति की वृद्धि होती है।

वस्तु नं० १४१ रसतरङ्गिणी

डाबर हरिताल (गोदन्ती) भस्म

सब प्रकारके ज्वर, कुष्ठ और रक्त विकारोंके लिये यह उत्तम दवा है।

वस्तु नं० १४२ रसतरङ्गिणी

डाबर हरिताल पत्राक्ष (तबकी) भस्म

यह भस्म सब भस्मोंसे उग्रवीर्य है। सब प्रकारके कुष्ठ, खूनकी खराबी, वात, रक्त, श्वास, खांसी, ज्वर और वात व्याधिमें उपयोगी है।

पिष्टि

वस्तु नं० ५४० कार्यालय प्रक्रिया

डाबर प्रवाल पिष्टि

इसके सेवनसे हृदय रोग, रक्तपित्त, दिमागकी कमजोरी, प्रमेह, खांसी और दुर्बलता दूर होती है।

वस्तु नं० ५४१ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर मुक्ता पिष्टि

यह मस्तिष्क और फेफड़ेके रोगोंकी प्रधान दवा है। इसके सेवनसे जीर्ण ज्वर, पित्त सम्बन्धी रोग, क्षय, निर्बलता, श्वास और खांसी ठीक होकर शरीर पुष्ट होता है।

वस्तु नं० ५४२ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर मुक्ताशुक्ति पिष्टि

इसके सेवनसे हृदय तथा मस्तिष्कको बल प्राप्त होता है। श्वास, कास और दुर्बलता दूर होती है।
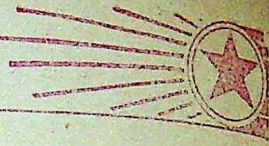
रस रसायन

जिस औषधमें पारदका योग होता है उसे रस या रसायन कहते हैं। आयुर्वेदकी रासायनिक औषधियाँ थोड़ी मात्रामें ही जल्दी और ज्यादा फायदा पहुंचाती हैं। इनके स्वादमें भी किसी प्रकार की अरुचि नहीं होती। रस वे ही उत्तम माने गये हैं जो सर्वाङ्ग पूर्ण हों अर्थात् जिस रासायनिक औषधमें जिन मूल-द्रव्य व भस्मोंके देनेका शास्त्रीय आदेश हो वे ही दिये गये हों। डाबर कार्यालयमें सभी रस सर्वाङ्ग पूर्ण बनाये जाते हैं।

वस्तु नं० ४४२ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अग्निकुमार रस

इसके सेवनसे मन्दाग्नि (भूख का मारा जाना), अजीर्णसे पतली टट्टी होना, पेट दर्द, पेटका फूलना आदि शिकायतें दूर होती हैं। यह जठरकी मन्द हुई अग्निको जगा कर तेज भूख लगाता है।

वस्तु नं० ४४३ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अजीर्णकण्टक रस

इसके सेवनसे खाये हुए पदार्थका हजम न होना, भूख की कमी और सब तरह की पेट की बीमारियां ठीक होती हैं। अजीर्ण की यह बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ४४४ — योगचिन्तामणि

डाबर अश्वकंचुकी रस

इसे घोड़ाचोली रस भी कहते हैं। यह ज्वरकी पहली हालतमें जुलाबके लिये दिया जाता है। इससे पेट साफ होकर ज्वरका वेग कम हो जाता है। पेटके सभी प्रकारके रोग—वायुगोला, लीवर—तिल्लीका बढ़ना, कब्जियत, पेटका फूलना या दर्द करना, बुखार और वातव्याधि आदि अनेक रोग अनुपान भेद से अच्छे हो जाते हैं।

वस्तु नं० ४४५ — रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर आनन्द भैरव रस

सर्दी जुकामका ज्वर व सन्निपात, आमवात, बुखारकी हालतमें दस्त होना या पतले दस्त होना आदि की बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ६६० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर अग्निसंदीपन रस

अजीर्ण, मन्दाग्नि, मुंहसे लार बहना, भूख न लगना आदिमें उपयोगी है।

वस्तु नं० ६६१ — योगरत्नाकर

डाबर अगस्ती सूतराज

संग्रहणी, अतिसार, आमाशय व पक्वाशयके दोषोंमें फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४४६ — रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर इच्छाभेदी रस

आयुर्वेदीय दवाओंमें यह तेज जुलाब है, जिसका कोठा बहुत सख्त हो या जिसे अन्य जुलाबोंसे पेटकी अच्छी तरह से सफाई न होती हो, उसके लिये यह फायदेमन्द है। सूजन, शूल, कब्ज, पक्षाघात (लकवा) आदि रोगोंकी हालतमें इस जुलाब का प्रयोग किया जाता है।

वस्तु नं० ५६१ — आ० संग्रह

डाबर उदरामय सर्वाङ्ग सुन्दर रस

पतली टट्टी होना, अन्नका न पचना, ग्रहणीके विकार आदि रोग नष्ट होते हैं। इससे भूख खुलती है और पाचन क्रिया ठीक होती है।

वस्तु नं० ४४७ — रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर कनक सुन्दर रस

इसके सेवनसे ग्रहणीके दोष, अग्निका मन्द होना, बुखार और
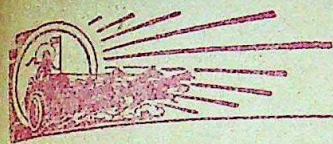
अतिसार (पतले दस्त होना), मरोड़के साथ आंव गिरना आदि रोग अच्छे होते हैं। दुर्बल स्त्रियों और बच्चोंको इसे न देना चाहिये।

वस्तु नं० ६६२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कल्याण सुन्दर रस

हृदय रोग, हृदयकी धड़कन, जी मिचलाना आदिमें लाभदायक है।

वस्तु नं० ६६३ रस-रत्न-समुच्चय

डाबर कुष्ठकुठार रस

सब प्रकारके चर्मरोग और कुष्ठ रोगकी मशहूर दवा है।

वस्तु नं० ४४८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कफकेतु रस

यह कफ, श्वास और खांसीकी प्रसिद्ध दवा है। कफ ज्वर, सर्दी और शिर रोगके लिये भी फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४७१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कस्तूरी भैरव रस (वृहत्)

सन्निपातकी यह प्रसिद्ध दवा है। सर्दी जुकाम, खांसीमें अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ४७२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कस्तूरी भैरव रस (स्वल्प)

सन्निपात और ज्वरमें फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४७३ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कर्पूर रस (अहिफेन संयुक्त)

ज्वरातिसार (ज्वरकी हालतमें पतले दस्त होना), अतिसार (पतले दस्त होना), रक्तातिसार (खूनके दस्त होना) और हर तरहके ग्रहणी दोष दूर होते हैं।

वस्तु नं० ४५१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर कुमार कल्याण रस (स्वर्णयुक्त)

इससे बच्चोंके अनेक प्रकारके रोग अच्छे होते हैं। ज्वर, श्वास, खांसी, उल्टी, दूधका न पचना, अरुचि, अग्निमान्द होना, शरीरमें खूनकी कमी आदि बाल रोगोंके लिये बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ४५० भैषज्य-रत्नावली

डाबर कृमिमुद्गर रस

छोटे बच्चोंके पेट में अक्सर कृमि (कीड़े) हो जाते हैं, जिससे बच्चों को कई प्रकारकी तकलीफें हो जाती हैं, इस दवा के सेवन से कृमि बिलकुल नष्ट हो जाते हैं और कृमि से उत्पन्न समस्त शिकायतें मिट जाती हैं।

वस्तु नं० ५६२ रसेन्द्रसार-संग्रह

डाबर कृष्णचतुर्मुख रस

यह स्वर्ण भस्म के योग से बना है, इसलिये मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों के लिये बड़ा उपयोगी है। इसके सेवन से मियादी बुखार ज्वर का वेग बढ़ना, अच्छी तरह से नींद न आना आदि रोग मिटते हैं। बल और आयु बढ़ाने के लिये भी उत्तम है। अनुपान भेद से यह अनेक रोगों में फायदा पहुंचाता है।

वस्तु नं० ४४९ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर क्रव्याद रस

इसके सेवन से अजीर्ण भूख न लगना, खाया हुआ अन्न ठीक से हजम न होना, पतली या कड़ी टट्टी होना, गुल्म, प्लीहा, ग्रहणी दोष आदि पेट के समस्त रोग अच्छे होते हैं।

वस्तु नं० ४५२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर गर्भविलास रस

यह दवा गर्भवती के पेट दर्द, कब्जियत, ज्वर और अजीर्ण में अच्छा फायदा पहुंचाती है।

वस्तु नं० ६६४ रसचण्डांशु

डाबर गर्भपाल रस

जिन स्त्रियों का अक्सर गर्भपात हो जाया करता है, उनके लिये यह सबसे अच्छी दवा है। इसके सेवन से गर्भपात (हमल गिरना) का भय नहीं रहता। गर्भ की रक्षा करने और गर्भाशयकी समस्त शिकायतोंको दूर करने की यह श्रेष्ठ दवा है।

वस्तु नं० ५५७ — बृ० रसराज सुन्दर

डाबर गन्धक रसायन

इसके सेवन से कुष्ठ, दाद, खाज, खुजली, फोड़ा-फुन्सी आदि समस्त चर्म रोग आराम होते हैं। यह पेट की बीमारियों को ठीक करने और बल, वीर्य बढ़ाने में भी श्रेष्ठ है।

वस्तु नं० ४५४ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर गुल्म कालानल रस

इसके प्रयोग से सब प्रकार के गुल्म और खासकर वायुगोले की बीमारी अच्छी होती है।

वस्तु नं० ४५५ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर ग्रहणी कपाट रस

यह ग्रहणी दोष, अतिसार (पतले दस्त), पाण्डु (पीलिया), सूजन और ज्वर में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४५३ — रसयोगसागर

डाबर गङ्गाधर रस

इसके सेवन से अतिसार (पतले दस्त), संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि रोग अच्छे होते हैं। पतले और ज्यादा दस्तों की शिकायत को दूर करने में यह लाभदायक है।

वस्तु नं० ४५६ — भारत भैषज्य-रत्नाकर

डाबर चन्द्रकला रस

यह हाथ, पैर और आंखों की जलन मिटाने तथा बाहरी और भीतरी शारीरिक दाह को दूर करने की बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ५३३ — कार्यालय का योग

डाबर चौंसठ प्रहरी पिप्पली

यह ६४ प्रहर तक लगातार घोटी जाती है। शास्त्रानुसार इस क्रिया से यह पुराने ज्वर, श्वास, खांसी और दमा की बीमारी के लिये श्रेष्ठ औषध हो जाती है। जो लोग स्वर्ण बसन्त माल्ती नहीं खरीद सकते उन्हें इस महौषध से अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

वस्तु नं० ६६५ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर चन्द्रामृत रस

सब तरह की खांसी, जीर्ण ज्वर, फुफ्फुस के रोग, बुखार आदि में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६६६ — रसायन संग्रह

डाबर चन्द्रशेखर रस

स्त्री, बच्चे और कोमल प्रकृतिके पुरुषों के ज्वर, खांसी, जुकाम, कमजोरी आदिकी उत्तम दवा है।

वस्तु नं० ४५७ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर जयमङ्गल रस

इसमें स्वर्ण भस्म पड़ा है। इसके सेवन से ज्यादा दिनों का पुराना ज्वर, विषम ज्वर, धातुगत (हड्डियों में बसा हुआ) ज्वर आदि सब प्रकार के ज्वर अच्छे होते हैं।

वस्तु नं० ६६७ — योगरत्नाकर

डाबर जलोदरारि रस

जलोदर, पेट फूलना, यकृत बढ़ना आदि पेट सम्बन्धी रोगों में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६६८ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर ज्वरारिअभ्र रस

जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, अग्निमांद्य आदि में उपयोगी है।

वस्तु नं० ४५८ — भारत भैषज्य-रत्नाकर

डाबर त्रिभुवनकीर्त्ति रस

यह सब तरह के बुखार तथा सन्निपात, सर्दी जुकाम, खांसी आदि की उत्तम औषध है।

वस्तु नं० ४५९ — र० सा० सं०

डाबर त्रैलोक्य चिन्तामणि रस

यह औषध हीरा भस्म, स्वर्ण भस्म आदि बहुमूल्य द्रव्यों के योग से बनी है। इसके सेवन से वायु सम्बन्धी रोग, विषम ज्वर,

वस्तु नं० ४२, ४२ (क)

अबलारी। (Regd.)

(स्त्री रोग की दवा)

ऋतु, प्रदर व गर्भ के दोषों को मिटाने की बहुपरीक्षित दवा।

गुण—(१) **अबलारी** के सेवन से दुर्बल या दूषित गर्भाशय पुष्ट व शुद्ध होता है।

(२) गर्भस्थानके दोषोंको दूर करने में यह दवा आश्चर्यजनक काम करती है।

(३) मासिक धर्म व ऋतुके विकारोंको दूर करनेमें **अबलारी** अपूर्व गुण दिखलाती है।

(४) सब तरहके प्रदर दोष मिटा कर स्त्रियों की शक्ति, कान्ति और सौन्दर्य बढ़ाने में **अबलारी** अनुपमेय है।

रोग के कारण—

कब्जियत, गर्म वस्तुओं के अत्यधिक सेवन, पुरुष सहवास की अधिकता, गर्भाशय की विकृति, अजीर्ण, गर्भावस्था में अत्यधिक परिश्रम, रक्त की कमी इत्यादि दोषों के परिणामस्वरूप स्त्रियों को ऋतु, प्रदर और गर्भश्राव आदि रोगों का शिकार होना पड़ता है।

रोगी के लक्षण—

(१) ऋतु विकारमें—

(क) कम व अधिक दिनोंमें महीना होना। (ख) खून पतला या जमा हुआ, कम या अधिक दर्द के साथ जाना। (ग) खून का रंग विकृत होना। (घ) सिर, कमर, पेड़ और जांघ में दर्द का होना। (ङ) अरुचि और जी का मिचलाना इत्यादि लक्षण ऋतु दोष से पीड़ित स्त्रियों में पाये जाते हैं।

(२) प्रदर विकार में—

(क) लाल, काला या सफेद पानी सा जाना। (ख) चिकना और दुर्गन्धयुक्त श्राव होना। (ग) श्राव अनियमित तथा अधिक होना। (घ) शरीर का अत्यधिक दुर्बल और कान्तिहीन हो जाना। (ङ) स्फूर्ति का अभाव और काम करने की अनिच्छा का होना। (च) सर में प्रायः दर्द बना रहना। (छ) आंखों के सामने एकाएक अन्धकार छा जाना। (ज) रोग के अत्यधिक बढ़ जाने पर बीच बीच में सर में चक्कर आ जाना। (झ) कब्जियत और अनपच इत्यादि लक्षण प्रदर विकार से कृशित स्त्रियों में पाये जाते हैं।

(३) गर्भ दोष में—

(क) गर्भाशय के शिथिल पड़ जाने पर असमय में रक्त श्राव होना। (ख) अकाल में गर्भ नष्ट हो जाना। (ग) गर्भाशय के शिथिल हो जाने के कारण गर्भ का न ठहरना इत्यादि लक्षण गर्भ दोष में पाये जाते हैं।

विशेषता— आज तक असंख्य भारतीय महिलाओं ने **अबलारी** के सेवन से नवजीवन प्राप्त किया है। इसी लिये यह कहा जाता है कि **अबलारी** बहुपरीक्षित दवा है। **अबलारी** कई एक परीक्षित आयुर्वेदिक एवं प्रसिद्ध बहुमूल्य रसायनिक द्रव्योंके संयोग से बनी है। भारतीय औषधिक्षेत्र में स्त्री रोगों को दूर करने वाली दवाओं में **अबलारी** सर्व प्रथम स्थान रखती है यह सिद्ध हो चुका है।

वस्तु नं० १२, १२ (क) व ९२

पुदीन-हरा। (Regd.)

(अर्क पुदीना)

गुण— अजीर्ण, वायु, पेट फूलना, पेट में दर्द होना, जी-मिचलाना, खट्टी डकार, भूखकी कमी, पतले दस्त, वमन तथा अरुचि आदि रोगों में **पुदीन-हरा** के सेवन से शीघ्र उपकार होता है।

रोग के कारण—विरुद्ध भोजन, दिन में सोना एवं रात में जागना, अधिक मात्रा में गरिष्ठ भोजन करना आदि कारणों से अजीर्ण सम्बन्धी रोग होते हैं।

रोगी का लक्षण— अजीर्ण के परिणामस्वरूप शरीर भारी मालूम पड़ना, खट्टी डकार आना, पेट फूलना, दस्त ठीक न होना, गले में जलन, पेट में दर्द, जी मिचलाना इत्यादि व्याधियों से रोगी कष्ट पाता है।

विशेषता— (१) **पुदीन-हरा** हानि रहित होने के कारण बच्चों के अजीर्ण व दूध की उल्टी आदि में निःसंकोच दिया जाता है।

प्रत्येक गृहस्थ और यात्री के लिये **पुदीन-हरा** नित्य प्रयोग की एक आवश्यक औषधि है।
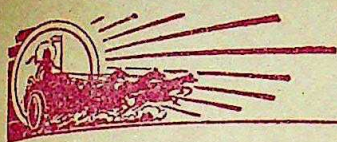
अन्नका न पचना, जलोदर, कमजोरी, मुख रोग आदि अनेक रोग अच्छे होते हैं। यह सर्व रोगनाशक और बलवर्द्धक है।

वस्तु नं० ६६९ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर तारकेश्वर रस

यह मूत्रकृच्छ्र (रुक रुक कर जलन और कड़क के साथ पेशाब का होना) आदि सब प्रकारके मूत्र रोग और प्रमेह के लिये बड़ा उपकारी है।

वस्तु नं० ६७० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर तालकेश्वर रस

यह कुष्ठ या रक्तविकार और चर्म रोग में उपयोगी है।

वस्तु नं० ५६३ — रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर नागार्जुनाभ्र रस

यह हृदय रोग की बड़ी अच्छी दवा है। इसके सेवन से सब प्रकार के शूल, जी मिचलाना, उल्टी होना, क्षय और रक्त-पित्त आदि में अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ४६१ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर नित्यानन्द रस

यह औषध श्लीपद (फीलपांव) के रोग में अच्छा फायदा पहुंचाती है।

वस्तु नं० ६७१ — रस चण्डांशु

डाबर नाराच रस

इसके सेवन से दस्त होकर कब्जियत और गुल्म की बीमारी अच्छी होती है।

वस्तु नं० ६७२ — कार्यालय योग

डाबर नष्टपुष्पान्तक रस

जिन स्त्रियों के मासिक स्राव नहीं होता या जिन्हें कष्ट से व घट बढ़ कर मासिक धर्म होता है, उनके लिये यह बहुत उपकारी है। यह रज को शुद्ध और निर्दोष करने में भी श्रेष्ठ है।

वस्तु नं० ६७३ — रसायन संग्रह

डाबर नारसिंह रस

यह श्वास, खांसी और क्षय के लिये परमोपयोगी है।

वस्तु नं० ४६० — भैषज्य-रत्नावली

डाबर नृपतिवल्लभ रस

यह हर प्रकार के पेट सम्बन्धी रोगों की उत्तम औषध है। अन्न का न पचना, भूख न लगना, पतली तथा आंव की टट्टी होना आदि समस्त शिकायतें मिटती हैं।

वस्तु नं० ४६२ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर पीयूषवल्ली रस

इससे आंव-पेचिश, शूल, पुरानी संग्रहणी, आम शूल, आफरा आदि पेट सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं।

वस्तु नं० ५६४ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर पुनर्नवा मण्डूर

यह पाण्डु (पीलिया), सूजन, पेट का फूलना, पेट में दर्द होना, बवासीर, पेट में केंचुवे पड़ना और वायुगोला में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६७४ — रसेन्द्र मंगल

डाबर पञ्चामृत रस

ज्वर, खांसी, दुर्बलता तथा अनुपान भेद से अनेक रोगों की उत्तम दवा है।

वस्तु नं० ६७५ — भैषज्य-रत्नावली

डाबर प्रताप लंकेश्वर रस

सन्निपात ज्वर, दान्ती लगना, धनुर्वात, खांसी और सर्दी-जुकाम के लिये बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ६७६ — रसायन संग्रह

डाबर पाशुपतास्त्र रस

सब प्रकार के ज्वरों की अचूक औषध है। इसमें संखिये का मिश्रण है।

वस्तु नं० ६७७ योग रत्नाकर

डाबर प्रवाल पंचामृत रस

यह अम्लपित, पेट फूलना, पेटदर्द, गुल्म और पेट की दाह, अजीर्णादि की श्रेष्ठ और प्रसिद्ध दवा है।

वस्तु नं० ६७८ रसदीपिका

डाबर प्राणेश्वर रस

अतिसार (पतले दस्त होना), संग्रहणी, टट्टी के साथ आंव का जाना तथा पेट सम्बन्धी समस्त रोगों के लिये फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ११९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर बृहत् पूर्णचन्द्र रस

यह सब प्रकारके वीर्य-विकारों की प्रसिद्ध औषध व बाजीकरण रसायन है।

वस्तु नं० ११८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर वसन्तमालती रस (स्वर्णयुक्त)

इसके सेवन से पुराना बुखार, धातुगत (हड्डियों में बसा हुआ) ज्वर, प्रसूति ज्वर, खांसी, दमा, राजयक्ष्मा, वीर्य विकार, भूख की कमी, दुर्बलता आदि रोग अच्छे होते हैं। बल, पौरुष और कान्ति बढ़ाने में श्रेष्ठ है। बुढ़ापे की तथा साधारण कमजोरी को मिटाने के लिये जाड़े में इसका सेवन करना बहुत ही उत्तम है।

वस्तु नं० ५५९ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर बसन्त कुसुमाकर रस

यह सोना भस्म, मोती भस्म, कस्तूरी आदि बहुमूल्य और शक्तिवर्द्धक द्रव्योंके योग से पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से तैयार किया जाता है। इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह, मधुमेह (डायबिटीज) पेशाब में चीनी जाना, नपुंसकता, मूत्र सम्बन्धी समस्त रोग अच्छे होते हैं। बल, वीर्य्य, स्मरणशक्ति बढ़ाने में सर्वश्रेष्ठ है।

वस्तु नं० ६७९ वैद्य चिन्तामणि

डाबर वातगजांकुश रस

पक्षाघात (लकवा), हाथ पैर या देह का अकड़जाना आदि वात रोगों की उत्तम और प्रसिद्ध औषध है।

वस्तु नं० ५६७ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर विरेचन सर्वाङ्गसुन्दर रस

जयपाल और मीठे विष का योग होने के कारण यह एक तेज जुलाब है। इससे शख्त कोठेवालों को भी दस्त हो जाते हैं। यह रोगी, कमजोर और गर्भवती स्त्री तथा बच्चोंको न देना चाहिये।

वस्तु नं० ६८० रसचण्डांशु

डाबर विद्याधराभ्र रस

यह पेट दर्द और हर तरह के शूल की उत्तम दवा है।

वस्तु नं० ६८१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर बालरोगान्तक रस

बच्चों के पेट में कीड़े होना, अपच, अरुचि, उल्टी, टट्टी, दांत उठने की तकलीफें, ज्वर, सर्दी जुकाम आदि सब तरह के बाल रोगों की बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ५६५ भैषज्य-रत्नावली

डाबर वृहद् वातचिन्तामणि रस

यह उत्तम स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, रस सिन्दूर आदि बहुमूल्य तथा दिल और दिमाग की शक्ति बढ़ानेवाली वस्तुओं के योगसे बना है। इस महारसायनके सेवन से दिमाग सम्बन्धी रोग— हिस्टीरिया, मूर्च्छा, प्रलाप, भ्रम, उन्माद, अनिद्रा आदि रोग अच्छे होते हैं। हृदय की धड़कन, आफरा और अजीर्ण के लिये बहुत ही उपकारी है।

वस्तु नं० ६८२ रसचण्डांशु

डाबर बड़वानल रस

अजीर्ण, अग्निमान्द्य, गुल्म आदि उदर रोगों की यह अच्छी और मशहूर दवा है।

वस्तु नं० ६८३ भैषज्य-रत्नावली

डाबर वेताल रस

सन्निपात ज्वर, श्वास, खांसी, सर्दीका बुखार आदिमें उपकारी है।

वस्तु नं० ५६६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर वृहद् वंगेश्वर रस

यह सब प्रकार के वीर्य तथा मूत्र सम्बन्धी रोगों की मशहूर दवा है। हर तरह के प्रमेह, शीघ्रपतन, वीर्य्य का पतलापन, स्वप्नदोष, पुराना सुजाक और सूत्रकृच्छ, रुक-रुक कर तथा जलन और कड़क के साथ पेशाब का होना, पेशाब में चीनी जाना आदि रोग अच्छे होते हैं। यह वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट बनाकर पुरुषत्व शक्ति प्रदान करता है।

वस्तु नं० ६८४ योग रत्नाकर

डाबर बोलपर्पटी

मुंह से और टट्टी या पेशाब के मार्ग से खून जाना रक्त पित्त, रक्त प्रदर की यह उत्तम और प्रसिद्ध दवा है, अजीर्ण और मन्दाग्नि में इससे बड़ा लाभ होता है।

वस्तु नं० १४९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मृत्युञ्जय रस

यह सब प्रकारके ज्वर, सन्निपात, गले की सूजन और सर्दी में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४६४ शार्ङ्गधर संहिता

डाबर महाज्वरांकुश रस

यह सर्दी का बुखार, विषम ज्वर (पारी का बुखार) आदि में उपयोगी है।

वस्तु नं० ४६३ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मृगाङ्क रस

यह राजयक्ष्मा (तपेदिक) की प्रसिद्ध औषध है। इससे सब प्रकार के ज्वर, खांसी, हाथ, पैर के तलुवों की जलन, उरःक्षत आदि रोग अच्छे होते हैं।

वस्तु नं० ६८५ रसेन्द्र चिन्तामणि

डाबर महामृत्युञ्जय रस

इसमें मोती और सोना भस्म का मिश्रण है। यह सब प्रकारके बुखार और अनुपान भेद से अनेक रोगोंमें फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४७५ भैषज्य-रत्नावली

डाबर योगेन्द्र रस

इसके सेवन से सब प्रकार के वात रोग, वात पित्त रोग तथा प्रमेह, बहुमूत्र, सूत्राघात आदि पेशाब सम्बन्धी रोग आराम होते हैं। मूर्च्छा, उन्माद आदि ज्ञान तन्तुओं के रोग अच्छे होकर मानसिक और शारीरिक दुर्बलता दूर होती है।

वस्तु नं० ४६९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर रस माणिक्य

यह रस, कुष्ठ, वातके घाव, गर्मी के फोड़े फुन्सी और सब तरह के खून की खराबी में फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ४६८ रसचण्डांशु

डाबर रस माणिक्य

यह क्षय, कमजोरी, मन्दाग्नि के लिये फायदेमन्द है। इससे काम शक्ति भी बढ़ती है।

वस्तु नं० ६०६ रसतरङ्गिणी

डाबर रसपुष्प (सुधानिधि रस)

गर्मी, सुजाक, पेशाब की नली में घाव होना, बदन में चकत्ते होना आदि के लिये उपयोगी है। इसके सेवन से दस्त साफ होकर पेट के विकार मिटते हैं।

वस्तु नं० ४७० रसतरङ्गिणी

डाबर रस कर्पूर

उपदंश (गर्मी) के लिये यह प्रसिद्ध और श्रेष्ठ दवा है।

वस्तु नं० ५६९ कार्यालय का योग

डाबर रस पीपरी

यह सब प्रकार के बाल रोगों की प्रसिद्ध दवा है। बच्चों के ज्वर, खांसी, सर्दी, उल्टी, टट्टी, दांत उठने की शिकायतें, अपच अरुचि—अजीर्ण आदि की उत्तम दवा है। बच्चों के लिये यह माता की तरह उपकारी है।

वस्तु नं० ४७६ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर रामबाण रस

इसके सेवन से अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अतिसार, अरुचि, आमवात

आदि रोग अच्छे होते हैं। यह अग्नि को प्रदीप्त कर मल को बांधता है।

वस्तु नं० ६८६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर रसराज रस

यह सब प्रकार के वात रोगों की और मस्तिष्क की कमजोरी की श्रेष्ठ दवा है।

वस्तु नं० ४७७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर लक्ष्मीबिलास रस

यह सर्दी जुकाम—खांसी, नवीन ज्वर, गले की सूजन की उत्तम दवा है, बल, वीर्य और स्तम्भन शक्ति को बढ़ाती है।

वस्तु नं० ४६५ शार्ङ्गधर-संहिता

डाबर लोकनाथ रस (वृहत्)

यह ज्वर, क्षय तथा यकृत् (लीवर) की उपयोगी दवा है।

वस्तु नं० ६८७ योग रत्नाकर

डाबर लघुमालिनी बसन्त

जीर्ण ज्वर, धातुगत (हड्डियों में बसा हुआ) ज्वर और खांसी तथा मन्दाग्नि में फायदेमन्द है। जो लोग स्वर्ण बसन्तमालती नहीं खरीद सकते उनके लिये उपयोगी है।

वस्तु नं० ६८८ योग रत्नाकर

डाबर लीलाबिलास रस

अम्लपित्त, गले और छाती की जलन, खट्टी डकारें आना, हाथ पैर के तलवों की जलन आदि बीमारियों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है।

वस्तु नं० ४७८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर शोथकालानल रस

यह शोथ (सूजन) की मशहूर दवा है। इससे शरीर के किसी एक अंग की तथा समूचे शरीर की सूजन मिटती है। खूनकी कमी, लीवर, तिल्ली, अग्निमान्द्य शूल और ज्वर के लिये भी उपकारी है।

वस्तु नं० ६८९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर सोमनाथ रस

यह स्त्रियों के सोम रोग, प्रदर और उससे उत्पन्न रोगों की श्रेष्ठ दवा है।

वस्तु नं० ६९० भैषज्य-रत्नावली

डाबर सूतिका विनोद रस

यह प्रसवके बाद होनेवाले रोगोंकी अच्छी और मशहूर दवा है।

वस्तु नं० ६९५ रसचण्डांशु

डाबर समीरपन्नग रस

इससे सब तरहके वात रोग अच्छे होते हैं। शीताङ्ग—हाथ पैर के ठण्डे हो जाने पर विशेष उपकार होता है, यह छूटी हुई नाड़ीको स्थिर और बलप्रदान करता है।

वस्तु नं० ५६८ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर सिद्धप्राणेश्वर रस

यह ज्वरातिसार (बुखार में पतली टट्टी होना), बारम्बार पतले दस्त होना, पेटमें दर्द तथा वायुका होना आदि रोगोंकी बड़ी अच्छी दवा है। पेटमें पैदा व इकट्ठा हुए आंवको पचानेमें बहुत ही लाभदायक है।

वस्तु नं० ६९६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर शृङ्गाराभ्र रस

यह बाजीकरण और बलवीर्यवर्द्धक उत्तम रसायन है।

वस्तु नं० ६९१ योग रत्नाकर

डाबर स्मृतिसागर रस

यह मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, अपस्मार, याददास्तकी कमीके लिये उत्तम औषध है।

वस्तु नं० ६९२ रसेन्द्र चिन्तामणि

डाबर सन्निपात भैरव रस

यह सन्निपात ज्वरकी प्रसिद्ध और उत्तम औषध है।

वस्तु नं० ७६ व १०२
अलोका । (Regd.)
(सुगन्धित आदर्श तरल महावर)
अलोका का शृङ्गार सामग्रियों में एक विशिष्ट स्थान है
अतः यह गृह लक्ष्मियों के विशेष
आदर की वस्तु है ।
Aloka
अलोका
सुगन्धित तरल
महावर
डाबर
(डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन)
कलकत्ता
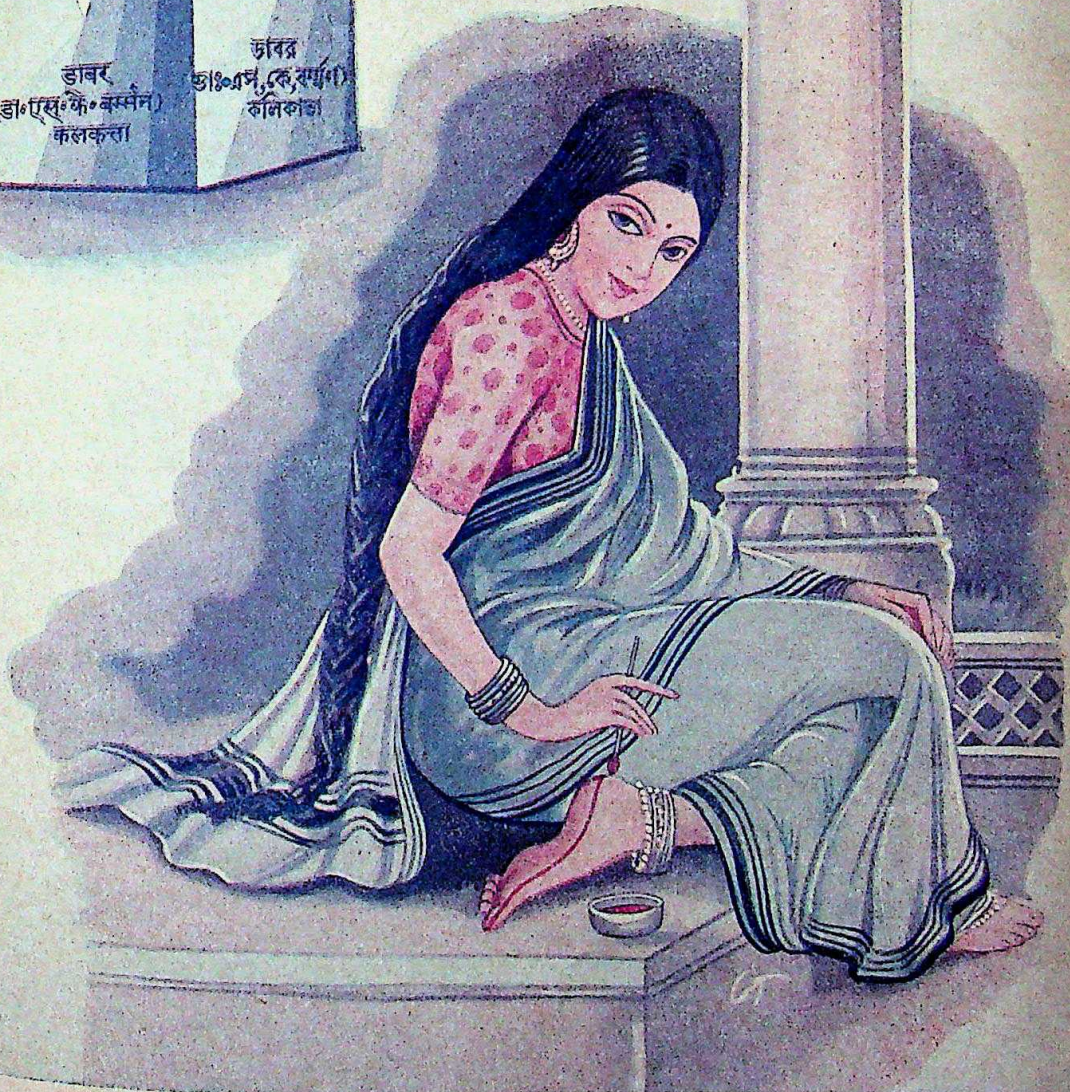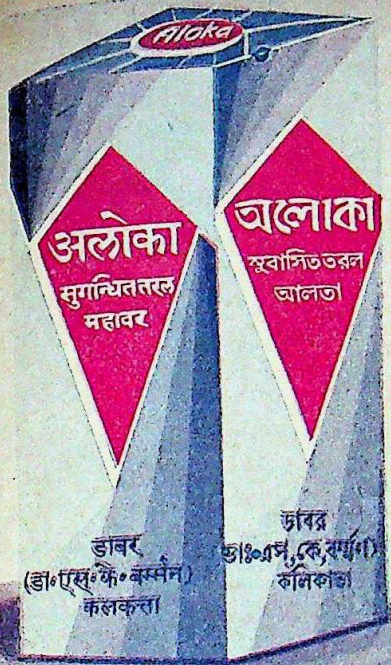
वस्तु नं० ६९३ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर सोमनाथ रस (वृहत्)

यह स्त्रियोंके सोम रोग और प्रमेह तथा मूत्र रोगोंकी उत्तम और प्रसिद्ध दवा है।

वस्तु नं० ६९४ रसायन पद्धति

डाबर सूतिका भरण रस

यह सब प्रकारके प्रसूत रोगोंकी बड़ी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ४६७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर स्वच्छन्द भैरव रस

यह सन्निपात और शीतज्वरमें अच्छा लाभ पहुंचाता है।

वस्तु नं० ४६६ भैषज्य-रत्नावली

डाबर श्वासकुठार रस

यह श्वास और खांसीकी बड़ी प्रसिद्ध औषध है।

वस्तु नं० ६९७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर श्वासचिन्तामणि रस

यह स्वर्ण घटित रस श्वास और खांसीके लिये बहुत ही फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ६९८ कार्यालय का योग

डाबर शुक्रवल्लभ रस

इसके सेवनसे सब प्रकारके वीर्य विकार अच्छे होते हैं। वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट करनेमें श्रेष्ठ है। शीघ्रपतन और स्वप्नदोष में इससे बड़ा लाभ होता है।

वस्तु नं० ६९९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर शिरःशूलादि वज्र रस

यह सब प्रकारके नये व पुराने शिर दर्दमें फायदेमन्द है।

वस्तु नं० ७०० भैषज्य-रत्नावली

डाबर हेमनाथ रस (स्वर्णयुक्त)

इससे स्त्रियोंका सोमरोग और गर्भाशय सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं।

लौह

आयुर्वेद में लौह अनेक औषधियों के साथ दिया जाता है। लौह आयुर्वेद का सर्वश्रेष्ठ रक्तवर्द्धक रसायन है, अन्य औषधियों के साथ मिश्रण करने से उन औषधियों के गुणों की वृद्धि करता है तथा उनके गुण चिरकालतक—कष्ठौषधि—होने पर भी नष्ट नहीं होने देता।

वस्तु नं० ५५० भैषज्य-रत्नावली

डाबर अम्लपित्तान्तक लौह

इसके व्यवहारसे गले में, छाती में तथा पेट में जलन होना, खट्टी डकार आना, खाये पिये की उल्टी होना और पित्त गिरना आदि विकार ठीक होते हैं।

वस्तु नं० ५५१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर चन्दनादि लौह

यह विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वर की अव्यर्थ शास्त्रोक्त दवा है। इसके सेवन से साधारण हल्का अस्थिगत बुखार, हाथ पैर तथा आंखों में जलन आदि दोष ठीक होते हैं। इसका पित्तप्रधान रोगों में प्रायः उपयोग किया जाता है।

वस्तु नं० ५४७ आयुर्वेद संग्रह

डाबर नवायस लौह

यह पाण्डु रोग तथा रक्ताल्पता और यकृत् विकारकी प्रधान दवा है। इसके सेवन से खून की कमी चेहरे का पीला पड़जाना, हृदय रोग, दुर्बलता, मन्दाग्नि और लीवर की खराबी दूर होती है। इसके साथ मकरध्वज मिलाकर सेवन करने से रोग के बादकी कमजोरी दूर होकर शरीर पुष्ट होता है और खून की वृद्धि होती है।

वस्तु नं० ५४८ वृहद्रसराज सुन्दर

डाबर प्रदरान्तक लौह

इसके सेवन से लाल, सफेद, पीला और नीला प्रदर रोग ठीक
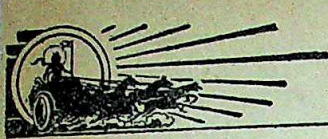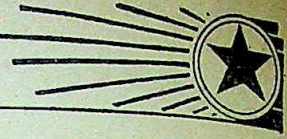
होकर आयु, बल और वर्ण की वृद्धि होती है। योनिशूल और सूत्रकृच्छ्र में भी गुणकारी है।

वस्तु नं० ५५२ भैषज्य-रत्नावली

डाबर पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह

यह स्वर्णघटित योग है। इसके सेवन करने से विषम ज्वर (मलेरिया) ठीक होता है और रक्ताणुओं की वृद्धि होती है।

वस्तु नं० ५४९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर सर्वज्वरहर लौह

इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर, लीवर और तिल्ली के विकार ठीक होते हैं।

कूपीपक्व रस

निम्नलिखित कूपीपक्व रस शास्त्रोक्त विधि से पूर्ण शुद्ध पारद तथा गन्धक के द्वारा निर्माण किये जाते हैं। रस सिन्दूर को छोड़ कर शेष सब स्वर्ण के योग से बनाये जाते हैं। समगुण जारित समान भाग गन्धक द्वारा तथा षड्गुण जारित छ गुनी गन्धक द्वारा जारण किये जाते हैं। समगुण जारित से षड्गुण जारित उग्रवीर्य तथा विशेष गुणकारी होते हैं। इनका सेवन सर्दी के मौसिम में विशेष लाभकारी है। इनके अनुपान भेद से सेवन करने से विविध रोग दूर होते हैं। ये रसायन होने के कारण धातु की दुर्बलता, धातु का पतलापन, स्वप्नदोष बीमारी के बाद की कमजोरी, शीताङ्ग, सन्निपात, नाड़ी की क्षीणता, हृदय कांपना, अजीर्ण, अम्लपित्त, खांसी, दमा आदि को ठीक कर बल, वीर्य और पौरुष की वृद्धि करते हैं।

वस्तु नं० ५८४ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर पूर्णचन्द्रोदय (षड्गुण जारित)

वस्तु नं० ५८५ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर पूर्णचन्द्रोदय (समगुण जारित)

वस्तु नं० ५८६ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर पूर्ण मकरध्वज (षड्गुण जारित)

वस्तु नं० ५८७ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर पूर्ण मकरध्वज (समगुण जारित)

वस्तु नं० ८६ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर मकरध्वज

वस्तु नं० ५९० भैषज्य-रत्नावली

डाबर रस सिन्दूर (षड्गुण जारित)

वस्तु नं० ५९१ भैषज्य-रत्नावली

डाबर रस सिन्दूर (समगुण जारित)

वस्तु नं० ५८८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर स्वर्ण सिन्दूर (षड्गुण जारित)

वस्तु नं० ५८९ भैषज्य-रत्नावली

डाबर स्वर्ण सिन्दूर (समगुण जारित)

निम्नलिखित अन्य कूपीपक्व रस जिस द्रव्य के योग से निर्माण किये जाते हैं वे उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा उन्हीं के अनुरूप गुणवाले होते हैं।
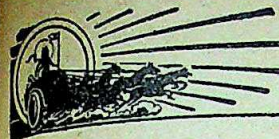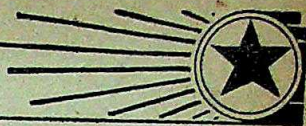
वस्तु नं० ५९५ — कार्यालय प्रक्रिया

डावर ताल सिन्दूर

इसके सेवन से कुष्ठ वातव्याधि, वातरक्त, श्वास और खांसी में लाभ होता है।

वस्तु नं० ५९२ — कार्यालय प्रक्रिया

डावर ताम्र सिन्दूर

इसके सेवन से श्वास, खांसी और विषम ज्वर में अच्छा फायदा होता है।

वस्तु नं० ५९४ — कार्यालय प्रक्रिया

डावर नाग सिन्दूर

इसके व्यवहारसे प्रमेह तथा प्रदर और धातु क्षीणता दूर होती है।

वस्तु नं० ५९६ — कार्यालय प्रक्रिया

डावर मल्ल सिन्दूर

यह संखिये के योग से निर्मित वात रोग नाशक, उग्रवीर्य बलवर्द्धक रसायन है। सन्निपात, ग्रहणी, मन्दाग्नि, श्वास और खांसी में अच्छा लाभकारी है।

वस्तु नं० ५९३ — कार्यालय प्रक्रिया

डावर रजत सिन्दूर

यह दिमाग तथा ज्ञान तन्तुओं को पुष्ट करने और ब्लडप्रेसर की अच्छी दवा है।

पर्पटी

पर्पटी कल्प सब कल्पों में श्रेष्ठ है। प्रायः रोग आंतों की खराबी से होते हैं और पर्पटी का खास प्रभाव आंतों को परिष्कार और पुष्ट करना है। पर्पटी रसायन है इसलिये इसमें समस्त रोगों को दूर करने की शक्ति है। योग्य चिकित्सक की देखभाल में प्रयोग करना उचित है।

वस्तु नं ५८३ — रसेन्द्रसार संग्रह

डावर पञ्चामृत पर्पटी

इसके सेवनसे संग्रहणी, मन्दाग्नि, अरुचि तथा चिरकालीन अतिसार आदि रोग ठीक होकर उदरकी अग्नि दीप्त तथा स्थिर होती है। पुरानी संग्रहणी जिसमें आंव तथा खून गिरता हो लीवर तथा तिल्ली बढ़ी हुई हो और ज्वर भी होता हो उसमें अच्छा लाभ करती है। यह वृष्य औषधियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

वस्तु नं० ५८० — रसेन्द्रसार संग्रह

डावर रस पर्पटी

इसके सेवनसे आंतोंमें शोथ तथा शूल होना, अतिसार, संग्रहणी पुराने आंव और वायुगोला आदि रोग नष्ट होते हैं। यह अग्नि को दीप्त कर भूख लगाती है। पक्वाशयका शोधन कर आंतों में सञ्चित दूषित मलको पाचन कर निकालनेमें तथा आंतोंको बल प्रदान करनेमें विशेष उपयोगी है। पित्त प्रकृतिवालेको इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

वस्तु नं० ५८२ — भैषज्य-रत्नावली

डावर लौह पर्पटी

इसके सेवनसे संग्रहणी, पतली टट्टी होना और आमशूल आदि नष्ट होते हैं। लौह पर्पटीसे पाण्डु प्रधान संग्रहणीमें विशेष लाभ होता है। रक्तकणोंको बढ़ानेकी इसमें अपूर्व शक्ति है। प्रसव के बाद हुई कमजोरी तथा रक्ताल्पताकी श्रेष्ठ दवा है।

वस्तु नं० ५८१ — रसेन्द्रसार संग्रह

डावर स्वर्ण पर्पटी

इसके सेवनसे सब प्रकारकी संग्रहणी दूर होकर शरीर स्वर्णके समान हो जाता है। यह वृष्य है तथा सम्पूर्ण ज्वरोंमें विशेषकर धातुगत ज्वरमें अच्छा लाभ करती है। आंतोंके क्षय रोगमें होनेवाले पतले दस्त, आन्त्रिक ज्वर और शोथ (सूजन) में विशेष उपयोगी है।

द्राव

वस्तु नं० ५७९ आयुर्वेद संग्रह

डाबर महाद्राव

यह लीवर, तिल्ली, अग्निमान्द्य और अजीर्णकी उग्र दवा है। जल साथ देनी चाहिये।

वस्तु नं० ५७८ भैषज्य-रत्नावली

डाबर शङ्ख द्राव

यह लीवर तथा तिल्लीको गलानेकी शास्त्रोक्त दवा है। उग्र होनेके कारण बच्चे तथा कोमल प्रकृतिवालोंको नहीं देनी चाहिये। जल मिलाकर व्यवहार करना चाहिये।

वाष्पयन्त्र द्वारा निर्मित आसव

वस्तु नं० ५९७ भैषज्य-रत्नावली

डाबर मृत सञ्जीवनी (वाष्पयन्त्र द्वारा)

यह सन्निपात ज्वर, शरीरमें सर्द आजाना (शीताङ्ग), हैजा संग्रहणी, अग्निमांद्य, नाड़ीका क्षीण होना, कमजोरी और भूख न लगना आदि की सर्वोत्तम दवा है। जीवन शक्ति वर्द्धक हृदय को बल पहुंचानेवाली और पुरुषत्व हीनताकी अच्छी दवा है।

वस्तु नं० ५९८ योगचिन्तामणि

डाबर द्राक्षासव (वाष्पयन्त्र द्वारा)

यह केशर तथा कस्तूरी मिश्रित है। श्वास, खांसी, क्षय, प्रसव के बाद होनेवाले रोग, कमजोरी, भूखकी कमी, कब्जियत, अनिद्रा और स्नायविक शिथिलताको दूर करनेकी परमोत्तम औषधि है। इससे फेफड़ों तथा छातीको ताकत मिलती है। पुरुषत्व हीनतामें परम बलकारक वाजीकरण रसायन है।

अञ्जन तथा वर्त्ती

वस्तु नं० १०७ कार्यालय का योग

मियामी (ममीरे का सुरमा)

'मियामी' भीमसेनी कपूर, ममीरा आदि नेत्रोपकारी वस्तुओं से बनता है।

इससे रतौंधी, आंखों के सामने अन्धेरा छा जाना, आंखों से पानी बहना, रात में कम दिखाई देना आदि नेत्र-सम्बन्धी रोगों में फायदा होता है। प्रतिदिन आंखों में आंजन से आंखें साफ रहती हैं।

वस्तु नं० ५६० शार्ङ्गधर संहिता

डाबर चन्द्रोदयावर्त्ती

आंखों में जाला या फूला पड़ना, आंखों का लाल रहना और रतौन्धी आदि नेत्र रोगों में लाभकारी है।

मूल द्रव्य

मूलद्रव्य उन चीजों को कहते हैं जो औषधि निर्माण में प्रयोग किये जाते हैं। असली मूलद्रव्यों का सहज में मिलना कठिन है। नकली होने के कारण उनसे निश्चित रूप से ठोस फायदा नहीं होता। सर्वसाधारण को असली मूलद्रव्य के पहचानने में बड़ी कठिनाई होती है। मूलद्रव्य आदि विश्वासी जगह से खरीदे जायं तो धोखा न होगा। अतः डाबर कार्यालय ने असली मूलद्रव्य व औषध वस्तुओं का संग्रह कर इस कठिनाई को कई अंशों में हल किया है।

वस्तु नं ३८, ९१

रिंग-रिंग । (Regd.)

(दाद का मरहम)
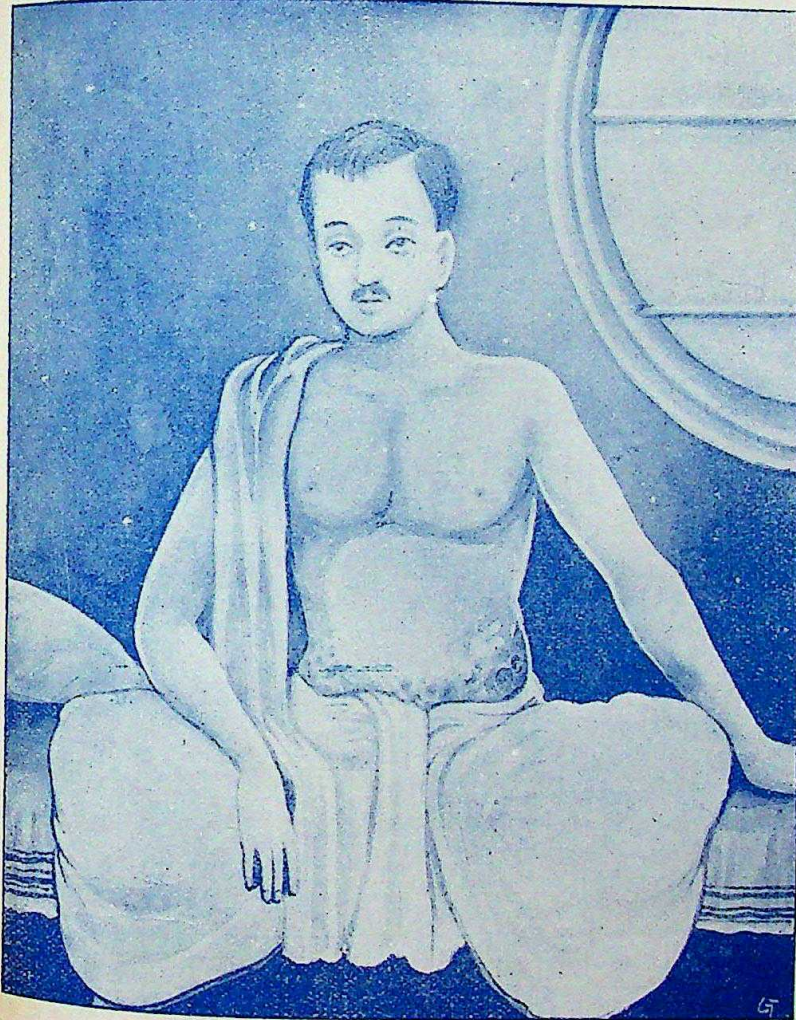
गुण— रिंग-रिंग किसी भी तरहके नये या पुराने दाद या खाज के लिये रामबाण है। इसके कुछ समय तक लगातार व्यवहार से पुराना दाद भी जड़ से नष्ट हो जाता है। इस मरहम के लगाते ही खुजली बन्द हो कर आधा रोग मिट जाता है और कुछ दिनों तक लगातार लगाने पर दाद एक दम अच्छा हो जाता है।

रोग के कारण— गन्दगीके कारण एक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु त्वचा के भीतर पैदा हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप खुजली आरंभ होती है और दाद का रूप प्रकट होता है। अंगों की सफाई और वस्त्रों की स्वच्छता का ध्यान न रखने पर यह रोग तुरन्त ही आक्रमण कर देता है। गर्मी के दिनों में दूषित पसीने के कारण यह रोग अधिकतर होता है। दाद रोग से क्लेशित मनुष्य के कपड़ों को पहिनने या बिछौने पर सोने से इस रोग के होने का भय रहता है। लगातार काफी अर्से तक भीगा कपड़ा पहिने रहने से भी यह रोग होता है।

रोगी के लक्षण— दाद मनुष्य को परेशान व लज्जित करने वाला रोग है। दादमें खुजली आरम्भ होने पर मनुष्य को सुध-बुध नहीं रहती और वह किसी भी समय या स्थान में खुजलाना आरंभ कर देता है और तब तक खुजलाता रहता है

जब तक उसमें जलन पैदा नहीं होती। इस प्रकार खुजलनेसे क्षणिक आराम तो मिलता है किन्तु तुरत ही बड़ी जलन पैदा होती है और वह आराम बेचैनी के रूप में परिणत हो जाता है। समय पर उचित उपचार न करने से दाद पुराना हो जाता है जिससे दूषित अंगों में चकत्ते या काले दाग पड़ जाते हैं और चमड़ा मोटा और विकृत हो जाता है।

विशेषता—(१) **रिंग-रिंग** में चर्बी इत्यादि दूषित या आपत्तिजनक पदार्थ नहीं हैं।

(२) **रिंग-रिंग** के लगाते ही ठंडक पड़ जाती है और बहुत सी दाद की दवाओं की तरह इसके लगाने पर जलन नहीं होती।

वस्तु नं० ४१ व ९८

हील-एक मरहम। (Regd.)

(कटे, जले, चोट आदि पर लगाने का मरहम)

गुण— विज्ञान एवं चिकित्सा शास्त्र की वर्षों की लगातार खोज का ही यह फल है कि इस अपूर्व मरहम का आविष्कार हुआ है। इसके व्यवहार से—

(१) दुर्घटना जनित घाव, वेदना, वात, मोच, गांठ (गिल्टी), आगसे जलने का घाव इत्यादि व्याधियों में उपकार होता है।

(२) विषैले जीव जैसे चूहा, बिल्ली, मकड़ी, बर्रें, बिच्छू इत्यादि द्वारा काटे हुए स्थान पर **हील-एक मरहम** लगाने से तुरत ठंडक पड़ जाती और आराम मिलता है।

(३) फुटबाल, क्रिकेट, कबड्डी इत्यादि के खेलाड़ी, कसरत करनेवाले और कल-कारखाने में काम करनेवालों को आकस्मिक चोट व मोच लग जाया करती है। इस प्रकार चोट लगे हुए स्थान पर **हील-एक मरहम** के प्रयोग से विशेष उपकार होता है।

(४) शरीर की मांस पेशियों में दर्द होनेपर तथा झांई, मुहांसे, हाथ पैर का रूखापन या कट जाना इत्यादि शिकायतों को दूर करने में **हील-एक मरहम** अच्छा काम करता है।

विशेषता—(१) **हील-एक मरहम** में किसी प्रकार का दूषित एवं उत्तेजक पदार्थ किंवा जानवर की चर्बी नहीं है।

(२) यह सुगन्धित है और लगाने से कपड़े पर दाग नहीं पड़ता।

(३) इसके लगाने से लगाये हुए स्थानमें ठंडक पड़ जाती है और जलन या छरछराहट नहीं मालूम होती।

(४) **हील-एक मरहम** सर्वसाधारण के नित्य प्रयोग की वस्तु है।

वस्तु नं० १०९ रसतरङ्गिणी

डाबर शिलाजीत (शोधित)

धातुपुष्टि और मूत्र रोगोंकी मशहूर दवा—यह असली लौह शिलाजीत है। प्रमेह, धातु और मूत्र रोगोंके लिये बड़ी फायदेमन्द है। इससे काम और बाजीकरण शक्ति बढ़ती है।

वस्तु नं० ६०३ रसतरङ्गिणी

डाबर गन्धक शोधित

वस्तु नं० ६०४ रसतरङ्गिणी

डाबर सौवीराञ्जन (सुरमा) शोधित

वस्तु नं० ६०५ वृहद् रसराज सुन्दर

डाबर वङ्ग शोधित

वस्तु नं० ६०७ रसेन्द्रसार संग्रह

डाबर पारद हिंगुलोत्थ शोधित

वस्तु नं० १०८ कार्यालय प्रक्रिया

डाबर शुद्ध मधु

हमारे यहां असली और स्वाद तथा रंग रूप में श्रेष्ठ मधु विश्वसनीय स्थानोंसे संग्रह कर बेचा जाता है। यह आयुर्वेदीय दवाओंका प्रधान अनुपान है।

वस्तु नं० ७७

गुलाबारी (असली गुलाब जल)

यह आंखके लिये बड़ा ही उत्तम और व्यवहारके लिये बाजारू गुलाब जलोंसे कहीं तेज सुगन्धवाला है।

कतिपय रोग और उनकी औषधियाँ।

पेटके रोग और उनकी औषधियाँ—

हैजा (*Cholera*)—'काफू' (असल अर्क कपूर), डाबर अर्क कपूर नं० २, डाबर संजीवनी बटी

अतिसार (*Diarrhœa*)— 'पुदीन-हरा', डाबर अर्क पुदीना नं० २, डाबर लवङ्गादि बटी

पेचिस व मरोड़के दस्त—डाबर क्लोरोडिन, डाबर कुटजारिष्ट

कब्जियत (*Constipation*)—जुलाबिन, डाबर रेंड़ीका तेल, डाबर त्रिफला चूर्ण, डाबर इच्छाभेदी रस, डाबर विरेचन सर्वाङ्ग सुन्दर रस

अजीर्ण तथा मन्दाग्नि (*Dyspepsia*)—अजीरीना, डाबर भास्करलवण चूर्ण, डाबर अजवायन अर्क, डाबर अग्निमुख चूर्ण, डाबर धन्वन्तरि लवण, डाबर हिंग्वाष्टक चूर्ण, डाबर द्राक्षासव, डाबर द्राक्षारिष्ट

संग्रहणी (*Sprue*)—अजीरीना, डाबर रसपर्पटी, डाबर लौहपर्पटी, डाबर स्वर्णपर्पटी, डाबर पञ्चामृत पर्पटी, डाबर गङ्गाधर चूर्ण

तिल्ली और जिगर (*Liver and Spleen Diseases*) लेभिना, जूड़ीताप, डाबर नवायस लौह, डाबर शङ्खद्राव, डाबर कुमार्यासव, डाबर मण्डूर भस्म, डाबर अभया लवण, डाबर लौहासव, डाबर रोहितकारिष्ट

अर्श बवासीर (*Piles*)—सेनी लाइन, अबिन, डाबर अभयादि मोदक, डाबर कुटजावलेह

कृमि (*Worm*)—कृमिहन, डाबर कृमिमुद्गर रस

ज्वर (बुखार) (*Fever*)—

जूड़ी बुखार (मैलेरिया) ताप तिल्लीकी दवा—

जड़ी-ताप, डाबर अमृतारिष्ट, डाबर महाज्वरांकुश रस, डाबर लक्ष्मीविलास रस

पुराना मैलेरिया बुखार—पुराने मैलेरिया बुखारकी गोली

इनफ्लुएञ्जा (*Influenza*)—डाबर इनफ्लुएञ्जा टेबलेट, डाबर युकलिप्टस आयल

जीर्ण ज्वर—डाबर बसन्तमालती रस, डाबर चतुषष्ठी प्रहरी पिप्पली, डाबर मृत्युञ्जय रस, डाबर जय-मङ्गल रस

खांसी (*Cough*)—'कफ-कफ', डाबर च्यवनप्राश अवलेह, डाबर वासावलेह, डाबर तालीसादि चूर्ण, डाबर सितोपलादि चूर्ण, डाबर खदिर बटी

श्वास (*Asthma*)—दब-दमा, डाबर श्वासकुठार रस, डाबर कनकासव, डाबर श्वासचिन्तामणि रस, डाबर अभ्रक भस्म

मूत्र सम्बन्धी रोग—

गर्मी (*Syphilis*)—सिफलो, डाबर रस कर्पूर

सुजाक (*Gonorrœa*)—'गन-कर', 'गन-गन', डाबर चन्द्रप्रभा वटी, डाबर चन्दनका तेल, डाबर चन्दनासव

बहुमूत्र—डाबर बसन्त कुसुमाकर रस, डाबर वृहत् वङ्गेश्वर

पेशाब बन्द होना—यूरा, डाबर वज्रक्षार

धातु दौर्बल्य (*Debility*)—पुष्टीना, डाबर वृहत् पूर्णचन्द्र रस, डाबर कामदेव चूर्ण, डाबर अश्वगन्धादि चूर्ण

स्वप्न दोष—स्वप्नहरी

नपुंसकता—डाबर तिला, डाबर श्रीगोपाल तैल, डाबर मकरध्वज बटी

घाव—घारिन मरहम (घावका मरहम), घारिन टेवलेट, कीट-हन, डाबर सर्वगुण तैल

स्त्रीरोग (*Female Diseases*)—

प्रदर (*Leucorrhoea*)—अबलारी, डाबर पुष्यानुग चूर्ण, डाबर प्रदरान्तक लौह, डाबर अशोकारिष्ट

ऋतु दोष (*Irregular Menstruation*)—अवलारी, डाबर अशोकारिष्ट, डाबर लोध्रासव, डाबर रक्तोत्पलारिष्ट

सूतिका रोग (*Puerperal Diseases*)—डाबर सूतिकाविनोद रस, डाबर सूतिकाभरण रस, डाबर सौभाग्य शुण्ठीपाक, डाबर दशमूलारिष्ट

ऋतु अवरोध (मासिक धर्म ठीकसे न होना)—डाबर रजःप्रवर्त्तनी बटी

वन्ध्यत्व—डाबर फलकल्याण घृत

मिरगी, हिष्टीरिया (*Hysteria*)—डाबर कृष्णचतुर्मुख रस, डाबर अश्वगंधारिष्ट

बाल-रोग (*Children Diseases*)—लाल-शर, डाबर रसपीपरी, डाबर कुमार कल्याण रस, डाबर बालरोगान्तक रस, डाबर मण्डूर भस्म

चर्म-रोग (*Skin Diseases*)—रिंग-रिंग (दादका मरहम), खुजलीना गोली (खुजलीमें खानेकी दवा), खुजलीना तेल, हील-एक मरहम (कटे, जले, आदि पर), डाबर गन्धक शोधित, डाबर मरिचादि तेल, डाबर महामञ्जिष्ठाद्यरिष्ट, डाबर सारिवाद्यरिष्ट, डाबर रसमाणिक्य, डाबर गन्धक रसायन

वात-व्याधि (*Rheumatism & Nervous Diseases*)—डाबर वृहत् वात चिन्तामणि, डाबर अश्वगंधारिष्ट, डाबर महानारायण तैल, डाबर महाविषगर्भ तैल, डाबर योगराज-गुग्गुल, डाबर एरण्ड पाक

दर्द (*Pain*)—दरदीना, मारूबास, सरबाईना

नेत्ररोग (*Eye Diseases*)—आईनोला, गुलाबारी, मियामी, डाबर चन्द्रोदयावर्ती

कर्ण रोग (*Ear Diseases*)—कान-पिप, दर-कान, डाबर रसोन तैल

दन्तरोग (*Teeth Diseases*)—दर-दांत, दन्त-मुक्ता, पायरिया क्योर

रक्त दोष—डाबर आइओडाइज्ड साल्सा, डाबर महामञ्जिष्ठाद्यरिष्ट, डाबर गंधक रसायन, डाबर सारिवाद्यरिष्ट, डाबर गंधक शोधित

दौर्बल्यता—कोलारिया (कोला-टानिक), रोनोविन, डाबर द्राक्षसव, डाबर च्यवनप्राश अवलेह, डाबर ब्राह्मी रसायन, डाबर मकरध्वज

वस्तु नं० ५ और १५०

काफू । (Regd.)

असल अर्क कपूर –हैजा (विशूचिका), गर्मी के दस्त, पेट का दर्द व अजीर्ण आदि को रोकने व अच्छा करने को भारतीय दवा
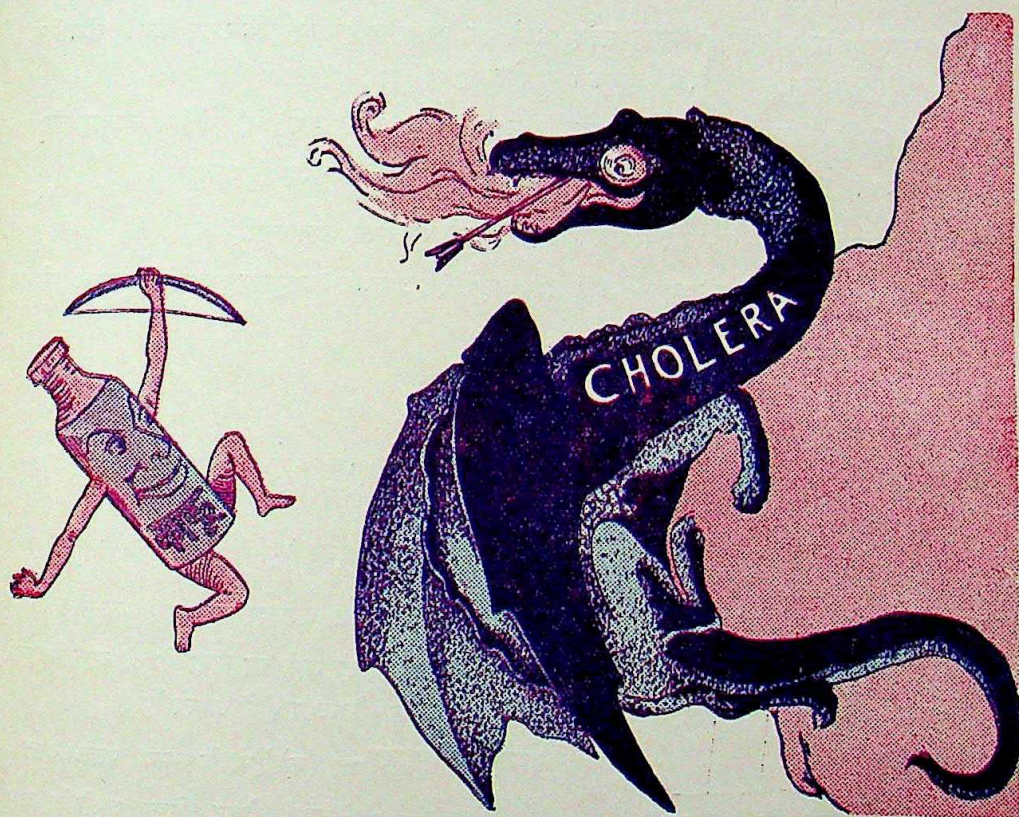
गुण— डाक्टर एस० के० बर्म्मन ही इस अपूर्व दवा के प्रथम आविष्कारक हैं। हैजा, दस्त, वमन, पेटका दर्द, अजीर्ण इत्यादि रोगोंमें **काफू** अपूर्व गुण दिखलाता है। इसके द्वारा अबतक असंख्य प्राणियों को प्राणदान मिला है। ९० प्रतिशत रोगी **काफू** से पूर्ण लाभ उठा चुके हैं।

रोगके कारण— अनियमित भोजन, गर्म से शीत तथा शीत से गर्म प्रदेश में आना, दूषित स्थान में रहना, दूषित जल पीना, मदिरा पान, बार बार तीव्र जुलाब व जहां हैजा फैला हो वहां रहने से हैजे के आक्रमण का भय रहता है।

रोगी के लक्षण— हैजेका आक्रमण दस्त तथा वमन से आरम्भ होता है। रोग के आक्रमण के बाद रोगी का पेशाब रुक जाता है या कम हो जाता है। उसके चेहरे का रंग बिगड़ जाता है। गाल पिचक जाते हैं; और बैठी हुई अधखुली आंखों के अंत प्रान्त चपटे हो जाते हैं। नाक, होठ तथा जीभ टेढ़ी हो जाती है। शरीर ठंडा पड़ने लगता है और श्वास प्रश्वास तीव्र

हो जाता है। नाखूनों का रंग नीला हो जाता है तथा नाड़ी शिथिल पड़ जाती है। ऐंठन, प्यास, कम्पन और बेचैनी अधिक बढ़ जाती है। हिचकी शुरु हो जाती है और निद्रा भंग हो जानेके कारण बेचैनी अधिक बढ़ जाती है। रोगीके लिये आरम्भिक चौबीस घण्टे विशेष चिन्ताजनक रहते हैं।

विशेषता--- (१) प्रतिदिन १ या २ बून्द **काफू** नित्य प्रति सेवन कर लेने से हैजे से आक्रान्त स्थान के निवासियों को हैजे के आक्रमण का भय नहीं रहता।

(२) गृहस्थ और यात्रियों को **काफू** सदा अपने पास रखना चाहिये क्योंकि ऊपर लिखी बीमारियों के लिये **काफू** धन्वन्तरि के समान सहायक सिद्ध होता है।

(३) **काफू** सेवन करते ही रोगी की बेचैनी मिट जाती है और हाथ पैरों में गर्मी आकर रोगी को नींद आजाती है, इस तरह रोग की भीषणता कम होने पर रोगी निरापद हो जाता है।

नोट—(१) हैजे के रोगी को पेशाब की शिकायत से बचने के लिये **यूरा** का सेवन करना चाहिये।

(२) **काफू**—अन्य अर्क कपूरों से चार गुना तेज है तथा आयुर्वेदिक प्रणाली के अनुसार शुद्ध किये हुए कपूरसे बना है।

वस्तु नं० ६

यूरा। (Regd.)

(पेशाब उतारने की सब से अच्छी दवा)
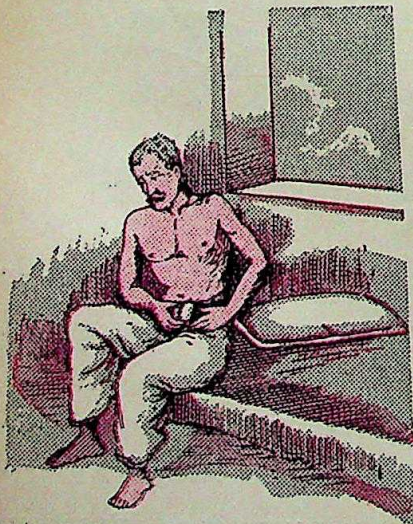
गुण—हैजा, सूजाक, जलोदर अथवा अन्य किसी कारण से पेशाब कम या बन्द हो जाने पर **यूरा** के दो या तीन बार सेवन करने पर ही पेशाब खुलकर होने लगता है।

रोग के कारण---(क) हैजे के समय पतला दस्त होने के कारण पेशाब की थैली खाली होकर सिकुड़ जाती है और पेशाब बन्द हो जाता है। हैजे में पेशाब का बन्द हो जाना खतरनाक है। (ख) सूजाक से पीड़ित होने पर मूत्र मार्ग में दाह (जलन) या दर्द होने के परिणामस्वरूप अथवा मूत्र मार्ग से श्राव होने के कारण पेशाब कम या रुक रुक कर होने लगता है। पुराने सूजाकमें यह अवस्था विशेष कष्टप्रद होती है।

रोगी का लक्षण----पेशाब की थैली, मूत्र नली या मूत्रेन्द्रिय में असहनीय वेदना होने लगती है जिसके कारण रोगी अत्यन्त बेचैन और शिथिल हो जाता है तथा नींद नहीं आती। जब तक पेशाब खुलकर नहीं होता रोगी छटपटाता रहता है। इन अवस्थाओं में **यूरा** अपूर्व सहायक सिद्ध होता है।
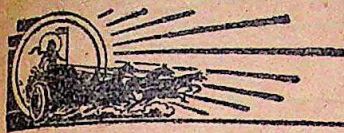
वस्तु नं० ७०२

डाबर अर्क पुदीना नं० २

(अजीर्ण की दवा)

अजीर्ण, पेट फूलना, पेटमें दर्द होना, खट्टी डकार अरुचि इत्यादि अजीर्ण सम्बन्धी रोगोंमें 'डाबर अर्क पुदीना नं० २' विशेष गुणकारी है।

बच्चोंके लिये भी यह लाभदायक है। जब बच्चे अजीर्ण रोगसे आक्रान्त होते हैं और कै (वमन) तथा पतले दस्त करने लगते हैं, ऐसी अवस्थामें यह अर्क अच्छा काम करता है।

परिवारमें इसकी एक शीशी बराबर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

वस्तु नं० १३

डाबर क्लोरोडिन। (Regd.)

(पेचिस,मरोड़, आंव व शूल दर्द की प्रसिद्ध घरेलू दवा)

विशुद्ध वस्तु और सावधानीसे बननेके कारण अन्य क्लोरो-

डिनसे यह अधिक गुणकारी और अच्छी है। वायुका दर्द व शूल चाहे किसी कारणसे हो, इस दवाके एक-दो बारके सेवनसे आराम हो जाता है। यह पतले व आंवके दस्त, पेचिस, मरोड़, खांसी, अफ़रा, सर्दीका बुखार, वायु व शूलके दर्दकी बड़ी अच्छी दवा है। पेचिसका रोग पुराना होनेपर आंव बन्द न हो तो उस हालतमें इसकी ४-५ बून्द १५-२० बून्द "डाबर रेड़ीके तेल" के साथ दिनमें तीन-चार बार देनेसे रोग दूर होता है।

वस्तु नं० ७०१

डाबर अर्क कपूर नं० २

(हैजा तथा अजीर्ण की प्रसिद्ध दवा)

हैजा (विशूचिका) एक भयंकर संक्रामक रोग है। जिस स्थानमें यह फैलता है वहांके निवासियोंमें त्राहि २ मच जाती है। किन्तु इसके आक्रमणसे बचनेके लिये 'डाबर अर्क कपूर नं० २' का व्यवहार अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसके अलावा हैजेके आक्रमण होनेपर इसका सेवन करते ही दस्त, कै (वमन) थोड़े ही समयमें बन्द हो जाते हैं और प्यास, बेचैनी इत्यादि मिट जाती है। हैजेके अलावा साधारण दस्त, वमन, पेट दर्द इत्यादि अजीर्ण विकारोंमें भी यह अच्छा काम करता है। गृहस्थों एवं मुसाफिरोंको इसकी एक शीशी बराबर अपने पास रखनी चाहिये।

बाजारू कपूरके अर्कोंसे यह अधिक तेज़ है।

वस्तु नं० १८

डाबर अजवायनका अर्क। (Regd.)

(चालिस गुना तेज—अजीर्ण व वायुनाशक)

बाजारू अजवायनका अर्क गाढ़ा (Concentrated) न होनेसे बड़ी बोतलोंमें रहता है और साफ न रहनेके कारण कम गुण करता है। किन्तु यह अर्क नयी प्रणाली द्वारा साफ किये हुए नयी अजवायनसे चालिस गुना अधिक गाढ़ा बनाया गया है। इसलिये ग्राहकगण बड़ी बोतल न खरीदकर वृथाके डाक खर्च से बच सकते हैं।

"डाबर अजवायनका अर्क" कम मात्रामें अधिक गुण करता है। विशेषकर बच्चे इसे सहजमें पीते हैं। प्रत्येक गृहस्थको इसे अपने घरमें रखना चाहिये।

वस्तु नं० २८ और ९३

कोलारिया। (Regd.)

(कोला टानिक)

दिमाग, नसें और मांस पेशियोंको सतेज व थकावट दूर करनेकी दवा।

कोला अफ्रिका देशके एक वृक्षका फल है। उस देशके रहनेवाले निग्रो लोगोंमें इस कोलेका गुण बहुत समयसे प्रसिद्ध है। एक फल कोलेका खाकर निग्रो लोग भारी बोझ लिये कड़ी धूपमें बिना कुछ खाये पीये २०-२५ मील तक चले जाते हैं और थकते नहीं। इस अद्भुत गुणके कारण कोला निग्रो जातिकी एक अमृत तुल्य पुष्टई है।

गुण—पीते ही थोड़ी देरमें चित्त प्रसन्न होता है। सुस्ती दूर होकर काममें मन लगता है। सोचनेकी शक्ति बढ़ती है। दिमागी थकावट दूर होती है। शरीर पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। शिथिल मांस पेशियोंमें दृढ़ता आती है। कलेजा पुष्ट होता है। देर तक काम करने पर भी थकावट नहीं आती। वास्तवमें 'कोलारिया' शरीरके सारे अंगोंकी शक्ति बढ़ाने की बेजोड़ दवा है।

दमको बढ़ाता है—घोड़ेकी सवारी, पहाड़की चढ़ाई, कुश्ती, कसरत, वक्तृता, नाच-गाना, दौड़ना तैरना आदि कामोंके करनेसे प्रायः कमजोर लोगोंका दम उखड़ जाता है, इन हालतोंमें इसका सेवन कर लेनेसे दम नहीं उखड़ता, दम बढ़ानेकी यह सबसे अच्छी दवा है।

शराब छुड़ाता है—कुछ काल तक इसके व्यवहारसे मदिराके

चित्त हटता है। वास्तवमें शराब छुड़ानेकी यह बड़ी अच्छी दवा है।

अफीम छुड़ाता है—इसके सहारे अफीम छूट जाती है। इसे पीना आरम्भ कर दे और अफीमकी मात्रा घटाता जाय तो कुछ समयमें बिना किसी प्रकारकी तकलीफके अफीम, गोली, चण्डू आदिका अभ्यास छूट जाता है।

गलेकी आवाज खुलती है—कोलारिया स्वरको साफ करता है और गलेमें बल देता है जिससे आवाज ऊँची होती है। गलेमें खुश्की अथवा स्वर भारी हो जाने पर इसके पीने से गला साफ और स्वर शुद्ध हो जाता है। गानेवालोंको हमेशा इसे अपने पास रखना चाहिये।

वस्तु नं० ३३

दरदीना। (Regd.)

(पेन हीलर)

गठिया दर्दमें मालिश और शूलमें खानेकी दवा।

इसे खाने से शूल, पेचिस व पेटका मरोड़ दूर होती है। मोच व चोट का दर्द, गठियाका दर्द, वायु व सर्दीसे कमर, कुलहा, पंजर व गर्दन आदि स्थानोंमें कुड़ल व ऐंठन चाहे जैसा दर्द हो **दरदीना** की मालिशसे शीघ्र मिट जाता
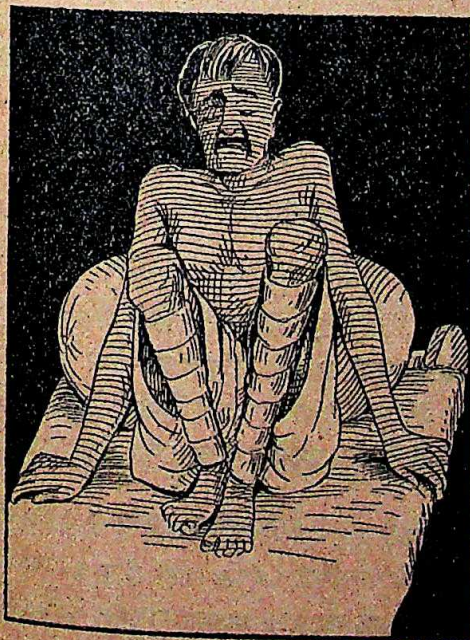
है। दांत व मसूड़ोंके दर्दको मिटानेमें यह बेजोड़ है।

वस्तु नं० ४९

दर-कान। (Regd.)

(कान दर्दकी दवा—तुरन्त आराम पहुंचाती है)

कानका दर्द बहुत ही दुख देता है। यह दर्द कभी-कभी इतना बढ़ जाता है कि रोगीको चैन नहीं पड़ता। कानके भीतर किसी प्रकारका दोष, फोड़ा अथवा कानमें चोट लग जानेसे कानका परदा फूल जाता है और कानमें दर्द पैदा हो जाता है। बच्चे प्रायः इस बीमारीसे तकलीफ पाया करते है।

कानके दर्दकी अनेक घरेलू दवाइयां हैं जो क्षणिक आराम पहुंचाती हैं। परन्तु **दर-कान** ही इसकी ठीक दवा है जो कानका दर्द तुरन्त मिटा देती है।

वस्तु नं० ३२

स्वप्न-हरी । (Regd.)

(स्वप्नदोषकी गोली)

स्वप्नदोषकी बीमारी मनुष्यके शरीरका घुन है, जो भीतर ही

भीतर शरीरकी समूची शक्तियोंका नाश करके जीवनको निकम्मा बना देती है। आजकल यह बीमारी विशेष कर नवयुवकों व छात्रोंमें पायी जाती है। इसके बढ़ जाने पर अन्तमें T. B. राजयक्ष्मा जैसी असाध्य बीमारी भी हो जाती है।

स्वप्न-हरी वीर्यको पुष्ट व गाढ़ा बनाकर स्वप्नदोषकी बीमारी को मिटाती है स्वप्नदोषकी आजतक जितनी भी दवाएं बनी हैं, उनमें यह सबसे अच्छी साबित हो चुकी है। टट्टी या पेशाब के पहले, बीचमें और अन्तमें पतले वीर्यका निकल जाना, सोते समय रातमें स्वप्नदोष हो जाना, मन्दाग्नि, भोजनमें अरुचि, दस्तकी कब्जियत, सिरमें चक्कर आना, आँखोंके चारों तरफ काला दाग हो जाना, दिमाग खाली होना, याददास्तकी कमी, अधिक भूलें होना, कामकाजमें जी न लगना, चित्तकी चञ्चलता, स्वभावमें चिड़चिड़ापन, एकान्तमें रहनेकी इच्छा, व्यर्थकी चिन्ता, हर समय चेहरे और चित्त पर उदासी तथा जीवनसे मृत्युको अच्छा समझना आदि इस रोगके प्रधान लक्षण हैं।

इस रोगमें उत्तेजक दवाएं खाना हानिकारक है। इससे रोग अच्छा न होकर उल्टे बढ़ जाता है। **स्वप्न-हरी** में कोई भी उत्तेजक पदार्थ न रहनेके कारण यह गरम नहीं करती और तुरन्त अपना गुण दिखाती है। यदि आप दवा खाते-खाते निराश हो गये हों तो एकबार इसकी परीक्षा अवश्य कर देखें।

वस्तु नं० ४६

सेनीलाइन । (Regd.)

(खूनी बवासीर और खून बन्द करने की दवा)

खून बन्द करनेमें यह अचूक है। नाकसे, मसूड़ोंसे, मुंहसे या कफके साथ अथवा स्त्रियोंके प्रदर रोग या हमलकी हालतमें खून जाता हो तो इससे बन्द होता है।

खूनी बवासीरमें यह विशेष उपकारी है।

खूनी बवासीरमें सेनीलाइनके खाने व पिचकारीसे इसे गुदामें देनेसे खूनका गिरना बन्द होकर बहुतोंका रोग जड़से मिट जाता है। साफ कपड़ा व रुई दवामें भिगो कर बवासीरके मस्से पर बांधनेसे मस्सा सिमटता है और कुछ दिन लगातार व्यवहार करनेसे सूख जाता है।

वस्तु नं० ५१

गन-कर । (Regd.)

(नये सुजाककी दवा)

सुजाककी बीमारी शुरू होते ही पेशाबमें भयंकर जलन और कड़क पैदा हो जाती है और पेशाब बूंद-बूंदसे रुक-रुक कर होता है। इन्द्रियमें सूजन आ जाती है तथा पेशाब की नलीमें घाव हो जाते हैं और उससे पीले या सफेद रंगका मवाद आने लगता है।

लोग लज्जाके मारे इस रोगको छिपाते हैं, ऐसी दशामें रोग पुराना हो जाने पर जल्दी अच्छा नहीं होता। इस रोगमें इधर-उधर न भटक कर यदि चुपचाप **गनकर** का सेवन किया जाय तो रोग जल्दी ही मिट जाता है। यह स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये उपकारी है।

लाल-शर। (Regd.)

(लाल शरबत)

बच्चे व प्रसूतिके लिये अमृत-तुल्य मीठी पुष्टई।

गुण—

हृष्ट-पुष्ट और बलवान बच्चे ही देश, जाति तथा समाज की भावी उन्नतिके कारण होते हैं और **लाल-शर** उन्हें हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ट बनाने में पूरी मदद करता है। आजतक असंख्य बच्चोंको हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ट बनाने का श्रेय **लाल-शर**को मिल चुका है।

लाल-शर (१) बढ़ते हुए बच्चों के खूनको बढ़ाता है।

(२) गोदके बच्चोंके अनपच को दूर करता है।

(३) दाँत निकलनेके समय दस्त, उल्टी, बुखार आदिसे पीड़ित बच्चोंको पूरा आराम पहुँचाता है।

(४) दाँत निकलनेके समय बच्चोंको शिथिल नहीं होने देता और उनमें फुर्तीसे घुटना टेक कर चलने, खड़ा होने और खेलने की शक्ति प्रदान करता है।

(५) बच्चोंको सर्दी, कफ, खांसी एवं जुकामके आक्रमणसे बचाता है।

(६) सूखा रोग बचोंके लिये क्षयी का रोग समझा जाता है। इस रोगमें बचोंके शरीरका खून धीरे-धीरे सूखने लगता है, हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। मिट्टीके रङ्गका बदबूदार दस्त और ज्वर होने लगता है। ऐसी अवस्थामें **लाल-शर** अपूर्व गुण दिखलाता है।

(७) लाल-शर बढ़ते हुए कमजोर बचोंकी हड्डी मजबूत करता है और दुबलेपनको मिटाकर ताकतवर बनाता है। इतना ही नहीं अजीर्ण, हृदयकी कमजोरी और रक्तकी कमीको दूर कर लड़कोंके मस्तिष्कको बलिष्ट बनानेमें **लाल-शर** दिव्य औषधि का कार्य करता है।

(८) प्रसूतावस्था में खूनकी कमीके कारण माताओं को तरह-तरहके रोगके आक्रमणका भय रहता है। ऐसी अवस्थामें प्रसूति

के लिये **लाल-शर** अमृततुल्य [illegible] है, शरीरमें शक्ति आती है और विविध प्रकारके रोगोंके आक्रमणका भय जाता रहता है।

रोगीके लक्षण—

गोदीके बच्चे जब क्षीणता रोगसे आक्रान्त होते हैं या जब उनमें रक्तकी कमी हो जाती है तब वे अनपच या अजीर्णके शिकार होनेके फलस्वरूप—

(क) दूध पीते ही उल्टी कर देते हैं। (ख) मल कभी गाढ़ा व कभी पतला हो जाता है। (ग) हाथ पैर पतले पड़ जाते हैं। (घ) शरीर अत्यन्त क्षीण हो जाता है। (ङ) कितने बच्चोंका सिर बड़ा और धड़ पतला हो जाता है। (च) दाँत समय पर नहीं उगते। (छ) शरीरकी हड्डी कमजोर व मांस शिथिल बना रहता है। (ज) दूध अंग नहीं लगता। (झ) घुटने चलना, खड़ा होना एवं हँसते हुए खेलना-कूदना उनके लिये दुश्वार हो जाता है और वे चिड़चिड़े हो जाते हैं। (ञ) थोड़े व्यतिक्रमसे ही सर्दी-गर्मीके आक्रमण का भय बना रहता है। (ट) कितनों को बराबर ज्वर बना रहता है। (ठ) और कईएक हरे-पीले या मट्टीके रंगके बदबूदार दस्तोंके कारण अतिक्लेशित हो जाते हैं। माताओंको अपने हृदयके टुकड़ोंको लालशर पिलाना कभी न भूलना चाहिये।

विशेषता—

लालशर फल शरकरा (Glucose) की चासनीसे बना है। और इसमें कैलसियम, लोहा, फासफरस, लैक्टिक एसिड एवं और भी कईएक खूनको बढ़ाने वाले उपादान पड़े हैं। इसलिये बच्चों और प्रसूतिके खून बढ़ानेमें लालशर बेजोड़ है।

वस्तु नं० ७५ व १५३

दन्त-मुक्ता। (Regd.)

(दन्तरोग नाशक दन्त मंजन)

प्रत्येक व्यक्तिके लिये भोजन की तरह ही दाँतोंकी रक्षा और सफाई आवश्यक है। कारण दाँतोंके खराब हो जाने पर

तरह-तरहके रोग जैसे—अग्निमांद्य, बदहजमी और पायरिया इत्यादिके आक्रमण का पूरा भय रहता है। अतः दाँतों की रक्षाके लिये उपयुक्त दन्त मंजनकी नित्य आवश्यकता रहती है और **दन्त-मुक्ता** ने इस अभाव को पूरा कर गुण-ग्राही जनता की दृष्टिमें उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

दन्त-मुक्ताके नियमित व्यवहारसे—(१) दाँत बिलकुल स्वच्छ रहते हैं।

(२) दाँतोंका हिलना, दर्द होना, सड़ना, मसूड़ोंका फूलना और उनसे पीप या खून निकलना बन्द हो जाता है।

(३) पायरिया होने का भय नहीं रहता।

(४) मुँह सुगन्धित हो जाता है जिससे चित्त सारा दिन प्रसन्न रहता है।

(५) दाँतोंकी गन्दगी और पेटकी गर्मीके कारण उत्पन्न मुँहकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

विशेषता— दन्त-मुक्ता आयुर्वेदिक तथा रसायनिक औषधि जैसे—अकरकरा, माजूफल, कपूर, मैगनेसिया, ऐलम, मेन्थल, मिथिलसेलिसिटेड इत्यादि अपूर्व गुणकारी द्रव्योंके संयोगसे बना है। अतएव **डाबर दन्त-मुक्ता** गुणोंमें अद्वितीय है।

वस्तु नं० ५३

सिफलो। (Regd.)

(गर्मी आतशककी दवा—अपना इलाज आप कर लो)

यह रोग गर्मी रोग वाली स्त्री या पुरुषके साथ सम्भोग करनेसे होता है। इसके विषका प्रभाव पुश्त दर पुश्त तक
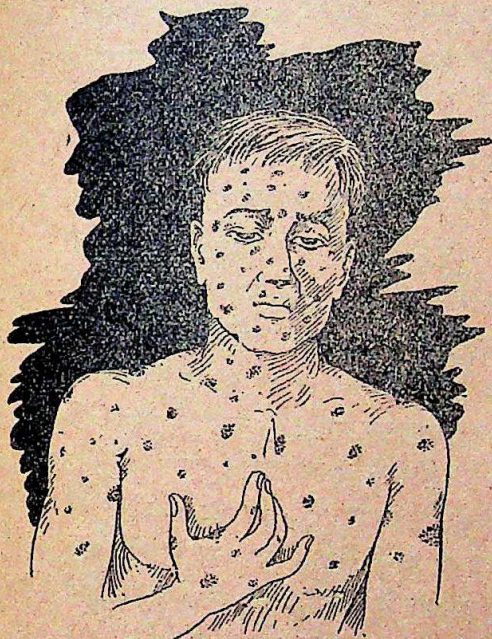
चलता है। पहले इन्द्रियमें घाव होते हैं, फिर पुट्ठोंमें गिल्टियां निकल आती हैं जिसे बाघी या बद कहते हैं। बादमें समूचे शरीरका खून विष दोषसे बिगड़ जाता है और शरीरमें चकत्ते फूट निकलते हैं। लोग लज्जावश इस रोगका ठीकसे इलाज न करवाकर अनजान और धूर्त लोगोंसे इलाज करवाते हैं या अशुद्ध पारा मिली हुई दवाओंका सेवन करते हैं। जिससे रोग अच्छा होनेके बजाय और भयङ्कर रूपसे बढ़ जाता है। **सिफलो** गर्मीके लाखों रोगियों द्वारा व्यवहारमें आनेके बाद सबसे अच्छी दवा साबित हो चुकी है। गर्मीमें चुपचाप अपने आप इलाज करने के लिये यह बेहतरीन दवा है।

गर्मीके शुरू होते ही इस दवाके व्यवहारसे गर्मीका विष नष्ट होकर बाघी होनेका डर नहीं रहता। खानेकी दवाके साथ ही **धारिन टेबलेट** (गर्मीके घाव धोनेकी टिकली) से घाव धोकर **धारिन मरहम** लगाना चाहिये।

वस्तु नं० ७

अजीरीना। (Regd.)

(अजीर्ण व ग्रहणीके दस्तकी टिकली)

यह भोजन हजम करने व अजीर्णके दोषोंको मिटाने में विशेष उपकारी है। खाना हजम न होनेसे अजीर्ण रोग पैदा होता है। खानेके बाद पेटका भारी होना या वायु होना, जी मिचलाना, खट्टी व व्यर्थ डकार आना, गला व छाती जलना, मुंहमें पानी भर आना, पेटमें थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, आलस्य आदि अजीर्णके लक्षण हैं। रोग पुराना हो जाने पर पेटमें गड़गड़ाहट होती है, पेट फूलता है व दस्तकी हाजत होती है, दस्त पतला व पानीके समान होता है और कभी-कभी खानेके थोड़ी देर पीछे ही दस्त हो जाता है। रोगीका शरीर दिन पर दिन गलता जाता है और अन्तमें असाध्य हो जाता है। **अजीरीना** से ये सभी शिकायतें मिटती हैं। बुढ़ापे या किसी कठिन रोग व प्रसवके बाद जब पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है, तब **अजीरीना** के सेवनसे भोजन अच्छी तरहसे हजम हो जाता है। और रोगीकी शक्ति दिनोदिन बढ़ती है।

वस्तु नं० ८ व ९१

जुलाबिन। (Regd.)

(मातदिल जुलाबकी गोली)

सहजमें कोठा साफ करती है।

कब्जियत होनेसे ही अनेक प्रकारके रोग होते हैं। अतः कब्जियतका इलाज करना जरूरी है। जुलाबकी दवाएं बाजार में बहुत तरहकी मिलती है, जो सबके अनुकूल नहीं होतीं। किसीसे अधिक दस्त, पेटमें मरोड़ अथवा जलन होती है तथा जी मिचलाता व घबराता है और कोई हजम हो जाती है। किन्तु **जुलाबिन** से किसी प्रकारकी तकलीफ नहीं होती। रातको सोते समय दो गोली खा लेनेसे सबेरे दस्त साफ हो जाता है। काम-धन्धा, स्नान, भोजन आदिमें कोई बाधा नहीं होती और न इसके सेवनके बाद किसी प्रकारकी कमजोरी ही जान पड़ती है। इसकी एक शीशी हर आदमी को सदा अपने पास रखनी चाहिये।

वस्तु नं० १४

लेभिना। (Regd.)

(लीवरकी गोली)

लीवर व कोठेके दोषोंको मिटाती है।

जिनका लीवर ठीक-ठीक काम नहीं करता उनको प्रायः कब्जकी शिकायत बनी रहती है और उसी कब्जियतके कारण अच्छी भूख नहीं लगती, प्यास हर समय बनी रहती है। अन्न में अरुचि, व्यर्थकी डकार, हाथ-पैर और आंखोंमें जलन व पीलापन, सिरमें चक्कर, माथेमें दर्द और अनिद्रा (नींदकी कमी) ज्वर आदि शिकायतें पैदा होकर कमल रोग हो जाता है। जिनको बराबर कब्जकी या बवासीरकी शिकायत बनी रहती है, उनके लिये **लेभिना** बहुत ही उपकारी है। केवल ५-७ दिनों के सेवन से ऊपर लिखी व्याधियां दूर होकर चित्तमें प्रफुल्लता आ जाती है।

वस्तु नं० १५

कृमी-हन। (Regd.)

(क्रमिनाशक टिकली)

क्रमि रोग प्रायः बच्चोंको होता है। अधिक मीठा खाने, हाजमा शक्तिकी कमजोरी और मलद्वारके भीतर मलके छोटे-छोटे टुकड़े रह जानेसे यह रोग हो जाता है। इसमें उलटियां होती हैं, मिट्टीके रङ्गका मैला दस्त होता है और पेट फूल जाता है। बच्चे नींदमें दांत कटकटाते और चौंक जाया करते हैं तथा गुदा चुनचुनाती है। बच्चोंको मिट्टी और कंकड़ खानेकी इच्छा होती है, जिससे अंतड़ियोंमें खुश्की पैदा होती है।

कृमी-हन के सेवनसे कीड़े (चुन्ने) मरकर दस्तके साथ सहज में निकल जाते हैं व सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं।

वस्तु नं० २०

डाबर पुराने मलेरिया बुखारकी गोली। (Regd.)

(हड्डीमें बसे बुखारको निकालती है)

इसमें नाममात्र भी कुइनाइन नहीं है—बार-बार कुइनाइन मिली हुई दवाएं खाने पर भी बुखार न छोड़ने अथवा पुराना हो जाने पर इन गोलियोंसे बड़ा फायदा होता है। जाड़ेका बुखार पुराना हो जाने पर हमेशा थोड़ा बहुत बना रहता है। शरीरमें खूनकी कमीके कारण थोड़े ही श्रमसे कलेजा कांपता है, सांस फूलता है, भूख घट जाती है और पिल्ही व यकृत्के बढ़ जानेसे पेट निकल आता है कभी मुंह और पैरोंमें सूजन आजाती है और जिन्दगी व्यर्थ जान पड़ती है। ऐसी दशामें यह आश्चर्यजनक गुण दिखाती है।

वस्तु नं० ३१

रीनोबिन। (Regd.)

(रोगके बादकी दुर्बलता दूर करनेकी गोली)

ये गोलियां सबसे उत्तम चुने हुए ताकत देनेवाले द्रव्योंसे बनायी गयी हैं। भिटामिन (Vitamin) जीवनी शक्ति बढ़ाने वाले पदार्थ पूरी मात्रामें है। निमूनियां, आंव, ग्रहणी, इनफ्लुएंजा, म्यादी व मलेरिया बुखार आदिसे अधिक दिन भोगनेके बाद खोये हुए स्वास्थ्यको लौटानेके लिये यह सबसे अच्छी दवा है। इसमें किसी प्रकारका उत्तेजक पदार्थ नहीं है। ऊपर लिखे किसी रोगसे अच्छे होनेके बाद दुबारा रोगके आक्रमणसे बचनेके लिये कुछ दिनों तक इसका लगातार सेवन करना चाहिये।

खूनकी कमी, भूखका मारा जाना, शरीरकी दुर्बलता, अन्नका हजम न होना, शिरकी कमजोरी, प्रसवके बादकी दुर्बलता आदिके लिये यह एक अमृततुल्य पुष्टई है।
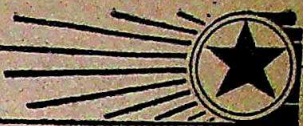
वस्तु नं० २९ व ९४

पुष्टीना । (Regd.)

(धातुपुष्ट की गोली)

बुढ़ापा मिटाती व खोई हुई जवानी लौटाती है।

ताकत देनेवाली दवाओंमें प्रसिद्ध दवा—फासफरस, स्ट्रिक-निया, डेमियाना आदि मिलाकर ये गोलियाँ बनी हैं। इसके सेवनसे पाचनशक्तिके घटनेके कारण जो शिकायतें पैदा होती हैं वे जल्द मिट जाती हैं। भूख बढ़ती है और खानेका आनन्द मिलता है। सुस्ती जाती रहती है, मनमें फुर्ती आती है और परिश्रम करने पर भी थकावट नहीं मालूम पड़ती। बहुत परिश्रम, ज्यादा पढ़ना, जवानीका दोष, अधिक विहारादिसे धातुक्षीण होकर मगज खाली और रगें ढ़ीली पड़ गई हों तो दो-तीन सप्ताहमें इसके सेवनसे पूरा फायता होता है, धातु पुष्ट होता है, शरीरमें गर्मी जान पड़ती है और नये बलका सञ्चार होता है। मांस पेशिओंका ढीलापन जाता रहता है, स्मरण-शक्ति बढ़ती है और चित्त प्रसन्न रहता है।

साधारण कमजोरी, नामर्दी, धातुक्षीणता, हाथ-पैरका कांपना, हौलदिल और जवानीमें बूढ़ेकी सी हालत आदि सभी शिकायतें मिट जाती हैं।

नोट—इस दवा के सेवनके समय बीच-बीचमें **जुलाबिन** (जुलाबकी गोली) खाकर पेट साफ रखना आवश्यक है। विवरण सूचीमें देखिये।

वस्तु नं० ३५

दर-दाँत । (Regd.)

(दाँत दर्दकी दवा—रोतेको हँसाता है)

पेटसे निकली हुई अशुद्ध वायु और दाँतको अच्छी तरह साफ न करने या अन्नके छोटे-छोटे कण दाँतके भीतर रह जाने के कारण कीड़े पैदा होकर मसूड़े फूल जाते हैं। जिससे दर्द पैदा होता है और गाल फूल जाता है। दाँतके दर्दकी कनकना-हट आँख और माथे तक पहुंचती है और ऐसी अवस्थामें खाने-

पीनेमें कष्ट होता है। **दर-दाँत** कीड़ोंको नाश कर मसूड़े और दाँतके दर्दको मिटानेमें अचूक है।
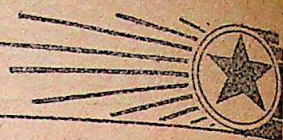
वस्तु नं० ३४ व ९६

सरबाईना । (Regd.)

(शिर व बाई दर्दकी टिकली)

शिर व माथेका दर्द बड़ा ही दुःखदायी होता है। दर्दसे रोगी व्याकुल हो जाता है। न दिनमें चैन पड़ती है और न रातमें नींद ही आती है। घर गृहस्थीमें यह दर्द किसी न किसीको हुआ ही करता है। माथेमें दर्द कई कारणोंसे होता है, रातमें ज्यादा जागना, अधिक मेहनत, चिन्ता, वीर्यनाश, पेटमें कब्ज रहना, ज्यादा बोलना, रोना-चिल्लाना तथा बाई आदि कारणोंसे माथेमें दर्द होता है। **सरबाईना** से माथेमें चाहे जिस कारणसे दर्द होता हो, बातकी बातमें मिट जाता है। दर्दसे बेचैन रोगीको तुरन्त शान्ति मिलती है। आधाशीशी (अधकपाली) में इससे अश्चर्यजनक लाभ होता है।

वायु दोष (बाई) से या और किसी कारणसे शरीर के चाहे जिस हिस्सेमें कैसा ही दर्द होता हो, इससे बहुत जल्द मिट जाता है। थोड़ी ही देर बाद ऐसा मालूम होता है, जैसे
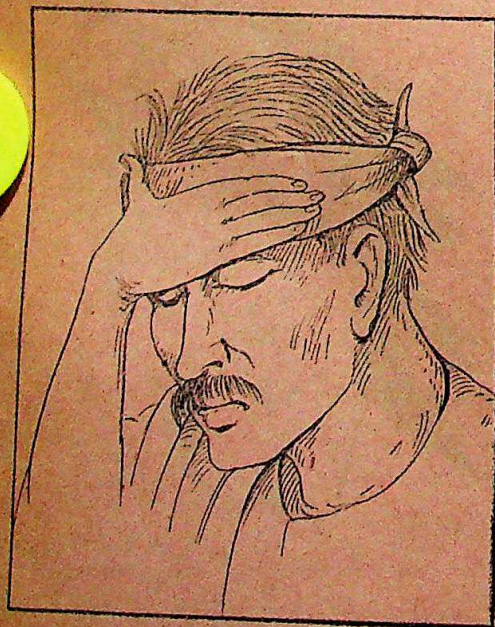
दर्द हुआ ही नहीं, इसलिये **सरबाईना** की एक शीशी हर घरमें हरदम रहनी चाहिये।

वस्तु नं० ३१

आईनोला । (Regd.)

(आंख उठनेकी दवा)

आंख उठनेमें "आईनोला" — सुरमेके लिये "मियासी"
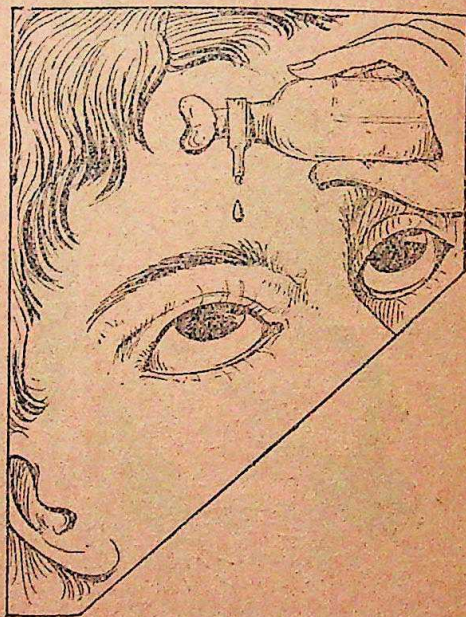
आंख ही मनुष्यके जीवनका सुख है। इसलिये आंखकी रक्षा करना मनुष्यका पहला कर्त्तव्य है। यह अर्क नेत्र सम्बन्धी अनेक उपकारी औषधियोंके संयोगसे बना है और हानि रहित है। इससे आँख उठनेकी लाली, जलन, कड़क, पानी निकलना और रतौन्धी आदि रोग केवल तीन-चार दिनके व्यवहारसे अच्छे होते हैं।

केवल रोगमें ही नहीं, निरोग अवस्थामें भी जैसे साधारण चोट दर्द, धुआँ, धूपकी तेजी आदि किसी कारणसे यदि आंख लाल हो जाय तो उसको यह दूर करता है। आंखका मैला तथा कीचको साफकर "आईनोला" आंखकी ज्योतिको बढ़ाता है। इसके व्यवहारसे आंखकी बीमारी होनेका भय नहीं रहता।

वस्तु नं० २५ व १५१

दब-दमा। (Regd.)

(दमे की दवा)

एक ही मात्रा में दमे को दबाकर तत्काल आराम पहुंचाती है।

गुण— (१) **दब-दमा** की एक ही खुराक के सेवन से जोर से उठा हुआ दमा भी तुरंत दब जाता है।

(२) नियमित रूप से **दब-दमा** के सेवन से दमा जोर नहीं करता।

(३) यदि दमे के आक्रमण में फेफड़ा और कलेजा बिगड़ा न हो और दमा उठता हो तो **दब-दमा** के लगातार सेवन से दमा जड़ से चला जाता है।

रोग के कारण— ठंड व सर्दी का आक्रमण होने पर तत्क्षण उपचार न करने के कारण खांसी शुरु होती है और कंठ को थाम लेती है। यदि समय पर इसका उपाय नहीं किया जाय तो श्वास की नली में इसका असर पड़ता है और यही खांसी धीरे-धीरे विकृत होकर अन्त में दमे का रूप पकड़ लेती है।

रोगी के लक्षण—(१) खांसी के विकृत होने पर रोगी का कफ और बलगम बढ़ने लगता है।

(२) धीरे-धीरे छातीके भीतर और श्वास की नलीमें कफ जम जाता है।

(३) खांसी और कफ के साथ श्वासमें रुकावट, पसली में दर्द और कभी-कभी ज्वर भी होने लगता है।

(४) अत्यधिक व्यतिक्रम होने के फलस्वरूप बहुत से रोगी क्षयी रोग से भी आक्रांत हो जाते हैं।

विशेषता—(१) दमे के जो रोगी अफीम, धतूरा, संखिया या डाक्टरी दवाएं—जैसे ब्रोमाइड, क्लोरेल आदि खाकर निराश हो जाते हैं, वे **दब-दमा** सेवन कर सन्तोष जनक लाभ उठाते हैं।

(२) यथार्थ में दमा वायु का रोग है और **दब-दमा** बिगड़ी हुई वायु को सुधारता है।

वस्तु नं० २६, २६ (क) और २६ (ख)

कफ-कफ । (Regd.)

(कफ, खांसी व सर्दी की अचूक दवा)

पीते ही खांसी को दबाती और कफ को पतला करती है ।
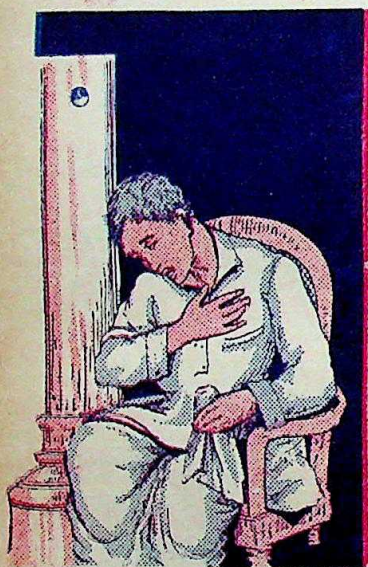
गुण— (१) सर्दी को पचाना ।
(२) खांसी को दबाना ।
(३) कफ को पतला करना ।
(४) कफ को निकालना ।
(५) सुस्ती व हरारत को दूर करना ।
(६) खांसी के साथ होनेवाले ज्वर को दूर करना । इत्यादि **कफ-कफ** के अद्वितीय गुण हैं ।

रोग के कारण— (१) कान, स्वरयंत्र, कठनाली, छाती, फुफ्फुस आदि अंगों में ठण्ड व सर्दी लगने से खांसी व जुकाम का आक्रमण होता है ।

(२) ऋतु परिवर्तन, रात्रि जागरण, पेट की गर्मी और नियम विरुद्ध भोजन तथा शारीरिक परिश्रम के बाद तुरत ही जल पीने से भी सर्दी खांसी होने का भय रहता है ।

रोगी के लक्षण— गले में खराश, छाती में पीड़ा व पीला तथा चिपचिप बलगम निकलना, श्वास में रुकावट, पसली में दर्द, गले में दर्द और घबड़ाहट इत्यादि लक्षण खांसी के रोगी में पाये जाते हैं । समय पर यदि ठीक ठीक इलाज नहीं किया जाता तो रोगी इनफ्लूएंजा बुखार से पीड़ित हो जाता है ।

विशेषता—कफ-कफ एक उच्चकोटि की खांसी की दवा है । इसमें कफ को तरल करने की कई एक आयुर्वेदिक काष्ठादि औषधियों के रस भी पड़ते हैं, अतएव इसके पीते ही खांसी तो दबती ही है, अलावे छाती में जमा हुआ कफ बिल्कुल पतला होकर आसानी से निकल जाता है जिससे रोगी को किसी भी प्रकार का कष्ट और सुस्ती नहीं मालूम पड़ती ।

वस्तु नं० ६१५

डाबर पायरिया क्योर।

पायरिया (दन्तपूय) की खास दवा

पायरिया दांतका सबसे बड़ा रोग है। डाबर पायरिया
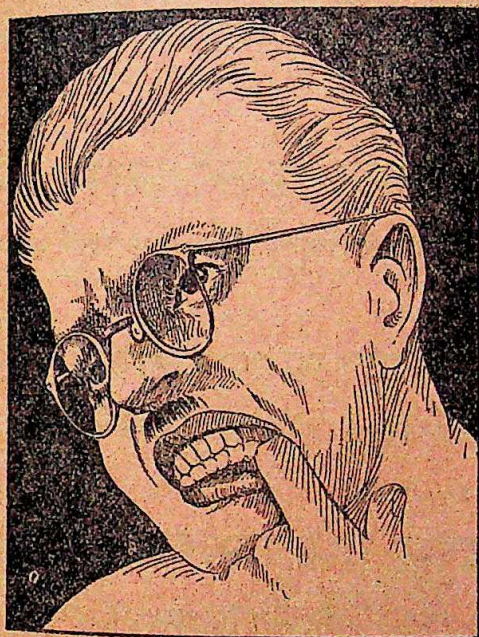
क्योर इसकी सबसे अच्छी दवा है। इसके व्यवहारसे मसूड़ों से खून व मवाद (पीव) का जाना, मसूड़ोंका फूलना, मुंहसे दुर्गन्ध आना आदि मसूड़ा व दांत सम्बन्धी सभी शिकायतें मिटती हैं। दांत जड़से मजबूत व नीरोग होते हैं।

वस्तु नं० ३६, ३६ (क)

मारु-बाम। (Regd.)

(हर प्रकारके शारीरिक दर्दोंका आश्चर्यजनक मरहम)

शरीरके चाहे जिस भागमें कैसा ही दर्द होता हो, इसके लगानेसे बर्फकी तरह ठण्डक पहुंच कर दर्द तुरन्त मिट जाता है और दर्दसे बेचैन रोगीको उसी समय शान्ति मिलती है

चोट, मोच, सूजन, गठिया, जोड़, पुट्ठे, माथे, कमर, पसली, छाती, आदिका बाहरी दर्द तथा कीड़े-मकोड़े आदिके काटने पर इसके लगानेसे बहुत फायदा होता है। यह खुजली, जले, कटे, घाव, फोड़े, फुन्सी आदिके लिये भी बड़ा फायदेमन्द है। प्रत्येक गृहस्थके घरमें इसकी एक डिबिया हमेशा रहनी चाहिये। इसमें चर्बी आदि कोई भी दूषित पदार्थ नहीं है।

वस्तु नं० ४०

खुजलीना तेल। (Regd.)

(चर्मरोगकी दवा)

(खुजली, खसरा, उकवत आदिमें लगानेकी अचूक दवा)

देशी व विलायती अस्पतालोंमें जांची हुई कई दवाएँ मिलाकर यह बना है। सब तरहके चमड़ेके रोग जैसे खाज, खुजली, छाजन, अपरस आदि इससे मिट जाते हैं। इसके लगानेसे पकती हुई फुन्सीकी टान मिटती है। कोढ़से बिगड़े हुए चमड़े पर भी यह अच्छा गुण दिखाता है। चमड़ेके रोगोंमें प्रायः शरीरके खूनमें दोष आ जाता है। ऐसी दशामें केवल तेल लगानेसे पूरा फायदा नहीं होता। इसलिये खूनके दोषोंको मिटानेके लिये हमारी **खुजलीना गोली** का सेवन

खुजलीना तेल के साथ करें और बीच-बीचमें जुलाब लेकर पेट साफ रखें।
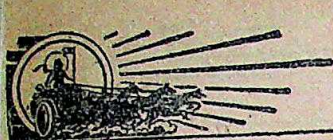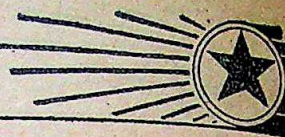
वस्तु नं० ३९

खुजलीना गोली । (Regd.)

(फोड़े, फुन्सी और खुजलीमें खानेकी दवा)

खुजली व खसरा छूतकी बीमारी है। यह खूनकी खराबी और पेटमें गर्मी होनेसे भी होती है। खुजलीके रोगीके कपड़े पहनने, छूने या उसके बिछौने पर सोनेसे भी यह रोग होता है। इसलिये खुजली वालेसे बचना ही अच्छा है। इसके सेवनसे दस्त खुलासा होकर पेटकी गर्मी शान्त होती है, खून साफ और निर्दोष होता है, खुजलीके दाने नहीं निकलते। यह खुजली पैदा करनेवाले दोषोंको मिटाकर निकली हुई खुजलीको सुखा देती है।

जिन लोगोंको खूनकी खराबीके कारण बार-बार खुजली, फोड़ा, फुन्सी या चमड़े के रोग होते हों उनके लिये खुजलीना गोली का व्यवहार विशेष उपकारी है।

घेघा ।

खूनकी कमी, सर्दी और वायु दोषसे यह रोग उत्पन्न होता है। नया या नर्म रहते ही घेघा आराम होता है। पुराना हो जानेपर यह कठिनतासे अच्छा होता है। इसमें केवल लगाने की दवा पूरा उपकार नहीं करती। इस कारण लगानेके साथ-साथ खानेकी दवाका व्यवहार करना चाहिये। इसलिये घेघे में खाने और लगाने की निम्नलिखित दवाएं तथा मरहम बनाया गया है। लगातार एक या दो महीने तक इनका व्यवहार करना चाहिये। खर्च भी अधिक नहीं है। सैकड़ों रोगी इससे लाभ उठा चुके हैं।

वस्तु नं० ४३

डाबर घेघेमें खानेकी दवा । (Regd.)

यह घेघेके रस और चर्बीको सुखाकर सूजनको कमाती है

वस्तु नं० ४४

डाबर घेघेपर लगानेकी दवा । (Regd.)

इससे घेघेकी सूजन और उसकी तन्नाहट मिटती है।

वस्तु नं० ४५

डाबर घेघेका मरहम । (Regd.)

(घेघा, गांठ, गिल्टी और कण्ठमालामें उपकारी है)

पुराना और कड़ा हो जानेसे घेघेपर साधारण लगानेकी दवा अपना पूरा गुण नहीं दिखाती। रोग पुराना होने पर कड़ी दवा का व्यवहार करना आवश्यक है। ऐसी अवस्थामें यह मरहम विशेष उपकारी है। इसके अतिरिक्त यह मरहम गांठ, गिल्टी और सूजन आदि पर भी उपकार करता है।

वस्तु नं० ४७

अबिन । (Regd.)

(हर तरहके बवासीर का अचूक मरहम)

बवासीर बड़ा दुःखदायी रोग है। यह मेदेकी कमजोरी और हमेशा की कब्जियतके कारण होता है। इसके पुराने होनेपर गुदाके भीतर या बाहर मस्से (गांठें) हो जाते हैं। मल कड़ा होकर निकलनेके कारण वह मस्से (गांठें) छिल
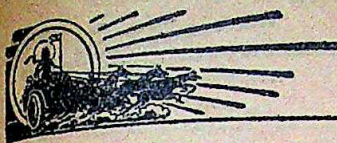
जाते हैं और वायुसे फूलकर दर्द पैदा हो जाता है। इस मरहम के लगानेसे मस्से सूख जाते हैं। जिससे मल निकलते समय छिलनेका भय नहीं रहता। इसमें ऐसे पदार्थोंका संयोग है कि जो खूनी या बादी बवासीरसे होनेवाले मस्से व दर्दको मिटा देते हैं। अबिन लगानेसे किसी प्रकारकी जलन नहीं होती और तुरन्त ठण्डक पड़ जाती है।

नोट—बादी बवासीरमें खानेके लिये हमारा **लेभिना** सूचीमें देखिये।

वस्तु नं० ४८

प्लेगिन। (Regd.)

(प्लेग रोकनेकी गोली)

प्लेगके साथ एक प्रकारके अति सूक्ष्म जीव (कीड़ों) का सम्बन्ध है। रोगीके खून, श्वास, थूक व मलमें ये पाये जाते हैं। इन्हीं कीड़ोंसे खूनमें विकार पैदा होकर प्लेग रोग होता है, जिससे रोगीका बचना कठिन हो जाता है। इसलिये जहां कहीं प्लेग फैला हो या फैलनेका डर हो वहां जल्द ही प्लेग रोकनेवाली गोली मंगाकर रखें। इस गोलीका शरीरके खूनपर ऐसा असर होता है जिससे प्लेगके कीड़े फिर वहां ठहर नहीं सकते और न अपना विष ही फैला सकते हैं। समय रहते "प्लेगिन" के सेवनसे हजारों आदमी प्लेगकी विपदसे बच चुके हैं।

वस्तु नं० ५०

कान-पिप। (Regd.)

(कान बहनेकी दवा)

कान बहनेका रोग उन्हीं बच्चों या स्त्री-पुरुषोंको होता है

जो कानकी सफाई नहीं रखते। कानके परदेमें मैला रहने, फुन्सी होने या खुरेदनेसे वह पक जाता है और उससे मवाद जाने लगता है। किसी-किसीको बिना दर्द और तकलीफके पानी सा सफेद रंगका मवाद बहता रहता है, उसमें इतनी बदबू होती है कि रोगीके पास ठहरना कठिन हो जाता है। कान बहनेकी बीमारी प्रायः बच्चोंको होती है। गलेकी घण्टी (Tonsil) बढ़ जानेके कारण यदि कानसे मवाद बहता हो तो पहले घण्टीका इलाज करवाना चाहिये, क्योंकि घण्टीके बढ़नेसे भी कान बहता है।

"कान-पिप" से कान बहनेकी बीमारी जड़से आराम होती है। पिचकारीसे कानको अच्छी तरह धोकर इसे कानमें डालनेसे शीघ्र लाभ होता है।

वस्तु नं० ५४

घारिन-मरहम । (Regd.)

(घावका मरहम)

साधारण, सड़े-गले व गर्मीके घावको अच्छा करता है।

इससे सब तरहके घावमें फायदा होता है। घावके कीड़े
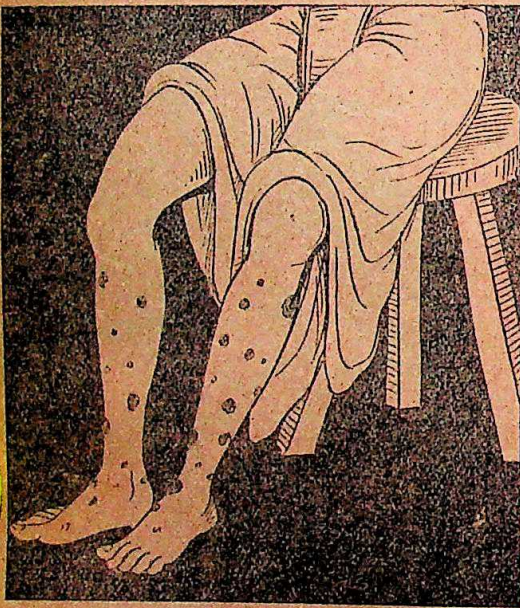
मर जाते हैं, दुर्गन्ध मिटती है, घाव सूखकर शीघ्र अंकुर भरता है और नया मांस पैदा होकर घाव आराम हो जाता है। इस मरहमके लगानेके पहले साधारण घावको **कीट-हन** (घाव धोने की टिकली)से और गर्मीके घाव **घारिन टेबलेट** (गर्मीके घाव धोने की टिकली) से धोने से विशेष उपकार होता है। **कीट-हन** का विवरण नीचे देखिये।

वस्तु नं० ५५

घारिन टेबलेट । (Regd.)

(गर्मीके घाव धोनेकी टिकली)

गर्मीके घावमें इस टिकलीसे घाव धोकर मरहम लगानेसे उपकार होता है।

वस्तु नं० ८४

कीट-हन । (Regd.)

(घाव धोनेकी टिकली)

जलमें रोग फैलाने वाले कीटाणुओंके मिल जानेसे जल दूषित हो जाता है जिससे अनेक प्रकारकी बीमारियां पैदा होती हैं। ऐसे जलमें यह टिकिया मिलानेसे बीमारीके कीड़े नष्ट हो कर जल साफ व निर्दोष हो जाता है। नये-पुराने सुजाक, प्रदर, घावमें इस टिकियाको जलमें मिलाकर धोने और मुंहके भीतरके रोगोंमें कुल्ला करनेसे बहुत फायदा होता है। कुत्ता, चूहे और सांप बिच्छू, बर्रे और मक्खी आदि बिषैले जीव-जन्तुओंके काटने में भी फायदा पहुंचाता है। यदि किसी स्थानका जलवायु

बिगड़ गया हो या हैजा फैला हुआ हो तो एक टिकिया पानीमें मिलाकर मकान धोनेसे बीमारीके कीड़े मर जाते हैं।

वस्तु नं० २७ व २७ (क)

डाबर आइओडाइज्ड सालसा (स्वर्णयुक्त) । (Regd.)

(रक्त परिशोधक तथा रक्तवर्द्धक)

गुण— शुद्ध रक्त ही मनुष्यका जीवन है—और **डाबर आइओडाइज्ड सालसा** दूषित रक्त को शुद्ध करता है।
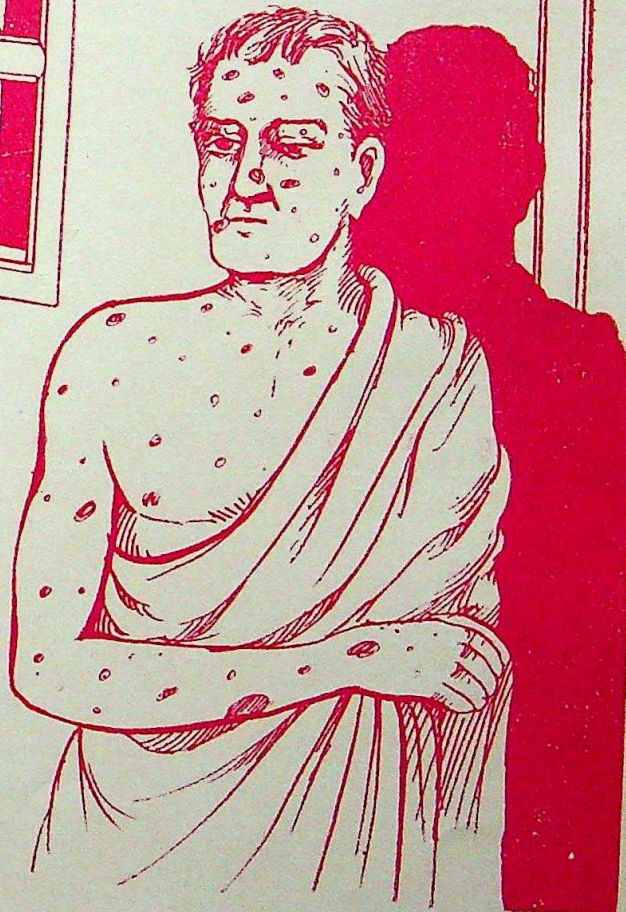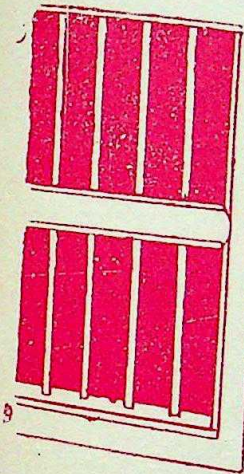
इसके सेवन से **निम्नलिखित चर्म और रक्त सम्बन्धी रोगों** में आशा जनक लाभ होता है।

(१) **विभिन्न चर्मरोग** जैसे फोड़ा, फुन्सी, एकजिमा (उकवत) खुजली, लाल चकत्ते पड़ जाना इत्यादि।

(२) **रक्त विकार सम्बन्धी दोष** जैसे दूषित रक्त व्रण विस्फोटक (जहरवाद), पीप वाले फोड़े आदि।

(३) वात, गठिया, उपदंश (गर्मी) तथा पारा मिली हुई दवा खाने के फलस्वरूप रक्त के **अत्यधिक दूषित हो जाने पर।**

राग के कारण—

(१) कब्जियत, अत्यधिक गर्म वस्तुओं का सेवन, तेज मदिरापान, गन्दे वस्त्र पहिनना, गन्दे मकान वा मुहल्लेमें रहना, चर्म रोग पीड़ित मनुष्यके कपड़े पहनना या उसके बिछौने पर सोना, पेट की गर्मी इत्यादि कारणोंसे रक्त दूषित या गर्म हो जाता है और विविध चर्म रोग उत्पन्न होते हैं।

(२) प्रमेह या उपदंश (गर्मी) से पीड़ित स्त्री या पुरुष के साथ सहवास करने से या इन बीमारियों को दबाने या छिपानेके ख्याल से बिना उचित निदान और उपचारके रोगी जब पारा मिली हुई दवायें खा लेता है तब उसका सारा शरीर और रक्त भयकर रूप में दूषित हो जाता है ।

रोगी के लक्षण— (१) पेट की गर्मी या कब्जियत के कारण अथवा अत्यधिक गर्म वस्तुओं का सेवन या छूआ-छूत के कारण जब रक्त बिगड़ जाता है तब नीचे लिखे चर्म रोग और लक्षण प्रतीत होते हैं ।

(क) सारे शरीर में बिना पानी या पीप के छोटे छोटे दाने निकल आना ।

(ख) शरीर में जलन, सनसनी और खुजलाहट होना ।

(ग) पानी या पीपवाली छोटी छोटी फुन्सियों का पहले हाथ और पैरों की उंगलियों में निकलना ।

(घ) शरीर में जहां तहां लाल चकत्ते निकल आना ।

(ङ) शरीर में अत्यधिक खुजलाहट होने के कारण खुजलाते खुजलाते रक्त निकल आना और बेचैन हो जाना ।

(च) पीठ, बगल, जांघ या शरीर के अन्य भाग में भी होने वाले फोड़ों से मवाद या खून का जाना इत्यादि लक्षण चर्म या रक्त विकार से पीड़ित रोगियों में पाये जाते हैं ।

(२) उपदंश या प्रमेह रोग से पीड़ित होने वाले रोगियों के रक्त बिगड़ने पर उनमें निम्न लिखित लक्षण देखे जाते हैं ।

(क) शरीर का चमड़ा फटना । (ख) सिर के बाल उड़ना । (ग) चकता पड़ना । (घ) गांठ व गिल्टी निकलना । (ङ) घाव फूटना । (च) कमर व जोड़ में दर्द । (छ) तरह तरह के फोड़ा फुन्सी निकलना । (ज) गठिया (वात) की शिकायत का होना । (झ) शरीर का रंग मैला हो जाना । (ञ) दाँत और होठों का विकृत होना । (ट) कान्तिहीन और क्षीण होना । (ठ) सूत्रेन्द्रिय पर घाव होना इत्यादि ।

विशेषता— (१) **डाबर आइओडाइज्ड सालसा** जमैका सालसा, सासाफ्रास, गुएकाम मेजरियान तथा अन्य कई एक गुणकारी देशी दवा व पोटास आइओडाइज्ड एवं सर्वोत्कृष्ट रसायनिक द्रव्य और स्वर्ण मिलाकर उचित रीति से बहुत गाढ़े रूप में बनाया जाता है इसलिये **डाबर आइओडाइज्ड सालसा** साधारण सालसों से चार गुना अधिक गाढ़ा और विशेष लाभ दायक है ।

(२) **डाबर आइओडाइज्ड सालसा** मातदिल है इसलिये इसका व्यवहार हर मौसम में किया जाता है और इसके सेवन में कड़े परहेज की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

कार्यालय की

STAR
TRADE S.K.B. MARK
REGD.

कतिपय अद्वितीय श्रृंगार सामग्रियां

SNOW

DANT
MUKTA
TOOTH POWDER
S.K. BURMAN

वस्तु नं० ५२

गन-गन। (Regd.)

(पुराने सुजाककी दवा)

सुजाक पुराना होनेपर पेशाबमें-जलन नहीं होती किन्तु कभी-कभी चिनक होती है। पेशाब रुक-रुक कर होता है। थोड़ी पीप निकल कर कपड़ेमें दाग लगते हैं। गरम चीजोंके खानेसे या दूसरे किसी कारणसे मिजाजमें गर्मी आकर पीप अधिक जाने लगती है। कभी-कभी बन्द भी हो जाती है। यदि ऐसी दशामें चिकित्सा नहीं की जाय तो पेशाबकी धार महीन होकर बून्द-बून्द पेशाब होता है।

पुराने सुजाकका इलाज यदि ठीकसे नहीं किया जाय तो पेशाबकी जगहके भीतरी भागमें एक प्रकारका मांस पैदा हो जाता है, इससे पेशाब रुक जाता है और जान पर बीतती है। इसलिये सुजाक पुराना पड़ने पर 'गन-गन' का व्यवहार आरम्भ करना चाहिये। यह पुराने सुजाकमें विशेष गुणकारी है।

वस्तु नं० ४

नैवेद्य। (Regd.)

(उपहारमें देनेका श्रृङ्गारदान)

इसमें चुनी हुई चार श्रृङ्गार सामग्रियाँ हैं।
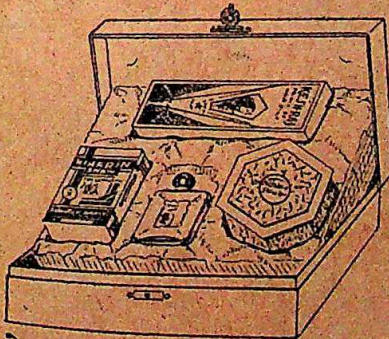
(१) केशराज।

(२) निहारिन स्नो।

(३) डाबर मस्क लेवेण्डर।

(४) निहारिन पाऊडर।

विवाह आदि कार्योंमें भेंट देनेके लिए यह बक्स बनाया गया है। इस बक्समें शीशियाँ सजी हुई रहती हैं। यह बक्स प्रत्येक परिवारमें नित्य प्रयोजनीय वस्तुओंके अभावको पूरा करता है। इस सुन्दर बक्सका दाम नहीं जोड़ा गया है, जो ग्राहकोंको मुफ्त पड़ता है। बक्स सुन्दर व देखनेमें मनोहर है और खोलते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है।

वस्तु नं० ७४ व १०१

हील-एक साबुन। (Regd.)

प्रायः साबुनोंमें चूना रहनेके कारण चमड़ा फट जाता है। यह साबुन सुगन्धित है, बनस्पति और औषधियोंके संयोगसे बना है तथा इसमें चूना नाममात्र भी नहीं है। अच्छेसे अच्छे सुगन्धित साबुनकी जगह इसे नित्य व्यवहार कर सकते हैं।

वस्तु नं० ८१ व १५५

डाबर यूडीकोलन। (Regd.)

(किसी भी नामी यूडीकोलनके साथ तुलना कर सकते हैं)

अधिक काम करने या कड़ी धूप में चलने के कारण माथा गरम हो जाने, बुखार की तेजी में सिर दर्द करने और शिरमें वायु कुपित होने पर इसके इस्तेमाल से फायदा होता है। इस्तेमाल की विधि शीशीके साथ रहती है।
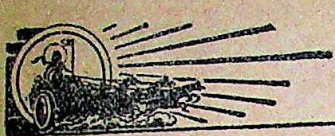
वस्तु नं० ६१३

डाबर सुगन्धित धूप ।

यह धूप देवपूजनके लिये पवित्र और बड़ी उपयोगी है।

इससे वायु शुद्ध होती है और रोगोंके दूषित कीटाणु नष्ट होते हैं।

वस्तु नं० ६७

रेरीना । (Regd.)

(रेंड़ीका सुगन्धित केश तैल)

यह खासकर उन्हींके लिये बना है जिनके बाल असमयमें पकते और गिरते हैं। यह साफ किये हुए रेंड़ीके पतले तेल व देशी सुगन्धों तथा बालोंकी जड़को मजबूत करनेवाले द्रव्योंसे बना है। इसके व्यवहारसे असमयमें बालोंका पकना व गिरना बन्द होता है। आंखोंमें तरावट आती है, शिर ठण्डा रहता है।

वस्तु नं० ७१

केश-हन । (Regd.)

(हानिरहित लोमनाशक लेप)

इसके व्यवहारसे लोम शीघ्र साफ होकर चमड़ा मुलायम बना रहता है और काला नहीं पड़ता। बाजारमें अनेक प्रकार के लोमनाशक साबुन, चूर्ण, अर्क और पेष्ट आदि मिलते हैं। किन्तु उनमें प्रायः बिना शोधी हुई हरताल और गन्धकका भाग अधिक होनेके कारण शरीरके कोमल स्थानोंमें हानि पहुँचाती है। उनके व्यवहारसे लोम मोटे तथा चमड़ा रूखा और काला पड़ जाता है। किन्तु केश-हन उन वस्तुओंसे बना है जिनसे

बाल अपनी जड़को शीघ्र छोड़ देते हैं और ऊपर लिखी किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

वस्तु नं० ४४० क, ४४० ख
४४० ग, व ९९

डाबर आँवला केश तैल

(मनोरम, गन्धयुक्त, श्रेष्ठ केश उपादान)

आयुर्वेद विज्ञान में **आँवला** एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आँवला खट्टापन, वात, शीतलता, पित्त और कषैलापन, कफ का नाश करता है। अतएव आँवले को त्रिदोषनाशक कहते हैं। साथ ही यह केशों के लिये भी अत्यन्त हितकारी है। इसी धारणासे लोग आँवला केश तैल व्यवहार करते हैं परन्तु आयुर्वेदिक प्रणाली अनुसार निर्मित शुद्ध आँवला केश तैल प्रायः नहीं मिलता, यही कारण है कि व्यवहार करनेवालों को पूरा लाभ नहीं होता। लेकिन **डाबर आँवला केश तैल** में इस तरह के सन्देह की कोई गुञ्जायश नहीं है क्योंकि **डाबर आँवला केश तैल** विशुद्ध है और यह आँवले तथा मस्तिष्क हितकारी बनस्पतियोंसे शुद्ध तैलमें आयुर्वेदिक प्रणाली अनुसार तैयार किया जाता है। इसके व्यवहारसे
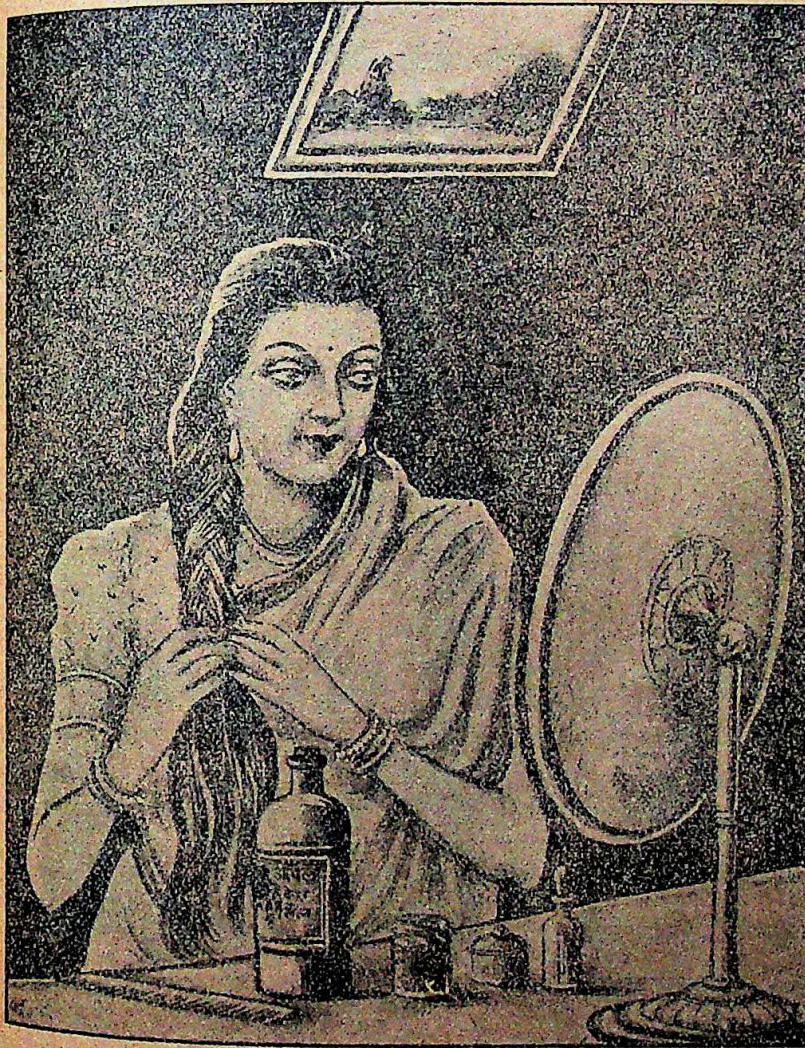
(१) वात, पित्त या कफके दोषसे असमय में गिरनेवाले केशों की जड़ मजबूत होती है और केशोंका गिरना बन्द हो जाता है।

(२) केश काले, चिकने, चमकीले और मुलायम होते हैं।

(३) असमय में केश सफेद नहीं होते। (४) दिमाक की खुश्की व कमजोरीको दूर करता है। (४)[क] इन गुणोंके अलावा मस्तिष्क, नेत्र और केश सम्बन्धी कई एक तरह के रोगों में **डाबर आँवला केश तेल** सन्तोषजनक लाभ पहुँचाता है।
(५) मस्तिष्क शीतल रहता है। (६) मनोरम गन्ध होने के कारण यह चित्तको प्रफुल्लित रखता है।

विशेषता—आयुर्वेदिक प्रणाली के अनुसार निर्मित होने के साथही साथ **डाबर आँवला केश तैल** वैज्ञानिक प्रक्रिया से शोधित भी है। और इसमें दी गई बनस्पतियोंके अनुकूल ही गन्ध है। इसलिये इसमें कृत्रिमता (बनावट) नहीं है।

वस्तु नं० ६८

नरीना । (Regd.)

(नारियलका सुगन्धित केश तैल)

नारियलके तेलमें बालोंको बढ़ाने और मुलायम करनेका
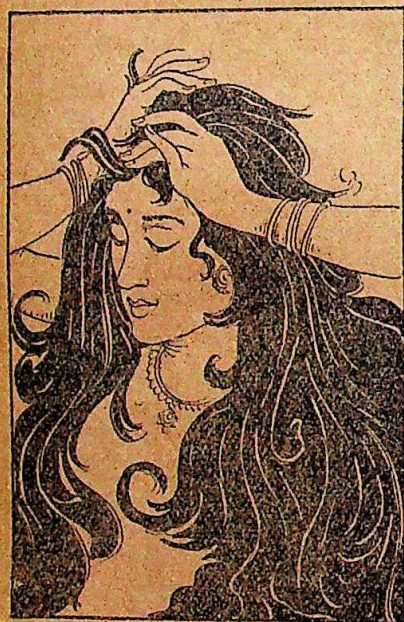
विशेष गुण है। किन्तु इसमें एक प्रकारकी मंहक रहनेके कारण यह सबको पसन्द नहीं होता। यह वैज्ञानिक रीतिसे साफ किये हुए नारियलके तेलपर बना है, जिससे नारियल की मंहक बहुत कम है। देशी सुगन्धित और केश सम्बन्धी गुणकारी जड़ी-बूटियोंसे बननेके कारण यह गुण और सुगन्धमें बेजोड़ है।

नरीना के व्यवहारसे माथेकी गरमी मिटती तथा आंखोंमें तरावट आती है। अन्य तेलोंकी अपेक्षा इससे बालोंकी जड़में मैल कम जमता है।

वस्तु नं० ७०

खीजा-काला । (Regd.)

(काला खिजाब)

अनेक प्रकारके काले खिजाब बाजारमें बिकते हैं। उनकी तरह इसके व्यवहारमें किसी प्रकारकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती इसकी व्यवहार विधि भी सहज है। व्यवहारमें लानेके लिये इसमें न किसी प्रकारके अर्क, चूर्ण तथा गर्म पानी और न दो शीशी मिलाकर लगानेकी आवश्यकता होती है। **खीजा-काला**—एक प्रकारका पाउडर (सफ़ूफ) है। थोड़ा ठण्डा पानी मिलाकर लगानेसे सफेद बाल बिलकुल काले होकर मुलायम हो जाते हैं।
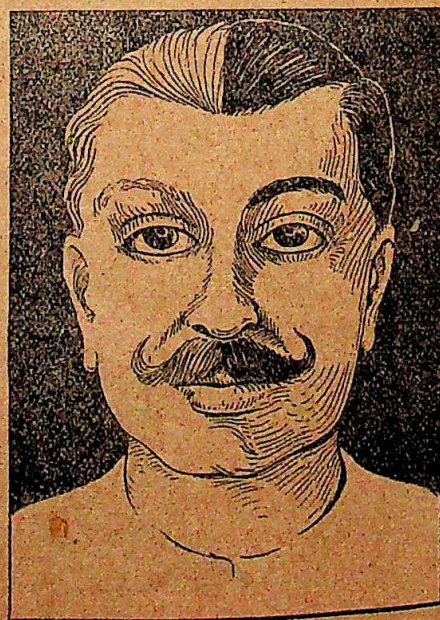
जो अन्यान्य खिजाब लगा चुके हों वे एकबार इसकी भी परीक्षा अवश्य करें।

वस्तु नं० ६६ व ९९

केशराज। (Regd.)

(केश तेलों का राजा)

औषधियुक्त सुगन्धित।

केशराज मस्तिष्क व केशोंके लिये उपकारी उपादानोंसे वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा निर्माण किया गया है। इसकी सुगन्ध चित्ताकर्षक और टिकाऊ है। इसके नियमित व्यवहारसे निम्नलिखित लाभ होते हैं।

(१) यह केशोंको कोमल और शक्तिशाली बनाता है।

(२) इसके व्यवहारसे केश काले चमकीले और लम्बे होते हैं।

(३) सिरका घूमना, केशोंका झड़ना, रूसी व खुश्की दूर करनेमें यह अद्वितीय है।
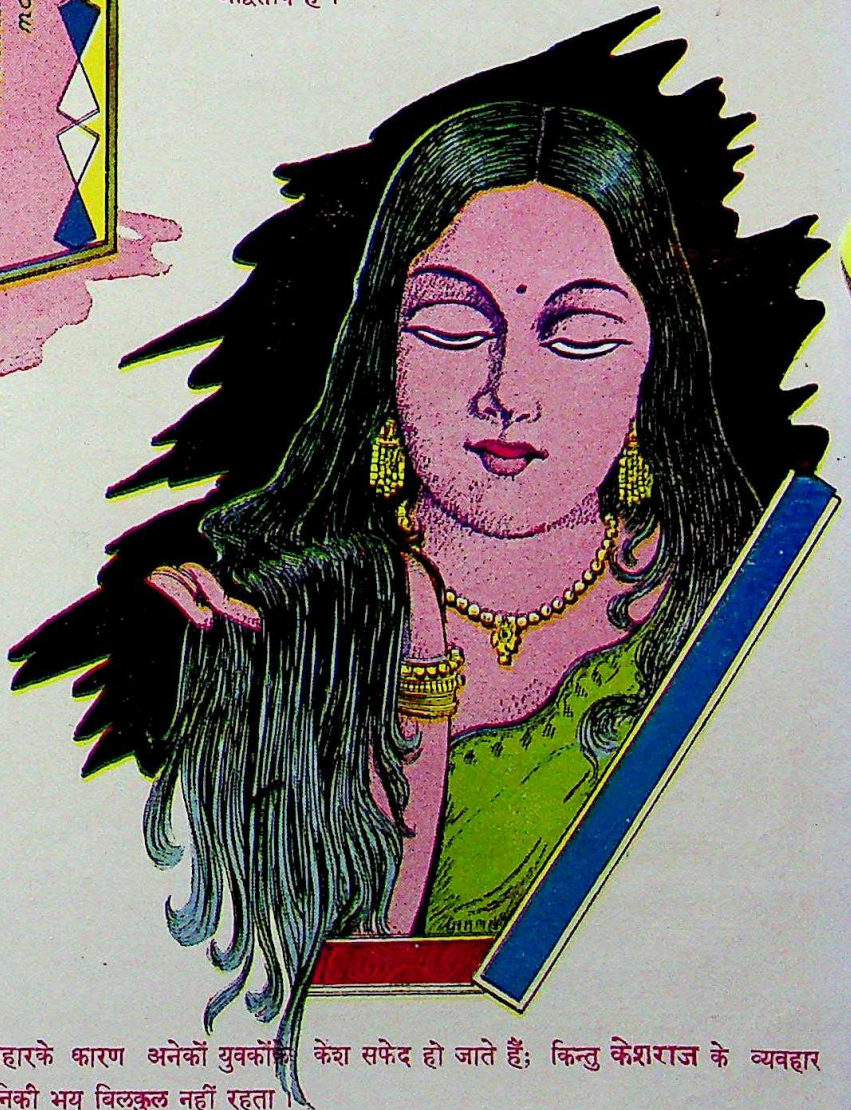
(४) इसके नित्य प्रति व्यवहारसे केशों की जड़ मजबूत होती है, चित्त प्रफुल्लित रहता है व दिमाग और आँखोंमें नवीन शक्तिका संचार होता है।

(५) मस्तिष्क से काम लेनेवालों को **केशराज** काममें रुचि तथा माथा ठण्डा रखनेमें पूरी सहायता करता है।

विशेषता— (१) बहुतसे केशतेल ह्वाइट आयलसे निर्माण कर बेचे जाते हैं जिनकी ऊपरी चमक-भड़क सुगन्ध या दिखावट तो ग्राहकके चित्तको आकर्षित करनेवाली होती है किन्तु उन तेलोंके व्यवहारसे उपकारके बदले बहुतसा अपकार होता है लेकिन **केशराज** में यह दोष नहीं है। इसमें किंचितमात्र भी ह्वाइट आयलका संयोग नहीं है।

(२) ह्वाइट आयल मिश्रित तेलोंके व्यवहारके कारण अनेकों युवकोंके केश सफेद हो जाते हैं; किन्तु **केशराज** के व्यवहार करनेवालोंके लिये इस प्रकारका हानिकी भय बिलकुल नहीं रहता।

(३) गुणग्राही जनता, गण्यमान्य व्यक्ति, विशेषज्ञ और अनेकों प्रदर्शनियोंसे प्रशंसा-पत्र तथा स्वर्णपदक प्राप्त कर **केशराज** केश तेलोंका राजा होनेका गौरव प्राप्त कया है।

वस्तु नं० ७२ व १००

निहारिन-स्नो । (Regd.)

(झाई, मुहांसा एवं सौन्दर्य के लिये ।

इस वैज्ञानिक युगमें सौन्दर्य वृद्धिके लिये जितने साधन आविष्कृत हुए हैं उनमें स्नो का एक खास स्थान है और अबतक जितने देशी व विदेशी स्नो बन चुके हैं, उनमें **निहारिन-स्नो** अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ है ।

गुण— (१) **निहारिन-स्नो** के व्यवहारसे मुखमण्डल चमकीला, कोमल और सुन्दर होता है ।

(२) रुखापन, दाग, मुहांसे, गाल और होठोंका फटना प्रभृति शिकायतोंको दूर करनेमें **निहारिन-स्नो** उपकारी है।

(३) क्योंकि **निहारिन-स्नो** की सुगन्ध अत्यन्त मनोहर है इसलिये इसके व्यवहारसे चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

(४) दाढ़ी बनवाने के बाद इसके व्यवहारसे चमड़ा मुलायम हो जाता है ।

(५) **निहारिन-स्नो**—शौकीन गृहस्थोंके नित्य प्रयोजनीय आदर की वस्तु है ।

विशेषता—(१) **निहारिन-स्नोमें** किसी तरहका अपवित्र या आपत्ति-जनक उपादान मिश्रित नहीं है ।

(२) यह लिकरविच हज्ल तथा अन्य कई एक सर्वोत्कृष्ट रसायनिक उपादानोंके संयोगसे निर्मित है ।

वस्तु नं० ७३ व १५२

निहारिन-पाउडर । (Regd.)

(मधुर गंधयुक्त)

स्नो की भांति पाउडर भी शिक्षित एवं शौकीन व्यक्तियोंके नित्य उपयोगका प्रसाधन है। निहारिन-स्नो की तरह ही **निहारिन पाउडर** वैज्ञानिक प्रक्रियासे कई एक उपयोगी उपादानोंके मिश्रणसे बना है ।

इसके व्यवहारसे—

(१) चमड़े पर चिकनाहट व सफेदी आती है ।

(२) छोटे बच्चोंके चेहरे और शरीरमें नित्य लगानेसे चमड़ा मुलायम रहता है ।

(३) फोड़ा फुन्सी होनेकी सम्भावना नहीं रहती है; और गन्दगी दूर होती है ।

(४) गर्मीके दिनोंमें पसीनेके कारण होनेवाली घमौड़ी, छोटी-छोटी फुन्सी और पसीनेकी दुर्गन्ध मिटती है ।

(५) मधुर सुगन्धसे चित्त आनन्दित हो जाता है ।

विशेषता—

(१) **निहारिन पाउडर** में किसी तरहका दूषित या हानिकर पदार्थ नहीं है ।

(२) वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार निर्मित होनेके कारण शरीरके चमड़ेके लिये यह निरापद है ।
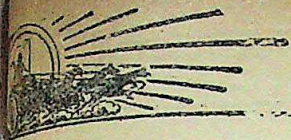
[वस्त]ु नं० ८० व १५४

डाबर मस्क लवेण्डर। (Regd.)

(कस्तूरी मिश्रित मनोहर सुगन्ध)

[इ]सकी सुगन्ध अत्यन्त मनोहर तथा उत्तम श्रेणीके लेवेण्डर
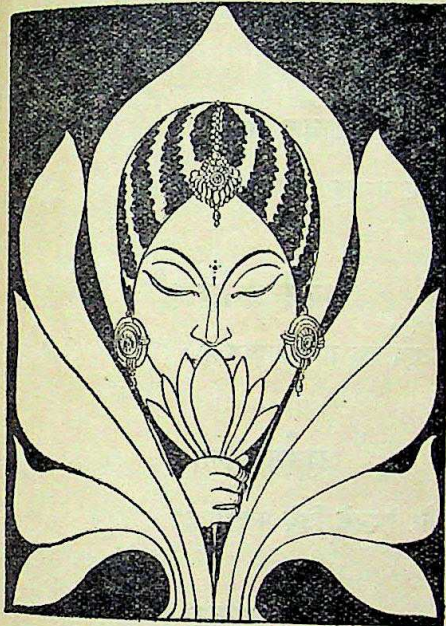
[क]स्तूरी मिश्रित रहनेके कारण मधुर और स्थायी है। यह [...]ी भी विदेशी श्रेष्ठ लवेण्डरकी तुलनामें कम नहीं है। [...]लमें थोड़ा डालकर सूंघते रहनेसे चित्त प्रसन्न रहता है।

[वस्त]ु नं० ७१८

डाबर टैलकम पाउडर। (Regd.)

(सुगन्धित एवं औषधियुक्त)

इस पाउडरके व्यवहारसे पसीनेकी दुर्गन्धी मिटती है एवं [...]ा, फुन्सी और घमौरी वगैरह चर्मविकार होनेका भय नहीं [...]। सुवासित होनेके कारण यह चित्तको प्रफुल्लित भी [कर]ता है। बच्चोंके शरीरके मुलायम चमड़ेकी रक्षाके लिये [इस]का व्यवहार उपादेय है।

कार्य्यालयकी कतिपय फार्मास्युटिकल वस्तुएं

वस्तु नं० ६४

डाबर काडलीवर आयल

फेफड़ेकी बीमारीमें लाभदायक और पुष्टिकारक।

वस्तु नं० ६५

डाबर यूकेलिपटस आयल

बी० पी० क्वालिटी।

वस्तु नं० १०८

डाबर यूकेलिपटस आयल (नीलगिरि)

सर्दी, जुकाम और छूतके रोगोंमें सूंघनेके लिये।

वस्तु नं० २३

डाबर इन्फ्लुएंजा टेबलेट

इन्फ्लुएंजा बुखार से बचने व अच्छा होने की श्रेष्ठ दवा।

वस्तु नं० ८५

डाबर टिंचर आईडिन (मिथिलेटेड)

चोट, मोच, गांठ, गिल्टी, सूजन और दर्दमें लगानेके लिये।

वस्तु नं० २४

डाबर थर्मामीटर

आधा मिनटका, बहुत ही अच्छा, टिकाऊ, इङ्गलैण्डका बना हुआ।

वस्तु नं० ८२

डाबर सेकरीन प्योर

यह चीनीसे ५५० गुना तेज है।

डाबर ग्लूकोज शर्बत

यों तो बाजारमें तरह-तरहके शर्बत मिलते हैं; किन्तु कार्यालयने गर्मीके दिनोंमें शर्बत व्यवहार करनवालोंके विशेष लाभार्थ वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार अनुभवी रसायनिकोंके तत्वावधानमें कार्यालयकी निजी Laboratory में निम्नलिखित शर्बत निर्माण किया है। इनके सेवनसे गर्मीसे परेशान व्यक्तियोंको ठण्ढक तो मिलती ही है, साथ ही औषधियुक्त होनेके कारण ये शर्बत विविध रोगोंमें भी विशेष लाभ पहुंचाते हैं।

शर्बत खस।
शीतल तथा मधुर सुगन्धयुक्त। दाह और पित्त विकारोंमें उपयोगी।

शर्बत उशवा।
रक्तविकार नाशक तथा रक्त परिशोधक।

शर्बत उनाव।
पेचिश, वमन, शरीर जलन और पित्त प्रकोपमें गुणकारी।

शर्बत आम।
हैजा और लू में लाभदायक।

शर्बत अनानास।
रुचिकारक एवं हृदयके लिये गुणकारी।

शर्बत ब्राह्मी।
मस्तिष्कके लिए शीतल और हिष्टीरियामें लाभदायक।

शर्बत गुल बनप्सा।
शीतज्वर नाशक और कास, श्वासमें हितकारी।

शबत गुलाब।
शीतल, मधुर, गन्धयुक्त और पित्त दाह नाशक।

शर्बत केवड़ा।
शीतल, मनोरम गन्धयुक्त और वीर्य वर्द्धक।

शर्बत अनार।
अरुचिनाशक एवं रक्त तथा बलवर्द्धक।

शर्बत केला।
मलरोधक और हृदयके लिये बलकारक।

शर्बत सन्तरा।
रक्तवर्द्धक दिल व दिमागके लिए उपयोगी।

शर्बत चन्दन।
शीतल, दाहनाशक पेशाब और पेटकी जलनमें उपयोगी।

शर्बत ठण्डई।
शीतल स्फूर्ति और शक्ति वर्द्धक।

शर्बत अंगूर।
पुष्टिकारक रुचिवर्द्धक और रक्तपरिशोधक।

दिव्य उपदेश ।

(एक अभ्यासी)

(१)

मोक्ष क्या है ?—अज्ञान या मृत्युमय संसारसे परे हो जाना।

\+ +

मोक्ष किसे मिलता है ?

सुख-दुःखको बरावर समझनेवाले एवं इन्द्रियको वशमें रखनेवाले धीर पुरुषको मोक्ष प्राप्त होता है ।

× ×

अत्यन्त दीन कौन है ?—जो प्रत्येक कर्म स्वार्थके लिये करता है।

× ×

अशान्त कौन है ? – जिसमें आस्तिक भावका अभाव है ।

× ×

सुख किसको नहीं मिलता ?– जो अशान्त है ।

× ×

शान्तिका उपाय क्या है ?—वासनाओंका त्याग ।

× ×

मिथ्याचारी (पाखंडी) कौन है?–जिसके मनमें दुःश्चिन्तायें रहती हैं।

× ×

वास्तविक कर्मयोगी कौन है ?–जिसमें लोक कल्याणकी भावना है।

× ×

पापका मूल कारण क्या है ?—काम तथा क्रोध ।

× ×

दुर्जेय शत्रु कौन है ?—वासनायें ।

× ×

पापोंसे कौन बच सकता है ?—जो भोग विलासोंसे परे है ।

× ×

सबसे पावन तत्व क्या है ?—ज्ञान ।

× ×

ज्ञानका अधिकारी कौन है ?– श्रद्धावान ।

× ×

पथभ्रष्ट कौन हो जाता है ?—संशयात्मा ।

× ×

स्थिर बुद्धि या नित्य सन्यासी कौन है ?—जो रागद्वेषसे रहित है ।

× ×

अक्षय सुख क्या है ?—परमात्माके स्वरूपका ज्ञान ।

× ×

परम श्रेष्ठ योगी कौन है ?—समदर्शी ।

× ×

सबसे अधिक चांचल कौन है ?—मन ।

× ×

मन अनुकूल कैसे होता है ?--त्याग और वैराग्यसे ।

× ×

माया किसके अनुकूल है ?—भगवद्भक्त ।

× ×

महात्मा कौन है ?—जो विश्वको परमात्मा समझता है ।

× ×

सफलताकी कुंजी क्या है ?—ईश्वर विश्वास ।

× ×

किसका नाश नहीं होता ?—भगवानके भक्तका ।

\+ +

भगवान का प्रिय कौन है ?—समबुद्धि-भक्त ।

\+ +

पतनका प्रधान कारण क्या है ?—अहंकार।

\+ +

अभय कैसे मिलता है ?—भगवानकी शरणमें जानेसे ।

\+ +

नर्ककी प्राप्तिके मूलकारण क्या हैं ?– काम, क्रोध तथा लोभ ।

\+ +

बिजय या सफलता किसे मिलती है ?

जो अर्जुनके समान कर्मिष्ठ होते हैं तथा जिन्हें भगबान कृष्णके समान पथ प्रदर्शक मिलते हैं ।

\+ +

पुण्य क्या है ?

कल्याण या मोक्षकी ओर अग्रसर करनेवाले उत्तम कर्म ।

\+ +

पाप क्या है ?—पतन या नरककी ओर लेजानेवाले निन्द्य कर्म ।

\+ +

त्याग क्या है ?

लोक संग्रह (विश्वकल्याण) या विश्वात्माके हेतु निष्काम कर्म करना ।

\+ +

पण्डित किसे कहते हैं ?—कामना और संकल्पोंसे रहित और स्त्री, पुत्र, गृहसे बिरक्त समदर्शी ज्ञानी ।

\+ +

तप किसे कहते हैं ?—शरीर वाणी और मनको शुद्ध करनेवाले कर्म ।

\+ +

योग किसे कहते हैं ?

चंचल चित्तको अनुकूल बना एक लक्ष्यकी ओर जाना ।

\+ +

सन्यास किसे कहते हैं ?—सकाम कर्मोंका त्याग ।

\+ +

तत्व किसे कहते हैं ?—यथार्थ स्वरूपका ज्ञान ।

\+ ×

जीवन क्या है ?—मान सहित प्राण रक्षा ।

\+ +

मरण क्या है ?—अपमान ।

\+ +

माया क्या है ?—विश्व विमोहिनी शक्ति ।

\+ +

नियम किसे कहते हैं ? - निश्चय या प्रतिज्ञा ।

\+ +

सुख क्या है ? – इन्द्रियोंके बिषयोंको मन सहित सांसारिक वासनाओंसे हटाकर आत्मामें लगाना ।

\+ +

(२)

पराश्रयसे बड़ी विपत्ति दुर्भाग्यके कोषमें नहीं है ।

\+ +

रमणीका मान अजेय है, अमर है, अनंत है ।

\+ +

जात-पांत केवल भिन्न-भिन्न काम करनेवाले प्राणियोंका समूह है ।

\+ +

सच्चा प्रेम, संयोगमें भी वियोगकी मधुर वेदनाका अनुभव करता है ।

\+ +

अस्थिरता दुर्बल आत्माओंका मुख्य लक्षण है । उन पर न बातों को जमते देर लगती है, न मिटते ।

\+ +

त्याग ही वह शक्ति है, जो हृदयपर विजय पा सकती है ।

\+ +

जो पंख पक्षीको जालके नीचे बिखरे हुए दानोंकी ओर ले जाय, उनका उखड़ जाना ही अच्छा ।

\+ +

भक्ति मनुष्योंका अन्तिम आश्रय है ।

\+ +

जो मनुष्य अपनी भूलों और दुर्बलताओंका प्रकाशमें आना सहन नहीं कर सकता वह सत्यके पथका पथिक बननेके सर्वथा अयोग्य है ।

—जे॰ एलेन

× ×

सबसे उत्तम विजय प्रेमकी है जो सदैवके लिये विजितोंका हृदय बांध देती है ।

—सम्राट अशोक ।

× ×

हमें सबसे पहले आत्म सम्मानकी रक्षा करनी चाहिये । हम कायर और दब्बू हो गये हैं । अपमान और हानि चुपकेसे सह लेते हैं । ऐसे प्राणियोंको तो स्वर्गमें भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।

—प्रेमचन्द्र
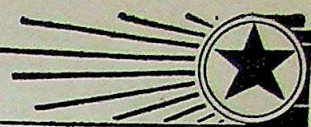
(३)

—नये अभ्यास डालनेके लिये अथवा पुराना छोड़नेके लिए पहला प्रयत्न अत्यन्त निश्चयात्मक, दृढ़ तथा साहसिक होना चाहिए।

× ×

—समझदार आदमी वह नहीं है जो कभी गलती नहीं करता; क्योंकि ऐसा मनुष्य जो भूल नहीं करता दुनियांमें न कभी हुआ और न हो सकता है। किन्तु समझदार वह है जो छोटी-मोटी गलती करता है और जल्द ही गलतीको ठीक करनेकी योग्यता रखता है।

"लेनिन"

× ×

—परिस्थितिका चक्र बड़ा कठोर होता है, उसका मुकाबला करनेके लिए दृढ़ता, कार्यशीलता और निश्चयकी आवश्यकता है। सबसे भयानक शत्रु है उदासीनता। दुर्बल आत्माएं सदा विरुद्ध कार्य किया करती हैं।

"टालस्टाय"

—मनुष्यका उद्देश्य अपनी व्यक्तिगत भलाई तथा सुख हो, उन्हें उन नियमों और शर्त्तोंका भी ध्यान रखना चाहिए जो दूसरे लोगोंकी भलाईके लिए आवश्यक हैं—उस हालतमें मानव समाजको उस समयके अपेक्षा अधिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है जब उसका एकमात्र लक्ष अपनेको छोड़ शेष अन्य लोगोंकी भलाई हो।

+ +

—जीवनसे ज्यादा असार भी दुनियांमें कोई वस्तु है। क्या उस दीपककी भांति ही क्षणभंगुर नहीं है जो हवाके एक झोंकेसे बुझ जाता है? पानीके उस बुलबुलेको देखते हो, उसे मिटनेमें भी कुछ देर लगती है जीवनमें उतना सार भी नहीं। जिसका भरोसा ही क्या? और उसी नश्वरतापर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं। नहीं जानते कि नीचे वाली सांस ऊपर आयेगी या नहीं; पर सोचते इतने दूर की हैं मानो अमर हों।

"प्रेमचन्द"

+

(४)

सुख और दुःख

"धन-धान्य तो तुम्हारा ही है इसे मैं क्या करूं? देना चाहो तो दे दो—लेना चाहो तो ले लो - लेकिन दुःख मेरे घरकी चीज है—यही सच्चा रत्न मेरे पास है—इसे तू अपने प्रासादसे खरीद लेता है इसका मुझे गर्व है।"

"दुःख ही हमारे घरकी चीज है—फिर इससे घबराना क्यों?—धन-धान्य हमारा नहीं—यह शरीर और स्वास्थ्य हमारा नहीं यह घर और बाहर हमारा नहीं - हमारा तो केवल दुःख-ही-दुःख है सबको है—इसलिये इसे पाकर विचलित होना उचित नहीं—"

"दुःख है—इससे मैं इनकार नहीं करता—लेकिन दुःखको तर जाना मनुष्यता है—ऐसा मैं अवश्य मानता ही हूं।"

"हे भगवान्! विपद् में तुम मेरी रक्षा करो—यह मैं प्रार्थना नहीं करता - हां ऐसा अवश्य करना कि मैं विपद्से भयभीत न हो जाऊँ! दुःख और तापसे व्यथित मेरे हृदयको तुम सान्त्वना दो—यह मैं नहीं कहता—लेकिन दुःखको पार कर जाऊँ—ऐसी शक्ति अवश्य देना। नम्र सिरसे सुखके दिन में तुम्हारा मुख पहचान लूँ—और इसी प्रकार दुःखकी रातमें भी जब सब कुछ धोखा ही मालूम हो - लेकिन ऐसा करना भगवान् कि तुम पर मुझे कभी संदेह न हो।"

— कवीन्द्र रवीन्द्र

(५)

स्वप्न चित्र

जब आकाश उसमें दिनकर निशिपति और नक्षत्र समूह तथा भूमंडल की शृष्टि हो चुकी तो विश्वकर्माने ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर पूछा—अब क्या आज्ञा है?

अवनितल पर स्रष्टाके अनुरूप मानवका निर्माण करो, जिससे सृष्टि-सार्थक हो! उसे उत्तर मिला।

विश्वकर्माने मानवका निर्माण किया; उसमें जीवन था; किन्तु वह पाषाण-खंडके समान गतिहीन रहा, उसमें बोलनेकी शक्ति थी किन्तु वह बोलता न था। उषा प्रतिदिन आकाशके पूर्वाञ्चलको अबीरसे रंग कर नवजीवनका संदेश देती थी और

तब पक्षी अपने बीड़ोंसे निकल निकल कर मंगल गान द्वारा दिवसका स्वागत करते थे, निस्तब्ध निशिमें राकापतिका शुभ्र हास अवनितलके तृण कलि पल्लवोंको तरल रजतसे निखार देता था और तब रत्नाकरका शांत हृदय तरंगित हो उठता था। मानवके समीपवर्ती शैल-शिखरसे निर्झर कभी सोनेका होकर कभी चांदीका होकर अविरल झरता रहता था और मानव इन सबोंसे अप्रभावित था। जीवन उसमें था, किन्तु वह पाषाण खंडके समान निश्चेष्ट ही रहा। और तब विश्व-कर्माने पुनः ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—"मैंने मानव का निर्माण किया, उसमें जीवन भरा, किन्तु वह निश्चल है, मौन है।"

'तृप्ति मौन है, पूर्णता निश्चेष्ट है।' उसे उत्तर मिला—"मानवका अंश उससे अलग रखो, तब उसका कंठ मुखरित होगा; उसको गति प्राप्ति होगी।"

विश्वकर्माने मानवको गहरी नींदमें सुलाया, उसके शरीरसे एक पसली निकाल कर नारीका निर्माण किया और नारीको पुरुषसे दूर अवनितलके दूसरे छोर पर रखा।

पुरुषने जागने पर प्रथमबार अभावका अनुभव किया, उसका कंठ मुखरित हुआ। उसके क्रन्दन और गानसे दिशायें गूंज उठीं, उसमें गति उत्पन्न हुई। वह अपने अभावकी पूर्ति के लिये खोजमें चल दिया, विश्वकर्मा प्रसन्न था; क्योंकि उसने देखा वह अपने उद्देश्यमें सफल हुआ है।

पुरुष निशि-दिन चलता रहा। सर, सरिता, सागर, मरुस्थल कोई भी उसकी गतिका अवरोध न कर सका और उसने अमावस्याकी अंधियारीमें, उसी पथके किनारे, जिस पर वह चला जा रहा था, नारीको भटकते हुए पा लिया और वह फिर पूर्ववत् निश्चेष्ट हो गया।

तब विश्वकर्माने समझा कि उसकी सफलता चिरंतन नहीं थी! और उसने तीसरी बार ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—पुरुषके अंशको मैंने अवनितलके दूसरे छोर पर रखा था, किन्तु पुरुषने उसे वहां भी पा लिया और वह फिर निश्चेष्ट हो गया। पाताल या स्वर्गमें भी उसे रखूंगा तो वह उसे पा लेगा। अब समस्याका हल किस प्रकार हो?

'जो कुछ भी मानव पूर्णतया समझ लेगा, उसे अप्राप्य न होगा।' विश्वकर्माको उत्तर मिला—"मानवकी अंतरात्मामें स्वप्न चित्र अंकित करो। उसका मस्तिष्क केवल आंशिक रूपमें उसे समझ पायेगा। अभाव अन्तर्गत हो, और उसकी पूर्तिके लिये खोजकी संभावना बाहर हो। इस प्रकार बहिर्मुखी खोजका अन्त कभी न होगा।" पुरुष और नारीको सुला कर विश्वकर्माने उनकी अंतरात्मामें स्वप्न-चित्र अंकित किये, जागने पर नारीको आलिंगनपाशमें बाँधे हुए पुरुषने मस्तिष्कमें कुछ शून्य सा अनुभव किया और उसे ज्ञात हुआ कि उसके हृदयमें कुछ अभाव-सा है, और इसीसे वह उत्पीड़ित है।

उसने नारीको नवीन ढंगसे पानेका प्रयत्न किया। नारी माता हुई वह पिता बना। अपने अनुरूप सृष्टि करके उसने अपने लिये जीर्णता और मृत्युकी भी सृष्टि कर ली; किन्तु इससे उसके अभावकी पूर्ति न हुई। पिता, पुत्र और माताने प्रातः-काल उठकर हिमाच्छादित शैल-शिखर पर शीतलता तथा शांति प्रदायक अनुपम सौन्दर्य-छटा देखी। उन्होंने सोचा, शायद वहां शांति मिल जाय।

तीनोंने शैल पर चढ़ना आरंभ किया। न जाने कितना रक्त पसीनेके रूपमें बहा कर वे वहां पहुंचे पर इस अशान्तिका अंत वहां भी न मिला।

पर वे निराश होना नहीं जानते थे। उस शैल-शिखरसे उन्होंने देखा, शैलके उस पार सागरके मध्यमें एक सोनेकी नगरी है, जिसमें रत्न-जटित महल हैं और जिनमें मणियोंके दीपक जलते हैं। नाव गढ़ कर उन्होंने सागरको पार किया, पर वहां पहुंचने पर उन्हें मिला बालू का ढेर। प्रभात कालीन रवि-राशियोंने उसे वह रूप प्रदान किया था।

जो कुछ उन्होंने समझा उसे प्राप्त कर लिया, किन्तु प्राप्तिके साथ मस्तिष्कका शून्य और हृदयका अभाव और भी उत्पीड़ित होता गया। मृत्युको वे नहीं समझ सके।

आजतक भी मानव मृत्युको नहीं समझ सका है, और इसी लिये वह कभी कभी पुकार उठता है— यदि मृत्युमें ही इस उत्पीड़क अभावकी पूर्ति हो जाय, तो मैं उसका आलिंगन कर लूं?

किन्तु उसके इस प्रश्नका उत्तर कौन दे?

(कहानी से उद्धृत)

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड

कलकत्ता

की

वस्तुएं मंगानेके साधारण नियम—

(१) ग्राहकोंके आर्डरका माल वी० पी० द्वारा अथवा अग्रिम मूल्य आने पर भेजा जाता हैं।

(२) वैद्य महानुभाव, आयुर्वेदिक औषधालय एवं १०) या इससे अधिकका माल मंगानेवाले ग्राहकों को दो आना प्रति रुपया कमीशन दिया जाता है ५०) या इससे अधिकका माल मंगानेवाले ग्राहकोंको थोक दरसे माल सप्लाई किया जाता है जिसे पत्र व्यवहार द्वारा जाना जा सकता है।

(३) पैकिङ्ग खर्च, डाक या रेल महसूल और वी० पी० कमीशन ग्राहकके जिम्मे रहता है।

(४) १०) से अधिकके आर्डरके लिए चौथाई रकम पेशगी आनी चाहिए।

(५) पत्रमें ग्राहकोंको अपना नाम पता व स्टेशन इत्यादि खुलासा और साफ-साफ लिखना चाहिए।

(६) पार्सल खूब मजबूतीके साथ और पूरी देखरेखमें पैक कर भेजा जाता है इसलिए रास्ते की टूट-फूट और कमीके लिए कार्यालय जिस्मेवार नहीं है।

विशेष सुविधाएं—(१) रोगीका पूरा विवरण पाने पर इलाज सम्बन्धी व्यवस्था देनेका भी कार्यालयमें प्रबन्ध है।

(२) एजेन्सी लेनेके लिए व्यापारीगण पत्र व्यवहार करनेकी कृपा करें।

निवेदन—अस्पताल, औषधालय और चिकित्सालयोंके अधिकारियोंसे निवेदन है कि वे इस कार्यालय को भी अपने यहांकी वस्तुओंका टेण्डर भेजनेका मौका देंगे।

वस्तुका नाम	वजन	मात्रा	मूल्य	पृष्ठ नं०
काफू	½ औंस	२४	१=)	३१
काफू	¼ औंस	१२	॥=)	,,
डाबर अर्क कपूर नं०२	¼ औंस	१२	।≡)	३३
यूरा	१ आस	२	॥।)	३२
पुदीन हरा	१ आस	३२	१=)	२० ख
पुदीन हरा	½ औंस	१६	॥=)	,,
पुदीन हरा	¼ औंस	८	।-)॥	,,
डाबर अर्क पुदीना नं० २	¼ आस	८	।)	३३
क्लोरोडिन	½ औंस	२४	॥≡)	३३
क्लोरोडिन	¼ औंस	१२	।≡)	३३
डाबर अजवायनका अर्क	२ औंस	३२	॥।≡)	३३
डाबर अजवायनका अर्क	१ औंस	१६	॥)	३३
दबदमा	½ औंस	४८	१॥।=)	४० क
दबदमा	¼ औंस	२४	॥।≡)	,,
कफ-कफ	४ औंस	३२	१॥।=)	४० ख
कफ-कफ	२ औंस	१६	१)	,,
कफ-कफ	१ औंस	८	॥-)	,,
डाबर आइओडाइज्ड सालसा (स्वर्णयुक्त)	४ औंस	३२	२)	४४ क
डाबर आइओडाइज्ड सालसा (स्वर्णयुक्त)	२ औंस	१६	१=)	४४ क
कोलारिया	१ औंस	४८	१।)	३४
कोलारिया	¼ औंस	१२	।=)	३४
दरदीना	१¼ औंस		१।)	३५
अबलारी	४ औंस	३२	२।)	२० क
अबलारी	२ औंस	१६	१।)	२० क

वस्तुका नाम	वजन	मात्रा	मूल्य	पृष्ठ नं०
सेनीलाइन	२ औंस		१।)	३६
दर-कान	¼ औंस		॥)	३५
दर-कान	½ औंस		।-)	३५
गन-कर	४ औंस	४८	३)	३६
गन-कर	२ औंस	२४	१॥=)	३६
गन-कर	१ औंस	१२	॥=)	३६
सिफलो	१ औंस	४८	२॥)	३७
सिफलो	½ औंस	२४	१।-)	३७
डाबर मृतसञ्जीवनी (वाष्पयंत्र द्वारा)	२२ औंस		६)	१२ ख
,, मृतसंजीवनी (वाष्पयंत्र द्वारा)	११ औंस		३॥।)	१२ ख
,, द्राक्षासव (वाष्पयंत्र द्वारा)	२२ औंस		६॥।)	१६ ख
,, द्राक्षासव वाष्पयंत्र द्वारा	११ औंस		४=)	१६ ख
अजीरीना	३० गो०	३०	१॥।)	३७
अजीरीना	१६ गो०	१६	१)	३७
जुलाबिन	१२ गो०	६	॥=)	३७
जुलाबिन	२ गोली	१	=)	३७
लेभिना	१६ गो०	१६	१=)	३८
कृमी हन	१२ गो०	६	१।)	३८
कृमी-हन	६ गोली	३	॥≡)	३८
जूड़ीताप	४ औंस	१६	३॥)	४ क
जूड़ीताप	२ औंस	८	१॥।=)	४ क
जूड़ीताप	१ औंस	४	१)	४ क
डाबर पुराने मलेरिया बुखारकी गोली	२४ गो०	२४	१॥।)	३८
डाबर पुराने मलेरिया बुखार की गोली	१२ गो०	१२	१)	३८

वस्तु का नाम	वजन	मात्रा	मूल्य	पृष्ठ नं०
पुदीना	३० गो०	३०	१॥=)	३९
पुदीना	६ गोली	६	।=)॥	३९
लाल-शर	४ आउंस	३२	१)	३६ क
लाल-शर	२ औंस	१६	॥-)	३६ क
लाल-शर	½ औंस	४	≡)	३६ क
रीनोविन	६० गो०	३०	१॥।)	३८
स्वप्नहरी	३० गो०	३०	१॥=)	३६
स्वप्नहरी	१४ गो०	१४	॥।=)	३६
सरबाइना	१२ टि०	१२	।≡)	४०
सरबाइना	३ टि०	३	=)	४०
दर-दांत	¼ औंस		॥।)	३९
दर-दांत	⅛ औंस		।≡)	३९
डाबर पायरियाक्योर	१ औंस		॥।)	४१
डाबर पायरियाक्योर	½ औंस		।≡)	४१
मारू-बाम	१ औंस		१॥।=)	४१
मारू-बाम	½ औंस		१)	४१
मारू-बाम	१ ड्राम		≡)॥	४१
आइनोला	½ औंस		।≡)	४०
आइनोला	⅛ औंस		=)	४०
रिंग-रिंग	½ औंस		॥)	२८ क
रिंग-रिंग	¼ औंस		।)	२८ क
खुजलीना गोली	४० गो०		॥।=)	४२
खुजलीना तेल	१ औंस		१)	४१
खुजलीना तेल	½ औंस		॥-)	४१
हील-एक मरहम	१ औंस		॥।-)	२८ ख
हील-एक मरहम	⅛ औंस		≡)	२८ ख
डाबर घेघेमें खानेकी दवा	१ औंस	१६	॥।-)	४२
डाबर घेघे पर लगाने की दवा	½ औंस		॥)	४२
डाबर घेघेका मरहम	१ औंस		॥।)	४२

वस्तु का नाम	वजन	मात्रा	मूल्य	पृष्ठ नं०
अबिन	१ औंस	३६	१॥)	४२
प्लेगिन	३६ गो०		१।)	४३
कान-पिप	½ औंस		।≡)	४३
कान-पिप	⅛ औंस		।)	४३
गन-गन	१ औंस	३२	२॥।)	४५
गन-गन	½ औंस	१६	१॥)	४५
धारिन-मरहम	१ औंस		॥=)	४४
धारिन-टेबलेट	६ टि०		।=)	४४
कीट-हन	५० टि०		॥।)	४४
कीट-हन	१२ टि०		।)	४४

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
रस—			
डाबर अग्निकुमाररस	एक तोला	॥-)	१८
,, अग्निकुमार रस	पांच तोला	२॥=)॥	१८
,, अग्निसंदीपन रस	आधा तोला	।)॥	१८
,, अग्निसंदीपन रस	अढ़ाई तोला	१।)	१८
,, अगस्त्य सूतराज	चौथाई तोला	॥)	१८
,, अगस्त्य सूतराज	एक तोला	१॥।)	१८
,, अजीर्णकराटकरस	एक तोला	॥-)	१८
,, अजीर्णकराटकरस	पांच तोला	२॥=)॥	१८
,, अश्वकंचुकी रस	चौथाई तोला	≡)॥	१८
,, अश्वकंचुकी रस	एक तोला	॥।)	१८
,, आनन्द भैरवरस	चौथाई तोला	।)	१८
,, आनन्दभैरव रस	एक तोला	॥।=)	१८
,, इच्छाभेदी रस	चौथाई तोला	≡)	१८
,, इच्छाभेदी रस	एक तोला	॥=)	१८
,, उदरामयसर्वाङ्ग सुन्दर रस	आधा तोला	।=)	१८
,, उदरामयसर्वाङ्ग सुन्दर रस	अढ़ाई तोला	१॥≡)॥	१८
,, कनक सुन्दर रस	चौथाई तोला	≡)	१८

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर कनक सुन्दर रस	एक तोला	॥=)	१८
,, कफकेतु रस	चौथाई तोला	≡)	१९
,, कफकेतु रस	एक तोला	॥=)	१९
,, कल्याण सुन्दर रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२॥।)	१९
,, कल्याण सुन्दर रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	८)	१९
,, कस्तूरी भैरव रस (बृ०) (स्वर्णयुक्त)	⅛ तोला	२॥)	१९
,, कस्तूरीभैरव रस (बृ०) (स्वर्णयुक्त)	आधा तोला	६॥।)	१९
,, कस्तूरीभैरव रस (स्वल्प)	⅛ तोला	१॥)	१९
,, कस्तूरीभैरव रस (स्वल्प)	आधा तोला	५॥)	१९
,, कर्पूर रस (अहिफेन संयुक्त)	आधा तोला	।=)।	१९
,, कर्पूर रस (अहिफेन संयुक्त)	एक तोला	१॥)	१९
,, कुमार कल्याण रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२॥।)	१९
,, कुमार कल्याण रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	८)	१९
,, कुष्ठकुठार रस	चौथाई तोला	॥=)	१९
,, कुष्ठकुठार रस	एक तोला	२।)	१९
,, कृमिमुद्गर रस	चौथाई तोला	≡)	१९
,, कृमिमुद्गर रस	एक तोला	॥=)	१९
,, कृष्णचतुर्मुख रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२।)	१९
,, कृष्णचतुर्मुख रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	६॥)	१९
,, क्रव्याद रस	चौथाई तोला	≡)॥	१९
,, क्रव्याद रस	एक तोला	॥।)	१९
,, गर्भपाल रस	चौथाई तोला	॥=)	१९
,, गर्भपाल रस	एक तोला	२।)	१९

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर गर्भविलास रस	चौथाई तोला	।=)	१९
,, गर्भविलास रस	एक तोला	१।)	१९
,, गन्धक रसायन	आधा तोला	॥)॥	२०
,, गन्धक रसायन	एक तोला	१)	२०
,, गन्धक रसायन	अढ़ाई तोला	२।=)	२०
,, गुल्मकालानल रस	आधा तोला	॥)॥	२०
,, गुल्मकालानल रस	एक तोला	१)	२०
,, गुल्मकालानल रस	अढ़ाई तोला	२।=)	२०
,, ग्रहणी कपाट रस	आधा तोला	॥≡)	२०
,, ग्रहणी कपाट रस	एक तोला	१।)	२०
,, ग्रहणी कपाट रस	अढ़ाई तोला	३)	२०
,, गङ्गाधर रस	चौथाई तोला	।-)	२०
,, गङ्गाधर रस	एक तोला	१=)	२०
,, चन्द्रकला रस	चौथाई तोला	॥।)	२०
,, चन्द्रकला रस	एक तोला	२॥।)	२०
,, चन्द्रामृत रस	आधा तोला	॥)	२०
,, चन्द्रामृत रस	अढ़ाई तोला	२।=)	२०
,, चन्द्रशेखर रस	चौथाई तोला	।-)	२०
,, चन्द्रशेखर रस	एक तोला	१=)	२०
,, चतुःषष्ठीप्रहरी पिपली	चौथाई तोला	।-)	२०
,, चतुषष्ठीप्रहरी पिपली	एक तोला	१=)	२०
,, जयमंगल रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२।)	२०
,, जयमंगल रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	६॥)	२०
,, जलोदरारि रस	चौथाई तोला	॥=)	२०
,, जलोदरारि रस	एक तोला	२।)	२०
,, ज्वरारिअभ्र रस	चौथाई तोला	।-)	२०
,, ज्वरारिअभ्र रस	एक तोला	१=)	२०
,, तारकेश्वर रस	चौथाई तोला	॥=)॥	२१
,, तारकेश्वर रस	एक तोला	२॥)	२१
,, तालकेश्वर रस	चौथाई तोला	॥=)	२१
,, तालकेश्वर रस	एक तोला	२।)	

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर त्रिभुवनकीर्त्ति रस	चौथाई तोला	≡)॥	२०
,, त्रिभुवनकीर्त्ति रस	एक तोला	॥≡)	२०
,, त्रलोक्य चिन्तामणि रस	एक माशा	४)	२०
,, त्रलोक्य चिन्तामणि रस	तीन माशा	११।।।)	२०
,, नागार्जुनाभ्र रस	चौथाई तोला	।।।≡)	२१
,, नागार्जुनाभ्र रस	एक तोला	३॥)	२१
,, नाराच रस	चौथाई तोला	॥=)	२१
,, नाराच रस	एक तोला	२।)	२१
,, नारसिंह रस	चौथाई तोला	।=)	२१
,, नारसिंह रस	एक तोला	१।)	२१
,, नष्टपुष्पान्तक रस	चौथाई तोला	।।।=)	२१
,, नष्टपुष्पान्तक रस	एक तोला	३।)	२१
,, नित्यानन्द रस	चौथाई तोला	≡)॥	२१
,, नित्यानन्द रस	एक तोला	।।।)	२१
,, नृपतिवल्लभ रस	चौथाई तोला	।-)॥	२१
,, नृपतिवल्लभ रस	एक तोला	१।)	२१
,, पंचामृत रस	चौथाई तोला	।=)	२१
,, पंचामृत रस	एक तोला	१।)	२१
,, प्रताप लंकेश्वर रस	चौथाई तोला	॥=)	२१
,, प्रताप लंकेश्वर रस	एक तोला	२।)	२१
,, प्राणेश्वर रस	आधा तोला	।=)	२२
,, प्राणेश्वर रस	अढ़ाई तोला	१॥≡)	२२
,, प्रवाल पंचामृत रस	एक माशा	१)	२२
,, प्रवाल पंचामृत रस	तीन माशा	२।।।-)	२२
,, पाशुपतास्त्र रस	चौथाई तोला	।=)	२१
,, पाशुपतास्त्र रस	एक ताला	१।)	२१
,, पीयूषवल्ली रस	चौथाई तोला	।≡)	२१
,, पीयूषवल्ली रस	एक तोला	१॥)	२१
,, पुनर्नवामण्डूर	चौथाई तोला	।-)	२१
,, पुनर्नवामण्डूर	एक तोला	१=)	२१
,, वसन्तमालतीरस (स्व०यु०)	एक माशा	१॥)	२२
डाबर वसन्तमालतीरस (स्व०यु०)	तीन माशा	४।)	२२
,, वसन्त कुसुमाकर रस	एक माशा	२।।।)	२२
,, वसन्त कुसुमाकर रस	नीन माशा	७।।)	२२
,, वातगजांकुश रस	चौथाई तोला	।=)	२२
,, वातगजांकुश रस	एक तोला	१।)	२२
,, बोल पर्पटी	चौथाई तोला	।≡)	२३
,, बोल पर्पटी	एक तोला	१।।)	२३
,, बालरोगान्तक रस	चौथाई तोला	।=)	२२
,, बालरोगान्तक रस	एक तोला	१।)	२२
,, बड़वानल रस	चौथाई तोला	।।।)	२२
,, बड़वानल रस	एक तोला	२।।।)	२२
,, बेताल रस	चौथाई तोला	।=)	२२
,, बेताल रस	एक तोला	१।)	२२
,, महाज्वरांकुश रस	चौथाई तोला	≡)॥	२३
,, महाज्वरांकुश रस	एक तोला	।।।)	२३
,, महामृत्युञ्जय रस	चौथाई तोला	।।।)	२३
,, महामृत्युञ्जय रस	एक तोला	२।।।)	२३
,, मृत्युञ्जय रस	चौथाई तोला	।)	२३
,, मृत्युञ्जय रस	एक तोला	।।।=)	२३
,, मृगाङ्क रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	४)	२३
,, मृगाङ्क रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	११।।।)	२३
,, योगेन्द्र रस	एक माशा	२।)	२३
,, योगेन्द्र रस	तीन माशा	६॥)	२३
,, रस माणिक्य (भे० र०)	चौथाई तोला	।।।)	२३
,, रस माणिक्य "	एक तोला	२।।।)	२३
,, रस माणिक्य (र० चं०)	चौथाई तोला	१)	२३
,, रस माणिक्य "	एक तोला	३)	२३
,, रसपुष्प (सुधानिधिरस)	चौथाई तोला	॥)	२३
,, रसपुष्प (सुधानिधिरस)	एक तोला	१।।।)	२३
,, रस कर्पूर	चौथाई तोला	।≡)	२३
,, रस कर्पूर	एक तोला	१॥)	२३

वस्तु का न म	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं:
डाबर रस पीपरी (कस्तूरीयुक्त)	दो रत्ती	-)॥	२३
,, रस पीपरी (कस्तूरीयुक्त)	छ रत्ती	≡)	२३
,, रस पीपरी (कस्तूरीयुक्त)	एक तोला	२।)	२३
,, रसराज रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	१।॥)	२४
,, रसराज रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	५)	२४
,, रामबाण रस	एक तोला	॥=)	२३
,, रामबाण रस	पांच तोला	३)	२३
,, लघुमालिनी बसन्त रस	चौथाई तोला	॥)	२४
,, लघुमालिनी बसन्त रस	एक तोला	१॥।)	२४
,, लक्ष्मीविलास रस	चौथाई तोला	॥-)	२४
,, लक्ष्मीविलास रस	एक तोला	२)	२४
,, लीलाविलास रस	चौथाई तोला	।≡)॥	२४
,, लीलाविलास रस	एक तोला	१॥=)	२४
,, लोकनाथ रस (बृ०)	चौथाई तोला	।=)	२४
,, लोकनाथ रस (बृ०)	एक तोला	१।)	२४
,, विद्याधराभ्र रस	चौथाई तोला	।≡)॥	२२
,, विद्याधराभ्र रस	एक तोला	१॥=)	२२
,, विरेचन सर्वाङ्ग सुन्दर	तीन माशा	।)॥	२२
,, विरेचन सर्वाङ्ग सुन्दर	एक तोला	१)	२२
,, बृहत् पूर्णचन्द्र रस	एक माशा	॥।=)	२२
,, बृहत् पूर्णचन्द्र रस	तीन माशा	२॥)	२२
,, बृहत् वातचिन्तामणि (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२।)	२२
,, बृहत् वातचिन्तामणि (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	६॥)	२२
,, बृहत् बंगेश्वर	एक माशा	१।=)	२३
,, बृहत् बंगेश्वर	तीन माशा	४)	२३
,, शुक्रवल्लभ रस	चौथाई तोला	१।=)	२५
,, शुक्रवल्लभ रस	एक तोला	५।)	२५
,, शिरःशूलाद्रिवज्र रस	आधा तोला	।=)	२५
,, शिरःशूलाद्रिवज्र रस	अढ़ाई तोला	१॥।)	२५

वस्तु का नाम	वज़न	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर शोथकालानल रस	चौथाई तोला	।-)	२४
,, शोथकालानल रस	एक तोला	१=)	२४
,, श्वासकुठार रस	चौथाई तोला	≡)॥	२५
,, श्वासकुठार रस	एक तोला	॥=)	२५
,, श्वासचिन्तामणि रस (स्वर्ण)	एक माशा	१।=)	२५
,, श्वासचिन्तामणि रस (स्वर्ण)	तीन माशा	४)	२५
,, श्रृङ्गाराभ्र रस	चौथाई तोला	।=)	२४
,, श्रृङ्गाराभ्र रस	एक तोला	१।)	२४
,, सन्निपात भैरव रस	चौथाई तोला	।=)	२४
,, सन्निपात भैरव रस	एक तोला	१।)	२४
,, समीर पन्नग रस	चौथाई तोला	१≡)	२४
,, समीर पन्नग रस	एक तोला	४॥)	२४
,, सिद्ध प्राणेश्वर रस	आधा तोला	॥=)	२४
,, सिद्ध प्राणेश्वर रस	अढ़ाई तोला	२॥।=)	२४
,, सूतिका विनोद रस	आधा तोला	॥)	२४
,, सूतिका विनोद रस	अढ़ाई तोला	२।=)	२४
,, स्मृतिसागर रस	चौथाई तोला	॥=)	२४
,, स्मृतिसागर रस	एक तोला	२।=)	२४
,, स्वच्छन्द भैरव रस	चौथाई तोला	≡)॥	२५
,, स्वच्छन्द भैरव रस	एक तोला	॥।)	२५
,, सूतिकाभरण रस (स्व०यु०)	एक माशा	२।)	२५
,, सूतिकाभरण रस (स्व०यु०)	चौथाई तोला	६॥)	२५
,, सोमनाथ रस	चौथाई तोला	।=)	२४
,, सोमनाथ रस	एक तोला	१।)	२४
,, सोमनाथ रस बृ० (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२।)	२५
,, सोमनाथ रस बृ० (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	६॥)	२५
,, हेमनाथ रस (स्वर्णयुक्त)	एक माशा	२।)	२५
,, हेमनाथ रस (स्वर्णयुक्त)	तीन माशा	६॥)	

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
कूपीपक्व रस—			
डाबर ताल सिन्दूर	एक माशा	॥-)	२७
,, ताल सिन्दूर	तीन माशा	१॥)	२७
,, ताम्र सिन्दूर	एक माशा	॥-)	२७
,, ताम्र सिन्दूर	तीन माशा	१॥)	२७
,, नाग सिन्दूर	एक माशा	॥-)	२७
,, नाग सिन्दूर	तीन माशा	१॥)	२७
,, पूर्णचन्द्रोदय (षडगुणजारित)	एक माशा	१॥।)	२६
डाबर पूर्ण चन्द्रोदय (षट्गुणजारित)	तीन माशा	४)	२६
,, पूर्णचन्द्रोदय (समगुणजारित)	एक माशा	१।)	२६
,, पूर्णचन्द्रोदय (समगुणजारित)	तीन माशा	३॥)	२६
,, पूर्ण मकरध्वज (षट्गुणजरित)	एक माशा	२।)	२६
,, पूर्ण मकरध्वज (षट्गुणजारित)	तीन माशा	६॥)	२६
,, पूर्ण मकरध्वज (समगुणजारित)	एक माशा	१।)	२६
,, पूर्ण मकरध्वज (समगुणजारित)	तीन माशा	३॥)	२६
,, मकरध्वज	सात माशा	॥।-)	२६
,, मकरध्वज	चौथाईतोला	२॥=)	२६
,, मकरध्वज	एक तोला	१०।)	२६
,, मल्ल सिन्दूर	एक माशा	॥-)	२७
,, मल्ल सिन्दूर	तीन माशा	१॥)	२७
,, रस सिन्दूर (षट्गुणजारित)	एक माशा	॥-)	२६
,, रस सिन्दूर (षट्गुणजारित)	तीन माशा	२।)	२६
,, रस सिन्दूर (समगुणजारित)	एक माशा	।)॥	२६
डाबररससिन्दूर(समगुणजारित)	आधा तोला	१॥)	२६
,, रजत सिन्दूर	एक माशा	॥)	२७
,, रजत सिन्दूर	तीन माशा	१।=)	२७
,, स्वर्ण सिन्दूर (षट्गुणजारित)	एक माशा	१॥।)	२६
,, स्वर्ण सिन्दूर (षट्गुणजारित)	तीन माशा	५)	२६
,, स्वर्ण सिन्दूर (समगुणजारित)	एक माशा	॥=)	२६
,, स्वर्ण सिन्दूर (समगुणजारित)	तीन माशा	१॥।)	२६
बटीवर्ग—			
डाबर अमरसुन्दरीबटी	आधा तोला	।)	९
,, अमरसुन्दरी बटी	अढ़ाई तोला	१=)	९
,, अग्नितुण्डी बटी	आधा तोला	।-)	९
,, अग्नितुण्डी बटी	अढ़ाई तोला	१।-)	९
,, आरोग्य वर्द्धिनी बटी	आधा तोला	।=)	९
,, आरोग्य वर्द्धिनी बटी	अढ़ाई तोला	१॥=)	९
,, एलादि बटी	आधा तोला	।)	९
,, एलादि बटी	अढ़ाई तोला	१=)	९
,, कास लवङ्गादि बटी	आधा तोला	।)	९
,, कास लवङ्गादि बटी	अढ़ाई तोला	१=)	९
,, खदिर बटी	आधा तोला	।-)	९
,, खदिर बटी	अढ़ाई तोला	१।-)	९
,, चन्द्रप्रभा बटी	आधा तोला	।-)	१०
,, चन्द्रप्रभा बटी	एक तोला	॥-)	१०
,, चन्द्रप्रभा बटी	अढ़ाई तोला	१।=)	१०
,, चित्रकादि बटी	अढ़ाई तोला	।-)	१०
,, चित्रकादि बटी	दस तोला	१=)	१०
,, ब्राह्मी बटी	चौथाई तोला	१)	१०
,, ब्राह्मी बटी	एक तोला	३॥।)	१०

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं॰
डाबर भुवनेश्वर बटी	अढ़ाई तोला	।)	१०
,, भुवनेश्वर बटी	दस तोला	।।।=)	१०
,, मकरध्वज बटी	एक माशा	।।=)	१०
,, मकरध्वज बटी	तीन माशा	१।।।)	१०
,, मरिचादि बटी	आधा तोला	≡)	१०
,, मरिचादि बटी	अढ़ाई तोला	।।।=)	१०
,, महाशङ्ख बटी	आधा तोला	।)।।	१०
,, महाशङ्ख बटी	एक तोला	।।)	१०
,, महाशङ्ख बटी	अढ़ाई तोला	१-)।।	१०
,, मण्डूर बटक	आधा तोला	।)।।	१०
,, मण्डूर बटक	एक तोला	।।)	१०
,, मण्डूर बटक	अढ़ाई तोला	१-)।।	१०
,, रजःप्रवर्तिनी बटी	चौथाई तोला	।-)।।	१०
,, रजःप्रवर्तिनी बटी	एक तोला	१।)	१०
,, रसोन बटी	अढ़ाई तोला	।।)	१०
,, रसोन बटी	दस तोला	६।।।)	१०
,, राज (गंधक) बटी	अढ़ाई तोला	।)।।	१०
,, राज (गंधक) बटी	दस तोला	१)	१०
,, लवङ्गादि बटी	आधा तोला	।)।।	१०
,, लवङ्गादि बटी	एक तोला	।।)	१०
,, लवङ्गादि बटी	अढ़ाई तोला	१=)	१०
,, सौभाग्य बटी	चौथाई तोला	।-)	१०
,, सौभाग्य बटी	एक तोला	१=)	१०
,, संजीवनी बटी	आधा तोला	।)।।	१०
,, संजीवनी बटी	एक तोला	।।)	१०
,, संजीवनी बटी	अढ़ाई तोला	१=)	१०
,, क्षुधावर्द्धक बटी	अढ़ाई तोला	।)।।	१०
,, क्षुधावर्द्धक बटी	दस तोला	१)	१०
अवलेह—			
डाबर अगस्त्य हरीतकी	दस तोला	।।।=)	६
,, कुटजावलेह	आधा पाव	।।।-)	५

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं॰
डाबर कुटजावलेह	एक पाव	१।=)	५
,, कंटकारी अवलेह	आधा पाव	१)	५
,, कंटकारी अवलेह	एक पाव	१।।।)	५
,, च्यवनप्राश अवलेह	आधा पाव	।।।=)	१२क
,, च्यवनप्राश अवलेह	एक पाव	१।।=)	१२क
,, दाडिमाद्यवलेह	आधा पाव	१≡)	५
,, दाडिमाद्यवलेह	एक पाव	२=)	५
,, मृगमदाद्यवलेह	अढ़ाई तोला	।।।=)	५
,, मृगमदाद्यवलेह	आधा पाव	३।)	५
,, वासावलेह (बृहत्)	आधा पाव	।।।=)	५
,, वासावलेह (बृहत्)	एक पाव	१।।=)	५
,, ब्राह्मरसायन	आधा पाव	१-)	५
,, ब्राह्मरसायन	एक पाव	२)	५
शिलाजीत—			
डाबर शिलाजीत	एक तोला	।-)	२६
,, शिलाजीत	पांच तोला	१।)	२६
तैलादि—			
डाबर इरिमेदादि तैल	एक छटांक	।।≡)	११
,, काशीसादि तैल	अढ़ाई तोला	।=)	११
,, कुब्ज प्रसारिणी तैल	एक छटांक	।।।-)	११
,, गुडूचि तैल	एक छटांक	।।-)	११
,, चन्दनादि तैल	एक छटांक	१।)	११
,, चन्दनादि तैल	आधा पाव	२=)	११
,, तिला	¾ तोला	२)	११
,, दशमूल तैल (बृहत्)	अढ़ाई तोला	।=)	११
,, निर्गुण्डी तैल	एक छटांक	।।=)	११
,, पंचामृत तैल	एक छटांक	।।-)	११
,, ब्राह्मी तैल	एक छटांक	।।)	११
,, मध्यमनारायण तैल	अढ़ाई तोला	।=)	१२
,, मध्यमनारायण तैल	एक छटांक	।।≡)	१२

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर महानारायण तेल	एक छटांक	॥।-)	१२
,, महानारायण तेल	आधा पाव	१॥)	१२
,, महाविषगर्भ तेल	एक छटांक	॥।)	१२
,, महाविषगर्भ तेल	दो छटांक	१।=)	१२
,, महाभृङ्गराज तेल	पांच तोला	॥।)	१२
,, महामाष तेल	एक छटांक	१)	१२
,, मरिचादि तेल	एक छटांक	॥≡)	१२
,, मरिचादि तेल	दो छटांक	१।)	१२
,, रसोन तेल	एक तोला	।-)	१२
,, लाक्षादि तेल	एक छटांक	॥।-)	१२
,, लाक्षादि तेल	दो छटांक	१॥)	१२
,, लक्ष्मी विलास तेल	अढ़ाई तोला	॥=)	१२
,, विष्णु तेल (बृहत)	अढ़ाई तोला	।=)	१२
,, विष्णुतेल (बृहत)	पांच तोला	॥≡)	१२
,, श्रीगोपाल तेल	एक तोला	॥)	१२
,, श्रीगोपाल तेल	पांच तोला	२।=)	१२
,, षड्बिन्दु तेल	एक तोला	=)॥	१२
,, षड्बिन्दु तेल	पांच तोला	॥=)	१२
,, सर्वगुण तेल	एक औंस	।-)	१२
,, सैन्धवादि तेल (बृहत)	अढ़ाई तोला	।=)	१३
,, हिमसागर तेल	एक छटांक	१)	१३
,, हिमसागर तेल	दो छटांक	१॥।=)	१३
,, क्षार तेल	एक तोला	।=)	१३
चूर्ण—			
डाबर अग्निमुख चूर्ण	एक औंस	।-)॥	७
,, अग्निमुख चूर्ण	दो औंस	॥=)	७
,, अश्वगन्धादि चूर्ण	४ तोला	॥)	७
,, अष्टाङ्गलवण चूर्ण	पांच तोला	॥)	७
,, अविपत्तिकर चूर्ण	पांच तोला	।=)	७
,, अभयालवण चूर्ण	एक तोला	≡)	७
,, एलादि चूर्ण	पांच तोला	॥)	७

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर कामदेव चूर्ण	पांच तोला	॥-)	७
,, कामदेव चूर्ण	दस तोला	१)	७
,, गङ्गाधर चूर्ण (बृहत)	पांच तोला	।≡)	७
,, गङ्गाधर चूर्ण (बृहत)	दस तोला	॥।-)	७
,, तालीसादि चूर्ण	अढ़ाई तोला	।-)	८
,, त्रिफला चूर्ण	पांच तोला	≡)	८
,, त्रिफला चूर्ण	दस तोला	।-)	८
,, दाड़िमाष्टक चूर्ण	पांच तोला	।=)	८
,, दाड़िमाष्टक चूर्ण	दस तोला	॥≡)	८
,, धन्वन्तरी लवण चूर्ण	अढ़ाई तोला	।=)	८
,, धन्वन्तरी लवण चूर्ण	पांच तोला	॥≡)	८
,, नमक सुलेमानी	एक औंस	।-)॥	८
,, नमक सुलेमानी	दो औंस	॥=)	८
,, नारसिंह चूर्ण	पांच तोला	॥)	८
,, पुष्यानुग चूर्ण	पांच तोला	॥=)	८
,, वज्रक्षार चूर्ण	एक तोला	।)	८
,, भास्कर लवण चूर्ण	पांच तोला	।≡)	८
,, भास्कर लवण चूर्ण	दस तोला	॥।-)	८
,, भास्कर लवण चूर्ण	आधा सेर	२।=)	८
,, यवानीखांडव चूर्ण	पांच तोला	॥)	८
,, लवङ्गादि चूर्ण	पांच तोला	॥।=	८
,, लवङ्गादि चूर्ण	दस तोला	१॥=)	८
,, शृंग्यादि चूर्ण	अढ़ाई तोला	।-)	९
,, शृंग्यादि चूर्ण	पांच तोला	॥-)	९
,, सारस्वत चूर्ण (बृहत)	अढ़ाई तोला	॥)	९
,, सौंफादि (पञ्चसकार) चूर्ण	अढ़ाई तोला	≡)॥	९
,, सैन्धवादि चूर्ण	पांच तोला	॥)	९
,, सुदर्शन चूर्ण	पांच तोला	॥-)॥	९
,, सुदर्शन चूर्ण	दस तोला	१)	९
,, सितोपलादि चूर्ण	अढ़ाई तोला	॥=)	९
,, सितोपलादि चूर्ण	पांच तोला	१)	९

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर हिंग्वष्टक चूर्ण	अढ़ाई तोला	।)॥	६
,, हिंग्वष्टक चूर्ण	पाँच तोला	॥)	६
भस्म—			
डाबर अभ्रक भस्म	तीन माशा	॥)	१५
,, अभ्रक भस्म	एक तोला	१।।।=)	१५
,, अभ्रक भस्म (शतपुटी)	एक माशा	।।।)	१५
,, अभ्रक भस्म (शतपुटी)	तीन माशा	२=)	१५
,, कांस्य भस्म	तीन माशा	।)	१५
,, कांस्य भस्म	एक तोला	।।।=)	१५
,, ताम्र भस्म	एक माशा	॥)	१५
,, ताम्र भस्म	तीन माशा	१।=)	१५
,, नाग भस्म	तीन माशा	॥)	१५
,, नाग भस्म	एक तोला	१।।।=)	१५
,, पीतल भस्म	तीन माशा	≡)	
,, पीतल भस्म	एक तोला	॥=)	
,, प्रवाल भस्म	तीन माशा	।=)	१५
,, प्रवाल भस्म	एक तोला	१।)	१५
,, बङ्ग भस्म (सोरकयोगेन)	तीन माशा	॥)	१५
,, बङ्ग भस्म (सोरकयोगेन)	एक तोला	१।।।=)	१५
,, बङ्ग भस्म (क्षारमारित)	तीन माशा	।=)	१५
,, बङ्ग भस्म (क्षारमारित)	एक तोला	१।=)	१५
,, बङ्ग भस्म (हरितालेन)	तीन माशा	।।।=)	१६
,, बङ्ग भस्म (हरितालेन)	एक तोला	३।=)	१६
,, बराटक भस्म	तीन माशा	=)	१६
,, बराटक भस्म	एक तोला	।=)	१६
,, मण्डूर भस्म	तीन माशा	।-)	१६
,, मण्डूर भस्म	एक तोला	१=)	१६
,, मयूरपंख भस्म	एक माशा	।=)	१६
,, मयूरपंख भस्म	तीन माशा	१)	१६
,, मुक्ता (मोती) भस्म	एक माशा	३।।।)	१६
,, मुक्ता (मोती) भस्म	तीम माशा	११)	१६

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर मुक्ताशुक्ति (मोती सीप) भस्म	एक माशा	=)॥	१६
,, मुक्ताशुक्ति (मोती सीप) भस्म	तीन माशा	।=)॥	१६
,, मृगश्रृङ्ग भस्म	तीन नाशा	≡)	१६
,, मृगश्रृङ्ग भस्म	एक तोला	॥≡)॥	१६
,, यशद भस्म (हरिताल योग)	तीन माशा	।)॥	१६
,, यशद भस्म (हरिताल योग)	एक तोला	१)	१६
,, यशद भस्म (पुष्पाञ्जन)	आधा तोला	।=)	१६
,, यशद भस्म (पुष्पाञ्जन)	एक तोला	॥≡)	१६
,, रौप्य (चांदी) भस्म	एक माशा	॥।)	१६
,, रौप्य (चांदी) भस्म	तीन माशा	२=)	१६
;; रौप्य माक्षिक भस्म	तीन माशा	।-)	१६
,, रौप्य माक्षिक भस्म	एक तोला	१=)	१६
,, लौह भस्म (वनस्पति योग)	तीन माशा	।=)	१६
,, लौह भस्म (वनस्पति योग)	एक तोला	१।=)	१६
,, लौह भस्म (मनः शिलायोग)	तीन माशा	१)	१७
,, लौह भस्म (मनः शिलायोग)	एक तोला	३।।।=)	१७
,, लौह भस्म (हिंगुल योग)	तीन माशा	१)	१७
,, लौह भस्म (हिंगुल योग)	एक तोला	३।।।=)	१७
,, शङ्ख भस्म	तीन माशा	≡)	१७
,, शङ्ख भस्म	एक तोला	॥=)	१७
,, स्वर्ण बङ्ग भस्म	एक माशा	॥)	१७
,, स्वर्ण बङ्ग भस्म	तीन माशा	१।=)	१७
,, स्वर्ण भस्म	एक माशा	१२)	१७
,, स्वर्ण भस्म	तीन माशा	३५॥)	१७
,, स्वर्ण माक्षिक भस्म	तीन माशा	।-)	१७
,, स्वर्ण माक्षिक भस्म	एक तोला	१=)	१७
,, हरिताल (गोदन्ती) भस्म	तीन माशा	=)	१७
,, हरिताल (गोदन्ती) भस्म	एक तोला	।=)	१७

वस्तु का नाम	वज़न	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर हरिताल पत्राङ्क (तबकी) भस्म	एक माशा	।-)	१७
,, हरिताल पत्राङ्क (तबकी) भस्म	तीन माशा	।।।=)	१७
पिष्टि—			
डाबर प्रवाल पिष्टि	तीन माशा	।-)	१७
,, प्रवाल पिष्टि	एक तोला	१=)	१७
,, मुक्ता पिष्टि	एक माशा	३)	१७
,, मुक्ता पिष्टि	तीन माशा	८।।।=)	१७
,, मुक्ताशुक्ति पिष्टि	एक माशा	=)	१७
,, मुक्ताशुक्ति पिष्टि	तीन माशा	।-)	१७
घृत—			
डाबर अशोक घृत	पांच तोला	।।=)	१४
,, अश्वगन्धा घृत	पांच तोला	।।।)	१४
,, पंचतिक्त घृत	पांच तोला	।।=)	१४
,, फलकल्याण घृत	दस तोला	२।)	१४
,, ब्राह्मी घृत	दस तोला	१।।)	१४
,, महात्रिफला घृत	दस तोला	१≡)	१४
,, श्लेष्मान्तक घृत	पांच तोला	१)	१४
लौह—			
डाबर अम्लपित्तान्तक लौह	चौथाई तोला	।।)	२५
,, अम्लपित्तान्तक लौह	एक तोला	१।।।=)	२५
,, चन्दनादि लौह	चौथाई तोला	।-)।।	२५
,, चन्दनादि लौह	एक तोला	१।)	२५
,, नवायस लौह	चौथाई तोला	।-)।।	२५
,, नवायस लौह	एक तोला	१।)	२५
,, प्रदरान्तक लौह	चौथाई तोला	।)	२५
,, प्रदरान्तक लौह	एक तोला	।।।=)	२५
,, डाबर पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह	एक माशा	।।=)	२६
डाबर पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह	तीन माशा	२।।-)	२६
,, सर्वज्वरहर लौह	तीन माशा	।≡)	२६
,, सर्वज्वरहर लौह	एक तोला	१।।=)	२६
गुग्गुल—			
डाबर काञ्चनार गुग्गुल	पांच तोला	।।।=)	६
,, काञ्चनार गुग्गुल	बीस तोला	३।)	६
,, महायोगराज गुग्गुल	तीन माशा	।-)	६
,, महायोगराज गुग्गुल	एक तोला	१=)	६
,, योगराज गुग्गुल	पांच तोला	१=)	६
,, योगराज गुग्गुल	बीस तोला	४=)	६
पर्पटी—			
डाबर पञ्चामृत पर्पटी	तीन माशा	।।।-)	२७
,, पञ्चामृत पर्पटी	एक तोला	३)	२७
,, रस पर्पटी	तीन माशा	।।-)	२७
,, रस पर्पटी	एक तोला	२=)	२७
,, लौह पर्पटी	तीन माशा	।।।)	२७
,, लौह पर्पटी	एक तोला	२।।=)	२७
,, स्वर्ण पर्पटी	एक माशा	१।=)	२७
,, स्वर्ण पर्पटी	तीन माशा	४)	२७
मोदक, पाक—			
डाबर अभयादि मोदक	पांच तोला	=)	५
,, एरण्ड पाक	दस तोला	१।।)	६
,, कामेश्वर मोदक	पांच तोला	१)	६
,, कामेश्वर मोदक	दस तोला	१।।।=)	६
,, मदनानन्द मोदक	अढ़ाई तोला	।।)	६
,, मदनानन्द मोदक	दस तोला	१।।।)	६
,, मुशली पाक	दस तोला	१=)	६
,, सुपारी पाक	दस तोला	।।।)	६
,, सौभाग्य शुण्ठी पाक	दस तोला	१)	६
,, सौभाग्य शुण्ठी पाक	आधा सेर	३।।।=)	६

वस्तुका नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
अञ्जन तथा वर्त्ती—			
डाबर चन्द्रोदया वर्त्ती	तीन माशा	=)॥	२८
,, चन्द्रोदया वर्त्ती	एक तोला	॥)	२८
,, मियामी (ममीरे का सुरमा)	चौथाई तोला	|-)	२८
,, मियामी (ममीरेका सुरमा)	एक तोला	१=)	२८
द्राव—			
डाबर महाद्राव	एक तोला	॥)	२८
,, महाद्राव	अढ़ाई तोला	१=)	२८
,, शंख द्राव	एक तोला	|=)	२८
,, शंख द्राव	अढ़ाई तोला	॥|=)	२८
धूप—			
डाबर सुगंधित धूप	डेढ़ छटांक	|=)	४६
आसव व अरिष्ट—			
डाबर अरविन्दासव	आधा पाव	॥)	४
,, अरविन्दासव	आधा सेर	१॥)	४
,, अशोकारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४ ख
,, अशोकारिष्ट	आधा सेर	१॥)	४ ख
,, अशोकारिष्ट	तीन पाव	२=)	४ ख
,, अश्वगन्धारिष्ट	एक पाव	१)	१
,, अश्वगन्धारिष्ट	आधा सेर	१॥|=)	१
,, अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यरिष्ट)	एक पाव	॥|≡)	१
,, अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यरिष्ट)	आधा सेर	१॥)	१
,, अभयारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	१
,, अभयारिष्ट	आधा सेर	१॥)	१
,, अमृतारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	२
,, अमृतारिष्ट	आधा सेर	१॥)	२
,, उशीरासव	एक पाव	॥|≡)	२
,, उशीरासव	आधा सेर	१॥)	२
,, कनकासव	एक पाव	॥|≡)	४
,, कनकासव	आधा सेर	१॥)	४
डाबर कुमार्यासव	एक पाव	॥|≡)	२
,, कुमार्यासव	आधा सेर	१॥)	२
,, कुमार्यासव	तीन पाव	२=)	२
,, कुटजारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	२
,, कुटजारिष्ट	आधा सेर	१॥)	२
,, खदिरारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४
,, खदिरारिष्ट	आधा सेर	१॥)	४
,, चन्दनासव	एक पाव	॥|≡)	२
,, चन्दनासव	आधा सेर	१॥)	२
,, जीरकाद्यरिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४
,, जीरकाद्यरिष्ट	आधा सेर	१॥)	४
,, दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त)	एक पाव	१॥-)	२
,, दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त)	आधा सेर	३)	२
,, द्राक्षासव	एक पाव	१=)	१६क
,, द्राक्षासव	आधा सेर	२)	१६क
,, द्राक्षासव	¾ सेर	२॥)	१६क
,, द्राक्षारिष्ट	एक पाव	१=)	२
,, द्राक्षारिष्ट	आधा सेर	२)	२
,, धान्यरिष्ट	एक पाव	१)	४
,, धान्यरिष्ट	आधा सेर	१॥|=)	४
,, पत्राङ्गासव	एक पाव	॥|≡)	४
,, पत्राङ्गासव	आधा सेर	१॥)	४
,, पुनर्नवारिष्ट	आधा सेर	१॥)	३
,, बब्बूलारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४
,, बब्बूलारिष्ट	आधा सेर	१॥)	४
,, बलारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४
,, बलारिष्ट	आधा सेर	१॥)	४
,, महामंजिष्ठाद्यरिष्ट	एक पाव	॥|≡)	३
,, महामंजिष्ठाद्यरिष्ट	आधा सेर	१॥)	३
,, मुस्तकारिष्ट	एक पाव	॥|≡)	४

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर मुस्तकारिष्ट	आधा सेर	१॥।)	४
,, रोहितकारिष्ट	आधा सेर	१॥।)	४
,, रक्तोत्पलारिष्ट	एक पाव	॥।≈)	३
,, रक्तोत्पलारिष्ट	आधा सेर	१॥।)	३
,, लोहासव	एक पाव	॥।-)	३
,, लोहासव	आधा सेर	१॥)	३
,, लोध्रासव	आधा सेर	१॥।)	३
,, वासकासव	एक पाव	॥।≡)	३
,, वासकासव	आधा सेर	१॥।)	३
,, सारस्वतारिष्ट (स्वर्णयुक्त)	एक पाव	२)	३
,, सारिवाद्यरिष्ट	एक पाव	१)	३
,, सारिवाद्यरिष्ट	आधा सेर	१॥।=)	३
***शोधित द्रव्य—**			
डाबर गन्धक शोधित	एक तोला	❀	२६
,, गन्धक शोधित	बीस तोला	❀	२६
,, वज्र शोधित	एक तोला	❀	२६
,, सौवीराञ्जन शोधित	एक तोला	❀	२६
***अन्यान्य वस्तुएं —**			
डाबर अजवायनका सत	आधा औंस	१)	×
,, अजवायनका तेल	चौथाई औंस	❀	१३
,, इलायचीका तेल (सिंगापुरी)	चौथाई औंस	❀	१३
,, इनफ्लुएञ्जा टेबलेट	पचीस टिकली	❀	४६
,, इनफ्लुएञ्जा टेबलेट	बारह टिकली	❀	४६
,, काड लिवर आयल	चार औंस	❀	२६
,, गुलाबारी	आधा औंस	≡)॥	२६
,, गुलाबारी	दो औंस	॥-)	२६
,, गुलाबारी	छै छटांक	१॥।≈)	२६
,, चालमोगरेका तेल	एक औंस	।-)	१३

वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
डाबर चन्दनका तेल	चौथाई औंस	❀	१३
,, टिंचर आईडिन (मेथिलेटेड)	आधा औंस	≡)॥	४६
,, टिंचर आईडिन (मेथिलेटेड)	एक पौंड	२॥।)	४६
,, थर्मामीटर	आधा मिनटका	२।≈)	४६
,, यूक्लिप्टस (नीलगिरी) आयल	चौथाई औंस	≡)	४६
,, यूक्लिप्टस (नीलगिरी) आयल	एक औंस	॥-)	४६
,, रेंडीका तेल	दो औंस	।≈)	१४
,, लौंगका तेल	चौथाई औंस	॥)।	१४
,, शुद्ध मधु	एक छटांक	।-)॥	२६
,, शुद्ध मधु	एक पाव	॥।≡)	२६
,, शुद्ध मधु	आधा सेर	१॥=)	२६
,, शुद्ध मधु १ कनस्टर	अठाइस सेर.	१०)	२६
,, सौंफका तेल	चौथाई औंस	❀	१४
श्रृङ्गार सामग्रियां—			
अलोका (आदर्श तरल महावर)	आधा औंस	=)॥	२४क
अलोका (आदर्श तरल महावर)	चार औंस	॥=)	२४क
डाबर आंवला केश तेल	दो औंस	॥)	४७
,, आंवला केश तेल	चार औंस	॥।≈)	४७
,, आंवला केश तेल	छ औंस	१।-)	४७
,, आंवला केश तेल	सोलह औंस	३)	४७
केशराज (सुगन्धित केश तेल)	आधा औंस	।-)	४८ क
केशराज (सुगन्धित केश तेल)	२¾ औंस	१॥)	४८ क
खीजा काला (काला खिजाब)	एक औंस	१=)	४८
दन्त-मुक्ता	आधा औंस	=)	३६ ख
दन्त-मुक्ता [शीशी]	अढ़ाई औंस	॥)	३६ ख
दन्त-मुक्ता [टिन]	अढ़ाई औंस	॥=)	३६ ख
नैवेद्य (सुन्दर श्रृङ्गारदान)	+	+	४५
निहारिन स्नो	एक ड्राम	।)	४८ ख
निहारिन स्नो (ब्यू बया पौट)	दो औंस	॥।=)	४८ ख

❀ जिन वस्तुओं का बिक्री दर नहीं दिया गया है उनका दर घटता-बढ़ता रहता है। + फिलहाल स्टाकमें नहीं है।
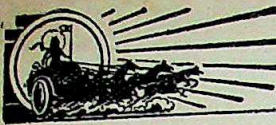
वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०	वस्तु का नाम	वजन	मूल्य	पृष्ठ नं०
निहारिन पाउडर	आधा औंस	≡)	४८ ख	शर्बत उनाब	२४ औंस	२।)	५०
निहारिन पउडर	तीन औंस	॥≡)	४८ ख	शर्बत आम	२४ औंस	२।)	५०
नरीना (नारियलका सुगन्धित तेल)	आठ औंस	१)	४८	शर्बत अनानास	२४ औंस	२।)	५०
				शर्बत ब्राह्मी	२४ औंस	२।)	५०
नरीना (नारियलका सुगन्धित तेल)	सोलह औंस	१।||≡)	४८	शर्बत गुलबनपसा	२४ औंस	२।)	५०
डाबर मस्क लेवेण्डर	एक औंस	१॥)	४६	शर्बत गुलाब	२४ औंस	२।)	५०
डाबर टलकम पाउडर	एक पौंड	१)	४६	शर्बत केवड़ा	२४ औंस	२।)	५०
डाबर यूडीकोलन	आधा औंस	॥)	४५	शर्बत अनार	२४ औंस	१।)	५०
डाबर यडीकोलम	सवा औंस	१।)	४५	शर्बत केला	२४ औंस	२।)	५०
रेरीना (रेड़ीका सुगन्धित तेल)	चार औंस	१।)	४६	शर्बत सन्तरा	२४ औंस	२।)	५०
डाबर सेकरिन प्योर	❀	❀	४६	शर्बत चन्दन	२४ औंस	२।)	५०
शर्बत खस	२४ औंस	२।)	५०	शर्बत ठण्डई	२४ औंस	२।)	५०
शर्बत उशवा	२४ औंस	२।)	५०	शर्बत अंगूर	२४ औंस	२।)	५०

डाबर आयुर्वेदीय औषधियों का वजन।

डाबर आयुर्वेदीय औषधियों का वजन ८० (अस्सी) भरी के सेरसे किया जाता है। औषधि निर्माणके उपादान जांचे हुए उच्च श्रेणीके व्यवहार किये जाते हैं! अन्य अधिकांश कार्यालयोंमें आयुर्वेदीय औषधियों का वजन ६० भरी का होता है।

नोट—हितैषी ग्राहकोंकी सेवामें सूचित किया जाता है कि वस्तुओंके मूल्यमें परिस्थिति अनुसार किसी भी समय बिना सूचनाके रद्दोबदल होना संभव है।

❀ फिलहाल स्टाकमें नहीं है।

डाबर हीरक जयन्ती

सन् १८८४-१९४४

पञ्चाङ्ग

संवत् २००२

बर्ष ६२

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०

कलकत्ता

मंगल-कामना

जगन्नियन्ताकी असीम अनुकम्पासे आपका प्रिय डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लिमिटेड, कार्यालय अपने ६० वर्षके सफल जीवनकी पूर्णताके उपलक्षमें कार्यालयके ६२ वें वर्षका डाबर पञ्चाङ्ग— डाबर हीरक जयन्ती पञ्चाङ्गके रूपमें अपने हितैषियोंकी सेवामें सप्रेम भेंट कर रहा है।

हमारी जगदीश्वरसे विनीत प्रार्थना है कि इस पञ्चाङ्गका प्रत्येक दिन हम सबोंके लिये सुख, शान्ति एवं मंगलमय हो।

प्रस्तुत पञ्चाङ्ग नवीन रूपमें प्रकाशित किया गया है। ज्योतिष सम्बन्धी उपादेय विषयोंके अतिरिक्त पञ्चाङ्ग भाग कमलदलके ऊपर चक्राकार रूपमें दोरंगा छापा गया है। सर्वसाधारणकी सुविधाके हेतु इसका क्रम हम यहां दे रहे हैं।

(१) प्रत्येक दलमें एक तिथिका ऊपरसे नीचेतक आवश्यक विवरण दिया गया है जो इस प्रकार है।
(१) तिथि, (२) वार; (३) घटि पल, (४) नक्षत्र, (५) घटि पल, (६) योग, (७) घटि पल, (८) करण, (९) घटि पल, (१०) चन्द्रराशि (११) दिन मान, (१२) सूर्योदय (१३) सूर्यास्त (१४) अंग्रेजी तारीख।
पाठकोंसे निवेदन है कि वे जिस तिथिका विवरण जानना चाहें ऊपरसे नीचेतक उस दलके विवरण को पढ़नेका कष्ट करें।

(२) कागजकी कमीके कारण एक चक्रमें ही दोनों पक्षोंका विवरण छापा गया है।

(३) ऊपरके प्रायः अर्द्धांशमें कृष्ण पक्ष तथा नीचेके अर्द्धांशमें शुक्लपक्षका विवरण दिया गया है।

(४) पर्व दिन, भद्रा एवं पंचक आदि आवश्यक विषयोंकी जानकारीके लिये चक्रके नीचे दो भागोंमें विवरण छापा गया है।

(५) पञ्चाङ्गमें जहां-जहां पर दो दिनोंतक एक ही तिथि प्रदर्शित की गई है उनका विवरण देते समय वार आगे लिख दिये गये हैं।
पञ्चाङ्गका समय काशीकी गणनाके आधार पर दिया गया है।

उपयुर्क्त पञ्चाङ्ग सम्बन्धी विशेषताओंके अतिरिक्त इस वर्ष राशि, ग्रह, नक्षत्र, कतिपय स्मृति दिवस एवं कतिपय मस्य पर्व सम्बन्धी दर्शनीय चित्र भी दिये गए हैं।

आशा है डाबर पञ्चाङ्ग प्रेमी त्रुटियोंके लिये हमें क्षमा करते हुए प्रस्तुत हीरक जयन्ती पञ्चाङ्गसे समुचित लाभ उठावेंगे तथा कार्यालयको सदाकी भांति प्रोत्साहित करेंगे।

आपके कृपाकांक्षी—

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०

कलकत्ता के संचालक।
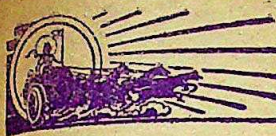
॥ श्रीगणेशायनमः ॥
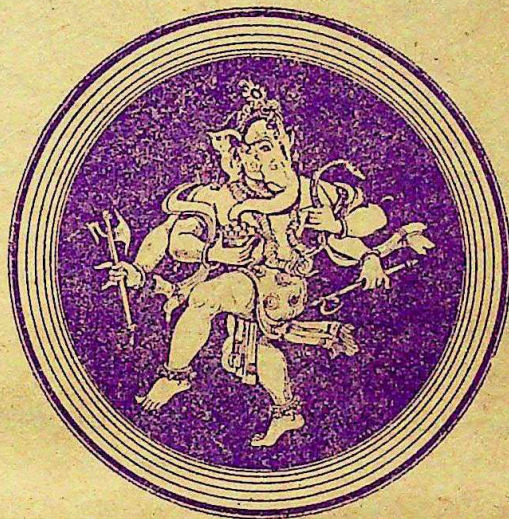
सजयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् । वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम् ॥१॥
विनायकं प्रणम्यादौ देवीं वाग्देवतां गुरुम् । संम्वत्सरफलं वक्ष्ये लोकानां हितकाम्यया ॥२॥
तिथिवारंच नक्षत्रं योगः करणमेव च । पञ्चाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥३॥
प्राप्ते नूतनवत्सरे प्रतिगृहं कुर्यात् ध्वजारोपणम् । स्नानं मङ्गलमाचरेद्द्विजवरैः सार्द्धं सुपूजोत्सवम् ॥४॥
देवानां गुरुयोषितांश्च शिशवोऽलंकार वस्त्रादिभिः । संपूज्यो गणकः फलंच श्रृणुयात्तस्माच्च लाभप्रदम् ॥५॥

श्रीशुभ सम्वत् २००२ का वर्ष फल ।

इस वर्षका प्रारंभ विलम्बनाम सम्वत्सरसे है । फलस्वरूप वृष्टि विशेष होगी, धान्यका भाव तेज रहनेपर भी प्रजा सुखी रहेगी, राष्ट्र परस्पर संग्राममें संलग्न रहेंगे और वस्त्रकी अल्पता रहेगी ।

अथ राजा गुरुका फल ।

वर्षा समयानुकूल होगी । गायें विशेष दूध देंगी । यज्ञादि तथा शुभकार्य विशेष होंगे ।

अथ मन्त्री शुक्रका फल ।

धान्यका भाव समान रहेगा । खंड वृष्टि होगी । प्रजा भयभीत रहेगी ।

अथ विश्वामानम् ।

वर्षा ५, धान्य १७, तृण १३, शीत १३, उष्ण १३, वायु ५, वृद्धि १३, क्षय १५, विग्रह १५, क्षुधा १५, तृष्णा ५, पाप १३, पुण्य १ ।

जगल्लग्नम्
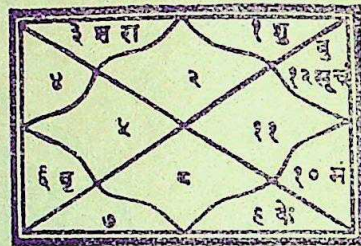
वर्षलग्नम्

जगल्लग्न तथा वर्षलग्न फलम् ।

जन्म लग्न तथा वर्ष लग्नसे जगल्लग्न ८ वें १२ वें हो तो वह वर्ष शुभदायक नहीं, तथा पुर राशिसे ८ वें १२ वें जगल्लग्न हो तो देशके लिये हानिकारक है। इससे इन दो बातोंका विचार होता है।

अष्टोत्तरीमतेन लाभ खर्च ।

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
लाभ	१४	८	१४	८	११	१४	८	१४	८	५	५	११
खर्च	२	११	८	५	२	८	११	२	११	११	११	८

विंशोत्तरीमतेन लाभ खर्च ।

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
लाभ	११	५	८	२	५	८	५	११	१४	२	२	१४
खर्च	५	१४	११	११	५	११	१४	५	११	८	८	११

लाभ खर्च देखनेकी विधि ।

लाभ खर्चके अङ्कोको मिलाकर उसमें एक अङ्क कम कर आठका भाग देनेसे शेष बचे हुए अङ्कोंका फल नीचे लिखे अनुसार जानना । १ शेषमें लाभ । २ में सौख्य । ३ में रोग । ४ में धननाश । ५ में झगड़ा । ६ में सन्मान । ७ में जय । ८ शेषमें हानि जानना ।

नवग्रहस्तोत्रम् ।

श्रीगणेशायनमः ॥ जपाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् । तमोरि सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥१॥ दधिशखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसंभवम् । नमामि शशिनं सोम शभोर्मुकुट भूषणम् ॥२॥ धरणीगर्भसभूत विद्युतकांतिसमप्रभम् । कुमारं शक्तिहस्त च मगलं प्रणमाम्यहम् ॥३॥ प्रियगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिम बुधम् । सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥४॥ देवानां च ऋषीणां च गुरुं कांचनसन्निभम् । बुद्धिभूतं त्रिलोकस्य तं नमामि बृहस्पतिम् ॥५॥ हिमकंदमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् । सर्वशस्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥६॥ नीलांजनसमाभास रविपुत्र यमाग्रजम् । छायामार्तंडसभूतं तं नमामि शनैश्चरम् ॥७॥ अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् । सिंहिकागर्भसभूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥८॥ पलाशपुष्पसंकाश तारकाग्रहमस्तकम् । रौद्रं रौद्रात्मक घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥९॥ इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत्सुसमाहितः । दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशांतिर्भविष्यति ॥१०॥ नरनारीनृपाणां च भवेद्दुःस्वप्ननाशनम् । ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ॥११॥ ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्कराग्निसमुद्भवाः । ताः सर्वाः प्रशमं यांति व्यासो ब्रूते न सशयः ॥ इति श्रीव्यासविरचितं नवग्रहस्तोत्रं संपूर्णम् ॥
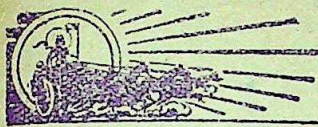
सं० २००२ के प्रत्येक मासका फल।

अधिक मास तथा चैत्र शुक्लपक्षका फल— गेहूं, जौ, मसूर, सोना, ऊनी कपड़ा और औषधि आदिका भाव सस्ता होगा। चावल, वस्त्र, वृषभ, महिष, चीनी, गुड़ आदिका भाव विशेष तेज रहेगा। यह महीना विशेष उत्तम फलदायक नहीं है। इसमें बीमारी वगैरहका भय विशेष है।

वैशाख—जौ, मसूर, चना, मटर, गेहूं, सुवर्ण और चमड़ा प्रायः सस्ता रहेगा। कपड़ा, लोहा, गुड़, चीनी, चावल, पशु, कागज आदि वस्तुओंका भाव विशेष तेजी पर जानेकी सभावना है। पवनका वेग अधिक रहेगा। हैजा आदि बीमारीका प्रकोप विशेषरूपसे रहनेकी सभावना है। कहीं-कहीं पर वृष्टि का भी योग है और कुछ स्थानोंमें दुर्भिक्षकी सभावना है। इस महीनेमें परस्पर वैर भावकी अधिकता प्रतीत होती है।

ज्येष्ठ—इस मासमें अन्नका भाव विशेष तेज होगा। आंधीका प्रकोप तथा अनेक प्रकारके उपद्रव होंगे। गर्मी अधिक पड़ेगी और कहीं-कहीं पर वर्षा होगी।

आषाढ़—इस मासमें गेहूं, जौ, उरद, सोना, चाँदीका भाव पहले सस्ता होगा तथा बादमें तेज। कहीं-कहीं पर विशेष वृष्टि होगी। आंधी व तूफानसे कहीं-कहीं पर गहरी क्षति की संभावना है।

श्रावण—ग्रह स्थितिके अनुसार इस मासका फल उत्तम नहीं है। हैजा, अतिवृष्टि या अनावृष्टिसे हानिकी अधिक सभावना है। अन्नका भाव तेज रहेगा। मीठी वस्तुओंकी भाव विशेष तेज होंगे।

भाद्रपद—इस मासमें अन्नका भाव साधारण मन्दा रहेगा। खण्ड वृष्टि होगी। कहीं-कहीं पर नदियोंके वेगसे हानि होगी। धान्योंकी हानि होगी तथा प्रजावर्गमें भय बना रहेगा राजाओंमें परस्पर द्वेष वृद्धिकी सभावना प्रतीत होती है। पश्चिम-दक्षिणके निवासियोंमें जलाभावके कारण त्राहि-त्राहि तक मच सकती है।

आश्विन—इस मासमें अन्नका भाव शुरूमें कुछ तेज होगा तथा बादमें साधारण। महीनाके मध्यभागमें भूकंप वा कोई अन्य उत्पातकी सभावना है, चोरीका भय विशेष रूपसे बना रहेगा।

कार्त्तिक—इस मासमें अन्नका भाव तेज रहेगा। वर्षा होगी जानवरोंमें कोई रोग फैलनेकी सभावना है। कहीं-कहीं पर उत्पात होगा।

मार्गशीर्ष—इस मासमें धान्यकी अधिकता होगी। राष्ट्रों में परस्पर विचित्र नीति बरती जायगी। कहीं-कहीं पर वर्षा विशेष रूपसे होगी।

पौष—ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार इस मासकी स्थिति चिन्ता-जनक है। इसमें तीन चार ग्रहों का योग है तथा मंगल शनि वक्री भी हुए हैं जिसके परिणाम स्वरूप इस मासमें प्लेग, युद्ध, दुर्भिक्ष और अन्नकी महगी इत्यादिसे मनुष्यको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

माघ—ग्रह स्थितिके अनुसार यह मास भी पशु, पक्षी तथा मनुष्योंके लिये उत्तम नहीं है। इस मासमें किसी देशमें अकालसे त्राहि २ मचनेकी संभावना है राष्ट्रोंमें विग्रहकी प्राबल्यता रहेगी। किसी देशमें उत्पातके कारण गहरी क्षतिकी संभावना है।

फाल्गुन—इस मासमें कहीं-कहीं वर्षा का योग है। मनुष्यों तथा जानवरोंमें विशेष रोग फैलनेके भी योग उपस्थित हैं। ओले वगैरहसे खेतोंमें हानिकी सभावना है। शासक तथा प्रजा वर्गमें अनबन रहेगी।

चैत्र कृष्ण—इस पक्षमें पवन (आंधी), ग्रन्थिक ज्वर, प्लेग, हैजा तथा चेचक आदिसे हानिकी अधिक संभावना है। अन्नादिका भाव प्रायः पूर्व मास की तरह रहेगा।

सं० २००२ में द्वादश राशिफल ।

मेष—राशिवालोंके लिए वर्ष श्रेष्ठ है। चैत्रसे ज्येष्ठ मास तक कुछ सामान्य फलदायक रहेगा; पश्चात् उत्तम है।

वृष—राशिवालोंके लिए यह वर्ष आरंभसे श्रावण मास पर्यन्त अच्छा नहीं है। अनेक प्रकारकी चिन्ता, विशेष खर्च होने की संभावना है। भाद्र पदमाससे सामान्य समय बीतेगा। शनि और राहु पूज्य हैं।

मिथुन—राशिवालोंके लिए शनिकी साढ़ेसाती तथा जन्मराशि पर राहु अनिष्ट फलदायक है। शनि तथा राहुके दान और जपसे अनिष्ट फल नहीं होगा।

कर्क—राशिवालोंके लिए यह वर्ष शनिकी साढ़ेसाती होनेके कारण अशुभ है।

सिंह—राशिवालोंके लिए वर्षका पूर्वार्द्ध श्रेष्ठ फलदायक है। भाद्रपद मास से साढ़ेसाती लगेगी। शनिकी पूजा करने से शुभ होगा।

कन्या—राशिवालोंके लिए वर्ष सामान्य श्रेष्ठ रहेगा। वैशाख व ज्येष्ठ मध्यम। आषाढ़, श्रावण तथा मार्गशीर्ष श्रेष्ठ। शेष मास मध्यम फलदाराक रहेंगे।

तुला—राशिवालोंके लिए वर्ष साधारण फलदायक रहेगा। चैत्र, श्रावण, भाद्र तथा पौष मास शुभ फलदायक हैं।

वृश्चिक—राशिवालोंके लिए वर्ष शुभ फलदायक नहीं है। शनि व राहुके दान जपसे वैशाख, भाद्रपद, आश्विन तथा माघ मास शुभ फलदायक होंगें।

धन—राशिवालोंके लिए भी वर्ष शुभ फलदायक नहीं है। शनि और राहु पूजनीय हैं। फाल्गुन, ज्येष्ठ, आश्विन, तथा कार्तिक लाभदायक होगा।

मकर—राशिवालोंके लिये वर्ष लाभ और सुखदायक होगा। चैत्र, आषाढ़, कार्तिक और मार्गशीर्ष मास विशेष लाभ-दायक है।

कुंभ—राशिवालोंके लिए वर्ष साधारण लाभ व सुख दायक होगा।

मीन—राशिवालोंके लिए वर्ष सामान्य लाभदायक रहेगा। ज्येष्ठ, भाद्रपद, पौष और माघ मास विशेष लाभ व सुखदायक होगा।

आवश्यक मुहूर्त्त ।

बच्चेको दूध पिलाने व पिताका प्रथम वार पुत्र को देखने का मुहूर्त्त ।

नक्षत्र—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्र, रोहिणी, अश्विनी, रेवती, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, चित्रा, मृगशिरा, धनिष्ठा, श्रवण एवं शतभिषा।

वार—रवि, सोम, बुध, वृहस्पति एवं शुक्र।

तिथि—२।३।५।७।१०।११।१२

लग्न—वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुंभ।

उपरोक्त नक्षत्र, वार, तिथि एवं लग्नमें माता प्रथम बच्चे को दूध पिलाये एवं पिता पुत्रको प्रथम देखे।

प्रसूति स्नान—रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, अश्विनी व अनुराधा इन नक्षत्रोंमें, रवि, मंगल और बृहस्पतिवारमें प्रसूति स्नान शुभ होता है।

जल पूजा—शुक्र और वृहस्पति नक्षत्रके अस्तमें तथा अधिक मास, चैत्र, पौषमें मास पूरा होने पर भी सूतिका को जल पूजा न करनी चाहिये। बुध, सोम, बृहस्पतिवारमें रिक्ता वर्जित तिथि (४-९-१४) में और श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल, तथा अनुराधा नक्षत्रोंमें जल पूजा श्रेष्ठ है।

नामकरण—पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तरा ३ और पुनर्वसु, नक्षत्रोंमें
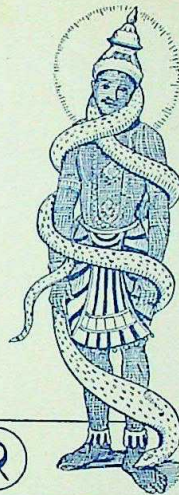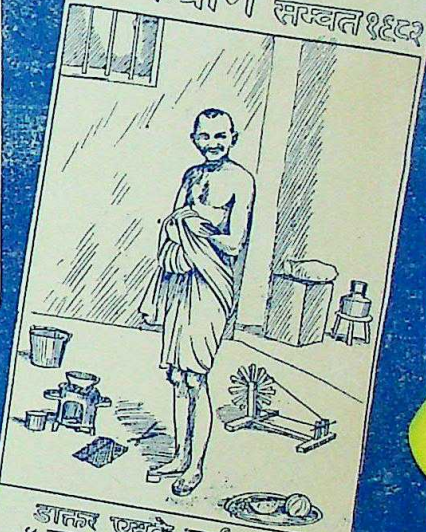
१
संवत १९५३ का
पञ्चाङ्ग
२
सम्वत
पञ्चाङ्ग
१९६५
३
पञ्चाङ्ग सम्वत १९८२
डाक्टर एस. के. बर्मन
४ तारा चन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता
SKB
४
श्री
सम्वत १९८८
डाबर पञ्चाङ्ग
डाबर (डाक्टर एस.के.बर्म्मन) लिमिटेड
कलकत्ता
५
श्री सम्वत १९९०
डाबर
पञ्चाङ्ग
डाबर (डाः एस. के. बर्म्मन) लिः
कलकत्ता
(१) कार्यालय के सर्व प्रथम पञ्चाङ्ग का मुखपृष्ठ।
(२) कार्यालय के २५ वें वर्ष के पञ्चाङ्ग का मुखपृष्ठ।
(३) कार्यालय के ४२ वें वर्ष के पञ्चाङ्ग का मुखपृष्ठ।
(४) कार्यालय को लिमिटेड रूप देने के बाद
प्रथम पञ्चाङ्ग का मुखपृष्ठ।
(५) कार्यालय की अर्द्ध शताब्दी व्यतीत
होने के बाद प्रकाशित होने वाले
पञ्चाङ्ग का मुखपृष्ठ।

हमारे कतिपय स्मृति दिवस

१ श्री शंकराचार्य — वैशाख शुक्ला ५
२ श्री वल्लभाचार्य — वैशाख कृष्णा ३
३ श्री रामानुजाचार्य — चैत्र शुक्ला ५
४ गोस्वामी तुलसीदास — श्रावण शुक्ला ७
५ श्री चैतन्य महाप्रभु — फाल्गुन शुक्ला १५
६ गुरु नानक — कार्तिक शुक्ला १५
७ भक्त कबीर — ज्येष्ठ शुक्ला १५
८ लोकमान्य तिलक — श्रावण कृष्णा ११
९ छत्रपति शिवाजी — वैशाख शुक्ला ३
१० महाराणा प्रताप — ज्येष्ठ शुक्ला ३
११ श्री रामकृष्ण परमहंस — फाल्गुन शुक्ला २
१२ गुरु गोविन्द सिंह — माघ कृष्णा ३
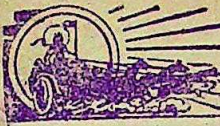
तथा प्रशस्तयोग और तिथियोंमें, जन्मदिनसे ११-१२ दिन बादमें, स्थिर लग्न (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ) में और रवि, बुध, बृहस्पति, सोम इन दिनोंमें नामकरण कर्म शुभ होता है।

अन्नप्राशन—पूर्वा ३, आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा, शतभिषा (१।६।११) इन नक्षत्रोंमें तथा मंगल और शनिवारमें नन्दा, पर्व ५, सप्तमी, रिक्ता (४।९।१४) द्वादशी इन तिथियोंमें अन्नप्राशन नहीं करना चाहिये।

बालकका छठवें या आठवें महीनेमें तथा कन्याका पाचवें महीनेमें—वृष, कन्या, मीन, मिथुन लग्नमें और शुक्र पक्षमें तथा शुभ योगमें अन्नप्राशन करना चाहिये।

चूड़ाकरण (मुंडन)—रेवती, अश्विनी, हस्तसे ३, पुनर्वसु, मृगशिरा, ज्येष्ठा, श्रवणसे ३ और पुष्य इन नक्षत्रों और सौम्यायनमें तथा बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुध इन दिनोंमें, शुक्र पक्षमें, वृष, कन्या, मिथुन, कुंभ, मकर इन लग्नोंमें तथा रिक्ता (४।९।१४) षष्ठी, पर्व ५, प्रतिपदा तथा जन्मदिन, जन्ममास, जन्मनक्षत्रको छोड़कर चूड़ाकरण (मुंडन) करना चाहिये।

कर्णवेध (छेदन)—रोहिणी, उत्तरा ३, अनुराधा, मूल, मृगशिरा, श्रवणसे ३, हस्तसे ३, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसुसे ३, पूर्वाफाल्गुनी इन नक्षत्रों में और धनु, कन्या, कुंभ, मिथुन, मीन लग्नमें तथा विषम (१।३।५) वर्षमें शुभ दिनमें तथा चैत्र, पौष, विष्णुशयन और जन्ममासमें कर्णवेध नहीं करना चाहिये। आषाढ़से कार्तिक तक कर्णवेध शुभ होता है।

गुरु शुद्धि— उपनयनमें बालककी जन्म राशिसे तथा विवाहमें कन्याकी जन्मराशिसे (९।५।११।२।७) स्थानमें बृहस्पति श्रेष्ठ होते हैं। (१०।६।३।१) स्थानमें पूजित होते हैं। (४।८।१२) स्थानमें गुरु निन्दित होते हैं।

रवि शुद्धि—विवाहमें बालकके जन्मराशिसे (६।३।१०।११) सूर्य श्रेष्ठ होते हैं और (९।२।५) पूज्य होते हैं तथा (१।४।७।८।१२) में निन्दित होते हैं।

यज्ञोपवीत (उपनयन)—हस्त, अश्विनी, पुष्य, उत्तरा ३, रोहिणी, अश्लेषा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणसे ३, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, पूर्वा ३, आर्द्रा इन नक्षत्रोंमें रवि, बुध, बृहस्पति, शुक्र और सोम दिनमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन तिथियोंमें शुक्लपक्षमें, कृष्णपक्षकी पञ्चमी तक भी और पूर्वाह्न कालमें उपनयन शुद्ध होता है।

विवाहमें मंगलका विचार— कन्याके जन्म लग्नमें, बारहवें, चौथे, सातवें और आठवें स्थान में मंगल के रहने पर विवाह होनेसे पतिका नाश होता है तथा वरके जन्मलग्नमें उक्त स्थानोंमें मंगलके रहने पर स्त्रीका नाश होता है। दोनोंके जन्मलग्नमें यदि मंगल रहे अथवा शनि, राहु और केतु भी रहे तो दोष नहीं होता।

विवाह—रेवती, उत्तरा ३, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, मूल, अनुराधा, हस्त, और स्वाती इन नक्षत्रोंमें, कन्या, तुला, मिथुन लग्नों में और मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ इन महीनोंमें तथा शुभ दिनमें और चौथ, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या इन वर्जित तिथियोंमें विवाह शुभ होता है।

वधू प्रवेश—विवाहसे १६ दिनके अन्दर उत्तरा३, रोहिणी, हस्त, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, स्वाती इन नक्षत्रोंमें और चौथ, नवमी, चतुर्दशी इन वर्जित तिथियोंमें तथा रवि, मंगल, बुध इन वर्जित दिनोंमें वधू प्रवेश शुभ होता है।

द्विरागमन—शुक्र सम्मुख या दाहिने न रहें, रेवती, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तरा, मृगशिरा, अनुराधा, हस्तसे ३, रोहिणी, श्रवण, मूल, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें, सौर मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख इन मासोंमें तथा पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें वर्षमें, शनि तथा मंगल इन वर्जित दिनोंमें तुला, कन्या, मिथुन, मीन, मकर इन लग्नोंमें यात्रामें जो विहित तिथि हो उन तिथियोंमें द्विरागमन शुभ होता है।

गृहारंभ मुहूर्त—

वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष (अगहन), पौष, फाल्गुन इन महीनों में—मेष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, मकर, कुम्भ राशियोंका सूर्य होनेसे, शुक्र, गुरुका उदय होनेसे; ८, ९, ११ इन स्थानों में शुभग्रह हों ; पञ्चक न हों, तब घर बनानेकी नींव डालनी चाहिये।

१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३, १५ भद्रा न
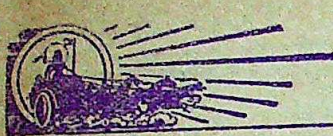
होने पर इन तिथियोंमें सोम, बुध, शुक्र, शनि इन वारोंमें रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति अनुराधा, उत्तराषाढ़, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरभाद्रपद, रेवती इन नक्षत्रें में गृहारम्भ शुभ है।

गृह प्रवेश मुहूर्त्त —

बैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन इन महीनों में १, २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३ इन तिथियों में सोम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन वारोंमें रोहिणी, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, रेवती इन नक्षत्रें में १, २, ३, ५, ७, ९, १०, ११ इन स्थानों में शुभ लग्न हों तब नूतन गृह प्रवेश करना चाहिये।

सम्वत् २००२ में शुद्ध विवाह मुहूर्त्त।

चैत्र शुक्लपक्ष—

१० शनौ मघाभे रे० ६ आवश्यके ल० गो

१३ बुधे हस्तभे रे० ७ आवश्यके ल० ८

१५ शुक्रे स्वातीभे रे० ८ ल० ८

वैशाख कृष्णपक्ष—

२ सूर्ये अनुराधाभे रे० ८ ल० ८

४ भौमे मूले रे० ७ आवश्यके ल० गो०

६ गुरौ उषाभे रे० ६ आवश्यके ल० ८

वैशाख शुक्लपक्ष—

२ रवौ रोहिणीभे रे० ९ ल० ८

८ शनौ मघाभे रे० ९ आ० ल० चिन्त्यम्

१४ बुधे मैत्रे रेखा ७ आवश्यके ल० ११

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष—

३ बुधे उत्तराषाढ़ाभे रे० ६ आ० ल० गो०

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष—

५ मृगौ मघाभे रे० ९ आ० ल० १२

१० बुधे स्वातीभे रे० ८ ल० गो०

आषाढ़ कृष्णपक्ष—

७ सोमे उभाभे रे० ७ ल० १०

१३ शनौ मृगशिरभे रे० ९ ल० १०

आषाढ़ शुक्लपक्ष—

६ सूर्ये हस्ते रे० ७ आ० ल० ११

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष—

१ भौमे रोहिणीभे रे० ७ आ० ल० ६

१ बुधे मृगशिरभे रे० ८ आ० ल० ६

९ बुधे उफाभे रे० ७ आ० ल० गो०

१२ शनौ स्वातीभे रे० ८ ल० ६

सं० २००२ सन् १९४५ ई० में खाता (बसना) पूजन मुहूर्त्त

(१) रामनवमी— २० अप्रैल सन् १९४५ ई० तदनुसार मिती चैत्र शुक्ला ९ शुक्रवार दिनमें घं० ८ मि० ५० से घं० ११ मि० ३ तक मिथुन लग्न श्रेष्ठ।

(२) अक्षयतृतीया—ता० १४ मई सन् १९४५ ई० तदनुसार मिती बैशाख शुक्ला ३ सोमवार दिनमें घं० ७ मि० १७ से घं० ९ मि० ३० तक मिथुन लग्न शुद्ध एवं गोधूली मध्यम।

(३) रथयात्रा—ता० ११ जुलाई सन् १९४५ ई० तदनुसार मिती आषाढ़ शुक्ला २ बुधवार दिनमें घं० ७ मि० ५२ से घं० १० मि० ७ तक सिंह लग्न श्रेष्ठ।

(४) दीपमालिका ता० ४ नवम्बर सन् १९४५ ई० तदनुसार मिती कार्तिक कृष्णा अमावस रविवार गोधूली श्रेष्ठ। सन्ध्या घं० ६ मि० १२ से घं० ८ मि० ८ तक वृष लग्न मध्यम, रात्रि घं० ८ मि० ८ से घं० १० मि० २१ तक मिथुन लग्न श्रेष्ठ। घं० १२ मि० ३८ से घं० २ मि० ५३ तक सिंह लग्न मध्यम।

—राशिबोधक चक्रम्—

चु	चे	चो	ला	लि	लु	ले	लो	अ	मेषः
इ	उ	ए	ओ	व	वि	वु	वे	वो	वृषः
क	कि	कु	घ	ङ	छ	के	को	ह	मिथुनः
हि	हु	हे	हो	ड	डि	डु	डे	डो	कर्कः
म	मि	मु	मे	मो	ट	टि	टु	टे	सिंहः
टो	प	पि	पू	ष	ण	ठ	पे	पो	कन्या
र	रि	रु	रे	रो	त	ति	तु	ते	तुला
तो	न	नि	नु	ने	नो	या	यि	यु	वृश्चिकः
ये	यो	भ	भि	भू	धा	फा	ढा	भे	धनुः
भो	ज	जि	जु	जे	ख	खु	खो	गि	मकरः
×	×	×	×	जो	खि	खे	ग	×	
गु	गे	गो	स	सि	सु	से	सो	द	कुम्भः
दि	दु	थ	झ	ञ	दे	दो	च	चि	मीनः

अथ चन्द्रविचारः।

जन्मराशि या नामराशिसे इष्ट दिनकी चन्द्रराशि पर्यन्त गिनने पर जो संख्या हो वही चन्द्रमा जानना चाहिये जिसका फल इस प्रकार है—

पहले चन्द्रमामें शुभ, दूसरेमें मानसतुष्टि, तीसरेमें धन सम्पति, चौथेमें कलह (लड़ाई), पांचोंमें ज्ञानवृद्धि, छठेमें धनधान्य प्राति, सातोंमें राजासे सम्मान, आठोंमें प्राणसंशय, नवेंमें धर्मलाभ, दशोंमें सिद्धि, ग्यारहोंमें जयलाभ और बारहवें चन्द्रमामें सर्वथा हानि होती है।

पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रनिवासः।

मेष सिंह धनु पूरबचन्दा, दक्षिण कन्या वृष मकरन्दा।
पश्चिम कुम्भ तुलायो मिथुना, उतर कर्कउ वृश्चिक मीना।

चन्द्रनिवास फलम्।

सम्मुखचन्द्रमामें धनलाभ, दक्षिण (दाहिने) में सुख सम्पत्ति, पृष्ठ (पीछे) चन्द्रमें शोकसन्ताप और वाम चन्द्रमें धनक्षय होता है।

अङ्ग फड़कनेका विचार।

पुरुषका दाहिना एवं स्त्रीका बाम अङ्ग फड़कना शुभ फलदायक माना जाता है। इसी आधार पर नीचे लिखे अङ्गोंके फड़कने का विचार करना चाहिये।

मस्तक फड़कनेसे पृथ्वी लाभ, नेत्रोंके कोरोंसे धन लाभ, कंठके मध्यभागसे राज्य प्राप्ति, कानसे प्रिय मित्रकी सुधि, नाक से सुख प्राप्ति, अधर (ओष्ठ) से प्रिय वस्तुका लाभ, कण्ठसे ऐश्वर्य लाभ, कन्धेसे भोगकी वृद्धि, भुजाओंसे मित्र मिलन, हाथों से धन लाभ, पीठसे पराजय, हृदयसे जय लाभ, कोखसे जय लाभ, नाभीसे स्थान भ्रष्ट, आंतोंसे धन लाभ, जघासे एक देशाधिपति, पैरोंसे श्रेष्ठ स्थानोंसे मान एवं तालुओंके फड़कनेसे हानि तथा गमन होता है।

दिशाशूल विचार।

सोम शनिश्चर पूरब न चालू। मंगल बुद्ध उत्तर दिशि कालू॥
रवि शुक्र जो पश्चिम जाय। हानि होय पथ सुख नहीं पाय॥
बीफै दक्खिन करै पयाना। फिर नहीं समझै ताको आना॥

यात्रामें सर्वाङ्गी विचार।

यात्रा तिथि, नक्षत्र, दिन, इन तीनोंको जोड़ कर तीन स्थानमें रखना। क्रमशः १-८-९ का भाग देनेसे प्रथम स्थानमें शून्य हो तो दुःख, द्वितीयमें शून्य हो तो धन क्षय और तृतीय स्थानमें शून्य हो तो मृत्युकारक होता है। तीनों स्थानमें अङ्क बचने से जय तथा सौख्य देनेवाली यात्रा होती है।

छिपकिली गिरनेका विचार।
(पल्ली पतन)

शिर पर गिरे तो राज्य प्राप्ति, ललाट पर बन्धु दर्शन, भृकुटी पर राज सम्मान, ऊपरके होठ पर धन क्षय, अधरोष्ठ पर धन व ऐश्वर्य लाभ, नाक पर व्याधि पीड़ा, बायें कान पर विशेष लाभ, दाहिने कान पर आयुवृद्धि, नेत्रों पर बधन, दाहिनी भुजा पर राज सम्मान, बांयी भुजा पर राज भय, कण्ठ पर शत्रु नाश, स्तनों पर दुर्भाग्य, पेट पर शुभ, पीठ पर बुद्धिनाश, जघा पर शुभ, हाथों पर वस्त्र लाभ, कन्धे पर विजय, नाभिमें विशेष धन लाभ, कटि पर अश्व लाभ, हृदय पर धन लाभ, दाहिने पहुचे पर धन लाभ, बायें पहुचे पर कीर्त्ति लाभ, गुल्फ पर बन्धन, केशों पर मरण, नाखूनों पर धन लाभ, मुख पर मधुर भोजन लाभ, दाहिने पांव पर मार्ग गमन, बायें पैर पर बन्धु नाश तथा पैरोंके बीचमें छिपकिली गिरे तो स्त्रीका नाश और पैरोंके अन्तिम भाग पर गिरे तो मरण होता है, ऐसा कहा जाता है। जो फल छिपकिलीके गिरनेका है वही फल गिरगिटके चढ़नेका भी कहा गया है।

स्वप्न विचार।

शुक्लपक्षमें—प्रतिपदाका स्वप्न सुखदायक, द्वितीयाका निष्फल, तृतीयाका सफल, चतुर्थीका निष्फल, पंचमीका कुछ अंशमें सफल, छठका सफल होनेकी सम्भावना कम, सप्तमीका स्वप्न गोपन रखनेसे सिद्ध, अष्टमी व नवमीका शीघ्र फलदायक, दशमी व एकादशीका असिद्ध, द्वादशीका कदाचित सिद्ध, त्रयोदशीका शीघ्र फलदायक तथा चतुर्दशी व पूर्णिमाका स्वप्न देरीसे सिद्ध होता है।

कृष्णपक्षमें—पंचमीका स्वप्न विलम्बसे सिद्ध, एकादशीका अवश्य सिद्ध, छठ एवं द्वादशीका मिथ्या, त्रयोदशीका मन्दफल देनेवाला तथा चतुर्दशीका स्वप्न शुभ होता है।

छींक विचार।

बरणों भाषा छींक विचारा। सकल शुभाशुभ मत अनुसारा॥
छींक पीठकी कुशल उचारै। बायीं कारज सबै सँवारै॥
सन्मुख छींक लड़ाई भाषै। छींक दाहिनी द्रव्य विनाशै॥
ऊँची छींक करै जयकारी। नीची छींक होय भयकारी॥
अपनी छींक महा दुखदाई। ऐसे छींक विचारी भाई॥

दोहा—बायों ऊँची पीठ को। छींक रखौ सुखकार॥
नीची सन्मुख दाहिनी। अपनी छींक असार॥

१२ राशियां

नक्षत्र
अश्विनी
भरणी
कृत्तिका
रोहिणी
मृगशिरा
आर्द्रा
पुनर्वसु
पुष्य
आश्लेषा
मघा
पूर्वा फाल्गुनी
उत्तरा फाल्गुनी
हस्त
चित्रा
स्वाती
विशाखा
अनुराधा
ज्येष्ठा
मूल
पूर्वाषाढ़ा
उत्तराषाढ़ा
अभिजित
श्रवण
धनिष्ठा
शतभिषा
पूर्वाभाद्रपदा
उत्तरा भाद्रपदा
रेवती
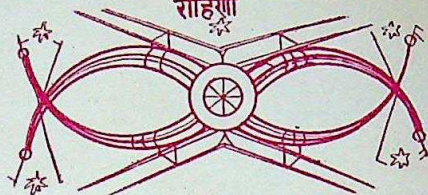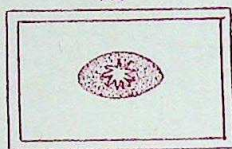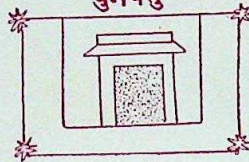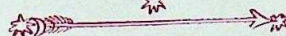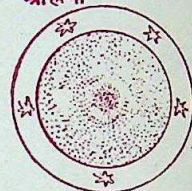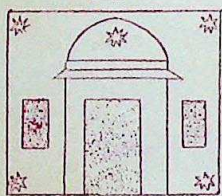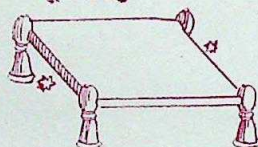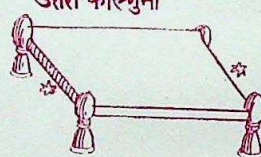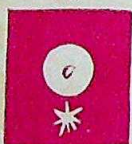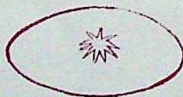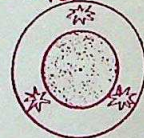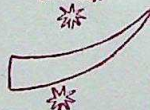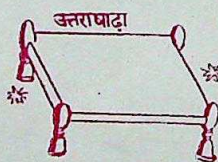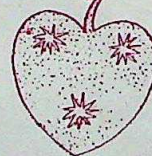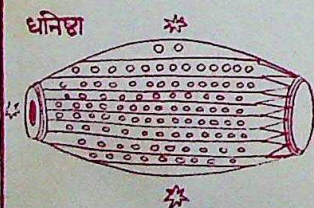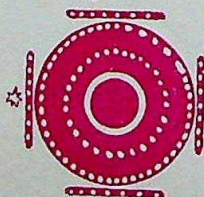
योगिनी विचार।

यात्रादि तथा किसी शुभ कार्यके लिये घरसे बाहर जाते समय योगिनी विचार किया जाता है, जो कि आवश्यक है। इसका विचार तिथिके अनुसार किया जाता है। निम्नलिखित तिथियोंमें योगिनीका निवास निम्नलिखित दिशाओंमें रहता है।

तिथि	दिशा	कोण-ज्ञान
१ व ९	—पूर्व।	
२ व १०	—उत्तर।	
३ व ११	—अग्नि कोण।	-पूर्व और दक्षिण के बीच का कोना।
४ व १२	—नैऋत्यकोण।	पश्चिम व दक्षिणके बीचका कोना।
५ व १३	—दक्षिण।	
६ व १४	—पश्चिम।	
७ व पूर्णिमा	—वायु कोण।	उत्तर व पश्चिम के बीचका कोना।
८ व अमावस्या	—ईशानकोण।	पूर्व व उत्तरके बीचका कोना।

योगिनी फल—

योगिनी सुखदा वामे, पृष्ठे वांच्छित दायिनी।
दक्षिणे धनहन्त्री च, सन्मुखे मरणप्रदा॥

अर्थात्—योगिनी बांयीं पड़े तो सुख देनेवाली, पीछे पड़े तो मनोवांछा पूर्ण करनेवाली, दाहिने पड़े तो धन नाश करनेवाली और सन्मुख पड़े तो मृत्युको देनेवाली होती है ऐसा ज्योतिषमें कहा गया है।

चरण विचार।

जन्मके समय जातकके चरण किस धातुके पड़े हैं इस विषयको सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये नीचे दिया जाता है—

जन्माङ्ग रुद्रेषु १।६।११ सुवर्ण पादम् द्विपञ्च नन्दे २।५।९ रजतस्य पादम्। त्रिसप्तदिक् ३।७।१० ताम्र पादं वदन्ति वेदाष्टचार्के ४।८।१२ व्हिह लौह पादम्। अर्थात् जन्म लग्नसे चन्द्रमा १।६।११ राशिका हो तो सोनेका चरण, २।५।९ का हो तो चाँदीका चरण, ३।७।१० का होतो ताम्बेका चरण और ४।८।१२ का हो तो लोहेका चरण समझना चाहिये।

चरण (पाया) फल—

लोहे धन विनाशः स्यात् सर्व सौख्यं च कांचने।
ताम्रे च समता ज्ञेया सौभाग्यं रजते भवेत्॥

अर्थात्—लोहे का चरण विनाशकारक। सोनेका सर्वसुखोंका देनेवाला। ताम्बेका साधारण तथा चाँदीका सौभाग्यकारक होता है।

यात्रामें शकुन विचार।

शुभ शकुन—यात्रा या घरसे किसी कार्यवश बाहर निकलते समय सामने बच्चे सहित गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, दाहिनी ओर घूमती हुई अग्नि, सुन्दर स्त्री, जलभरा कलश, ब्राह्मण, वेश्या, पुष्पमाला, पताका, मछली, मांस, घृत, दही, मधु चांदी, सोना अथवा सफेद वस्त्र इत्यादि का दर्शन हो या स्पर्श हो अथवा स्मरण करे तो यात्रा शुभ होती है। इसके अतिरिक्त भी किसीका खाली कलश लेकर भरने ले जाते हुए दिखाई पड़ना, माताका पीछेसे आवाज देना (अन्य किसीका भी नहीं) दाहिने फिरकर देखने पर मृतका दिखाई पड़ना, बंधे हुए केशोंवाली खुले माथे किसी स्त्रीका देखना अथवा बायीं ओर किसीका रोना भी शुभदायक होता है।

अशुभ शकुन—बिल्लीकी लड़ाई, कलह करके, स्त्रीके रजस्वला होने पर, माताके निषेध करने पर, अकाल वृष्टिमें, एवं मरण शौचमें यात्रा निषेध है। खाली गीले कलशका दिखाई पड़ना, सूखी डाल पर कौवेका बोलना, बिना डाढ़ी मूछ (जिसके डाढ़ी मूछ न निकलती हो) के आदमी का दिखायी पड़ना, और खुले हुए केशोंवाली स्त्री; तेलके साथ आते हुए व्यक्तिको देखना अच्छा नहीं है।

शरीरमें तेल लगानेका विचार।

रविवारको तेल लगानेसे ताप, सोमवारको शोभा, मंगलवार को आयुक्षय, बुधवारको धनप्राप्ति, वृहस्पतिवारको हानि, शुक्रवार को दुःख एवं शनिवारको तेल लगानेसे सुखकी प्राप्ति होती है।

परिहार।

रविवारको तेलमें पुष्प डालकर, वृहस्पतिवारको दूब, मंगल वारको मिट्टी और शुक्रवारको गोबर डालकर तेल लगाने से दोष नहीं होता ऐसा कहा गया है।
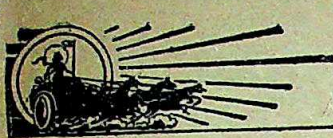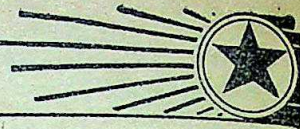
नवरत्नोंका नवग्रहपर फल।

रत्नोंको धारण करनेकी प्रथा भारतवर्षमें बहुत ही प्राचीन है। इनके धारणसे ग्रहोंकी पीड़ा, दुष्टोंकी नजर और बुरे स्वप्नोंका नाश होता है तथा पाप और दुर्भाग्यसे शान्ति मिलती है। माणिक, मोती, मूङ्गा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद और लहसुनिया ये नवरत्न हैं। **भाव प्रकाश** आदि वैद्यक ग्रन्थ और **शुक्रनीति** के अनुसार ग्रहों पर इनके असर इस प्रकार हैं—

(१) **माणिक**—इसे चुन्नी और लाल भी कहते हैं। इसका रंग लाल है। इसके धारणसे **सूर्य** की पीड़ा शान्त होती है।

(२) **मोती**—इसे मुक्ता भी कहते हैं। असली सफेद और निर्मल मोती धारण करने योग्य है। इसके धारणसे **चन्द्रमा** की पीड़ा शान्त होती है।

(३) **मूंगा**—इसे प्रवाल और लतामणि भी कहते हैं। इसका रंग कुन्दुरू फलके समान लाल होता है। गोल, चिकना, चमकदार असली मूङ्गा धारण करनेसे **मङ्गल** की पीड़ा शान्त होती है।

(४) **पन्ना**—इसे मरकतमणि, हरितमणि और बुध रत्न भी कहते हैं। इसका रंग हरा होता है। इसके धारणसे **बुध की** पीड़ा शान्त होती है।

(५) **पुखराज**—इसे गुरुरत्न और पीतमणि भी कहते हैं। इसका रंग पीला होता है। सुवर्णकी सी झलकवाला पीला पुखराज **वृहस्पति** की पीड़ा शान्त करता है।

(६) **हीरा**—चार भांतिका होता है। सफेद, लाल, पीला और काला। सफेद हीरा सर्व सिद्धियोंका दाता समझा जाता है। बेदाग स्वच्छ हीरा **शुक्र** की पीड़ा शान्त करता है।

(७) **नीलम**—इसका नाम नीलमणि भी है। इसका रंग नीला तथा आसमानी होता है। शुद्ध नीलमके धारण करने से **शनि** की पीड़ा शान्त होती है। अशुद्ध नीलमका फल अशुभ होता है।

(८) **गोमेद**—किसी कदर पीलाई और ललाई लिये हुए गोमेदके धारणसे **राहु** की पीड़ा शान्त होती है।

(९) **लहसुनिया**—इसे वैदूर्यमणि भी कहते हैं। बिल्लीकी आखोंकी सी इसमें कान्ति तथा कुछ लकीरें होती हैं। इसके धारणसे **केतु** की पीड़ा शान्त होती है।

नोट—रत्नों में 'हीरा' सबसे श्रेष्ठ रत्न समझा जाता है। मूङ्गा और गोमेद निम्न कोटिके समझे जाते हैं।

साधारण पर्व तथा व्रतादि निर्णय।

(१) **गणेश चौथ**—तीजके दिन यदि संध्या समय चतुर्थी लग जावे तो तीजको ही चौथ व्रत किया जाता है।

(२) **एकादशी**—शैव पहली एकादशी करते हैं व वैष्णव दशमी वेधामें व्रत न कर दूसरे दिन की एकादशी का व्रत करते हैं। साधारणतया सभी व्रतोंमें यही नियम लगू होता है।

(३) **प्रदोष**—द्वादशीको सन्ध्या समय त्रयोदशी लग जाने पर द्वादशी को ही व्रत किया जाता है अन्यथा त्रयोदशी को ही यह व्रत करते हैं।

(४) **पूर्णिमा**—जो रातमें चन्द्रमा को अर्घ देकर पारण करते हैं वे चतुर्दशी को ही सन्ध्या समय पूर्णिमा लगने पर व्रत करते हैं किन्तु इससे भिन्न स्नान, दान, कथा व उपवासके के लिये दूसरे दिनकी पूर्णिमा मानी जाती है।

(५) **श्राद्ध**—जिस तिथिमें श्राद्ध करना हो उस तिथिका मध्याह्न में रहना आवश्यक है।

नोट—तिथिका प्रवेश सूर्योदय से होता है; जैसा कि, तिथि के साथ घटी पल व घंटा मिनटमें समय दिया गया है कि अमुक समय तक वह तिथि रहेगी। ६० घटी (चौबीस घन्टे) की पूरी तिथिके सामने आठों पहर लिखा गया है।
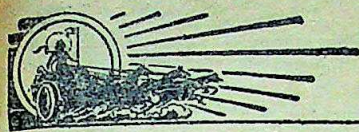
ग्रहोंका राशि संचार।

ग्रहोंका गोचरमें राशि भोग काल— रवि ग्रह एक मास, सोम सवा दो दिन, मंगल तीन पक्ष (१॥ मास), बुध अठारह दिन, बृहस्पति एक वर्ष, शुक्र अठाइस दिन, शनि अढ़ाई वर्ष तथा राहु एवं केतु डेढ़ वर्ष एक-एक राशिको गोचरमें भोगते हैं।

ग्रहोंका गोचर भोगफल।

रवि—जन्मराशिमें स्थाननाश, दूसरे भय, तृतिय ऐश्वर्य, चौथे मानहानि, पांचवें दीनता, छठे शत्रुहानि, सातवें अर्थहानि, आठवें पीड़ा, नवें कान्तिक्षय, दसवें कर्मलाभ, ग्यारहवें धनलाभ एवं बारहवें वित्तिनाश और महा बिपत्ति देते हैं।

चंद्र—जन्मराशिमें अर्थलाभ, दूसरे बित्तिनाश, तीसरे द्रव्य लाभ, चौथे चक्षुपीड़ा, पांचवें कार्यहानि, छठे वित्तिलाभ, सतवें वित्तिसहित स्त्रीलाभ, आठवें मृत्यु, नवें राज भय, दशवें महासुख, ग्यारहवें धनवृद्धि एवं बारहवें धननाश और रोग होता है।

मङ्गल—जन्मराशिमें शत्रुभय, दूसरे धननाश, तीसरे अर्थलाभ, चौथे शत्रुभय, पांचवें प्राणनाश, छठे वित्तिलाभ, सांतवें शोक, आठवें अस्त्रघात, नवें कार्यहानि, दशवें शुभ, ग्यारहवें भूमिलाभ, एवं बारहवें रोग, अनर्थ और अर्थनाश करते हैं।

बुध—जन्मराशिमें बन्धन, दूसरे धनलाभ, तीसरे वध और शत्रुभय, चौथे अर्थलाभ, पांचवें असुख, छठे स्थानलाभ, सतवें बहु प्रकार शरीर पीड़ा, आठवें धनलाभ, नवें महापीड़ा, दशवें शुभ, ग्यारहवें अर्थलाभ और बारहवें वित्तिनाश करते हैं।

बृहस्पति—जन्मराशिमें भय, दूसरे अर्थलाभ, तीसरे शरीरक्लेश, चौथे अर्थनाश पांचवें शुभ, छठे अशुभ, सातवें राज पूजा, आठवें धननाश, नवें धनवृद्धि, दशवें प्रणयभङ्ग, ग्यारहवें स्थान और धनलाभ तथा बारहवें शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा देते हैं।

शुक्र—जन्मराशिमें शत्रुनाश, दूसरे अर्थलाभ, तीसरे शुभ, चौथे धनलाभ, पांचवें पुत्रलाभ, छठे शत्रुवृद्धि, सातवें शोक, आठवें अर्थलाभ, नवें विविध वस्त्रलाभ, दशवें अशुभ, ग्यारहवें बहुप्रकार धनलभ तथा बारहवें हों तो धनागमन होता है।

शनि—जन्मराशिमें वित्तिनाश और सन्ताप, दूसरे चित्तक्लेश, तीसरे शत्रुनाश, और वित्तिलाभ, चौथे शत्रुवृद्धि, पांचवें पुत्र, नौकर व अर्थनाश, छठे अर्थलाभ, सतवें अनिष्ट, आठवें देह पीड़ा, नवें धनक्षय, दशवें मानसिक उद्वेग, ग्यारहवें वित्तिलाभ और बारहवें हों तो अनर्थ होता है।

राहु—जन्मराशिपर या दूसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, आठवें, नवें व बारहवें अर्थक्षय, शुत्रुभय, बहुप्रकार कार्य हानि, रोग, प्रवास, अग्निभय तथा मृत्युतक देनेवाले होते हैं। उपरोक्त स्थानोंसे भिन्न अर्थात् तीसरे, छठे, दशवें, एवं ग्यारहवें हों तो शुभफल देनेवाले होते हैं।

केतु—जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दसवें, तथा ग्यारहवें सम्मान, भोग, राजपूजा सुख, अर्थलाभ तथा पुण्य संचय कराते हैं। उपरोक्त स्थानोंसे भिन्न अर्थात् जन्मराशिपर, दूसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, आठवें तथा बारहवें हों तो अशुभ फल देते हैं।

गोचरका फल काल।

रवि व मङ्गलग्रह राशि प्रवेशके समय, बृहस्पति व शुक्र अपने भोगके मध्य समय, शनि व चन्द्र राशि छोड़ते समय तथा बुध-ग्रह सर्वदा (भोगकालमें) गोचरका फलदेते हैं। मनुष्यके शुभ चन्द्रमाके समय ग्रह संचार होनेसे गोचरमें उस ग्रहका फल अशुभ रहने पर भी शुभ फल होता है। इसी प्रकार अशुभ चन्द्रमाके संचारके समय शुभ होनेपर भी अशुभ फल होता है।

नोट—गोचरमें जब जो ग्रह खराब (कष्ट देनेवाले पड़े) या जब जिस ग्रहकी महादशा, अन्तरदशा या प्रत्यन्तरदशा खराब हो तो उसकी शान्तिके लिये, जप, स्तुति या उस ग्रहका दान करनेसे उस ग्रहकी शान्ति होती है। नित्य प्रति नवग्रह स्तोत्र पाठ से भी ग्रह पीड़ा कुछ कम रहती है।

शिव मुहूर्त्ताः ।

नितिथिर्नच नक्षत्रंनयोगकरणं तथा । शिवस्याज्ञां समादाय दैव कार्य्यं विचिन्तयेत् ॥
माहेन्द्र विजयो नित्यंअमृते कार्यशोभनम् । बक्र गति विलम्बः स्यात् शून्येच मरणं भयम् ॥
महेन्द्रमसृतं बक्र शून्ये क्षण चतुष्टयम् । क्रियते ज्योतिषाचार्य यात्रोद्वाहादि मङ्गलम् ॥

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण और भाद्र ।

र०	दि. मा. २ अ. ८ व. १० शू. ८ अ. २ रा. शू. २ मा. २ शू. २ अ. ४ शू. २ व. ६ शू. ६ म. २ अ. ४
चं०	दि. अ. ४ व. ८ अ. ६ व. ६ अ. ४ शू. २ रा. व. ४ मा. ४ अ. २ व. ८ अ. ४ शू. ४ व. २ शू. २
मं०	दि. अ. ६ शू. २ व. २ अ. ६ शू. ८ अ. ४ शू. २ रा. व. ४ मा. ४ अ. २ व. ६ अ. ४ शू. २ व. ३ मा. ३ अ. २
बु०	दि. व. ४ अ. ४ व. ६ अ. ४ श. २ व. ४ मा. २ अ. ४ रा. शू. २ अ. ६ मा. ४ व. ४ शू. ४ अ. १०
बृ०	दि. अ. ६ शू. २ व. ४ अ. ६ व. ८ अ. ४ रा. व. ४ मा. ४ अ. २ व. ८ अ. ४ शू. ४ अ. ४
शु०	दि. शू. २ अ. १६ व. ८ अ. २ शू. २ रा. व. ४ शू. २ अ. ६ व. ६ मा. ६ शू. २ अ. ४
श०	दि. शू. ४ व. २ शू. २ अ. ८ शू. २ व. २ शू. ४ अ. ४ शू. २ रा. व. ६ अ. ६ व. ४ शू. ४ अ. ४ शू. २ अ. ४

ज्येष्ठ और आषाढ़ ।

र०	दि. अ. ६ व. ८ अ. ८ शू. २ मा. २ शू. ४ रा. शू. २ अ. ८ व. ४ अ. ६ व. ४ मा. ४
चं०	दि. अ. ४ व. ४ अ. ६ व. १६ रा. व. ६ अ. ८ व. ८ मा. २ व. ६
मं०	दि. शू. ४ व. ६ अ. ४ शू. ४ व. ६ शू. २ अ. ४ रा. शू. ३ अ. ८ व. ६ अ. ६ व. ६ मा. २
बु०	दि. शू. २ मा. ४ अ. ४ व. ६ शू. २ व. ४ अ. ६ शू. २ रा. व. ४ अ. ४ व. ८ अ. ६ शू. ८
बृ०	दि. अ. ४ व. ६ अ. ४ शू. ४ व. ६ शू. २ अ. ४ रा. व. ८ अ. ६ व. ६ अ. ६ व. ४
शु०	दि. अ. २ व. २ अ. ६ व. ६ अ. ८ शू. २ व. ४ रा. व. ४ अ. ४ शू. ४ मा. २ व. ४ अ. ४ शू. ८
श०	दि. मा. २ शू. ६ अ. ८ व. १० शू. ४ रा. शू. २ व. ४ मा. २ अ. ४ शू. १० अ. २ व. २ शू. २ अ. २

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष ।

र०	दि. शू. ४ अ. ६ व. ६ अ. ६ व. ४ अ. २ शू. २ रा. शू. ४ अ. ४ व. ६ अ. ६ शू. ४ व. ६
चं०	दि. अ. ८ मा. ४ श. ६ अ. ६ मा. ६ रा. व. ६ अ. ८ व ६ अ. ४ शू. २ व. ४
मं०	दि. अ. ४ व. ६ अ. २ शू. ४ मा. ६ शू. ६ व. २ रा. व. ६ अ. ८ व. ६ अ. ४ शू. २ व. ४
बु०	दि. शू. २ मा. ४ अ. ८ व. ६ श. ८ व. २ रा. अ. १० शू. २ व. ८ अ. ६ शू. २ व. २
बृ०	दि. अ. २ शू. ४ व. ६ अ. ४ शू. २ व. ४ अ. ६ मा. २ रा. शू. ४ व. ४ शू. २ अ. ६ मा. ६ शू. २ व. ६
शु०	दि. व. ८ अ. ४ शू. २ अ. २ व. ४ अ. ६ मा. ४ रा. व. ४ शू. २ अ. ६ शू. ६ मा. २ शू. २ व. ८
श०	दि. शू. ४ व. ४ शू. ४ अ. ८ शू. २ मा. ४ शू. २ मा. २ रा. शू. २ व. ४ अ. ६ व. ४ अ. ६ व. ४ अ. ४

(रा. से रात्रि, दि. से दिन, मा. से माहेन्द्र, अ. से अमृत, शू. से शून्य, व. से वक्र)

१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
हमारे कतिपय मुख्य पर्व
१ श्रीरामजन्म चैत्र शुक्ला ९
२ श्रीपरशुरामजन्म वैशाख शुक्ला ३
३ गंगादशहरा ज्येष्ठ शुक्ला १०
४ रथयात्रा आषाढ़ शुक्ला २
५ नागपंचमी श्रावण शुक्ला ५
६ श्रीकृष्णजन्म भाद्रकृष्णा ८
७ श्रीदुर्गापूजा-विजयादशमी आश्विन शुक्ला ८,९,१०
८ श्रीलक्ष्मीपूजा-दीपावली कार्तिक कृष्णा ३०
९ श्रीजानकी विवाह मार्गशीर्ष शुक्ला ५
१० मकर संक्रांति माघस्नान
११ श्रीसरस्वतीपूजा माघशुक्ला ५
१२ शिवरात्रि फाल्गुन कृष्णा १३

शुक्र
बुध
चंद्रमा
सूर्य
बृहस्पति
मंगल
केतु
शनि
राहु

कलकत्ता प्रथम लग्न सारिणी। मेषादि द्वादश राशीनाम्

इष्टार्क राश्यंश तलेघटीपलं स्वाभीष्टनाड़ीपल संयुतञ्च। यद्राशिभागस्य तलेस्थितं भवेत्तदेव लग्नञ्च कलानुपातात्।

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
०	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६
मेष	४७	५५	२	१०	१८	२५	३३	४०	४८	५७	५	१४	२२	३१	४०	४९	५७	६	१४	२३	३२	४०	४९	५७	६	१४	२३	३२	४१	४९
१	६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११
वृष	५८	७	१५	२४	३२	४१	५०	५८	७	१७	१७	३८	५८	५८	८	१९	२९	३९	४९	०	१०	२०	३०	४०	५१	१	११	२१	३२	४२
२	११	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७
मिथुन	५२	२	१३	२३	३३	४३	५४	४	१४	२५	३७	४८	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	३०	४१	५२	३	१५	२६	३७	४९	०	११
३	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२
कर्क	२३	३४	४५	५६	८	१९	३०	४२	५३	४	१६	२७	३८	४९	१	१२	२३	३५	४६	५७	९	२०	३१	४२	५४	५	१६	२८	३९	५०
४	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८
सिंह	२	१३	२४	३५	४७	५८	९	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	५९	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४८	०	११	२२
५	२८	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३
कन्या	३३	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२७	३८	४९	०	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५०
६	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९
तुला	१	११	२२	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५१	२	१३	२४	३६	४७	५८	१०	२१	३२	४४	५५	६	१७	२९	४०	५२	३	१४	२५
७	३९	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५
वृश्चिक	३७	४८	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	३०	४१	५२	३	१५	२६	३७	४९	०	११	२३	३४	४५	५६	८	१९	३०	४२	५३	४
८	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०
धन	१६	२७	३८	४९	१	१२	२३	३५	४६	५६	६	१७	२७	३७	४७	५८	८	१८	२८	३९	४९	५९	९	१९	३०	४०	५०	०	११	२१
९	५०	५०	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४
मकर	३१	४१	५२	२	१२	२२	३३	४३	५३	२	१०	१९	२८	३६	४५	५३	२	११	१९	२८	३७	४५	५४	२	११	२०	२८	३७	४६	५४
१०	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८
कुम्भ	३	१२	२०	२९	३७	४६	५५	३	१२	२०	२७	३५	४२	५०	५८	५	१३	२०	५८	३६	४३	५१	५८	६	१४	२१	२९	३६	४४	५२
११	५८	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२
मीन	५९	७	१४	२२	३०	३७	४५	५२	०	८	१५	२३	३०	३८	४६	५३	१	८	१६	२४	३२	३९	४६	५४	२	९	१७	२४	३२	४०

अथ कलिकातायामुदयमानानि।

गजाक्षिपक्षा २२८ नवबाणपक्षाः २५९ सप्ताभ्ररामा ३०७ नवरमरामा ३३६

नवाग्निरामा ३३९ वसुपक्षरामाः ३२८ क्रमोत्क्रमान्मेषतुलादिमानम्॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी कृत रामशलाका प्रश्न।

जिस कार्य के लिये प्रश्न करना हो, पहले श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान कर किसी भी घर में उंगली या तिनका रखो, फिर उङ्गलीवाले अक्षर को छोड़ कर आगे के नवें अक्षर को लिखो। इसी प्रकार बार-बार गिन कर नवें अक्षर को लिखने से चौपाई तैयार हो जाती है। जैसे—पहली लाईन का अक्षर "सु" पर उङ्गली पड़ी तो "सु" को छोड़कर नवां अक्षर "नु" हुआ। अब "नु" को छोड़ कर नवां अक्षर "सि" हुआ। इसी क्रम से लिखते रहने पर एक नम्बर की चौपाई तैयार हो जायगी। इसी प्रकार अन्य चौपाई (प्रश्न) भी समझें।

सु	प्र	उ	वि	हो	मु	ग	व	सु	नु	वि	घ	धि	ई	द
र	रु	फ	सि	सि	र	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अ
सुज	सो	ग	सु	कु	मं	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	आ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	ई	ग	म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	र	स	ई	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हु	हा	ा	जू
ता	रा	रे	री	ह्व	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सि	मु	न	न	को	मि	ज	र	ग	घु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	घ	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	हू	सु	म्ह	रा	र	स	हि	र	त	न	खा	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हूं	ही	षा	जू	ई	रा	रै

सुनु सिय सत्य अशीश हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी ॥१॥
प्रश्न उत्तम है। कार्य सिद्ध होगा।

प्रविशि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कौशलपुर राजा ॥२॥
भगवान् का स्मरण कर कार्य आरम्भ करो; सिद्ध होगा।

उघरे अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू ॥३॥
मध्यम फल। इस कार्य के अन्त में भलाई नहीं है।

विधिवश सुजन कुसंगति परहीं फणिमणिसम निजगुण अनुसरहीं ॥४॥
खोटे मनुष्यों का संग छोड़ो। बिलम्ब से कार्य होगा।

हुइहै सोई जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहिं शाखा ॥५॥

भगवान् के ऊपर कार्य छोड़ो। होनेमें सन्देह है।

मुद मंगलमय सन्त समाजू। जो जग जङ्गम तीरथ राजू ॥६॥

प्रश्न अच्छा है। कार्य बनेगा।

गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई ॥७॥

प्रश्न उत्तम है। शत्रु से जय होगी।

वरुण कुबेर सुरेश समीरा। रण सन्मुख धरि काहु न धीरा ॥८॥

फल मध्यम है। कार्य सिद्धि में सन्देह है।

सुफल मनोरथ होई तिहारो। राम लखन सुनि भये सुखारे ॥९॥

प्रश्न अच्छा है। मनोरथ सिद्ध होंगे, धनकी प्राप्ति होगी।

ग्रहोंके अनिष्ट फलकी शान्तिके लिये प्रत्येक ग्रहोंके दानकी वस्तुएं।

सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	राहु	केतु
माणिक्य	वंशपात्र	मूङ्गा	कांस्य पात्र	पीतधान्य	चावल	तिल	नील वस्त्र	कम्बल
गेहूं	चावल	मसूर	नील वस्त्र	पीत वस्त्र	श्वेत चित्र वस्त्र	तैल	गोमेद रत्न	कस्तूरी
गुड़	श्वेत वस्त्र	गेहूं	हस्ती	सुवर्ण	चांदी	कृष्ण वस्त्र	तिल	वैदुर्य्यमणि
सवत्सा गौ	चाँदी	लाल वृषभ	मंग	पुखराज	सुवर्ण	कुलथी	तैल	तिल
कमल पुष्प	वृषभया गौ	गुड़	गौ	हल्दी	श्वेताश्व	लोहा	लोहा	तैल
कसूमी वस्त्र	कांस्यपात्रमें घृत	लाल वस्त्र	सुवर्ण या चांदी	अश्व	सुगन्धद्रव्य	भैंस	कम्बल	काले फल
लाल चन्दन	कर्पूर	कन्हेरके फूल	दासी	लवण	सवत्सा गौ	उड़द	गेहूं	काला वस्त्र
सुवर्ण	मोती	सुवर्ण	पुष्प	शर्करा		नीलम	अश्व	
ताम्र		ताम्र				दक्षिणा	अभ्रक	

मुन्थादान—तंदुलन्ना, सुवर्ण, कांश्यपात्र, घृत, श्वेत पुष्प, वर्ण, दक्षिणा

ग्रहोंकी शान्तिके लिये उनके जपका मन्त्र तथा जप संख्या।

ग्रह	मन्त्र (तन्त्रोक्त)	जपसंख्या।	ग्रह	मन्त्र (तन्त्रोक्त)	जपसंख्या।
सूर्यः—	ॐ घृणिः सूर्या आदित्यों—	७०००	शुक्रः—	ॐ शुं शुक्रायनमः—	१६०००
चन्द्रः—	ॐ सों सोमायनमः—	११०००	शनिः—	ॐ शं शनैश्चरायनमः—	२३०००
मंगलः—	ॐ अं अंगारकायनमः—	१००००	राहुः—	ॐ रां राहवेनमः—	२३०००
बुधः—	ॐ बुं बुधायनमः—	९०००	केतुः—	ॐ कें केतवेनमः—	१८०००
वृहस्पतिः—	ॐ बृं बृहस्पतयेनमः—	१९०००			
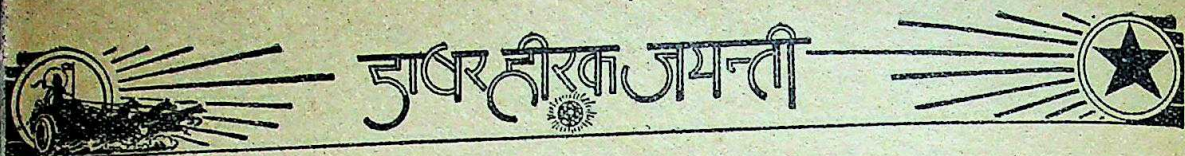
श्रीवचनामृतम् ।

श्रीगोकुलनाथजीके वचनामृत विश्वास राखिके प्रयाण करे तो मनोरथ सिद्ध होय—

पूस	माघ	फागु०	चैत	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भादों	आश्विन	कार्तिक	अगहन	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	बहुत सुख होय, क्लेश न होय, अर्थ पूर्ण होय ।
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	महाभारत होय, अशुभ, जीव नाश होय ।
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	अर्थ पूर्ण होय, मनोरथ सिद्ध होय, कामना पूर्ण होय ।
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	क्लेश होय, जीवनाश होय, कुशलसे घर नहीं आवे ।
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	वस्तु लाभ होय, मित्र मिले, व्याधि मिटे, लाभ होय ।
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	महाचिन्ता होय, वियोग होय, कदाचित घर आवे ।
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	सौभाग्य पावे, रत्न सहित भली-भांति घर आवे ।
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	मिलवो न होय, बहुत बुरा होय, जीव नाश होय, दुख पावे ।
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	आशापूर्ण होय, सौभाग्य पावे, कामना सिद्ध होय ।
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	सौभाग्य पावे, दिन बहुत लगे, कुशलसे घर आवे ।
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	क्लेश होय, जीव नाश न होय, सौभाग्य नहीं पावे ।
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	मार्गमें सिद्धि होय, मित्र मिले, विघ्न घटे, शीघ्रधन लाभ होय ।

व्रजके मास सूं देखनो । तीज तेरस और पांचम पूनो एक चौदस अमावस तजनी ।

नेक सलाह ।

१—मारना चाहते हो तो बुरी इच्छाओंको मारो ।
२—जीतना चाहते हो तो तृष्णाओंको जीतो ।
३—खाना चाहते हो तो गुस्सेको खाओ ।
४—पीना चाहते हो तो ईश्वर चिंतनका शर्बत पीओ ।
५—पहिनना चाहते हो तो नेकीका जामा पहिनो ।
६—देना चाहते हो तो नीची निगाह करके दो और भूल जाओ ।
७—लेना चाहते हो तो आशीर्वाद लो ।
८—जाना चाहते हो तो तीर्थ स्थानों को जाओ ।
९—आना चाहते हो तो दुखियोंकी सहायताको आओ ।
१०—छोड़ना चाहते हो तो पाप और अत्याचारको छोड़ो ।
११—बोलना चाहते हो तो मीठे बचन बोलो ।
१२—तौलना चाहते हो तो बातको तौलो और ठीक तौलो ।
१३—देखना चाहते हो तो अपने आपको देखो ।
१४—सुनना चाहते हो तो ईश्वरकी प्रशंसा और दुखियोंकी पुकारको सुनो ।
१५—अपने कर्तव्यका पालन करो दुनियां भरकी खुशी तुम्हारी ही है ।

श्रीसम्वत् २००२ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा १५ चन्द्रे ता० २५ जून सन् १९४५ ई०

चूडामणियोगयुक्तं धनुराशौ खण्ड चन्द्रग्रहणम्।

	भारते प्राचीन स्टैन्डर्ड घटिकातः
स्पर्शः	घं० मि० से० १९।७।१८
मध्यः	२०।४३।५४
मोक्षः	२२।२०।४२
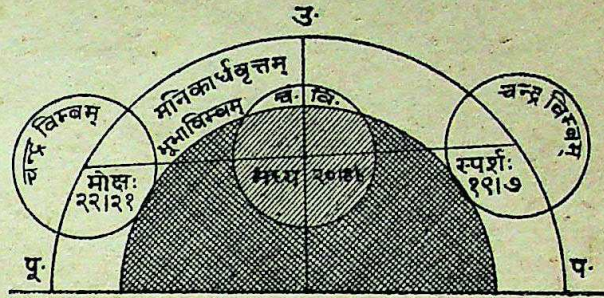
ग्रहणफलम्

राशयः	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
फलम्	माननाश	मृत्युः	स्त्रीकष्ट	सौख्य	चिन्ता	व्यथा	श्रीः	क्षतिः	घातः	हानिः	लाभः	सुखम्

श्रीसंवत् २००२ मार्गशीर्ष पूर्णिमा १५ बुधे ता० १९ दिसम्बर सन् १९४५ ई०

मिथुनराशौ खग्रास ग्रस्तात चन्द्रग्रहणम्।
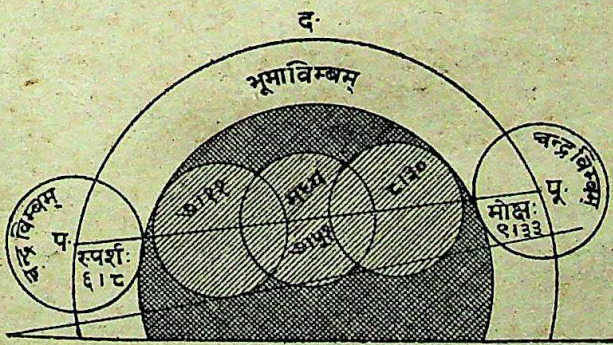
	भारते प्राचीन रेलवे घटिकातः
स्पर्शः	घं० मि० से० ६।७।३०
सम्मीलनं	७।१०।३३
मध्यः	७।५०।१८
उन्मीलनं	८।३०।१२
मोक्षः	९।३३।१६

चन्द्रग्रहणफलम्

राशयः	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
फलम्	श्रीः	क्षतिः	घातः	हानिः	लाभः	सुखम्	माननाश	मृत्युः	स्त्रीपीड़ा	सुखम्	चिन्ता	व्यथा

१ अधिक चैत्र शुक्ल तथा कृष्णपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ मार्च १९४५ ई०

अधिक चैत्र शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि १ वत्सरारंभः १ गौतमजयन्ती
तिथि ३ पंचक समाप्तिः १२।५७ या०
तिथि ४ भ० १४।३४ उ ४४।४३ या० उमामेन्दुर्गः
१२।७ गणेश ४ व्रतम्
तिथि ७ भ० २०।४० उ ५१।१६ या०
तिथि ८ बु० सिंहेगुरुः १६।१७
तिथि १० भ० ५५।४३ उ
तिथि ११ भ० २६।१० या० पुरुषोत्तमी ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० ३५।२५ उ
तिथि १५ भ० ३।५० या० व्रताय १५

अधिक चैत्र कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि ३ भ० २३।१० उ ५५।३२ या०
तिथि ४ श्रीगणेश ४ व्रतम् अप्रैल ४
तिथि ६ भ० ३।५० उ ३३।५८ या०
तिथि ७ पश्चिमास्तः शुक्रः ११।४०
तिथि ९ भ० २६।१४ उ ५७।३५ या० पंचकारंभः ११।१३
तिथि ११ पुरुषोत्तमी ११ व्रतं स्मार्त्तानाम्
तिथि १२ पुरुषोत्तमी ११ व्रतं वैष्णवानाम्
तिथि १३ भ० ४२।५६ उ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० १०।२ या०
तिथि ३० गुरुवती ३० पंचकसमाप्तिः ३४।११ या०

३ वैशाख कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ मई १९४५ ई०

वैशाख कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि ३ म० ४।१९ उ ३५।२८ या० गणेश ४ व्रतम्
तिथि ४ मई ५
तिथि ६ म० ३६।१४ उ
तिथि ७ म० ५।७ या०
तिथि ८ कालभैरवाष्टमी ८ पंचकारंभः १।२० उ
तिथि ९ म० ५३।५१ उ
तिथि १० म० २१।१८ या
तिथि ११ वरूथिनि ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ बु० पंचक समाप्तिः ५५।३०या
तिथि १३ म३।४०उ३०।४५या कृत्तिकायांसूर्यः ४६।३६
तिथि ३० शालग्रामम् ३०

वैशाख शुक्ल पक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ पूर्वेद्यार्कः १६।४० अक्षय ३ परशुरामजयन्ती
तिथि ४ म० ५।५६ उ ३४।२५ या० गणेश ४ व्रतम्
तिथि ७ म० ३।२५ उ गङ्गोत्पत्तिः ७
तिथि ८ म० ३।२ या० अष्टमी व्रतम् ८
तिथि ९ चण्डिका ९ व्रतम्
तिथि ११ म० १३।१७उ४५ ३७यामोहिनी ११व्रतं स०
तिथि १३ रोहिण्यांसूर्यः ४१।१४ प्रदोष १३ व्रतम्
तिथि १४ नृसिंह १४ व्रतम्
तिथि १५ म० ०।२४ उ ३१।४५ या० व्रताय १५
तिथि १५ स्नानदानादौ १५

४ ज्येष्ठ कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ जून १६४५ ई०

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष के पर्व दिन

तिथि २ भ० ३८।२२ उ
तिथि ३ भ० ८।२६ या० गणेश ४ व्रतम्
तिथि ५ पंचकारंभः ३३।३० उ जून ६
तिथि ६ भ० १।३६ उ २१।२८ या०
तिथि ८ कालाष्टमी ८ शीतला ८
तिथि १० भ० १३।२१ उ ४०।४० या०
तिथि ११ अचला ११ व्रतं सर्वेषाम् पं०स०।६ ४२या
तिथि १२ मृगभेरविः ४८।१५ प्रदोष १३ वटसावित्री व्रतारंभः
तिथि १३ भ० २२।२५ उ ४१।३८ या०
तिथि १४ वटसावित्री ३० व्रतम्
तिथि ३० श्राद्धार्थी ३०

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि १ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि २ रंभा ३ व्रतम्
तिथि ३ भ० ३२।१२ उ० गणेश ४ व्रतम्
तिथि ४ भ० १।२५ या० मिथुनेचार्कः ३६।४०
तिथि ७ भ० ६।२० उ० ३८।२६ या० भानु ७
तिथि ८ शुक्लादेवी पूजा ८
तिथि ६ शान्यस्ताः पश्चिमे २१।४०
तिथि १० भ० ५२।३५ उ० गङ्गादशहरा १०
तिथि ११ भ० २५।२५या आर्द्रामेसूर्यः ५१।१६ निर्जला ११ व्रत०
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम् द० वटसावित्री व्रतारंभः
तिथि १४ भ० ३६।३ उ०
तिथि १५ भ० ६।५० या व्रताय १५ दाक्षि० वटसावित्रीव्रत०

६ श्रावण कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ अगस्त १९४५ ई०
कृष्ण पक्षः
शुक्ल पक्षः
श्रावण कृष्णपक्ष के पर्व दिन—
तिथि १ पंचकारम्भः १२।२ उ०
तिथि ३ भ० २७।५२ उ० ५६।५७ या०
तिथि ४ गणेश ४ व्रतम्
तिथि ५ नागपंचमी ५
तिथि ६ भ० ३६।६ उ० पंचकसमाप्ति ५६।१६ या०
तिथि ७ भ० ५।२६ या०
तिथि ८ मन्वादिः अगस्त ८
तिथि ६ भ० ४८।२ उ० अश्लेषायांसूर्यः ४६।१८
तिथि १० भ० १५।१२ या०
तिथि ११ कामदा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १३ भ० २।२२ उ० ३१।२२ या०
तिथि १५ सोमवती ३०
श्रावण शुक्लपक्ष के पर्व दिन—
तिथि २ बृहस्पतिचार स्वर्णगौरी २ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ३ भ० ३५।२३ उ गणेश ४ व्रतम्
तिथि ४ भ० ७।१७ या०
तिथि ५ नागपंचमी ५ कल्किजन्यन्तो ६
तिथि ७ भ० २१।५२ उ० ५४।१२ या०
तिथि ८ मघायां सिंहस्यसूर्यः ४६।४३
तिथि ६ शाकुनमी ६
तिथि ११ भ०४।१३उ०३५।७या०पुत्र११ व्रतं सर्वे०
तिथि १३ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० ३२।३२ उ० पंचकारंभः ३१।४०
तिथि १५ भ ०।५६या०श्रावणी १५ रक्षिकाबन्धनम्

७ भाद्र कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ सितम्बर १९४५ ई०

भाद्रपद कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ म० ५७।४१ उ०
तिथि ३ म० १४।५६ पा० गणेश ४ व्रतम् कज्जली ३
तिथि ४ पंचक समाप्तिः १७।३५ पा०
तिथि ५ म० ५६।४५ उ० हलषष्ठी
तिथि ७ म० २३।४६ पा०
ति० ८ पूर्वाफाल्गुनीमेसूर्यः ३६।२० जन्माष्टमीव्रतंसर्वे०
तिथि १० म० ७।२१ उ० ३५।५१पा० सितम्बर १
तिथि ११ अजा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १३ म० २१।२ उ० ५१।८ पा०
तिथि ३० गुरुवर्ती ३० कुशामहणी ३०

भाद्रपद शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ३ हरितालिका व्रतम् ३ (तीज)
तिथि ४ म१४।१४२४६।४७याग०४व्रतं चन्द्रद०नि०४
तिथि ५ ऋषिपंचमी ५ व्रतम्
तिथि ६ सूर्यषष्ठी ६
तिथि ७ वृहस्पतिवार उत्तराफाल्गुनीमेंसूर्यः २२।२१
तिथि ७ शुक्रवार म ७।४८ उ० ३२।२० पा०
तिथि ९ कन्यामेंसूर्यः ४७।८
तिथि १० म० ३५।४६ उ०
तिथि ११ म५।२३पापद्ममा ११ व्रतंस० पंचकारंभः ५०।२५३
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १३ ५६।३० उ अनन्त १४ व्रतम्
तिथि १५ म० ५३।५७ या० व्रताप १५

८ आश्विन कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ अक्टूबर १९४५ ई०

२५ पं० ७ शुक्रे मि० ४६।१५

२६ पं० १४ शुक्रे मि० ४५।५५

२७ पं० ६ शुक्रे मि० ४५।४६

२८ पं० १३ शुक्रे मि० ४५।३७

आश्विन कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि १ महालयारंभः १
तिथि २ अशून्य शयन व्रतम् २ पंचकसमाप्तिः २७।३या०
तिथि ३ म० ७।१५ उ ३४।१६ या ललिता ३ गणेश ४ व्रतं
तिथि ४ भरणी श्राद्धम्
तिथि ६ म० ६।५४ उ ४४।१४ या हस्तभेसूर्यः ७।२२
तिथि ७ महालक्ष्मी व्रतम् ८ जीवित पुत्रिका ८ व्रतम्
तिथि ९ म० ३३।५ उ
तिथि १० म० १।५४ या अक्टूबर १०
तिथि ११ इन्दिरा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ पूर्त मघाश्राद्धम्
तिथि १३ म० २।३४ उ ३३।५५ या
तिथि १४ श्राद्धादौ ३०
तिथि ३० स्नानदानादौ ३०

आश्विन शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि १ नवरात्रारंभः १ घटस्थापनम् १ मातामहश्राद्धम् ०
तिथि ३ म० ५६।३० उ ० चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ४ म० २८।५६ या चित्राभेसूर्य. २८।२३
तिथि ६ बिल्वाभिमन्त्रणम्
तिथि ७ म० ३८।१५ उ
तिथि ८ म० ८।३२ या महाष्टमी ८ व्रतम्
तिथि ९ पूर्वोदयः गुरुः २६।२० महानवमी ९
तिथि १० विजयादशमी १० पंचकारंभः ६।१३ उ
तिथि ११ म० ५।५० उ ३५।२१ या तुलाभेसूर्यः १२।२७
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम् पापांकुशा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १४ म० १६।२१ उ ३६।२० या व्रताय १५ कोजागरा १५
तिथि १५ स्नानदानादौ १५ पंचकसमाप्तिः ५७।४३ या

६ कार्तिक कृष्ण तथा शुक्लपक्ष: विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ नवम्बर १९४५ ई०
कृष्ण पक्ष:
शुक्ल पक्ष:
कार्तिक कृष्णपक्ष के पर्व दिन—
तिथि २ म० २८।४०उ४५।५४पा स्वातीमेसूर्यः ५३।२४
तिथि ४ गणेश ४ व्रतम्
तिथि ६ म० ४२।१६ उ०
तिथि ७ म० २।३८ पा
तिथि १० म० ५।० ३ ३५।११ पा०
तिथि ११ रंभा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ गोवत्स १२ नवम्बर ११
तिथि १३ म ४३।३४३ प्रदोषः १३व्रतम् धनतेरस १३
तिथि १४ ग० १५।५५ पा० नरक १४
तिथि ३० दीपावली ३० श्रीमहालक्ष्मी पूजनम्
कार्तिक शुक्लपक्ष के पर्व दिन—
तिथि १ अन्नकूट १ गोवर्द्धनपूजा
तिथि २ मंगलवार विशाखामेसूर्यः १३।२५ भ्रातृ २०
तिथि ३ म० ३६।३१श्रीगणेशाधव्रतम् यमुनास्नानम्
तिथि ४ म० ११।४ पा०
तिथि ६ कार्त्तिकेय ६ पूजनम्
तिथि ७ म१३।१४ उ ४२।२२पा पंचकारंभः २७।५०३
तिथि ८ गोपाष्टमी ८ गोपूजनम्
तिथि ९ अक्षयनवमी ९ कूष्माण्डदानम्
तिथि १० म३२।२४उ१६।१७पा हरिप्रबो०११म०स्मा०
तिथि १२ वृश्चिकेऽर्कः ५।१७हरिप्र०११व्रतंवै०कार्ति०
तिथि १३ प्रदोषः १३ वृतस्य पं०समाप्तिः २६।३० पा
तिथि १४ म०।४२।४६ वैकुण्ठ १४
तिथि १५ म१०।०पा अनुराधामेसूर्यः२९।२६व्रतायु१५

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ म० ५३।२८ उ
तिथि ३ म० २१।३ या० गणेश ४ व्रतम्
तिथि ६ म० ११।५३ उ ४१।४५ या भानु ७
तिथि ७ कालाष्टमी ८ भैरवदर्शनम्
तिथि ९ म० ४४।४७ उ
तिथि १० म० १६।१५ या
तिथि ११ उत्पन्ना ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतं दिसम्बर १२.
तिथि १३ म० ३७।२७ उ ज्येष्ठामेसूर्यः २१।२७
तिथि १४ म० ३।१० या०
तिथि ३० गौरीतपोव्रतम् भौमवती ३०

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ३ रंभा ३ व्रतम्
तिथि ४ म० २०।३७ उ ५०।५ या गणेश ४ व्रतम्
तिथि ५ पंचकारम्भः ४६।२५ उ
तिथि ७ म० ४५।३५ उ
तिथि ८ म० १३।४१ या
तिथि १० म० ५८।५६ उ पंचकसमाप्तिः ३१।५४ पा०
तिथि ११ म०२६।१०यामूलेधनुर्षिन्नार्कः१३।५०मोक्षदा ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ पूर्वास्तः शुक्रः ५१।२०
तिथि १४ म० ८।३७ उ ३६।८ या व्रताय १५ दत्तजयन्ती
तिथि १५ स्नानदानार्दा १५

११ पौष कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ जनवरी १९४६ ई०
कृष्ण
पक्षः
शुक्ल
पक्षः
पौष कृष्णपक्ष के पर्व दिन—
तिथि ३ भ० २३।१४ उ ५।४८ या
तिथि ४ गणेश ४ व्रतम्
तिथि ६ भ० ४।४४ उ
तिथि ७ भ० २०।४२ या
तिथि १० शुक्रवार भ०३।२३पूर्वाषाढ़ामेसूर्यः३६।२८
तिथि १० शनिवार भ० ३।५० या
तिथि ११ सफला ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम् स्वरूपा १२ व्रतम्
तिथि १३ भ१६।३२३५।१२७या०जनवरी१सन्१९४६ई०
तिथि ३० पुष्कर पर्व ३०
पौष शुक्लपक्ष के पर्व दिन—
तिथि २ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ३ भ० ५०।४३ उ० पंचकारंभः ५।३० उ
तिथि ४ भ० २८।४४ या गणेश ४ व्रतम्
तिथि ६ चांद्रजन्यती ७
तिथि ७ भ१५।१०उ४२।३१याउत्तराषाढ़ामेसूर्यः३६।३०
पंचक समाप्तिः ५६।१३ या
तिथि ११ भ२५।२३उ ६२।१७ या मकरेत्सार्कः ५८।४३
सफला ११ व्रतं स्मा०
तिथि १२ सफला ११ व्रतं वैष्णवानाम्
तिथि १३ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० ३६।५६ उ
तिथि १५ भ० ३।५ या प्रयाग १५ शाकंभरी१५व्रतम्

१२ माघ कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ फरवरी १९४६ ई०

कृष्ण पक्षः

शुक्ल पक्षः

४१पं. ९ शुक्रे मि. ४३।४०

४२पं. ८ शुक्रे मि. ४३।३८

४३ पं. ७ शुक्रे मि. ४३।५३

४४पं. २४ शुक्रे मि. ४४।७

माघ कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ भ० ५८।६ उ
तिथि ३ भ० १६।५० या सौभाग्यसुन्दरी३ गणेश४ व्रतम्
तिथि ६ भ० ३३।५३ श्रवणमेसूर्यः ५२।३६
तिथि ७ भ० ६।१३ दः प्रादिवाराद्जयन्ती ७
तिथि ८ अन्वष्टकाश्राद्धम्
तिथि १० भ० २२।१६ उ ५३।५६ या०
तिथि ११ षट्तिला ११ व्रतं स्मार्त्तानाम्
तिथि १२ मंगलवार षट्तिला ११ व्रतं वैष्णवानाम्
तिथि १२ बुधवार प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १३ भ० ५।५४ उ ३६।५६ या०
तिथि १४ अन्वष्टका ३० फरवरी २
तिथि ३० स्नानदानादौ ३० पंचकारंभः २५।८ उ

माघ शुक्लपक्ष के पर्व दिन—
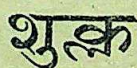
तिथि १ चन्द्रदर्शनम् २
तिथि ३ भ० २६।१५ उ ५८।१४ या धनिष्ठामेसूर्यः ४६।३६
तिथि ५ श्रीपंचमी वसन्तपञ्चमी ५ वसन्तोत्सवः
तिथि ६ पंचक समाप्तिः १६ ४६ या
तिथि ७ भ० ४२ २१ उ अचला ७
तिथि ८ भ० ६।२५ या भीष्माष्टमी ८
तिथि ९ महानन्दा ९ व्रतम्
तिथि १० भ० ५२।२४ उ
तिथि ११ भ० १६।४२ या कुंभेऽत्रार्कः १६।५४ जया ११ व्रतं स
तिथि १२ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० ८।३५ उ ३७।३५ या० व्रताय १५
तिथि १५ स्नानदानादौ १५

१३ फाल्गुन कृष्ण तथा शुक्लपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ मार्च १९४६ ई०

फाल्गुन कृष्णपक्ष के पर्व दिन—

तिथि २ भ० ३८।१३ व शतभेसूर्यः ५६।३६
तिथि ३ भ० ६।१६ या श्रीगणेश ४ व्रतम्
तिथि ६ भ० २१।५१ उ ५५।३३ या
तिथि ८ सीतलाष्टमी ८ मध्याह्ने
तिथि १० भ० ६।१८ उ ४१।१८ या
तिथि ११ विजया ११ व्रतं सर्वेषाम्
तिथि १३ भ० ४६।७ उ प्रदोषः १३ व्रतम् पंचकारंभः ५४।५८ उ मार्च ३
तिथि १४ भ० १५।३६ या
तिथि ३० द्वापरोत्पत्तिः ३०

फाल्गुन शुक्लपक्ष के पर्व दिन—

तिथि १ पूर्वाभाद्रभेसूर्यः ७।३६
तिथि ३ भ० ५८।० उ पश्चिमोदयः शुक्रः ४१।२० गणेश ४ व्रतम् पंचक समाप्तिः ३७।४२ या०
तिथि ४ भ० २५।१८ या०
तिथि ७ भ० ७।३५ उ ३४।४५ या० होलाष्टक ८
तिथि ११ भ० २०।१६ उ ४८।२८ या० आमलकी ११ व्रतं स०
तिथि १२ मीनेचार्कः १०।०
तिथि १३ प्रदोषः १३ व्रतम्
तिथि १४ भ० ४३।१८ उ
तिथि १५ भ० १३।४४ या० उत्तराभाद्रभेसूर्यः २७।३६ होलिकादहनम् १५

१४ चैत्र कृष्णपक्षः विक्रमीय सं० २००२ शाके १८६७ मार्च १६४६ ई०
चैत्र कृष्णपक्ष के पर्व दिन—
तिथि ११ पापमोचिनी
तिथि ३० भौमवती ३० पुष्करपर्व ३०

वर कन्याके विवाहके लिये गुण देखने का कोष्ठक—

नक्षत्रमेलापके गुणबोधक चक्रम् । वरनक्षत्राणि ।

न.	अ	भ.	कृ. १	कृ. ३	रो.	मृ २	मृ. २	आ.	पु. ३	पु. १	पु.	आ.	म.	पू.	उ १	उ. ३	ह	चि २	चि २	स्वा	वि ३	वि १	अ.	ज्ये	मू	पू॥	पू ३॥	उ १	उ. ३	श्र १॥	श्र २॥	ध २	ध २	श	पू ३	पू १	उ.	रे
अ.	२८	३३	२८॥	१८॥	२१॥	२२॥	२६	१७	१८	२३॥	३१॥	२७	२२	२६	१७॥	११	९	१३	२२॥	२६॥	२२॥	१९॥	२६॥	१५	१३	२६	२७	२४॥	२६	२६	२४	२१	२१	१५	१६	१४॥	२४॥	२६
भ	३४	२८	२९	१९	२२॥	१३॥	१७	२६	२६	३०॥	२३॥	२४॥	२१	१९	२८	२१॥	१९	६	१४॥	२९॥	२२॥	१९॥	१७॥	१९॥	२०	१९	२०	२७	२८॥	२८	२६	१०	१०	२०	२४	२२॥	१६॥	२८
कृ १	२७॥	२७॥	२८	१६॥	९	१५॥	१९	२०	१	२५॥	२५॥	२३॥	१७॥	२१	२२	१५॥	१५॥	१८॥	२७॥	१५॥	१९॥	१६॥	२०॥	२६॥	२४॥	१८	१९	१४	१५॥	११॥	१०॥	२५	२५	२७	१९॥	१७॥	१९॥	११॥
कृ. ३	१८॥	१८॥	१९	२८	१९	२५॥	१६॥	१७॥	१८॥	२२	२३	२०	१९॥	२३	२४	२१	२१	२३॥	२२॥	१०॥	१९॥	२१॥	२५॥	३१॥	२०	१२॥	१३॥	९॥	१४	११	१०	२३॥	२९॥	३१	२३॥	२०	२२	१४
रो	२३॥	२३॥	१०	१९	२८	३६	२७	२३॥	२३॥	२७	२६	१३	१२॥	२६॥	२८	२५	२६	२०	१९	१५॥	९॥	१६॥	३०॥	२४॥	१४	१३	२०	२२॥	१७	१९	१८	२०	२६	२४॥	३०॥	२७	२६	११
मृ २	२२॥	१३॥	१५॥	२४॥	३४	२८	२०	२५	२३॥	२६	२७	२२	२१॥	१७॥	२५॥	२३॥	२७	१३	१०	२५	१७॥	२३॥	२२॥	२५॥	१५	१२	११	१८	२१	२४॥	२४॥	१३	१९	२७	२९॥	२६॥	१७	२७
मृ. २	२७	१८	२१	१८॥	२५॥	२०	२८	३३	३१॥	१९॥	१०॥	१५॥	२४	२०॥	२८॥	३०॥	३४	२१	१४	२७	१९॥	१४	११	१३	२३	१९	१८	२४	२०॥	२५	२५	१२	१३	२१	२३॥	२७॥	१७	२७
आ.	१९	२७	२१	१८॥	२४॥	२६	३४	२	२९	१३	२०॥	१३॥	२३॥	२९॥	२२॥	२४॥	२४॥	२७	२०	२७	२०	१३॥	१७	४	१६	२८	२७	२७	२२॥	२२॥	२२॥	१७	१८	११	१६	१९	२७	२७
पु. ३	१९	२६	२२	१९॥	२३॥	२४॥	३२॥	२४	२८	१६	२३	१६॥	२२॥	२७॥	२१॥	२३॥	२४॥	२५॥	१८॥	२७	२१	१३॥	२०॥	५	१३	२७	२६	२७	२७॥	२२॥	२३॥	१७॥	१८॥	११	१७	१९॥	२७॥	२८
पु १	२१॥	२८	२३॥	२०	२४	२५	१९	१०॥	१४॥	२८	३५	२८॥	१५॥	२०	१४॥	१०	१८	२०॥	२०	२७	२०	१९	२६	१७॥	८	२१	२०॥	२१॥	२८॥	२५	२७	२१	१२॥	७	११	१७	२५	२५॥
पु.	३०॥	२१॥	२६॥	२३	२४	१७	१०	१८	२१॥	३५	२८	३०	१८॥	१४॥	२३॥	२६	२७	१२	११॥	२६	२१	२०	१९	२२	१७	११	११॥	२२॥	२६	२४	२५	१३	४॥	१४॥	१८	२४	१८	२७
आ.	२५	२३॥	२२॥	१९	१२	२१	१३	१२	१५	२८॥	२८॥	२८	१५	१५॥	१७॥	२०॥	२०	२६	२५॥	११॥	१६॥	१५॥	२०	२६	२२॥	१६	१६॥	८॥	१२	१३	१३	२७	१८॥	१८॥	१२॥	१८॥	२०	१२
म.	२१	२१	१७॥	१८॥	११॥	१९॥	२२॥	२२॥	२१॥	१६॥	१८॥	१६	२८	३०	२६॥	१६॥	१६॥	२२॥	२५॥	११॥	१७॥	२५॥	२६॥	३४	२४	२०	२१	११॥	५॥	५॥	५॥	१८॥	२४॥	२५॥	१८॥	१७॥	१८॥	१२
पूफा	२७	१९	२१	२२	२५॥	१७॥	२०॥	२८॥	२७॥	२२॥	१६॥	१६॥	३०	२८	३४	२४	२२॥	८॥	११॥	२५॥	१९॥	२६॥	२४॥	२४॥	१९	१९	१९	२७	२१	१९॥	१८॥	४॥	११॥	१९॥	२४॥	२३॥	१६॥	२४॥
उफा १	१८॥	२७	२२	२३	२७	२५॥	२८॥	२१॥	२१॥	१६॥	२५॥	१८॥	२६॥	३४	२८	१८	१६॥	१४॥	१७॥	२६॥	१७॥	२४॥	२३॥	१९॥	१९॥	२६	२७	२८	२२	२१	२०	११॥	१८॥	१२॥	१६॥	१५॥	२६॥	२४॥
उफा. ३	१३	२१॥	१६॥	१२	२९	२३॥	३०॥	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२५	१९	२८	२५॥	२४॥	१६॥	२५॥	१६॥	१८	२७	१३	१५॥	२३॥	२८॥	२९॥	२६	२५	२५	१६॥	१६॥	२०॥	१४॥	१८	२९	२७
ह.	१०	२०	१६॥	२१	२६	२६	३३	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२२॥	१७	२६	२८	२७	१९	२६॥	१७॥	१९॥	२६	१२	१४	२७	२६	२७॥	२३	२४	२४	१९	१९	६॥	१४॥	१९	२७	२७
चि. २	१३	६	१९	२५॥	२०	१२	१९	२६	२४॥	२०॥	१२॥	२६॥	२३॥	९॥	१५॥	२७॥	२७	२८	२०	१९	२६॥	२८	११	२५	२८	१४	१३	२१	१७॥	१९	१९	१८	१८	२४	१८॥	२२	११	२१
चि २	२२॥	१५॥	२८॥	२३॥	२०	१२	१३	२०	१८॥	२०	१२	२६	२५॥	१०	१७॥	१७॥	२०	२१	२८	२७	३४॥	२४	७॥	२१॥	२८	१४	१३	२१	२५॥	२७	२७	२६	२०	२६	२१	१५	४	१३
स्वा	२७॥	२९॥	१७॥	१२॥	१६॥	२७	२७	२६	२६॥	२८	२८	१५॥	१३॥	२५॥	२५॥	२५॥	२७॥	२१	२८	२८	२०	१०	२३॥	१८॥	२३	२७	२६	१८	२२॥	२३॥	२३॥	२७	२१	२०	२५	१९॥	२०	१३
वि ३	२२॥	२२॥	२०॥	१५॥	१०॥	१८॥	१९॥	२१	२१	२२॥	२१॥	१९	१७॥	१९॥	१८॥	१७॥	१८॥	२७॥	३४॥	१८	२८	१८	१७	२१॥	२८	२२	२१	१३	१७॥	१७॥	१७॥	३२॥	२६॥	२६	२२	१६॥	१३॥	५
वि. १	१६॥	१६॥	१४॥	१९॥	१४॥	२२॥	१३	१४॥	१४॥	१९	१८	१५॥	११॥	२३॥	२१॥	१८	१९	२८	२३॥	८	१७	२८	२७	३१॥	२३॥	१७॥	१७॥	९॥	१२	१२	१२	२७	२७	२६॥	२२॥	२१	१८	५॥
अ	२४॥	२३॥	१९॥	२७॥	२७॥	२०॥	११	१६	२१॥	२६॥	१८	२१	२४॥	२०॥	२९॥	२६	२७	१२	७॥	२२॥	१७	२८	२८	३१	१६॥	१४॥	१४॥	२२	२५	२६	२६	१२	१२	२२	२४॥	२४	१८	२७
ज्ये.	१२	१८॥	२४॥	२९॥	२२॥	२२॥	१३	३	६	१०॥	२०	२६	३१	२३॥	१६॥	१३	१२	२५॥	२०॥	२०॥	२०॥	३१॥	३०	२८	१५	१६॥	१७॥	१७॥	२०	२०	२०	२५	२५	११	११	९॥	२१	२१
मू	१२	२०	२४॥	१९	१३	१४	२१	१५	१२	८॥	१७॥	२४	२५	१९	९॥	१३	१३	२७	२७	२१	२७	२४॥	१६॥	१६	२८	२८	२७	२५॥	१५॥	१५॥	१५॥	२१॥	२५	२१॥	११	१७॥	२५॥	२७
पूषा ॥	२६	१९	१८	१२॥	१९	११	१९	२७	२७	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२८॥	२७	१२	१२	२७	२०	१६॥	१८॥	१८॥	२८	२८	२७	३३	२९	२३॥	२३॥	८॥	१६॥	२३॥	३१॥	३२॥	२३॥	३२॥
पू. ३॥	२७	२०	११	१३॥	२०	१२	१८	२६	२६	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२७	२६	११	११	२६	१९	१८॥	१८॥	१९॥	२७	२७	२८	३४	२४	२४	२३॥	८॥	१५॥	२२॥	२९॥	३२॥	२३॥	३२॥
उषा १	२५॥	२७	१४	८॥	११॥	२४	२४	२६	२६	२३॥	२४॥	९॥	११॥	२७	२८	२८॥	२७॥	२०	२०	१९	१२	११॥	२५॥	१९॥	२५॥	३३	३४	२८	१८	१६	१९	१५	२२॥	२२॥	२८॥	३१॥	३२॥	२३
उषा ३	२८	२९॥	१६॥	१४	१७	२२॥	२०॥	२२॥	२२॥	२७	२८॥	१३	६॥	२२	२३	२६	२५	१७॥	२४॥	२३॥	१६॥	१४	२८	२२	१६॥	२६	२५	१९	२८	२६	२५	२५॥	१७॥	१७॥	२३॥	२०॥	३२॥	२३
श्र. १॥	२८	२७	१४॥	१२	१८	२४॥	२४	२१॥	२१॥	२७	२५	१५	१७॥	१९॥	२०	२४	२५	१९	२६	२३॥	१६॥	१४	२८	२३	१७॥	२३॥	२४॥	१७	२५	२८	२७	३०	२२	१८॥	२३॥	३१॥	३०॥	२३
श्र. २॥	२७	२६	१३॥	१०	१७	२६	२३॥	२१	२३॥	२८	२६	१५	६॥	१८॥	२०॥	२३॥	२४॥	१८॥	२५॥	२३	१६	१४	२८	२३	१९	२५	२५॥	१५	२४	२७	२८	३०	२०॥	१८	२३	३१॥	३१॥	२४॥
ध २	२०॥	१०॥	२६	२३॥	२०	१२	८॥	१७॥	१७॥	२२	१३	१८	१८॥	४॥	१२॥	१९	२२	१६॥	२३॥	२६	३०	२८	१४	२८	२१	९	९॥	१६॥	२५॥	२८	२१	२८	१८॥	२३॥	२१	२६॥	१५॥	२३॥
ध २	२०	११	२६	३०॥	२७॥	२७	१०	०	१९	१४	५	२०	२५॥	११॥	१९॥	१७॥	२१	१८	१९	२२	२५॥	१६॥	१२	२६	२९॥	१७॥	१६॥	१३॥	१६॥	२१	२१	२१	२०	२८	२२	२८॥	७॥	१४॥
श	१५	२१	२०	३२॥	२५॥	२५	१८	१०	१०	७॥	१५	२०	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	८॥	२६	२६	१९	२६	२६॥	२१	१९	२२॥	२४॥	२३॥	२३॥	१८॥	१८॥	१८॥	२५	३३	२८	१३	९	१९॥	१६॥
पूभा. ३	१८	२५	२०	२४॥	३१॥	२१॥	२४॥	१७	१७	१३॥	२०॥	१४	१९॥	२५॥	१७॥	१५॥	१७॥	१८॥	१९॥	२८	२१	२१॥	२७॥	१२	१५॥	११॥	३०॥	२९॥	२४॥	२५॥	२५॥	२०॥	२७॥	११	२८	१८	[illegible]	[illegible]
पूभा १	१४॥	२१॥	१६॥	१९	२६	२६	२५॥	१८	१८	१८	२५	१८॥	१६॥	२२॥	१४॥	१६॥	१८॥	१९॥	१२॥	२१	१४	२१	२७	११॥	१५	३१	३१॥	३०॥	२८॥	२९॥	३०॥	२५॥	१७	७२	१६॥	२८	३३	[illegible]
उभा.	२४॥	१९॥	१८॥	२१	२५	१७	१६॥	२५॥	२७	२६	११	२०	१७॥	१५॥	२५॥	२७॥	२६	९॥	१०॥	१९॥	१२	१९	२०	२२	२४	२२	२२॥	३१॥	२९॥	२८॥	२९॥	१४॥	६	१६॥	११॥	३३	२८	[illegible]
रे	२५	२४॥	११॥	१४	१७	२६	२५॥	२४	२५॥	२४॥	२७	१३	१२	२२	२२	२४॥	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	५॥	१२॥	२७	२२	२७	३०॥	३०	२१	१९	२०	२२॥	२२॥	१४	१६	१८	२९॥	३३	[illegible]

जैसे—वर का जन्म धनिष्ठा नक्षत्र और कन्या का जन्म शततारा नक्षत्र में है; तो कोष्ठक में ऊपर की तरफ धनिष्ठा व नीचे की ओर बाईं तरफ शततारा नक्षत्र के सामने का अंक २५ है। अस्तु २५ गुण मिले। कमसे-कम १७ गुण मिलना चाहिये। इससे अधिक जितना मिले उत्तम है।

नोट—ऊपर से नीचे वर नक्षत्र के बाईं ओर कन्या नक्षत्र हैं।

Edited, printed & published by Puranchand Burman at Dabur (Dr. S. K. Burman) Ltd. Medical Press, Deoghar (S.P.)